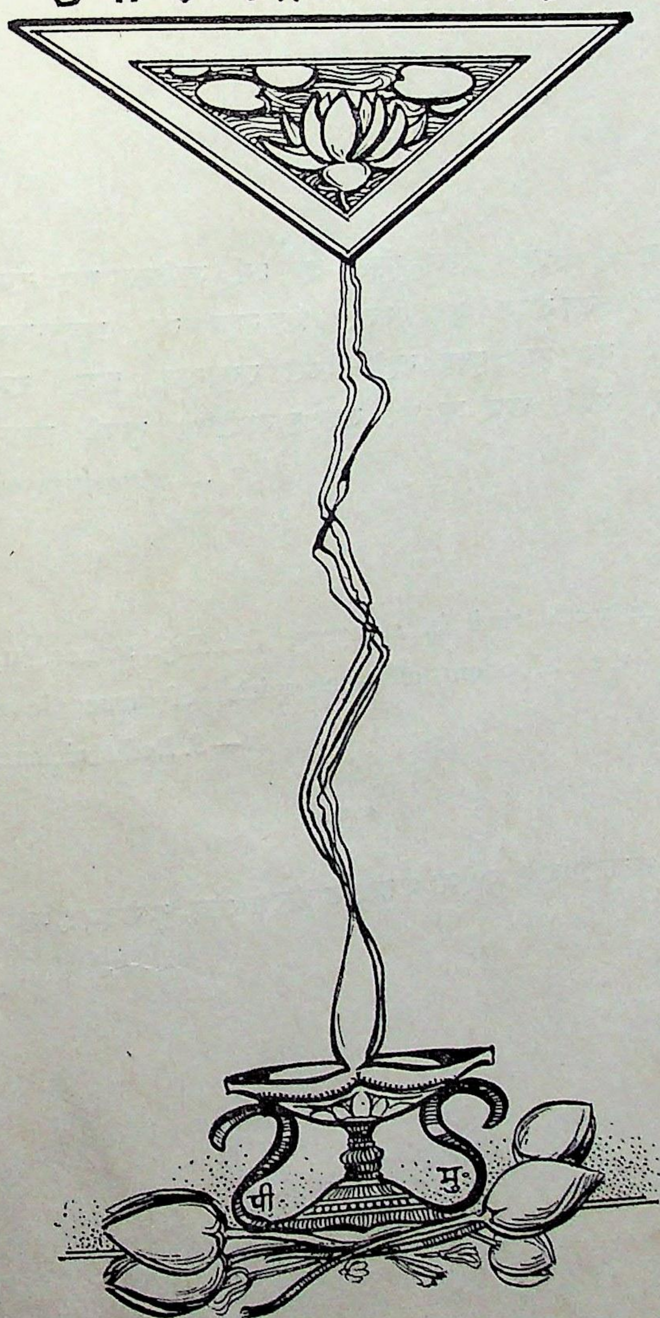
अहिंसा और सत्य

मो॰ क॰ गांधी





अहिंसा और सत्य



कारा थी संस्कृति विगत भित्ति, बहु धर्म जातिगत रूप नाम।
बन्दी जग-जीवन भू विभक्त, विज्ञानमूढ़ जन प्रकृति-काम।
आये तुम मुक्त पुरुष कहने—मिथ्या जड़बन्धन, सत्य राम।
नानृतं जयति सत्यं मा भैः, जय ज्ञानज्योति! तुमको प्रणाम।

—— सुमित्रानन्दन पन्त

**

In a world sunk in savagery, Gandhiji stands up for the adoption of the spirit of true love.

—S. Radhakrishanan

**

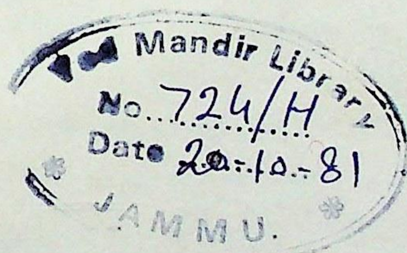
ट्रेड साफ़्टली, वर्ल्ड, परहैप्स ए क्राइस्ट लीड्स आन, टु डे इन इण्डिया।

—— मेरी सीग्रीस्त

गांधी-साहित्य-प्रकाशन
१-२

अहिंसा और सत्य

[गांधी जी]



प्रधान सम्पादक
श्रीरामनाथ 'सुमन'

•

उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि
सेवापुरी : वाराणसी

अक्टूबर १९६५

मूल्य
सजिल्द राज-संस्करण
पन्द्रह रुपये
सामान्य संस्करण
बारह रुपये

प्रधान सम्पादक
श्री रामनाथ 'सुमन'

सहायक
नरेश मिश्र

चित्र-सज्जा
फणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

अनुक्रमणिका

पुस्तक के आरम्भ में :

१. **प्राक्कथन :** श्री रंगनाथ दिवाकर, अध्यक्ष केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि

२. **अहिंसा एवं सत्य :** श्री रामनाथ 'सुमन', प्रधान सम्पादक

३. **संकेतार्थ**

४. **अहिंसा :** विषयानुसारिणी निर्देशिका २७–४०

५. **अहिंसा :** कालक्रमानुसारिणी निर्देशिका ४१–५३

६. **सत्य :** विषयानुसारिणी निर्देशिका ५४–५९

७. **सत्य :** कालक्रमानुसारिणी निर्देशिका ६०–६४

ग्रन्थ-पाठ भाग :

८. **अहिंसा :** [ग्रन्थ १] १–६०७

९. **सत्य :** [ग्रन्थ २] ६०९–६९०

अन्त में :

१०. **संकेतिका** ६९१–७२७

प्राक्कथन

गांधी-साहित्य-प्रकाशन

भारत में गांधी जी ने एक नये युग का प्रवर्तन किया, ऐसा हम कह सकते हैं। स्वयं गांधी जी ने कभी नहीं कहा कि गांधी-मार्ग कोई नई चीज है। वैसे तो सत्य और अहिंसा का मार्ग ही उन्होंने नये संस्कारों से अधिक तेजस्वी बनाया और उसका अभिनव रूप न केवल भारत के सामने वरं अखिल मानव जाति के सामने रखा। जो समझते हैं कि गांधी जी ने केवल भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग बताया और अहिंसा से उसको पूर्ण करने की प्रक्रिया बताई वे गांधी जी को पूर्ण रूप से नहीं समझते। गांधी जी केवल एक राष्ट्राभिमानी आदमी ही नहीं थे; हम कह सकते हैं कि भारतीय और जागतिक जो धर्म और संस्कृतियाँ हैं उन सबों का पूर्ण मन्थन करके मानवता के विकास के लिए जो मार्ग-दर्शन करना चाहिए था वह गांधी जी ने किया। इस दृष्टि से देखें तो गांधी जी का उपदेश एक अखिल मानव-कुलव्यापी और विशेषतः इस युग में सब देशों को और लोगों को नई प्रेरणा देनेवाली चीज है।

वैसे तो हिन्दी में गांधी-साहित्य काफी प्रकाशित हुआ है। दूसरे-दूसरे लेखकों ने और प्रकाशकों ने इस क्षेत्र में अच्छा काम किया है। परन्तु गांधी स्मारक निधि का विशेष कर्तव्य है कि गांधी जी के विचारों का जो विषयानुसार निचोड़ है वह उन्हीं के शब्दों में प्रकाशित करे। यदि कोई ऐसा मनुष्य है कि जो हिन्दी के अतिरिक्त दूसरी भाषा नहीं जानता तो उसके लिए गांधी स्मारक निधि का यह प्रकाशन गांधी विचारों का विराट स्वरूप दिखा सकता है।

इस दृष्टि से उत्तर प्रदेश गांधी स्मारक निधि ने गांधी साहित्य-प्रकाशन का बहुत महत्व का बोझ उठाया है। इस काम में श्री रामनाथ सुमन जैसे प्रधान सम्पादक मिल गये हैं, यह एक सौभाग्य की बात है।

गांधी जी के विचारों का प्रसार केवल भारत की ही नहीं किन्तु दुनिया की भिन्न-भिन्न भाषाओं में भी हुआ है। आजकल बहुत बड़े-बड़े विद्वान और दुनिया के विचारशील लेखक गांधी जी के विचारों का अध्ययन कर रहे हैं और उनके बारे में अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। इसका मुख्य कारण तो यही है कि आजकल के अणु-युग में प्रेम, शान्ति, सहयोग इनका जो सन्देश गांधी जी ने दिया वह बहुत

मूल्यवान है। जैसे बुद्ध भगवान ने मैत्री, करुणा, कल्याण इस त्रिपुटी का स्वयं अनुभव लेकर अपनी सम्बोधि के पश्चात् मानवों को अपना सन्देश दिया उसी तरह गांधी जी ने आजकल की परिस्थिति में नया सन्देश दिया है।

गांधी जी केवल एक विचारशील आदमी ही नहीं थे। वे आचार को प्रधान मानते थे। जिस विचार को आचार में नहीं ला सकते उसे वे बहुत गौण समझते थे। साथ ही साथ वे बड़े भक्त थे अर्थात् परमात्मा के सतत् चिन्तन में वे अपना जीवन बिताते थे। इस दृष्टि से वे न केवल कर्मयोगी थे किन्तु भक्तियोगी और ज्ञानयोगी भी थे।

उन्होंने जो कुछ लिखा है वह उनके अन्तर्बाह्य जीवन पर प्रकाश डालने वाला भाष्य है। हम कह सकते हैं कि गांधी जी, उनकी जीवनी, उनके विचार और उन्होंने भारत और दक्षिण अफ्रीका में जो प्रयोग किये और उनमें जो कामयाबी मिली, वह सब एक 'महाभारत' है। अक्सर ऐसा होता है कि कार्य करने वाले या ग्रन्थ लिखने वाले और उसका अर्थ लगाने वाले भिन्न-भिन्न होते हैं। परन्तु गांधी जी की विशेषता यह है कि उन्होंने स्वयं विचार किया, उनको ही दर्शन हुआ, उस दर्शन को उन्होंने प्रत्यक्ष कार्य रूप दिया और उस पर भाष्य भी लिखा। वे मानव मन, मानव जीवन, और मानव समाज इन विषयों की ओर वैज्ञानिक दृष्टि से देखने वाले और प्रयोग करने वाले महापुरुष थे। यह ध्यान में रखकर हमें उनके जीवन और विचारों का अध्ययन करने की आवश्यकता है। उस अध्ययन की दिशा में गांधी स्मारक निधि का यह जो प्रयत्न है वह अवश्य स्वागत करने योग्य है।

मैं इस प्रयत्न को बधाई देता हुआ चाहता हूं कि यह पूर्ण यशस्वी हो और प्रत्येक हिन्दी पाठक इसका पूर्ण लाभ ले।

सेवापुरी (वाराणसी)
८ अगस्त, १९६५

रंगनाथ दिवाकर

दो शब्द

आधुनिक भारतीय इतिहास में गांधी जी की देन अपूर्व और अप्रतिम है। उन्होंने भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग को स्पर्श किया है। धर्म, शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति, सार्वजनिक सदाचरण—प्रत्येक विषय में उनके अपने मौलिक विचार हैं। उन्होंने हमें अपने पैरों पर खड़ा किया; आज़ादी के दरवाज़े तक पहुंचाया। एक राष्ट्र की ज़िन्दगी में यह बहुत बड़ी बात है परन्तु गांधी जी ने इससे भी बड़ी बात जो हमें सिखाई वह था इंसान का इंसान बनना। उन्होंने हमें बताया कि मानवता के मौलिक मूल्यों और गुणों से रहित होकर जीना जीना नहीं है, वही मृत्यु है। उन्होंने हमें बताया कि मानव-संस्कृति हिंसा, द्वेष, असत्य, अनीति और विलासिता पर नहीं टिक सकती, वह केवल प्रेम पर एक दूसरे के मंगल पर, समाज में सबके उदय पर ही टिक सकती है। हिंसा नहीं, अहिंसा मनुष्य की मूल प्रकृति है और असत्य नहीं सत्य ही उसका धर्म है, गन्तव्य है।

इस समय हमें अहिंसा छोड़कर हिंसा का उपयोग करना पड़ रहा है। परिस्थिति ऐसी विषम थी जिसमें हथियारों का उठाना आवश्यक हो गया। दो देशों के बीच में यदि तनाव हो और एक देश दूसरे पर आक्रमण करे तो अभी तक कोई अहिंसात्मक साधन ऐसा नहीं बना है जिसका उपयोग किया जा सके। गांधी जी इसपर विचार कर रहे थे और सम्भव है वे इसका कोई उपाय निकालते। फिर भी युद्ध करते हुए भी हमारी अहिंसात्मक वृत्ति जागृत रहनी चाहिए। हमारे अन्दर घृणा की भावना जागृत नहीं होनी चाहिए और हमें सुलह और शान्ति के लिए तत्पर रहना चाहिए। अपने देश के अन्दर तो हमें सदा प्रयास अपनी समस्याओं को शान्ति-द्वारा सुलझाने का ही करना चाहिए। यदि हम इसे कर सकें तो अहिंसा की बड़ी विजय होगी और उससे देश में सदा सुन्दर वातावरण बना रहेगा।

गांधी जी ने भारतीय जीवन और मानवीय आचरण तथा संस्कार-सम्बन्धी प्रत्येक विषय पर इतना लिखा है कि आश्चर्य होता है। एक विषय पर प्रकट किये गये उनके सम्पूर्ण विचारों को न जानने के कारण,

या उनकी पूरी शक्ल सामने न होने के कारण लोग अक्सर उनकी बातों को लेकर भ्रम में पड़ जाते हैं या उनके सम्बन्ध में अपनी अधूरी या आंशिक धारणा बना लेते हैं। चूंकि भारतीय जीवन के प्रत्येक स्तर पर उनका गहरा असर पड़ा है, यह उचित होगा कि हम उनके विचारों का उनकी समग्रता में अध्ययन करें।

उनके सम्पूर्ण विचारों को, उन्हीं के शब्दों में, विषय एवं कालक्रमानुसार एक जगह संकलित करने और प्रामाणिक रूप में उपस्थित करने का दायित्व ग्रहण कर गांधी स्मारक निधि ने एक और उपयोगी एवं महत्वपूर्ण कार्य अपने हाथ में लिया है। इस कार्य में उन्हें श्रीरामनाथ जी सुमन का सहयोग भी प्राप्त है। सुमन जी को गांधी जी के सान्निद्धय में रहने और उनके विचारों का बराबर अध्ययन करते रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा है। गांधी जी एवं उनके विचारों पर वे पहिले भी अनेक सुन्दर पुस्तकें लिख चुके हैं। इसलिए हमें विश्वास है कि उनके निरीक्षण एवं सम्पादन में यह कार्य भलीभांति सम्पन्न होगा।

पुस्तक को स्वच्छ, सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। मैं इस ग्रन्थमाला के प्रकाशन का स्वागत करता हूं और आशा करता हूं कि गांधी जी के विचारों को समझने और उनका प्रचार करने में वह उपयोगी सिद्ध होगी।

नई दिल्ली
१२ नवम्बर, १९६५

लाल बहादुर
(प्रधानमंत्री, भारतीय गणराज्य)

अहिंसा एवं सत्य : भूमिका

आधुनिक भारतीय जीवन में गांधी जी ने जिस अहिंसा एवं सत्य का व्यापक प्रवेश कराया, वे कोई नवीन धर्म-सिद्धान्त नहीं हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे देश के धर्म, नीति एवं साहित्य-क्षेत्रों में इनका प्रयोग होता आया है। आर्यधर्म की सभी शाखाओं में इनका प्रचलन रहा है। 'अहिंसा परमोधर्मः' एवं 'सत्यान्नास्ति परोधर्मः' इत्यादि नीति-वाक्यों से इसकी पुष्टि होती है।

अत्यन्त पुरातन धर्म-सिद्धान्त

हिन्दू-धर्म तथा जैनधर्म में अहिंसा की विस्तृत व्याख्या एवं विवेचन प्राप्त है। फिर भारतीय धर्मों में ही नहीं, विश्व के सभी प्रधान धर्मों में इनका महत्व स्वीकार किया गया है। अन्तर केवल मात्रा एवं प्रबलता का है।

गांधी जी ने भी अनेक स्थानों पर इसे स्वीकार किया है कि उन्होंने कोई नई बात नहीं कही है; जो अनन्तकाल से मानवधर्म में निहित है, उसका ही अपने ढंग से निरूपण किया है।

यह ठीक है कि उन्होंने एक अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त अहिंसा को ग्रहण किया किन्तु यह भी ठीक है कि उनकी अहिंसा वही नहीं है जो परम्परा से हमारे सामने आती रही है। उन्होंने अपने जीवन की प्रयोगशाला में उसका निरन्तर परीक्षण किया है; उसे नवीन मनोभूमिकाओं पर प्रतिष्ठित किया है; उसमें वृद्धि और काट-छांट की है तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे व्यवहारोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है। उन्होंने प्राचीन अहिंसा की सीमा का विस्तार किया है और उसे नवीन अर्थों से समन्वित कर दिया है। उन्होंने ऐसे प्रयोग भी किये जिनके कारण वह मानव की मौन, पारमार्थिक शक्ति-मात्र न रहकर मानव-समाज की मुख्य प्रेरणा बन गई। उसकी वैयक्तिकता में सामाजिकता का प्रवेश हुआ और जहां वह निष्क्रिय और सैद्धान्तिक थी तहां अत्यन्त सक्रिय, प्रबल और व्यावहारिक शक्ति के स्फुरण के रूप में सामने आई। उसमें विशाल समहों का सामना और सुधार करने की शक्ति आई। गांधी जी ने अहिंसा को एक ऐसे विराट कैनवेस पर चित्रित किया कि मानव-जीवन का कोई भी भाग उसके लिए अछूता नहीं रह गया।

फिर भी नवीन

गांधी जी के जीवन और उनकी अहिंसा पर विचार करते समय एक और तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित होता है। जगत् के मनीषियों और तत्वज्ञों ने साधन को पकड़कर साध्य को खोजा और प्राप्त किया है किन्तु गांधी जी के सम्बन्ध में विचित्र बात यह है कि सत्य उनके जीवन में सहज रूप से आया और अहिंसा बाद में बड़े प्रयत्न से आई। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि अहिंसा से मैं सत्य को अधिक पहिचानता हूं। सत्य उनके संस्कार में मूर्त्त था; इसलिए उन्हें उसके दर्शन सहज भाव से हुए। फिर असत्य के बीच इस सत्य को सदैव स्थिर रखने की साधना में अहिंसा उनके हाथ आई। बाह्य दृष्टि से यह उनकी उलटी खोज है परन्तु आत्यन्तिक दृष्टि से साध्य-साधन का अभेद होने से दोनों स्थितियां एक ही हैं--साध्य में साधन अथवा साधन में साध्य का दर्शन। इसीलिए उनके यहां अहिंसा एवं सत्य प्रायः साथ-साथ आते हैं।

साध्य से साधन की खोज

सुप्त और जाग्रत जितना भी जीवन है उस सब का स्रोत एक ही है। एक ही सत् अनेकानेक रूपों में व्यक्त हुआ है। 'एकं सत विप्रा बहुधा वदन्ति'। यहां तक कि सामान्य एवं व्यावहारिक जगत् में जिन्हें हम जड़ और जंगम, चर और अचर दो विभिन्न नामों से भेद करके पुकारते हैं, वे भी एक ही शक्ति की विभिन्न स्थितियां हैं जो विभिन्न रूपनाम से हमारे सामने आती हैं। इनमें केवल अवस्था-भेद है, तत्त्व-भेद नहीं। अन्तिम और आत्यन्तिक दर्शन में सब एक ही हैं या यों कह लीजिए कि एक के ही अवान्तर भेद हैं। श्रुति कहती है--एकोऽहं बहुस्याम्; एक ही ब्रह्म (या पुरुष) अनेक रूपों में अवतरित हो गया। आस्तिक दर्शन में यह शक्ति परमेश्वर है; परमात्मा है। जो कुछ दृश्य है, सब उसी की लीला है। गांधी जी इस परमेश्वर को ही सत्य कहते हैं क्योंकि वही 'है' (सत्), और कुछ 'नहीं है।'

आत्यन्तिक वा तात्विक अहिंसा

जीवन का स्रोत एक होते हुए भी उसकी अभिव्यक्ति एवं विकास के भिन्न-भिन्न स्तर हैं। सब में वही है किन्तु मात्रा-भेद से। या यह कहना अधिक यथार्थ होगा कि वह मूला चिद्शक्ति किसी में अपेक्षाकृत अधिक सुप्त है और किसी में अधिक सक्रिय, घनीभूत एवं व्यक्त है। जड़ भी वस्तुतः जड़ नहीं, अव्यक्त चेतन है। चिदंश तो सब में है, केवल उसके रूपग्रहण या अभिव्यक्ति में भेद है। मानव में यह चिदंश सबसे अधिक चैतन्य-रूप है; वह मूलस्रोत के सबसे निकट है। इसीलिए वह आत्मरूप है; उसमें ब्रह्मशक्ति का, परमात्म-ज्योति का या सत्य का

स्फुरण है। उसमें स्वरूप का अनुभव करने की शक्ति भी है, जब और जीव-जड़-जगत् में वह अभी तक अव्यक्त है।

इसलिए मानव ने अपने सत्यान्वेषण में, अपने स्रोत के प्रति अपने विच्छेद को मिलन में परिवर्तित कर देने की पिपासा और तत्सम्बन्धी अनुभूति के कारण यह उपलब्धि की कि विश्व-प्रपंच में जो कुछ भी है सब के साथ वह एक आकर्षणशक्ति से बँधा है। सब एक रज्जु से बँधे हुए हैं; केवल इतना अन्तर है कि मानव उसकी अनुभूति में समर्थ है, दूसरे जीव-जन्तु या जड़-पदार्थ नहीं। और जब यह अनुभूति आई तो सब जीव, सब प्राणी एक ही परमपिता की सन्तति हैं अथवा एक ही शक्ति के विविध स्फुरण हैं। 'एकोऽहं बहुस्याम' एक ही ब्रह्म बहुरूपों में विकीर्ण हुआ है; तब भेद कहां है?

स्वभावत: समस्त जगत् एक ही शक्तिस्रोत या परमात्मा का अंश होने से सृष्टि-मात्र में अंशी के लिए, और इसीलिए एक-दूसरे के प्रति भी, मिलन की एक गूढ़ पिपासा है। अणुमात्र एक आकर्षण-शक्ति से चंचल हैं, और स्वतन्त्र होते हुए भी सब एक-दूसरे से बँधे हुए हैं। उनमें जो गति है, जो जीवन है और जो विकास-क्रिया है वह सब अन्योन्याश्रित है। चेतना के अविकसित, अपेक्षाकृत जड़ स्तरों में यह आकर्षण शक्ति सुप्त, प्रच्छन्न और अव्यक्त है; विकसित स्तरों में वह क्रमश: घनीभूत और व्यक्त होती गई है। यहां तक कि प्राणियों में सर्वत्र वह संसर्ग, समूह-निवास एवं मैथुनवृत्ति के रूप में प्रकट दिखाई पड़ती है। चूंकि मानव प्राणिमात्र में सबसे अधिक विकसित है, उसमें भावना एवं बुद्धि का समन्वय है; साथियों के चुनाव एवं निवास की स्वतन्त्रता है इसलिए उसमें इस आकर्षण-शक्ति का सर्वाधिक विकासमान एवं श्रेष्ठ रूप दिखाई पड़ता है।

मानवमात्र के सामाजिक विकास के इतिहास की समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि प्रगति एवं सभ्यता की प्रत्येक अवस्था के मूल में यही जीव की जीव के प्रति आकर्षण-वृत्ति है। परिष्कृत व्यक्तिगत सम्बन्धों में वही प्रेम है और सामाजिक सम्बन्धों के विस्तार एवं परिष्कार में वही एकत्वानुभव है। इसी एकत्वानुभव से विश्वकुटुम्ब की भावना पनपती है और वह दया, औदार्य एवं अहिंसा के रूप में प्रकट होती है।

तात्विक दृष्टि से जब सब एक के ही अंश हैं, अथवा एक ही हैं तब विद्वेष, प्रतिहिंसा, प्रतियोगिता कैसे सम्भव है?

परन्तु मानव जिस रूप में जगत् में आया है उस रूप में वह केवल चिदंश नहीं है, केवल आत्मा नहीं है; आत्मा के आश्रयरूप में शरीर भी उसके साथ लगा है। एकत्व और उसकी अनुभूति आत्मा के कारण हममें आई है किन्तु शरीर के

कारण अहंकार की स्थिति भी है। इस अहंकार से ही अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की रक्षा की कामना का जन्म होता है और उस कामना के कारण व्यक्ति अपने हित एवं पराये हित में भेद करता है। पहिले अपने को देखता है, तब दूसरे को। अपने जीवन (शरीरगत) की रक्षा के लिए वह दूसरों से लड़ता भी है; दूसरों पर अथवा उनके हितों एवं स्वार्थों पर प्रहार भी करता है। इस प्रकार जीवमात्र में, विशेषतः मानव में, अहिंसा, प्रेम, आत्माकर्षण की अन्तःवृत्ति के साथ, अहंकार, शरीरलिप्सा, स्वार्थ तथा हिंसा की वृत्ति भी लिपटी हुई है।

जीव की द्वैध वृत्ति

स्वभावतः शरीरगत या बाह्यवृत्ति मानव को अपने बाह्य प्रसार की ओर खींचती है; आत्मगत वृत्ति उसे अन्तर्मुखी करती है। बाह्य वृत्तियों से सभ्यता के विग्रह या जटिलताओं का जन्म होता है; उससे व्यक्ति-हित, वर्ग-हित, देश-हित वा संकुचित श्रेणियां बनती हैं; अन्तर्मुखी वृत्तियों से सर्व भेदों को लांघकर सर्व-भूतान्तरात्मा की अनुभूति होती है; बुद्धि के स्तर पर यह ज्ञान भी होता है कि एक का स्वार्थ, एक का हित दूसरे से भिन्न हो ही नहीं सकता और भले हम सहज देख न सकें किन्तु प्राणिमात्र का हित एक ही है; सब के हित एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

इसीलिए आत्यन्तिक अहिंसा, जैसा कि गांधी जी कहते हैं, आत्मा का गुण है।

ज्यों-ज्यों व्यक्ति और उसके साथ-साथ समाज चैतन्य के उच्च स्तरों पर उठता है त्यों-त्यों वह आत्मापेक्षी, अन्तर्मुखी और एकात्म्यानुभवी होता है। बुद्धि के स्तर पर भी मनुष्य जानता है कि हिंसा फैलती गई, प्रबल होती गई तो जो समाज बनाकर वह रहता है वह विश्रृंखल एवं विघटित होता जायगा और वह भी अन्त में विनाश का शिकार होगा। इसलिए अहंकारवृत्ति-प्रधान मानव में भी, जो 'दूसरों को नष्ट कर भी अपने हित की रक्षा करो' की वृत्ति थी, वह उससे कुछ उन्नत वृत्ति में बदल गई; बुद्धि का विकास हुआ और उसके साथ यह सहज भाव आया कि 'जियो और जीने दो।' पहिली अवस्था तामसी, आसुरी थी। वह **'विकृति'** की स्थिति थी। अब दूसरी अवस्था में **'प्रकृति'** ऊपर आई। इस प्रकृत मानव के एक वर्ग में बराबर मन्थन चलता ही रहा; उच्च संस्कार जगे, आत्मनिष्ठता आई और उसने देखा कि दूसरों के लिए अपने हितों का त्याग करने में, दूसरों के लिए मरने में ही वास्तविक चैतन्य का विकास है। यह थी **'संस्कृति'**—स्वयं मर कर भी दूसरों को जिलाना। अविकसित प्राणियों, निम्नवृत्तिस्थ प्राणियों, हिंसक एवं स्वार्थलिप्त प्राणियों के प्रति यह सहज औदार्य, यह करुणा और दया ही अहिंसा है।

चूंकि अहिंसा अमरण आत्मा की वृत्ति है इसलिए वह विनाश के बीच भी जीती रहती है। वह अहंकार के फूत्कार का विष अपनी सहज करुणा से पी जाती है।

संसार में अनादिकाल से होनेवाले अगणित युद्धों तथा प्राकृतिक विनाश-लीलाओं के बाद भी मानव-समाज जीवित है, प्रगति करता गया है, इसका कारण क्या है? यही कि आत्मा की शक्ति, प्रेम की शक्ति, अहिंसा की शक्ति तूफानों की भांति सशक्त दीख पड़नेवाली प्रबल हिंसा से कहीं अधिक शक्तिमान, कहीं अधिक प्रचण्ड है। अन्तःस्थ होने के कारण वह दीखती कम है, इसलिए सामान्य मानव गलती से समझ लेता है कि हिंसा ही प्रबल शक्ति है और भूल से उसे रक्षा के साधन-रूप में प्रयोग करता है, जब वह कभी रक्षा नहीं करती, सदा संहार ही करती है।

सत्यनिःसृत अहिंसा

गांधी जी एक संस्कारवान कुटुम्ब में पैदा हुए थे। बचपन से ही उनमें सत्य-निष्ठा का संस्कार हम देखते हैं। इस सत्य का पालन करने में ही अहिंसा उनके हाथ आई। अगणित प्रयोगों के बाद उन्होंने देखा कि यदि सत्य पर चलना है तो अहिंसा के बिना वह सम्भव ही नहीं है। उन्होंने अपने जीवन में बार-बार अपने अनुभव की घोषणा की है—

"मैं तो ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूं, मैं जानता हूँ कि सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर को पहिचानने का मेरे निकट तो एक ही अचूक साधन अहिंसा है—प्रेम है।"

—हि० न० जी० ६।४।'२४]

अहिंसा वह ज्योति है, जिसके द्वारा मुझे सत्य का दर्शन होता है।

—हि० न० जी० २६।१२।'२४]

अहिंसा सत्य का प्राण है।

—हि० न० जी० १५।१०।'२५]

अहिंसा ही सत्येश्वर का दर्शन करने का सीधा और छोटा-सा मार्ग है।

—ह० से० १०।११।'३३]

अहिंसा साध्य नहीं, साध्य सत्य है। लेकिन हम सत्य का दर्शन केवल अहिंसा का पालन करते हुए कर सकते हैं।...

—ह० से० २३।६।'४६]

अहिंसा का विराट दर्शन

गांधी जी की अहिंसा की दूसरी विशेषता उसकी व्यापकता है। प्राचीन काल में जो अहिंसा मुख्यतः जीव-दया तक सीमित थी, उसे उन्होंने असीम बना दिया। उनकी दृष्टि में यदि कोई समाज से अपनी अनिवार्य आवश्यकता से अधिक लेता है तो वह भी हिंसा है। यदि कोई दो लोटे की जगह चार

लोटे पानी खर्च करता है तो वह भी हिंसा है। उनकी दृष्टि से "अविनय भी हिंसा है।" वह कहते हैं कि "नम्रता...के बिना अहिंसा का पालन असम्भव है।" (हि० न० जी० २।३।'२४) उनके विचार में "अहिंसा और तिरस्कार स्वभावतः परस्पर-विरोधी हैं।" (हि० न० जी० १८।५।'२४)। उनका कथन है कि "पापमात्र हिंसा है और जहां अहंकार है वहां हिंसा अवश्य है।" (हि० न० जी० १०।६।'२६) स्वभावतः गांधी जी की अहिंसा में ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय और अपरिग्रह सब आ जाते हैं। इनके बिना अहिंसा में पूर्णता नहीं आती। विराट एवं आत्यन्तिक अहिंसा निर्विकारावस्था की पराकाष्ठा है। सच पूछें तो अंग्रेजी में जिसे 'नान-वायलेंस' कहा गया है वह गांधी जी की अहिंसा को पूर्णतः व्यक्त नहीं करता। गांधी जी की अहिंसा, अपने पूर्ण रूप में, नान-वायलेंस नहीं बल्कि 'हार्मलेसनेस' (अनिष्ठहीनता, कल्याणमयता) है। गांधी जी ने स्वयं ही इसे स्वीकार करते हुए कहा है—"अहिंसा मानो पूर्ण निर्दोषिता ही है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ है—प्राणिमात्र के प्रति दुर्भाव का पूर्ण अभाव।....अहिंसा एक पूर्ण स्थिति है। सम्पूर्ण मनुष्य जाति इसी एक लक्ष्य की ओर स्वभावतः, परन्तु अनजान में, जा रही है।" (यं० इं०। हि० न० जी० १२।३।'२५)।

गांधी जी मानते थे कि पूर्ण अहिंसक के सान्निध्य में हिंसा टिक ही नहीं सकती। यदि हमारे सहयोगियों में हिंसा है तो वह वस्तुतः हमारे ही अन्दर पड़ी हिंसा के कारण है। अपनी प्रौढ़ावस्था में वह महर्षि पतञ्जलि के निम्न सूत्र में विश्वास करने लगे थेः—

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः

—पातञ्जल योगदर्शन : साधनपाद, ३५

अर्थात् अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाने पर साधक के समीप सबका वैरभाव नष्ट हो जाता है।

गांधी जी ने अहिंसा को नये-नये आयाम प्रदान किये हैं। जैसे वह कहते हैं:—"अहिंसा का विचार करते समय हम केवल खान-पान का विचार करते हैं। यह तो अहिंसा नहीं कही जा सकती।" (१९।७।'२८) या "अहिंसा खाद्याखाद्य विषय से परे हैं।" (१३।९।'२८) वह मानते थे कि, "मांसाहारी भी अहिंसक हो सकता है और फलाहारी या अन्नाहारी घोर हिंसा करते देखे जाते हैं।" एक व्यापारी झूठ बोलता है, ग्राहकों को ठगता है, कम तौलता है; एक महाजन

नूतन आयाम

लोगों की गरीबी की विवशता का लाभ उठाकर उनसे गहरा ब्याज वसूल करता है परन्तु ये व्यापारी और महाजन चींटी को आटा डालते हैं, फलाहार करते हैं तो ऐसा करते हुए भी वे उस मांसाहारी की अपेक्षा अधिक हिंसक हैं जो मांसाहार करते हुए भी ईमानदार है; किसी को धोखा नहीं देता। इसी प्रकार गांधी जी ने जीव-हिंसा का विवेचन करते हुए भी अहिंसा की परम्परागत परिभाषा एवं सीमा में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है। उन्होंने अत्यन्त पीड़ित, छटपटाते हुए, बछड़े को सुई लगवाकर मरवा दिया और इसे अहिंसा कहकर पुकारा। इस पर देश में विरोध का एक तूफान खड़ा हो गया। उस समय उन्होंने लिखा था:—

"जीव लेना सदा हिंसा नहीं है। अनेक अवसरों पर जीव न लेने में ही हिंसा होती है।"

—हि० न० जी० २८।१०।'२६]

कथित बछड़े की हर प्रकार सेवा-चिकित्सा की गई परन्तु उसका कष्ट बढ़ता गया। यहां तक कि वह वेदना से छटपटाने लगा। गांधी जी से उसकी वेदना नहीं देखी जाती थी। इसलिए उन्होंने उसे वेदना से मुक्त करने के उद्देश्य से डाक्टर-द्वारा सुई लगवा दी। क्षण भर में ही वह मर गया। जब कोई भी उपाय न रह गया हो तब पीड़ित की वेदना-निवृत्ति के लिए सर्वथा उसी के हित का विचार कर किया गया ऊपर से हिंसापूर्ण प्रतीत होनेवाला कृत्य वस्तुतः हिंसा नहीं है; वह दयावृत्ति से प्रेरित, करुणा का कार्य है, अहिंसा है।

स्पष्टतः उन्होंने अहिंसा की परम्परागत कल्पना को स्वीकार न कर उसे नया अर्थ और नया प्रकाश दिया है, जो विचारणीय तो है ही।

फिर गांधी जी ने इस बात पर भी बहुत जोर दिया है कि उनकी अहिंसा किताबों की चीज नहीं है; वह जीवन का नियम है। हर काम में वह प्रकट होनी चाहिए। स्वभावतः आत्यन्तिक एवं पूर्ण अहिंसा शरीर के रहते प्रकट नहीं हो सकती; उसका आभास मात्र हो सकता है। इच्छा न रहते हुए भी हमारे चलने-फिरने, साँस-लेने, खाने-पीने से कुछ हिंसा तो होती ही रहती है, इसलिए पूर्ण अहिंसा देहमुक्ति पर ही सम्भव है। गांधी जी के ही शब्दों में—

आचरण की वस्तु

"अहिंसा के पूर्ण पालन की अवस्था में अवश्य ही जीवन की स्थिति असम्भव हो जाती है।. . .भौतिक जीवन एक दोष हो जाता है। मोक्ष देहादि के परे की अदेहावस्था है।"

—ह० से० १९।३।'२५]

"देह और आत्मा का सम्बन्ध ही हिंसा के आधार पर है। क्रियामात्र हिंसा-मय अतः सदोष है।"
--ह० से० १०।६।'२६]

कर्ममात्र में, प्रत्येक हलचल में, हिंसा है इसलिए कर्म का आत्यन्तिक क्षय ही मुक्ति या पूर्ण अहिंसा की स्थिति है। किन्तु जबतक शरीर है, मनुष्य को कुछ न कुछ कर्म तो करना ही है इसलिए अपने मानस को सर्वथा द्वेषरहित बनाते हुए जीवन के किसी कार्य में अपनी ओर से जान-बूझकर हिंसा न हो, अर्थात् कम से कम हिंसा हो, यही व्यावहारिक अहिंसा है।

याद रखना चाहिए कि "अहिंसा चित्त की एक वृत्ति भी है और तज्जात कर्म भी है।" (२१।५।'२५) "यह अन्दर से बढ़नेवाली चीज़ है जिसका आधार आत्यन्तिक व्यक्तिगत प्रयत्न है।" इसलिए मुख्य बात यह है कि जो लोग यह समझते हैं कि अहिंसा ही वास्तविक मानव-धर्म है; जीवन का एकमात्र मार्ग है; वही सृष्टि के मूल में है और उसी के कारण जीवन की रचना, पालन एवं संवृद्धि सम्भव है, उनका मुख्य कार्य है उसे अपने जीवन की प्रत्येक क्रिया में उतारना। मन में, वाणी में, कर्म में यह अहिंसा धीरे-धीरे प्रकट होगी और निरन्तर अभ्यास से फिर स्वाभाविक लगने लगेगी; सहज हो जायगी।

किन्तु विश्व को गांधी जी की अहिंसा की सबसे व्यावहारिक देन है यह स्थापना कि संगठित हिंसा की भांति ही हिंसा के निवारण के लिए, अहिंसा को भी संगठित किया जा सकता है। जहां भी उत्पीड़न है, अन्याय है, भय है, मानव सिकुड़ा, दबा हुआ है; वह समाज के भय से, परम्परा के भय से, कानून और दण्ड के भय से उसके विवेक में ग़लत होते हुए भी उसके सामने कन्धा टेक देता है; विशद अर्थों में जहां भी हिंसा है उसका निवारण अहिंसा से हो सकता है। अभी तक जो लोग अहिंसा को मानते रहे हैं वे भी सामाजिक अन्याय के निराकरण के लिए हिंसा का सहारा लेते रहे हैं। हज़ारों वर्षों से व्यापक अन्यायपूर्ण स्थिति को दूर करने का एकमात्र साधन युद्ध ही रहा है। गांधी जी ने इस स्थिति एवं मनोदशा के भीतर जो मौलिक विरोधाभास है उसे समझा। उन्होंने देखा कि ये युद्ध हज़ारों वर्षों से होते आ रहे हैं किन्तु युद्ध से युद्ध का निराकरण नहीं हो सकता बल्कि इतिहास में हम देखते यह हैं कि एक युद्ध दूसरे युद्ध की कारण-श्रृंखला-मात्र बनकर रह जाता है। प्रतिहिंसाओं का क्रम चल पड़ता है। इससे उन्होंने उस प्राचीन दार्शनिक न्याय के सत्य को ग्रहण किया कि अभाव से भाव उत्पन्न नहीं हो सकता और असत् से सत् की सृष्टि

अहिंसा से समाज का शोधन

सम्भव नहीं है। शुद्ध साध्य के लिए साधन की शुद्धता भी अनिवार्य है। आत्यन्तिक दृष्टि से साध्य-साधन का अभेद है क्योंकि साधन ही, अन्त में, साध्य रूप में परिवर्तित हो जाता है। इससे वह इस अनुभव पर पहुंचे कि हिंसा से अहिंसा की या अहिंसक स्थिति की स्थापना नहीं हो सकती। 'युद्ध के प्रतिकार के लिए युद्ध' एक झूठी कल्पना है, झूठा नारा है। तब अन्याय के प्रतिकार के लिए क्या किया जा सकता है, यह प्रश्न उनके सामने उत्पन्न हुआ।

दक्षिण अफ्रीका, खेड़ा, चम्पारन इत्यादि में अहिंसक प्रतिकार के लिए जनमत को संगठित करके उन्होंने प्रयोग किये। सतत परीक्षण एवं प्रयोग से वह इस निश्चय पर पहुंचे कि अन्याय की स्थिति भय के कारण ही सम्भव होती है। यदि मनुष्य मरण-भय को जीत ले तो वह बिना दूसरों को मारे, प्रतिपक्षी पर प्रहार किये बिना ही, स्वयं मरकर या मरण के लिए तैयार होकर अन्याय का निराकरण कर सकता है। उन्होंने देखा कि "अहिंसा—मानव जाति के पास एक ऐसी प्रबल-से-प्रबल शक्ति पड़ी हुई है जिसका कोई पार नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने संसार के जो प्रचण्ड से प्रचण्ड अस्त्र-शस्त्र बनाये हैं उनसे भी प्रचण्ड यह अहिंसा की शक्ति है।....विफल तो वह कभी जाती ही नहीं। हिंसा केवल ऊपर से सफल मालूम पड़ती है।"

इसलिए अन्याय, भय एवं हिंसा के निवारण के लिए उन्होंने अहिंसा को संगठित करने का मार्ग दिखाया। अहिंसा यद्यपि पुराकाल से मनुष्य के जीवन में विशेषतः भारतीय धर्म-जीवन में चली आ रही थी परन्तु मुख्यतः वह व्यक्तिसाध्य सद्‌गुण मात्र थी; उसका सम्बन्ध मानव के निजी जीवन अथवा उसके साथ दूसरों के व्यवहार तक ही था। गांधी जी ने कहा—

"यदि अहिंसा संगठित नहीं हो सकती तो वह धर्म नहीं है। यदि मुझमें कोई विशेषता है तो यही कि मैं सत्य और अहिंसा को संगठित कर रहा हूं।

"...जो बात मैं करना चाहता हूं और जो करके मरना चाहता हूं वह यह है कि अहिंसा को संगठित करूं। यदि यह सब क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं है तो झूठ है। मैं कहता हूं, जीवन की जितनी विभूतियां हैं, सब में अहिंसा का उपयोग है।"...

—गांधी सेवा-संघ सम्मेलन, हुदली। २०।४।'३७]

तीन वर्ष बाद, व्यापक एवं सार्वजनीन अहिंसा पर ज़ोर देते हुए उन्होंने फिर कहा—

"अहिंसा यदि व्यक्तिगत गुण है तो मेरे लिए त्याज्य वस्तु है। मेरी अहिंसा की

कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की है। मैं तो उनका सेवक हूं। जो चीज़ करोड़ों की नहीं हो सकती, वह मेरे लिए त्याज्य है और मेरे साथियों के लिए भी त्याज्य ही होनी चाहिए। हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा ही हुए हैं कि सत्य और अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं। वे समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति का रूप ले सकते हैं। मेरा यह विश्वास है कि अहिंसा सदैव के लिए है। यह आत्मा का गुण है इसलिए व्यापक है।...अहिंसा सब के लिए है, सब जगहों के लिए है, सब समय के लिए है। यदि वह सचमुच आत्मा का गुण है तो हमारे लिए वह सहज हो जाना चाहिए। आज कहा जाता है कि सत्य व्यापार में नहीं चलता; राजकारण में नहीं चलता। तो फिर वह कहां चलता है?

"सत्य और अहिंसा कोई आकाश-पुष्प नहीं हैं। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म में प्रकट होने चाहिएं।"

—गां० से० सं० सम्मेलन, मलिकान्दा (बंगाल) २२।२।'४०]

"हमें सत्य और अहिंसा को केवल व्यक्तियों की चीज नहीं बनाना है, बल्कि ऐसी चीज बनाना है जिस पर समूह, जातियां और राष्ट्र अमल कर सकें। मैं इसी को सच्चा करने के लिए जीता हूं और इसी की कोशिश करते हुए मरूंगा।"

—ह० से० १६।३।'४०]

"मैंने यह विशेष दावा किया है कि अहिंसा सामाजिक चीज है, केवल व्यक्तिगत चीज नहीं है। मनुष्य केवल व्यक्ति नहीं है; वह पिण्ड भी है और ब्रह्माण्ड भी। वह अपने ब्रह्माण्ड का बोझ अपने कन्धे पर लिए फिरता है। जो धर्म व्यक्ति के साथ खत्म हो जाता है, वह मेरे काम का नहीं है। मेरा यह दावा है कि सारा समाज अहिंसा का आचरण कर सकता है।"

—वर्धा; २२।६।'४०]

"यदि हिन्दुस्तान जगत् को अहिंसा का सन्देश न दे सका तो यह तबाही तो आज या कल आने ही वाली है। और कल के बदले आज इसके आने की सम्भावना अधिक है। जगत् युद्ध के शाप से बचना चाहता है, परन्तु कैसे बचे, इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाबी हिन्दुस्तान के हाथ में है।"

—सेवाग्राम २५।६।'४०, ह० से० २९।६।'४०]

इस प्रकार अहिंसा के संगठन-द्वारा जहां वह एक ओर सामाजिक एवं समाजगत अन्यायों से लोहा लेने का मार्ग बताते हैं वहां युद्ध का एक नैतिक प्रतिमान भी हमारे सामने रखते हैं।

यह ठीक है कि मारने की अपेक्षा मरने का धर्म कठिन है। शत्रु को मारते हुए मरना सरल है क्योंकि मनुष्य उस समय प्रतिहिंसा की प्रचण्ड पाशविक भानाव

से अभिभूत होकर काम करता है; इसके स्थान पर छाती पर गोली खाते हुए, प्रतिपक्षी के प्रति मन में करुणा एवं दया का भाव रखते हुए, हँसते हुए, बिना दुर्भावना के मरना कठिन है किन्तु एक बार अभ्यास होने पर, उपयुक्त वातावरण बन जाने पर वह भी अपेक्षाकृत सरल हो जायगा। हिंसक युद्ध में जितना धन-जन एवं संचित समाज-शक्ति स्वाहा होती है, यहाँ तक कि उसके बोझ से अपने को न्याय-पक्ष माननेवाले की कमर भी टूट जाती है, उससे अहिंसक युद्ध में कहीं कम हानि होती है।

समाज-मत की सामान्य परम्परा में हिंसा को बल का प्रतीक मान लेने की ग़लती के कारण अनेक प्रकार के भ्रम पैदा हुए हैं। उनमें सबसे बड़ा भ्रम यह है कि अहिंसा दुर्बलों का अस्त्र है। वस्तुतः बात सर्वथा इसके विपरीत है। जहां भय है, वहां अहिंसा हो ही नहीं सकती। अहिंसा अभय की चरमावस्था है इसलिए वह दुर्बल के वश की चीज़ नहीं। गांधी जी के शब्दों में तो "वह वीरता की परिसीमा है।" (१।६।२४) और "कायरता स्वयं एक सूक्ष्म इसीलिए भीषण प्रकार की हिंसा है।" इसीलिए उन्होंने कायरता से, भय से दब जाने की जगह तलवार उठाने की छूट दी है क्योंकि जो मारकर मरता है उसमें भी मरण का भय तो, एक सीमा तक, नष्ट हो ही चुका रहता है। कायरता को तो वह मनुष्यत्व का निषेध ही मानते हैं। इसलिए उसे सहन करने को तो वह किसी प्रकार तैयार नहीं।

एक भ्रम

दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में उन्होंने संगठित अहिंसा के जो प्रयोग किये उनमें उन्हें पर्याप्त सफलता हुई। पूर्ण सफलता और पूर्ण स्वतन्त्रता का जो स्वप्न वह देखते थे वह सिद्ध नहीं हुआ; इसका कारण, उनकी समझ से, यही था कि भारत ने दुर्बलों की अहिंसा अपना ली थी। वह कहते हैं कि जब दुर्बलों की अहिंसा से इतनी सफलता प्राप्त हुई तो वीरों की अहिंसा से क्या नहीं किया जा सकता?

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी जी की अहिंसा केवल तात्विक या किताबी वस्तु नहीं है। वह जीवन के प्रत्येक बिन्दु में समाई हुई है; वह प्रत्येक समय, प्रत्येक क्षेत्र की वस्तु है। जीवन की कोई ऐसी समस्या नहीं जिसमें उसका उपयोग न हो। इसीलिए वह केवल व्यक्तिगत नहीं है; उसका प्रयोग केवल निजी आध्यात्मिक साधनाओं तक सीमित नहीं है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसका प्रयोग सम्भव एवं उचित है। गांधी जी का विश्वास था कि विश्व की निर्लिप्त सेवा ही परमेश्वर की श्रेष्ठ उपासना है इसलिए वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा को संगठित करके अन्यायों का निराकरण एवं धर्म की प्रतिष्ठा करने को तत्पर हैं।

यह ठीक है कि अहिंसा एवं सत्य की आत्यन्तिक उपलब्धि का केन्द्र व्यक्ति की

आत्मा है और हमारा प्रथम कर्त्तव्य अपने जीवन में व्याप्त हिंसा को दूर करना है। किन्तु हमारे जीवन में प्राप्त हिंसा का भी बहुत-कुछ सम्बन्ध हमारे चतुर्दिक के वातावरण या समाज में फैली हिंसा से है। व्यक्ति समाज से कटकर तो रह नहीं सकता। व्यक्ति एवं समाज दोनों की क्रिया-प्रतिक्रिया एक दूसरे पर होती रहती है। इसलिए जबतक समाज के मूल में हिंसा रहेगी; हमारे इधर-उधर अनय, भीति, त्रास, शोषण, उत्पीड़न होते रहेंगे तबतक व्यक्ति की अहिंसा-साधना भी पूर्ण नहीं हो सकती, न उसका लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। इसलिए उसे दूर करने के लिए अहिंसक आधार पर प्रतिकार को संगठित करना होगा।

स्पष्टत: विश्व के लिए गांधी जी की अहिंसा की देन बहुत बड़ी है क्योंकि उसमें अमित सम्भावनाएँ हैं।

सत्य

और गांधी जी की अहिंसा के साथ उनके सत्य का अटूट सम्बन्ध है। दोनों एक सिक्के के दो बाजू हैं। दोनों की स्थिति एक दूसरे के बिना सम्भव नहीं। न सत्य अहिंसा के बिना टिक सकता है, न अहिंसा सत्य के बिना अस्तित्व ग्रहण कर सकती है। "रागद्वेषादि से भरा मनुष्य सरल हो सकता है। वह वाचिक सत्य भले ही पाल ले, परन्तु शुद्ध सत्य की प्राप्ति उसे नहीं हो सकती। शुद्ध सत्य की शोध करने का अर्थ है रागद्वेषादि द्वन्द्व से सर्वथा मुक्ति प्राप्त कर लेना।" (आत्मकथा, भाग ४, अध्याय ३७) "इस सत्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के अभाव में अशक्य है।" (आत्मकथा, भाग ५, अध्याय ४४)

अपनी विविध रचनाओं में गांधी जी ने अहिंसा का जैसा ब्यौरेवार विवेचन किया है और उसे जो रूप दिया है, वैसा वह सत्य के सम्बन्ध में नहीं कर सके हैं। उन्होंने घोषणा तो यह की है कि वह सत्य को अहिंसा से भी अधिक जानते-पहिचानते हैं[1] किन्तु उसकी स्पष्ट रूपरेखा का अंकन उनकी रचनाओं में नहीं दिखाई देता।

---

१. "...अहिंसा को मैं जितना पहिचान सका हूं उसकी अपेक्षा मैं सत्य को अधिक पहिचानता हूं, ऐसा मेरा ख्याल है। और यदि मैं सत्य को छोड़ दूं तो अहिंसा की बड़ी उलझनें मैं कभी न सुलझा सकूंगा, ऐसा मेरा अनुभव है।"
—आत्मकथा, भाग ५, अध्याय २९]

अनन्त एवं असीम की भांति उनका सत्य अनिर्वचनीय है। वह कहते हैं:—

"सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों-ज्यों उसकी सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें अनेक फल उगते हुए दिखाई देते हैं। उनका अन्त ही नहीं होता। ज्यों-ज्यों हम गहरे पैठते हैं, त्यों-त्यों उनमें से रत्न निकलते हैं। सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं।"

—आत्मकथा, भाग ३, अध्याय ११]

"परमेश्वर की व्याख्याएं अगणित हैं क्योंकि उसकी विभूतियां भी अगणित हैं। विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित तो करती हैं, मुझे क्षण-भर के लिए मुग्ध भी करती हैं। परन्तु मैं तो पुजारी हूं सत्य-रूपी परमेश्वर का। मेरी दृष्टि में वही एक मात्र सत्य है; दूसरा सब कुछ मिथ्या है।"

—आत्मकथा, मार्गशीर्ष शुक्ल ११, संवत् १९८२।]

फिर वह स्वीकार करते हैं कि "यह सत्य अभी तक मेरे हाथ नहीं लगा है। परन्तु सृष्टि में एकमात्र सत्य की ही सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कुछ नहीं है।"

वह अनन्त, आत्यन्तिक सत्य, शुद्ध सत्य "अखण्ड है, सर्वव्यापक है परन्तु वह अवर्णनीय है क्योंकि सत्य ही ईश्वर है अथवा परमेश्वर ही सत्य है।"

जो इस सत्य में स्थित होता है उसकी वाणी से जो निकलता है वही सत्य हो जाता है। उसके निकट असत् टिकता ही नहीं। पातञ्जल योग दर्शन में सत्य के सम्बन्ध में कहा गया है:—

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।—२।३६

"जब (योगी वा सावक में) सत्य की प्रतिष्ठा हो जाती है तो उसके मुंह से निकले वचन निष्फल नहीं होते।"

वह जो कहता है वही सत्य हो जाता है। उसके चतुर्दिक के वातावरण में असत्य टिकता नहीं। गांधी जी की भी सत्य में ऐसी ही आस्था थी।

किन्तु जैसे अहिंसा के आचरण एवं जीवन में उसकी प्रतिष्ठा के विषय में गांधी जी अनेक सुझाव देते हैं; अनेक प्रकार के अभ्यास, अनुशासन एवं आचरण-नियमों का आदेश करते हैं; उसका सर्वांगीण विवेचन करते हैं; विभिन्न स्तर पर उसके पालन के लिए राह बताते हैं, वैसा सत्य के विषय में कुछ नहीं मिलता। आत्यन्तिक सत्य तो ठीक है; उसकी महिमा भी ग्राह्य है; हमारे शास्त्र, पुराण, काव्य सब उसके स्तुति-गान से भरे हुए हैं परन्तु वह सिद्ध कैसे किया जा सकता है, प्राप्त कैसे होता है, इस विषय में सब मौन हैं; गांधी जी भी प्रायः मौन हैं।

उनकी रचनाओं के अध्ययन एवं मन्थन से इतना ही पता चलता है कि जीवन-मात्र के प्रति प्रेम का उदय होने पर स्वतः उसका साक्षात्कार होता है। आत्मैक्य की प्रतिष्ठा होने पर ही वह सिद्ध होता है। व्यवहारजगत् में उसके आचरण के लिए मन, वचन एवं कर्म की एकता आवश्यक है।

१७।३।'२३ को गांधी जी ने साबरमती जेल से स्व० जमनालाल जी बजाज को एक पत्र लिखा था। इस पत्र में कुछ ऐसे सूत्र हैं जिनसे सत्य के जिज्ञासु या साधक को उसके मार्ग पर चलने में कुछ प्रकाश मिल सकता है:—

"निर्मल अन्तःकरण को जिस समय जो प्रतीत हो, वही सत्य है। उस पर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है।"

फिर कहते हैं:—

"जिसके अहंकार का आत्यन्तिक क्षय हो चुका है वह तो प्रत्यक्ष सत्य की मूर्त्ति हो जाता है।"

उपर्युक्त सूत्रों से प्रतीत होता है कि जिसे मनुष्य एकान्त में, सच्चे मन से सत्य समझता है उसपर दृढ़ रहने, उसे ही प्रकट करने एवं तदनुसार जीवन में आचरण करने से धीरे-धीरे व्यापक सत्य की प्रतिष्ठा स्वतः होती है। पहिले उसमें दया, क्षमा, करुणा आती हैं; फिर प्रेम और अहिंसा की मात्रा-वृद्धि के साथ-साथ सत्य का प्रकाश उसमें विकीर्ण होता है। अन्त में अहंकार का क्षय हो जाता है और साधक आत्यन्तिक सत्य का साक्षात्कार कर लेता है।

० ० ०

बहुत दिनों से गांधी विचार-पद्धति के अनेक अनुयायी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी में गांधी जी के समस्त प्राप्त विचारों का, उन्हीं के शब्दों में, ऐसा प्रामाणिक संकलन होना चाहिए जिससे उनके सिद्धान्तों के अध्ययन, मनन और उनपर आचरण में लोगों को सहायता प्राप्त हो। केन्द्रीय गांधी-निधि के अध्यक्ष श्री दिवाकर जी स्वयं एक श्रेष्ठ विचारक एवं लेखक हैं, इसलिए वह इसका महत्व समझकर इसपर बहुत जोर दे रहे थे। उत्तरप्रदेश निधि के अध्यक्ष साधुमना श्री विचित्रभाई एवं कर्मठ सचिव श्री अक्षयकुमार करण को भी यह योजना अच्छी लगी। उत्तरप्रदेश, पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान के निधि के भाइयों ने भी इसका समर्थन किया और उत्तरप्रदेश गांधी स्मारक निधि ने मुख्य रूप से यह भार अपने कन्धों पर उठा लिया।

इस महती योजना के अन्तर्गत निकलनेवाले ग्रन्थों के सम्पादन का उत्तरदायित्व मैंने बड़े संकोच के साथ स्वीकार किया है। कार्य महान् है; जटिल भी है; स्रोत-

सामग्री दुर्लभ होने से समय एवं श्रमसापेक्ष्य है किन्तु गांधी जी का एक नम्र अनुयायी एवं उनके विचारों का अध्येता होने के कारण मैंने यह भार उठा लिया है और आज इस मालिका का प्रथम ग्रन्थ पाठकों के सामने है।

गांधी जी के समस्त जीवन एवं विचार-दर्शन का मेरुदण्ड उनकी अहिंसा और उनका सत्य है। ये दोनों एक दूसरे से इस प्रकार मिले हुए हैं कि आत्यन्तिक दृष्टि से दोनों एक ही हैं——उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। विना सत्य-अहिंसा को समझे गांधी जी को नहीं समझा जा सकता। इसलिए मुझे यही उचित लगा कि ग्रन्थावली का प्रथम ग्रन्थ 'अहिंसा और सत्य' हो।

इस ग्रन्थ में अहिंसा एवं सत्य-सम्बन्धी सामग्री जहां से भी मिल सकी है, संकलित करने की चेष्टा की गई है। मुख्यतः गांधी जी के साप्ताहिकों से, उनके लिखे पत्रों से, उनके सम्बन्ध में लिखे संस्मरणों से सामग्री का चयन किया गया है। अनुवाद को मूल से मिलाकर जहां भाषा या भाव की अशुद्धियां थीं, उन्हें शुद्ध एवं प्रामाणिक बनाने का यत्न किया गया है। प्राप्त रचनाओं या लेखों का विषय एवं काल-क्रम से ऐसा वर्गीकरण किया गया है कि गांधी जी के विचारों में जो विकास होता गया है उसका पता भी पाठक को चल सके।

इस ग्रन्थ के लिए यह दावा तो नहीं किया जा सकता कि वह सर्वथा निर्भ्रान्त या दोषरहित है। हां, यह अवश्य कहा जा सकता है कि भरसक इसे प्रामाणिक रूप में, गांधी जी के अहिंसा एवं सत्य-सम्बन्धी विचारों के सहायक कोश के रूप में निर्मित एवं प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। इसमें जो त्रुटियां हैं, वे मेरी अपनी हैं। सुधीजन उनपर ध्यान न देकर इन विचारों में जो अमृत है उसे ही ग्रहण करेंगे।

केन्द्रीय निधि के अध्यक्ष श्री दिवाकर जी ने इसके लिए जो छोटा-सा प्राक्कथन लिख दिया है, उसके लिए हम उनके प्रति क्या कृतज्ञता प्रकाश करें, जब चीज ही उनकी है?

प्रयाग
गांधी जयन्ती, १९६५ ई०

——श्रीरामनाथ 'सुमन'
(प्रधान सम्पादक)

अहिंसा : सत्य

संकेतार्थ

महात्मा गांधी	संकलन, गांधी हिन्दी पुस्तक भण्डार कालबादेवी, बम्बई, संस्करण पौष १९७८।
इ० ओ०	'इण्डियन ओपीनियन' : गांधी जी का अंग्रेज़ी-गुजराती-हिन्दी विचार पत्र।
यं० इं०	यंग इण्डिया : गांधी जी का अंग्रेज़ी साप्ताहिक विचार पत्र।
हि० न० जी०	हिन्दी नवजीवन : गांधी जी का हिन्दी साप्ताहिक विचार पत्र।
न० जी०	नवजीवन : गांधी जी का गुजराती साप्ताहिक विचारपत्र।
ह० से०	हरिजन सेवक : गांधी जी का हिन्दी साप्ताहिक विचार पत्र।
ह० ज०	हरिजन : गांधी जी का अंग्रेज़ी साप्ताहिक विचार पत्र।
ह० ब०	हरिजन बन्धु : गांधी जी का गुजराती साप्ताहिक विचार पत्र।
गा० से० सं०	गांधी सेवा संघ : गांधी जी की विचारधारा में सर्वांगीण श्रद्धा रखने वाले विचारकों एवं कार्यकर्ताओं का संघ।
मं० प्र०	'मंगल प्रभात' संकलन, नवजीवन प्रकाशन।
म० भा० डा०	महादेव भाई की डायरी। न० जी० प्रकाशन।
हि० स्व०	'हिन्द स्वराज्य' : गांधी जी के समाज-रचना-सम्बन्धी मौलिक विचारों की, उन्हीं द्वारा लिखित, पुस्तक।
इ० हो० रू०	'इण्डियन होमरूल' : हिन्द स्वराज्य का अंग्रेज़ी संस्करण।
बापू की छाया में	सस्मरण, लेखक श्री बलवन्त सिंह, (नवजीवन प्रकाशन)।
कुछ पुरानी चिट्ठियाँ	श्री जवाहरलाल के पत्र, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।
प्रा० प्र०	प्रार्थना प्रवचन, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।
आ० क०	आत्मकथा। न० जी० प्रकाशन।
ह० आ० क०	हिन्दी आत्मकथा।

अहिंसा

विषयानुसारिणी निर्देशिका

१. अहिंसा : सिद्धान्त और भाष्य [पृष्ठ १-१४२]

सामान्य क्रम		विषय	रचना अथवा प्र० ति०	पृष्ठ
१	१	अहिंसा का भाव	१९०९ ई०	३
२	२	तलवार से विनाश	२७।७।१६	३
३	३	अहिंसा की प्रतिज्ञा	१९१६	३
४	४	अहिंसा	१९१६	५
५	५	हमारी सभ्यता और अहिंसा	३०।३।१८	९
६	६	हिंसा के दोष	१९।३।१९	१०
७	७	दो अदम्य शक्तियां	१०।३।२०	१०
८	८	अहिंसा पर अविचल श्रद्धा	२५।८।२०	११
९	९	हिंसा और अहिंसा	१६।३।२२	११
१०	१०	आत्म-विश्वास और अहिंसा	११।५।२४	११
११	११	अहिंसा और तिरस्कार का परस्पर-विरोध	१८।५।२४	१२
१२	१२	अहिंसा के प्रतिकूल मोक्ष भी त्याज्य है	२०।७।२४	१२
१३	१३	विराट अहिंसा-धर्म	२८।९।२४	१२
१४	१४	अहिंसा के सिवा कोई धर्म नहीं	३०।११।२४	१४
१५	१५	स्थायी कल्याण असत्य और हिंसा से सम्भव नहीं	१४।१२।२४	१४
१६	१६	अहिंसावादी का धर्म	१६।१२।२४	१४
१७	१७	अहिंसा और सत्य	२६।१२।२४	१५
१८	१८	मेरा क्षेत्र : अहिंसा	८।१।२५	१५
१९	१९	आत्यन्तिक अहिंसा और जीवन-यापन	१९।३।२५	१६
२०	२०	अहिंसा-धर्म	१।४।२५	१९
२१	२१	ज्ञानयुक्त अहिंसा की महिमा	२१।५।२५	१९
२२	२२	अहिंसा	२५।६।२५	२५
२३	२३	अहिंसा की समस्या	२०।८।२५	२५
२४	२४	मानव-मात्र का बन्धुत्व	२७।८।२५	२७
२५	२५	शास्त्र और अहिंसा	१५।१०।२५	३१
२६	२६	अहिंसा ही मानव-स्वभाव है	२४।६।२६	३२
२७	२७	मनुष्यता से पहिले पशुता	१५।७।२६	३३

२८	२८	एक मात्र आधार	१६।९।२६	३६
२९	२९	स्वदेश के लिए भी अहिंसा न छोड़ूँगा	२०।१।२७	३६
३०	३०	अहिंसा का संग्रह	१६।३।२७	३६
३१	३१	सत्य-अहिंसा	२१।४।२७	३७
३२	३२	कायर कभी अहिंसक नहीं बन सकता	१६।६।२७	३७
३३	३३	अहिंसा व्यापक धर्म है	१५।९।२७	३७
३४	३४	सत्य और अहिंसा	८।१२।२७	३७
३५	३५	सूक्ष्म अहिंसा	१९।७।२८	३८
३६	३६	अहिंसा नीति या धर्म ?	२५।१०।२८	४०
३७	३७	एक समस्या	८।११।२८	४१
३८	३८	अहिंसा का अन्वेषण	८।११।२८	४२
३९	३९	अहिंसा बनाम दया	४।४।२९	४३
४०	४०	शुद्ध अहिंसा में श्रद्धा	१२।९।२९	४५
४१	४१	यज्ञ का अर्थ	१२।९।२९	४५
४२	४२	अहिंसा बनाम कायरता	३१।१०।२९	४६
४३	४३	अहिंसा पर अटल श्रद्धा	अक्तूबर १९२९	४६
४४	४४	अहिंसा और सत्य ही छोटे से छोटा मार्ग है	१६।१।३०	४७
४५	४५	अहिंसा मेरा अभिन्न अंश	२३।१।३०	४७
४६	४६	अहिंसा मानव स्वभाव	६।२।३०	४७
४७	४७	अहिंसा की राह	२९।७।३०	४७
४८	४८	हिंसा की सामान्य परिभाषा	७।५।३१	४९
४९	४९	बदले की इकाइयां	१४।५।३१	५०
५०	५०	अहिंसा : करोड़ों की मुक्ति का साधन	१८।६।३१	५०
५१	५१	अहिंसा : शाश्वत सिद्धान्त	९।७।३१	५०
५२	५२	भारत का भविष्य अहिंसा पर निर्भर है !	१३।८।३१	५०
५३	५३	अहिंसा : एक तात्विक विवेचन	१।१०।३१	५०
५४	५४	अहिंसा पर दृढ़ आस्था	१९।११।३१	५३
५५	५५	अहिंसा : एक स्पष्टीकरण	५।२।३२	५३
५६	५६	अहिंसक सत्य	२४।२।३२	५३
५७	५७	राष्ट्र की उन्नति का साधन	८।४।३२	५४
५८	५८	मुक्तिदायिनी अहिंसा	३।७।३२	५४
५९	५९	समाज की अहिंसक परिकल्पना	६।७।३२	५४
६०	६०	अहिंसा का अर्थशास्त्र	३०।७।३२	५४
६१	६१	अप्रिय सत्य और हिंसा	३१।७।३२	५५
६२	६२	अहिंसक का धर्म	३।८।३२	५५
६३	६३	यम, नियम और अहिंसा	१४।८।३२	५६
६४	६४	शस्त्र-युद्ध की मूर्खता	२८।८।३२	५६
६५	६५	शरीर का अस्तित्व और अहिंसा	११।९।३२	५६
६६	६६	अहिंसक वाणी	२२।१।३३	५६
६७	६७	अहिंसा असिधारा	२।२।३३	५७

६८	६८	हिंसा बनाम अहिंसा	१९।४।३३	५७
६९	६९	अहिंसा : एक विचार	४।१२।३४	५७
७०	७०	अहिंसा : परम पुरुषार्थ	१९३५	५८
७१	७१	युद्ध का नहीं, प्रेम का देवता	५।९।३६	५८
७२	७२	जीवन-धर्म	२६।९।३६	६१
७३	७३	हिंसा की भूख शान्त करनेवाली अहिंसा	१९३६	६५
७४	७४	हिन्दू धर्म की शिक्षा	३।१०।३६	६६
७५	७५	अहिंसा की गुत्थियां	१७।१०।३६	६७
७६	७६	अहिंसा किसे कहें ?	१९।१२।३६	७१
७७	७७	बलवान का भूषण क्षमा	२०।२।३८	७३
७८	७८	अहिंसा और ब्रह्मचर्य	२३।७।३८	७३
७९	७९	अहिंसा की मर्यादा	१७।९।३८	७८
८०	८०	केवल सत्य-अहिंसा का भक्त हूं	८।१०।३८	७९
८१	८१	अहिंसा की कला	१२।११।३८	७९
८२	८२	अहिंसा या सद्भावना ?	१९।११।३८	७९
८३	८३	स्वयंपूर्ण और स्वयं शक्तिमान	१९।११।३८	८०
८४	८४	अहिंसा की महत्ता	१९।११।३८	८१
८५	८५	अहिंसा, अद्वितीय शक्ति	१०।१२।३८	८२
८६	८६	विशुद्ध प्रेम ही अहिंसा है	१०।१२।३८	८३
८७	८७	नित्य मंगलकारी अहिंसा	३१।१२।३८	८३
८८	८८	भ्रातृत्व का आधार अहिंसा	२८।१।३९	८३
८९	८९	स्वराज्य की प्रथम शर्त्त : अहिंसा	३।६।३९	८३
९०	९०	अहिंसात्मक युद्ध	१०।६।३९	८४
९१	९१	विश्वास की नीति : अहिंसा	१०।६।३९	८४
९२	९२	अहिंसा का तत्व-दर्शन : विकास के चरण	२४।६।३९	८५
९३	९३	मध्यम मार्ग	१।७।३९	८८
९४	९४	अहिंसा बनाम हिंसा	८।७।३९	८९
९५	९५	अहिंसा और कायरता	१५।७।३९	९३
९६	९६	मुक्ति का एक मात्र मार्ग अहिंसा	२६।८।३९	९४
९७	९७	शासन-नीति के रूप में अहिंसा	१४।१०।३९	९४
९८	९८	अहिंसा-धर्म	४।११।३९	९८
९९	९९	मेरी अहिंसा कायर नहीं वीर बनाती है	४।११।३९	९८
१००	१००	सशस्त्र क्रान्ति और अहिंसा	२।१२।३९	९९
१०१	१०१	अहिंसा के बिना आजादी भी नहीं	९।१२।३९	९९
१०२	१०२	अहिंसा-मार्ग की विशेषता	१६।१२।३९	१००
१०३	१०३	अहिंसा : श्रद्धा का आधार	१३।१।४०	१००
१०४	१०४	मानसिक हिंसा बनाम मानसिक अहिंसा	३०।१।४०	१००
१०५	१०५	बुराई करने वालों के साथ प्रेम ही अहिंसा है	३।२।४०	१००
१०६	१०६	अहिंसा की प्रकृति	२।३।४०	१०१
१०७	१०७	अहिंसा व्याख्यातीत है	२।३।४०	१०१

१०८	१०८	सच्ची अहिंसा का स्वरूप	९।३।४०	१०२
१०९	१०९	अहिंसा अविनाशी है	१६।३।४०	१०२
११०	११०	अहिंसा और वाद	१६।३।४०	१०२
१११	१११	अहिंसक समाज की परिकल्पना	२०।४।४०	१०२
११२	११२	सच्ची अहिंसा	२०।७।४०	१०४
११३	११३	अहिंसा का मार्ग	२७।७।४०	१०८
११४	११४	अहिंसा प्रभु का काम	२७।७।४०	११०
११५	११५	पूर्ण अहिंसावादी क्या करें ?	१०।८।४०	१११
११६	११६	अहिंसा असम्भव है ?	१०।८।४०	१११
११७	११७	शूरवीरों की अहिंसा	३१।८।४०	११६
११८	११८	अहिंसा की मर्यादा	३१।८।४०	११८
११९	११९	गीता क्या अहिंसा सिखाती है ?	१४।९।४०	११९
१२०	१२०	अहिंसा : धर्म या साधन	१९।४।४२	१२०
१२१	१२१	मेरी श्रद्धा	२६।४।४२	१२१
१२२	१२२	अहिंसा का ध्येय	१४।६।४२	१२१
१२३	१२३	अहिंसा ही मानव की एक मात्र आशा है	२१।६।४२	१२१
१२४	१२४	अराजकता और अहिंसा	२१।६।४२	१२२
१२५	१२५	अराजकता का भय और अहिंसा	२१।६।४२	१२३
१२६	१२६	अहिंसा का क्या होगा ?	२१।६।४२	१२३
१२७	१२७	अहिंसा और उपवास	२६।७।४२	१२४
१२८	१२८	औरतों पर अत्याचार और अहिंसा	१०।२।४६	१२४
१२९	१२९	अहिंसा का शास्त्र या कर्म ?	३।३।४६	१२५
१३०	१३०	अहिंसा : शूरों का मार्ग	१४।४।४६	१२६
१३१	१३१	अहिंसा की परीक्षा	२८।४।४६	१२७
१३२	१३२	सत्य अथवा अहिंसा	२३।६।४६	१२७
१३३	१३३	अहिंसक सुरक्षा	१८।८।४६	१२९
१३४	१३४	पश्चिमी जनतन्त्र और अहिंसा	२९।९।४६	१२९
१३५	१३५	अहिंसा और मतभेद	६।१०।४६	१३०
१३६	१३६	हिंसा के तरीके	२७।१०।४६	१३१
१३७	१३७	श्रद्धा का साहस	२४।११।४६	१३१
१३८	१३८	दुर्वलों बनाम बलवानों की अहिंसा	२।२।४७	१३२
१३९	१३९	मेरी अहिंसा की कसौटी	२।२।४७	१३२
१४०	१४०	लोकतन्त्र और अहिंसा	२।३।४७	१३३
१४१	१४१	हिंसा बनाम अहिंसा	३०।३।४७	१३३
१४२	१४२	ज्वालामुखी में भी शान्ति	५।४।४७	१३४
१४३	१४३	हिंसा	२०।४।४७	१३५
१४४	१४४	तलवार से शान्ति न होगी	१८।५।४७	१३५
१४५	१४५	अहिंसा में दृढ़ विश्वास	८।६।४७	१३५
१४६	१४६	अहिंसा चुम्बक है	१५।६।४७	१३६
१४७	१४७	एक मात्र साधन	२९।६।४७	१३६

१४८	१४८	अहिंसा के साथ ईश्वर है	१३।७।४७	१३६
१४९	१४९	सत्य और अहिंसा : एक सिक्के के दो पहलू	१३।७।४७	१३६
१५०	१५०	बहादुरों की हिंसा और अहिंसा	१३।७।४७	१३७
१५१	१५१	मेरे एवं कांग्रेस के बीच भेद	२७।७।४७	१३८
१५२	१५२	अहिंसा का विज्ञान और प्रयोग	७।९।४७	१३९
१५३	१५३	अहिंसा की मर्यादा	१४।१२।४७	१३९
१५४	१५४	अहिंसा का पालन	४।१।४८	१४१
१५५	१५५	अहिंसा कभी व्यर्थ नहीं जाती	११।१।४८	१४१

२. अहिंसा : व्यवहार-पक्ष [पृष्ठ १४३–२९७]

१५६	१	मुसलमानों को अहिंसा की चेतावनी	१०।३।१९	१४५
१५७	२	वचन की हिंसा	३।१२।१९	१४५
१५८	३	अहिंसा का आशावाद	२।६।२०	१४५
१५९	४	अहिंसा का परित्याग	४।८।२०	१४६
१६०	५	खिलाफत और अहिंसा	१।६।२१	१४६
१६१	६	अहिंसा की प्रसव-पीड़ा	७।१०।२३	१४९
१६२	७	अहिंसा-पालन की शर्तें	२।३।२४	१४९
१६३	८	सत्य, स्वतन्त्रता, स्वराज्य और अहिंसा	६।४।२४	१५०
१६४	९	हिंसा की लहर	१।६।२४	१५१
१६५	१०	अहिंसा की प्रतिज्ञा	१६।११।२४	१५६
१६६	११	मारना कब ठीक है ?	८।१।२५	१५६
१६७	१२	क्या अहिंसा की भी कोई सीमा है ?	१२।८।२६	१५८
१६८	१३	पाशविक शक्ति और अहिंसा	२१।१०।२६	१६२
१६९	१४	अहिंसा वैर मिटाती है	१९२६	१६२
१७०	१५	अहिंसक कर्म की स्वाधीनता	१९२६	१६२
१७१	१६	अहिंसा की कुछ पहेलियां	१५।९।२७	१६३
१७२	१७	नैल का पुतला और अहिंसा	२९।९।२७	१६४
१७३	१८	अहिंसा और रचनात्मक कार्य	१०।११।२७	१६७
१७४	१९	अमोघ अस्त्र : अहिंसा	८।१२।२७	१६८
१७५	२०	अहिंसा का अपराध	१५।१२।२७	१६८
१७६	२१	अहिंसा का मर्म	२९।१२।२७	१७३
१७७	२२	अहिंसा का लघुत्तम मार्ग	२९।१२।२७	१७४
१७८	२३	अहिंसा सबके लिए शुभकारी	२।२।२८	१७५
१७९	२४	अहिंसा की गंगा	९।२।२८	१७५
१८०	२५	अहिंसा किताबी सिद्धान्त नहीं है	१।३।२८	१७५
१८१	२६	हमारा कर्तव्य	११।१०।२८	१७७
१८२	२७	बम और छुरी	१८।४।२९	१७८
१८३	२८	अहिंसा का मन्त्र	२५।४।२९	१७९
१८४	२९	अहिंसा—युक्ति अथवा धर्म ?	७।५।३१	१८१

१८५	३०	निर्बल की बात मानना अहिंसा है	९।७।३१	१८२
१८६	३१	अहिंसा अथवा नैतिकता का प्रश्न	२३।७।३१	१८२
१८७	३२	अहिंसक सेना	१३।८।३१	१८३
१८८	३३	अहिंसा का लक्षण	१।१०।३१	१८३
१८९	३४	हिंसा मेरी बाधा	२६।११।३१	१८४
१९०	३५	अहिंसक युद्ध में आत्म-बलिदान	२६।११।३१	१८४
१९१	३६	अहिंसक प्रेम	१७।५।३२	१८५
१९२	३७	अहिंसा की जननी नम्रता	३०।७।३२	१८५
१९३	३८	अहिंसक प्रवृत्ति	२०।१।३३	१८६
१९४	३९	गुण्डापन का इलाज	२९।३।३३	१८६
१९५	४०	अहिंसा की परिभाषा	३।८।३४	१८६
१९६	४१	अहिंसा का सिद्धान्त : व्यक्तिगत अथवा समष्टिगत?	३।८।३४	१८७
१९७	४२	अहिंसक भारत और सेना	५।४।३५	१८८
१९८	४३	अनिवार्य हिंसा	२१।६।३५	१८९
१९९	४४	अहिंसा किसे कहें ?	१३।२।३७	१८९
२००	४५	अहिंसा पर बातचीत	२७।३।३७	१९३
२०१	४६	सत्य और अहिंसा का संगठन	८।५।३७	१९८
२०२	४७	साम्प्रदायिक दंगे और अहिंसक सेना	२६।३।३८	१९८
२०३	४८	आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता	२।४।३८	२००
२०४	४९	अहिंसा अथवा हिंसा ?	९।४।३८	२०१
२०५	५०	हमारी टेक	९।४।३८	२०४
२०६	५१	अहिंसा का अर्थ	२१।५।३८	२०८
२०७	५२	शान्ति-सेना की प्रमुख शर्त अहिंसा	१८।६।३८	२१०
२०८	५३	कांग्रेस और हिंसा	१३।८।३८	२११
२०९	५४	शत्रु के प्रति अहिंसात्मक व्यवहार	३।९।३८	२१२
२१०	५५	शान्ति-सैनिक की समस्त प्रवृत्तियों का आधार अहिंसा	५।११।३८	२१३
२११	५६	हिंसक बनाम अहिंसक	२६।११।३८	२१३
२१२	५७	शस्त्र-त्याग और अहिंसा	३।१२।३८	२१५
२१३	५८	अहिंसा में हार नहीं	५।१२।३८	२१५
२१४	५९	दुश्मन के प्रति घृणा नहीं प्रेम	१०।१२।३८	२१५
२१५	६०	अहिंसा की कल्पना	२४।१२।३८	२१६
२१६	६१	अहिंसा का आचरण	११।२।३९	२१६
२१७	६२	शुद्ध अहिंसा का नवीन प्रयोग	१८।३।३९	२१७
२१८	६३	क्या आप शुद्ध अहिंसा का पालन करते हैं ?	१३।५।३९	२१७
२१९	६४	अहिंसक युद्ध की सफलता	२०।५।३९	२१८
२२०	६५	अहिंसा का व्यापक रूप	३।६।३९	२२१
२२१	६६	रक्तहीन क्रान्ति और अहिंसा	१।७।३९	२२२
२२२	६७	विशुद्ध अहिंसा	१।७।३९	२२४
२२३	६८	अहिंसा की तराजू पर	२१।१०।३९	२२५

२२४	६९	हृदय में हिंसा, मुँह में अहिंसा	२८।१०।३९	२२५
२२५	७०	अहिंसा का अनुसन्धान	२८।१०।३९	२२६
२२६	७१	श्रम, खादी और अहिंसा	९।१२।३९	२२६
२२७	७२	अहिंसा का वास्तविक रूप	२०।१२।३९	२२७
२२८	७३	अहिंसा से ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था सम्भव	२७।१।४०	२२७
२२९	७४	अहिंसक आचरण	१६।३।४०	२२८
२३०	७५	अहिंसा की सच्ची परीक्षा	१६।३।४०	२२९
२३१	७६	अहिंसा प्रतिष्ठायाम् वैरत्याग:	२३।३।४०	२२९
२३२	७७	विरोधी के प्रति अहिंसा की दृष्टि	६।४।४०	२३१
२३३	७८	क्या सम्पत्ति की हानि करना हिंसा नहीं है ?	१३।४।४०	२३२
२३४	७९	मेरी अहिंसा	१३।४।४०	२३२
२३५	८०	तार्किक चिन्तन और अहिंसा	१५।६।४०	२३३
२३६	८१	अहिंसा: नीति अथवा धर्म ?	२९।६।४०	२३४
२३७	८२	गिरि-प्रवचन के प्रकाश में अहिंसा	६।७।४०	२३६
२३८	८३	मेरी कोई नहीं सुनता	१३।७।४०	२३७
२३९	८४	अहिंसा का प्रयोग	१३।७।४०	२४०
२४०	८५	अहिंसा कैसे सीखी जाय ?	२०।७।४०	२४१
२४१	८६	अहिंसा का सर्वोत्तम क्षेत्र	२०।७।४०	२४३
२४२	८७	हिंसा की भावना	२०।७।४०	२४५
२४३	८८	अहिंसा के आधार : प्रेम और उदारता	२७।७।४०	२४५
२४४	८९	अहिंसा पर श्रद्धा	३।८।४०	२४८
२४५	९०	इसमें हिंसा है	३।८।४०	२४९
२४६	९१	अहिंसक शासन और पुलिस की मर्यादा	२४।८।४०	२५२
२४७	९२	एक गलत तुलना	३१।८।४०	२५५
२४८	९३	अहिंसा और राज्य-सञ्चालन	३१।८।४०	२५६
२४९	९४	अहिंसक सेना	३१।८।४०	२५८
२५०	९५	अहिंसा : एक महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१४।९।४०	२६०
२५१	९६	अहिंसावादी और धन-सम्पत्ति	१४।९।४०	२६३
२५२	९७	दंगे के समय अहिंसक आचरण	१४।९।४०	२६४
२५३	९८	क्या उपवास हिंसक नहीं ?	२८।९।४०	२६५
२५४	९९	अहिंसा	२।४।४१	२६६
२५५	१००	अहिंसा: एक बड़ी कसौटी	१८।१।४२	२६६
२५६	१०१	अहिंसक स्वराज्य की विशेषता	१८।१।४२	२६६
२५७	१०२	अहिंसक सैनिक	१८।१।४२	२६७
२५८	१०३	अपने आप से अहिंसा आरम्भ करो	१८।१।४२	२६७
२५९	१०४	अहिंसा और सम्पत्ति की रक्षा	१५।२।४२	२६८
२६०	१०५	दंगों में अहिंसा	२२।२।४२	२६९
२६१	१०६	बलात्कार और अहिंसा-हिंसा	१।३।४२	२७०
२६२	१०७	अत्याचार के प्रतिरोध में अहिंसक आचरण	२९।३।४२	२७१
२६३	१०८	मेरे मुट्ठी भर अनुयायी	१४।६।४२	२७४

२६४	१०९	नई समाज-व्यवस्था और अहिंसा	२।८।४२	२७४
२६५	११०	अहिंसक संगठन	२।३।४६	२७५
२६६	१११	सही मार्ग	१०।३।४६	२७५
२६७	११२	अहिंसा-कला का प्रथम पाठ	१४।४।४६	२७६
२६८	११३	विनाश नहीं निर्माण में लगें	१४।४।४६	२७७
२६९	११४	हिंसक विस्फोट के समय अहिंसक आचरण	२८।४।४६	२७८
२७०	११५	अहिंसक सेवादल	५।५।४६	२७८
२७१	११६	अहिंसा का व्यवहार-पक्ष	१२।५।४६	२८०
२७२	११७	पहिले खुद कूदो	४।८।४६	२८३
२७३	११८	क्या यह कायरता नहीं ?	२२।९।४६	२८५
२७४	११९	अहिंसा की नैतिकता	१३।१०।४६	२८६
२७५	१२०	श्रद्धा को चुनौती	१७।११।४६	२८६
२७६	१२१	हिंसा या अहिंसा ?	१।४।४७	२८८
२७७	१२२	हिंसा का सामना कैसे किया जाय ?	१।६।४७	२८८
२७८	१२३	आज अहिंसा क्यों असफल हो रही है ?	२९।६।४७	२९०
२७९	१२४	वीरों की अहिंसा	२९।६।४७	२९१
२८०	१२५	अहिंसा	२९।६।४७	२९२
२८१	१२६	निष्क्रिय प्रतिरोध और विष को अमृत करने वाली अहिंसा	२०।७।४७	२९४
२८२	१२७	सच्ची अहिंसा	८।१०।४७	२९५
२८३	१२८	अहिंसा में पक्का विश्वास	१६।११।४७	२९५
२८४	१२९	हिंसा से अधिकार-रक्षा	३०।११।४७	२९७

३. अहिंसा : जीवदया एवं खाद्याखाद्य **[पृष्ठ २९९–३८०]**

२८५	१	अहिंसा का मर्म	१९।३।२५	३०१
२८६	२	क्या कृषि कर्म में हिंसा है ?	२४।९।२५	३०३
२८७	३	जीव की जीव के प्रति हिंसा	२२।४।२६	३०५
२८८	४	अहिंसा की गुत्थी	१०।६।२६	३०६
२८९	५	जीव-हिंसा : अहिंसा की दृष्टि में	१४।१०।२६	३०८
२९०	६	जीव-दया के प्रसंग में अहिंसा	२१।१०।२६	३११
२९१	७	जीव-हिंसा और अहिंसा (दया-धर्म की अहिंसात्मक दृष्टि)–१	२८।१०।२६	३१३
२९२	८	जीव-हिंसा और अहिंसा (दया-धर्म की अहिंसात्मक दृष्टि)–२	४।११।२६	३१६
२९३	९	जीव-हिंसा और अहिंसा–३	११।११।२६	३१९
२९४	१०	जीव-हिंसा और अहिंसा–४	१८।११।२६	३२३
२९५	११	जीव-हिंसा और अहिंसा–५	२५।११।२६	३२६
२९६	१२	जीव-हिंसा और अहिंसा–६	२।१२।२६	३३०
२९७	१३	दुःख-निवारण-हेतु हिंसा और अहिंसा	९।१२।२६	३३२

२९८	१४	सर्वभूतहितवाद की पीठिका : अहिंसा	१४।४।२७	३३५
२९९	१५	सनातन प्रश्न	२३।६।२७	३३९
३००	१६	कन्दमूल और अहिंसा	६।९।२८	३४२
३०१	१७	अहिंसा किसे कहें ?	१३।९।२८	३४२
३०२	१८	अहिंसा का अर्थ	२०।९।२८	३४४
३०३	१९	पावक की ज्वाला—(१)	४।१०।२८	३४५
३०४	२०	पावक की ज्वाला—(२)	४।१०।२८	३४९
३०५	२१	अहिंसा की समस्याएं	११।१०।२८	३५१
३०६	२२	एक समस्या	१८।१०।२८	३५३
३०७	२३	जैनी अहिंसा ?	२५।१०।२८	३५५
३०८	२४	अहिंसा-प्रकरण	१।११।२८	३६०
३०९	२५	'एक युवक हृदय' की शंका	६।१२।२८	३६३
३१०	२६	कुछ टीकाएं, जीवदया और अहिंसा	६।१२।२८	३६४
३११	२७	कि धर्म ?	२५।७।२९	३६७
३१२	२८	मेरी अपूर्णता	२५।७।२९	३७१
३१३	२९	अहिंसा और मांसाहार	१२।६।३२	३७४
३१४	३०	पशु-बलि और अहिंसा	३०।६।३२	३७४
३१५	३१	पशुबलि और अहिंसा	१८।८।३२	३७४
३१६	३२	वैयक्तिक गोपालन में हिंसा क्यों ?	१।३।४२	३७५
३१७	३३	मत्स्यभोज में हिंसा-अहिंसा	२४।३।४६	३७५
३१८	३४	बन्दरों की शरारत	५।५।४६	३७६
३१९	३५	अहिंसा, जीव-दया और धर्माधर्म-विवेक	९।६।४६	३७७
३२०	३६	अहिंसा के नाम पर हिंसा	७।७।४६	३७९
३२१	३७	मूक पशुओं के साथ निर्दयता	१०।११।४६	३८०

४. अहिंसा : विश्वशान्ति एवं युद्ध-निवारण [पृष्ठ ३८१-४५३]

३२२	१	अहिंसा का क्षेत्र	९।११।२४	३८३
३२३	२	युद्ध के प्रति मेरे भाव	२०।९।२८	३८५
३२४	३	कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है ?	५।९।२९	३८७
३२५	४	अहिंसा और विश्व-जनमत	७।५।३१	३८९
३२६	५	शान्तिवाद और विदेशी आक्रमण	१४।५।३८	३९०
३२७	६	अहिंसा-द्वारा स्थायी शान्ति	१८।६।३८	३९१
३२८	७	चेकोस्लोवाकिया और अहिंसा का मार्ग	८।१०।३८	३९२
३२९	८	यदि मैं चेक होता	१५।१०।३८	३९५
३३०	९	यहूदी और अहिंसा	१७।१२।३८	३९७
३३१	१०	हिंसा की प्यास बलिदान से बुझेगी	१९३८	३९९
३३२	११	अहिंसा और अन्तर्राष्ट्रीय मामले-१	७।१।३९	३९९
३३३	१२	अमरीकियों को अहिंसा का उपदेश	७।१।३९	४०२
३३४	१३	अहिंसा और अन्तर्राष्ट्रीय मामले-२	१४।१।३९	४०४

३३५	१४	क्या अहिंसा बेकार गई?	१४।१।३९	४०६
३३६	१५	तीव्र हिंसा के प्रतिरोध में अहिंसा	२७।५।३९	४०८
३३७	१६	हिंसा और अहिंसा का मार्ग	२७।५।३९	४०९
३३८	१७	महायुद्ध और अहिंसा का दृष्टिकोण	३०।९।३९	४०९
३३९	१८	भारत की सांस्कृतिक परम्परा : अहिंसा	३०।९।३९	४११
३४०	१९	अधिनायकवाद का प्रतिरोध और अहिंसा	१४।१०।३९	४१२
३४१	२०	विश्वयुद्ध में अहिंसात्मक सहयोग	१४।१०।३९	४१३
३४२	२१	ईसाइयों के लिए अहिंसा	१४।१०।३९	४१४
३४३	२२	युद्ध में नैतिक सहयोग और अहिंसा	२१।११।३९	४१५
३४४	२३	अहिंसा फिर किस काम की?	४।५।४०	४१६
३४५	२४	अहिंसा ही एक साधन है	२०।७।४०	४१८
३४६	२५	नाज़ीवाद का नग्नस्वरूप	१७।८।४०	४१९
३४७	२६	हिंसा का दावानल कैसे बुझेगा?	७।९।४०	४२२
३४८	२७	जगत् की सुरक्षा और अहिंसा	५।१०।४०	४२५
३४९	२८	संगठित अहिंसा की शक्ति	२४।१२।४१	४२७
३५०	२९	अहिंसा की कसौटी	५।४।४२	४२७
३५१	३०	अहिंसक प्रतिकार	१२।४।४२	४३१
३५२	३१	युद्ध का अहिंसक प्रतिरोध	१९।४।४२	४३४
३५३	३२	कावेबाज़ी की लड़ाई	२६।४।४२	४३९
३५४	३३	भारत की हिंसक और अहिंसक रक्षा तथा ब्रिटेन	१९।७।४२	४४१
३५५	३४	जपान और भारत : युद्ध और अहिंसा	२६।७।४२	४४४
३५६	३५	हिंसा का परिणाम	१०।३।४६	४४९
३५७	३६	हिंसा कैसे रोकें?	१९।५।४६	४४९
३५८	३७	अणुबम और अहिंसा	७।७।४६	४५०
३५९	३८	अणुबम और अहिंसा	६।१०।४६	४५१
३६०	३९	युद्ध कैसे समाप्त हो	१७।११।४६	४५२

५. अहिंसा : हिंसा एवं हिंसक क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में [पृष्ठ ४५५-५२४]

३६१	१	राजनीतिक हत्याएं	१९१५	४५७
३६२	२	अहिंसा : हमारी विरासत	२७।४।१५	४५७
३६३	३	हिंसा का दमन	१९।३।१९	४५८
३६४	४	सशस्त्र आन्दोलन और अहिंसा	९।६।२०	४५८
३६५	५	हिंसाबल और भारत	११।१२।२०	४५९
३६६	६	हमारे लिए तलवार का रास्ता नहीं है	२५।५।२४	४५९
३६७	७	शुद्ध हेतु से हिंसा	२१।१२।२४	४६०
३६८	८	पागल देश-प्रेम	३१।१२।२४	४६०
३६९	९	क्रान्तिकारी से	१२।३।२५	४६२
३७०	१०	क्रान्तिकारी और अहिंसा	९।४।२५	४६३
३७१	११	क्रान्तिकारी बनने के उम्मीदवार से	३०।४।२५	४६९

३७२	१२	कुछ और	७।५।२५	४७१
३७३	१३	हिंसक क्रान्ति और अहिंसा	२।४।३१	४७६
३७४	१४	हिंसक क्रान्ति के प्रति सहज करुणा	९।४।३१	४७७
३७५	१५	हिंसावाद	१९।४।३१	४७७
३७६	१६	क्रान्ति और अहिंसा	३०।४।३१	४८०
३७७	१७	हत्या और अहिंसा	३०।७।३१	४८३
३७८	१८	आतंकवादी हत्याएं और अहिंसा	६।८।३१	४८४
३७९	१९	हिंसक और अहिंसक क्रान्ति	१३।८।३१	४८५
३८०	२०	हिंसक क्रान्तिकारी और अहिंसा	२४।९।३१	४८६
३८१	२१	अराजकता एवं आतंक का परिशोध : अहिंसा	२४।१२।३१	४८७
३८२	२२	सैनिक बल बनाम नैतिक बल	२३।४।३८	४८८
३८३	२३	अहिंसा का चमत्कार	२१।५।३८	४८९
३८४	२४	सीमा पार के आक्रमणकारी और अहिंसा	५।११।३८	४९१
३८५	२५	शस्त्र बनाम अहिंसा	२६।११।३८	४९१
३८६	२६	हिंसा बनाम अहिंसा	२८।१।३९	४९२
३८७	२७	क्रान्तिकारी हत्या पर अहिंसा की प्रतिक्रिया	२३।३।४०	४९३
३८८	२८	आतंक और अहिंसा का आश्वासन	८।६।४०	४९४
३८९	२९	अराजकता की स्थिति में क्या किया जाय ?	२९।६।४०	४९६
३९०	३०	हिंसावादियों से	२१।९।४०	४९७
३९१	३१	अहिंसा अवसरवादिता नहीं	१९४२	४९७
३९२	३२	तोड़फोड़ की कार्रवाई और अहिंसा	१०।२।४६	४९९
३९३	३३	द्वेष को कैसे मोड़ें ?	२४।२।४६	५०४
३९४	३४	हिंसा का समाधान	३।३।४६	५०६
३९५	३५	अराजकता और अहिंसा	३।३।४६	५१०
३९६	३६	अहिंसा ही स्वतन्त्रता का एकमात्र साधन है	३।३।४६	५११
३९७	३७	हिंसक बंगाल : एक प्रतिक्रिया	७।४।४६	५१२
३९८	३८	अहिंसा के प्रति आज़ाद हिन्द फौज की निष्ठा	१४।४।४६	५१४
३९९	३९	आज़ाद हिन्द फ़ौज को सन्देश	२१।४।४६	५१६
४००	४०	हिंसक और अहिंसक सुरक्षा	८।९।४६	५१८
४०१	४१	अहिंसा जीवन का सत्य	२५।५।४७	५१९
४०२	४२	क्या अहिंसा व्यर्थ है ?	२२।६।४७	५१२
४०३	४३	हिंसा की दुर्गन्ध में अहिंसा की सुगन्ध	२६।६।४७	५२३

६. अहिंसा : विविध [पृष्ठ ५२५–५९४]

४०४	१	मुसलमान और अहिंसा	२।६।२०	५२७
४०५	२	अहिंसा शुभ है	२०।६।२४	५२७
४०६	३	हिन्दुस्तान का अर्थ	२३।११।२४	५२७
४०७	४	अहिंसा का संकेत	३०।११।२४	५२८
४०८	५	मेरा स्वप्न	१४।१२।२४	५२८

४०९	६	अहिंसा और शस्त्रधारण	१४।७।२७	५२८
४१०	७	अहिंसा की दृष्टि में आत्महनन	१।८।२७	५२८
४११	८	अहिंसा में श्रद्धा	२९।९।२७	५२९
४१२	९	हिन्दू धर्म और अहिंसा	२७।१०।२७	५२९
४१३	१०	शिक्षा में दण्ड और अहिंसा	२५।१०।२८	५२९
४१४	११	शराबबन्दी और अहिंसा	१९।९।२९	५२९
४१५	१२	अहिंसक सैनिक के गुण	१७।१०।२९	५३०
४१६	१३	भारत के लिए अहिंसा ही श्रेष्ठ है	२३।१।३०	५३०
४१७	१४	अहिंसक शिक्षा	३०।११।३०	५३१
४१८	१५	शिक्षा का अहिंसक विवेचन	१४।१२।३०	५३१
४१९	१६	हिंसक और अहिंसक सैनिक	१३।८।३१	५३१
४२०	१७	अहिंसक और स्पष्टीकरण	१३।८।३१	५३२
४२१	१८	बालकों को अहिंसा का उपदेश	२४।८।३२	५३२
४२२	१९	अहिंसा और शस्त्र-शिक्षा	१८।४।३५	५३२
४२३	२०	अहिंसा की दृष्टि में साम्यवाद	१३।८।३५	५३३
४२४	२१	आततायी और अहिंसा	१०।९।३५	५३३
४२५	२२	अहिंसा : एक कला	२८।९।३५	५३४
४२६	२३	विदेशी आदर्शों का आवरण निकाल फेंकिए	३०।४।३८	५३४
४२७	२४	शस्त्र-प्रेमियों को अहिंसा का उपदेश	२८।५।३८	५३४
४२८	२५	अहिंसा : राजनीति अथवा जीवन-धर्म ?	११।६।३८	५३६
४२९	२६	अहिंसा : श्रमिकों की एकमात्र सुरक्षा	२५।६।३८	५३७
४३०	२७	प्रवासी भारतीयों की अहिंसा	२०।८।३८	५३९
४३१	२८	अहिंसा और सेना	२७।८।३८	५४०
४३२	२९	असन्दिग्ध अहिंसा	३।९।३८	५४०
४३३	३०	पठान और अहिंसा	१२।११।३८	५४०
४३४	३१	अनाचार के प्रतिरोध में अहिंसा	२६।११।३८	५४१
४३५	३२	विकासवाद और अहिंसा	३।१२।३८	५४२
४३६	३३	हिन्दू-रक्षा में अहिंसा	३।१२।३८	५४३
४३७	३४	हिंसा अहिंसा दलगत नहीं है	१७।१२।३८	५४३
४३८	३५	अहिंसात्मक शक्ति और सम्मिलित शस्त्र-शक्ति	७।१।३९	५४४
४३९	३६	श्रमहीन भोजन अहिंसा के विरुद्ध है	२५।२।३९	५४४
४४०	३७	अहिंसा का पर्याय : विवेक	२।९।३९	५४४
४४१	३८	अहिंसा पर आस्था	९।९।३९	५४५
४४२	३९	साम्प्रदायिक सद्भावना और अहिंसा	७।१०।३९	५४५
४४३	४०	अहिंसा का उपदेश	४।११।३९	५४६
४४४	४१	सिन्ध और वीरों की अहिंसा	६।१।४०	५४९
४४५	४२	अहिंसक भारत	१३।१।४०	५५०
४४६	४३	श्रमाधारित अहिंसा	२७।१।४०	५५१
४४७	४४	स्त्रियां और अहिंसात्मक आचरण	१६।३।४०	५५१
४४८	४५	अहिंसा और फांसी की प्रथा	२७।४।४०	५५२

४४९	४६	अहिंसा और एक मुसलमान भाई की समस्या	६।७।४०	५५२
४५०	४७	शिक्षक और अहिंसा	६।७।४०	५५४
४५१	४८	अहिंसा का प्रयोग	६।७।४०	५५५
४५२	४९	अहिंसा और घबराहट	६।७।४०	५५५
४५३	५०	खां साहब की अहिंसा	२०।७।४०	५५८
४५४	५१	अहिंसा के लिए अलौकिक मनुष्यों की आवश्यकता नहीं	२०।७।४०	५५९
४५५	५२	आप मौत आने से पहले ही मर गये ?	२०।७।४०	५६०
४५६	५३	पाकिस्तान और अहिंसा	३।८।४०	५६०
४५७	५४	निर्बल बहुमत की कैसे रक्षा हो	२४।८।४०	५६१
४५८	५५	अहिंसा के सम्बन्ध में एक शंका	७।९।४०	५६३
४५९	५६	कांग्रेसी अहिंसा	१४।९।४०	५६४
४६०	५७	मेरा स्वप्न	२१।९।४०	५६५
४६१	५८	जहां अहिंसा नहीं वहां हिंसा आयेगी	१८।१।४२	५६६
४६२	५९	भारतीय संस्कृति और अहिंसा	१।२।४२	५६६
४६३	६०	कांग्रेस, स्वयंसेवक और अहिंसा	५।४।४२	५६७
४६४	६१	शुद्ध अहिंसावादी क्या करें ?	५।४।४२	५६८
४६५	६२	मानव-प्रकृति में विश्वास और अहिंसा	७।६।४२	५६८
४६६	६३	हमारे पास केवल अहिंसा का शस्त्र है	१४।६।४२	५६८
४६७	६४	एक चुनौती	२८।६।४२	५६९
४६८	६५	एक चेतावनी	५।१०।४५	५७१
४६९	६६	अहिंसा की शक्ति रामबाण	१९।३।४६	५७२
४७०	६७	हिंसा की भयंकरता	७।४।४६	५७२
४७१	६८	अहिंसा और विदेशी आक्रमण	२१।४।४६	५७३
४७२	६९	अपराधी के प्रति व्यवहार	५।५।४६	५७३
४७३	७०	सत्य, अहिंसा और रामनाम	१६।६।४६	५७३
४७४	७१	अहिंसक बलिदान और हरजाना	१८।८।४६	५७४
४७५	७२	क्या करें ?	१५।९।४६	५७४
४७६	७३	कांग्रेसी मन्त्री और अहिंसा	१५।९।४६	५७७
४७७	७४	सत्य और अहिंसा को न छोड़ें	२९।९।४६	५७९
४७८	७५	अराजकता और अहिंसा	६।१०।४६	५८१
४७९	७६	स्त्रियों को अहिंसा का उपदेश	३।११।४६	५८३
४८०	७७	ट्रस्टीशिप और अहिंसा	१६।२।४७	५८३
४८१	७८	यथार्थ स्वतन्त्रता और अहिंसा	२।३।४७	५८४
४८२	७९	धर्मों का तत्व	२७।४।४७	५८५
४८३	८०	खादी अहिंसा की निशानी	४।५।४७	५८५
४८४	८१	सत्य एवं अहिंसा की पूजा से ही महात्मा हूं	५।६।४७	५८५
४८५	८२	हिंसक समाज	२९।६।४७	५८६
४८६	८३	बहादुरी का यह स्तर !	६।७।४७	५८६
४८७	८४	भारत का विभाजन और अहिंसा	२०।७।४७	५८६

४८८	८५	अहिंसा में सेना की निरर्थकता	२७।७।४७	५८८
४८९	८६	अहिंसा से असत्य नहीं चलाया जा सकता	१२।१०।४७	५८९
४९०	८७	अरण्य-रोदन	२।११।४७	५८९
४९१	८८	थोड़े के लिए बहुत को निराश करना	९।११।४७	५९१
४९२	८९	मेरी कहां चलती है ?	१६।११।४७	५९१
४९३	९०	अहिंसा के पुजारी का हृदय	१६।११।४७	५९२
४९४	९१	अहिंसा पर एक सेनापति का आक्षेप	१६।११।४७	५९२
४९५	९२	मेरे स्वप्न का भारत	१४।१२।४७	५९३
४९६	९३	कोटि-कोटि के लिए	२१।१२।४७	५९४

७. अहिंसा : परिशिष्ट भाग [पृष्ठ ५९५–६०७]

परिशिष्ट–क : तिथिविहीन रचनाएं

४९७	१	शस्त्र बनाम आत्मबल	५९७
४९८	२	विचार-स्वातन्त्र्य का अहिंसक रूप	५९७
४९९	३	अहिंसा : संसार के लिए भारत का सन्देश	५९७
५००	४	अहिंसा : एक शाश्वत धर्म	५९८

परिशिष्ट–ख

५०१	५	दिल्ली—प्रस्ताव	५९९
५०२	६	पूना—प्रस्ताव	५९९
५०३	७	वर्धा—प्रस्ताव	६००

परिशिष्ट—ग

५०४	८	अहिंसा परमोधर्मः (लाला लाजपत राय)	६०३

अहिंसा

कालक्रमानुसारिणी निर्देशिका

क्रम संख्या	लेख-शीर्षक	रचना वा प्रकाशन-तिथि	पृष्ठ
१.	अहिंसा का भाव	सन १९०९	३
२.	राजनीतिक हत्याएं	मार्च १९१५	४५७
३.	अहिंसा : हमारी विरासत	२७।४।१५	४५७
४.	तलवार से विनाश	२७।७।१६	३
५.	अहिंसा की प्रतिज्ञा	सन १९१६	३
६.	अहिंसा	अक्टूबर १९१६	५
७.	हमारी सभ्यता और अहिंसा	३०।३।१८	९
८.	मुसलमानों को अहिंसा की चेतावनी	१०।३।१९	१४५
९.	हिंसा के दोष	१९।३।१९	१०
१०.	हिंसा का दमन	१९।३।१९	४५८
११.	वचन की हिंसा	३।१२।१९	१४५
१२.	दो अदम्य शक्तियां	१०।३।२०	१०
१३.	मुसलमान और अहिंसा	२।६।२०	५२७
१४.	अहिंसा का आशावाद	२।६।२०	१४५
१५.	सशस्त्र आन्दोलन और अहिंसा	९।६।२०	४५८
१६	हिंसा का परित्याग	४।८।२०	१४६
१७.	अहिंसा पर अविचल श्रद्धा	२५।८।२०	११
१८.	हिंसाबल और भारत	१।१२।२०	४५९
१९.	खिलाफत और अहिंसा	१।६।२१	१४६
२०.	हिंसा और अहिंसा	१६।३।२२	११
२१	अहिंसा की प्रसव-पीड़ा	७।१०।२३	१४९
२२.	अहिंसा-पालन की शर्तें	२।३।२४	१४९
२३.	सत्य, स्वतन्त्रता, स्वराज्य और अहिंसा	६।४।२४	१५०
२४.	आत्म-विश्वास और अहिंसा	११।५।२४	११
२५.	अहिंसा और तिरस्कार का परस्पर-विरोध	१८।५।२४	१२
२६.	हमारे लिए तलवार का रास्ता नहीं है	२५।५।२४	४५९
२७.	हिंसा की लहर	१।६।२४	१५१
२८.	अहिंसा शुभ है	२०।६।२४	५२७
२९.	अहिंसा के प्रतिकूल मोक्ष भी त्याज्य है	२०।७।२४	१२
३०.	विराट अहिंसा-धर्म	२८।९।२४	१२
३१.	अहिंसा का क्षेत्र	९।११।२४	३८३

३२. अहिंसा की प्रतिज्ञा	१६।११।२४	१५६
३३. हिन्दुस्तान का अर्थ	२३।११।२४	५२७
३४. अहिंसा का संकेत	३०।११।२४	५२८
३५. अहिंसा के सिवा कोई धर्म नहीं	३०।११।२४	१४
३६. मेरा स्वप्न	१४।१२।२४	५२८
३७. स्थायी कल्याण असत्य और हिंसा से सम्भव नहीं	१४।१२।२४	१४
३८. अहिंसावादी का धर्म	१६।१२।२४	१४
३९. शुद्ध हेतु से हिंसा	२१।१२।२४	४६०
४०. अहिंसा और सत्य	२६।१२।२४	१५
४१. पागल देश-प्रेम	३१।१२।२४	४६०
४२. मारना कब ठीक है ?	८।१।२५	१५६
४३. मेरा क्षेत्र : अहिंसा	८।१।२५	१५
४४. क्रान्तिकारी से	१२।३।२५	४६२
४५. अहिंसा का मर्म	१९।३।२५	३०१
४६. आत्यन्तिक अहिंसा और जीवन-यापन	१९।३।२५	१६
४७. अहिंसा धर्म	१।४।२५	१९
४८. क्रान्तिकारी और अहिंसा	९।४।२५	४६३
४९. क्रान्तिकारी बनने के उम्मीदवार से	३०।४।२५	४६९
५०. कुछ और	७।५।२५	४७१
५१. ज्ञानयुक्त अहिंसा की महिमा	२१।५।२५	१९
५२. अहिंसा	२५।६।२५	२५
५३. अहिंसा की समस्या	२०।८।२५	२५
५४. मानव मात्र का बन्धुत्व	२७।८।२५	२७
५५. क्या कृषि-कर्म में हिंसा है ?	२४।९।२५	३०३
५६. शास्त्र और अहिंसा	१५।१०।२५	३१
५७. जीव की जीव के प्रति हिंसा	२२।४।२६	३०५
५८. अहिंसा की गुत्थी	१०।६।२६	३०६
५९. अहिंसा ही मानव स्वभाव है	२४।६।२६	३२
६०. मनुष्यता से पहले पशुता	१५।७।२६	३३
६१. क्या अहिंसा की भी कोई सीमा है ?	१२।८।२६	१५८
६२. एकमात्र आधार	१६।९।२६	३६
६३. जीव-हिंसा : अहिंसा की दृष्टि में	१४।१०।२६	३०८
६४. पाशविक शक्ति और अहिंसा	२१।१०।२६	१६२
६५. जीव-दया के प्रसंग में अहिंसा	२१।१०।२६	३११
६६. जीवहिंसा और अहिंसा—१	२८।१०।२६	३१३
६७. जीवहिंसा और अहिंसा—२	४।११।२६	३१६
६८. जीव-हिंसा और अहिंसा—३	११।११।२६	३१९
६९. जीव-हिंसा और अहिंसा—४	१८।११।२६	३२३
७०. जीव-हिंसा और अहिंसा—५	२५।११।२६	३२६
७१. जीव-हिंसा और अहिंसा—६	२।१२।२६	३३०

७२. दु:खनिवारण-हेतु हिंसा और अहिंसा	९।१२।२६	३३२
७३. अहिंसा वैर मिटाती है	सन १९२६	१६२
७४. अहिंसक कर्म की स्वाधीनता	सन १९२६	१६२
७५. स्वदेश के लिए भी अहिंसा न छोड़ूंगा	२०।१।२७	३६
७६. अहिंसा का संग्रह	१६।३।२७	३६
७७. सर्वभूतहितवाद की पीठिका : अहिंसा	१४।४।२७	३३५
७८. सत्य-अहिंसा	२१।४।२७	३७
७९. कायर कभी अहिंसक नहीं बन सकता	१६।६।२७	३७
८०. सनातन प्रश्न	२३।६।२७	३३९
८१. अहिंसा और शस्त्रधारण	१४।७।२७	५२८
८२. अहिंसा की दृष्टि में आत्म-हनन	१।८।२७	५२८
८३. अहिंसा की कुछ पहेलियां	१५।९।२७	१६३
८४. अहिंसा व्यापक धर्म है	१५।९।२७	३७
८५. नैल का पुतला और अहिंसा	२९।९।२७	१६४
८६. अहिंसा में श्रद्धा	२९।९।२७	५२९
८७. हिन्दू धर्म और अहिंसा	२७।१०।२७	५२९
८८. अहिंसा और रचनात्मक कार्य	१०।११।२७	१६७
८९. सत्य और अहिंसा	८।१२।२७	३७
९०. अमोघ अस्त्र : अहिंसा	८।१२।२७	१६८
९१. अहिंसा का अपराध	१५।१२।२७	१६८
९२. अहिंसा लघुत्तम मार्ग	२९।१२।२७	१७४
९३. अहिंसा का मर्म	२९।१२।२७	१७३
९४. अहिंसा सबके लिए शुभकारी	२।२।२८	१७५
९५. अहिंसा की गंगा	९।२।२८	१७५
९६. अहिंसा किताबी सिद्धान्त नहीं है	१।३।२८	१७५
९७. सूक्ष्म अहिंसा	१९।७।२८	३८
९८. कन्दमूल और अहिंसा	६।९।२८	३४२
९९. अहिंसा किसे कहें ?	१३।९।२८	३४२
१००. अहिंसा का अर्थ	२०।९।२८	३४४
१०१. युद्ध के प्रति मेरे भाव	२०।९।२८	३८५
१०२. पावक की ज्वाला—१ (अहिंसक प्राणहरण)	४।१०।२८	३४५
१०३. पावक की ज्वाला—२ (हिंसक प्राणहरण)	४।१०।२८	३४९
१०४. अहिंसा की समस्याएं	११।१०।२८	३५१
१०५. हमारा कर्तव्य	११।१०।२८	१७७
१०६. एक समस्या	१८।१०।२८	३५३
१०७. जैनी अहिंसा	२५।१०।२८	३५५
१०८. शिक्षा में दण्ड और अहिंसा	२५।१०।२८	५२९
१०९. अहिंसा, नीति या धर्म ?	२५।१०।२८	४०
११०. अहिंसा-प्रकरण	१।११।२८	३६०
१११. अहिंसा का अन्वेषण	८।११।२८	४२

११२. एक समस्या	८।११।२८	४१
११३. 'एक युवक हृदय' की शंका	६।१२।२८	३६३
११४. कुछ टीकाएं, जीवदया और अहिंसा	६।१२।२८	३६४
११५. अहिंसा बनाम दया	४।४।२९	४३
११६. बम और छुरी	१८।४।२९	१७८
११७. अहिंसा का मन्त्र	२५।४।२९	१७९
११८. किं धर्म ?	२५।७।२९	३६७
११९. मेरी अपूर्णता	२५।७।२९	३७१
१२०. कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है ?	५।९।२९	३८७
१२१. यज्ञ का अर्थ	१२।९।२९	४५
१२२. शुद्ध अहिंसा में श्रद्धा	१२।९।२९	४५
१२३. शराबबन्दी और अहिंसा	१९।९।२९	५२९
१२४. अहिंसक सैनिक के गुण	१७।१०।२९	५३०
१२५. अहिंसा बनाम कायरता	३१।१०।२९	४६
१२६. अहिंसा पर अटल श्रद्धा	अक्टूबर '२९	४६
१२७. अहिंसा और सत्य ही छोटे से छोटा मार्ग है	१६।१।३०	४७
१२८. भारत के लिए अहिंसा ही श्रेष्ठ है	२३।१।३०	५३०
१२९. अहिंसा मेरा अभिन्न अंश	२३।१।३०	४७
१३०. अहिंसा : मानव स्वभाव	६।२।३०	४७
१३१. अहिंसा की राह	२९।७।३०	४७
१३२. अहिंसक शिक्षा	३०।११।३०	५३१
१३३. शिक्षा का अहिंसक विवेचन	१४।१२।३०	५३१
१३४. हिंसक क्रान्ति और अहिंसा	२।४।३१	४७६
१३५. हिंसक क्रान्ति के प्रति सहज करुणा	९।४।३१	४७७
१३६. हिंसावाद	१९।४।३१	४७७
१३७. क्रान्ति और अहिंसा	३०।४।३१	४८०
१३८. अहिंसा : युक्ति अथवा धर्म ?	७।५।३१	१८१
१३९. अहिंसा और विश्व-जनमत	७।५।३१	३८९
१४०. हिंसा की सामान्य परिभाषा	७।५।३१	४९
१४१. बदले की इकाइयां	१४।५।३१	५०
१४२. अहिंसा : करोड़ों की मुक्ति का साधन	१८।६।३१	५०
१४३. निर्बल की बात मानना अहिंसा है	९।७।३१	१८२
१४४. अहिंसा : शाश्वत सिद्धान्त	९।७।३१	५०
१४५. अहिंसा अथवा नैतिकता का प्रश्न	२३।७।३१	१८२
१४६. हत्या और अहिंसा	३०।७।३१	४८३
१४७. आतंकवादी हत्याएं और अहिंसा	६।८।३१	४८४
१४८. हिंसक और अहिंसक क्रान्ति	१३।८।३१	४८५
१४९. हिंसक और अहिंसक सैनिक	१३।८।३१	५३१
१५०. भारत का भविष्य अहिंसा पर निर्भर है	१३।८।३१	५०
१५१. अहिंसक सेना	१३।८।३१	१८३

१५२. अहिंसक और स्पष्टीकरण	१३।८।३१	५३२
१५३. हिंसक क्रान्तिकारी और अहिंसा	२४।९।३१	४८६
१५४. अहिंसा का लक्षण	१।१०।३१	१८३
१५५. अहिंसा : एक तात्विक विवेचन	१।१०।३१	५०
१५६. अहिंसा पर दृढ आस्था	१९।११।३१	५३
१५७. हिंसा मेरी बाधा	२६।११।३१	१८४
१५८. अहिंसक युद्ध में आत्म-बलिदान	२६।११।३१	१८४
१५९. अराजकता एवं आतंक का परिशोध : अहिंसा	२४।१२।३१	४८७
१६०. अहिंसा : एक स्पष्टीकरण	५।२।३२	५३
१६१. अहिंसक सत्य	२५।२।३२	५३
१६२. राष्ट्र की उन्नति का साधन	८।४।३२	५४
१६३. अहिंसक प्रेम	१७।५।३२	१८५
१६४. अहिंसा और मांसाहार	१२।६।३२	३७४
१६५. पशु-बलि और अहिंसा	३०।६।३२	३७४
१६६. मुक्तिदायिनी अहिंसा	३।७।३२	५४
१६७. समाज की अहिंसक परिकल्पना	६।७।३२	५४
१६८. अहिंसा का अर्थशास्त्र	३०।७।३२	५४
१६९. अहिंसा की जननी नम्रता	३०।७।३२	१८५
१७०. अप्रिय सत्य और अहिंसा	३१।७।३२	५५
१७१. अहिंसक का धर्म	३।८।३२	५५
१७२. यम, नियम और अहिंसा	१४।८।३२	५६
१७३. पशुबलि और अहिंसा	१८।८।३२	३७४
१७४. बालकों को अहिंसा का उपदेश	२४।८।३२	५३२
१७५. शस्त्र-युद्ध की मूर्खता	२८।८।३२	५६
१७६. शरीर का अस्तित्व और अहिंसा	११।९।३२	५६
१७७. अहिंसक प्रवृत्ति	२०।१।३३	१८६
१७८. अहिंसक वाणी	२२।१।३३	५६
१७९. अहिंसा असिधारा	२।२।३३	५७
१८०. गुण्डापन का इलाज	२९।३।३३	१८६
१८१. हिंसा बनाम अहिंसा	१९।४।३३	५७
१८२. अहिंसा की परिभाषा	३।८।३४	१८६
१८३. अहिंसा का सिद्धान्त : व्यक्तिगत अथवा समष्टिगत?	३।८।३४	१८७
१८४. अहिंसा : एक विचार	४।१२।३४	५७
१८५. अहिंसक भारत और सेना	५।४।३५	१८८
१८६. अहिंसा और शस्त्र-शिक्षा	१८।४।३५	५३२
१८७. अनिवार्य हिंसा	२१।६।३५	१८९
१८८. अहिंसा की दृष्टि में साम्यवाद	१३।८।३५	५३३
१८९. आततायी और अहिंसा	१०।९।३५	५३३
१९०. अहिंसा : एक कला	२८।९।३५	५३४
१९१. अहिंसा : परम पुरुषार्थ	जनवरी-फरवरी १९३५	५८

१९२. हिंसा की भूख शान्त करने वाली अहिंसा	जुलाई-अगस्त १९३६	६५
१९३. युद्ध का नहीं, प्रेम का देवता	५।९।३६	५८
१९४. जीवन-धर्म	२६।९।३६	६१
१९५. हिन्दू धर्म की शिक्षा	३।१०।३६	६६
१९६. अहिंसा की गुत्थियां	१७।१०।३६	६७
१९७. अहिंसा किसे कहें ?	१९।१२।३६	७१
१९८. अहिंसा किसे कहें ?	१३।२।३७	१८९
१९९. अहिंसा पर बातचीत	२७।३।३७	१९३
२००. सत्य और अहिंसा का संगठन	८।५।३७	१९८
२०१. बलवान का भूषण क्षमा	२०।२।३८	७३
२०२. साम्प्रदायिक दंगे और अहिंसक सेना	२६।३।३८	१९८
२०३. आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता	२।४।३८	२००
२०४. अहिंसा अथवा हिंसा ?	९।४।३८	२०१
२०५. हमारी टेक	९।४।३८	२०४
२०६. सैनिक बल बनाम नैतिक बल	२३।४।३८	४८८
२०७. विदेशी आदर्शों का आवरण निकाल फेंकिए	३०।४।३८	५३४
२०८. शान्तिवाद और विदेशी आक्रमण	१४।५।३८	३९०
२०९. अहिंसा का अर्थ	२१।५।३८	२०८
२१०. अहिंसा का चमत्कार	२१।५।३८	४८९
२११. शस्त्रप्रेमियों को अहिंसा का उपदेश	२८।५।३८	५३४
२१२. अहिंसा राजनीति अथवा जीवनधर्म	११।६।३८	५३६
२१३. अहिंसा-द्वारा स्थायी शान्ति	१८।६।३८	३९१
२१४. शान्ति-सेना की प्रमुख शर्त—अहिंसा	१८।६।३८	२१०
२१५. अहिंसा : श्रमिकों की एकमात्र सुरक्षा	२५।६।३८	५३७
२१६. अहिंसा और ब्रह्मचर्य	२३।७।३८	७३
२१७. कांग्रेस और हिंसा	१३।८।३८	२११
२१८. प्रवासी भारतीयों की अहिंसा	२०।८।३८	५३९
२१९. अहिंसा और सेना	२७।८।३८	५४०
२२०. शत्रु के प्रति अहिंसात्मक व्यवहार	३।९।३८	२१२
२२१. असन्दिग्ध अहिंसा	३।९।३८	५४०
२२२. अहिंसा की मर्यादा	१७।९।३८	७८
२२३. केवल सत्य-अहिंसा का भक्त हूं	८।१०।३८	७९
२२४. चेकोस्लोवाकिया और अहिंसा का मार्ग	८।१०।३८	३९२
२२५. यदि मैं चेक होता	१५।१०।३८	३९५
२२६. शान्ति-सैनिक की समस्त प्रवृत्तियों का आधार अहिंसा	५।११।३८	२१३
२२७. सीमा पार के आक्रमणकारी और अहिंसा	५।११।३८	४९१
२२८. पठान और अहिंसा	१२।११।३८	५४०
२२९. अहिंसा की कला	१२।११।३८	७९
२३०. अहिंसा या सद्भावना ?	१९।११।३८	७९
२३१. स्वयंपूर्ण और स्वयं शक्तिमान	१९।११।३८	८०

२३२. अहिंसा की महत्ता	१९।११।३८	८१
२३३. अनाचार के प्रतिरोध में अहिंसा	२६।११।३८	५४१
२३४. हिंसक बनाम अहिंसक	२६।११।३८	२१३
२३५. शस्त्र बनाम अहिंसा	२६।११।३८	४९१
२३६. शस्त्र-त्याग और अहिंसा	३।१२।३८	२१५
२३७. विकासवाद और अहिंसा	३।१२।३८	५४२
२३८. हिन्दू-रक्षा में अहिंसा	३।१२।३८	५४३
२३९. अहिंसा में हार नहीं	५।१२।३८	२१५
२४०. दुश्मन के प्रति घृणा नहीं, प्रेम	१०।१२।३८	२१५
२४१. अहिंसा, अद्वितीय शक्ति	१०।१२।३८	८२
२४२. विशुद्ध प्रेम ही अहिंसा है	१०।१२।३८	८३
२४३. यहूदी और अहिंसा	१७।१२।३८	३९७
२४४. हिंसा-अहिंसा दलगत नहीं	१७।१२।३८	५४३
२४५. अहिंसा की कल्पना	२४।१२।३८	२१६
२४६. हिंसा की प्यास बलिदान से बुझेगी	सन १९३८	३९९
२४७. नित्य मंगलकारी अहिंसा	३१।१२।३८	८३
२४८. अहिंसा और अन्तर्राष्ट्रीय मामले—१	७।१।३९	३९९
२४९. अहिंसात्मक शक्ति और सम्मिलित शस्त्र-शक्ति	७।१।३९	५४४
२५०. अमरीकियों को अहिंसा का उपदेश	७।१।३९	४०२
२५१. अहिंसा और अन्तर्राष्ट्रीय मामले—२	१४।१।३९	४०४
२५२. क्या अहिंसा बेकार गई?	१४।१।३९	४०६
२५३. भ्रातृत्व का आधार अहिंसा	२८।१।३९	८३
२५४. हिंसा बनाम अहिंसा	२८।१।३९	४९२
२५५. अहिंसा का आचरण	११।२।३९	२१६
२५६. श्रमहीन भोजन अहिंसा के विरुद्ध है	२५।२।३९	५४४
२५७. शुद्ध अहिंसा का नवीन प्रयोग	१८।३।३९	२१७
२५८. क्या आप शुद्ध अहिंसा का पालन करते हैं?	१३।५।३९	२१७
२५९. अहिंसक युद्ध की सफलता	२०।५।३९	२१८
२६०. तीव्र हिंसा के प्रतिरोध में अहिंसा	२७।५।३९	४०८
२६१. हिंसा और अहिंसा का मार्ग	२७।५।३९	४०९
२६२. अहिंसा का व्यापक रूप	३।६।३९	२२१
२६३. स्वराज्य की प्रथम शर्त : अहिंसा	३।६।३९	८३
२६४. अहिंसात्मक युद्ध	१०।६।३९	८४
२६५. विश्वास की नीति : अहिंसा	१०।६।३९	८४
२६६. अहिंसा का तत्व-दर्शन : विकास के चरण	२४।६।३९	८५
२६७. रक्तहीन क्रान्ति और अहिंसा	१।७।३९	२२२
२६८. मध्यम मार्ग	१।७।३९	८८
२६९. विशुद्ध अहिंसा	१।७।३९	२२४
२७०. अहिंसा बनाम हिंसा	८।७।३९	८९
२७१. अहिंसा और कायरता	१५।७।३९	९३

२७२. मुक्ति का एक मात्र मार्ग : अहिंसा	२६।८।३९	९४
२७३. अहिंसा का पर्याय : विवेक	२।९।३९	५४४
२७४. अहिंसा पर आस्था	९।९।३९	५४५
२७५. महायुद्ध और अहिंसा का दृष्टिकोण	३०।९।३९	४०९
२७६. भारत की सांस्कृतिक परम्परा : अहिंसा	३०।९।३९	४११
२७७. साम्प्रदायिक सद्भावना और अहिंसा	७।१०।३९	५४५
२७८. अधिनायकवाद का प्रतिरोध और अहिंसा	१४।१०।३९	४१२
२७९. विश्वयुद्ध में अहिंसात्मक सहयोग	१४।१०।३९	४१३
२८०. ईसाइयों के लिए अहिंसा	१४।१०।३९	४१४
२८१ शासन-नीति के रूप में अहिंसा	१४।१०।३९	९४
२८२. अहिंसा की तराज़ू पर	२१।१०।३९	२२५
२८३. हृदय में हिंसा, मुँह में अहिंसा	२८।१०।३९	२२५
२८४. अहिंसा का अनुसन्धान	२८।१०।३९	२२६.
२८५. अहिंसा का उपदेश	४।११।३९	५४६
२८६. अहिंसा-धर्म	४।११।३९	९८
२८७. मेरी अहिंसा कायर नहीं वीर बनाती है	४।११।३९	९८
२८८. युद्ध में नैतिक सहयोग और अहिंसा	२१।११।३९	४१५
२८९. सशस्त्र क्रान्ति और अहिंसा	२।१२।३९	९९
२९०. श्रम, खादी और अहिंसा	९।१२।३९	२२६
२९१. अहिंसा के बिना आज़ादी भी नहीं	९।१२।३९	९९
२९२. अहिंसा-मार्ग की विशेषता	१६।१२।३९	१००
२९३. अहिंसा का वास्तविक रूप	३०।१२।३९	२२७
२९४. सिन्ध और वीरों की अहिंसा	६।१।४०	५४९
२९५. अहिंसा श्रद्धा का आधार	१३।१.४०	१००
२९६. अहिंसक भारत	१३।१।४०	५५०
२९७. अहिंसा से ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था सम्भव	२७।१।४०	२२७
२९८. श्रमाधारित अहिंसा	२७।१।४०	५५१
२९९. मानसिक हिंसा बनाम मानसिक अहिंसा	३०।१।४०	१००
३००. बुराई करनेवालों के साथ प्रेम ही अहिंसा है	३।२।४०	१००
३०१. अहिंसा की प्रकृति	२।३।४०	१०१
३०२. अहिंसा व्याख्यातीत है	२।३।४०	१०१
३०३. सच्ची अहिंसा का स्वरूप	९।३।४०	१०२
३०४. अहिंसा और वाद	१६।३।४०	१०२
३०५. अहिंसा की सच्ची परीक्षा	१६।३।४०	२२९
३०६. स्त्रियां और अहिंसात्मक आचरण	१६।३।४०	५५१
३०७. अहिंसक आचरण	१६।३।४०	२२८
३०८. अहिंसा अविनाशी है	१६।३।४०	१०२
३०९. क्रान्तिकारी हत्या पर अहिंसा की प्रतिक्रिया	२३।३।४०	४९३
३१०. अहिंसा प्रतिष्ठायाम वैरत्यागः	२३।३।४०	२२९
३११. विरोधी के प्रति अहिंसा की दृष्टि	६।४।४०	२३१

३१२. क्या सम्पत्ति की हानि करना हिंसा नहीं है?	१३।४।४०	२३२
३१३. मेरी अहिंसा	१३।४।४०	२३२
३१४. अहिंसक समाज की परिकल्पना	२०।४।४०	१०२
३१५. अहिंसा और फांसी की प्रथा	२७।४।४०	५५२
३१६. अहिंसा फिर किस काम की?	४।५।४०	४१६
३१७. आतंक और अहिंसा का आश्वासन	८।६।४०	४९४
३१८. तार्किक चिन्तन और अहिंसा	१५।६।४०	२३३
३१९. अहिंसा : नीति अथवा धर्म?	२९।६।४०	२३४
३२०. अराजकता की स्थिति में क्या किया जाय?	२९।६।४०	४९६
३२१. गिरि-प्रवचन के प्रकाश में अहिंसा	६।७।४०	२३६
३२२. शिक्षक और अहिंसा	६।७।४०	५५४
३२३. अहिंसा और एक मुसलमान भाई की समस्या	६।७।४०	५५२
३२४. अहिंसा का प्रयोग	६।७।४०	५५५
३२५. अहिंसा और घबराहट	६।७।४०	५५५
३२६. मेरी कोई नहीं सुनता	१३।७।४०	२३७
३२७. अहिंसा का प्रयोग	१३।७।४०	२४०
३२८. अहिंसा ही एक साधन है	२०।७।४०	४१८
३२९. खाँ साहब की अहिंसा	२०।७।४०	५५८
३३०. अहिंसा के लिए अलौकिक मनुष्यों की आवश्यकता नहीं	२०।७।४०	५५९
३३१. आप मौत आने से पहिले ही मर गये?	२०।७।४०	५६०
३३२. अहिंसा कैसे सीखी जाय?	२०।७।४०	२४१
३३३. अहिंसा का सर्वोत्तम क्षेत्र	२०।७।४०	२४३
३३४. हिंसा की भावना	२०।७।४०	२४५
३३५. सच्ची अहिंसा	२०।७।४०	१०४
३३६. अहिंसा का मार्ग	२७।७।४०	१०८
३३७. अहिंसा प्रभु का काम	२७।७।४०	११०
३३८. अहिंसा के आधार प्रेम और उदारता	२७।७।४०	२४५
३३९. अहिंसा पर श्रद्धा	३।८।४०	२४८
३४०. इसमें हिंसा है	३।८।४०	२४९
३४१. पाकिस्तान और अहिंसा	३।८।४०	५६०
३४२. पूर्ण अहिंसावादी क्या करें?	१०।८।४०	१११
३४३. अहिंसा असम्भव है?	१०।८।४०	१११
३४४. नाजीवाद का नग्न रूप	१७।८।४०	४१९
३४५. अहिंसक शासन और पुलिस की मर्यादा	२४।८।४०	२५२
३४६. निर्बल बहुमत की रक्षा कैसे हो?	२४।८।४०	५६१
३४७. शूरवीरों की अहिंसा	३१।८।४०	११६
३४८. एक ग़लत तुलना	३१।८।४०	२५५
३४९. अहिंसा की मर्यादा	३१।८।४०	११८
३५०. अहिंसा और राज्य-सञ्चालन	३१।८।४०	२५६
३५१. अहिंसक सेना	३१।८।४०	२५८

३५२. अहिंसा के सम्बन्ध में एक शंका	७।९।४०	५६३
३५३. हिंसा का दावानल कैसे बुझेगा ?	७।९।४०	४२२
३५४ अहिंसा : एक महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१४।९।४०	२६०
३५५ कांग्रेसी अहिंसा	१४।९।४०	५६४
३५६ दंगे के समय अहिंसक आचरण	१४।९।४०	२६४
३५७. गीता क्या अहिंसा सिखाती है ?	१४।९।४०	११९
३५८. अहिंसावादी और धन-सम्पत्ति	१४।९।४०	२६३
३५९. मेरा स्वप्न	२१।९।४०	५६५
३६०. हिंसावादियों से	२१।९।४०	४९७
३६१. क्या उपवास हिंसक नहीं ?	२८।९।४०	२६५
३६२. जगत् की सुरक्षा और अहिंसा	५।१०।४०	४२५
३६३. अहिंसा	२।४।४१	२६६
३६४. संगठित अहिंसा की शक्ति	२४।१२।४१	४२७
३६५. अहिंसा : एक बड़ी कसौटी	१८।१।४२	२६६
३६६. जहां अहिंसा नहीं वहां हिंसा आयेगी	१८।१।४२	५६६
३६७. अहिंसक स्वराज्य की विशेषता	१८।१।४२	२६६
३६८. अपने आप से अहिंसा आरम्भ करो	१८।१।४२	२६७
३६९. अहिंसक सैनिक	१८।१।४२	२६७
३७०. भारतीय संस्कृति और अहिंसा	१।२।४२	५६६
३७१. अहिंसा और सम्पत्ति की रक्षा	१५।२।४२	२६८
३७२. दंगों में अहिंसा	२२।२।४२	२६९
३७३. बलात्कार और हिंसा-अहिंसा	१।३।४२	२७०
३७४. वैयक्तिक गोपालन में हिंसा क्यों ?	१।३।४२	३७५
३७५. अत्याचार के प्रतिरोध में अहिंसक आचरण	२९।३।४२	२७१
३७६. अहिंसा की कसौटी	५।४।४२	४२७
३७७. कांग्रेस स्वयंसेवक और अहिंसा	५।४।४२	५६७
३७८. शुद्ध अहिंसावादी क्या करें ?	५।४।४२	५६८
३७९. अहिंसक प्रतिकार	१२।४।४२	४३१
३८०. युद्ध का अहिंसक प्रतिरोध	१९।४।४२	४३४
३८१. अहिंसा : धर्म या साधन ?	१९।४।४२	१२०
३८२. मेरी श्रद्धा	२६।४।४२	१२१
३८३. कावेबाजी की लड़ाई	२६।४।४२	४३९
३८४. मानव-प्रकृति में विश्वास और अहिंसा	७।६।४२	५६८
३८५. अहिंसा का ध्येय	१४।६।४२	१२१
३८६. मेरे मुट्ठीभर अनुयायी	१४।६।४२	२७४
३८७. हमारे पास केवल अहिंसा का शस्त्र है	१४।६।४२	५६८
३८८. अहिंसा ही मानव की एकमात्र आशा है	२१।६।४२	१२१
३८९. अहिंसा का क्या होगा ?	२१।६।४२	१२३
३९०. अराजकता का भय और अहिंसा	२१।६।४२	१२३
३९१. अराजकता और अहिंसा	२१।६।४२	१२२

३९२. एक चुनौती	२८।६।४२	५६९
३९३. भारत की हिंसक और अहिंसक रक्षा **तथा ब्रिटेन**	१९।७।४२	४४१
३९४. अहिंसा और उपवास	२६।७।४२	१२४
३९५. जपान और भारत : युद्ध और अहिंसा	२६।७।४२	४४४
३९६. नई समाज-व्यवस्था और अहिंसा	२।८।४२	२७४
३९७. अहिंसा अवसरवादिता नहीं	सन् १९४२	४९७
३९८. एक चेतावनी	५।१०।४५	५७१
३९९. तोड़फोड़ की कार्रवाई और अहिंसा	१०।२।४६	४९९
४००. औरतों पर अत्याचार और अहिंसा	१०।२।४६	१२४
४०१. द्वेष को कैसे मोड़ें ?	२४।२।४६	५०४
४०२. हिंसा का समाधान	३।३।४६	५०६
४०३. अराजकता और अहिंसा	३।३।४६	५१०
४०४. अहिंसा का शास्त्र या कर्म ?	३।३।४६	१२५
४०५. अहिंसक संगठन	२।३।४६	२७५
४०६. अहिंसा ही स्वतन्त्रता का एकमात्र साधन है	३।३।४६	५११
४०७. हिंसा का परिणाम	१०।३।४६	४४९
४०८. सही मार्ग	१०।३।४६	२७५
४०९. अहिंसा की शक्ति रामबाण	१९।३।४६	५७२
४१०. मत्स्यभोज में हिंसा-अहिंसा	२४।३।४६	३७५
४११. हिंसक बंगाल : एक प्रतिक्रिया	७।४।४६	५१२
४१२. हिंसा की भयंकरता	७।४।४६	५७२
४१३. अहिंसा-कला का प्रथम पाठ	१४।४।४६	२७६
४१४. अहिंसा के प्रति आज़ाद हिन्द फौज की निष्ठा	१४।४।४६	५१४
४१५. अहिंसा : शूरों का मार्ग	१४।४।४६	१२६
४१६. विनाश नहीं निर्माण में लगें	१४।४।४६	२७७
४१७. अहिंसा और विदेशी आक्रमण	२१।४।४६	५७३
४१८. आज़ाद हिन्द फौज को सन्देश	२१।४।४६	५१६
४१९. अहिंसा की परीक्षा	२८।४।४६	१२७
४२०. हिंसक विस्फोट के समय अहिंसक आचरण	२८।४।४६	२७८
४२१. बन्दरों की शरारत	५।५।४६	३७६
४२२. अपराधी के प्रति व्यवहार	५।५।४६	५७३
४२३. अहिंसक सेवादल	५।५।४६	२७८
४२४. अहिंसा का व्यवहार-पक्ष	१२।५।४६	२८०
४२५. हिंसा कैसे रोकें ?	१९।५।४६	४४९
४२६. अहिंसा, जीव-दया और धर्माधर्म-विवेक	९।६।४६	३७७
४२७. सत्य-अहिंसा और रामनाम	१६।६।४६	५७३
४२८. सत्य अथवा अहिंसा	२३।६।४६	१२७
४२९. अणुबम और अहिंसा	७।७।४६	४५०
४३०. अहिंसा के नाम पर हिंसा	७।७।४६	३७९
४३१. पहिले खुद कूदो	४।८।४६	२८३

४३२. अहिंसक सुरक्षा	१८।८।४६	१२९
४३३. अहिंसक बलिदान और हरजाना	१८।८।४६	५७४
४३४. हिंसक और अहिंसक सुरक्षा	८।९।४६	५१८
४३५. क्या करें ?	१५।९।४६	५७४
४३६. कांग्रेसी मन्त्री और अहिंसा	१५।९।४६	५७७
४३७. क्या यह कायरता नहीं ?	२२।९।४६	२८५
४३८. सत्य-अहिंसा को न छोड़ें	२९।९।४६	५७९
४३९. पश्चिमी जनतन्त्र और अहिंसा	२९।९।४६	१२९
४४०. अराजकता और अहिंसा	६।१०।४६	५८१
४४१. अहिंसा और मतभेद	६।१०।४६	१३०
४४२. अणुबम और अहिंसा	६।१०।४६	४५१
४४३. अहिंसा की नैतिकता	१३।१०।४६	२८६
४४४. हिंसा के तरीके	२७।१०।४६	१३१
४४५. स्त्रियों को अहिंसा का उपदेश	३।११।४६	५८३
४४६. मूक पशुओं के साथ निर्दयता	१०।११।४६	३८०
४४७. श्रद्धा को चुनौती	१७।११।४६	२८६
४४८. युद्ध कैसे समाप्त हो ?	१७।११।४६	४५२
४४९. श्रद्धा का साहस	२४।११।४६	१३१
४५०. मेरी अहिंसा की कसौटी	२।२।४७	१३२
४५१. दुर्बलों बनाम बलवानों की अहिंसा	२।२।४७	१३२
४५२. ट्रस्टीशिप और अहिंसा	१६।२।४७	५८३
४५३. लोकतन्त्र और अहिंसा	२।३।४७	१३३
४५४. यथार्थ स्वतन्त्रता और अहिंसा	२।३।४७	५८४
४५५. हिंसा बनाम अहिंसा	३०।३।४७	१३३
४५६. हिंसा या अहिंसा ?	१।४।४७	२८८
४५७. ज्वालामुखी में भी शान्ति	५।४।४७	१३४
४५८. हिंसा	२०।४।४७	१३५
४५९. धर्मों का तत्व	२७।४।४७	५८५
४६०. खादी, अहिंसा की निशानी	४।५।४७	५८५
४६१. तलवार से शान्ति न होगी	१८।५।४७	१३५
४६२. अहिंसा—जीवन का सत्य	२५।५।४७	५१९
४६३. हिंसा का सामना कैसे किया जाय ?	१।६।४७	२८८
४६४. सत्य एवं अहिंसा की पूजा से ही महात्मा हूं	५।६।४७	५८५
४६५. अहिंसा में दृढ़ विश्वास	८।६।४७	१३५
४६६. अहिंसा चुम्बक है	१५।६।४७	१३६
४६७. क्या अहिंसा व्यर्थ है ?	२२।६।४७	५२१
४६८. हिंसा की दुर्गन्ध में अहिंसा की सुगन्ध	२६।६।४७	५२३
४६९. आज अहिंसा क्यों असफल हो रही है ?	२९।६।४७	२९०
४७०. वीरों की अहिंसा	२९।६।४७	२९१
४७१. अहिंसा	२९।६।४७	२९२

४७२. एकमात्र साधन	२९।६।४७	१३६
४७३. हिंसक समाज	२९।६।४७	५८६
४७४. बहादुरी का यह स्तर	६।७।४७	५८६
४७५. बहादुरों की हिंसा और अहिंसा	१३।७।४७	१३७
४७६. सत्य और अहिंसा : एक सिक्के के दो पहलू	१३।७।४७	१३६
४७७. अहिंसा के साथ ईश्वर है	१३।७।४७	१३६
४७८. भारत का विभाजन और अहिंसा	२०।७।४७	५८६
४७९. निष्क्रिय प्रतिरोध और विष को अमृत करनेवाली अहिंसा	२०।७।४७	२९४
४८०. अहिंसा में सेना की निरर्थकता	२७।७।४७	५८८
४८१. मेरे एवं कांग्रेस के बीच भेद	२७।७।४७	१३८
४८२. अहिंसा का विज्ञान और प्रयोग	७।९।४७	१३९
४८३. सच्ची अहिंसा	८।१०।४७	२९५
४८४. अहिंसा से असत्य नहीं चलाया जा सकता	१२।१०।४७	५८९
४८५. अरण्य-रोदन	२।११।४७	५८९
४८६. थोड़े के लिए बहुत को निराश करना	९।११।४७	५९१
४८७. अहिंसा के पुजारी का हृदय	१६।११।४७	५९२
४८८. मेरी कहां चलती है?	१६।११।४७	५९१
४८९. अहिंसा में पक्का विश्वास	१६।११।४७	२९५
४९०. अहिंसा पर एक सेनापति का आक्षेप	१६।११।४७	५९२
४९१. हिंसा से अधिकार-रक्षा	३०।११।४७	२९७
४९२. मेरे स्वप्न का भारत	१४।१२।४७	५९३
४९३. अहिंसा की मर्यादा	१४।१२।४७	१३९
४९४. कोटि-कोटि के लिए	२१।१२।४७	५९४
४९५. अहिंसा का पालन	४।१।४८	१४१
४९६. अहिंसा कभी व्यर्थ नहीं जाती	११।१।४८	१४१

परिशिष्ट—क

४९७. शस्त्र बनाम आत्मबल	५९७
४९८. विचार-स्वातन्त्र्य का अहिंसक रूप	५९७
४९९. अहिंसा : संसार के लिए भारत का सन्देश	५९७
५००. अहिंसा : एक शाश्वत धर्म	५९८

परिशिष्ट—ख

५०१. दिल्ली प्रस्ताव	५९९
५०२. पूना प्रस्ताव	५९९
५०३. वर्धा प्रस्ताव	६००

परिशिष्ट—ग

५०४. अहिंसा परमो धर्मः	६०३

सत्य

विषयानुसारिणी निर्देशिका

१. सत्य : आत्यन्तिक एवं निरपेक्ष [पृष्ठ ६०९--६२०]

सामान्य क्रम		विषय	रचना अथवा प्रकाशन तिथि	पृष्ठ
१	१	सत्य की शोध में	१७।११।२१	६११
२	२	सत्य क्या है ?	२७।११।२१	६११
३	३	सत्य का बल	१९२४	६१२
४	४	सत्य-मार्ग का पथिक	९।४।२५	६१२
५	५	सत्य रूपी परमेश्वर का शोधक हूं	१९२५	६१२
६	६	सत्य की सत्ता	१९२५	६१३
७	७	ईश्वर का अर्थ	१।१२।२५	६१३
८	८	एक मात्र धर्म	१६।९।२६	६१३
९	९	सत्य की शोध	१५।१२।२७	६१३
१०	१०	सत्य-असत्य	५।४।२८	६१४
११	११	सत्य शाश्वत है	१९।७।२८	६१४
१२	१२	असत्य के मध्य सत्य	११।१०।२८	६१४
१३	१३	सत्य का पूर्ण दर्शन	७।२।२९	६१४
१४	१४	सत्य ही पूजनीय	२२।४।२९	६१५
१५	१५	सत्य ही परमेश्वर है	२२।७।३०	६१५
१६	१६	सत्य बिना शुद्ध ज्ञान नहीं	२२।७।३०	६१५
१७	१७	सत्यनारायण	२९।७।३०	६१५
१८	१८	सत्य और गोपनीयता	३०।१०।३२	६१६
१९	१९	सत्य ही परमेश्वर है	२६।११।३२	६१६
२०	२०	सत्य की पूजा	१२।१२।३२	६१६
२१	२१	सत्यमयता	२९।३।३३	६१७
२२	२२	सत्यशोधक	२०।७।३४	६१७
२३	२३	सत्यव्रती अकेला नहीं	२०।४।३७	६१७
२४	२४	सत्य की क्षमता	२०।४।३७	६१७
२५	२५	ईश्वर का रूप : सत्य	११।३।३८	६१८
२६	२६	सत्य की शोध और आन्तरिक विश्राम	१०।१२।३८	६१८
२७	२७	सत्य अविनाशी है	१६।३।४०	६१८
२८	२८	सत्य का ज्ञान केवल ईश्वर को है	५।१०।४०	६१८
२९	२९	सत्य-शोधक	१५।२।४२	६१८

३०	३०	ईश्वर का पर्यायवाची सत्य	१९।१।४८	६१८
३१	३१	शुद्ध सत्य की शोध	तिथि अज्ञात	६१९
३२	३२	सत्य का अस्तित्व	तिथि अज्ञात	६१९
३३	३३	सत्य का गुणगान	तिथि अज्ञात	६१९

२. सत्य : सिद्धान्त एवं अभिव्यक्ति [पृष्ठ ६२१—६६०]

३४	१	सत्य का प्राच्य आदर्श	१।४।१९०५	६२३
३५	२	सत्य सदैव विजयी होता है	८।२।१९०८	६२९
३६	३	सत्य की विशेषता	२६।१२।१९०८	६३०
३७	४	सत्य में अन्धानुकरण नहीं	२।१।१९०९	६३०
३८	५	स्वावलम्बी सत्य	१४।२।२४	६३०
३९	६	एक मात्र नीति सत्य	१४।१२।२४	६३०
४०	७	सत्य की व्याख्या और उसका पालन	२२।४।२५	६३१
४१	८	सत्यान्वेषक के लिए नम्रता की आवश्यकता	२५।६।२५	६३१
४२	९	प्रिय और अप्रिय सत्य	१७।९।२५	६३१
४३	१०	सत्यवादी का धर्म	२८।१०।२६	६३३
४४	११	सत्यनिष्ठा	१०।२।२७	६३३
४५	१२	सत्य एक है	२१।४।२७	६३३
४६	१३	सत्य का अनुयायी	२५।८।२७	६३५
४७	१४	सत्य ही सर्वोपरि	६।१०।२७	६३५
४८	१५	सत्य का आचरण	३।१०।२९	६३६
४९	१६	सत्य बनाम सत्ता	१९।१०।२९	६३६
५०	१७	सत्य की आराधना ही भक्ति	२२।७।३०	६३८
५१	१८	सत्य का मार्ग	३०।४।३१	६३८
५२	१९	सत्य का स्वर्णयुग	२।७।३१	६३८
५३	२०	सत्य का सूर्य	१६।७।३१	६३८
५४	२१	भारत का भविष्य और सत्य	८।१०।३१	६३८
५५	२२	विद्यार्थियों को सन्देश	५।११।३१	६३९
५६	२३	सत्य का साक्षात्कार	२६।११।३१	६३९
५७	२४	सत्य ही ईश्वर है	३१।१२।३१	६३९
५८	२५	सत्य का आचरण	३१।१२।३१	६४२
५९	२६	सत्य और गोपनीयता	३१।१२।३१	६४३
६०	२७	सत्य ही ईश्वर है	२६।५।३२	६४३
६१	२८	असत्य आचरण	११।९।३२	६४३
६२	२९	सत्य छिपाना आवश्यक हो सकता है	११।९।३२	६४३
६३	३०	सत्य के प्रति आस्था	७।१।३३	६४४
६४	३१	सत्य-पालन का मार्ग	७।१।३३	६४४
६५	३२	सत्य की प्रकृति	८।१।३३	६४४
६६	३३	सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्	२०।२।३३	६४५
६७	३४	सत्य ही धर्म की प्रतिष्ठा है	१७।३।३३	६४५

६८	३५	सत्य की शक्ति	१७।३।३३	६४५
६९	३६	सत्य का अभ्यास	२३।३।३३	६४५
७०	३७	सत्य-शोधकों से	६।४।३४	६४६
७१	३८	सत्य ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ	१०।८।३४	६४६
७२	३९	दोषों का गोपन असत्य है	२४।८।३४	६४६
७३	४०	सत्य छोड़कर रक्षा नहीं	२९।२।३६	६४६
७४	४१	सत्य का सापेक्षिक ज्ञान	१०।८।३६	६४६
७५	४२	लेखन और सत्य	१२।१०।३६	६४७
७६	४३	सत्य आचरण-द्वारा ही व्यक्त होता है	१९।१२।३६	६४७
७७	४४	शाश्वत सत्य	२०।२।३७	६४७
७८	४५	सत्य की शोध	६।३।३७	६४८
७९	४६	प्रवृत्तियों का आधार	१८।३।३८	६४८
८०	४७	सत्य की अपार शक्ति	अक्तूबर '३८	६४८
८१	४८	सत्य-प्राप्ति के साधन	२९।७।३९	६४८
८२	४९	सत्य और असत्य	२३।९।३९	६४९
८३	५०	सत्य का व्यवहार	२८।१०।३९	६४९
८४	५१	सत्य के साथ विकसित हो रहा हूं	२।३।४०	६५०
८५	५२	मैं सत्य का उपासक हूं	६।७।४०	६५०
८६	५३	सत्य और अहिंसा की जय	३१।५।४१	६५०
८७	५४	सत्यनिष्ठा और त्रुटि का सुधार	२८।६।४२	६५०
८८	५५	कष्ट-सहन करके भी सत्य न छोड़ें	१२।७।४२	६५१
८९	५६	सत्य ही ईश्वर है	९।८।४२	६५१
९०	५७	सत्य की अनन्त शक्ति	१०।२।४६	६५१
९१	५८	सत्य अधिक मूल्यवान है	२८।४।४६	६५२
९२	५९	सत्य अदमनीय है	२८।४।४६	६५२
९३	६०	सत्य की प्रकृति	१२।५।४६	६५२
९४	६१	दम्भ का परिहार : सत्य	२।६।४६	६५३
९५	६२	सत्य का पूर्ण ज्ञान	२।६।४६	६५३
९६	६३	सत्य को दोहराना पड़ेगा	७।७।४६	६५३
९७	६४	मैं सत्य-साधक हूं	८।१२।४६	६५४
९८	६५	सत्य से श्रेष्ठ धर्म नहीं	४।४।४७	६५४
९९	६६	एक भूला हुआ सबक	९।६।४७	६५४
१००	६७	सत्य और उसका साक्षात्कार	तिथि अज्ञात	६५४
१०१	६८	सत्य की खोज के साधन	तिथि अज्ञात	६५५
१०२	६९	सत्य	तिथि अज्ञात	६५६
१०३	७०	सत्य और हठवादिता	तिथि अज्ञात	६५७
१०४	७१	नवीन प्रयोग और सत्य	तिथि अज्ञात	६५७
१०५	७२	सत्य के पुजारी का कर्तव्य	तिथि अज्ञात	६५७
१०६	७३	सत्य की विजय	तिथि अज्ञात	६५८
१०७	७४	सत्य की प्रतिज्ञा	संवत् १९७८ तिथि अज्ञात	६५८

१०८	७५	सत्य को वाणी की आवश्यकता नहीं	तिथि अज्ञात	६५८
१०९	७६	सत्य के सम्मुख असत्य की गति नहीं	तिथि अज्ञात	६५९
११०	७७	सत्य अनन्त है	तिथि अज्ञात	६५९
१११	७८	सत्य चिन्तामणि है	तिथि अज्ञात	६५९

३. सत्य : अहिंसा के साथ एवं उसके साध्य रूप में [पृष्ठ ६६१–६७२]

११२	१	सत्य में अहिंसा का समावेश है	१७।३।२३	६६३
११३	२	अहिंसा और सत्य अन्योन्याश्रय हैं	४।६।२५	६६३
११४	३	सत्य और अहिंसा	१५।१०।२५	६६३
११५	४	सत्य और हिंसा का मेल नहीं वैठता	२०।५।२६	६६४
११६	५	सत्य पर अडिग श्रद्धा	१८।११।२६	६६४
११७	६	मेरी नीति	२०।१।२७	६६४
११८	७	सत्यमेव जयते	२७।१०।२७	६६५
११९	८	एक मात्र शरण सत्य और अहिंसा	१३।९।२८	६६५
१२०	९	सत्य की आराधना	२०।९।२८	६६५
१२१	१०	सत्य सर्वव्यापक है	२९।८।२९	६६५
१२२	११	एक मात्र आधार : सत्य-अहिंसा	१६।१।३०	६६५
१२३	१२	सत्य स्वतन्त्र है	१९।८।३०	६६६
१२४	१३	सत्य और अहिंसा का पालन आवश्यक है	१७।९।३२	६६६
१२५	१४	मेरी प्रवृत्तियों का मूल	२१।११।३२	६६६
१२६	१५	प्रमुख उद्देश्य सत्य	२९।२।३६	६६६
१२७	१६	सत्य ही सर्वोपरि	१।५।३७	६६७
१२८	१७	सत्य का संगठन	८।५।३७	६६८
१२९	१८	सत्य का मार्ग तलवार की धार है	२।४।३८	६६९
१३०	१९	सत्य-अहिंसा और भारतीय स्वातन्त्र्य	२७।५।३९	६६९
१३१	२०	सत्य और अहिंसा के उपासक	४।११।३९	६६९
१३२	२१	दो बहुमूल्य सुभाषित	२७।७।४०	६६९
१३३	२२	सत्य की परीक्षा	२५।१२।४६	६६९
१३४	२३	सत्य और अहिंसा	तिथि अज्ञात	६७०
१३५	२४	दो बहुमूल्य वचन	तिथि अज्ञात	६७०
१३६	२५	सत्य मार्ग की कठिनता	तिथि अज्ञात	६७०
१३७	२६	सत्य का दर्शन	तिथि अज्ञात	६७१

४. सत्य : विविध [पष्ठ ६७३—६९०]

१३८	१	सत्य का अन्वेषण	५।११।१९	६७५
१३९	२	सत्य ही साध्य है	१३।११।२४	६७६
१४०	३	सत्य में सौन्दर्य	१३।११।२४	६७६
१४१	४	सत्य मूल है	२०।११।२४	६७७
१४२	५	असत्य अस्थिर है	१६।७।२५	६७७
१४३	६	सत्य और मौन	६।८।२५	६७८

१४४	७	सत्य की आवश्यकता	९।९।२६	६७८
१४५	८	सत्य मार्ग की खोज	७।७।२७	६७८
१४६	९	सत्य का अन्वेषक	६।१०।२७	६७८
१४७	१०	सत्य और असत्य	३।११।२७	६७८
१४८	११	सत्य का आग्रह	१५।१२।२७	६७९
१४९	१२	सत्य और हिन्दू धर्म	२२।१२।२७	६७९
१५०	१३	न्यायालय और सत्य	२९।१२।२७	६७९
१५१	१४	सत्य की महिमा	७।३।२९	६८०
१५२	१५	विश्वशान्ति के लिए महान योगदान	२१।३।२९	६८०
१५३	१६	दो सिद्धान्त	२८।५।३१	६८०
१५४	१७	सत्य की प्रतिज्ञा	२०।८।३१	६८१
१५५	१८	सत्य, अहिंसा और आकुल संसार	११।१०।३१	६८१
१५६	१९	सत्य में गोपनीयता नहीं	२१।१२।३१	६८१
१५७	२०	सैनिक, अहिंसा और सत्य	३१।१२।३१	६८१
१५८	२१	सत्य के पुजारी का स्वभाव	१७।६।३२	६८२
१५९	२२	सत्यार्थी का धर्म	१।५।३३	६८२
१६०	२३	सत्य पर अटल रहें	१६।३।३४	६८२
१६१	२४	मेरा धर्म	३।८।३४	६८२
१६२	२५	असत्य सदा रहेगा	३१।१२।३४	६८३
१६३	२६	सत्य अनिवार्य है	१९।१२।३६	६८३
१६४	२७	स्वराज्य का अनिवार्य अंश	९।१।३७	६८३
१६५	२८	ज्ञान की अनिवार्य कसौटी : सत्य	९।१।३७	६८३
१६६	२९	पातकों का मूल असत्य	२७।२।३७	६८४
१६७	३०	सत्य का पालन बलात् नहीं	२६।२।३८	६८४
१६८	३१	सत्य और असत्य से प्राप्त अधिकार	१८।३।३८	६८४
१६९	३२	यौवन की शर्त	१।४।३८	६८४
१७०	३३	समस्याओं के सन्दर्भ में सत्य	३०।९।३९	६८४
१७१	३४	सत्य का पालन प्रमुख कर्तव्य	२८।१०।३९	६८५
१७२	३५	आज़ादी की शर्त	२८।१०।३९	६८५
१७३	३६	सत्य, अहिंसा और कांग्रेस	११।११।३९	६८५
१७४	३७	क्या भारत में सत्य का अभाव है ?	२०।४।४०	६८५
१७५	३८	सत्य और स्वराज्य	२९।९।४०	६८६
१७६	३९	असत्य का परिहार	८।२।४२	६८६
१७७	४०	सत्य की शक्ति	१०।५।४२	६८६
१७८	४१	असत्य का वातावरण	१७।५।४२	६८६
१७९	४२	सत्य का आग्रह	७।४।४६	६८७
१८०	४३	क्या किसी भी हालत में झूठ बोलना ठीक है ?	९।६।४६	६८७
१८१	४४	मेरी महानता का रहस्य	५।६।४७	६८८
१८२	४५	सनातन सत्य	२१।९।४७	६८८
१८३	४६	नई तालीम और सत्य-अहिंसा	१४।१२।४७	६८८

१८४	४७	शुद्ध सत्य	तिथि अज्ञात	६८९
१८५	४८	झूठ	तिथि अज्ञात	६८९
१८६	४९	सत्य-साधना के लिए मौन की उपयोगिता	तिथि अज्ञात	६८९
१८७	५०	सत्यवादी मितभाषी होता है	तिथि अज्ञात	६८९
१८८	५१	सत्य और अपराध-स्वीकृति	तिथि अज्ञात	६९०

सत्य

कालक्रमानुसारिणी निर्देशिका

क्र० सं०	लेख-शीर्षक	रचना अथवा प्रकाशन तिथि	पृष्ठ
१.	सत्य का प्राच्य आदर्श	१।४।१९०५	६२३
२.	सत्य सदैव विजयी होता है	८।२।१९०८	६२९
३.	सत्य की विशेषता	२६।१२।१९०८	६३०
४.	सत्य में अन्धानुकरण नहीं	२।१।१९०९	६३०
५.	सत्य का अन्वेषण	५।११।१९	६७५
६.	सत्य की शोध में	१७।११।२१	६११
७.	सत्य क्या है?	२७।११।२१	६११
८.	सत्य में अहिंसा का समावेश है	१७।३।२३	६६३
९.	स्वावलम्बी सत्य	१४।२।२४	६३०
१०.	सत्य में सौन्दर्य	१३।११।२४	६७६
११.	सत्य ही साध्य है	१३।११।२४	६७६
१२.	सत्य मूल है	२०।११।२४	६७७
१३.	एक मात्र नीति सत्य	१४।१२।२४	६३०
१४.	सत्य का बल	१९२४	६१२
१५.	सत्य-मार्ग का पथिक	९।४।२५	६१२
१६.	सत्य की व्याख्या और उसका पालन	२२।४।२५	६३१
१७.	अहिंसा और सत्य अन्योन्याश्रय हैं	४।६।२५	६६३
१८.	सत्यान्वेषक के लिए नम्रता की आवश्यकता	२५।६।२५	६३१
१९.	असत्य अस्थिर है	१६।७।२५	६७७
२०.	सत्य और मौन	६।८।२५	६७८
२१.	प्रिय और अप्रिय सत्य	१७।९।२५	६३१
२२.	सत्य और अहिंसा	१५।१०।२५	६६३
२३.	सत्य रूपी परमेश्वर का शोधक हूं	१९२५	६१२
२४.	ईश्वर का अर्थ	१।१२।२५	६१३
२५.	सत्य की सत्ता	१९२५	६१३
२६.	सत्य और अहिंसा का मेल नहीं बैठता	२०।५।२६	६६४
२७.	सत्य की आवश्यकता	९।९।२६	६७८
२८.	एक मात्र धर्म	१६।९।२६	६१३
२९.	सत्यवादी का धर्म	२८।१०।२६	६३३

३०. सत्य पर अडिग श्रद्धा	१८।११।२६	६६४
३१. मेरी नीति	२०।१।२७	६६४
३२. सत्यनिष्ठा	१०।२।२७	६३३
३३. सत्य एक है	२१।४।२७	६३३
३४. सत्य मार्ग की खोज	७।७।२७	६७८
३५. सत्य का अनुयायी	२५।८।२७	६३५
३६. सत्य ही सर्वोपरि	६।१०।२७	६३५
३७. सत्य का अन्वेषक	६।१०।२७	६७८
३८. सत्यमेव जयते	२७।१०।२७	६६५
३९. सत्य और असत्य	३।११।२७	६७८
४०. सत्य का आग्रह	१५।१२।२७	६७९
४१. सत्य की शोध	१५।१२।२७	६१३
४२. सत्य और हिन्दू धर्म	२२।१२।२७	६७९
४३. न्यायालय और सत्य	२९।१२।२७	६७९
४४. सत्य-असत्य	५।४।२८	६१४
४५. सत्य शाश्वत है	१९।७।२८	६१४
४६. एक मात्र शरण सत्य और अहिंसा	१३।९।२८	६६५
४७. सत्य की आराधना	२०।९।२८	६६५
४८. असत्य के मध्य सत्य	११।१०।२८	६१४
४९. सत्य का पूर्ण दर्शन	७।२।२९	६१४
५०. सत्य की महिमा	७।३।२९	६८०
५१. विश्व-शान्ति के लिए महान योगदान	२१।३।२९	६८०
५२. सत्य ही पूजनीय	२२।४।२९	६१५
५३. सत्य सर्वव्यापक है	२९।८।२९	६६५
५४. सत्य का आचरण	३।१०।२९	६३६
५५. सत्य बनाम सत्ता	१९।१०।२९	६३६
५६. एक मात्र आधार : सत्य-अहिंसा	१६।१।३०	६६५
५७. सत्य ही परमेश्वर है	२२।७।३०	६१५
५८. सत्य बिना शुद्ध ज्ञान नहीं	२२।७।३०	६१५
५९. सत्य की आराधना ही भक्ति	२२।७।३०	६३८
६०. सत्यनारायण	२९।७।३०	६१५
६१. सत्य स्वतन्त्र है	१९।८।३०	६६६
६२. सत्य का मार्ग	३०।४।३१	६३८
६३. दो सिद्धान्त	२८।५।३१	६८०
६४. सत्य का स्वर्णयुग	२।७।३१	६३८
६५. सत्य का सूर्य	१६।७।३१	६३८
६६. सत्य की प्रतिज्ञा	२०।८।३१	६८१
६७. सत्य-अहिंसा और आकुल संसार	१।१०।३१	६८१
६८. भारत का भविष्य और सत्य	८।१०।३१	६३८
६९. विद्यार्थियों को सन्देश	५।११।३१	६३९

७०. सत्य का साक्षात्कार २६।११।३१ ६३९
७१. सत्य में गोपनीयता नहीं २।१२।३१ ६८१
७२. सत्य ही ईश्वर है ३।१२।३१ ६३९
७३. सत्य का आचरण ३।१२।३१ ६४२
७४. सत्य और गोपनीयता ३।१२।३१ ६४३
७५. सैनिक, अहिंसा और सत्य ३।१२।३१ ६८१
७६. सत्य ही ईश्वर है २६।५।३२ ६४३
७७. सत्य के पुजारी का स्वभाव १७।६।३२ ६८२
७८. सत्य छिपाना आवश्यक हो सकता है ११।९।३२ ६४३
७९. असत्य आचरण ११।९।३२ ६४३
८०. सत्य और अहिंसा का पालन आवश्यक है १७।९।३२ ६६६
८१. सत्य और गोपनीयता ३०।१०।३२ ६१६
८२. मेरी प्रवृत्तियों का मूल २१।११।३२ ६६६
८३. सत्य ही परमेश्वर है २६।११।३२ ६१६
८४. सत्य की पूजा १२।१२।३२ ६१६
८५. सत्य के प्रति आस्था ७।१।३३ ६४४
८६. सत्य-पालन का मार्ग ७।१।३३ ६४४
८७. सत्य की प्रकृति ८।१।३३ ६४४
८८. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् २०।२।३३ ६४५
८९. सत्य ही धर्म की प्रतिष्ठा है १७।३।३३ ६४५
९०. सत्य की शक्ति १७।३।३३ ६४५
९१. सत्य का अभ्यास २३।३।३३ ६४५
९२. सत्यमयता २९।३।३३ ६१७
९३. सत्यार्थी का धर्म १।५।३३ ६८२
९४. सत्य पर अटल रहें १६।३।३४ ६८२
९५. सत्यशोधकों से ६।४।३४ ६४६
९६. सत्य-शोधक २०।७।३४ ६१७
९७. मेरा धर्म ३।८।३४ ६८२
९८. सत्य ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ १०।८।३४ ६४६
९९. दोषों का गोपन असत्य है २४।८।३४ ६४६
१००. असत्य सदा रहेगा ३१।१२।३४ ६८३
१०१. प्रमुख उद्देश्य सत्य २९।२।३६ ६६६
१०२. सत्य छोड़ कर रक्षा नहीं २९।२।३६ ६४६
१०३. सत्य का सापेक्षिक ज्ञान १०।८।३६ ६४६
१०४. लेखन और सत्य १२।१०।३६ ६४७
१०५. सत्य अनिवार्य है १९।१२।३६ ६८३
१०६. सत्य-आचरण द्वारा ही व्यक्त होता है १९।१२।३६ ६४७
१०७. स्वराज्य का अनिवार्य अंश ९।१।३७ ६८३
१०८. ज्ञान की अनिवार्य कसौटी : सत्य ९।१।३७ ६८३
१०९. शाश्वत सत्य २०।२।३७ ६४७

११०. पातकों का मूल असत्य	२७।२।३७	६८४
१११. सत्य की शोध	६।३।३७	६४८
११२. सत्यव्रती अकेला नहीं	२०।४।३७	६१७
११३. सत्य की क्षमता	२०।४।३७	६१७
११४. सत्य ही सर्वोपरि	१।५।३७	६६७
११५. सत्य का संगठन	८।५।३७	६६८
११६. सत्य का पालन बलात् नहीं	२६।२।३८	६८४
११७. ईश्वर का रूप : सत्य	११।३।३८	६१८
११८. प्रवृत्तियों का आधार	१८।३।३८	६४८
११९. सत्य और असत्य से प्राप्त अधिकार	१८।३।३८	६८४
१२०. यौवन की शर्तें	१।४।३८	६८४
१२१. सत्य का मार्ग तलवार की धार है	२।४।३८	६६९
१२२. सत्य की अपार शक्ति	अक्तूबर '३८	६४८
१२३. सत्य की शोध और आन्तरिक विश्राम	१०।१२।३८	६१८
१२४. सत्य-अहिंसा और भारतीय स्वातन्त्र्य	२७।५।३९	६६९
१२५. सत्य-प्राप्ति के साधन	२९।७।३९	६४८
१२६. सत्य और असत्य	२३।९।३९	६४९
१२७. समस्याओं के सन्दर्भ में सत्य	३०।९।३९	६८४
१२८. सत्य का पालन प्रमुख कर्त्तव्य	२८।१०।३९	६८५
१२९. आजादी की शर्त्त	२८।१०।३९	६८५
१३०. सत्य का व्यवहार	२८।१०।३९	६४९
१३१. सत्य और अहिंसा के उपासक	४।११।३९	६६९
१३२. सत्य, अहिंसा और कांग्रेस	११।११।३९	६८५
१३३. सत्य के साथ विकसित हो रहा हूं	२।३।४०	६५०
१३४. सत्य अविनाशी है	१६।३।४०	६१८
१३५. क्या भारत में सत्य का अभाव है?	२०।४।४०	६८५
१३६. मैं सत्य का उपासक हूं	६।७।४०	६५०
१३७. दो बहुमूल्य सुभाषित	२७।७।४०	६६९
१३८. सत्य और स्वराज्य	२९।९।४०	६८६
१३९. सत्य का ज्ञान केवल ईश्वर को है	५।१०।४०	६१८
१४०. सत्य और अहिंसा की जय	३१।५।४१	६५०
१४१. असत्य का परिहार	८।२।४२	६८६
१४२. सत्यशोधक	१५।२।४२	६१८
१४३. सत्य की शक्ति	१०।५।४२	६८६
१४४. असत्य का वातावरण	१७।५।४२	६८६
१४५. सत्यनिष्ठा और त्रुटि का सुधार	२८।६।४२	६५०
१४६. कष्ट सहन करके भी सत्य न छोड़ें	१२।७।४२	६५१
१४७. सत्य ही ईश्वर है	९।८।४२	६५१
१४८. सत्य की अनन्त शक्ति	१०।२।४६	६५१
१४९. सत्य का आग्रह	७।४।४६	६८७

१५०. सत्य अधिक मूल्यवान है	२८।४।४६	६५२
१५१. सत्य अदमनीय है	२८।४।४६	६५२
१५२. सत्य की प्रकृति	१२।५।४६	६५२
१५३. दम्भ का परिहार : सत्य	२।६।४६	६५३
१५४. सत्य का पूर्ण ज्ञान	२।६।४६	६५३
१५५. क्या किसी भी हालत में झूठ बोलना ठीक है?	९।६।४६	६८७
१५६. सत्य को दोहराना पड़ेगा	७।७।४६.	६५३
१५७. मैं सत्य-साधक हूं	८।१२।४६	६५४
१५८. सत्य की परीक्षा	२५।१२।४६	६६९
१५९. सत्य से श्रेष्ठ धर्म नहीं है	४।४।४७	६५४
१६०. मेरी महानता का रहस्य	५।६।४७	६८८
१६१. एक भूला हुआ सबक़	९।६।४७	६५४
१६२. सनातन सत्य	२१।९।४७	६८८
१६३. नई तालीम और सत्य-अहिंसा	१४।१२।४७	६८८
१६४. ईश्वर का पर्यायवाची सत्य	१९।१।४८	६१८

परिशिष्ट : तिथि-विहीन लेख

१६५. शुद्ध सत्य	६८९
१६६. सत्य के सम्मुख असत्य की गति नहीं	६५९
१६७. झूठ	६८९
१६८. सत्य का दर्शन	६७१
१६९. सत्य का गुणगान	६१९
१७०. सत्य की विजय	६५८
१७१. सत्य को वाणी की आवश्यकता नहीं	६५८
१७२. सत्य का अस्तित्व	६१९
१७३. सत्य की प्रतिज्ञा	६५८
१७४. शुद्ध सत्य की शोध	६१९
१७५. सत्य अनन्त है	६५९
१७६. सत्य और अहिंसा	६७०
१७७. नवीन प्रयोग और सत्य	६५७
१७८. सत्य-साधना के लिए मौन की उपयोगिता	६८९
१७९. सत्य चिन्तामणि है	६५९
१८०. सत्यवादी मितभाषी होता है	६८९
१८१. सत्य और अपराध-स्वीकृति	६९०
१८२. सत्य और हठवादिता	६५७
१८३. सत्य और उसका साक्षात्कार	६५४
१८४. सत्य की खोज के साधन	६५५
१८५. सत्य	६५६
१८६. दो बहुमूल्य वचन	६७६
१८७. सत्य मार्ग की कठिनता	६७०
१८८. सत्य के पुजारी का कर्तव्य	६५७



हिं

सा



[१]

• अहिंसा •
सिद्धान्त और भाष्य

१. अहिंसा का भाव

[सन १९०९ में जर्मिस्टन (ट्रांसवाल) की लिटरेरी एण्ड डिबेटिंग सोसायटी में यूरोपियन श्रोताओं के समक्ष गांधी जी ने एक भाषण दिया था। उक्त भाषण का एक अंश यों है।—संपा०]

'......दुष्टता का विरोध मत कर' का यही अर्थ है कि दुष्टता के बदले दुष्टता न की जाय, बल्कि भलाई की जाय। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि शारीरिक बल का विरोध शारीरिक बल से नहीं, बल्कि आत्मबल से किया जाय। भारतीय दर्शनों में भी अहिंसा शब्द से इसी भाव का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य करने से शारीरिक कष्ट उसी को पहुँचता है, जो वह कार्य करता है।......

—१९०९ ई०। 'महात्मा गांधी' खण्ड २, पृष्ठ ५७। गा० हि० पु० भंडार, बम्बई; पौष १९७८ : १९२१ ई०]

२. तलवार से विनाश

......जो तलवार उठाता है, उसकी मृत्यु तलवार से ही होती है। कहावत है कि तैरनेवाले की मृत्यु पानी में ही होती है।

—२७।७।'१६। 'महात्मा गांधी' खण्ड २, पृष्ठ १४१ : गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार, बम्बई; पौष १९७८]

३. अहिंसा की प्रतिज्ञा

[मद्रास के वाई० एम० सी० ए० व्याख्यान भवन में माननीय जी० पिटेनड्रिग के सभापतित्व में एक उत्सव हुआ। इसमें गांधी जी ने विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए उन नियमों की व्याख्या की, जो आश्रम-जीवन में प्रविष्ट होने वाले व्यक्तियों के लिए आवश्यक हैं। सन् १९१६ में दिये गये इस व्याख्यान के आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।—संपा०]

दूसरा नियम है अहिंसा की प्रतिज्ञा करना, जिसका अर्थ है किसी की हिंसा या हत्या न करना। मेरे लिए इसका बहुत बड़ा अर्थ है और मुझे उस स्थिति की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च स्थिति में ले जाता है जिस स्थिति में मैं केवल यह समझ-कर पहुँच सकता था कि अहिंसा का अर्थ केवल किसी की हत्या न करना ही है। अहिंसा का वास्तविक अर्थ यह है कि तुम किसी मनुष्य का चित्त मत दुखाओ और जो मनुष्य तुम्हें अपना शत्रु समझता हो उसके विषय में भी अपने हृदय में कभी कोई बुरा भाव न रखो। जो मनुष्य अहिंसा के सिद्धान्त पर चलता है उसका कोई शत्र रह ही नहीं जाता। इस नियम में व्यवस्थित हत्या के लिए कोई स्थान ही नहीं है, और न खुले आम किसी के प्राण लेने का स्थान है। और अपने देश के लिए और यहां तक कि अपने अधीनस्थ लोगों की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए भी किसी प्रकार का उपद्रव या बल-प्रयोग करने का स्थान नहीं है। अहिंसा का यह सिद्धान्त हमें सिखलाता है कि जो लोग हमारे अधीन हैं उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा हम अपने आपको उन लोगों के हाथ में देकर कर सकते हैं जो उस प्रतिष्ठा पर आक्रमण करने का अनुचित कृत्य करते हैं। इसके लिए मारपीट करने से कहीं अधिक शारीरिक और मानसिक साहस की आवश्यकता होती है। आप में किसी अंश तक शारीरिक बल हो सकता है—मैं उसे साहस नहीं कह सकता—और आप उस बल का प्रयोग कर सकते हैं, पर जब वह बल खर्च हो जाता है तब क्या होता है? क्रोध और आवेश में मनुष्य पागल हो जाता है और उसके बल के विरुद्ध आप अपने बल का प्रयोग करके उसे और भी पागल कर देते हैं। जब वह आपको मृत्यु तक पहुँचा देता है तब उसके बचे हुए बल का प्रयोग उस काम के विरुद्ध होता है जिसके लिए आप लड़ते हैं। अस्तु जब आप स्वयं बल-प्रयोग करके उसके बल-प्रयोग का बदला नहीं चुकाते, बल्कि उसके आघात सहने के लिए अपने स्थान पर अपने विरोधी तथा अपने पक्ष की बात के मध्य में खड़े या अड़े रहते हैं तब क्या होता है? उस समय के लिए मैं आपको वचन देता हूँ कि उसका सारा बल-प्रयोग आप पर खत्म हो जायगा और आपका पक्ष या काम अछूता और पवित्र बच रहेगा।

—'महात्मा गांधी' खण्ड २]

● **जो मनुष्य अहिंसा के सिद्धान्त पर चलता है उसका कोई शत्रु रह ही नहीं जाता।**

४. अहिंसा

[लाला लाजपत राय के लेख[1] के उत्तर में अक्टूबर १९१६ के माडर्न-रिव्यू[2] में महात्मा गांधी ने जो लेख छपाया उसका आशय।—संपा०]

अहिंसा के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा था यदि उसका ज्ञान लाला लाजपत राय ने पहिले प्राप्त कर लिया होता तो उन्हें वह टीका प्रकाशित कराने की आवश्यकता न पड़ती, जो उन्होंने 'माडर्न रिव्यू' के गत जुलाई मास के अंक में प्रकाशित कराई है। लाला जी का यह प्रश्न करना बहुत ही ठीक है कि जो बातें मेरी कही हुई बतलाई जाती हैं वे वास्तव में मेरी कही हुई हैं या नहीं। वह कहते हैं कि यदि वे बातें मेरी कही हुई न हों तो मुझे उनका खण्डन करना चाहिए। पहिली बात तो यह है कि मैंने अभी तक वे समाचारपत्र ही नहीं देखे हैं जिनमें मेरी कही हुई बातें अथवा उन पर की हुई टीकाएं प्रकाशित हुई हैं। और दूसरी बात यह है कि मेरे व्याख्यानों के सम्बन्ध में समाचारपत्रों में प्रकाशित होनेवाली रिपोर्टों में जो भूलें हो जायं उन सबका मैं खण्डन नहीं कर सकता। लाला जी का लेख बहुत से गुजराती समाचारपत्रों तथा दूसरे सामयिक पत्रों में उद्धृत या अनुवाद किया गया है, अतः मुझे भी अपने पक्ष की बातें स्पष्ट रूप से बतला देनी चाहिएं। लालाजी का उचित आदर करते हुए मुझे उस स्थान से विवाद आरम्भ करना चाहिए जहां कि वह यह कहते हैं कि अहिंसा के सिद्धान्त को बहुत सीमा तक पहुँचा देने के कारण ही भारत का अधःपतन हुआ है। इस बात का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है कि जब से हम अहिंसा-धर्म का बहुत अधिक पालन करने लग गये हैं तभी से हमारे अनेक मानव-गुणों का भी नाश हो गया है। गत १५०० वर्षों से एक जाति की हैसियत से हम अपने शारीरिक बल और साहस के अनेक प्रमाण देते आये हैं, पर वास्तव में बात यह है कि हम लोग अपने घर के मतभेद आदि के कारण निर्बल हो गये हैं और देश-प्रेम के बदले स्वार्थ ने ही हम लोगों पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया है। तात्पर्य यह है कि हम लोगों की दुर्दशा धर्म के कारण नहीं, बल्कि अधर्म या धर्माभाव के कारण ही हुई है।

मैं नहीं जानता कि जैनों पर नामर्दी का जो अभियोग लगाया जाता है वह कहां तक ठीक है। और न मैं जैनों की ओर से किसी से कैफ़ियत ही तलब कर सकता हूँ। मैं जन्मतः वैष्णव हूं और बाल्यावस्था से ही मुझे अहिंसा की शिक्षा

१. देखिए परिशिष्ट में लाला लाजपत राय का लेख 'अहिंसा परमोधर्मः'।
२. कलकत्ता से प्रकाशित प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक पत्र।

दी गई है। जिस प्रकार मैंने संसार के दूसरे बड़े-बड़े धर्मों के ग्रन्थों से बहुत कुछ लाभ उठाया है उसी प्रकार जैन धर्म के ग्रन्थों से भी बहुत-सी अच्छी बातें सीखी हैं। स्वर्गीय दार्शनिक राजचन्द्र कवि की संगति से, जो जन्मतः जैन थे, मैंने बहुत-कुछ सीखा है। इस प्रकार यद्यपि अहिंसा-सम्बन्धी मेरे विचार संसार के अधिकांश धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन का परिणाम है तथापि अब वह अहिंसा-सम्बन्धी सिद्धान्त इन्हीं धर्म-ग्रन्थों पर निर्भर नहीं रह गया है। इस सम्बन्ध में मेरे जो विचार हैं वे मेरे जीवन का एक अंग हो गये हैं और यदि सहसा मुझे इस बात का पता लग जाय कि जिन धर्म-ग्रन्थों को मैंने पढ़ा है वास्तव में उनका वह अभिप्राय नहीं है जो कि मैंने समझा है, बल्कि कुछ और ही है तो भी अहिंसा के सम्बन्ध में मेरे वे ही विचार बने रहेंगे जिन्हें मैं यहां प्रकट करता हूं।

हमारे शास्त्रों में यह बतलाया गया है कि जो मनुष्य अहिंसा धर्म का पूरा-पूरा पालन करता है उसके चरणों पर सारा संसार आ गिरता है। आसपास के जीवों पर उसका ऐसा प्रभाव पड़ता है कि सांप और दूसरे जहरीले जानवर भी उसे कोई हानि नहीं पहुंचाते। कहते हैं कि एसिसी के संत फ्रान्सिस को भी इस बात का अनुभव हुआ था।

अहिंसा का धर्म्म जिस रूप में कामों का वर्जन करता है उस रूप में उसका अभिप्राय यह होता है कि अपने शरीर अथवा मन से किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचाया जाय। अतः यह अहिंसा किसी अनुचित कर्म करने वाले को कोई कष्ट नहीं पहुंचाती और न इस धर्म का पालक अपने मन में उस अनुचित कर्म करने वाले व्यक्ति के प्रति कोई दूषित भाव रखकर उसे किसी प्रकार का मानसिक कष्ट ही पहुंचाता है। अनुचित कर्म करने वाले मनुष्य को अपने मन के स्वाभाविक कार्यों या भावों आदि के कारण स्वयं जो मानसिक कष्ट पहुंचता है और जिसकी सृष्टि अहिंसक के दूषित भाव से नहीं होती, उसका समावेश इस कथन या व्याख्या के अन्तर्गत नहीं हो सकता। अतः यदि कोई मनुष्य हमारी समझ में किसी बालक को मार डालना चाहता हो और हम उस बालक को उसके सामने से खींच लें तो उसमें अहिंसा धर्म-बाधक नहीं होता। वास्तव में यदि हम किसी प्रकार उस बालक के रक्षक हों तो अहिंसा-धर्म यही कहेगा कि वह बालक जिसे वह व्यक्ति मार डालना चाहता है, उसके सामने से हटा लिया जाय। इसीलिए दक्षिण-अफ्रीका की यूनियन सरकार लोगों पर जो अत्याचार करना चाहती थी उसका विरोध करने के लिए लोगों का सत्याग्रह करना बहुत ही उचित था। वे लोग अपने मन में यूनियन सरकार के प्रति कोई दूषित भाव नहीं रखते थे, और जब कभी गवर्नमेण्ट को उन लोगों की सहायता की आवश्यकता पड़ती थी तब वे लोग उसकी सहायता

करके यह बात प्रमाणित कर देते थे। उनका विरोध केवल यही था कि वे सरकार के हाथों मर जाना तक स्वीकार करते थे, परन्तु उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करते थे। अहिंसा का तात्पर्य यही है कि स्वयं कष्ट उठाये जायं, पर जिस व्यक्ति के विषय में हम समझते हों कि यह कोई अनुचित कर्म करता या करना चाहता है उसे किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचाया जाय।

जिस रूप में अहिंसा-धर्म विधान करता है उस रूप में उसका तात्पर्य यह है कि जहां तक हो सके लोगों के साथ प्रेम-पूर्ण व्यवहार किया जाय और यथासम्भव उनको लाभ पहुंचाया जाय। यदि मैं अहिंसा धर्म का पालक हूं तो मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने शत्रु से भी प्रेम करूं। किसी अनुचित कर्म करनेवाले व्यक्ति के साथ, चाहे वह मेरा शत्रु हो और चाहे अपरिचित, मुझे वही व्यवहार करना चाहिए जो कि मैं अनुचित कर्म करने वाले पिता अथवा पुत्र के साथ करूं। इस रूप में इसमें सत्य और निर्भयता का भी अवश्यमेव अन्तर्भाव होता है। जिसके साथ मनुष्य प्रेम करता है उसे न तो वह धोखा देता है न उससे भयभीत होता है और न स्वयं ही उसे भयभीत करता है। जीवन-दान सब दानों से बढ़कर है। जो मनुष्य वास्तव में जीवन-दान करता है वह सब प्रकार की शत्रुता का नाश कर देता है। वह परस्पर उत्तम विचारों और भावों के लिए मार्ग तैयार कर देता है। पर जो मनुष्य स्वयं ही भयभीत हो, वह दूसरों को जीवन-दान क्या देगा ? अतः उसे स्वयं भी निर्भय होना चाहिए। इस दशा में यह कभी सम्भव नहीं है कि मनुष्य अहिंसा धर्म का पालन भी करता रहे और साथ ही कायर भी बना रहे। अहिंसा के लिए सबसे अधिक साहस की आवश्यकता होती है। वीर या योद्धा में जितने गुण होते हैं उनमें यही सबसे अधिक वीरतापूर्ण गुण है। एक प्रसिद्ध मूर्त्ति में दिखलाया गया है कि जनरल गार्डन के हाथ में केवल छड़ी रखने की भी आवश्यकता पड़े तो समझना चाहिए कि उसमें वीरता की भी उसी सीमा तक कमी है। सच्चा वीर वही है जो मरना जानता हो और गोलियों की वर्षा में भी अपने स्थान पर दृढ़तापूर्वक खड़ा रहे। राजा अम्बरीष ऐसे ही वीर थे। वह अपने स्थान पर बराबर खड़े रहे और यद्यपि दुर्वासा ने जो कुछ बुरे से बुरा करना चाहा वह सब कुछ कर डाला, तथापि उन्होंने उंगली तक न उठाई। जो मूर लोग अल्ला-अल्ला कहते हुए फ्रांसीसी गोलन्दाजों और तोपों तक पहुंच गये थे उन्होंने भी बहुत कुछ इसी प्रकार का साहस दिखलाया था। अन्तर केवल यही था कि मूर लोगों का साहस निराशा-जन्य था और अम्बरीष का प्रेम-जन्य। फिर भी मूरों ने मरने के लिए तैयार होकर जो वीरता दिखलाई थी उसने गोलन्दाजों को परास्त कर दिया। टोपियां हाथ में लेकर हवा में हिलाईं और अपने शत्रुओं का मित्रों के समान स्वागत

किया। दक्षिण अफ्रीका के हजारों सत्याग्रही भी इसी प्रकार मरने के लिए तैयार हो गये थे, पर उन्होंने अपने थोड़े से शारीरिक सुख के लिए अपनी इज्जत बेचना मंजूर नहीं किया। यहां अहिंसा अपने विधायक रूप में थी। वह प्रतिष्ठा कभी नहीं गंवाती। यदि कोई असहाय बालिका अहिंसा-धर्म के पालक के हाथ में पड़ जाय तो उसकी अधिक और निश्चित रक्षा होगी, पर यदि वही बालिका किसी ऐसे आदमी के हाथ में पड़ जाय जो कि वहीं तक उसकी रक्षा करने के लिए तैयार हो जहां तक कि उसके शस्त्र उसकी सहायता करें तो उस बालिका की उतनी अधिक और निश्चित रक्षा नहीं होगी। यदि बालिका अहिंसक के हाथ में हो तो अत्याचारी को उस बालिका तक पहुंचने के पहिले उसके रक्षक की लाश पर पैर रखना पड़ेगा। लेकिन यदि वह बालिका किसी शस्त्रधारी के हाथ पड़ जाय तो वह वहीं तक लड़-कर शान्त हो जायगा जहां तक कि उसका शारीरिक बल बना रहेगा। पहिली अवस्था में अत्याचारी के शरीर के मुकाबले में रक्षक अपनी आत्मा तक भिड़ा देता है जिससे सम्भव है कि अत्याचारी की आत्मा भी जाग्रत हो उठे। और उस दशा में उस बालिका की प्रतिष्ठा की रक्षा की, और सब परिस्थितियों की अपेक्षा—हां उस समय की बात अवश्य दूसरी है जब कि वह स्वयं अपने व्यक्तिगत साहस से अपनी रक्षा करती हो—सबसे अधिक सम्भावना है।

अगर आज लोगों में मर्दानगी नहीं है तो उसका कारण यह नहीं है कि हम लोग दूसरों को आघात पहुंचाना नहीं जानते। बल्कि उसका कारण यह है कि हम लोग मरने से डरते हैं। जो मनुष्य मरने से डरता हो, जो किसी प्रकार के वास्तविक अथवा अनुमानित भय के कारण भाग जाता हो और सदा यही चाहता हो कि जो मनुष्य हानि पहुंचाना चाहता है उसका नाश कोई और मनुष्य करके वह भय दूर कर दे, वह जैन-धर्म के आचार्य महावीर, बुद्ध अथवा वेदों का सच्चा अनुयायी नहीं है। जो मनुष्य व्यापार में धोखा देकर किसी को पूरी तरह से नष्ट कर देता हो, अथवा जो शस्त्रों की सहायता से किसी कसाई के हाथ से कुछ गौओं की रक्षा करता हो, अथवा जो यह समझ कर कि मैं अपने देश का उपकार कर रहा हूं, कुछ अफसरों को मार डालने में संकोच न करता हो वह अहिंसा-धर्म का अनुयायी नहीं है। ऐसे लोग घृणा, कायरता और भय के कारण कार्य में प्रवृत्त होते हैं। उनमें गो-रक्षा या देश-सेवा का भाव तो व्यर्थ-सा होता है। और जो कुछ वे करते हैं वह शेखी अथवा उद्विग्न आत्मा को शान्त करने के लिए करते हैं।

मेरी तुच्छ सम्मति तो यह है कि यदि अहिंसा का ठीक-ठीक तात्पर्य समझ लिया जाय तो वह सब प्रकार के सांसारिक दोषों के लिए रामबाण का काम देती है। अहिंसा की सीमा का उल्लंघन कभी हो ही नहीं सकता। इस समय हम लोग

अहिंसा का कुछ भी पालन नहीं करते। अहिंसा दूसरे गुणों का नाश नहीं करती, वल्कि उन्हें कार्यरूप में परिणित करने के लिए पूर्णतः आवश्यक कर देती है। महावीर, बुद्ध और टाल्सटाय सब योद्धा थे। उन लोगों ने अपने काम का वहुत ही गहन और सच्चा स्वरूप देख लिया था, और एक सच्चे, प्रसन्न, प्रतिष्ठित और दैवी जीवन का रहस्य जान लिया था। हम लोगों को भी इन शिक्षकों के साथ मिल जाना चाहिए और तव हमारा देश फिर एक बार देवताओं का निवास-स्थान हो जायगा।

- **जो मनुष्य अहिंसा-धर्म का पूरा-पूरा पालन करता है, उसके चरणों पर सारा संसार आ गिरता है।**
- **जीवनदान सब दानों से बढ़कर है।**
- **अहिंसा के लिए सब से अधिक साहस की आवश्यकता होती है।**
- **अहिंसा दूसरे गुणों का नाश नहीं करती।**

५. हमारी सभ्यता और अहिंसा

[इन्दौर-स्थित दत्त मन्दिर के विशाल मैदान में गांधी जी ने एक महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। इसके आवश्यक अंश संकलित किये जा रहे हैं:—संपा०]

......जब तक संसार चलता रहेगा, तब तक कौरवों और पांडवों का यद्ध भी चलता रहेगा। प्रायः समस्त धर्म-ग्रन्थों में लिखा है कि दानव और देवताओं का युद्ध सदा चलता रहेगा। प्रश्न यह है कि हम अपनी तैयारी किस तरह करें। मैं आप लोगों से यह कहने आया हूँ कि आप अपनी सभ्यता पर विश्वास करें और उस पर दृढ़ रहें। ऐसा करने से हिन्दुस्तान सारे संसार पर अपना प्रभाव स्थापित कर लेगा।....

यरोप की सभ्यता आसुरी है, यह हम देख रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आधुनिक दारुण युद्ध है। यह इतना भीषण है कि महाभारत का संग्राम इसके सामने कोई चीज़ नहीं। हमें इससे सावधान रहना चाहिए और स्मरण रखना चाहिए कि हमारे महर्षियों ने हमें अचल और अखण्डित तत्व दे रखे हैं कि हमारी समस्त प्रवृत्ति दैवी होनी चाहिए और उसका मूल धर्म में होना चाहिए। हमें उसी का पालन करना चाहिए।....

......सत्य और अहिंसा हमारे ध्येय हैं। 'अहिंसा परमोधर्मः' से बड़ी शोध संसार में अन्य नहीं है। हम जब तक संसार के व्यवहार में स्थित हैं—जब तक हमारी आत्मा का व्यवहार शरीर के साथ रहता है, तब तक हमसे कुछ न कुछ

हिंसा होती ही रहती है। किन्तु जिस हिंसा को हम छोड़ सकते हैं, उसको हमें छोड़ देना चाहिए। जिस धर्म में जितनी ही कम हिंसा है, समझना चाहिए कि उस धर्म में सत्य उतना ही अधिक है। हम यदि भारत का उद्धार कर सकते हैं, तो सत्य और अहिंसा द्वारा ही कर सकते हैं।.....विवेक के विरुद्ध जाना धृष्टता है। चाहे राज्य का मंत्री हो या उससे भी बड़ा आदमी, सत्य और अपने हृदय की बात कहने में तनिक भी संकोच न करो। हर एक के साथ सत्य और अहिंसा का व्यवहार करो।

प्रेम एक ऐसी बूटी है जो कट्टर शत्रु को भी मित्र बना देती है। यह बूटी अहिंसा से प्रकट होती है। सुषुप्ति अवस्था में जिस का नाम अहिंसा है, जागरित अवस्था में वही प्रेम है। प्रेम से द्वेष नष्ट हो जाता है। मुसलमान हो या अंग्रेज़, हमें सभी के साथ प्रेम करना चाहिए।......हमें प्रेम से ही कार्य करना चाहिए और इसी से हमें सफलता मिलेगी। जब तक हमारी श्रद्धा सत्य, प्रेम और अहिंसा पर अचल न होगी, तब तक हम उन्नति नहीं कर सकते।......सत्य और प्रेम को कदापि न छोड़िए। शत्रु और मित्र के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार कीजिए।

—३०।३।'१८ : 'महात्मा गांधी' खण्ड २, पृष्ठ २३०, २३१, २३२]

६. हिंसा के दोष

......अधीरता का स्वाभाविक परिणाम उन्माद है और उन्माद से हिंसा तथा अशान्ति का होना साधारण बात है। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि मेरे साथ का प्रत्येक व्यक्ति यह समझ ले कि हिंसा आत्महत्या के समान है।.....

—यं० इं० १९।३।'१९]

७. दो अदम्य शक्तियां

सत्य के साथ अहिंसा को मिलाकर आप संसार की प्रबलतम शक्ति का दमन कर सकते हैं।

—यं० इं० १०।३।'२०]

८. अहिंसा पर अविचल श्रद्धा

......मैं जिस अर्थ और भाव में अहिंसा शब्द को पहिले ग्रहण करता था, उसी में अब भी ग्रहण करता हूं। मेरी धारणा है कि जब ईश्वर ने मनुष्य को निर्माण करने की शक्ति नहीं दी है तो उसे छोटे से छोटे जीव के नाश का अधिकार कहां से हो सकता है? जो महापुरुष सब का निर्माता है, जो प्राणदान कर सकता है, उसी को मारने तथा उस प्राण के संहार का भी अधिकार है। अहिंसा शब्द का मेरी दृष्टि में यह अर्थ निकलता है कि केवल घृणा के भाव से दूर रहना ही अहिंसा नहीं है बल्कि अहिंसा शब्द के सम्पूर्ण अर्थ को चरितार्थ करने के लिए हमें प्रेम का प्रसार करना चाहिए और अपने प्रति अनीति एवं पापाचरण करने वाले के साथ भी नेकी तथा दया का व्यवहार करना चाहिए। किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं कि बुराई करने वाले के बुरे आचरण में हम उसकी सहायता करें अथवा उसकी बुराई को चुपचाप सहन करते जायं। इसके प्रतिकूल अहिंसाजनित प्रेम तो यही कहता है कि आपको पापी के साथ सहयोग नहीं करना चाहिए, उसके साथ सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए चाहे इसके कारण उसको हानि पहुंचे अथवा किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट हो।......

—यं० इं० २५।८।'२० 'असहयोग का धार्मिक तत्व' लेख का अंश।]

९. हिंसा और अहिंसा

......लेकिन अहिंसा किसे कहें, इसका निर्णय करने में प्रायः कठिनाई का अनुभव होता है। हिंसामय जगत् में अहिंसामय बनकर रहना है। वह तो सत्य पर दृढ़ रहने से ही हो सकता है। इसलिए मैं तो सत्य में से अहिंसा को फलित कर सकता हूं।......

—जमनालाल बजाज को लिखे गये पत्र से। १६।३।'२२]

१०. आत्म-विश्वास और अहिंसा

आत्म-विश्वास सच्चा तब कहा जायगा जब वह निराशा के समय भी अचल रहे। सत्य और अहिंसा में मेरा विश्वास हो तो मैं नाजुक समय में भी उनका पालन करूंगा।

—मणिबहन पटेल को लिखे गये पत्र से। ११।५।'२४]

११. अहिंसा और तिरस्कार का परस्पर-विरोध

अहिंसा के भी नियम हैं। जो अहिंसक है, वह तिरस्कार करने से अथवा तिरस्कार उत्पन्न करने से इन्कार करता है। अहिंसा और तिरस्कार स्वभावतः ही परस्पर-विरोधी हैं।

—यं० इं०। हि० न० जी० १८।५।'२४]

१२. अहिंसा के प्रतिकूल मोक्ष भी त्याज्य है

......अपने मोक्ष के सिवा और किसी चीज का मैं पक्षपाती नहीं बन सकता हूं, परन्तु यदि मोक्ष सत्य और अहिंसा के प्रतिकूल हो तो मुझे मोक्ष भी त्याज्य है।......

—श्री घनश्यामदास बिड़ला को लिखे गये पत्र से। (गांधी जी की छत्रछाया में) २०।७।'२४]

१३. विराट अहिंसा-धर्म

[१९२४ में देश में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बहुत बढ़ गया था। अनेक स्थानों पर दंगे हुए; भाई ने भाई का खून बहाया। असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद गांधी जी चर्खा-खादी के ग्रहण, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, इन तीनों बातों पर बहुत ज्यादा जोर दे रहे थे परन्तु वह जितना ही जोर देते थे, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य उतना ही दूर चला जा रहा था। लगता था, मानों नियति के हाथ हम विवश हो विनाश की धारा में बहे जा रहे हों। कोई यत्न, कोई उपदेश कारगर न होता था। हारकर गांधी जी ने ईश्वर की देहरी पर गुहार लगाई। उन्होंने २१ दिन के उपवास की घोषणा करते हुए कहा—'इन दिनों देश में जो दुर्घटनाएं हो रही हैं वे मेरे लिए असह्य हो गई हैं और इनके बीच मेरी असहाय अवस्था तो मुझे और असह्य हो रही है।...मेरा धर्म मुझसे कहता है कि जब कष्ट असह्य हो जाय तब उपवास और प्रार्थना करनी चाहिए।...इसीलिए मैं उपवास प्रारम्भ कर रहा हूं। इस उपवास काल में गुजराती 'नवजीवन' के पाठकों के नाम एक पत्र उन्होंने प्रकाशित कराया था। इस पत्र के कुछ अंश अहिंसा की उनकी विराट कल्पना पर प्रकाश डालते हैं। इसलिए यहां वे संकलित कर दिये गये हैं।—संपा०]

मैंने तो पुकार-पुकारकर कहा है कि अहिंसा क्षमा-वीर का लक्षण है। जिसे मरने की शक्ति है वही मारने से अपने को रोक सकता है। कहीं मेरे लेखों से तुम भीरुता को अहिंसा मान लो या अपने लोगों की रक्षा करने के धर्म को खो बैठो तो? तो मेरी अधोगति हुए बिना न रहे। मैंने कितनी ही बार लिखा है और कहा है कि कायरता कभी धर्म नहीं हो सकती। संसार में तलवार के लिए जगह ज़रूर है। कायर का तो क्षय ही हो सकता है। और उसका क्षय उचित भी है। किन्तु मैंने तो यह दिखाने का यत्न किया है कि तलवार चलानेवाले का भी क्षय ही होगा। तलवार से मनुष्य किसको बचावेगा और किसको मारेगा? आत्मबल के सामने तलवार का बल तृणवत् है। अहिंसा आत्मा का बल है। तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है। जो इस बात को न समझ सके उसे तो तलवार हाथ में लेकर भी अपने आश्रितों की रक्षा अवश्य करनी चाहिए।

ऐसा अनमोल अहिंसा-धर्म मैं शब्दों के द्वारा प्रकट नहीं कर सकता। स्वयं पालन करके ही उसका पालन कराया जा सकता है। इससे इस समय मैं उसका पालन कर रहा हूं। अपने मन्दिर तोड़नेवाले मुसलमान को भी मैं तलवार से न मारूंगा। उस पर मैं क्रोध भी न करूंगा। उसे भी मैं केवल प्रेम के द्वारा जीतूंगा।

मैंने लिखा है कि हिन्दुस्तान में यदि एक ही शुद्ध प्रेमी पैदा हो जाय तो वह स्वधर्म की रक्षा कर सकता है। मैं चाहता हूं कि ऐसा बनूं।......

मैं जानता हूं कि मेरे अन्दर बहुत प्रेम है। परन्तु प्रेम की तो सीमा ही नहीं होती। मैं यह जानता हूं कि मेरा प्रेम असीम नहीं है। मैं साँप के साथ कहां खेल सकता हूं? जो अहिंसामूर्त्ति हो उसके सामने साँप भी ठण्डा हो जाता है। मुझे इसपर पूर्ण विश्वास है।

—दिल्ली, क्वार बदी ११, बुधवार, १९२४। न० जी०। हि० न० जी० २८।९।१९२४]

- **मैंने तो पुकार-पुकार कर कहा है कि अहिंसा वीर का लक्षण है।**
- **कायरता कभी धर्म नहीं हो सकती।**
- **आत्मबल के सामने तलवार का बल तृणवत् है।**
- **अहिंसा आत्मा का बल है।**
- **तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है।**

१४. अहिंसा के सिवा कोई धर्म नहीं

मुझे तो अहिंसा के सिवाय दूसरा कुछ नहीं दिखाई देता, अहिंसा के पालन के सिवा कोई धर्म नहीं दिखाई देता। मुझे विश्वास है कि अहिंसा की सदा जय होती है। जिस दिन मुझे यह प्रतीति हो जायगी कि अहिंसा निष्फल है उस दिन मेरे लिए मृत्यु ही एक विरामस्थान होगा।

—मूल गुजराती। न० जी०। हि० न० जी० ३०।११।'२४ सर्वदल परिषद, बम्बई पर श्री महादेव देसाई-लिखित लेख से]

१५. स्थायी कल्याण असत्य और हिंसा से सम्भव नहीं

बोल्शेविज्म को मैं अभी तक ठीक-ठीक नहीं समझ सका हूँ; इसका अध्ययन भी नहीं कर सका हूं। मैं यह भी नहीं कह सकता कि रूस के लिए अन्त में यह लाभकारक होगा या नहीं। तो भी इतना अवश्य जानता हुं कि जहां तक इसका आधार हिंसा और ईश्वर-विमुखता पर है, वह मुझे अपने से दूर ही हटाता है। मैं यह नहीं मानता कि हिंसात्मक लघुपथों से सफलता मिलती है। जो बोल्शेविक मित्र इस समय मेरी हरकत पर ध्यान दे रहे हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि मैं ऊंचे उद्देश्यों की चाहे जैसी प्रशंसा करूं और उनके साथ सहानुभूति दिखलाऊं, किन्तु श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ कार्य के लिए मैं हिंसात्मक पद्धति अपनाने का अटल विरोधी हूं। अतएव हिंसावादियों से मेरे मिलाप की कोई गुंजाइश नहीं है। इतना होने पर भी मेरा अहिंसाधर्म न केवल रोकता नहीं, बल्कि अराजकों एवं अन्य सभी हिंसावादियों के सम्पर्क रखने के लिए विवश करता है। किन्तु यह संसर्ग केवल इसी आशय से है कि मैं उन्हें उस राह से बचाऊं जो मुझे गलत दिखाई देती है, क्योंकि मुझे अपने अनुभव से यह विश्वास हो गया है कि स्थायी कल्याण असत्य और हिंसा का फल कभी हो ही नहीं सकता।

—यं० इं०। हि० न० जी० १४।१२।'२४]

१६. अहिंसावादी का धर्म

अहिंसावादी का धर्म है इतना त्याग कर देना कि फिर कुछ त्यागना बाकी न रहे। इसी से मैं अन्तिम सीढ़ी पर जाकर बैठ गया हूं। मुझे इस सीमा तक त्याग करना चाहिए जिससे प्रतिपक्षी को अनुभव हो कि अब तो हद हो गई। यहां तक

कि वह त्याग से स्तम्भित हो जाय। यह मेरा पहिला अनुभव नहीं। देने का धर्म ही यह कहता है कि इतना दो, इतना दे डालो कि खानेवाला खा-खाकर अघा जाय।
—५ नवम्बर १९२४ को कलकत्ता में अपरिवर्त्तनवादी कांग्रेस-कर्मियों से बातें करते हुए। मूल न० जी०। हि० न० जी० १६।१२।'२४ में प्रकाशित श्री महादेव भाई के लेख से]

१७. अहिंसा और सत्य

अहिंसा वह ज्योति है जिसके द्वारा मुझे सत्य का दर्शन होता है। मेरे निकट स्वराज्य उसी सत्य का एक अंग है।
—बेलगांव कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण से। हि० न० जी० २६।१२।'२४]

१८. मेरा क्षेत्र : अहिंसा

मेरा क्षेत्र निर्मित हो गया है। वह मुझे प्रिय भी है। मैं अहिंसा के मंत्र पर मुग्ध हो गया हूं। मेरे लिए वह पारसमणि है। मैं जानता हूं कि दुखी हिन्दुस्तान को अहिंसा का मन्त्र ही शान्ति दिला सकता है। मेरी दृष्टि में अहिंसा का मार्ग कायर या नामर्द का मार्ग नहीं है। अहिंसा क्षत्रिय-धर्म की परिसीमा है। क्योंकि उसमें अभय की सोलहों कलाएं पूर्णतः खिल उठती हैं। अहिंसा-धर्म के पालन में पलायन या हार के लिए स्थान ही नहीं है। वह आत्मा का धर्म है, इसलिए दुःसाध्य नहीं। जो समझता है, उसमें यह (धर्म) सहज ही स्फुरित होता है। मुझे विश्वास है कि भारतभूमि को इसके सिवाय दूसरा धर्म अनुकूल नहीं आयेगा। चरखा भारत-भूमि के लिए इस अहिंसा-धर्म का निशान है क्योंकि वही दुखियों का सहारा है; वही कंगाल की कामधेनु है। प्रेमधर्म में न देश की मर्यादा है, न काल की। इसी से मेरा स्वराज्य भंगी, चमार, पासी, बलाई और दीन से दीन लोगों का ख्याल रखता है।.....
—हि० न० जी० ८।१।'२५ । काठियावाड़ राजनीतिक परिषद् के अध्यक्षीय भाषण से।]

- **मेरे लिए वह (अहिंसा) पारसमणि है।**
- **अहिंसा क्षत्रिय-धर्म की परिसीमा है।**
- **उसमें अभय की सोलहों कलाएँ पूर्णतः खिल उठती हैं।**
- **चरखा भारतभूमि के लिए अहिंसा-धर्म का निशान है।**

१९. आत्यन्तिक अहिंसा और जीवन-यापन

['यंग इण्डिया' में स्व० सी० एफ० एण्डरूज़ का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसे पढ़ कर एक पाठक के मन में अहिंसा-विषयक कितने ही प्रश्न उठ खड़े हुए। उन्होंने श्री एण्डरूज़ को लिखकर उनका समाधान चाहा। श्री एण्डरूज़ ने वह पत्र गांधी जी को भेज दिया। नीचे वह पत्र और गांधी जी का उत्तर दिया जा रहा है।—संपा०]

"मेरा जन्म और लालन-पालन देहात में हुआ है। मेरे पिता 'अहिंसा परमो धर्मः' का उच्चार अपने मित्रों के साथ धार्मिक वाद-विवाद के समय किया करते थे। जैसा कि आपने कहा है यह अद्वैत तत्व से फलित होनेवाला उसका सहायक तत्व है। सार रूप में मैं इसे स्वीकार करता हूं। इसके साथ मैं यह भी कहना चाहता हूं कि अद्वैतम् की परिसमाप्ति आध्यात्मिक जीवन की एकता में ही नहीं हो जाती। जैसा कि आप भी मानते हुए दिखाई देते हैं, अखिल विश्व के प्रति बिना किसी अपवाद के आत्मभाव ही अद्वैतम् है।

"ज्यों ही मनुष्य अहिंसा को अपना मार्गदर्शन बनाने की अवस्था में पहुंच जाता है त्योंही उसकी प्रगति निश्चित हो जाती है। उस अवस्था में समस्त भेद-भाव विलीन हो जाते हैं। जब हम सबमें एकता का अनभव करने लगते हैं तब हम किसी भी वस्तु का, जो हमारा ही एक अंग है, संहार किस तरह कर सकते हैं; यही सन्देह होने लगता है। क्या अहिंसाभाव को व्यवहार में ठेठ उसके अन्त तक निबाहना होगा? यदि ऐसा करना पड़े तो क्या उस अवस्था में वह एक सद्गुण रह जायगा?

"मेरे पिता 'अहिंसा परमोधर्मः' का उच्चारण जब-तब किया करते थे। परन्तु जब हमारे घर की भैंस दूध देते समय एक स्थान पर खड़ी न रहती तब उसे डंडों की मार से सीधी कर देते थे। अपने बच्चों के दूध के लिए क्या उनका ऐसा करना उचित था?

"हिन्दू लोग राम के अवतार को धर्म का अवतार कहते हैं। राम ने रावण को मारा था। क्या राम ने यह बुरा किया? राम ने बालि का वध किया। जब बालि ने उसका विरोध किया तब उन्होंने उत्तर दिया:—

अनुजबधू, भगिनी, सुत-नारी
सुनु सठ ये कन्या-सम चारी।
इन्हें कुदृष्टि बिलोकै जोई।
ताहि बधे कछु पाप न होई।।

"देखिए, यहाँ उन्हीं धर्म के अवतार के मुँह में 'हन्ते को हनिए, पाप-दोस ना गनिए' का सिद्धान्त ठूंसा गया है।

"और नीचे उतरकर हम भगवान कृष्ण के समय में आयें। भगवद्गीता को लीजिए। अर्जुन अपने सगे-सम्बन्धियों का वध करने को तैयार नहीं होता। भगवान कृष्ण उसे युद्ध करके उनका नाश करने का आग्रह करते हैं और अहिंसा-सिद्धान्त पीछे छिप जाता है।

"ऐसी अवस्था में यह पूछना पड़ता है कि अहिंसा के आचार की कोई मर्यादा भी है? एक स्त्री पर अत्याचार हो रहा है। क्या उसे उस नराधम को मारकर उसके पंजे से अपने को छुड़ाना उचित नहीं है? क्या उसे अहिंसा का पालन करना चाहिए?

"मछली पकड़ना हिंसा है। शाक के लिए वनस्पतियों को उखाड़ना हिंसा है। जन्तु-नाशक द्रव्य पानी में डालना हिंसा है। अब बताइए, दुनिया में कैसे रहें?

—एक ब्राह्मण।"

गांधीजी का उत्तर

यदि लेखक के पिता ने उस अनिच्छुक भैंस को न दुहा होता तो दुनिया की कुछ हानि न हुई होती। तुलसीदास ने राम के मुँह में कितनी ही बातें डाली हैं जिनका मतलब मैं नहीं समझता। बालि-सम्बन्धी सारा प्रसंग ही ऐसा है। तुलसीदास-द्वारा राम के मुँह से कहलाई इन पंक्तियों के शब्दार्थ के अनुसार चलने से यदि कोई फाँसी पर न चढ़ेगा तो भारी मुसीबत में ज़रूर फँस जायगा। रामायण और महाभारत में हर महान् व्यक्ति के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है सबको मैं शब्दशः नहीं ग्रहण करता हूं और न मैं इन ग्रन्थों को ऐतिहासिक संग्रह मानता हूं। उनमें भिन्न-भिन्न रूपों में आवश्यक सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है। और न मैं राम तथा कृष्ण को अस्खलनशील—कभी गलती न करने वाला—मानता हूं, जैसा कि दोनों महाकाव्यों में उनका पवित्र चित्रण मिलता है। वे अपने-अपने युग के विचारों और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते हैं। केवल अस्खलनशील व्यक्ति ही अस्खलनशील पुरुषों के चरित्र का यथार्थ चित्रण कर सकता है। ऐसी अवस्था में उनका आशय मात्र हमारे लिए पथ-प्रदर्शक का काम दे सकता है। उनके अक्षर-अक्षर का अनुकरण करने से हमारा दम घुटने लगेगा और सब तरह की उन्नति रुक जायगी। जहाँ तक गीता से सम्बन्ध है, मैं उसे कोई ऐतिहासिक संवाद नहीं मानता। आध्यात्मिक सिद्धान्त समझाने के लिए उसमें भौतिक उदाहरण दिये गये हैं। चचेरे भाइयों के बीच हुए युद्ध का नहीं बल्कि मनुष्य की सत-प्रवृत्ति और असत्

प्रवृत्ति में होनेवाले युद्ध का वर्णन उसमें है। मैं एक ब्राह्मण महाशय से कहता हूं कि वे इन उदाहरणों को छोड़कर अहिंसा के सिद्धान्त का पर्यालोचन करें। 'अहिंसा परमोधर्मः' जीवन का एक उच्चतम सिद्धान्त है। यदि हम उसके पालन से तनिक भी च्युत हों तो उसे हमारा पतन समझना चाहिए। भूमिति की सरल रेखा काले तख्ते पर चाहे न खींची जा सकती हो परन्तु उस कार्य की असम्भवता के कारण उसकी व्याख्या बदली नहीं जा सकती।

यदि इस कसौटी पर कसें तो एक पौधे को उखाड़ना भी बुरा है। किसी सुन्दर गुलाब के फूल को तोड़ते हुए किसे वेदना नहीं होती? घास-पात को तोड़ते समय हमें वेदना नहीं होती, इससे क्या सिद्धान्त में कोई बाधा पड़ सकती है? इससे तो यही सूचित होता है कि हमें पता नहीं है कि प्रकृति में घास-पात का क्या स्थान है? अतः किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाना अहिंसा सिद्धान्त का उल्लंघन करना है। अहिंसा के पूर्ण पालन की अवस्था में अवश्य ही जीवन की स्थिति असम्भव हो जाती है। अतएव हम सब मर जायं तो पर्वा नहीं, सत्य को कायम रहने देना चाहिए। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने इस सिद्धान्त को अन्तिम मर्यादा तक पहुँचा दिया है और कह दिया है कि भौतिक जीवन एक दोष है, एक जंजाल है। मोक्ष देहादि के परे की ऐसी अदेह—सूक्ष्म—अवस्था है, जहां न खाना है, न पीना और इसीलिए जहाँ न दूध दुहने की आवश्यकता है और न घास-पात तक तोड़ने की। सम्भव है, इस तत्व को समझना या ग्रहण करना कठिन हो; सम्भव है कि पूर्णतः उसके अनुकूल जीवन व्यतीत करना असम्भव हो, और है भी। फिर भी मुझको इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि सत्य यही है और इसलिए भलाई इसी बात में है कि हम अपने जीवन को अपनी पूरी शक्ति भर उसके अनकूल बनावें। यथार्थ ज्ञान का हो जाना मानो आधी लड़ाई जीत लेना है। इस भव्य सिद्धान्त का हम जितना ही पालन अपने जीवन में करते हैं उतना ही वह जीवन रहने और प्रेम करने लायक होता है। क्योंकि उस अवस्था में सदा स्वयं शरीर के वश में रहने की जगह हम अपने शरीर को अपने वश में रखते हैं।

—हि० न० जी०, १९।३।'२५]

- **अहिंसा के पूर्ण पालन की अवस्था में जीवन की स्थिति असम्भव हो जाती है।**
- **मोक्ष देहादि के परे ऐसी अदेह—सूक्ष्म—अवस्था है, जहां न खाना है, न पीना।**

२०. अहिंसा धर्म

अहिंसा धर्म कितना कठिन है! चाहे किसी काम में हों परन्तु हमें सावधान रहना चाहिए। हमारी बातें सुनने वाले या हमें देखने वाले के हृदय में प्रवेश करने का प्रयत्न प्रतिक्षण होना चाहिए। अहिंसा-धर्म का पालन करनेवाले के लिए समय क्या चीज है? सुविधा कौन वस्तु है? सुविधा हो या न हो, समय हो या न हो अहिंसावादी तो दास है, सेवक है, सेवा के लिए वह संसार के हाथ बिक चुका है।

—न० जी०, हि० न० जी० १।४।'२५]

२१. ज्ञानयुक्त अहिंसा की महिमा

[अहिंसा के सम्बन्ध में जन-मानस में जो भ्रम एवं शंकाएं थीं उनको लेकर लोग गांधी जी से प्रश्न करते ही रहते थे। समय-समय पर उन्होंने इन प्रश्नों के जो उत्तर दिये हैं उनमें अहिंसा का रूप स्पष्ट होता गया है। ऐसा ही एक प्रश्नोत्तरात्मक लेख यहां दिया जा रहा है। यह हि० न० जी० में 'किनारे पर' शीर्षक से निकला था, जो स्पष्टता के लिए यहां वर्तमान शीर्षक में बदल दिया गया है। —संपा०]

एक पत्रलेखक कुछ प्रश्न पूछकर अन्त में लिखते हैं:—

"मैं आशा करता हूं कि आप इन विषयों पर प्रकाश डालने की कृपा करेंगे और जब तक मैं वाही-तबाही न पूछने लगूँ, मेरे साथ चर्चा जारी रखेंगे। मैं आपका अनुयायी हूं; आपके नेतृत्व में जेल जा चुका हूं। जब मैं आपके बहुत निकट था और बहुत अवसर भी था तब भी मैंने आपसे कोई बातचीत नहीं की क्योंकि मैं आपका समय बर्बाद करना नहीं चाहता था।...परन्तु अब आपके युक्तिवाद और राजनीतिक विचारों से मेरा विश्वास हिल रहा है। मैं कोई क्रान्तिवादी नहीं हूं किन्तु मैं उसके किनारे पर हूं। यदि आप इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देंगे तो मुझे बचा लेंगे।"

अब मैं क्रमशः उसके सवालों को लेता हूं—

प्रश्न—अहिंसा क्या है? चित्त की एक वृत्ति है या प्राण-नाश न करना है? यदि यह दूसरी बात हो तो क्या यह सम्भवनीय है कि हम इसके अन्त तक जाकर इसका पालन कर सकें, क्योंकि हम अपने भोजनादि में नित्य असंख्य प्राणियों की हिंसा करते हैं और उस अवस्था में हम वनस्पति को भी नहीं छू सकते।

उत्तर—अहिंसा चित्त की एक वृत्ति भी है और तज्जात कर्म भी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वनस्पति में भी प्राण है, परन्तु वनस्पति का उपयोग किये बिना हम नहीं रह सकते। यह जीव के नाश से तो किसी तरह कम नहीं है। केवल उसे क्षम्य मानना चाहिए।

प्रश्न—यदि हम जीव-हिंसा से बच नहीं सकते, तो इसके यह अर्थ नहीं कि हम बिना आगा-पीछा सोचे उसे करते ही रहें। परन्तु उस हालत में, आवश्यकता सिद्ध होने पर, सिद्धान्त की दृष्टि से उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती। कार्य-साधकता की दृष्टि से भले ही आक्षेपार्ह हो।

उत्तर—ऐसे अवसर पर भी जहां हिंसा की आवश्यकता सिद्ध होती हो सिद्धान्त की दृष्टि से हिंसा का समर्थन नहीं कर सकते। कार्य-साधकता की ही दृष्टि से उसका बचाव किया जा सकता है।

प्रश्न—यदि अहिंसा का अर्थ है प्राण का नाश न करना, तो फिर किसी व्यक्ति को अपने प्राण देने के लिए किस तरह कह सकते हैं?—ऐसे काम के लिए भी जो चाहे कितना ही पवित्र और धार्मिक हो? क्या वह खुद उसकी अपने प्रति हिंसा न होगी?

उत्तर—हाँ, मैं किसी आदमी से बराबर यह कह सकता हूं कि किसी काम के लिए अपनी जान दे दो, परन्तु अपने को हिंसा का दोषी न बनाओ। क्योंकि अहिंसा का अर्थ है—औरों को कष्ट न देना।

प्रश्न—अपने प्राण से प्यार करना मनुष्य-स्वभाव है। जबकि एक आदमी अपने देश या समाज की आवश्यकता के लिए अपनी जान देता है तो आवश्यकता पड़ने पर वह औरों के प्राणों की बलि क्यों नहीं दे सकता? हमें केवल यही सिद्ध करना होगा कि उसकी आवश्यकता थी, सो यह भी कार्य-साधकता का ही सवाल है।

उत्तर—जो अपने प्राणों से मोह करेगा वह उसे खोयेगा; जो अपना प्राण गँवायेगा वह उसे पायेगा। आवश्यकता के हेतु से दूसरे के प्राणों की बलि करने का समर्थन नहीं कर सकते, क्योंकि आवश्यकता को सिद्ध करना असम्भव है। हमें स्वयं उसमें काज़ी न बनना चाहिए। बल्कि वही एकमात्र काज़ी होंगे जिनकी जान लेना हम चाहते हैं। अहिंसा के पक्ष में एक अच्छा कारण यह है कि हमारा निर्णय गलत भी हो सकता है; मध्ययुग के ईसाइयों का यह अटल विश्वास था कि हमारा कार्य धर्म्य है, पर अब हम जानते हैं कि वे बिल्कुल ग़लती पर थे।

प्रश्न—कुरबानी (बलिदान) और खून (हत्या) में क्या भेद है?

उत्तर—कुरबानी या आत्म-बलिदान का अर्थ है स्वयं इस तरह कष्ट सहना कि उससे दूसरों को लाभ पहुंचे। खून (हत्या) का अर्थ है दूसरे को तक़लीफ़ देना—

मार डालना जिससे कि खूनी या जिसकी ओर से खून किया गया हो, उसे लाभ हो।

प्रश्न---क्या जो डाक्टर आपको नश्तर लगाता है वह आपको कुछ समय के लिए तकलीफ़ पहुंचाने के कारण निन्दा-योग्य है? परन्तु क्या हम उसके चित्त की वृत्ति अर्थात् बीमार को लाभ पहुंचाने के हेतु पर ध्यान रख कर उसके हिंसात्मक कार्य पर ध्यान न दे, उसकी और भी अधिक प्रशंसा नहीं करते हैं?

उत्तर---यह हिंसा शब्द का अप-प्रयोग है। हिंसा का अर्थ है किसी को बिना उसकी स्वीकृति के या बिना उसे किसी तरह का लाभ पहुंचाये, चोट पहुंचाना। मेरी बाबत तो सर्जन मेरे ही हित के लिए, मेरी लिखित स्वीकृति से मुझे, कुछ समय के लिए, तकलीफ पहुँचाता है। परन्तु एक क्रान्तिकारी अपने शिकार को, उसके कल्याण के लिए नहीं लूटता, कल्याण के लिए नहीं बध करता। उसे तो वह चोट पहुंचाने योग्य ही समझता है, समाज के कल्पित हित के लिए।

प्रश्न---क्या और बलों की तरह शारीरिक बल भी जीवन का प्रबल अंश नहीं है? जिस प्रकार अहिंसा का आश्रय भीरु लोग अपनी भीरुता छिपाने के लिए ले सकते हैं उसी प्रकार हिंसा का भी दुरुपयोग पशु और ज़ालिम कर सकते हैं। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि हिंसा खुद कोई बुरी चीज़ है।

उत्तर---शारीरिक बल निःस्सन्देह जीवन का प्रबल अंश है। हां, जालिमों ने ज़रूर ही हिंसा का दुरुपयोग किया है परन्तु हिंसा का जो लक्षण मैंने किया है उसमें तो उसका सदुपयोग कल्पनातीत है। इससे पहिलेवाले सवाल के जवाब में उसकी परिभाषा देखिए।

प्रश्न---पागलों तथा भयंकर अपराधियों को तो, जो समाज को हानि पहुंचाते हैं, आप जेल भेजेंगे। तो क्या आप हमें सभ्य अपराधियों को, जो कि सरकारी अफसरों के रूप में काम कर रहे हैं, मारने के बजाय गिरफ्तार करने तथा हिमालय की किसी गुफा में ले जाकर कैद करने की इजाज़त देंगे?

उत्तर---मैं नहीं कह सकता कि पागलों और अपराधियों को, फिर वे भयंकर हों या नहीं, जेल में रखना अर्थात् दण्ड देना, ठीक है। पागल तो अब भी इस तरह नहीं रखे जाते हैं। परन्तु हम तेजी से उस समय के निकट पहुँच रहे हैं जबकि अपराधियों को भी दण्ड के लिए नहीं बल्कि सुधार के लिए ही संयम में रखना पड़ेगा। हां, मैं उस संघ में खुशी से शामिल होऊंगा जो जान में या अनजान में भारत का खून चूसने वाले वायसराय, प्रत्येक सिविलियन अंग्रेज या हिन्दुस्तानी को जेल भेजने के लिए स्थापित होगा किन्तु शर्त यह कि एक तो उसमें उनके आराम की पूरी गुंजाइश रहे, दूसरे ऐसी योजना मेरे सामने पेश हो जो हर तरह से काम में

आने योग्य हो। मैं तो उस अवस्था में भी उसमें सम्मिलित होने के लिए तैयार हूं जबकि बंदीवास मेरे हिंसा के लक्षण में भी आ जाता हो।

प्रश्न--कौन सी बात अधिक अमानुष और भयंकर है, बल्कि कौन अधिक हिंसात्मक है--३३ करोड़ आदमियों को तकलीफ़ होने दें, सड़ और मिट जाने दें या कुछ हज़ार आदमियों का बध होने दें? आप किस बात को ज्यादा अच्छा समझेंगे? अधःपात होते-होते ३३ करोड़ जनता का धीरे-धीरे विलय को प्राप्त हो जाना या कुछ सौ लोगों का संहार हो जाना? हां, यह अवश्य सिद्ध करना होगा कि कुछ सौ लोगों के बध से ३३ करोड़ का अधःपात रुक जायगा। परन्तु तब यह ब्यौरे का सवाल रहेगा, सिद्धान्त का नहीं। यह कार्यसाधक है या नहीं, इसकी चर्चा फिर करेंगे। किन्तु यदि यह सिद्ध हो जाय कि कुछ लोगों के संहार से ३३ कोटि लोगों का अधःपात रोक सकते हैं तो क्या आप हिंसा के सिद्धान्त की दृष्टि से आपत्ति करेंगे?

उत्तर--कोई सिद्धान्त सिद्धान्त नहीं है यदि वह सब तरह अच्छा न हो। मैं अहिंसा की दुहाई इसलिए देता हूं कि मैं जानता हूं, अकेले उसी के बल पर मनुष्य-जाति सर्व-श्रेष्ठ श्रेय को पहुँचती है--अगले जन्म में ही नहीं, इस जन्म में भी। मैं हिंसा पर आक्षेप इसलिए करता हूं कि जब उससे हित होता हुआ दिखाई देता है तब वह अस्थायी होता है, किन्तु उससे जो बुराई होती है वह स्थायी होती है। मैं नहीं मानता कि एक भी अंग्रेज का खून करने से भारतवर्ष को ज़रा भी लाभ होगा। यदि किसी एक व्यक्ति ने तमाम अंग्रेजों को कल ही मार डालना सम्भवनीय बना लिया तो लाखों लोग, आज की तरह ही, उससे दूर रहेंगे। वर्तमान अवस्था के लिए अंग्रेजों की अपेक्षा हमारी जिम्मेदारी ज्यादा है। यदि हम केवल अच्छा ही अच्छा करते रहें तो अंग्रेज बुरा करने के लिए अशक्त हो जायँगे। इसीलिए मैं आन्तरिक सुधार पर इतना जोर दे रहा हूं।

परन्तु क्रान्तिकारी के सामने तो मैंने अहिंसा की नीति को सर्वोत्तम आधार पर पेश नहीं किया है वरं कार्य-साधकता के निम्न आधार पर किया है। मैं कहता हूं कि क्रान्तिकारी तरीके भारतवर्ष में सफल नहीं हो सकते। यदि खुली लड़ाई सम्भव हो तो शायद मैं मान सकूँ कि हम हिंसा-पथ को ग्रहण कर लें, जैसा कि दूसरे देशों ने भी किया है और कम से कम उन गुणों को ही प्राप्त करें जो कि रणक्षेत्र में जाने से उदय होते हैं। परन्तु युद्धकाण्ड के द्वारा भारत के स्वराज्य की प्राप्ति तो हम, जहां तक दृष्टि जाती है, किसी भी समय असम्भव देखते हैं। युद्ध के द्वारा हमें चाहे अंग्रेजी शासन की जगह दूसरा शासन मिल जाय परन्तु आत्म-शासन--जनता की दृष्टि से आत्म-शासन नहीं मिल सकता। स्वराज्य की तीर्थयात्रा बड़ी कठिन,

बड़ी कष्टप्रद चढ़ाई है। उसका अर्थ है—देहातियों की सेवा करने के उद्देश्य से देहात में प्रवेश करना। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है राष्ट्रीय शिक्षा, जनता की शिक्षा। इसका अर्थ है जनता के अन्दर राष्ट्रीय चैतन्य और जागृति उत्पन्न करना। वह कोई जादूगर के आम की तरह अचानक नहीं टपक पड़ेगा। वह तो बटवृक्ष की तरह प्रायः अनजाने रूपों में बढ़ेगा। खूनी क्रान्ति कभी चमत्कार नहीं दिखा सकती। इस विषय में जल्दी मचाना निस्सन्देह बर्बादी करना है। चरखे की क्रान्ति ही, जहां तक कल्पना दौड़ती है, सबसे द्रुत क्रान्ति है।

प्रश्न—जब कि जीवन के परम स्वार्थ का प्रश्न खड़ा होता है तब क्या तर्क और युक्ति को ताक पर नहीं रख दिया जाता? क्या यह वस्तुस्थिति नहीं है कि कुछ स्वार्थी, ज़ालिम और आग्रही लोग तर्क और युक्ति की बात को नहीं सुनते हैं तथा शासन करते एवं सताते रहते हैं? वे एक जन-समाज के साथ अन्याय करते रहते हैं? आग्रही कौरवों तथा पाण्डवों में शान्तिपूर्वक मेल कराने में भगवान श्रीकृष्ण भी सफल न हो सके। महाभारत चाहे उपन्यास हो, बेचारा कृष्ण चाहे आध्यात्मिकता में बढ़ा-चढ़ा न हो, पर स्वयं आप भी तो अपने उन न्यायाधीश को इस्तीफ़ा देने तथा आपको सज़ा न देने के लिए समझा न सके, यद्यपि औरों की तरह वह भी आपको निरपराध मानता था। ऐसी बातों में आत्म-यज्ञ के द्वारा समझाने से कहां तक सफलता मिल सकती है?

उत्तर—यह बात दुःखपूर्ण परन्तु सत्य है कि जहां स्वार्थ का सम्बन्ध आता है, तर्क और युक्ति को लोग ताक पर रख देते हैं। ज़ालिम, बेशक, बड़ा आग्रही होता है। अंग्रेज ज़ालिम को तो आग्रह का अवतार ही समझिए। परन्तु वह सहस्रमुखी राक्षस है। वह नहीं चाहता कि उसका बध हो। उसी के शस्त्रों से वह परास्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि हमारे पास उसने ऐसा कोई शस्त्र रहने ही नहीं दिया है। मेरे पास एक हथियार है जो उसके कारखाने में नहीं बनता और उसे वह हरण भी नहीं कर सकता। उसने अब तक जितने शस्त्रास्त्र पैदा किये हैं उनसे वह बढ़कर है। वह क्या है? अहिंसा, और चर्खा है उसका प्रतीक। इसीलिए मैंने उसे देश के सम्मुख पूरे विश्वास के साथ उपस्थित किया है। कृष्ण जो कुछ करना चाहते थे उसमें, महाभारतकार कहते हैं, वह असफल न हुए। वह सर्वशक्तिमान थे। उन्हें अपने उच्चपद से उतारकर घसीटना फिजूल है। किन्तु उनके विषय में हम उन्हें निरा मर्त्य मानव समझकर विचार करें तो उनका पलड़ा हल्का हो ऊपर उठ जायगा और उन्हें पीछे की ओर आसन मिलेगा। महाभारत, जैसा कि सामान्यतः कहा जाता है, न तो उपन्यास है और न इतिहास है। वह मानव-आत्मा का इतिहास है, जिसमें ईश्वर कृष्ण के रूप में मुख्य पात्र—नायक

हैं। उस महाकाव्य में ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें मेरी अल्पबुद्धि अवगाहन नहीं कर पाती। उसमें कितनी बातें ऐसी हैं जो स्पष्टत: क्षेपक हैं। वह चुना हुआ रत्नकोष नहीं है। वह तो एक खान है जिसे खोदने की आवश्यकता है, जिसमें गहरे पैठने की आवश्यकता है, तब कंकर-पत्थर निकालने के बाद ही हीरे हाथ लगते हैं। इसलिए मैं व्रतधारी क्रान्तिवादियों, या क्रान्ति के उम्मीदवारों अथवा उसके किनारे खड़े मित्रों से आग्रह करता हूं कि वे अपने पैर पृथिवीमाता पर ही जमाये रहें और हिमालय के शिखरों पर उड़ानें न मारें जहां कि कवि अर्जुन तथा दूसरे वीरों को ले गये हैं। हर हालत में मैं तो उस पर चढ़ने का यत्न करने से भी इन्कार करूँगा। मेरे लिए भारतवर्ष का मैदान ही काफी है।

अच्छा तो अब मैदान में उतरकर, प्रश्नकर्ता इस बात को समझ लें कि मैं अदालत इसलिए नहीं गया था कि न्यायाधीश को अपने निरपराध होने के विषय में समझाऊं बल्कि मैं गया था अपने को पूर्ण अपराधी के रूप में स्वीकार करने के लिए, अधिक से अधिक सजा माँगने के लिए। क्योंकि मैंने तो जान-बूझकर मनुष्य-कृत कानून को तोड़ा था। न्यायाधीश मुझे निरपराध नहीं मान सकता था, माना भी नहीं। जेल जाने में कोई ज्यादा बलिदान न था। सच्चे बलिदान का लोहा इससे कहीं मज़बूत होता है। मेरे ये मित्र अहिंसा के फलितार्थ को समझ लें। यह मतान्तर की एक विधि है। मुझे इस बात का विश्वास हो चुका है, और यह कहने के लिए क्षमा किया जाय, कि मेरी दृढ़, अटल अहिंसा ने हिंसा की कितनी ही धमकियों और कृतियों की अपेक्षा ज्यादा अंग्रेजों को अपने विचार का कायल किया है। मैं कहता हूं कि जिस दिन ज्ञानयुक्त अहिंसा भारत में सामान्य वस्तु हो जायगी, स्वराज्य हमारे सामने होगा।

—यं० इं०। हि० न० जी० २१।५।'२५]

- **अहिंसा चित्त की एक वृत्ति भी है और तज्जात कर्म भी है।**
- **अहिंसा का अर्थ है औरों को कष्ट न देना।**
- **जो अपने प्राण से मोह करेगा वह उसे खोयेगा; जो अपना प्राण गँवायेगा, वह उसे पायेगा।**
- **आत्म-बलिदान का अर्थ है स्वयं इस तरह कष्ट सहना कि उससे दूसरे को लाभ पहुँचे। हत्या का अर्थ है दूसरे को कष्ट देना, मार डालना जिससे खूनी या जिसकी ओर से खून किया गया है उसे लाभ हो।**
- **चर्खे की क्रान्ति ही सब से द्रुत क्रान्ति है।**
- **वह (महाभारत) मानव-आत्मा का इतिहास है।**

२२. अहिंसा

मेरा यह विश्वास दिन पर दिन दृढ़ होता जा रहा है कि अहिंसा के विना भारत,—नहीं सारी दुनिया को शान्ति-सुख नहीं मिल सकता।
—यं० इं०। हि० न० जी० २५।६।'२५]

२३. अहिंसा की समस्या

ऐसे प्रश्न मुझसे बराबर पूछे जाते हैं कि कब अहिंसा एवं कब हिंसा का अवलम्बन लेना चाहिए और किस समय क्या कर्तव्य है? कितने ही प्रश्न तो ऐसे होते हैं जिनसे पूछनेवाले का अज्ञान प्रकट होता है। कुछ ऐसे भी होते हैं जिनसे उनके सम्मुख उपस्थित संकट का परिचय मिलता है। एक पंजाबी भाई ने प्रश्न पूछा है। उसका उत्तर लिखने योग्य है। प्रश्न इस प्रकार है:—

"शेर-भालू आदि आकर पशु एवं मनुष्य को उठा ले जायं तो हम क्या करें? अथवा पानी में ही जन्तु इत्यादि हों तो क्या करें?"

मेरी अल्पमति के अनुसार सामान्य उत्तर तो यही है कि जब शेर-भालू इत्यादि का उपद्रव हो तो उनका नाश करना अनिवार्य है। पानी में रहने वाले जन्तुओं का नाश भी अनिवार्य है। किन्तु अनिवार्य हिंसा हिंसा न रहकर अहिंसा नहीं हो जाती। हिंसा को तो हिंसा के रूप में ही जानना चाहिए। मुझे इस बात में कोई संशय नहीं है कि यदि कोई बिना शेर-भालू का नाश किये अपना काम चला ले तो वह उत्तम है। किन्तु ऐसा करेगा कौन? वही जो शेर-भालू से डरता नहीं, बल्कि मित्र की भांति उनसे मिल सकता है। डरकर जो हिंसा नहीं करता वह तो हिंसा कर ही चुका है। चूहा बिल्ली के प्रति अहिंसक नहीं। उसका मन तो निरन्तर बिल्ली के प्रति हिंसा करता रहता है; निर्बल होने के कारण वह बिल्ली को मार नहीं सकता। हिंसा करने का पूरा सामर्थ्य रखते हुए भी जो हिंसा नहीं करता है वही अहिंसा धर्म का पालन करने में समर्थ होता है। जो मनुष्य स्वेच्छा से और प्रेम-भाव से किसी की हिंसा नहीं करता वही अहिंसा धर्म का पालन करता है। अहिंसा का अर्थ है प्रेम, दया, क्षमा। शास्त्र उसका वर्णन वीर के गुण के रूप में करते हैं। यह वीरता शरीर की नहीं बल्कि हृदय की है। शरीर से क्षीण पुरुष भी दूसरों की सहायता से घोर हिंसा करते देखे गये हैं और शरीर के बलवान होते हुए भी युधिष्ठिर जैसे लोग विराट राज-जैसों को क्षमा प्रदान करते देखे गये हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक हृदय का बल प्राप्त नहीं होता तब तक मनुष्य

अहिंसा धर्म का पालन नहीं कर सकता। आजकल की बणिक-अहिंसा अहिंसा नहीं। इसमें तो बहुधा घोर निर्दयता दिखाई देती है और अज्ञान तो उसमें है ही।

अपनी इस दुर्बलता को मैं जानता हूं। इसीलिए मैंने खेड़ा में महायुद्ध के समय स्वयंसेवक सिपाहियों को भरती करने का महत् प्रयत्न किया था और इसी से उस समय कहा था कि ब्रिटिश सल्तनत ने जो अनेक घोर कृत्य किये हैं उनमें उसका एक अति घोर कृत्य यह है कि उसने लोगों को निःशस्त्र करके निर्वीर्य बना दिया है। आज भी मेरी वही दृष्टि है। जिसके मन में भय है वह यदि निःशस्त्र रहकर भय दूर नहीं कर सकता तो वह अवश्य लाठी या उससे भी गतिमान शस्त्र का अवलम्बन करे।

अहिंसा एक महाव्रत है। वह तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आना पालन असम्भव है। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का अर्थ यहां त्याग और ज्ञान करना चाहिए। जिसे ज़मीन के स्वामित्व का मोह है उससे अहिंसा का पालन नहीं हो सकता।

किसान के लिए अपनी ज़मीन की रक्षा लाज़िमी है; शेरभालू से उसकी रक्षा करनी ही पड़ेगी। जो किसान शेर-भालू या चोर इत्यादि को दण्ड देने के लिए तैयार न हो उसे खेत छोड़ देने के लिए सदा तैयार रहना पड़ेगा।

अहिंसा-धर्म का पालन करने के लिए मनुष्य को शास्त्र तथा रीति की मर्यादा का पालन करना चाहिए। शास्त्र हिंसा की आज्ञा नहीं देता। परन्तु प्रसंग-विशेष पर हिंसा-विशेष को अनिवार्य समझकर उसकी छूट देता है—जैसा कहते हैं कि मनुस्मृति में प्राणी विशेष के वध की छूट है, वध की आज्ञा नहीं है। उसके बाद विचार में उन्नति होती गई और यह तय हुआ कि कलिकाल में वह अपवाद न रहे। इसलिए वर्तमान रिवाज हिंसाविशेष को क्षन्तव्य मानता है और मनुस्मृति की कितनी ही हिंसा पर प्रतिबन्ध लगाता है। शास्त्र ने इतनी छूट रखी है। उससे आगे बढ़ने की दलील स्पष्टतः गलत है। धर्म संयम में है, स्वच्छन्दता में नहीं। जो मनुष्य शास्त्र की दी हुई छूट से फायदा नहीं उठाता वह धन्यवाद का पात्र है। संयम की कोई मर्यादा नहीं, इसलिए अहिंसा की भी कोई मर्यादा नहीं। संयम का स्वागत दुनिया के तमाम शास्त्र करते हैं। स्वच्छन्दता के विषय में शास्त्रों में भारी मतभेद है। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है। दूसरे कोण अगणित हैं। अहिंसा और सत्य यह समस्त धर्मों का समकोण है जो आचार इस कसौटी पर न उतरे वह त्याज्य है। इसमें किसी को शंका करने की आवश्यकता नहीं। अधूरे आचार की अनुमति भले ही हो। अहिंसा धर्म का

पालन करनेवाला निरन्तर जागरूक रह कर अपने हृदय-बल को बढ़ाये और प्राप्त छूटों के क्षेत्र को छोटा करता जाय। भोग कदापि धर्म नहीं। संसार का ज्ञानमय त्याग ही मोक्ष-प्राप्ति है। संसार का सर्वथा त्याग हिमालय के शिखर पर भी नहीं है। हृदय की गुफा ही सच्ची गुफा है। मनुष्य को चाहिए कि वह उसमें छिपकर, सुरक्षित रहकर, संसार में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहकर, अनिवार्य कार्यों में प्रवृत्त होकर विचरण करे।

——मूल गुजराती। न० जी०। हि० न० जी० २०।८।'२५]

- **अनिवार्य हिंसा हिंसा न रहकर अहिंसा नहीं हो जाती; हिंसा को तो हिंसा के रूप में ही जानना चाहिए।**
- **डरकर जो हिंसा नहीं करता वह तो हिंसा कर ही चुका है।**
- **जब तक हृदय का बल प्राप्त नहीं होता तब तक मनुष्य अहिंसा-धर्म का पालन नहीं कर सकता।**
- **आजकल की वणिक अहिंसा अहिंसा नहीं, इसमें तो बहुधा घोर निर्दयता दिखाई देती है, और अज्ञान तो उसमें है ही।**
- **अहिंसा एक महाव्रत है। वह तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है।**
- **धर्म संयम में है, स्वच्छन्दता में नहीं।**
- **समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है, दूसरे कोण अगणित हैं। अहिंसा और सत्य समस्त धर्मों का समकोण है।**
- **भोग कदापि धर्म नहीं।**
- **संसार का ज्ञानमय त्याग ही मोक्ष-प्राप्ति है।**
- **हृदय की गुफा ही सच्ची गुफा है।**

२४. मानव मात्र का बन्धुत्व

[कलकत्ता-स्थित 'भारतीय लन्दन मिशनरी सुसाइटी' के तत्वावधान में ईसाइयों की एक सभा में गांधी जी के व्याख्यान से।]

मैंने अनेक बार यह देखने की कोशिश की है कि मैं अपने शत्रु को घृणा कर सकता हूं या नहीं——यह देखने का नहीं कि प्रेम कर सकता हूं या नहीं——और मुझे ईमानदारी किन्तु पूरी-पूरी नम्रता के साथ कहना चाहिए कि मुझे नहीं ज्ञात हुआ कि मैं उससे घृणा कर सकता हूं। मुझे यह याद नहीं आता कि कभी किसी भी मनुष्य के प्रति मेरे मन में तिरस्कार उत्पन्न हुआ हो। मैं नहीं समझ सकता

कि यह स्थिति मुझे किस तरह प्राप्त हुई है। परन्तु आपसे कहता हूं कि जीवन-भर मैं इसी का आचरण करता आया हूं।

बन्धुत्व का अर्थ

बन्धुत्व का अर्थ यह नहीं कि जो आपके भाई बनें, जो आपको चाहें उन्हीं के भाई आप बनें। यह तो सौदा हुआ—बदला हुआ। बन्धुत्व में व्यापार नहीं होता। मेरा धर्म तो मुझे यह शिक्षा देता है कि बन्धुत्व मनुष्यमात्र के साथ ही नहीं, प्राणिमात्र के साथ होना चाहिए।....यह बात मैं यह दिखाने के लिए करता हूं कि यदि हम अपने शत्रु के साथ भी प्रेम करने के लिए तैयार न हों तो हमारा बन्धुत्व कुछ नहीं, एक ढकोसला है। दूसरी तरह से इसे यों कह सकता हूं कि जिसने अपने हृदय में बन्धुत्व भाव को स्थान दिया है वह यह कहने का अवसर नहीं देगा कि उसका कोई शत्रु है।....

शत्रु को बन्धु कैसे समझें

सवाल यह होता है कि जो हमें अपना शत्रु समझते हैं उनके साथ प्रेम किस तरह करें? प्रतिदिन मुझे हिन्दू, मुसलमान और ईसाई लोगों की चिट्ठियां मिलती हैं, जिनमें वे कहते हैं कि यह बात ग़लत है कि वे शत्रु को प्यार कर सकते हैं। हिन्दू लिखते हैं कि जो गाय हमारे प्राण के समान प्रिय है उसे मारनेवाले मुसलमान के साथ प्रेम किस तरह हो सकता है? ईसाई पूछते हैं कि अस्पश्यता माननेवाले, अछूत समझकर अपने भाइयों को दलित करनेवाले हिन्दुओं के साथ प्रेम किस प्रकार करें? मुसलमान लेखक पूछता है कि बुतपरस्त के साथ मुहब्बत की जा सकती है? इन तीनों से मेरा यह कहना है कि आपका बन्धुत्व बेकार है यदि आप अपने पत्र में वर्णित लोगों को न चाह सकते हों। इस तिरस्कार-भाव का अर्थ क्या है? इसके मूल में भय है या असहिष्णुता? यदि हम सब एक ईश्वर की सन्तान हैं तो एक दूसरे से क्यों डरें, अथवा अपने से भिन्न मत रखनेवाले से द्वेष क्यों करें? किन्तु जिस कृत्य से हम घृणा करते हों उसे क्या किसी मुसलमान को करने दें? मेरा बन्धुत्व उत्तर देता है—हां। इसमें इतनी बात और जोड़ता हूं—आप अपनी बलि चढ़ा दीजिए; यदि आप अपनी प्रिय वस्तु की रक्षा करना चाहते हैं तो बिना किसी पर हाथ उठाये उसके लिए मर जाइये। मुझे ऐसी घटनाओं का अनुभव है। आपके अन्दर यदि प्रेम के साथ कष्ट सहने की हिम्मत हो तो आप पाषाण-हृदय को भी पानी-पानी कर सकेंगे। बदमाश यदि आप से सवाया हो तो आप हाथ उठाकर क्या करेंगे? वह आपको जीतकर अधिक बदमाशी

न करेगा? दुष्टता की आग विरोध के घी से क्या और नहीं धधकती? क्या इतिहास इस बात का साक्षी नहीं है? और क्या इतिहास में ही ऐसे उदाहरण नहीं मिलते कि अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुँच जानेवालों ने बड़े-बड़े विकराल पशुओं को अपने वश में कर लिया है? पर इस पराकाष्ठा की अहिंसा को जाने दें। इसके लिए तो महा शूरवीर योद्धा से भी अधिक बहादुरी की जरूरत है। और जिसके प्रति आपके मन में तिरस्कार हो उसके साथ लड़कर मर जाने के डर से बैठ रहने की अपेक्षा तो लड़ लेना अच्छा है। कायरता और बन्धुत्व परस्पर-विरोधी हैं। संसार शत्रु के साथ प्रीति करने की बात को स्वीकार नहीं करता। ईसा के अनुयायी युरोप में भी अहिंसा के सिद्धान्त का मज़ाक उड़ाया जाता है। . . पर मुझे कहना होगा कि यदि शत्रु को चाहने का सिद्धान्त स्वीकार न करें तो बन्धुत्व की बातें करना हवा में महल बनाना है। . . . .हमें अपने मनुष्यत्व का पूरा भान नहीं इसीलिए वैर नहीं छोड़ा जाता। डार्विन कहता है, हम बन्दर के वंशज हैं; यदि यह सच हो तो हम अभी मनुष्य की दशा को प्राप्त नहीं कर पाये हैं। एना किंग्स-फर्ड ने लिखा है कि "मैंने पेरिस में मनुष्य रूप में हिंस्र, शेर, भालू और सांप विचरते हुए देखा है।" इस पशुत्व को मिटाने के लिए मनुष्य को भय छोड़ने की आवश्यकता है। इस भय को अपने अन्दर बल उत्पन्न करके दूर किया जा सकता है, हथियार से सज्जित होकर नहीं। महाभारत ने वीर का भूषण वा गुण क्षमा बताया है। जेनरल गार्डन की एक मूर्ति है। उसकी वीरता बताने के लिए उसके हाथ में तलवार नहीं, एक छड़ी दिखाई गई है। यदि मैं शिल्पकार होता और गार्डन की मूर्ति बनाता तो मैं उन्हें शिष्टता के साथ सीना ताने हुए खड़ा और यह कहते हुए बनाता—'चाहे जितने भी प्रहार करो, बिना भय एवं बैर के उन्हें झेलने के लिए यह सीना खुला हुआ है।' यह है मेरे वीर का आदर्श। ऐसे वीर जगत् में अमर हुए हैं। ईसाई धर्म ने ऐसे शूर-वीरों को जन्म दिया है; हिन्दू धर्म और इस्लाम ने भी दिया है। मुझे यह कहना ठीक नहीं जँचता कि इसलाम तलवार का धर्म है! . . . . .

ये तो व्यक्तियों की बातें हैं; जातियों के निर्वैर हो जाने के भी उदाहरण हैं! . . . . क्वेकर तथा टाल्सटाय-वर्णित दुखोबोर का इतिहास क्या कहता है?

निर्वैर हो सकते हैं

युरोप तथा भारत के कितने ही बड़े-बड़े लेखक कहते हैं कि मनुष्य जाति निर्वैर हो जाय, ऐसा समय कभी नहीं आ सकता। इसी बात पर मेरा विवाद है। मैं तो उलटा यह कहता हूं कि जब तक मनुष्य निर्वैर नहीं होता तब तक वह मनुष्य ही

नहीं बन सकता! ....हम चाहें या न चाहें, हमें इसी रास्ते जाना होगा और आज मैं आप से यह कहने आया हूं कि लाचार होकर इस रास्ते जाने की अपेक्षा स्वेच्छा से क्यों नहीं जाते? बात ज़रा विचित्र है कि मुझे ईसाइयों के सामने ऐसी बात करनी पड़ती है। हिन्दुओं के सामने भी यही कहना पड़ता है। कितने ही ईसाई मुझसे कहते हैं कि ईसा का निवरैंता का उपदेश उनके केवल १२ शिष्यों के लिए ही था। हिन्दुस्तान में अहिंसा के विरोधी कहते हैं कि उससे नामर्दी फैलेगी। मैं आपसे कहने के लिए आया हूं कि यदि भारतवर्ष 'अहिंसक न बनेगा तो उसका सर्वनाश समझिए; दूसरी कौमों का भी नाश समझिए। भारत एक भारी भूखण्ड है; वह यदि हिंसक हो जाय तो और खण्डों की तरह वह भी दुर्बलों पर जबर्दस्ती करेगा और यदि ऐसा हुआ तो ज़रा परिणाम की कल्पना तो कीजिए।

मेरी राष्ट्रीयता

मेरी राष्ट्रीयता में प्राणिमात्र का समावेश होता है; संसार की समस्त जातियों का समावेश होता है। यदि मैं भारत को अहिंसा का कायल कर सकूं तो भारत सारे जगत् को कुछ चमत्कार दिखा सकेगा। मैं नहीं समझता कि भारत दूसरे राष्ट्रों के चिताभस्म पर खड़ा होगा। मैं चाहता हूं कि वह आत्मबल प्राप्त करे और दूसरे राष्ट्रों को भी बलवान बनावे। दूसरे राष्ट्र बल का मार्ग नहीं दिखा रहे हैं इसलिए मुझे इस अचल सिद्धान्त का आश्रय लेना पड़ा है कि मैं कभी उस विधान को स्वीकार न करूंगा जिसका आधार पशुबल हो।

राष्ट्रपति विल्सन ने चौदह सिद्धान्तों की रचना की और उन पर कलश चढ़ाते हुए कहा—'यदि हम इसमें सफल न हुए तो हथियार तो है ही।' मैं इसे उलट कर कहना चाहता हूं कि—'हमारे सब पार्थिव शस्त्र बेकार हुए हैं इसलिए किसी नये शस्त्र को खोजें। चलो अब प्रेम का शस्त्र, सत्य का शस्त्र लें। यह शस्त्र जब हमें मिल जायगा तब हमें किसी दूसरे शस्त्र की ज़रूरत न रहेगी।'

—मूल गुजराती। न० जी०। हि० न० जी० २७।८।'२५ स्व० महादेव देसाई के लेख से]

- **मेरा धर्म मुझे यह शिक्षा देता है कि बन्धुत्व मनुष्यमात्र के साथ ही नहीं प्राणिमात्र के साथ होना चाहिए।**
- **आपके अन्दर यदि प्रेम के साथ कष्ट सहने की हिम्मत हो तो आप पाषाण-हृदय को भी पानी-पानी कर सकेंगे।**
- **कायरता और बन्धुत्व परस्पर-विरोधी हैं।**
- **भारत यदि अहिंसक न बनेगा तो उसका सर्वनाश समझिए।**

२५. शास्त्र और अहिंसा

[गीता को लेकर यह चिरन्तन विवाद चलता रहा है और आज भी चलता है कि उसमें हिंसा का प्रतिपादन हुआ है या अहिंसा का? गांधी जी से भी इस प्रकार का प्रश्न किया गया था। अपने लम्बे उत्तर में उन्होंने शास्त्र और अहिंसा के विषय में भी कुछ कहा है। वह उनके 'गीता का अर्थ' लेख से चुनकर यहां दिया जा रहा है।—संपा०]

शास्त्रों के वे अर्थ जो सत्य के विरोधी हैं, सही नहीं हो सकते। जिसे सत्य के सत्य होने के विषय में ही शंका है उसके लिए शास्त्र हैं ही नहीं अथवा यों कहिए कि उसके लिए सब शास्त्र अशास्त्र हैं।....जिसे शास्त्र में से अहिंसा नहीं प्राप्त हुई है उसके लिए भय है किन्तु उसका उद्धार न हो, यह बात नहीं। सत्य विध्यात्मक है; अहिंसा निषेधात्मक है। सत्य वस्तु का साक्षी है, अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है, असत्य नहीं है। हिंसा है, अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होनी चाहिए। यही परमधर्म है। सत्य स्वयं सिद्ध है; अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है; सत्य में वह छिपी हुई है। वह सत्य की तरह व्यक्त नहीं है। इसलिए भले ही उसे मान्य किये बिना मनुष्य शास्त्र का शोध करे, उसका सत्य अन्त में उसे अहिंसा ही सिखायेगा।

सत्य के लिए तपश्चर्या तो करनी ही पड़ती है। सत्य का साक्षात्कार करनेवाले तपस्वी ने चारों ओर फैली हुई हिंसा में से अहिंसा देवी को संसार के सामने प्रकट करके कहा:—हिंसा मिथ्या है, माया है; अहिंसा ही सत्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह भी अहिंसा के लिए ही हैं। ये अहिंसा को सिद्ध करनेवाले हैं। अहिंसा सत्य का प्राण है। उसके बिना मनुष्य पशु है। सत्यार्थी अपनी शोध के लिए प्रयत्न करते हुए यह सब बड़ी जल्दी समझ लेता है।

....गीता जी का सर्वांश तात्पर्य हिंसा नहीं, अहिंसा है। यह दूसरा अध्याय—जिससे विषय का आरम्भ होता है और अठारहवां अध्याय जिसमें उसकी पूर्णाहुति होती है—देखने से प्रतीत होता है।

—न० जी०। हि० न० जी०, १५।१०।'२५]

- **जिसे शास्त्र में से अहिंसा नहीं प्राप्त हुई है उसके लिए भय है।**
- **हिंसा है, अहिंसा नहीं, फिर भी अहिंसा ही होनी चाहिए। यही परमधर्म है।**
- **सत्य स्वयंसिद्ध है, अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है।**
- **अहिंसा सत्य का प्राण है।**

२६. अहिंसा ही मानव स्वभाव है

[गांधी जी की अहिंसा की स्तुति से खीझकर बहुत से लोग समय-समय पर उन्हें इसके विरोध में तरह-तरह बातें लिखते रहते थे। इनमें से एक भाई ने उन्हें लिखा--दुष्ट मनुष्य के प्रति क्रोध करना और साधुजन की स्तुति करना यदि हमारा धर्म नहीं है तो हमें स्तुतिनिन्दा करने की शक्ति क्यों दी गई है? हमारी सर्वशक्तियों का विकास ही धर्म क्यों नहीं है? इस प्रकार विचार करने से क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि जितने अंश में अहिंसा धर्म है, उतने ही अंशों में हिंसा भी धर्म है? . . . .पुण्य-पाप हमारे दुर्बल मन की कल्पना मात्र हैं। आपका अहिंसा-धर्म एकांगी होने के कारण दुर्बलता का ही सूचक प्रतीत होता है; उसे धर्म नहीं, परम अधर्म क्यों न माना जाय? गांधी जी ने इसी प्रश्न पर अपने एक लेख 'स्वाभाविक किसे कहेंगे?' में प्रकाश डालते हुए निम्नलिखित बातें लिखी हैं।--संपा०]

. . .यदि मनुष्य को भी पशुओं की श्रेणी में रख दिया जाय तो अनेक बातें, जिन्हें हमने स्वाभाविक मान लिया है, स्वाभाविक सिद्ध की जा सकती हैं। परन्तु इन दोनों में यदि हम जाति-भेद स्वीकार करें तो यह नहीं कहा जा सकता कि जो बातें पशुओं के लिए स्वाभाविक हैं वे सब मनुष्यों के लिए भी स्वाभाविक हैं। मनुष्य ऊर्ध्वगति प्राणी है। उसे सारासार का विवेक करने की बुद्धि दी गई है। . . . . मनुष्य का स्वभाव तो ईश्वर को जानना ही होना चाहिए और है। जब मनुष्य शैतान की पूजा करता है तब वह अपने स्वभाव के प्रतिकूल कार्य करता है। . . . .

इस संसार में हिंसा सब जगह व्याप्त है। एक अंग्रेजी वाक्य का अर्थ है कि कुदरत (प्रकृति) के नाखून खून से रँगे होते हैं। यदि हम ऊपर से ही इस वाक्य पर विचार करेंगे तो उसका सत्य हमें जगह-जगह दिखाई देगा परन्तु यदि मनुष्यों को दूसरे प्राणियों से उत्तम मानें और उनमें इन्द्रिय-विशेष का आरोपण करें तो हमें तुरन्त ज्ञात हो जायगा कि इस लाल खून से रँगे नाखूनों वाली कुदरत के बीच मनुष्य ऐसे नखों से हीन बड़ी शोभा पा रहा है। मनुष्य का यदि कोई अलौकिक कर्त्तव्य है, उसको शोभित करनेवाला कोई कर्त्तव्य है तो वह अहिंसा ही है। हिंसा के मध्य खड़ा रहकर, अपने अन्तर की गुफा में गहरे जाकर, अनुभव प्राप्त करके वह कहता है:--इस हिंसामय संसार में मनुष्य का धर्म अहिंसा है। और जितने अंशों में वह अहिंसक है, उतने ही अंशों में वह अपनी जाति को शोभा दे सकता है। हिंसा नहीं अहिंसा मानव-स्वभाव है क्योंकि वही अपने अनुभव से निश्चयपूर्वक यह कह सकता है--मैं देह नहीं हूं, आत्मा हूं और इस देह का आत्मा के विकास के अर्थ, आत्मदर्शन के अर्थ ही उपयोग करने का मुझे अधिकार है। उसमें से वह देह-

दमन की, काम-क्रोध-मद-मोह-मत्सर आदि शत्रुओं को जीत लेने की नीति की रचना करता है, उन्हें जीतने का बड़ा यत्न करता है और उसमें पूर्ण विजय प्राप्त करता है। जब वह ऐसी विजय प्राप्त करता है तभी कहा जा सकता है कि उसने मनुष्य जाति के अनुकूल कार्य किया। इसलिए राग-द्वेषादि को जीत लेना अति-मानुषी कार्य नहीं है। अहिंसा का पालन बहुत उच्च प्रकार की वीरता का लक्षण है। अहिंसा में भीरुता के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० १७।६।'२६ तथा यं० इ० २४।६।'२६]

- **मनुष्य ऊर्ध्वगति प्राणी है।**
- **जब मनुष्य शैतान की पूजा करता है तब वह अपने स्वभाव के प्रतिकूल कार्य करता है।**
- **मनुष्य का यदि कोई अलौकिक कर्त्तव्य है तो वह अहिंसा ही है।**
- **हिंसा नहीं, अहिंसा मानव-स्वभाव है।**
- **अहिंसा में भीरुता के लिए कोई स्थान नहीं है।**

२७. मनुष्यता से पहिले पशुता

'स्वाभाविक क्या है' (अहिंसा ही मानव स्वभाव है) शीर्षक लेख के सम्बन्ध में एक डाक्टर महोदय लिखते हैं:—

"...हिंसा का प्रयोग बन्द करना असम्भव है, और मैं समझता हूँ कि ऐसी अवस्था में इसे रोकने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करना बिल्कुल ही मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध है। मनुष्य भी तो पशु ही है। उसमें मनुष्यता से पहिले पशुता रहती है।...हममें अभी तक पशुता भरी है। नैतिक आचरण का तो हमने केवल दिखावटी आवरण ओढ़ रखा है। ईश्वराराधना तो केवल एक आदत की बात है। बुराई-भलाई या नीति-अनीति से और परमात्मा से कोई सम्बन्ध नहीं। नीति की आवश्यकता तो समाज और संगठित जीवन के लिए पड़ती है, कोई परमात्मा थोड़े ही उमंग में आकर नीति से रहने की आज्ञा भेज देता है। परमात्मा ने मनुष्य को नहीं बनाया, मनुष्य ने परमात्मा को बनाया है। यदि आप वानर से अपना सम्बन्ध मान लें तो इससे आपके नीतिशास्त्र पर क्या असर पड़ता है? खान-पान और विषय-भोग तो मनुष्य के लिए बिल्कुल स्वाभाविक है। हां, इन सब की सीमा अवश्य है किन्तु यह सीमा शरीर-रक्षा और स्वास्थ्य के कारण रखी गई है।...आप कहते हैं कि मनुष्य प्रकृति से अहिंसात्मक है, हिंसा-

त्मक नहीं किन्तु यदि आपका ब्रिटिश माल का बहिष्कार पूरा हो जाता तो आपने इंग्लैण्ड के मजूरों पर कितनी हिंसा की होती ? किसी का सिर लट्ठ से फोड़ डालना ही तो हिंसा नहीं है, उसको भूखों मारना भी तो हिंसा ही है। आपकी आत्मशक्ति या प्रेमशक्ति केवल मन के लड्डू हैं। अहिंसा सभ्यता का तकाजा है, मनुष्य की प्रकृति नहीं।"

मैंने पत्र को संक्षिप्त कर लिया है। जिस पूर्ण विश्वास के साथ इसे उन्होंने लिखा है उसे देखकर तो मेरे होश उड़ जाते हैं।......मेरी समझ में उनकी बातें नहीं आतीं। आइए, उनके तर्क को ज़रा कसौटी पर कसें। वह कहते हैं कि जनता में अहिंसा का भाव नहीं आ सकता किन्तु हम देखते हैं कि संसार के सारे कार्य प्रतिदिन प्रेम से ही चलते हैं। यदि मनुष्य प्रकृति से ही हिंसात्मक हो तो संसार क्षण भर में नष्ट हो जाय। बिना पुलिस या किसी दबाव के ही लोग शान्ति से रहते हैं। जब बुरे लोग आकर जनता में अस्वाभाविक विचार फैलाकर उसका दिमाग़ खराब कर देते हैं तभी जनता हिंसा की ओर अग्रसर होती है, अन्यथा नहीं। फिर भी सारी हत्या कर-कराकर फिर लोग हिंसावृत्ति को भूल जाते हैं और अपने प्राकृतिक शान्तभाव से काम में लग जाते हैं। जबतक बुरे लोग उन्हें उकसाते रहते हैं उनमें हिंसा का भाव जागृत रहता है।

अभी तक तो हमने यही सीखा है कि किसी प्राणी में दूसरों से जाति का जो भेद होता है वह केवल उसके गुणों पर निर्भर रहता है। इसलिए यदि हम यह कहें कि घोड़ा पहिले 'पशु' है और फिर 'घोड़ा' तो यह ठीक न होगा। यह तो ठीक है कि घोड़े में और अन्य पशुओं में कुछ समानता है परन्तु घोड़ा अपने 'घोड़ेपन' को छोड़कर पशु भी नहीं रह सकता। अपनी विशेषता छूट जाने पर वह अपने पशुत्व की सामान्य अवस्था भी स्थिर नहीं रख सकता। इसी प्रकार यदि मनुष्य अपनी मनुष्यता छोड़ दे—पूंछ उगाले, चारों हाथ-पैरों पर चलने लग जाय और अपने हाथों और बुद्धि को प्रयोग में न लावे तो वह केवल मनुष्य ही कहलाने का अधिकारी न रह जायगा बल्कि पशु भी कहलाने का अधिकारी नहीं रहेगा। वह बैल, गधा, भेड़ या बकरी किसी में सम्मिलित नहीं हो सकेगा। इसीलिए कहता हूं कि मनुष्य पशु भी उसी समय तक कहला सकता है जबतक उसमें मनुष्यता है।

......पशु का पाशविक व्यवहार करना स्वाभाविक है ? मैं जिस नीति पर चलता हूं वह नीति वानर, घोड़ा और भेंड़ ही नहीं, शेर-चीते और साँप-बिच्छू सबसे नाता और सम्बन्ध रखने की मुझे न केवल अनुमति बल्कि आज्ञा देती है—भले ये नातेदार मुझे अपना सम्बन्धी न मानते हों। नीति के जिन कठिन सिद्धान्तों को मैं स्वयं मानता हूं तथा जिनको मानना मैं हर व्यक्ति का कर्तव्य समझता हूं

उनके अनुसार यह एकतर्फ़ा नातेदारी निवाहने का धर्म आवश्यक है। यह सब कर्त्तव्य हम पर इसीलिए है कि केवल मनुष्य ही परमात्मा के स्वरूप के अनुसार बनाया गया है। हममें से बहुत से जो अपने इस स्वरूप को चाहे न पहिचानें परन्तु इससे इतने के सिवा और कोई अन्तर नहीं पड़ता कि हम वह लाभ उठाने से वञ्चित रह जाते हैं जो हमें अपना वास्तविक स्वरूप पहिचानने से होता है। जिस प्रकार भेड़ों में पला शेर अपना स्वरूप भूल जाता है और इसीलिए उसे उसके शेर होने का लाभ भी नहीं मिलता। फिर भी उसका स्वरूप तो शेर का ही स्वरूप है और अपना वह स्वरूप पहिचानते-पहिचानते ही क्षण भर में वह भेड़ों का राजा हो जाता है। किन्तु कोई भेंड़ कितना भी प्रयत्न करे, कभी शेर नहीं हो सकती। यह साबित करने के लिए कि मनुष्य परमात्मा के स्वरूप के अनुसार बना है, इस बात की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य में हम परमात्मा का स्वरूप दिखा दें। यदि हम एक में भी परमात्मा का स्वरूप दिखा दें तो हमारी बात सिद्ध हो गई। क्या कोई इस बात से इन्कार करेगा कि जो धार्मिक गुरु और नेता हुए हैं उनमें परमात्मा का स्वरूप नहीं था? किन्तु......वह तो कहते हैं कि मनुष्य ने अपने स्वरूप के अनुसार परमात्मा को बनाया है। इसके उत्तर में मैं इतना ही कह सकता हूं कि अभीतक संसार में भ्रमण करनेवालों की जो साक्षी है वह सब इसके विरुद्ध है। प्रति दिन इसी बात पर ज़ोर दिया जा रहा है कि भले किसी बेढंगे से बेढंगे स्वरूप में क्यों न हो परन्तु ईश्वराराधना ही मनुष्य को पशु से पृथक करती है।......

जो आत्म-निग्रह के मार्ग पर कुछ दूर चल चुका है उसे यह बताने की आवश्यकता ही नहीं रहती कि अहिंसा (प्रेम) न कि हिंसा (द्वेष) से ही मनुष्यमात्र, बल्कि यों कहिए कि संसार बँधा हुआ है। कुछ उदाहरण देकर......मेरी हिंसा सिद्ध करना चाहते हैं? परन्तु इससे मेरे लेखों के प्रति केवल उनकी अनभिज्ञता प्रकट होती है। यह आवश्यक नहीं कि सब लोग मेरे लेख पढ़ें ही किन्तु कम से कम उन लोगों को तो पढ़ ही लेना चाहिए जो मुझ पर आक्षेप करने का साहस करते हैं। मैंने केवल विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करने को कहा है। इसमें ब्रिटिश मजदूरों के प्रति हिंसा कैसे आती है? हम उनका बनाया नहीं, अपना बनाया कपड़ा पहिनते हैं। क्या हमने उन्हीं का बनाया कपड़ा पहिनने का ठेका ले रखा है? और हमारे उनके द्वारा बनाये कपड़े न पहिनने से ही वे यदि भूखों मरने लग जायं तो इसमें हमारा क्या दोष? हिंसा तो उल्टे वही करते हैं। ब्रिटिश मजदूरों का बनाया विदेशी कपड़ा भारत के सिर थोपा जाता है। यदि कोई शराबी शराब पीना छोड़ देता है तो क्या वह शराब की दुकान वाले के प्रति हिंसा

करता है? वह तो अपना और उसका दोनों का भला करता है। भारत भी जिस दिन विदेशी कपड़े का व्यवहार छोड़ देगा अपना और विदेशियों, दोनों, का भला करेगा।......

—यं० इं०। हि० न० जी० १५।७।'२६]

- यदि मनुष्य प्रकृति से ही हिंसात्मक हो तो संसार क्षण भर में नष्ट हो जाय।
- **अहिंसा (प्रेम) न कि हिंसा (द्वेष) से ही मनुष्यमात्र, बल्कि यों कहिए कि संसार बँधा हुआ है।**

२८. एकमात्र आधार

पराधीन और अत्यन्त परिमित शक्तिवाले मनुष्य का धर्म क्षण-क्षण परिवर्तित होता रहता है। उसकी भूमिका और उसका आधार एक ही होता है। उसे सत्य कहें चाहे अहिंसा।

—हि० न० जी० १६।९।'२६ 'धर्मसंकट' टिप्पणी]

२९. स्वदेश के लिए भी अहिंसा न छोड़ूँगा

सत्य और अहिंसा की नीति के अतिरिक्त मुझमें कोई नीतिचातुर्य नहीं है। स्वदेश और स्वधर्म के उद्धार हेतु भी मैं सत्य और अहिंसा को त्याग नहीं सकता।

—यं० इं० मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०। 'खरी टीका' लेख का अंश। २०।१।'२७]

३०. अहिंसा का संग्रह

...शठं प्रतिशाठ्यं के सिद्धान्त को मैं मानता नहीं हूँ। इसलिए जिस जगह शुद्धता, सत्य, अहिंसा इत्यादि का थोड़ा-सा भी दर्शन करता हूँ तो सूम जैसे धन का संग्रह करता है ठीक उसी तरह मैं ऐसे गुणों का संग्रह करने की चेष्टा कर आनन्दित होता हूँ।

—श्री घनश्यामदास बिड़ला को लिखे गये पत्र से। १६।३।'२७]

३१. सत्य-अहिंसा

मूल सत्य भी तो बहुत से नहीं हैं। वह तो केवल एक ही है और वह है स्वयं सत्य अथवा दूसरे शब्दों में अहिंसा।

—यं० इं०, मूल अंग्रेजी से। हि० न० जी०। 'सत्य एक है' लेख का अंश। २१।४।'२७]

३२. कायर कभी अहिंसक नहीं बन सकता

मेरा अहिंसाधर्म एक महान शक्ति है। उसमें कायरता और निर्बलता के लिए तनिक भी स्थान नहीं। एक हिंसा का उपासक अहिंसा का भक्त बन सकता है किन्तु एक कायर से तो कभी अहिंसक बनने की आशा की ही नहीं जा सकती।

—यं० इं०, मूल अंग्रेजी से। हि० न० जी०। 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' लेख का अंश। १६।६।'२७]

३३. अहिंसा व्यापक धर्म है

'सेक्रिफाइस' (बलिदान) का सच्चा अर्थ यह है कि हम इसलिए मर जायं कि दूसरों को जीवन प्राप्त हो; हम कष्ट उठायें ताकि दूसरों को आराम मिले।

दूसरे के लिए प्राणार्पण करना प्रेम की पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है, अर्थात् यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है। संसार में हम देखते हैं कि जीवन और मृत्यु का युद्ध होता रहता है किन्तु परिणाम मृत्यु नहीं, जीवन है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि अहिंसा सर्वव्यापक धर्म है।

—हि० न० जी०, १५।९।'२७]

३४. सत्य और अहिंसा

...मेरे लिए तो सत्य अहिंसा को छोड़कर और किसी साधन से आशा नहीं है। मैं जानता हूँ कि जब सब कुछ असफल होगा तब वे सफल होंगे। इसलिए चाहे मैं एक की लघुसंख्या में रह जाऊँ या मेरी ओर बहुमत हो, मैं तो उसी राह पर चलूंगा जो मुझे जान पड़ता है कि ईश्वर दिखा रहे हैं। केवल सामयिक नीति के रूप में तो आज अहिंसा किसी काम की नहीं है; यह वैसी नीति के रूप में तभी

कारगर हो सकती है जब कि हमारे बीच इसके विरुद्ध चलनेवाली शक्तियाँ न हों। किन्तु जब हमारा उनसे सामना पड़ता है जो हिंसा से विशेष स्थितियों में काम लेना अपना ध्येय मानते हैं तो काम-चलाऊ नीति के रूप में अहिंसा का सहारा टूट जाता है। अहिंसा में पूर्ण विश्वासी के विश्वास की कसौटी का समय तभी आता है। इसलिए मैं और मेरे विश्वास दोनों ही आज कसौटी पर परखे जा रहे हैं। और यदि हम सफल होते न मालूम पड़ें तो आलोचक मेरे ध्येय को दोष देने के बदले मुझे दोष दें। मैं जानता हूँ कि कभी-कभी मैं अपने ध्येय के विरुद्ध लड़ने को लाचार हो जाता हूँ। अब तक मैं ऐसा नहीं बन सका हूँ कि हिंसा का विचार भी न कर सकूं। किन्तु परमात्मा की दी हुई सम्पूर्ण शक्ति लगाकर मैं प्रयत्न कर रहा हूँ।

--यं० इं०। हि० न० जी० ८।१२।'२७]

- **केवल सामयिक नीति के रूप में तो आज अहिंसा किसी काम की नहीं है।**

३५. सूक्ष्म अहिंसा

[गुजरात विद्यापीठ के एक स्नातक ने इस बात की ओर गांधी जी का ध्यान आकर्षित किया था कि अनेक धर्मात्मा जन रेशमी वस्त्र का प्रयोग करते हैं। साधु-महात्मा मृगचर्म, व्याघ्रचर्म का उपयोग करते और उन्हें पवित्र मानते हैं। क्या इसमें हिंसा नहीं है? इस प्रश्न पर गांधी जी के विचार यहां दिये जा रहे हैं।--संपा०]

अहिंसा की दृष्टि से रेशम और व्याघ्र चर्मादि का त्याग किया जाना चाहिए। इसी दृष्टि से मोती तथा दूसरी बहुतेरी वस्तुओं का भी त्याग होना चाहिए। जान पड़ता है, जिस यग में रेशम और व्याघ्र चर्म के उपयोग का रिवाज चला, उस युग में लोग अहिंसा धर्म मानते थे, फिर भी ऐसी वस्तुएँ काम में लाते थे क्योंकि उस समय उन्होंने व्याघ्र चर्म और रेशम का उपयोग देखा और उसकी आवश्यकता मानी। इसलिए अहिंसा धर्म माननेवाला होने पर भी उन्होंने दोनों वस्तुओं का उपयोग किया। अहिंसा को मानते हुए भी हमारे पूर्वज यज्ञ में पशुओं की बलि चढ़ाते थे और हम देखते हैं कि आज भी कितने चढ़ाते हैं। वे पशु-बलि सम्बन्धी शास्त्र-वचन सासने रखकर कहते हैं कि यज्ञार्थ की गई हिंसा हिंसा नहीं है। इसी तरह हम दूसरे आदमी जो केवल वनस्पति इत्यादि का निरामिष आहार करते हैं वे वनस्पति इत्यादि में जीव होने पर भी उनका नाश करते हैं और मानते हैं कि इससे हमारी अहिंसा को जरा भी बाधा नहीं पहुँचती।

इन सब बातों से हमें यह सार मिलता है कि देहधारी सर्वांश में हिंसा से मुक्त नहीं रह सकता। केवल पानी और हवा पर रहनेवाला भी तो थोड़ी-बहुत

हिंसा करता ही है। इससे हम ऐसा नियम घटा सकते हैं कि जिसके उपयोग में जरा भी हिंसा है उसका त्याग जहाँ तक सम्भव हो करना चाहिए। ऐसा त्याग करते हुए भी त्याग न करनेवाले की निन्दा हम न करें और उसके प्रति उदार भाव रखें।

फिर भी ऊपर के हिसाब से खान-पान में अत्यन्त सादगी की आवश्यकता है, और मनुष्य प्राणी से निम्नकोटि के जीवों को बचा लेना हमारा धर्म है। हां, यह समझ लेना चाहिए कि इनमें पाली जानेवाली अहिंसा थोड़ी ही है, सर्वस्व नहीं है। हम नित्य देखते हैं कि ऐसी अहिंसा का अतिशय सूक्ष्मता के साथ पालन करनेवाला आदमी बहुत बड़ा हिंसक हो सकता है, और उसमें अहिंसा को लगन जरा भी न हो, यह सम्भव है। विरासत में चली आई हुई रूढ़ि के वश होकर हम अमुक वस्तुओं का उपयोग खान-पान में न करें तो इससे यह दावा नहीं कर सकते कि इन वस्तुओं के सम्बन्ध में हम अहिंसक हैं। रूढ़ि या आवश्यकता के कारण पाली जानेवाली अहिंसा में भौतिक परिणाम भले ही आवें किन्तु स्वयं अहिंसा एक ऊँचे प्रकार की भावना है, और उसका आरोपण तो उसी आदमी के सम्बन्ध में किया जा सकता है जिसका मन अहिंसक है और जो प्राणिमात्र के प्रति करुणा से, प्रेम से उमगा पड़ता है। स्वयं किसी दिन मांसाहार किया नहीं इसलिए आज भी नहीं करता है, किन्तु क्षण-क्षण में क्रोध करता है, दूसरों को लूटता है, लूटने में नीति-अनीति की पर्वा नहीं करता, जिसे लूटता है उसके सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करता, ऐसा आदमी किसी तरह अहिंसक मानने लायक नहीं है बल्कि यह कहना चाहिए कि वह घोर हिंसा करनेवाला है। इसके विपरीत वह मांसाहारी, जो प्रेम से उमगा पड़ता है, रागद्वेषादि से मुक्त है, सबके प्रति समभाव रखता है, अहिंसक है, पूजा करने योग्य है। अहिंसा का विचार करते समय हम सदा केवल खान-पान आदि का ही विचार करते हैं, यह अहिंसा नहीं कही जा सकती। यह तो मूर्च्छा है; जो मोक्षदायी है, जो परम धर्म है, जिसके निकट हिंसक प्राणी अपनी हिंसा छोड़ देते हैं, शत्रु बैर–भाव का त्याग करते हैं, कठोर हृदय पिघल जाते हैं, वह अहिंसा कोई अलौकिक शक्ति है और वह बड़े प्रयत्न के पश्चात्, बड़ी तपश्चर्या के बाद किसी किसी का ही वरण करती है।

—नं० जी०। हि० न० जी० १९।७।'२८]

- **देहधारी सर्वांश में हिंसा से मुक्त नहीं हो सकता।**
- **अहिंसा एक ऊँचे प्रकार की भावना है।**
- **अहिंसा का विचार करते समय हम सदा केवल खान-पान का ही विचार करते हैं। यह अहिंसा नहीं कही जा सकती। यह तो मूर्च्छा है।**

३६. अहिंसा, नीति या धर्म ?

[एक राष्ट्रीय शाला का शिक्षक-मण्डल गांधी जी से मिलने आया। इस पाठशाला से उन्हें बहुत प्रेम था। शिक्षक-मण्डल के एक सदस्य से प्रश्नोत्तर के दौरान गांधी जी ने इस गंभीर समस्या पर प्रकाश डाला कि अहिंसा को नीति-रूप में स्वीकार करना चाहिए अथवा धर्म-रूप में आत्मसात कर लेना चाहिए? यह वार्ता नीचे दी जाती है।—संपा०]

शिक्षक—मैं अहिंसा को आत्मोन्नति के लिए व्यक्तिगत रूप से धर्म मानता हूँ। लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में तो इसे केवल तात्कालिक नीति के तौर पर ही मानता हूं।

गांधी जी—(चौंककर) क्या आपकी शाला में इस तरह का मत रखनेवाले और भी कोई शिक्षक हैं?

शिक्षक—(गाँधी जी के चौंकने से सचेत होकर) आपकी और मेरी स्थिति में कोई भेद नहीं। इस समय तो मैं राजनीतिक क्षेत्र के लिए भी अहिंसाधर्म को मानता हूं क्योंकि मैं मानता हूं कि इस समय अहिंसा में ही देश का श्रेय है। यदि देश की परिस्थिति बदल जाय और मझे अहिंसा छोड़नी पड़े तो मैं शाला-संचालकों की आज्ञा बिना थोड़ा ही कुछ करनेवाला हूँ।

गांधी जी—(असन्तुष्ट भाव से) इसमें कितना बड़ा अन्तर है, यह आप क्यों नहीं देख पा रहे हैं? मैं श्रद्धा के साथ इसकी सेवा करता हूँ। आपको यदि यह लगे कि हिंसा से देश का कोई कल्याण होना सम्भव है तो उसी क्षण अहिंसा को छोड़ देंगे? लेकिन मैं तो अहिंसा और सत्य के लिए देश को होमने के लिए तैयार हूं, देश के लिए अहिंसा और सत्य को नहीं। इसके अतिरिक्त आप व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवहार में भेद करते हैं। मैं इसे नहीं समझ सकता। इन दोनों में कोई भेद है ही नहीं। इसकी परिसीमा कौन बाँध सकता है? कौन कह सकता है कि व्यक्तिगत व्यवहार कहाँ पूर्ण होता है और सामाजिक व्यवहार कहाँ से शुरू होता है? जो न्याय एक पर लागू होता है वही दूसरे पर भी होता है—यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे। इसके अतिरिक्त आप तो कहते हैं कि अहिंसा छोड़नी होगी तो शाला के व्यवस्थापक-मंडल की स्वीकृति के बिना मैं थोड़े ही ऐसा करनेवाला हूं। लेकिन मैं तो कहता हूँ कि उस समय आपको स्वीकृति प्राप्त करने की आवश्यकता ही न होगी क्योंकि उस समय तो आप यह कहेंगे कि देश के लिए शाला को होम देना आपका धर्म है। जिस तरह मैं कहता हूं कि सत्य और अहिंसा के लिए देश को होमना पड़े तो वैसा करने के लिए तैयार हूं।

आप यदि ऐसा कहें तो मैं इसके लिए आपका आदर ही करूँगा। मैं आपका दोष नहीं ढूंढ़ना चाहता। आपको तो वैसा ही करना चाहिए जैसी अन्तरात्मा की आज्ञा हो। मैं तो इस प्रश्न को दूसरी दृष्टि से देख रहा हूँ। इस समय देश में कई राष्ट्रीय शालाएँ हैं जिन्होंने अपने सूत्र के रूप में सत्य और अहिंसा को अंगीकार किया है। मेरी नज़र उनपर हमेशा रहती है। आमतौर पर लोगों की जो धारणा है उससे कहीं जल्दी अपना फैसला होनेवाला है और देश को इस विषय में अन्तिम पसन्दगी कर लेनी है। इस कसौटी पर ये शालाएँ सफल निकलेंगी, ऐसी आशा मैं रखता हूं। इन शालाओं में मात्र मुट्ठी भर आदमी हों और भले ही हम लोगों को भस्म हो जाना पड़े। अब तक मैं अपने को आपके हाथों में सुरक्षित समझता था। किन्तु अब मैं समझ गया। हाँ, इसके लिए आपको दुखी न होना चाहिए। यहाँ तो सिर्फ मेरे विचारने की बात है और मैं उसका विचार कर लूंगा।

—हि० न० जी० २५।१०।'२८]

- **मैं तो अहिंसा और सत्य-हेतु देश को होमने के लिए तैयार हूं, देश के लिए अहिंसा और सत्य को नहीं।**

३७. एक समस्या

एक मित्र लिखते हैं--

"आप तो कहते हैं कि मानवदेह से अहिंसा का सर्वांश में पालन अशक्य है। देहधारी कहीं न कहीं हिंसा करेगा ही। हिंसा बिना उसकी देह टिक ही नहीं सकती। तब इसे आप धर्म कैसे कहते हैं? जिसका पालन पूर्णता से न हो सके वह भला धर्म कैसे कहा जाय? उसकी कीमत ही क्या?"

मेरी नम्र सम्मति में तो जो इस देह-द्वारा पूर्णता से पालन किया जा सके, वह धर्म हो ही नहीं सकता। श्रद्धा के बिना धर्म की परीक्षा नहीं होती; नहीं हो सकती। और अगर इस अपूर्ण क्षणभंगुर देह में रहते हुए भी पूर्णता सम्भव हो तो श्रद्धा का कोई क्षेत्र ही नहीं रहता, आत्मा के गुण की अनन्तता का नाश होता है। अगर इस देह से पूर्णता सम्भव हो तो आज धर्म की खोज के लिए जो महान प्रयत्न करने पड़ते हैं वे न करने पड़ें क्योंकि एक पूर्ण उदाहरण को लेकर सभी उसकी नक़ल करेंगे। यदि इसी देह में पूर्णता सम्भव हो तो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय मिट जायँ और केवल एक ही सर्वमान्य धर्म प्रवर्तित हो।

आदर्श की आदर्शता उसकी अनन्तता में स्थित है अर्थात् उसकी दूरस्थता में छिपी हुई है। उसके चाहे जितने निकट जाइए किन्तु दूर का दूर ही रहता है।

ऐसा होने पर भी वह पास में ही रहता है क्योंकि उसके सत्य के बारे में हमारी श्रद्धा अविचल होती है। यह श्रद्धा ही हमारा जीवन और सर्वस्व है।

जिसने आसपास जलती हुई हिंसा की होली में अहिंसा को देखा, उसकी श्रद्धा वन्दनीय है। उसने जगत के ऊपर भारी से भारी उपकार किया किन्तु हिंसा की होली के बीच पड़े हुए हम हिंसा करते हुए भी पूजा अहिंसा की ही करें और उसी से देहधारी की हिंसामय स्थिति में से मोक्ष की रोज तीव्र बनती जानेवाली इच्छा का संग्रह करें। इसीलिए राय चन्दभाई ने गाया है। :—

जे पद श्री सर्वज्ञे दीठुं ध्यानमः।
कही शक्या नहि ते पद श्री भगवान जो।

अर्थात् जिस पद को ध्यान से सर्वज्ञ ने देखा उस पद का श्री भगवान भी वर्णन नहीं कर सकते।

अहिंसा का ध्यान करते हुए जिसकी अहिंसा-वृत्ति इतनी अधिक बढ़ जाती है कि उसका देह-सम्बन्धी मोह नष्ट हो जाता है वह वर्तमान देह को छोड़कर दूसरा शरीर धारण नहीं करता। किन्तु इस देह के लिए तो देह धारणयोग्य आवश्यक हिंसा उसके हिस्से में पड़ी ही है। देह अपना यह धर्म कैसे छोड़े ?

—न० ज०। मूल गुजराती। हि० न० जी० ८।११।'२८]

- **जो इस देह-द्वारा पूर्णता से पालन किया जा सके वह धर्म हो ही नहीं सकता।**
- **श्रद्धा के बिना धर्म की परीक्षा नहीं होती।**
- **आदर्श की आदर्शता उसकी अनन्तता में निहित है।**
- **श्रद्धा ही हमारा जीवन और सर्वस्व है।**

३८. अहिंसा का अन्वेषण

अहिंसा चेतना-युक्त प्रचण्ड शक्ति है। उसके अन्त या विस्तार को कोई न तो माप सका है, न माप सकेगा। अहिंसा है विश्व-प्रेम, जीवमात्र के विषय में करुणा और उसमें से प्रकट होनेवाली अपने देह को ही होम कर देने की शक्ति । यह प्रेम प्रकट होने में बहुत-सी भूलें भी हों तो उससे इस धर्म के विस्तार की शोध छोड़ी नहीं जा सकती। मार्ग की खोज में होनेवाली भूलें भी हमें उस मार्ग की ओर खोज में एक पग आगे ले जाती हैं।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० ८।११।'२८]

- **अहिंसा चेतना-युक्त प्रचण्ड शक्ति है।**
- **अहिंसा है विश्वप्रेम, जीवमात्र के विषय में करुणा और उसमें से प्रकट होने वाली अपनी देह को होम कर देने की शक्ति।**

३९. अहिंसा बनाम दया

नीचे लिखा पत्र बहुत पहले से मेरे पास पड़ा था। सोचा था कि फुरसत मिलने पर इसका उत्तर दूंगा। आज जहाज पर थोड़ी फुरसत मिली है। पत्र संक्षेप में इस प्रकार है:—

"जब आप दया और अनुकम्पा के भाव से प्रेरित होते हैं और काम करते हैं तब दया के बदले कई जगह अहिंसा शब्द का प्रयोग करते हैं। इससे ग़लतफहमी पैदा होना सम्भव है। वह पैदा होती है। मुझे यह भी कह देना चाहिए कि मानी हुई दया झूठी भी हो सकती है।

"आपके अहिंसा-सम्बन्धी विचार कई बार अर्थशास्त्र पर ही आधारित होते हैं। ऐसी हालत में अर्थशास्त्र और अहिंसा दोनों परस्पर-असंगत और विरोधी तत्व मालूम पड़ते हैं क्योंकि अहिंसा आत्मा से पैदा होने वाला एक भाव है जो सक्रिय नहीं होता लेकिन दया और अनुकम्पा व्यवहारजन्य भाव हैं। वे सक्रिय हैं। अहिंसा सक्रिय नहीं है। दया शब्द का अहिंसा के बदले और अहिंसा का दया के बदले उपयोग होने पर अहिंसा के सच्चे अर्थ का उल्लंघन होता है। इस कारण दया और अहिंसा के बीच का भेद जान लेने योग्य है।

"क्या किसी क्रूर और जंगली कही जाने वाली मनुष्यभक्षी जाति के प्रति प्रेम पैदा करके, दया उपजाकर, अन्य प्राणी और मनुष्य के बीच का विवेक समझाकर उसका मनुष्यभक्षण छुड़ाना और पशु के मांस से निर्वाह करने की बात कहना अथवा मांसाहारी व्यक्तियों को फल-फूल-वृक्ष आदि वनस्पति से जीवन निर्वाह करने की बात कहना, उन्हें अहिंसा-मार्ग बतलाना कहा जायगा? विचार करने पर यह एकांग विवेक प्रतीत होगा। एकांग होते हुए भी यह सदोष है। अहिंसा की दृष्टि में जीवमात्र समान हैं। इस कारण उपर्युक्त मार्ग अहिंसा का मार्ग नहीं है।

"क्या अहिंसा धर्म का अथवा धर्म मात्र का सब तरह के व्यवहार में हर एक काम के साथ स्पष्ट तौर पर आचरण करने का आग्रह करना भूल नहीं है?"

पत्र-लेखक की भावना सुन्दर है लेकिन मेरे विचार में उनका दया अहिंसा का अनुभव-अभ्यास कम है। अहिंसा और दया में उतना ही भेद है जितना सोने में और सोने के गहने में, बीज में और वृक्ष में। जहाँ दया नहीं, वहाँ अहिंसा नहीं। अतः यों कह सकते हैं कि जिसमें जितनी दया है उतनी अहिंसा है। अपने पर आक्रमण करनेवाले को मैं न मारूँ उसमें अहिंसा हो भी सकती है और नहीं भी। यदि उसे भयवश न मारूं तो वह अहिंसा नहीं हो सकती। दया-भाव से ज्ञानपूर्वक न मारने में ही अहिंसा है।

जो बात शुद्ध अर्थशास्त्र के विरुद्ध हो वह अहिंसा नहीं हो सकती। जिसमें परम अर्थ हो वह शुद्ध है। अहिंसा का व्यापार घाटे का व्यापार नहीं होता। अहिंसा के दो पलड़ों का जमा-खर्च शून्य होता है अर्थात् उसके दोनों पलड़े समान होते हैं। जो जीने के लिए खाता है, सेवा करने के लिए जीता है, मात्र पेट पालने के लिए कमाता है वह काम करते हुए भी अक्रिय है, वह हिंसा करते हुए भी अहिंसक है। क्रियाहीन अहिंसा आकाश-कुसुम के समान है। क्रिया हाथ पैर से होती हो, ऐसा नहीं, मन हाथ पैर की अपेक्षा बहुत ज्यादा काम करता है। विचार मात्र क्रिया है; विचार-रहित अहिंसा हो ही नहीं सकती। शरीरधारी मनुष्य के लिए ही अहिंसा-धर्म की कल्पना की गई है।

सर्वभक्षी जब दया से प्रेरित होकर भक्ष्य पदार्थों की मर्यादा निश्चित करता है तब उस हद तक वह अहिंसा धर्म का पालन करता है। इसके विपरीत जो रूढ़ि के कारण मांसादि नहीं खाता, वह अच्छा तो करता है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें अहिंसा का भाव है ही। जहाँ अहिंसा है वहाँ ज्ञानपूर्वक दया होनी ही चाहिए।

लेकिन अहिंसाधर्म सच्चा धर्म हो तो व्यवहार में हर तरह उसका आचरण करना भूल नहीं बल्कि कर्तव्य है। व्यवहार और धर्म के बीच विरोध नहीं होना चाहिए। धर्म का विरोधी व्यवहार छोड़ देने योग्य है। सब समय सब जगह सम्पूर्ण अहिंसा सम्भव नहीं, ऐसा कहकर अहिंसा को एक ओर रख देना हिंसा, मोह और अज्ञान है। सच्चा पुरुषार्थ तो इसमें है कि हमारा आचरण सदा अहिंसा के अनुसार हो। इस तरह आचरण करनेवाला मनुष्य अन्त में परमपद प्राप्त करेगा क्योंकि वह सम्पूर्णतया अहिंसा का पालन करने योग्य बनेगा। और यों तो देहधारी के लिए सम्पूर्ण अहिंसा बीज रूप ही रहेगी। देहधारण के मूल में ही हिंसा है। इसी कारण देहधारी के पालने योग्य धर्म का सूचक शब्द निषेधवाचक अहिंसा के रूप में प्रकट हुआ है।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० ४।४।'२९]

- **अहिंसा और दया में उतना ही फ़र्क है जितना सोने और सोने के गहने में, बीज और वृक्ष में।**
- **जहां दया नहीं वहां अहिंसा नहीं।**
- **जो बात शुद्ध अर्थशास्त्र के विरुद्ध हो, वह अहिंसा नहीं हो सकती।**
- **क्रियाहीन अहिंसा आकाश-कुसुम के समान है।**
- **विचार मात्र क्रिया है। विचार-रहित अहिंसा हो ही नहीं सकती।**
- **जहां अहिंसा है वहां ज्ञानपूर्वक दया होनी ही चाहिए।**
- **देहधारी के लिए सम्पूर्ण अहिंसा बीज रूप ही रहेगी।**
- **देहधारण के मूल में ही हिंसा है।**

४०. शुद्ध अहिंसा में श्रद्धा

मैं शुद्ध, पवित्र अहिंसा में श्रद्धा रखता हूँ। लाखों की जान मारकर हिंसात्मक साधनों-द्वारा भारत के लिए स्वराज्य पाने की सम्भावना में मैं विश्वास नहीं करता—दूसरे देशों में भले ही इसका परिणाम चाहे जो हुआ हो।

—'मेरी मर्यादाएँ' शीर्षक लेख का अंश। यं० इं०। हि० न० जी० १२।९।'२९]

४१. यज्ञ का अर्थ

[एक पाठक ने 'नवजीवन' में प्रकाशित गांधी जी के लेख 'किं धर्म?' का उल्लेख किया। इस लेख में गांधी जी ने लिखा था कि आग जलाने में भी हिंसा है। अतः इस आग में हरी या सूखी वस्तु का होम करना विशेष हिंसा है। पाठक ने इसकी ओर संकेत करते हुए लिखा कि गीता के कर्मयोग वाले अध्याय में लिखा है—यज्ञ द्वारा देवों को सन्तुष्ट करो, देवता तुम्हें सन्तुष्ट करेंगे। गीता के और भी अनेक श्लोक यज्ञ का समर्थन करते हैं। आजकल भी यज्ञ किये जाते हैं। क्या ये समस्त यज्ञ हिंसा के ही प्रतीक हैं?

गांधी जी ने उक्त पाठक को जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश यहां दिये जा रहे हैं।—संपा०]

यह बात अनुभवसिद्ध है कि आग जलाने में हिंसा होती है। शास्त्रों में ऐसा कहीं नहीं कहा गया है कि पहिले जो यज्ञ होते थे उनमें हिंसा न थी; हां, यज्ञार्थ हिंसा को शास्त्रों ने निर्दोष मान लिया था। उदाहरणार्थ, हममें से जो लोग निरामिषाहारी हैं वे मानते हैं कि वनस्पति खाने से भी हिंसा होती है। फिर भी वे इसे निर्दोष समझकर सन्तोष मान लेते हैं या मन को फुसला लेते हैं।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि प्राचीन काल में भी ऋषि-मुनियों ने जो पशु-बलि आदि की—यदि उन्होंने की हो—वे उस समय की आवश्यकतानुसार भले ही उचित कही जा सकें किन्तु आज अनावश्यक हैं, अनार्य और निर्दय हैं। मैं इस युग के लिए पशुबलि आदि को धार्मिक क्रिया तो मानता ही नहीं बल्कि अधार्मिक समझता हूं और रातदिन यही मनाता रहा हूँ कि इसका लोप हो, यह मिट जाय।...

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० १२।९।'२९]

४२. अहिंसा बनाम कायरता

अहिंसा और कायरता परस्पर-विरोधी शब्द हैं। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है, कायरता बुरी से बुरी बुराई है। अहिंसा का मूल प्रेम में है, कायरता का घृणा में। अहिंसक सदा कष्ट-सहिष्णु होता है, कायर सदा पीड़ा पहुंचाता है। सम्पूर्ण अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता, कायरता सदा पतित बनाती है।...

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० ३१।१०।'२९]

४३. अहिंसा पर अटल श्रद्धा

[कांग्रेस कार्यसमिति ने द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने की स्थिति को ध्यान में रखकर इस आशय का प्रस्ताव पास किया कि कांग्रेस की नीति में अहिंसा का प्रथम स्थान नहीं है। इसके कारण आशंका हुई कि कांग्रेस कहीं गांधी जी का नेतृत्व न खो बैठे। कुमारी प्रेमा कंटक ने कार्यसमिति के प्रस्ताव से व्यथित होकर गांधी जी को एक पत्र लिखा। इसका उत्तर देते हुए गांधी जी ने जो विचार व्यक्त किये, वे अहिंसा की सनातन दैववाणी के प्रतिरूप बन गये। उनके पत्र के आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।--संपा०]

...तू क्यों निराश होती है? तेरी श्रद्धा कितनी छिछली है? सारा जगत् विरोध करे फिर भी जो टिक सके, वही है श्रद्धा; उसी का मूल्य है। उसके बिना अहिंसा कैसे टिक सकती है? तू यह कहे कि तेरे अन्दर अहिंसा है ही नहीं तो यह दूसरी बात हुई। ऐसा हो तो इसमें तू क्या कर सकती है? परन्तु ऐसा हो तो इसमें निराशा किसलिए? तब तो जो हो उसे तुझे देखते रहना चाहिए? मुझमें सच्ची अहिंसा होगी तो तुम लोगों में से किसी न किसी में वह ऐन मौके पर दीप्त होगी ही। परन्तु अगर मुझमें नहीं होगी तो तुम सब में वह कहां से आयेगी। इसलिए परीक्षा तो मेरी हो रही है। इससे मुझे तो खुशी से नाचना चाहिए।...

--कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। पत्र का सम्भावित समय अक्तूबर १९२९ का कोई दिन।]

४४. अहिंसा और सत्य ही छोटे से छोटा मार्ग है

यदि करोड़ों लोगों के आलस्य और जड़ता को दूर करना हो और एक दूसरे का गला काटनेवाली कौमों को आपस में मिलाना हो तो अहिंसा और सत्य ही इस देश के लिए अनिवार्य है। पूर्ण स्वतन्त्रता पाने में एक साल का अर्सा लगे या कई साल बीत जाय तब भी अहिंसा और सत्य ही इसे पाने के छोटे से छोटे रास्ते हैं। . . .
—न० जी०। मूल गुजराती। 'महासभा' लेख। हि० न० जी० १६।१।'३०]

४५. अहिंसा मेरा अभिन्न अंश

अहिंसा मेरे प्राण के साथ जुड़ी हुई चीज है। उसे मैं कभी छोड़ नहीं सकता। अहिंसा पर मेरा विश्वास दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। और मुझे उसकी सफलता का प्रत्यक्ष अनभव भी होता रहता है।
—'क्या अहिंसा छोड़ दी ?' लेख। हि० न० जी० २३।१। ३०]

४६. अहिंसा मानव स्वभाव

यदि अहिंसा मनुष्य जाति का सर्वोच्च स्वभाव है, धर्म है तो वह बड़ी से बड़ी बाधाओं का मुकाबला करके भी अपना रास्ता साफ करेगी।
—यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी० ६।२।'३०]

४७. अहिंसा की राह

सत्य का, अहिंसा का रास्ता जितना सीधा है, उतना ही सँकरा है, तंग है; तलवार की धार पर चलने-जैसा है। नट लोग जिस डोरी पर एक निगाह रखकर चल सकते हैं, सत्य अहिंसा की डोरी उससे भी पतली है। ज़रा-सी गफ़लत हुई कि नीचे गिरे ही समझो। क्षण-क्षण की साधना से ही उसके दर्शन हो सकते हैं।

पर सत्य के पूरे दर्शन तो इस देह से नामुमकिन है। उसकी तो सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है। क्षणजीवी देह के ज़रिये शाश्वत धर्म का साक्षात्कार—दर्शन सम्भव नहीं। इसलिए आखिरकार श्रद्धा का उपयोग तो करना ही पड़ता है।

इसलिए जिज्ञासु—जानने की इच्छा रखने वाले—ने अहिंसा पाई। मेरी राह में जो मुसीबतें आयें उन्हें मैं झेलूं या उनके लिए जितना नाश करना पड़े वह

करता जाऊं और अपना रास्ता तय करूँ? ऐसा सवाल जिज्ञासु के सामने पैदा हुआ। अगर वह नाश करता चला जाय तो वह मार्ग तय नहीं करता, लेकिन जहां था वहीं रहता है जैसा उसने देखा। अगर मुसीबतें झेलता है तो वह आगे बढ़ता है। पहिले ही नाश के वक्त उसने देखा कि जिस सत्य को वह ढूंढ़ता है वह बाहर नहीं, बल्कि उसके भीतर है। इसलिए वह ज्यों-ज्यों नाश करता चला जाता है, त्यों-त्यों पिछड़ता जाता है, सत्य से दूर हटता जाता है।

हमें चोर सताते हैं तब उनसे बचने के लिए हम उन्हें सजा देते हैं। उस क्षण वे भाग जरूर जाते हैं, लेकिन दूसरी जगह डाका डालते हैं। लेकिन वह दूसरी जगह भी हमारी ही है, इसलिए हम तो अंधेरी गली में टकराये। चोरों का उपद्रव तो बढ़ता ही जाता है, क्योंकि उन्होंने तो चोरी को अपना पेशा मान लिया है। हम देखते हैं कि इससे बेहतर तो यह है कि चोरों का उपद्रव बरदाश्त किया जाय, ऐसा करने से चोरों को समझ आयगी। इतना सहन करने पर हम देखते हैं कि चोर कोई हमसे अलग नहीं हैं। हमारे लिए तो सब सगे हैं, मित्र-दोस्त हैं। उनको सज़ा नहीं दी जा सकती। लेकिन उपद्रव सहते जाना ही काफी नहीं है। उससे तो कायरता पैदा होती है। इसलिए हम एक और विशेष धर्म महसूस करते हैं। चोर अगर हमारे भाईबन्द हों तो वह भावना उनमें भी पैदा करनी चाहिए। इसलिए उन्हें अपनाने के तरीके ढूंढ़ने की तकलीफ हमें ज़रूर उठानी चाहिए। यह है अहिंसा की राह। इसमें ज्यादा दुःख न्योतने की ही बात आती है; अटूट धीरज सीखने की बात आती है। और अगर वह धीरज हममें रहा तो आखिर चोर साहूकार बनता है; हमें सत्य का ज्यादा साफ दर्शन होता है। इस तरह हम दुनिया को दोस्त बनाना सीखते हैं; ईश्वर की महिमा हम ज्यादा महसूस करते हैं; कठिनाइयां झेलने पर भी हमारी शान्ति, हमारा सुख बढ़ता है; हममें साहस, दिलेरी और हिम्मत बढ़ती है; हम शाश्वत और अशाश्वत का भेद ज्यादा समझने लगते हैं; करने लायक और न करने लायक़ को पहचानना हमें आता है। हमारा अभिमान गल जाता है; नम्रता बढ़ती है; परिग्रह अपने-आप घट जाता है; और तन में भरा हुआ मैल सदा घटता जाता है।

यह अहिंसा, आज हम जिसे मोटे तौर पर समझते हैं, सिर्फ वही नहीं है। किसी को कभी नहीं मारना, यह तो अहिंसा है ही। तमाम खराब बिचार हिंसा है। द्वेष-वैर-डाह हिंसा है। किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जिसकी जगत् को ज़रूरत है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है। लेकिन जो कुछ हम खाते हैं वह जगत के लिए ज़रूरी है। जहां हम खड़े हैं वहां सैकड़ों सूक्ष्म जीव पड़े हैं और दुखी होते हैं। वह जगह उनकी है। तो क्या हम आत्महत्या करें? तो भी छुटकारा

नहीं होता। अगर विचार में हम शरीर के तमाम लगाव छोड़ दें, तो आखिर शरीर हमें छोड़ेगा। यह अमूर्छित स्वरूप सत्यनारायण है। यह दर्शन अधीरता से हो ही नहीं सकता। तन अपना नहीं है, वह तो दूसरे को देने के लिए मिली हुई पराई चीज़ है, ऐसा समझकर उसका जो उपयोग हो वह करके हम अपनी राह तय करें।

मुझे लिखना तो था आसान ढंग से, लेकिन लिखा गया मुश्किल। फिर भी जिसने अहिंसा के बारे में ज़रा भी सोचा होगा उसको यह समझने में दिक्कत नहीं होनी चाहिए।

इतना सब जान लें: बगैर अहिंसा के सत्य की खोज असम्भव है। अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत—ताने-बाने की तरह एक-दूसरे में मिले हुए हैं, जैसे सिक्के के दो रुख या चिकनी चकती के दो पहलू। उसमें उलटा कौनसा और सीधा कौनसा? फिर भी अहिंसा को हम साधन मानें और सत्य को साध्य। साधन हमारे बस की बात है। इसलिए अहिंसा परम धर्म हुई और सत्य परमेश्वर हुआ। साधन की फिक्र हम करते रहेंगे, तो साध्य के दर्शन किसी न किसी दिन ज़रूर करेंगे। इतना निश्चय किया तो जग जीते। हमारे मार्ग में चाहे जो संकट आये; ऊपरी निगाह से देखने पर हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई दे, तो भी हम विश्वास को न छोड़ते हुए एक ही मंत्र का जाप करें कि सत्य है। वही है। वही एक परमेश्वर है। उसका साक्षात्कार करने का एक ही मार्ग, एक ही साधन अहिंसा है, उसे मैं कभी नहीं छोड़ूंगा। जिस सत्यरूप परमेश्वर के नाम से यह प्रतिज्ञा की है, वह उसे निभाने का बल दे।

—२९।७।'३० : **'मंगलप्रभात' से।]**

- **तमाम खराब विचार हिंसा है। द्वेष-बैर-डाह हिंसा है। किसी का बुरा चाहना हिंसा है।**
- **तन अपना नहीं है; वह तो दूसरे को देने के लिए मिली पराई चीज है।**
- **बगैर अहिंसा सत्य की खोज असम्भव है।**

४८. हिंसा की सामान्य परिभाषा

जिस कार्य से किसी को कष्ट हो वह हिंसा है।

—हि० न० जी० ७।५।'३१]

४९. बदले की इकाइयां

असत्य का सत्य से, अविवेक का विवेक से, उद्दण्डता का शान्ति से, हिंसा का सहनशीलता से और बुराई का भलाई से बदला लें।

—हि० न० जी० १४।५।'३१]

५०. अहिंसा : करोड़ों की मुक्ति का साधन

भारत के करोड़ों भूखों मरनेवालों की मुक्ति सत्य और अहिंसा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

—हि० न० जी० १८।६।'३१]

५१. अहिंसा : शाश्वत सिद्धान्त

मेरे लिए अहिंसा एक शाश्वत सिद्धान्त है। और अहिंसा-सम्बन्धी बारह वर्ष के सतत उन्नतिशील सुखपूर्ण अनुभव के पश्चात् यह सम्भव नहीं कि महासभा सरलता से इसका त्याग कर दे।

—हि० न० जी० ९।७।'३१]

५२. भारत का भविष्य अहिंसा पर निर्भर है !

भारत के भविष्य में मेरा विश्वास है। मेरा वह विश्वास हिल जायगा यदि अहिंसा एक जीवित शक्ति नहीं बन जाती।

—यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी० १३।८।'३१]

५३. अहिंसा : एक तात्विक विवेचन

[गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए लन्दन जाते समय गांधी जी ने राजपूताना जहाज पर अहिंसा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये थे। उनके विचारों के अंश महादेव ह० देसाई के विवरण से संकलित किये जाते हैं।—संपा०]

जाने या अनजाने हम दैनिक जीवन में एक दूसरे के प्रति अहिंसक रहते हैं। समस्त सुसंगठित समाजों की रचना अहिंसा के आधार पर हुई है। मैंने देखा है

कि विनाश के बीच भी जीवन स्थित है अतएव उससे बढ़कर कोई नियम होना चाहिए। केवल उसी नियम के अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित समाज का भान हो सकता है और उसी में जीवन का आनन्द है। और यदि जीवन का वही नियम है तो हमें दैनिक जीवन में उसे बरतना चाहिए।

जहाँ भी विसंगति हो, जहां आप का विरोधी से सामना हो उसे प्रेम से जीतिए। मैंने इसे जीवन में इसी प्रकार व्यवहृत किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि मेरी समस्त कठिनाइयां सुलझ गईं। मुझे जो ज्ञात हुआ वह यही कि प्रेम की विधि से जितनी सफलता मिलती है विघात-विधि से कदापि नहीं मिलती।

भारत में हम इस नियम के प्रयोग का बड़े-से-बड़े परिमाण में प्रत्यक्ष प्रदर्शन कर चुके हैं। मैं यह दावा इसलिए नहीं करता कि अहिंसा तीस कोटि भारत-वासियों के हृदय में अवश्य ही घर कर गई है किन्तु मैं इतना दावा अवश्य करता हूं कि अन्य किसी सन्देश की अपेक्षा इतने कम समय में यह कहीं अधिक गहराई से प्रवेश कर गई है।

हम सब समान रूप से अहिंसक नहीं रहे, अधिकांश के लिए अहिंसा नीति के रूप में रही है। इतने पर भी मैं चाहता हूँ कि आप देखें कि क्या अहिंसा की संर-क्षिका शक्ति के अन्तर्गत देश ने असाधारण प्रगति नहीं की है?

मानसिक अहिंसा की स्थिति तक पहुँचने के लिए अत्यन्त कठिन प्रयत्न की आवश्यकता होती है। एक सैनिक के जीवन की भाँति हम चाहें या न चाहें हमारे जीवन में उसका अनुशासन की भाँति पालन होना चाहिए। किन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि जब तक उसके साथ मस्तिष्क का हार्दिक सहयोग न होगा उसका केवल वाह्य आचरण ढोंग होगा और स्वयं उस व्यक्ति तथा दूसरों के लिए ढोंग होगा। पूर्णावस्था उसी दशा में प्राप्त होती है जब मस्तिष्क, शरीर और वाणी इन तीनों का समुचित एवं समान रूप से मेल होता है।

किन्तु यह एक गहरे मानसिक संघर्ष का विषय है। उदाहरणार्थ यह बात नहीं कि मुझे क्रोध न आता हो किन्तु मैं लगभग सभी अवसरों पर अपने भावों को वशवर्ती रखने में सफल हो जाता हूं। परिणाम कुछ भी हो, मेरे हृदय में अहिंसा-नियम का मन से पालन करने के लिए निरन्तर सजग संघर्ष होता रहता है। ऐसा संघर्ष मुझे उसके लिए पर्याप्त शक्तिशाली बना देता है।

अहिंसा शक्तिशाली का अस्त्र है; निर्बल व्यक्ति के लिए वह सरलता से ढोंग बन सकती है। भय और प्रेम परस्पर-विरोधी बातें हैं। प्रेम इस बात की चिन्ता नहीं करता कि विनिमय में उसे क्या मिलता है। प्रेम स्वयं और संसार के साथ युद्ध करता है और अन्त में अन्य समस्त भावों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है।

मेरा और मेरे साथियों का यह दैनिक अनुभव है कि यदि हम सत्य और अहिंसा के नियम को अपने जीवन का नियम बनाने का निश्चय कर लें तो हमारी प्रत्येक समस्या का स्वयमेव निराकरण हो जायगा। मेरे लिए सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

मैं नहीं जानता कि मानव जाति प्रेम के नियम अथवा विधि का अनुसरण करेगी या नहीं। किन्तु इसमें मुझे चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं; नियम अथवा विधि स्वयं कार्य करेगी, जिस प्रकार हम मानें या न मानें गुरुत्वाकर्षण का नियम अपना काम करता ही रहेगा।

प्राकृतिक नियमों के प्रयोग-द्वारा आश्चर्यजनक बातें उत्पन्न करने वाले वैज्ञानिक की भांति कोई व्यक्ति प्रेम का वैज्ञानिक यथार्थ के साथ प्रयोग करे तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें उत्पन्न कर सकेगा क्योंकि अहिंसा की शक्ति विद्युत आदि प्राकृतिक शक्तियों से कहीं अधिक, अनन्त और सूक्ष्म है। जिस व्यक्ति ने हमारे लिए प्रेम के नियम अथवा विधि की खोज की वह वर्तमान वैज्ञानिकों से कहीं बड़ा वैज्ञानिक था। केवल हमारा शोध अभी वाञ्छित सीमा तक नहीं पहुँचा है अतः प्रत्येक के लिए उसके परिणाम देख सकना सम्भव नहीं।

कुछ भी हो, यह उसकी एक विशेषता है जिसके अन्तर्गत मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। प्रेम की इस विधि के लिए मैं जितना अधिक प्रयत्न करता हूं उतना ही अधिक मुझे जीवन में आनन्द, इस सृष्टि की योजना में आनन्द, अनुभव होता है। इससे मुझे शान्ति मिलती है और मैं प्रकृति के उन रहस्यों का अर्थ जान पाता हूं जिनका वर्णन करने की मुझमें शक्ति नहीं है।

—यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी० १।१०।'३१]

- **समस्त सुसंगठित समाजों की रचना अहिंसा के आधार पर हुई है।**
- **जीवन मृत्यु के बीच स्थित है।**
- **मानसिक अहिंसा की स्थिति तक पहुँचने के लिए अत्यन्त कठिन प्रयत्न की आवश्यकता होती है।**
- **अहिंसा शक्तिशाली का अस्त्र है।**
- **भय और प्रेम परस्पर-विरोधी बातें हैं।**
- **मेरे लिए सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।**
- **अहिंसा की शक्ति विद्युत आदि प्राकृतिक शक्तियों से कहीं अधिक—अनन्त और सूक्ष्म है।**

५४. अहिंसा पर दृढ़ आस्था

मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूं कि मेरा देश अहिंसा द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा और मैं अगणित बार संसार के समक्ष यह बात दुहरा देना चाहता हूं कि अहिंसा को त्याग कर मैं अपने देश की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करूंगा। अहिंसा के साथ मेरा परिणय इतना अविच्छिन्न है कि मैं अपनी इस स्थिति से विलग होने की अपेक्षा आतमहत्या कर लेना अधिक पसन्द करूंगा। यहां मैंने सत्य का उल्लेख नहीं किया यह केवल इसलिए कि सत्य अहिंसा के सिवा अन्य रूप में प्रकट हो ही नहीं सकता।

—यं० इं०। मूल अंग्रेज़ी। हि० न० जी० १९।११।'३१]

- **अहिंसा के साथ मेरा परिणय इतना अविच्छिन्न है कि मैं अपनी इस स्थिति से विलग होने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना अधिक पसन्द करूँगा।**

५५. अहिंसा : एक स्पष्टीकरण

द्वेष के कारण बिना कोई मनुष्य द्वेष नहीं करता। इसलिए हमारे सामने कोई द्वेष का कारण उपस्थित करे तो भी द्वेष न करते हुए उससे प्रेम करना, उस-पर दया करना, उसकी सेवा करना ही अहिंसा है। प्रेमी के प्रति किये जाने वाले प्रेम में अहिंसा नहीं है। वह तो व्यवहार है। अहिंसा को दान कहेंगे। प्रेम के बदले प्रेम करना फ़र्ज अदा करने के बराबर है।

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ५।२।'३२]

५६. अहिंसक सत्य

....'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्', यह व्यावहारिक वचन नहीं सिद्धान्त है। प्रियम् का अर्थ है अहिंसक। मैंने तुझे जो बात आवेश में कही होगी वही यदि नम्रता से कहता तो जो कड़वा असर रह गया वह न रहता। अहिंसक सत्य के बारे में ऐसा हो सकता है कि वह बोलते समय कठोर लगे। किन्तु परिणाम में वह अमृत-मय लगना चाहिए। यह अहिंसा की अनिवार्य कसौटी है।...

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। २५।२।'३२]

५७. राष्ट्र की उन्नति का साधन

किसी भी राष्ट्र को उन्नति के रास्ते पर जाना हो तो उसे सत्य और अहिंसा का आश्रय लेना चाहिए।

--कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ८।४।'३२]

५८. मुक्तिदायिनी अहिंसा

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न--मुक्ति देने वाली वस्तु कौन सी है?

गांधी जी--अहिंसा।

--यरवदा जेल ३।७।'३२। महादेव भाई की डायरी, भाग १, पृष्ठ २६७]

५९. समाज की अहिंसक परिकल्पना

. . . .ज्यादा से ज्यादा लोगों का ज्यादा[1] से ज्यादा भला[2] और जिसकी लाठी उसकी भैंस के नियम को मैं नहीं मानता। सबका भला सर्वोदय और कमज़ोर पहिले, यह नियम मनुष्य के लिए है। हम दो पैर वाले मनुष्य कहलाते हैं लेकिन चौपायों के स्वभाव को अभी तक छोड़ नहीं सके हैं। इसे छोड़ना हमारा धर्म है। . . .

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ६।७।'३२]

६०. अहिंसा का अर्थशास्त्र

. . . .अब तू जो साहित्य पढ़ रही है उसके बारे में जैसा तूने लिखा वैसी मान्यता एक समय थी, आज नहीं है। मेल्थूस[3] की लिखी कुछ बातें लोग समझ

१. ग्रेटेस्ट गुड आफ़ दि ग्रेटेस्ट नम्बर।

२. सर्वाइवल आफ़ दि फ़िटेस्ट।

३. टामस राबर्ट मैल्थूस (१७६६–१८३४) प्रसिद्ध अंग्रेज अर्थशास्त्री। इनकी स्थापना थी कि संसार में खुराक की अपेक्षा, जनसंख्या की वृद्धि अधिक तेजी से हो रही है।

नहीं पाये और कुछ ग़लत हैं। जो नियम मनुष्येतर प्राणियों पर लागू होता है वह मनुष्य पर नहीं होता। मनुष्येतर प्राणी दूसरे जीवों को मारते हैं और उन्हें खाकर जीते हैं। मनुष्य इस स्थिति से निकलने का प्रयत्न करता है। इसी में उसकी अहिंसा है। शरीर है तब तक वह पूर्ण अहिंसा सिद्ध नहीं कर सकता। लेकिन वह भावना के रूप में अहिंसा का पोषण करे तो कम से कम अहिंसा द्वारा निर्वाह कर सकता है। खुद मर कर दूसरों को जीने देने की तैयारी में मनुष्य की विशेषता है। जैसे-जैसे मनुष्य बढ़ते हैं वैसे-वैसे खुराक भी बढ़ती है। अभी उसमें और भी बढ़ने की शक्ति है। डार्विन[1] की खोज के बाद तो बहुत-सी नई खोजें हुई हैं। जो पुस्तक तू पढ़ रही है वह पुरानी मालूम होती हैं। नई हो या पुरानी, बड़ी से बड़ी संख्या का भला और जिसकी लाठी उसकी भैंस के सिद्धान्त ग़लत हैं।

अहिंसा सबके भले का विचार करती है। ईश्वर के यहां सबके भले का ही न्याय होता है। यह न्याय कैसे किया जाय और ऐसे न्याय में मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है, यह खोजना हमारा काम है। इस नीति से विरुद्ध नीति प्रस्तुत करना हमारा काम नहीं। लेकिन यह विषय बड़ा है। मैंने तो संक्षेप में थोड़ा-सा बताया है! . . .

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ३०।७।'३२]

६१. अप्रिय सत्य और हिंसा

(एक प्रश्नोत्तर)

प्रश्न—सच होते हुए भी अप्रिय बोलें तो क्या हिंसा न होगी?

उत्तर—सच बात से किसी का जी दुखे तो वह हिंसा नहीं।

—यरवदा जेल, ३१।७।'३२। महादेव भाई की डायरी, भाग १, पृष्ठ ३३०।]

६२. अहिंसक का धर्म

. . . .निराश्रित को आश्रय देना अहिंसक मनुष्य का धर्म है। निराश्रित कौन है, यह तो प्रत्येक परिस्थिति के आधार पर ही बतलाया जा सकता है। . . .

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ३।८।'३२]

१. चार्ल्स राबर्ट डार्विन (१८०९–१८८२) प्रसिद्ध अंग्रेज प्राणिशास्त्री।

६३. यम, नियम और अहिंसा

मैं तो इतना ही बता सकता हूँ कि हमें सत्य और अहिंसा के पथ पर चलना है। और ऐसा करने के लिए यम-नियमादि का पालन आवश्यक है।

—यरवदा जेल, १४।८।'३२। महादेव भाई की डायरी, भाग १, पृष्ठ ३५६]

६४. शस्त्र-युद्ध की मूर्खता

महाभारत में अर्जुन मात हो जाता है और अन्त में कोई नहीं बचता, इस वर्णन-द्वारा महाभारतकार ने शस्त्र-युद्ध की मूर्खता सिद्ध की है।

—यरवदा जेल, २८।८।'३२। महादेव भाई की डायरी, भाग १, पृष्ठ ३८२।]

६५. शरीर का अस्तित्व और अहिंसा

शरीर का अस्तित्व पूर्ण अहिंसा का विरोधी है। पूर्ण अहिंसा के बिना सत्य का साक्षात्कार असम्भव है। किन्तु जो निर्विकार हो गया है, वह बहुत निकट तक जाता है। इतना पर्याप्त होना चाहिए।

—यरवदा जेल, ११।९।'३२। महादेव भाई की डायरी, भाग २, पृष्ठ १५।]

६६. अहिंसक वाणी

....तू स्वीकार करेगी कि हमारे अन्दर जहर है या नहीं, इसकी परीक्षा हम स्वयं अचूक रूप में कर सकते हैं, ऐसा नियम नहीं है। जहर का संग्रह करने की हमारी इच्छा भले न हो लेकिन उससे यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे अन्दर जहर नहीं है। वह हमारे न चाहने पर भी हम पर चढ़ता है। जिसमें क्रोध है उसमें जहर तो है ही, यह बात तू शायद स्वीकार न करे। यह स्वीकार न करे तो कहना होगा कि हम दोनों जहर का एक ही अर्थ नहीं करते। बा ने मुझे बहुत बार जहरीला माना है, ऐसा मुझे याद है। मैं उसके आक्षेप से इन्कार कैसे कर सकता हूं? मैं अपने बचन में जहर न मानूं इससे क्या? उसे मेरे बचन चुभे, यही मेरे

लिए काफी होना चाहिए। जो वचन पूर्णतः सत्य और अहिंसामय हैं वे कभी किसी को चुभते नहीं। शुरू में चुभनेवाले मालूम हों, यह अलग बात है, लेकिन ऐसा अनुभव करनेवाला ही बाद में उनके अमृत को स्वीकार करता है।

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। २२।१।'३३]

६७. अहिंसा असिधारा

अहिंसा असिधारा है।

—यरवदा जेल, २।२।'३३। नारायणदास भाई के नाम पत्र से]

६८. हिंसा बनाम अहिंसा

अहिंसा ऐसी चीज़ है, जो आदर्श रूप है। इसलिए हम कह सकते हैं कि हिंसा जितनी कम की जा सके उतनी करनी चाहिए। हां, बिलकुल अहिंसक बनकर जीना सम्भव नहीं। पर हिंसा को जीवन का नियम कहें, तब तो अधिक से अधिक हिंसा करनी चाहिए ऐसी बात हो जाती है। उधर हम देखते हैं कि जालिम भी हिंसा का घमंड न करके यह कहते हैं कि जहाँ तक शक्य था हमने कम हिंसा करने की कोशिश की।

—यरवदा जेल, १९।४।'३३। महादेव भाई की डायरी, भाग ३, पृष्ठ २३३।]

६९. अहिंसा : एक विचार

. . . .अहिंसा से स्वराज्य दिलानेवाला मैं कौन ? यदि मुझमें सचमुच अहिंसा होगी तो उसकी छूत लगे बिना हरगिज नहीं रहेगी। मुझे अपने पर कम श्रद्धा है लेकिन अहिंसा पर अटूट श्रद्धा है। जगत् ने इस महान सिद्धान्त को जान लिया है। परन्तु उसका आचरण बहुत थोड़ा हुआ है। मुझे तो रोज उसके नये घूंट पीने को मिलते हैं क्योंकि मेरे लिए तो वही कल्पवृक्ष है। इस दुनिया में मेरे लिए और कुछ सम्भव नहीं है क्योंकि सत्यनारायण से मिलने का कोई दूसरा मार्ग मुझे नहीं मिला है। और इसके मिले बिना जीवन व्यर्थ लगता है। इसलिए अहिंसा का मार्ग कठिन हो या सरल, मुझे तो उसी मार्ग से जाना है। यदि मेरी मृत्यु के बाद मारकाट ही मचे तो समझना कि मेरी अहिंसा बहुत थोड़ी अथवा झूठी थी, अहिंसा का सिद्धान्त कभी झूठा नहीं हो सकता। अथवा यह भी हो सकता है

कि अहिंसा सिद्ध करने से पहिले हमें रक्त की वैतरणी से गुजरना पड़े। सन् २० में राजनीति में अहिंसा आई; उसके बाद क्या चौरीचौरा[1] इत्यादि की घटनाएं नहीं हुईं? सरकार ने अपने जुल्मों में कोई कसर रखी है? परन्तु मेरा विश्वास है कि यह सारी हिंसा होते हुए भी अहिंसा ने अपना प्रभाव खूब डाला है। फिर भी वह समुद्र में बिन्दु मात्र है। मेरा प्रयोग आगे बढ़ता ही जाता है। भगवान करे तेरी श्रद्धा कभी विचलित न हो।....

--कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ४।१२।'३४]

७०. अहिंसा : परम पुरुषार्थ

यह जगत् हिंसामय है। इसमें अहिंसामय बनकर रहना ही पुरुषार्थ है। ...किसी बकरे को न मारना ही अहिंसा नहीं है। सब से प्रेम करना ही अहिंसा है।

--मगनबाड़ी, वर्धा। जनवरी-फरवरी '३५। श्री बलवन्त सिंह : 'बापू की छाया में']

७१. युद्ध का नहीं, प्रेम का देवता

कैनन शेप्पर्ड एवं अन्य दूसरे सच्चे तथा उत्साही ईसाई इंग्लैण्ड में युद्धों के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे हैं। दिल्ली के 'स्टेट्समैन' ने चार लेख लिखकर इस आन्दोलन की अत्यधिक निन्दा की है। इस पत्र ने अपने पक्ष-समर्थन में भगवद्-गीता को भी घसीटा है:—

"असल में, ईसाई धर्म की वास्तविक किन्तु कठिन शिक्षा यही मालूम पड़ती है कि समाज को अपने शत्रुओं से लड़ना चाहिए, परन्तु साथ ही उनसे प्रेम भी करना चाहिए।

"मि० गांधी भी इस पर विशेष रूप से ध्यान दें कि गीता की भी साफ़-साफ़ यही शिक्षा है। कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि विजय उसे ही मिलती है जो पूर्णतया निर्भय और निर्वैर होकर लड़ता है। सचमुच, इस महाकाव्य के द्वितीय अध्याय ने एक विवेकशील युद्ध-विरोधी तथा एक सच्चे योद्धा के बीच, सर्वोच्च भूमिका

१. उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में स्थित चौरीचौरा थाने को घेर कर लोगों ने उसे जला दिया था। थाने में मौजूद समस्त पुलिस कर्मचारी जीवित ही जल मरे थे।

पर सोचने पर भी, सारा विवाद समाप्त कर दिया है। स्थानाभाव के कारण, हम उसमें से अधिक उद्धरण तो नहीं दे सकते परन्तु वह सम्पूर्ण काव्य (गीता) एक बार नहीं, बारम्बार पढ़ने की चीज है।"

इन लेखों का लेखक कदाचित् यह नहीं जानता कि आतंकवादियों ने भी इन्हीं श्लोकों का हवाला दिया है। सच्ची बात तो यह है कि निर्विकार चित्त से पढ़ने पर मुझे तो, भगवद्गीता में इस लेखक ने जो अर्थ लगाया है उससे ठीक विपरीत अर्थ मिला है। वह भूल जाता है कि पश्चिम के युद्ध-विरोधी जिस अर्थ में विवेकशील कहे जाते हैं वैसा अर्जुन नहीं था। अर्जुन तो युद्ध का हिमायती था। पहिले कई बार वह कौरवों की सेना से लोहा ले चुका था। उसके हाथ-पांव तो तब ढीले पड़ गये जब उसने दोनों सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार देखा और उनमें अपने प्यारे-से-प्यारे स्वजनों तथा पूज्य गुरुजनों को पाया। न तो वहां मानवता के प्रति प्रेम था, और न युद्ध के प्रति घृणा ही थी, जिससे प्रेरित होकर अर्जुन ने कृष्ण से वे प्रश्न पूछे थे। और कृष्ण भी ऐसी परिस्थिति में दूसरा कोई उत्तर दे ही नहीं सकते थे। महाभारत तो रत्नों की एक खान है, जिनमें से गीता एक किन्तु सबसे देदीप्यमान रत्न है। लिखा है कि उस युद्ध में लाखों योद्धा एकत्र हुए थे और दोनों ओर से अवर्णनीय अमानुषिकताएँ बरती गई थीं। इन लाखों की सेना में से केवल सात को जीवित रखकर तथा उन्हें वह निस्सार विजय प्रदान करके इस महाकाव्य के अमर कवि ने तो युद्ध की निरर्थकता ही सिद्ध की है। किन्तु युद्ध को केवल एक मूर्खतापूर्ण और धोखे की चीज़ सिद्ध करने के अतिरिक्त, महाभारत इससे भी ऊंचा सन्देश हमें देता है। मनुष्य को यदि एक अमर प्राणी समझा जाय, तो महाभारत उसका एक आध्यात्मिक इतिहास है, और इसके वर्णन में एक ऐतिहासिक घटना का उसने उपयोग मात्र किया है, जो तत्कालीन छोटे-से जगत् के लिए तो बड़ी महत्वपूर्ण थी, परन्तु आजकल की दुनिया के लिए कोई भी महत्व नहीं रखती। अनेक आधुनिक आविष्कारों के कारण आज तो यह सारा संसार हस्तामलकवत् (हथेली पर रखे हुए आँवले के समान) मालूम होने लगा है। उसके किसी एक कोने में घटी हुई घटना का प्रभाव, दूर-दूर तक समस्त संसार में फैल जाता है। यह बात उस समय नहीं थी। हमारे हृदयों में सत और असत् के बीच रात-दिन जो सनातन संघर्ष चल रहा है, महाभारतकार उसे इस कथानक द्वारा एक अमरकाव्य के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। वह बताता है कि यद्यपि अन्त में तो सत्य की ही जय होती है, तो भी असत् किस प्रकार सशक्त होकर अत्यन्त विवेकशील पुरुष को भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना देता है। महाभारत सदाचार का एक मात्र मार्ग भी हमें बताता है।

किन्तु भगवद्गीता का वास्तविक सन्देश जो भी हो, शान्ति-स्थापन-आन्दोलन के नेताओं के लिए तो गीता की शिक्षा नहीं, बाइबिल की शिक्षा महत्व रखती है, क्योंकि उसी को उन्होंने अपना आध्यात्मिक पथ-दर्शक बना रखा है। फिर बाइबिल का अर्थ भी तो कई प्रकार से लगाया जाता है। उन्हें बाइबिल का वह अर्थ स्वीकार नहीं है, जो साधारणतः ईसाई धर्माधिकारी लगाते हैं। उन्हें तो वह अर्थ मंजूर है जो श्रद्धायुक्त अन्तःकरण से उसके पढ़ने पर अवगत होता है। असल में सबसे महत्वपूर्ण चीज़ तो है युद्धविरोधियों का अहिंसा अर्थात् प्रेमधर्मविषयक ज्ञान। अहिंसा का अर्थ वहुत व्यापक है। अंग्रेजी का 'नान-वायोलेंस' शब्द उसके लिए विल्कुल अपर्याप्त है। 'स्टेट्समैन' के ये लेख युद्ध-विरोधियों के लिए एक खासी चुनौती ही हैं। मुझे दुःख है कि इस आन्दोलन के विषय में मुझे पूरी जानकारी नहीं है। युद्ध-विरोधियों के निकट भले मेरे विचारों का विशेष महत्व न हो, किन्तु जहाँ तक मुझे भीतरी बातों का पता है, कुछ लोग तो ज़रूर उसका खयाल करेंगे क्योंकि वे भी प्रायः मुझसे पत्र-व्यवहार करते हैं। और अब तो वे एक पग और आगे वढ़ गये हैं क्योंकि उन्होंने रिचर्ड ग्रेग की अहिंसा-महिमा (पावर आफ़ नान-वायोलेंस) पुस्तक को लगभग अपनी पाठ्य पुस्तक बना लिया है। लेखक (श्री ग्रेग) के शब्दों में यह पुस्तक अहिंसा के दावे का, जैसा कि मैं उसे समझता हूं, पाश्चात्य संसार की भाषा में प्रतिपादन है। इसलिए बिना किसी प्रकार की दलील इत्यादि दिये, यदि मैं यहां अहिंसा की सफलता की कुछ शर्तें तथा अप्रकट अर्थ लिख दूं, तो कदाचित् धृष्टता न होगी :—

१. अहिंसा परमश्रेष्ठ मानव-धर्म है, पशुबल से वह अनन्तगुण महान और उच्च है।

२. अन्ततोगत्वा वह उन लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचा सकती जिनकी उस प्रेमरूपी परमेश्वर में सजीव श्रद्धा नहीं है।

३. मनुष्य की स्वाभिमान एवं सम्मान-भावना की वह सबसे बड़ी रक्षक है। हां, वह मनुष्य की चल-अचल सम्पत्ति की सदा रक्षा करने का आश्वासन नहीं देती—हालांकि मनुष्य यदि उसका अच्छा अभ्यास कर ले तो शस्त्रधारियों की सेनाओं की अपेक्षा वह इसकी अधिक अच्छी तरह रक्षा कर सकती है। यह तो स्पष्ट है कि अन्याय से अर्जित सम्पत्ति तथा दुराचार की रक्षा में वह ज़रा भी सहायक नहीं हो सकती।

४. जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसा का अवलम्बन करना चाहें, उन्हें आत्म सम्मान के अतिरिक्त, अपना सर्वस्व (राष्ट्रों को तो एक-एक आदमी) गँवाने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए वह दूसरे के देशों को हड़पने अर्थात् आधुनिक

साम्राज्यवाद से, जो कि अपनी रक्षा के लिए पशबल पर निर्भर करता है, बिल्कुल मेल नहीं खा सकता।

५. अहिंसा एक ऐसी शक्ति है जिसका सहारा बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री पुरुष सब ले सकते हैं, बशर्ते कि उनकी उस करुणामय में तथा मनुष्य-मात्र में सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसा को अपना जीवन-सिद्धान्त बना लें, तो वह हमारे सम्पूण जीवन में व्याप्त होनी चाहिए। यों कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़ने से लाभ नहीं हो सकता।

६. यह समझना एक ज़बर्दस्त भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए ही लाभदायक है, जन-समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिए धर्म है उतना ही वह राष्ट्रों के लिए भी धर्म है।

--मूल अंग्रेजी। ह० ज० ५।९।'३६। ह० से० ५।९।'३६]

- **महाभारत तो रत्नों की खान है, जिनमें से गीता केवल एक किन्तु सबसे अधिक देदीप्यमान रत्न है।**
- **मनुष्य को यदि एक अमर प्राणी समझा जाय तो महाभारत उसका एक आध्यात्मिक इतिहास है।**
- **अहिंसा का अर्थ बहुत व्यापक है। अंग्रेजी का नान-वायोलेंस शब्द उसके लिए बिल्कुल अपर्याप्त है।**
- **अहिंसा परमश्रेष्ठ मानव-धर्म है। पशुबल से वह अनन्तगुण महान एवं उच्च है।**

७२. जीवन-धर्म

केनन शेप्पर्ड के युद्ध-विरोधी आन्दोलन की 'स्टेट्समैन' ने जो टीका की थी उसके उत्तर में अपने पिछले लेख में मैंने कुछ दलीलें पेश की थीं। 'स्टेट्समैन' में उनके प्रत्युत्तर में अब दलीलों से भरा हुआ लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में मेरे पक्ष का खण्डन करने का प्रयत्न बड़ी चतुराई से किया गया है।

लेखक कहता है कि भगवद्गीता तो उसीके पक्ष का समर्थन करती है, आतंकवादी का नहीं। सर्जन अपने मरीज़ पर कुछ बल-प्रयोग करता है। पर यह उस मरीज़ के फायदे के लिए ही है। किन्तु इसके उद्देश्य को छोड़कर जो बल-प्रयोग होता है, उसमें आप कोई विभाजक रेखा नहीं खींच सकते। इसी महाभारत में, जिसका कि गीता एक छोटा-सा अध्याय मात्र है, एक जगह रात में किये गये कुछ निर्दोषों के बध का इतना घृणोत्पादक और विस्तृत वर्णन है कि, यदि इस सभ्य युग में युद्धों

का हमें अनुभव न होता तो शायद कोई यह विश्वास भी न करता कि कहीं ऐसी भी घृणोत्पादकता हो सकती है।

यह सर्वथा सत्य है, चाहे यह सत्य भयानक भले ही हो, कि आतंकवादी बिल्कुल ईमानदारी और सच्चे दिल से अपने सिद्धान्त और व्यवहार में गीता को अपना मार्ग-दर्शक समझकर उसका उपयोग करते हैं। कुछेक को तो वह कंठाग्र भी है। और यदि कोई उनकी दलीलें सुने तो कहना पड़ेगा कि उनमें बल भी है। बात केवल इतनी सी है कि मैं जो गीता का अर्थ लगाता हूँ उसका उनके पास सिवा इसके कोई जवाब नहीं कि मेरा अर्थ गलत है और उन्हीं का अर्थ सत्य है। किन्तु इसका उत्तर तो समय ही देगा कि किसका अर्थ ठीक है। गीता कोई निरी सैद्धान्तिक पुस्तक तो है नहीं। वह तो एक ऐसी जीती-जागती किन्तु मूक मार्गदर्शिका है, जिसके आदेशों को वही मनुष्य समझ सकता है, जो धैर्यपूर्वक प्रयत्न करता रहता है।

'स्टेट्समैन' का लेखक इसके बाद केनन शेप्पर्ड की तुलना अर्जुन के साथ करता है। निःसन्देह, यह उपमा तो गलत ही है और जल्दबाज़ी में दी गई है। अर्जुन पाण्डवों की सेना का अधिपति था। अपने सामने के उस भयंकर दृश्य पर विचार करते ही वह तो किंकर्तव्यमूढ़ हो गया। वह खूब अच्छी तरह जानता था कि एक सेनाधिपति की हैसियत से उसका क्या धर्म था। परन्तु साथ ही वह यह भी जानता था कि उसे तो अपने ही चचेरे भाइयों से युद्ध करना था। वास्तव में उसकी मूर्छा का कारण तो उसकी यह क्षणिक दुर्बलता ही थी। ऐसे आनबान के प्रसंग पर यदि वह लड़ने से इन्कार कर देता तो समरभूमि में एक विचित्र गड़बड़ी और अव्यवस्था पैदा हो जाती। साथ ही, उसकी अपनी, उसके असंख्य मित्रों की और अनुयायियों की बदनामी होती सो अलग। उसे तो उस भयंकर नर-हत्या में अपने साथियों-सहित भाग लेना था, जिसके लिए उसने अपने को और अपने साथियों को भी प्रशिक्षण दे रखा था। ऐसी जगह पर यह कल्पना करना बिल्कुल बेकार है कि यदि कहीं सचमुच अचानक उसके हृदय में यह प्रकाश उदय हो जाता कि उसे मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन करना चाहिए तो क्या होता।

परन्तु हम आशा करें कि इस अनमोल चीज़ ने डिक शेप्पर्ड और उनके साथियों के हृदय में स्थान पा लिया है। जो हो, जहां तक मुझे पता है, उनकी बात अजुन से बिल्कुल भिन्न है। वे किसी ऐसी सेना के नायक तो हैं नहीं, जो युद्ध के लिए मैदान में व्यूहबद्ध खड़ी हो। उनके लिए स्वजन-परजन का कोई भेदभाव नहीं है। अपने को कोई जो चाहे कहे, उनके लिए तो सब मनुष्य—चाहे वे किसी वर्ण और देश के हों—समान हैं। उन्होंने शुद्ध अन्तःकरण से ईश्वर स्मरणपूर्वक संसार का—यही एक सबसे बड़ी जीवन-पुस्तक है—खूब अच्छी तरह अध्ययन किया और

अन्त में उन्हें इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि अपने निजी और स्वदेश के स्वार्थ के लिए भी वे किसी मानवबन्धु को चोट नहीं पहुँचा सकते। इसलिए वे युद्ध में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप से भाग नहीं ले सकते। अब इसी बात का, प्रेम और शान्ति -धर्म का——मनुष्यमात्र के प्रति सद्भाव का उपदेश एवं प्रचार वे अपने पड़ोसियों के बीच करने का दूसरा क़दम उठा रहे हैं। अर्जुन ने कभी यह स्थिति ग्रहण नहीं की थी।

किन्तु 'स्टेट्समैन' के लेखक का धनुष तो अनेक प्रत्यंचाओं का है न? उसकी सबसे ज़ोरदार दलील तो यह है कि वह अहिंसा अथवा प्रेम-धर्म को मानवधर्म स्वीकार ही नहीं करता। और यदि अहिंसा या प्रेम-धर्म सचमुच हमारा जीवन-धर्म नहीं है तब तो मेरी सारी दलीलें निस्सार हैं। फिर तो हम युद्धों को कभी टाल ही नहीं सकते। वे बराबर हर बार अधिकाधिक भीषण रूप में अपना दौरा करते ही रहेंगे और मैं यह सिद्ध नहीं कर सकता——और अपने दैनिक कार्यक्रम में से कुछ समय निकालकर किसी अखबार में लेख लिख कर तो कदापि नहीं——कि अहिंसा ही हमारे जीवन का आदि स्रोत और अन्तिम उद्देश्य है। परन्तु मैं कुछ ऐसी सूचनाएँ ज़रूर देने की हिम्मत करता हूँ, जो इस परमधर्म को समझने में सुगमता उत्पन्न कर सकती हैं।

सबसे पहिली बात तो यह है कि आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं उन सबने न्यूनाधिक ज़ोर के साथ इसका उपदेश किया है। यदि अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन-धर्म न होता, तो इस मर्त्यलोक में हमारा जीवन कठिन हो जाता। जीवन तो मृत्यु पर प्रत्यक्ष और सनातन विजयरूप है। यदि मनुष्य और पशु के बीच कोई मौलिक और सबसे महान् अन्तर है तो वह यही है कि मनुष्य दिन-दिन इस धर्म का अधिकाधिक साक्षात्कार कर सकता है और अपने व्यक्तिगत जीवन में उस पर अमल भी कर सकता है। संसार के प्राचीन और अर्वाचीन समस्त सन्त पुरुष अपनी-अपनी शक्ति और पात्रता के अनुसार इस परम जीवन-धर्म के ज्वलन्त उदाहरण थे। निस्सन्देह यह सच है कि हमारे अन्दर छिपा हुआ पशु कई बार सहज विजय प्राप्त कर लेता है। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह धर्म मिथ्या है। इससे तो केवल सिद्ध होता है कि यह आचरण में कठिन है। और यह क्यों न हो? जो उच्चता में सत्य के समकक्ष है वह कठिन नहीं होगा तो क्या होगा? जिस दिन उसका आचरण हमारे लिए सहज, सरल और सार्वभौम हो जायगा, उस दिन स्वर्लोक इस भूमि पर ही अवतीर्ण हो जायगा। यों तो मैं जानता हूँ कि स्वर्ग और पृथिवी सब हमारे ही अन्दर है। हम पृथिवी से तो परिचित हैं किन्तु अपने अन्दर जो स्वर्ग है उससे हम बिल्कुल अपरिचित हैं। यदि हम यह मान लेते हैं कि कम-से-कम कुछ लोगों के लिए

तो अहिंसा व्यावहारिक वस्तु है, तब तो यह कहना बड़े गर्व की बात होगी कि दूसरे लोग इस पर अमल करने की क्षमता ही नहीं रखते। हम जानते हैं कि हमारे पूर्वज, जो बहुत दूर के नहीं कहे जा सकते, मनुष्य का मांस खाते थे। उनमें और भी कई ऐसी बुराइयां थीं जिन्हें हम आज घृणा की दृष्टि से देखते हैं। निस्सन्देह उन दिनों भी डिक शेप्पर्ड-सरीखे लोग रहे ही होंगे और लोगों ने उनका मखौल भी उड़ाया होगा, बल्कि काठ में भी डाल दिया होगा, क्योंकि लोगों में वे ऐसी बेहूदा बातों का प्रचार करते होंगे कि मनुष्य को मनुष्य का मांस नहीं खाना चाहिए। आधुनिक विज्ञान का युग तो ऐसी घटनाओं के उदाहरणों से भरा पड़ा है कि जो बात कल असम्भव मालूम हो रही थी वही आज सम्भव हो गई। परन्तु अध्यात्म-विज्ञान की सफलताओं के मुकाबिले में भौतिक विज्ञान की सफलताएँ बिल्कुल नगण्य-सी हैं। और अध्यात्म-विज्ञान—थोड़े में प्रेमधर्म—हमारा जीवन-धर्म ही तो है। मैं जानता हूँ कि यह कोई ऐसी चीज़ थोड़े ही है, जिसे दलीलों से सिद्ध किया जा सके। यह तो उन लोगों के प्रत्यक्ष जीवन से सिद्ध हो सकता है, जो परिणामों की ओर से निरपेक्ष बन कर इस धर्म का अपने जीवन में पालन करते हैं। बिना बलिदान के संसार में कोई सच्चा लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। और चूँकि इस धर्म को प्रत्यक्ष कर दिखाना स्वयं ही एक सच्चे-से-सच्चा लाभ है, इससे उसके लिए बलिदान भी सबसे बड़ा ही आवश्यक होगा।

मेरी दलीलों के उत्तर में 'स्टेट्समैन' के लेखक ने जो दूसरी दलीलें पेश की हैं उनका उत्तर देने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि यदि इस नियम की सच्चाई को वह मानते हैं तो उनकी सारी दलीलें निस्सार हैं। और यदि नहीं मानते या उसकी सच्चाई में उन्हें सन्देह है तो उनकी दलीलें अपने आप सत्य हो जाती हैं।

परन्तु चलते-चलाते एक बात और स्पष्ट कर दूँ। व्यक्तिगत अथवा राष्ट्रीय लाभ से जो सम्मान मिलता है उसे लेखक तुच्छ समझता है। वह कहता है—जब कोई राष्ट्र स्वेच्छा से अपना नाश कर ले तो उसका सम्मान कहां रह गया ? परन्तु यहां किसी का अपने-आप या दूसरे के द्वारा नाश का तो प्रश्न ही नहीं है। मेरा तो आशय उस राष्ट्र से है जो अपने सम्मान की रक्षा के लिए निर्भयतापूर्वक डटकर खड़ा हो जाता है और दूसरे के द्वारा अपना नाश होने देता है। उदाहरण के लिए, हिन्दुस्तान को ही लीजिए। मान लीजिए कि हिन्दुस्तान पर शत्रु चढ़ाई करने आते हैं और हिन्दुस्तानी उनके आगे कंधा नहीं डालते; यहां तक कि सारे देश में एक भी आदमी नहीं बचता और सब मारे जाते हैं। वह स्त्री जो किसी शोहदे के पापपूर्ण प्रस्तावों के विरोध में अहिंसापूर्वक अपने प्राणों की बाज़ी लगा देती है, अपनी तथा स्त्री जाति की निःसन्देह सेवा ही करती है। यही प्रह्लाद ने किया था। उसने अपनी

निष्ठा नहीं छोड़ी, बल्कि अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए अपनी जान भी जोखिम में डाल दी। मसीह ने भी अपनी श्रद्धा और धर्म को तिलाञ्जलि देने के बजाय एक चोर-डाकू की मौत मरना पसन्द करके अपनी और मानव जाति की लाज रख ली।
—मूल अंग्रेजी। ह० ज० २६।९।'३६। ह० से० २६।९।'३६]

- वह (गीता) ऐसी जीती-जागती किन्तु मूक मार्गदर्शिका है जिसके आदेशों को वही आदमी समझ सकता है जो धैर्यपूर्वक प्रयत्न करता रहता है।
- यदि अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन-धर्म न होता तो इस मर्त्यलोक में हमारा जीवन कठिन हो जाता।
- जीवन तो मृत्यु पर प्रत्यक्ष और सनातन विजय-रूप है।
- हम पृथिवी से तो परिचित हैं किन्तु अपने अन्दर के स्वर्ग से बिल्कुल अपरिचित हैं।

७३. हिंसा की भूख शान्त करने वाली अहिंसा

[राष्ट्रधर्मी संत श्री तुकड़ो जी महाराज १४।७।'३६ को गांधी जी के सान्निध्य में एक मास तक रहने के लिए वर्धा आये थे। एक दिन गांधी जी ने अहिंसा के सम्बन्ध में बातें करते हुए एक कथा सुनाई। एक गरीब एवं धनिक का घर पास-पास था। एक दिन की बात है कि गरीब के घर चोर घुसे। गरीब ने उन चोरों की परीशानी का खयाल कर कहा—जो कुछ मेरे पास है आपको दिये देता हूँ, और चीथड़ों में से निकाल कर १०–५ रुपयों की एक पोटली उनके हवाले कर दी। चोरों को विस्मय हुआ किन्तु लोभवश अधिक विचार न कर उन्होंने धनिक के घर धावा बोल दिया। धनिक जग रहा था और गरीब के घर की सारी चर्चा स्वयं सुनी थी। उसने सोचा कि जब इस गरीब ने अपने-आप सम्पूर्ण सञ्चित रक़म चोरों के हवाले कर दी तो मैं भी क्यों न अपनी पूँजी चोरों को दे दूँ? फलतः चोरों के आने पर उसने भी सब धन लाकर सामने रख दिया। चोर चकराये कि यह सब हो क्या रहा है। उनके हृदय में मन्थन चलने लगा। मन में राम जग गये और वे गरीब एवं धनी दोनों का धन छोड़ और आगे से चोरी न करने की प्रतिज्ञा कर लौट गये; साधु हो गये। यह दृष्टान्त देने के बाद बापू जी ने उसी प्रसंग को अहिंसा पर लागू कर दिया।—संपा०]

मैं हिंसा के मुख में अहिंसा को इसी तरह झोंक देना चाहता हूँ। आखिर कभी तो हिंसा की भूख शान्त होगी। यदि दुनिया को शान्ति से जीना है तो मेरे जान दूसरा और रास्ता नहीं है।
—बलवन्त सिंह : 'बापू की छाया में'। अनुमानतः जुलाई-अगस्त '३६]

७४. हिन्दू धर्म की शिक्षा

केनन शेप्पर्ड के नेतृत्व में चलनेवाले शान्ति-आन्दोलन पर हाल ही में लिखे गये मेरे लेखों के सिलसिले में एक मित्र लिखते हैं :—

"मेरा तो यह मत है कि गीता की विषयभूत तथा उससे पहिले की श्री कृष्ण और अर्जुन की बातचीत का विचार न करें तो भी हिन्दू धर्म यह निश्चित राय नहीं देता कि जहां तक सुसंगठित आक्रमण का सम्बन्ध है, अहिंसा से ही काम लिया जाय। हां, यदि हम यह अर्थ निकालना चाहें तो हमें अपने सम्पूर्ण उत्कृष्ट धर्मग्रन्थों के सम्बन्ध में बहुत अधिक खींचतान करनी पड़ेगी। निःसन्देह दया-भाव अथवा प्रेम-भाव को हिन्दू धर्म ने सबसे ऊँचा धर्म बताया है। परन्तु उसका भाव यह तो कदापि नहीं जिसका आप या ये शान्तिवादी उपदेश कर रहे हैं, और इसी उद्देश्य से हर चीज को रूपक बता देना तो ठीक नहीं होगा।"

मैंने अपनी 'अनासक्तियोग' नामक गीता की टीका की भूमिका में यह स्वीकार किया है कि गीता कोई अहिंसा की मीमांसा के रूप में या युद्ध की निन्दा करने के लिए नहीं लिखी गई है। निःसन्देह, वर्तमान हिन्दूधर्म भी युद्ध का ऐसा निषेध नहीं करता जैसा कि मैं कर रहा हूँ। और जहां तक हमें पता है, जिस रूप में हिन्दूधर्म का पालन किया जाता था उसमें भी युद्ध का इतना निषेध नहीं है। परन्तु मैंने तो केवल गीता की शिक्षा और हिन्दूधर्म के सिद्धान्तों का एक नवीन किन्तु स्वाभाविक एवं न्याय-संगत अर्थ जनता के सामने पेश किया है। अन्य धर्मों की बात छोड़ भी दें परन्तु हिन्दू धर्म तो निरन्तर विकास करता आया है। कुरान या बाइबिल की तरह उसका कोई एक निश्चित धर्म-ग्रन्थ नहीं है। फिर उसके धर्म-ग्रन्थों में विकास और वृद्धि भी होती रही है।

स्वयं गीता को ही लीजिए। उसने कर्म, संन्यास, यज्ञ इत्यादि का बिलकुल भिन्न अर्थ प्रतिपादित किया है। हिन्दू धर्म के अन्दर उसने नया जीवन डाल दिया है। आचार का एक मौलिक मार्ग बताया है। परन्तु इसके मानी यह तो नहीं हो सकते कि गीता में जो कहा है वह पुराने धर्म-ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं हो सकता था। गीता ने तो केवल उन भावों को भाषाबद्ध कर दिया है, जो उन ग्रन्थों में गर्भित थे। मैंने संसार के कई धर्मों का श्रद्धापूर्वक अध्ययन और मनन किया है। और विशेषतः गीता-प्रतिपादित हिन्दू-धर्म के पालन का अपनी शक्ति भर पूरा यत्न भी किया है। इसी श्रद्धा और अनुभव के आधार पर बिना किसी प्रकार की खींचातानी किये हिन्दूधर्म का एक व्यापक और विशाल स्वरूप जनता के सामने रखने का मैंने यत्न किया है—वह रूप नहीं जो असंख्य धर्मग्रन्थों में दबा पड़ा है। मैंने तो हिन्दू धर्म

का वह सजीव स्वरूप देश के सामने रखा है, जो अपने दुखी बालक को सान्त्वना देनेवाली माता के समान है। और मेरा यह दावा है कि इसमें कोई नई बात नहीं की; अपने पूर्वपुरुषों के चरण-चिह्नों का ही मैंने इसमें अनुगमन किया है। हम जानते हैं कि एक समय वे हमारे पूर्वज क्रुद्ध देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्राणियों की बलि देते थे। उनके वंशजों ने, जो हमारे निकट के पूर्वपुरुष थे, इस बलिदान में भिन्न अर्थ पाया। उन्होंने यह बताया कि बलिदान प्राणियों का नहीं, हमारे अधम विकारों का हो और वह क्रुद्ध देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नहीं, बल्कि अपने अन्तर में विराजमान प्रभु को प्रसन्न करने के लिए हो। मेरा तो यही मत है कि गीता-धर्म की निश्चित शिक्षा यही है कि हम सब शान्ति की उपासना करें, चाहे इसके लिए हमें अपने प्राण भी अर्पण कर देने पड़ें तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं। मानव जाति की यह सर्वोच्च आकांक्षा है।

महाभारत और रामायण दो ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनको करोड़ों हिन्दू जानते हैं, और अपने मार्ग-दर्शन के लिए पढ़ते भी हैं। वे रूपक हैं, यह तो भीतरी प्रमाण से ही सिद्ध है। माना कि उनमें अधिकांश में ऐतिहासिक व्यक्तियों का ही वर्णन है परन्तु फिर भी इससे हमारे पक्ष को कोई बाधा नहीं पहुँचती। प्रत्येक महाकाव्य में सत् और असत् शक्तियों के बीच चलनेवाले सनातन संघर्ष का वर्णन होता है। इसलिए हर हालत में मैं यह तो स्वीकार नहीं कर सकता कि मैंने पहिले से अपने कुछ विचार बना लिये हैं, और उनका समर्थन करने के उद्देश्य से मैं हिन्दूधर्म या गीता की खींचा-तानी करना चाहता हूँ। मैं तो कहता हूँ कि मेरे विचार वास्तव में गीता, रामायण, महाभारत और उपनिषदों के अध्ययन का ही परिणाम हैं।

—मूल अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से० ३।१०।'३६]

- **गीता कोई अहिंसा की मीमांसा के रूप में या युद्ध की निन्दा करने के लिए नहीं लिखी गई है।**
- **हिन्दू धर्म निरन्तर विकास करता आया है।**
- **हिन्दू धर्म के अन्दर उस (गीता) ने एक नया जीवन डाल दिया है और आचार का एक मौलिक मार्ग बताया है।**

७५. अहिंसा की गुत्थियां

एक कालेज के प्रोफेसर और उनके वर्ग के पचास विद्यार्थियों के दो प्रतिनिधि लिखते हैं:—

"आपको अवश्य पता होगा कि इंटरमीडिएट की पाठ्यपुस्तक पियर्स और

आर्यट्न के 'माडेल्स आफ़ कम्पेरेटिव प्रोज' में जो इस साल हिन्दुस्तान के अधिकांश इंटरमीडिएट कालेजों में पढ़ाई जा रही है, आपकी 'आत्मकथा' में से एक पाँच पृष्ठ का अध्याय लिया गया है। इसका शीर्षक 'अहिंसा' है। आपने इसके अन्दर इस अपूर्व और आमूल परिवर्तनकारी सिद्धान्त और उसके व्यवहार की चर्चा की है।

"मेरे वर्ग के पचास विद्यार्थी और उनका अध्यापक मैं--हम सब इस निबन्ध के अध्ययन और चर्चा में वर्ग के कई घण्टे व्यतीत कर चुके हैं। वास्तव में, यह एक बड़ा लाभप्रद और विचारोत्तेजक विषय है। हिन्दुस्तानी विद्यार्थी, विशेष रूप से, इसमें बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं, क्योंकि उनके हृदय में अपने देश की भलाई और भावी उन्नति के लिए सच्ची लगन है। आम तौर पर हम सब आपके द्वारा किये गये अहिंसा के प्रतिपादन से हृदय से सहमत हैं, और इस कठिन, किन्तु सुन्दर, सिद्धान्त को अपने जीवन में स्थान देने की हमें प्रबल प्रेरणा प्राप्त हुई है।

"परन्तु एक स्थान पर सम्पूर्ण विद्यार्थी और उनका अध्यापक मैं--हम सब, आपके विचार ठीक तरह से समझ नहीं पाये हैं। मेरा मतलब आपके उस कथन से है, जहां आपने इसका उल्लेख किया है कि युद्ध के समय अहिंसा के अनुयायी को क्या करना चाहिए। आपके शब्द ये हैं--'जब दो राष्ट्र लड़ रहे हों, तब अहिंसा के भक्त का कर्तव्य है कि वह इस युद्ध को रोके। जिसमें यह शक्ति नहीं है, जो युद्ध का विरोध करने की क्षमता नहीं रखता अथवा जो इसका पात्र नहीं बना है वह यदि आवश्यक समझे तो युद्ध में शरीक भी हो जाय और उसमें भाग लेते हुए अपने आपको, देश को और विश्व को प्राणों की बाज़ी लगाकर युद्ध से बचाने का प्रयत्न करे।' ज़रा आगे चलकर (युरोपीय महायुद्ध के समय आपके सामने उपस्थित तीन उपायों की चर्चा करते हुए) आपने लिखा है--'. . .या दूसरे, मैं साम्राज्य की ओर से युद्ध में शरीक होकर युद्ध की हिंसा को रोकने की पात्रता और क्षमता प्राप्त कर सकता था। मेरे अन्दर इस क्षमता और पात्रता की कमी थी इसलिए मैंने सोचा कि मेरे लिए सिवा युद्ध में भाग लेकर सेवा करने के और कोई चारा ही नहीं।' हम अत्यन्त अनुगृहीत होंगे, यदि आप इस विषय पर ज़रा अपने पुराने और वर्तमान विचार भी साफ़-साफ़ और कुछ विस्तार से लिखने की कृपा करेंगे क्योंकि मेरे वर्ग के विद्यार्थियों को ऐसा लग रहा है कि शीघ्र ही आनेवाले विग्रह के समय उनको इस बात का निर्णय कर लेना होगा कि उनके लिए कौन सा पक्ष ग्रहण करना ठीक रहेगा : क्या वे अहिंसा को ग्रहण करके भी ईमानदारी के साथ--फिर चाहे कोई कारण हो--युद्ध में भाग ले सकते हैं?

"मुझे विश्वास है कि आप किसी प्रकार समय निकाल कर इन पचास विद्या-

र्थियों की और मेरी भी आत्मा को, जो उन्हीं की तरह उत्सुक है, शान्ति प्रदान करने की कृपा करेंगे।"

मैं नहीं कह सकता कि इस कालेज और इस पत्र पर सही करनेवालों के नाम अप्रकट रख छोड़ना ज़रूरी था या नहीं। विद्वान् प्रोफेसर ने उत्तर के लिए टिकट लगा हुआ एक लिफाफा भी भेज दिया है। इसका अभिप्राय तो यह है कि मैं स्वयं उन्हें ही उत्तर भेजूं किन्तु मेरे पास समय का बड़ा अभाव है। अभी तो और भी ज्यादा अभाव है, क्योंकि इन दिनों मैं दो बड़े प्यारे मरीज़ों की परिचर्या में लगा हुआ हूँ परन्तु 'हरिजन' के पाठकों से प्रत्येक सप्ताह अपने पत्र-प्रेषकों से क्षमा मांगता हुआ मैं एक पन्थ दो काज बना लेता हूँ।

पत्र में उठाया गया प्रश्न बड़े ही महत्व का है। इसने मेरे सामने कई बार बड़ी कठिनाई खड़ी कर दी है। कठिनाई यह नहीं कि किसी विशेष प्रसंग पर मुझे क्या करना चाहिए? नहीं, इसका निर्णय करने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती। वह तो असल में अहिंसा की भाषा में उसका समर्थन करने में होती है। क्योंकि ऊपर-ऊपर से देखने से अहिंसा और हिंसा के माननेवाले दोनों एक ही कार्य को अपने-अपने पक्ष के समर्थन में, उदाहरण के रूप में, पेश कर सकते हैं। ऐसे समय, कार्य का सच्चा अर्थ तो उसके उद्देश्य से ही लग सकता है।

यह लिखते समय मेरे सामने न तो वह पाठ्यपुस्तक है और न वह मूल गुजराती ही, जिससे कि अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया है। परन्तु मैंने जो लिखा है वह मुझे याद आ रहा है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि जहां तक मुझे पता है, अहिंसा के विषय में आज भी मेरे वही विचार हैं, जो पहिले थे।

इस उदाहरण में मैंने जिस सर्वसामान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है वह तो गत महायुद्ध के समय मुझे जो रास्ता अंगीकार करना पड़ा था उससे उपलब्ध हुआ था। मैं तो अपनी जान को भी जोखिम में डाल कर पूरे दिल से युद्ध में शामिल हो गया था। जोखिम से मेरा मतलब उन खतरों से नहीं है, जो स्वभावतः युद्ध में होते हैं। असल में, जिन दिनों मैं ड्रिलों में शरीक हो रहा था और छावनियों में रहता था, मुझे प्ल्यूरिसी (वह बीमारी जिसमें फेफड़े के आवरणों में पानी भर जाता है) हो रही थी। शरीर में बड़ी दुर्बलता थी। युद्ध से दो-तीन मास पहिले मैंने चौदह दिन का एक उपवास किया था जिसके कारण मेरी शक्ति बेहद घट गई थी। उसकी पूर्ति भी अभी नहीं हो पाई थी। उस समय मेरा विश्वास था कि अंग्रेजी साम्राज्य अन्त में जाकर मनुष्य जाति के लिए लाभदायक ही है। मैं तो उन दिनों यह सपना देख रहा था कि मैं उसे किसी दिन कम-से-कम उसके अपने अस्तित्व को ही—भिन्न रूप में ही सही—क़ायम रखने के लिए युद्धमार्ग से हटा कर शान्ति के

मार्ग का हिमायती बना लूँगा। परन्तु मुझे अपनी मर्यादा का भी भान था। मैं तो एक तुच्छ रजकण के बराबर था। उसकी सामान्य नीति का प्रतिकार करने की ज़रा भी शक्ति नहीं रखता था।

मैं युद्ध में शरीक होता या न भी होता, तो भी उसे मेरा विवशतापूर्ण सहयोग तो प्राप्त था ही। क्योंकि मैं ब्रिटिश नौसेना-द्वारा रक्षित खाना खा रहा था। उसी की छत्रछाया में थोड़ी-बहुत व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहा था। इसलिए मुझे ऐसा लगा कि यदि मैं किसी तरह युद्ध में सहायता भी कर दूँ तो मुझ-जैसे अहिंसा के भक्त के लिए इस तरह प्रत्यक्ष रूप से भाग लेकर उसका शीघ्र अन्त करने में सहायता करना ज्यादा उचित होगा। यह बिल्कुल सम्भव है कि यह सब दुर्बलता की ही दलील हो। और यथार्थतः शायद यही ठीक हो कि यदि मेरा चित्त यह कह रहा था कि युद्ध एक बुराई है तो मुझे हर हालत में उससे दूर ही रहना चाहिए था, फिर इसके कारण मुझे भूखों मरना पड़ता या विद्रोही की मौत मरना पड़ता, तो भी कोई चिन्ता की बात नहीं थी। परन्तु यह जो कुछ हो, न उस समय मेरे ऐसे विचार थे और न आज ही हैं।

यह एक बिल्कुल जुदी बात है कि आज, जब कि मैं यह विश्वास ही नहीं करता कि यह साम्राज्य अन्ततोगत्वा एक कल्याणकर शक्ति है, उसी परिस्थिति में मेरा क्या रुख़ होगा।

अपने उत्तर को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैं अपने जीवन में से ही एक और उदाहरण लेता हूँ। जब मैं निरा बालक ही था, तभी से मेरा हृदय और बुद्धि छुआ-छूत की बुराई के विरुद्ध विद्रोह कर रही थी। परन्तु चूँकि उस समय परिवार में मेरी एक तुच्छ हस्ती थी, मैं भी हरिजनों के प्रति चुपचाप उसी प्रकार का व्यवहार कर रहा था जैसा कि परिवार के अन्य व्यक्ति कर रहे थे। गोकि मैं आज वैसा नहीं कर सकता। इसका एक यह कारण तो था ही कि अपने व्यवहार की पुष्टि मैं उस समय दलीलें देकर नहीं कर सकता था। मुझे उस समय यह नहीं मालूम हुआ कि अपने इस व्यक्तिगत विश्वास को लेकर मैं परिवार के साथ रह ही नहीं सकता।

बात यह है कि जीवन में इसी तरह समझौते करते रहना पड़ता है। और चूँकि अहिंसा एक शुद्ध से शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम है, इसीलिए वह स्वयं ही प्रायः ऐसे समझौते करवाती रहती है। परन्तु उसकी शर्तें स्पष्ट और कठोर हैं। मनुष्य के हृदय में कोई स्वार्थ, किसी प्रकार का भय या असत्य भी नहीं होना चाहिए। और हमारा व्यवहार अहिंसा-धर्म की सेवा के लिए हो। एक बात यह भी हो कि समझौता हम पर बाहर से लादी हुई चीज़ न हो, बल्कि हमारे लिए एक सहज वस्तु हो।

शायद मेरे इस उत्तर से उन अध्यापक महोदय और उनके विद्यार्थियों की ज़रा भी तृप्ति नहीं हुई होगी। परन्तु इससे मुझे आश्चर्य नहीं होगा। अपने ही कार्यों का मुझे बार-बार हवाला देना पड़ता है, इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। पर इसका कारण तो स्पष्ट है। मैं किसी भी अर्थ में बहुश्रुत नहीं हूँ। अहिंसा के बारे में मैं जो कुछ जानता हूँ वह असल में मुझे अपने खुद के अनुभवों और प्रयोगों से ही मिला है, जो मैं खुले आम सत्यरूपी परमात्मा से डरते हुए नम्र वैज्ञानिक वृत्ति से किया करता हूँ।

—मूल अंग्रेज़ी। ह० ज० १७।१०।'३६। ह० से० १७।१०।'३६]

- **जीवन में इसी तरह समझौते करते रहना पड़ता है।**
- **अहिंसा शुद्ध से शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम है।**

७६. अहिंसा किसे कहें?

एक मित्र लिखते हैं:—

"आप अपने समस्त शिष्यों को आदेश देते हैं कि वे न केवल कर्म में बल्कि वाणी और विचार में भी अहिंसा का पालन करें। गत २६ नवम्बर के 'हरिजन' में आप के साथ मि० एण्डरूज़ की हुई बातचीत का हाल दिया है। मि० एण्डरूज़ ने आपसे पूछा था कि मिशनरियों के वर्तमान रुख़ का आप पर क्या असर पड़ रहा है। आपने कहा कि उनका बर्ताव भी इस क्षेत्र में उनकी संख्या बढ़ानेवाले अपने अन्य भाइयों के समान ही खराब है। आदमी को सबसे ज्यादा दुःख तो इस बात पर होता है जब वे हरिजनों की दुर्बलताओं से अनुचित लाभ उठाने के लिए पागलों का सा प्रयास करते हैं। यदि वे यह कहें तो बात समझ में आ सकती है कि हिन्दूधर्म तो निर्दय है, आप तो हमारे धर्म को ग्रहण कर लीजिए। परन्तु वे तो उनके सामने पार्थिव स्वर्ग के प्रलोभन दिखाकर ऐसे-ऐसे वचन देते हैं जिनको कभी पूरा नहीं कर सकते।

यदि आपके कथन को ठीक-ठीक लिखा गया है तो मैं पूछता हूँ कि क्या मिशनरियों के वर्ग के प्रति यह वाचिक हिंसा नहीं हुई?"

मेरे कोई शिष्य नहीं हैं। मैं तो स्वयं ही शिष्य बनना चाहता हूँ और गुरु की खोज में हूँ। किन्तु यह बात तो मेरे मित्र-द्वारा उठाये गये सवाल से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। यदि बोलनेवाला जानता है कि कोई बात सच्ची है—जैसा कि मैं उपर्युक्त उद्धरण में बताये अनुसार दीनबन्धु एण्डरूज़ के साथ बातचीत करते हुए जानता था—तो केवल अरुचिकर शब्द कह देना या लिखना हिंसात्मक नहीं कहा जा सकता। परन्तु यदि यह भी पता लग जाय कि मैंने जो कुछ कहा था उसमें

अत्युक्ति थी या इससे भी ज्यादा वह सरासर झूठ था, तो भी जिस अर्थ में मेरे पत्र-प्रेषक उसे हिंसा बताते हैं, वह हिंसा नहीं है। असल में हिंसा तो तब होती है जब हम अपने तथोक्त प्रतिपक्षी को क्रिया, वाणी या विचार से भी तकलीफ़ पहुँचाना चाहते हैं। यहां न तो कोई ऐसा उद्देश्य था, न हो ही सकता था। मैं तो दो भले ईसाइयों से जो, कि स्वयं भी अपने ढंग के मिशनरी ही थे, मैत्री-भावपूर्वक बातचीत कर रहा था।

सनातनी लोग हरिजनों के साथ जैसा बर्ताव करते हैं उसके विषय में लिखते हुए, और अभी-अभी अपने प्रिय साथियों के कार्यों के विषय में लिखते हुए मैंने इससे कहीं कड़ी भाषा का प्रयोग किया हैं किन्तु इस भाषा का प्रयोग करते हुए मेरे दिल में किसी को दुःख पहुँचाने का ज़रा भी उद्देश्य नहीं था। और साधारणतया मेरे आलोचक भी यह मानते हैं कि मैं कभी किसी को दुःख पहुँचाना नहीं चाहता हूँ।

किन्तु वास्तव में अहिंसा की अग्निपरीक्षा तो तब होती है जब हिंसा के लिए भयंकर-से-भयंकर उत्तेजना होते हुए भी मनुष्य मन, वाणी और कर्म से अहिंसक ही बना रहे। भले और सौम्य मनुष्य के साथ बर्ताव करते हुए यदि कोई अहिंसक रहे तो इसमें कौन-सी बड़ी बात है?

आप बड़े से बड़े प्रलोभन की कल्पना कर लीजिए और आप पायेंगे कि उसका भी प्रतिकार करनेवाली सबसे ज़बर्दस्त शक्ति है। ईसा मसीह उन दुष्टों और उनके खान-पान को खूब अच्छी तरह जानते थे। उनका वर्णन करते हुए उन्होंने कभी मुरौवत नहीं की। तो भी जब वह न्यायासन के सामने खड़े हुए तब उन्होंने यही माँगा कि हे परमपिता! इन्हें क्षमा कर दे क्योंकि वे जानते ही नहीं कि वे क्या कर रहे हैं।

मैंने उस समय जो शब्द कहे थे उनमें से एक-एक के समर्थन में दृढ़ प्रमाण उपस्थित किये थे। मैं अपने को मिशनरियों का मित्र मानता हूँ। उनमें से अधिकांश के साथ मेरे बड़े अच्छे सम्बन्ध हैं। फिर भी मेरी मित्रता कभी इतनी अन्धी नहीं रही कि मैंने उनके और जिन प्रणालियों एवं साधनों के वे समर्थक हैं उनके दोष और कमियों को भी न देखा हो।

प्रायः लोग इस मिथ्या भय से कि कहीं ऐसा कहना अनुचित तो न होगा, सामनेवाले के चित्त को दुःख तो नहीं पहुँचेगा, ऐसी बातें कहते-कहते रुक जाते हैं जिन्हें वे सत्य के रूप में जानते हैं। और इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें कई प्रकार का झूठ-पाखण्ड करना पड़ता है। परन्तु यदि हमें व्यक्तियों, समाज और राष्ट्रों में मानसिक अहिंसा का विकास करना है तो हमें सत्य कहना ही होगा। फिर क्षण भर के लिए चाहे वह कितना ही कटु और अप्रिय लगे। किन्तु यदि दिल

गवाही न देता हो तो निरी कायिक अहिंसा किसी काम की नहीं। वह कभी संक्रामक नहीं हो सकती। वह तो सफेदी की हुई कब्र की तरह है। उसके साथ विचार अर्थात् हृदय भी होना चाहिए, उसी में तो शक्ति और जीवन है। हम अच्छी तरह नहीं जानते कि विचार में वाणी और क्रिया की अपेक्षा अनन्तगुणी शक्ति है। और जब मन, वचन एवं कर्म का सामञ्जस्य होता है, तब वचन और कर्म मन की गति के अवरोधक सिद्ध होते हैं, और कर्म वाणी के। कहना नहीं होगा कि यहां सजीव विचार से मेरा मतलब उस विचार से है जो वचन और कर्म के रूप में प्रकट होने के लिए प्रस्तुत रहता है। जिन विचारों में वचन और कर्म-द्वारा प्रकट होने की क्षमता नहीं होती वे तो वायु की तरह निस्सार होते हैं। उनका परिणाम भी कुछ नहीं होता।

—मूल अंग्रेजी। ह० ज० १९।१२।'३६। ह० से० १९।१२।'३६]

- **मेरा कोई शिष्य नहीं है। मैं तो स्वयं ही शिष्य बनना चाहता हूँ और गुरु की खोज में हूँ।**
- **अहिंसा की अग्नि-परीक्षा तो तब होती है जब हिंसा के लिए भयंकर से भयंकर उत्तेजना होते हुए भी मनुष्य मन, वाणी और कर्म से अहिंसक बना रहे।**
- **यदि दिल गवाही न देता हो तो निरी कायिक अहिंसा किसी काम की नहीं।**
- **विचार में वाणी और क्रिया की अपेक्षा अनन्तगुनी शक्ति है।**

७७. बलवान का भूषण क्षमा

. . .बलवान का भूषण क्षमा है। उसकी जबान में तलवार हरगिज नहीं हो सकती। . . .

—सरदार वल्लभभाई पटेल को लिखे गये पत्र से। २०।२।'३८]

७८. अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कांग्रेस-नेता ने उस दिन बातचीत के सिलसिले में मुझसे कहा, 'क्या कारण है कि कांग्रेस अब नैतिकता की दृष्टि से वैसी नहीं रही, जैसी वह १९२० से १९२५ तक थी? उन दिनों की अपेक्षा तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गई है। अब तो इसके नव्वे प्रतिशत सदस्य कांग्रेस के अनुशासन का पालन नहीं करते। क्या आप इस दशा को सुधारने के लिए कुछ नहीं कर सकते?'

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कहकर अपने दायित्व से हट नहीं

सकता कि अब मैं कांग्रेस में नहीं हूँ। मैं तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करने के लिए ही इससे अलग हुआ हूँ। मैं जानता हूँ कि कांग्रेस की नीति पर अब भी मैं प्रभाव डाल रहा हूँ। १९२० में कांग्रेस का जो विधान बना था, उसके निर्माता की हैसियत से इस पतन के लिए मुझे स्वयं को उत्तरदायी मानना ही चाहिए।

कांग्रेस ने प्रारम्भिक कठिनाइयों के बीच सन् १९२० में काम शुरू किया। ध्येय के रूप में सत्य और अहिंसा पर बहुत कम लोग विश्वास करते थे। अधिकांश सदस्यों ने इन्हें नीति के रूप में ग्रहण किया। यह अनिवार्य था। मुझे आशा थी कि कांग्रेस को नई नीति से काम करता देख कर, उनमें से अनेक इन्हें ध्येय के रूप में स्वीकार कर लेंगे। किन्तु ऐसा कुछ ही लोगों ने किया, बहुतों ने नहीं।

प्रारम्भ में तो सबसे बड़े नेताओं में भारी परिवर्तन देखने में आया। स्वर्गीय पंडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु दास के जो पत्र 'यंग इंडिया' में उद्धृत किये गये थे, उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। उन्हें संयमी, सादगी और आत्म-बलिदानपूर्ण जीवन में एक नये आनन्द और नई आशा का अनुभव हुआ। अलीबन्धु तो लगभग फ़कीर ही बन गये थे। मैं स्थान-स्थान का दौरा करते हुए, इन भाइयों में होने वाले परिवर्तनों को आनन्द से देखता था। जो बात इन चार नेताओं के बारे में सत्य है, वही और भी ऐसे बहुतों के विषय में सत्य है जिनके नाम मैं गिना सकता हूँ। इन नेताओं के उत्साह का प्रभाव जनसामान्य पर भी पड़ा।

किन्तु यह प्रत्यक्ष परिवर्तन एक वर्ष में स्वराज्य के आकर्षण के कारण था। इसकी पूर्तिहेतु मैंने जो शर्तें लगाई थीं, उन पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुल मजीद साहब ने तो यहां तक कह डाला कि सत्याग्रह सेना के सेनापति की हैसियत से मुझे इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि मैं जो शर्तें रख रहा हूँ वे ऐसी हैं कि पूरी हो जायँगी। उन दिनों कांग्रेस ऐसी ही सेना बन गई थी और वह अभी भी है (यदि कांग्रेसवादी सत्याग्रह के अर्थ का अनुभव करें)। शायद उनका कथन ठीक ही था। केवल वह ज्ञानचक्षु मेरे पास नहीं था।

सामूहिक रूप में राजनीतिक उद्देश्य से अहिंसा का उपयोग स्वयं मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मैं गर्वपूर्वक कोई दावा नहीं कर सकता था। मेरी शर्तों का उद्देश्य यह था कि उससे लोगों की शक्ति का अनुमान लग सके। वे पूरी हो भी सकती थीं और नहीं भी। ग़लतियों या ग़लत अनुमानों की सम्भावना तो सदा ही थी। अस्तु, जब स्वराज्य की लड़ाई लम्बी खिंच गई और खिलाफत के प्रश्न में जान न रही तो लोगों का उत्साह मन्द पड़ने लगा। अहिंसा में नीति के तौर पर भी विश्वास ढीला पड़ने लगा और असत्य का प्रवेश हो गया। इसमें ऐसे लोग घुस आये जिनका उपर्युक्त दोनों गुणों में अथवा खादी की शर्त में कोई विश्वास

नहीं था। बहुतों ने तो खुले आम भी कांग्रेस-विधान की अवहेलना प्रारम्भ कर दी।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गई। कार्यसमिति कांग्रेस को इस बुराई से मुक्त करने का कुछ प्रयत्न करती रही है, किन्तु दृढ़तापूर्वक नहीं और न वह कांग्रेस-सदस्यों की संख्या कम हो जाने का खतरा उठाने को तैयार हो सकी है। मैं स्वयं तो संख्या की अपेक्षा गुण में ही अधिक विश्वास करता हूँ।

किन्तु अहिंसा की योजना में ज़बर्दस्ती का कोई प्रयोजन नहीं है। उसमें तो इसी बात पर निर्भर रहना पड़ता है कि लोगों की बुद्धि और उनके हृदय तक—बुद्धि की अपेक्षा हृदय पर अधिक—पहुँचने की क्षमता प्राप्त की जाय।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि सत्याग्रह सेनापति के शब्द में शक्ति होनी चाहिए—वह शक्ति नहीं जो निस्सीम अस्त्र-शस्त्रों से प्राप्त होती है, अपितु वह जो जीवन की शुद्धता, दृढ़ जागरूकता और सतत आचरण से प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्य का पालन किये बिना असम्भव है। इसे इतना सम्पूर्ण होना चाहिए जितना मनुष्य के लिए सम्भव है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ यहां केवल दैहिक आत्मसंयम या निग्रह ही नहीं है। इसका अर्थ तो इससे कहीं अधिक है। इसका अर्थ सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण है। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्य का भंग है। यही दशा क्रोध की है। समस्त शक्ति उस वीर्य-शक्ति की रक्षा और ऊर्ध्वगति से प्राप्त होती है, जिससे जीवन का निर्माण होता है। यदि इस शक्ति को नष्ट करने के स्थान पर इसका सञ्चय किया जाय तो यह सर्वोत्तम सृजन शक्ति के रूप में परिणत हो जाती है।

बुरे, अस्तव्यस्त अथवा अवाञ्छनीय विचारों से भी इस शक्ति का बराबर, अज्ञात रूप से, क्षय होता रहता है। विचार ही समस्त वाणी और क्रिया का मूल है; वे भी विचार का ही अनुसरण करती हैं। अतएव पूर्णतः नियन्त्रित विचार सर्वोच्च शक्ति है और यह स्वतः क्रियाशील बन सकता है। मुझे तो मूक रूप में की जाने वाली हार्दिक प्रार्थना का यही अर्थ ज्ञात होता है। मनुष्य यदि ईश्वर की मूर्ति का उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्र के अन्दर, किसी बात की इच्छा मात्र करने की देर है। वह जैसा चाहता है वैसा ही बन जाता है।

जिस प्रकार रिसने वाली नली में भाप रखने से कोई शक्ति उत्पन्न नहीं होती, उसी प्रकार जो अपनी शक्ति को किसी भी रूप में क्षय होने देता है, उसके अन्दर इस शक्ति का होना असम्भव है। प्रजोत्पत्ति के निश्चित उद्देश्य से न किया जाने वाला काम-सम्बन्ध इस शक्ति-क्षय का एक बहुत बड़ा उदाहरण है। अतएव उसकी विशेष रूप से जो निन्दा की गई है, वह उचित ही है। किन्तु जिसे अहिंसात्मक कार्य-

हेतु विशाल मानव-जाति-समूह को एकत्र करना है, उसे तो मेरे द्वारा वर्णित उपर्युक्त पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह को प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना ही चाहिए।

ईश्वर-कृपा के अभाव में यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह सम्भव नहीं। गीता के दूसरे अध्याय में एक श्लोक है—'विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः, रसवर्जं रसोप्यस्य परंदृष्ट्वा निवर्तते।' अर्थात् जब तक उपवास किये जाते हैं, तब तक इन्द्रियां विषयों की ओर नहीं दौड़तीं, किन्तु केवल उपवास से रस सूख नहीं जाते। उपवास छोड़ते ही वे और बढ़ भी सकते हैं। इसको वश में करने के लिए तो ईश्वर का प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन यान्त्रिक अथवा अस्थायी नहीं है। एक बार प्राप्त हो जाने के पश्चात् यह कभी नष्ट नहीं होता। उस दशा में वीर्यशक्ति इस प्रकार सुरक्षित रहती है कि अगणित मार्गों में से किसी के द्वारा उसके निकलने की सम्भावना ही नहीं रहती।

कहा गया है कि यदि किसी प्रकार ऐसा ब्रह्मचर्य प्राप्त किया जा सकता हो, तो उसे कन्दराओं के निवासी ही कर सकते होंगे। कहा जाता है कि ब्रह्मचारी को तो, स्त्रियों का स्पर्श क्या, कभी उनका दर्शन भी नहीं करना चाहिए। निस्सन्देह किसी ब्रह्मचारी को कामवासना से किसी स्त्री को न तो छूना चाहिए न देखना चाहिए, और न उसके विषय में कुछ कहना या सोचना चाहिए। किन्तु, ब्रह्मचर्य-विषयक पुस्तकों में हमें जो यह वर्जन प्राप्त होता है उसमें इसके महत्वपूर्ण अव्यय कामवासनापूर्वक का उल्लेख नहीं मिलता। इस छूट का कारण यह प्रतीत होता है कि ऐसे मामलों में मनुष्य निष्पक्ष रूप से निर्णय नहीं कर सकता। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि उस पर कब ऐसे सम्पर्क का प्रभाव पड़ा और कब नहीं। काम-विकार बहुधा अनजाने ही उत्पन्न हो जाते हैं। अतएव यद्यपि संसार में सब के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक हिलने-मिलने पर ब्रह्मचर्य का पालन कठिन है, किन्तु यदि उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर लेने पर ही यह प्राप्त हो सकता है, तो उसका कोई विशेष मूल्य भी नहीं है।

जैसा भी हो, मैंने तो तीस वर्ष से भी अधिक समय से प्रवृत्तियों के बीच रहते हुए अच्छी सफलता के सहित ब्रह्मचर्य का पालन किया है। ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने का निश्चय कर लेने के बाद अपनी पत्नी से सम्बन्धित व्यवहार को छोड़ कर, मेरे बाह्य आचरण में कोई अन्तर नहीं आया। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के बीच मुझे जो काम करना पड़ा, उसमें मैं स्त्रियों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक हिलता-मिलता था। ट्रांसवाल और नैटाल में शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री हो, जिसे मैं न जानता होऊँ। मेरे लिए तो वे सभी बहिनें और बेटियां ही थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नहीं है। मैंने तो अपने लिए और उन व्यक्तियों के लिए जो अनुरोध पर इस प्रयोग में सम्मिलित हुए हैं, स्वयंकृत नियम बनाये हैं। और यदि मैंने उसके

लिए निर्दिष्ट निषेधों का अनुसरण नहीं किया है, तो धार्मिक साहित्य में उल्लिखित 'स्त्रियां बुराई और प्रलोभन का द्वार हैं, इस मत को मैं इतना भी नहीं मानता।

मैं तो यह मानता हूँ कि मुझमें जो भी अच्छाई है, वह सब मेरी मां के कारण है। अतएव स्त्रियों को कभी मैंने इस प्रकार नहीं देखा कि वे केवल कामवासना की तृप्ति के लिए ही बनाई गई हैं, बल्कि सदा उसी श्रद्धा के साथ देखा है, जो मैं अपनी माता के प्रति रखता हूँ।

पुरुष ही प्रलोभन देनेवाला और आक्रमण करनेवाला है। स्त्री के स्पर्श से वह अपवित्र नहीं होता, अपितु बहुधा वह स्वयं ही उसका स्पर्श करने योग्य पवित्र नहीं होता। किन्तु सम्प्रति मेरे मन में सन्देह अवश्य उठा है कि स्त्री अथवा पुरुष के सम्पर्क में आने के लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी को किस प्रकार की मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। मैंने जो मर्यादाएँ रखी हैं, वे मुझे पर्याप्त प्रतीत नहीं होतीं। किन्तु उन्हें क्या होना चाहिए, यह नहीं जानता। मैं तो प्रयोग कर रहा हूँ। मैंने इस बात का कभी दावा नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषा के अनुसार पूर्ण ब्रह्मचारी बन गया हूँ। अब भी मैं अपने विचारों पर उतना नियन्त्रण नहीं रख सकता, जितने नियन्त्रण की आवश्यकता मुझे अपनी अहिंसा-सम्बन्धी शोधों के लिए है।

किन्तु यदि मेरी अहिंसा अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करने और उनमें प्रश्रय पाने में समर्थ है, तो मुझे अपने विचारों पर अधिक से अधिक नियन्त्रण करना चाहिए। इस लेख के प्रारम्भिक अंश में जिस प्रत्यक्ष असफलता का उल्लेख किया गया है कदाचित् उसका कारण कहीं-न-कहीं कोई कमी रह जाना ही है।

अहिंसा में मेरा विश्वास सदा की भाँति दृढ़ है। मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि इससे केवल हमारे देश की आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं होगी। यदि इसका पालन उचित रूप में किया जाय तो यह उस रक्तपात को भी रोक सकती है, जो भारत के बाहर हो रहा है और जिसके समस्त पश्चिमी संसार में व्याप्त हो जाने की आशंका है।

मेरी आकांक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वर ने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है कि अहिंसा के पथ पर समस्त संसार का मार्गदर्शन करूँ। किन्तु मेरी यह कल्पना अवश्य है कि उसने भारत के अनेक दोषों के निवारणार्थ अहिंसा का प्रयोग करने के लिए मुझे अपना यन्त्र बनाया है। इस दिशा में अब तक जो प्रगति हो चुकी है, वह महान है, किन्तु अभी बहुत कुछ करना शेष है। इतना होते हुए भी मुझे लगता है कि इसके लिए कांग्रेसवादियों की जो सहानुभूति आवश्यक है, उसे उकसाने की शक्ति मुझमें नहीं रही। जो अपने औजारों को ही बुरा बतलाता रहता है, वह कोई अच्छा बढ़ई नहीं है। यह तो 'नाच न आवै आँगन टेढ़ा' की मसल होगी। इसी प्रकार

बिगड़े कामों के लिए अपने सहवर्तियों को दोष देनेवाला सेनापति भी अच्छा नहीं कहा जा सकता। किन्तु मैं जानता हूँ कि मैं बुरा सेनापति नहीं हूँ। अपनी मर्यादाओं को जानने योग्य बुद्धि मुझमें वर्तमान है। यदि कभी मेरे अन्दर उसका दिवाला निकल जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मैं उसकी स्पष्ट घोषणा कर दूं।

ईश्वर की कृपा से मैं लगभग आधी सदी से जो काम कर रहा हूँ, यदि उसके लिए मेरी और आवश्यकता न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा। किन्तु मेरा विचार है कि अभी मेरे करने योग्य पर्याप्त कार्य है। जो अन्धकार मेरे ऊपर छा गया प्रतीत होता है, वह नष्ट हो जायगा और भारत स्पष्टतया अहिंसात्मक साधनों द्वारा अपने लक्ष्य पर पहुँच जायगा। इसके लिए चाहे दांड़ी कूँच से भी अधिक उग्र लड़ाई लड़नी पड़े, अथवा इसके बिना ही चाहे ऐसा हो जाय। मैं ईश्वर से उस प्रकाश की याचना कर रहा हूँ, जो अन्धकार का नाश कर देगा। जिन्हें अहिंसा में जीवित श्रद्धा हो, उन्हें इसमें मेरा साथ देना चाहिए।

--ह० ज०। ह० से० २३।७।'३८]

- **अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्य का भंग है।**
- **समस्त शक्ति उस वीर्य शक्ति की रक्षा में और ऊर्ध्वगति से प्राप्त होती है, जिससे जीवन का निर्माण होता है।**
- **विचार ही समस्त वाणी और क्रिया का मूल है।**
- **पूर्णतः नियन्त्रित विचार सर्वोच्च शक्ति है।**
- **मुझमें जो भी अच्छाई है, वह सब मेरी मां के कारण है।**
- **अहिंसा में मेरा विश्वास सदा की भाँति दृढ़ है।**
- **जो अन्धकार मेरे ऊपर छा गया प्रतीत होता है वह नष्ट हो जायगा और भारत स्पष्टतया अहिंसात्मक साधनों द्वारा अपने लक्ष्य पर पहुँच जायगा।**

७९. अहिंसा की मर्यादा

यहां मैं अहिंसा की एक मर्यादा बतला देना चाहता हूँ। यदि कोई अत्याचारी अपने अतिचार का शिकार होने वाले की अहिंसा का आश्रय लेकर उस पर उस समय तक जुल्म करता चला जाय, जब तक पीड़ितों का पूर्णतः दमन न हो जाय, तो आस-पास के वातावरण से एक प्रकार की आवाज़ उठती है और लोकमत की अथवा ऐसी ही कोई शक्ति अत्याचारी को दबा देती है। किन्तु किसी सत्याग्रही को यह नहीं समझना चाहिए कि उसे मृत्युदायक कष्ट नहीं मिलेगा। उसकी विजय का आधार तो मृत्यु एवं सम्पत्तिनाश के भय को छोड़ देने की अजेय भावना में ही है। और

अत्याचारी की निश्चित पराजय है अपने उत्पीड़न का लक्ष्य बनने वाली भावना को झुकाने अथवा दबाने में असफल हो जाना।
—ह० ज०। ह० से० १७।९।'३८]

८०. केवल सत्य-अहिंसा का भक्त हूं

कुछ लोग मुझे जादूगर समझते हैं। वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं। मैं तो केवल सत्य और अहिंसा का भक्त हूँ।
—ह० से० ८।१०।'३८]

८१. अहिंसा की कला

अहिंसा शरीर की नहीं, आत्मा की कला है।
—ह० से० १२।११।'३८]

८२. अहिंसा या सद्भावना?

[अपनी पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त की यात्रा का विवरण स्वयं प्रस्तुत करते हुए गांधी जी ने खुदाई खिदमतगारों का उल्लेख किया। उनके द्वारा अपनाई गई अहिंसा के प्रसंग में, उन्होंने जो विवेचना की, उसके आवश्यक अंश यहां दिये जाते हैं।—संपा०]

...यह अहिंसा ऐसा गुण नहीं, जो केवल निष्क्रिय हो। ईश्वर ने मनुष्य को जो शक्ति प्रदान की है, उसमें यह सबसे प्रबल शक्ति है। हाँ, यह अवश्य है कि अहिंसा से मनुष्य और पशु के बीच का भेद स्पष्ट हो जाता है। यह प्रत्येक व्यक्ति में जन्म से ही मौजूद रहती है, यद्यपि अधिकांश में यह प्रसुप्त ही होती है।

अंग्रेज़ी में जिसे 'नानवायलेंस' कहते हैं वह शायद अहिंसा का अपर्याप्त पर्याय-वाची है; अहिंसा शब्द जिन सब अर्थों में प्रयुक्त होता है, उनको सूचित करने के लिए अधूरा है। इससे अधिक उपयुक्त शब्द तो शायद प्रेम अथवा सद्भाव होगा, क्योंकि अहिंसा का मुकाबला तो सद्भाव से ही करना पड़ेगा। और सद्भाव के मूल्य का पता तभी चलेगा, जब उसका सामना असद्भाव से होगा। अच्छे के प्रति अच्छा होना तो जैसे को तैसा हुआ। रुपये से रुपये का विनिमय करने से उसकी विशेषता का कुछ पता नहीं चलता। यह विशेषता तो तभी प्रतीत होती है, जब

उसका विनिमय इकन्नी से हो। इसी प्रकार सद्भावनाशील व्यक्ति का महत्व भी तभी मालूम पड़ता है जब उसका मुकाबला किसी असद्भावी से हो।

हमें इस अहिंसा अथवा सद्भावना का प्रयोग केवल अंग्रेज़ों के ही विरुद्ध नहीं करना है। हमारे पारस्परिक व्यवहार में भी इसका पूरा उपयोग होना चाहिए। सम्भव है, अंग्रेज़ों के विरुद्ध अहिंसा का उपयोग आवश्यकतावश ही किया जाता हो, वह कायरता छिपाने की मामूली कमजोरी ही हो। किन्तु जब हमारे समक्ष हिंसा और अहिंसा में से किसी एक को चुनने का समान अवसर हो, तब वह कामचलाऊ नहीं हो सकती।

ऐसे उदाहरण विभिन्न धर्म-विश्वासों को मानने वाले व्यक्तियों के बीच ही नहीं होते, एक ही धर्म के दो विभिन्न समुदाय वालों के बीच भी हमारे घरेलू तथा सामाजिक और राजनीतिक विषयों में होते रहते हैं।

यदि हम अपने पड़ोसियों और बराबरीवालों के साथ सच्ची सहिष्णुता से काम नहीं ले सकते, तो अंग्रेज़ों के प्रति भी सच्चे सहिष्णु नहीं बन सकते। इस प्रकार हमारे अन्दर किसी भी परिमाण में सद्भावना हो, तो उसकी प्रायः रोज ही परीक्षा होगी। यदि हमने व्यावहारिक रूप में उसका उपयोग किया तो हम उसे और अधिक विस्तृत रूप में प्रयोग करने के अभ्यस्त बनेंगे। अन्ततः वह हमारे स्वभाव में ही सम्मिलित हो जायगी। . . .

—ह० ज०। ह० से० १९।११।'३८]

- **अहिंसा ऐसा गुण नहीं है जो केवल निष्क्रिय हो। ईश्वर ने मनुष्य को जो शक्ति प्रदान की है, उसमें यह सबसे प्रबल शक्ति है।**
- **अहिंसा से मनुष्य और पशु का भेद स्पष्ट हो जाता है।**
- **अंग्रेजी में जिसे 'नानवायलेंस' कहते हैं, वह शायद अहिंसा का अपर्याप्त पर्यायवाची है।**

८३. स्वयंपूर्ण और स्वयं शक्तिमान

. . .अहिंसा तो एक सर्वदेशीय सिद्धान्त है। प्रतिकूल परिस्थिति उसकी क्रिया को किसी सीमा के अन्दर बाँध नहीं सकती। विरोध में और विरोध के होते हुए भी वह अपना काम करती रहती है। इसी में उसकी शक्ति की माप मिलती है। यदि हमारी अहिंसा की सफलता अधिकारियों के सद्भाव पर ही निर्भर करती हो, तब तो वह दो कौड़ी की चीज़ है। यदि हमने सामान्य जनता को अपने वश में कर लिया है, तो पुलिस और सेना का कोई काम नहीं रह जाता।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० १९।११।'३८]

८४. अहिंसा की महत्ता

...अहिंसा एक सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। यह आत्मबल अथवा मनुष्य में निहित अन्तर्यामी ईश्वर की शक्ति है। अपूर्ण मानव सम्पूर्ण ईश्वर-शक्ति को धारण नहीं कर सकता। वह उसका समस्त तेज सह नहीं सकता। किन्तु जब उसका एक अतिसूक्ष्म अंश भी सक्रिय वन जाता है, तब वह चमत्कार कर देता है। यदि कोई उसके अत्यन्त निकट चला जाय, तो वह जलकर राख हो जायगा। हमें जितने अंशों में अहिंसा का दर्शन होता है उतने ही अंशों में हम दैवी बनते हैं। किन्तु हम सम्पूर्ण ईश्वर कभी नहीं बन सकते।

अहिंसा सक्रिय रेडियम धातु की तरह है। उसका अति सूक्ष्म कण भी, चाहे उसे कितना ही दबा कर रखा गया हो, परोक्ष रीति से निरन्तर अपना कार्य करता रहेगा। वह समस्त मल और रोग को आरोग्यदायी वस्तु में परिणत कर देगा। इसी प्रकार थोड़ी-सी सच्ची अहिंसा भी मूक, सूक्ष्म और परोक्ष रीति से काम करती है। वह समस्त समाज में खमीर की भांति व्याप्त हो जाती है।

अहिंसा स्वयं सक्रिय है। आत्मा मृत्यु के पश्चात् भी बनी रहती है। जिस प्रकार उसका अस्तित्व शरीर के आधार पर नहीं टिका है, उसी प्रकार अहिंसा अथवा आत्म-शक्ति भी अपने विस्तार को शारीरिक या भौतिक आधारों पर अवलम्बित नहीं करती। वह स्वतन्त्र रीति से काम करती है। वह देश और काल को लांघ जाती है।

तात्पर्य यह कि इस प्रकार की अहिंसा यदि एक स्थान पर भी सफलता के साथ खिल सके, तो उसकी सुगन्ध चारों चोर फैल जायगी।

अहिंसा के आचरण में मौलिक सिद्धान्त यह है, कि जैसा पिण्ड में वैसा ब्रह्माण्ड में। हमारे लिए जो सत्य है, वह समस्त संसार के लिए भी उतना ही सत्य है।

समस्त मानव जाति मूलतः एक ही है। अतएव मेरे लिए जो सम्भव है, वह सबके लिए सम्भव है। इस विचारसरणि को ग्रहण कर मैं इस निर्णय पर पहुँचता हूँ कि यदि मैं किसी एक गांव के विविध प्रश्नों को अहिंसक रीति से हल कर सकूँ, तो यह चीज सारे भारत के समस्त प्रश्नों को अहिंसक तरीके के हल करने में मार्ग-दर्शक हो जायगी।....

—गांधी जी द्वारा खान साहब को दिये गये उत्तर से। ह०ज०। ह०से०१९।११।'३८]

- **अहिंसा एक सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। यह आत्मबल अथवा मनुष्य में निहित अन्तर्यामी ईश्वर की शक्ति है।**
- **अहिंसा सक्रिय रेडियम धातु की तरह है।**
- **थोड़ी-सी सच्ची अहिंसा भी मूक, सूक्ष्म और परोक्षरीति से काम करती है।**
- **समस्त मानव जाति मूलतः एक ही है।**

८५. अहिंसा अद्वितीय शक्ति

[पश्चिमोत्तर प्रान्त के एबटाबाद जिले में गांधी जी को मानपत्र अर्पित किया गया। इसका उत्तर देते हुए उन्होंने अपने जीवन के मुख्य प्रतिपाद्य अहिंसा की जो विवेचना की, उसके आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।——संपा०]

जब से मैं इस सूबे में आया हूँ, उसी दिन से खुदाई खिदमतगारों को अहिंसा का सिद्धान्त समझाने की कोशिश कर रहा हूँ——उस सम्पूर्ण अहिंसा का, जिसके साथ कोई समझौता नहीं हो सकता, जिसमें से एक ज़र्रा भी कम नहीं किया जा सकता। मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने अहिंसा का सम्पूर्ण अर्थ समझ लिया है। मैं जानता हूँ कि मैंने जो समझा है, वह तो उस सम्पूर्ण का एक छोटा-सा, नगण्य भाग है। ईश्वर ने मनुष्य को अहिंसा का सम्पूर्ण अर्थ समझने या उस पर पूरे तौर से अमल करने की शक्ति ही नहीं दी है। यह तो केवल ईश्वर की ही वस्तु है, जो जगत् का नियन्ता और अद्वितीय है। किन्तु मैं पचास वर्ष से उसे समझने और अपने जीवन में उतारने की कोशिश कर रहा हूँ . . . .

अहिंसा केवल निरस्त्रीकरण नहीं है, न वह कमजोर या नपुंसक का हथियार ही है। लाठी चलाने के ज्ञान से अनभिज्ञ एक बच्चे के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह अहिंसा पर अमल करता है।

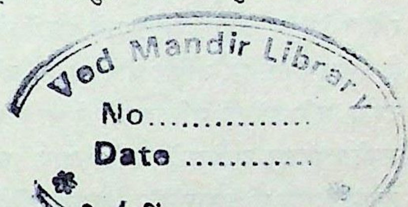
अहिंसा तो एक अनुपम अद्वितीय शक्ति है। संसार में इसके मुक़ाबले की कोई शक्ति नहीं है। यदि दुनिया के सारे अस्त्र-शस्त्रों को तराजू के एक पलड़े पर रख दिया जाय और अहिंसा को दूसरे पर, तो अहिंसा का ही पलड़ा भारी होगा। जिसने अहिंसा का अर्थ नहीं समझा उसे यह अनुभव नहीं होता कि यह एक ऐसा अस्त्र है, जो पाशविक बल की अपेक्षा अनन्तगुनी शक्ति रखता है। यह अहिंसा मौखिक शब्दों द्वारा नहीं सिखाई जा सकती है। इसकी ज्योति तो, सच्चे हृदय से प्रार्थना करने पर, ईश्वर की कृपा से ही, हमारे हृदय में प्रज्वलित हो सकती है।

——ह० से० १०।१२।'३८]

- **मैं यह दावा नहीं करता कि मैंने अहिंसा का सम्पूर्ण अर्थ समझ लिया है।**
- **अहिंसा केवल निरस्त्रीकरण नहीं है, न वह कमजोर या नपुंसक का हथियार ही है।**
- **अहिंसा तो एक अनुपम, अद्वितीय शक्ति है।**
- **यदि दुनिया के सारे अस्त्र-शस्त्रों को तराजू के एक पलड़े पर रख दिया जाय और अहिंसा को दूसरे पर तो अहिंसा का ही पलड़ा भारी रहेगा।**
- **अहिंसा मौखिक शब्दों द्वारा नहीं सिखाई जा सकती।**

८६. विशुद्ध प्रेम ही अहिंसा है

क्या मैंने बार-बार यह नहीं कहा है कि विशुद्ध प्रेम—बन्धुत्व या समत्व की भावना ही असली अहिंसा है ?
—ह० से० १०।१२।'३८]



८७. नित्य मंगलकारी अहिंसा

. . . जो सत्य और अहिंसा के पुजारी हैं आशीर्वाद तो उनकी जेब में रहते हैं। . .
—सरदार वल्लभभाई पटेल को लिखे गये पत्र से। २१।१२।'३८]

८८. भ्रातृत्व का आधार अहिंसा

यदि स्थायी मित्रता या भ्रातृत्व का आधार अहिंसा न होगी, तो हृदय की एकता की कल्पना भी नहीं की जा सकती।
—ह० से० २८।१।'३९]

८९. स्वराज्य की प्रथम शर्त : अहिंसा

मेरी कल्पना का स्वराज्य तो तभी आयगा, जब हम सब दृढ़तापूर्वक मान लेंगे कि एकमात्र सत्य-अहिंसा द्वारा ही स्वराज्य मिल सकता है, चल सकता है, और निभ सकता है। सामान्यवर्ग का सच्चा प्रजातन्त्र असत्य एवं हिंसक साधनों से कदापि नहीं मिल सकता। इसका कारण यह है कि हिंसक साधन में विरोधियों के नाश को उसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में स्वीकार करना पड़ता है; परिणामतः उससे व्यक्ति की मुक्ति नहीं हो सकती। व्यक्तिगत मुक्ति अहिंसा से ही फलित हो सकती है।
—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ३।६।'३९]

- **व्यक्तिगत मुक्ति अहिंसा से ही फलित हो सकती है।**

९०. अहिंसात्मक युद्ध

अहिंसात्मक युद्ध तो हृदय की सिल्ली पर तेज की हुई तलवार की धार के समान तेज है। समान शक्ति वाले युद्ध में सीधी लड़ाई करना किञ्चित् वीरता अवश्य है किन्तु उससे भी अधिक वीर वह है, जो यह जानते हुए भी कि उसका विरोधी उससे कहीं अधिक शक्तिशाली है या शत्रु के पांच आदमियों के मारे जाने पर अपने पचहत्तर व्यक्तियों का बलिदान करना पड़ेगा, मृत्यु का सामना करता है। हम जो आज भी प्रताप और शिवाजी की वीरता की प्रशंसा करते हैं, उसका कारण यही है। किन्तु सत्याग्रही तो सभी खतरे उठाता है, और स्वयं को शत्रु की दाढ़ में झोंक देता है। यह स्वेच्छापूर्ण, शुद्ध बलिदान है। स्वेच्छा और शुद्धता न हो तो बलिदान का कोई मूल्य ही नहीं है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने वही किया जो प्रत्येक सच्चे सत्याग्रही को करना चाहिए। यदि कोई तुझे मील भर चलने के लिए बाध्य करे, तो तू उसके साथ ही हो ले।

—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० १०।६।'३९]

- **अहिंसात्मक युद्ध तो हृदय की सिल्ली पर तेज की हुई तलवार की धार के समान तेज है।**
- **सत्याग्रही स्वयं को शत्रु की दाढ़ में झोंक देता है।**

९१. विश्वास की नीति : अहिंसा

[राजकोट सत्याग्रह स्थगित करने के बाद गांधी जी ने उसकी त्रुटियों को खुले हृदय से स्वीकार किया। महादेव ह० देसाई ने 'निर्णय के बाद' शीर्षक अपने लेख में गांधी जी की पश्चात्तापदग्ध उक्तियों को संकलित किया है। उनमें से अहिंसा-सम्बन्धी आवश्यक अंश यहां दिये जा रहे हैं।—संपा०]

अहिंसा तो विरोधी की गोद में अपना सिर रख देती है। वह इसमें कोई बुरा हेतु नहीं देखती। मैंने जिस प्रकार का विचार दरबार श्री वीरावाला के सम्बन्ध में किया, अहिंसा कभी अपने विरोधी के विषय में उस तरह के बुरे विचारों को मन में आने ही नहीं देती।

मेरे लिए यह अप्रस्तुत था कि दरबार वीरावाला को जैसा लोग कहते हैं, वैसे वे हैं या नहीं ? मैंने उनके विषय में शंकित होकर अपनी अहिंसा को लज्जित किया। यदि मुझे उनका हृदय-परिवर्तन करना था, तो मेरे हृदय में उनके प्रति दिन प्रतिदिन प्रेम बढ़ना चाहिए था। उनके विषय में कठोर शब्द बोलने का

अवसर आता, तो मुझे उन्हीं शब्दों का उपयोग करना उचित था, जिनका प्रयोग मैं अपने पिता, माता, स्त्री या पुत्र के लिए करता। मैंने ऐसा नहीं किया।

....अब हमें नया प्रकरण प्रारम्भ करना है। हमें निरंकुश भाषा का मोह छोड़ देना है। अहिंसा का अर्थ यह है कि हम अब तक जिसे अविश्वसनीय समझते आये हैं, उसे विश्वासपात्र समझें। जब तक हम ऐसा नहीं करेंगे, तब तक उसका हृदय-परिवर्तन नहीं कर सकते।

....अहिंसा की तरह धैर्य भी अमर्यादित है। इससे हम किसी वस्तु को खोते नहीं। मैंने जो खोया वह अपनी अहिंसा अथवा आत्मा को कलंकित करके ही। मैंने[1] ग्वायर-निर्णय के परित्याग से आत्म-शुद्धि प्रारम्भ की है। मेरी यह आत्मशुद्धि अभी जारी ही है।

——ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० १०।६।'३९]

- **अहिंसा तो विरोधी की गोद में अपना सिर रख देती है।**
- **अहिंसा का अर्थ यह है कि हम अबतक जिसे अविश्वसनीय समझते रहे हैं, उसे विश्वासपात्र समझें।**
- **अहिंसा की तरह धैर्य भी अमर्यादित है।**

९२. अहिंसा का तत्व-दर्शन : विकास के चरण

[राजकोट सत्याग्रह के सम्बन्ध में ग्वायर-निर्णय का परित्याग करने के बाद गांधी जी के मन में विचार-मन्थन तीव्र गति से होता रहा। अहिंसा के तत्वदर्शन और उसके व्यवहार पक्ष पर उन्होंने एक जिज्ञासु दार्शनिक की सत्यनिष्ठ बुद्धि से विचार किया। और इस विचार-चिन्तन के फलस्वरूप उन्होंने त्रावणकोर आदि अन्य रियासतों में चल रहे जन-आन्दोलनों की स्थिति पर भी वक्तव्य दिये। उन्होंने काठियावाड़ राजनीतिक परिषद की कार्यसमिति में जो वक्तव्य दिया, उसके आवश्यक अंश श्री महादेव ह० देसाई के लेख से उद्धृत हैं।——संपा०]

रियासतों में जागरण अवश्य है, किन्तु यह वीरोचित, क्रियाशील अहिंसा का जागरण नहीं है। मैं यूं ही शीघ्रता से इस निर्णय पर नहीं पहुंचा हूं। इस निर्णय पर तो मैं पहले ही पहुंच चुका था, किन्तु इसके परिणाम का सामना करने का

१. जस्टिस मारिस ग्वायर को वायसराय ने गांधी जी के अनुरोध पर राजकोट-प्रकरण की जाँच के लिए नियुक्त किया था। उन्होंने जो निर्णय किया वह गांधी जी के पक्ष में था। किन्तु बापू ने उस निर्णय के लाभों को स्वीकार नहीं किया।

साहस मुझमें नहीं था। और आज भी मैं साहस की इस न्यूनता का फल भोग रहा हूं। बारडोली[1] के बाद से अब तक वस्तुत: मेरे अन्दर इस साहस की कमी रही है। किन्तु मेरे सहकारी भ्रमवश यह विश्वास करने लगे कि हमने आवश्यक अहिंसा-तत्व को प्राप्त कर लिया है। मैं भी उनकी भ्रामक धारणा में सम्मिलित हो गया। ....इस महान दर्शन के बाद आज मुझे दूसरी दांडी यात्रा नहीं करनी चाहिए। नमक कानून की सविनय अवज्ञा एक सम्पूर्ण वस्तु थी, किन्तु उसमें मानसिक हिंसा आरम्भ से ही पैठ गई थी। हम लोगों ने तब इतना ही समझा था कि शारीरिक हिंसा न होने देना लाभकारी है। इस प्रकार की अहिंसा तो वणिक विद्या हुई; क्षत्रिय धर्म नहीं। यह वणिक विद्या हमें बहुत आगे नहीं ले जा सकती। स्वराज्य प्राप्त करने और उसे स्थिर रखने अथवा शस्त्रबल के विश्वासी अपने विरोधियों का हृदय जीतने में भी ऐसी अहिंसा उपयोगी नहीं हो सकती।

आज यत्र-तत्र मुझे हिंसा की ही प्रतीति हो रही है। कांग्रेस के आन्तरिक एवं वाह्य कलेवर में मुझे हिंसा की ही गन्ध आ रही है। १९२१ में कांग्रेस के बाहर गुण्डापन भी यत्किञ्चित् हमारे नियन्त्रण में था। सम्पूर्ण अहिंसा बहुत कठिन है। इसमें निर्बलता नहीं खप सकती। इस निर्बलता ने ही उपवास[2] तोड़ने की शर्त के रूप में वायसराय का हस्तक्षेप प्राप्त करने के लिए मुझसे ग़लत क़दम उठवाया।

हिंसा से बुरी कायरता

यह अनुभूति किसने कराई और इसके फलस्वरूप तात्कालिक कार्य करने की प्रेरणा किससे मिली? इस तथ्य से कि हमारी तथाकथित अहिंसा विरुद्ध पक्ष में अहिंसा उत्पन्न करने में असफल ही सिद्ध हुई। हमारी अहिंसा से अहिंसा तो उत्पन्न न हुई, इससे हिंसा ही भड़क उठी, अत: उसमें कुछ-न-कुछ दोष अवश्य था। मैं यह बात बार-बार कहते हुए भी नहीं थकता कि हमें मन, वचन, कर्म से अहिंसक रहना था। इतने समय से हम यह (सूत्र) दुहराते आ रहे हैं। किन्तु हमने मन की अहिंसा पर जोर नहीं दिया। शिथिल व्यक्ति कर्म की अपेक्षा मन के क्षेत्र में अधिक शिथिलता दिखलाता ही है। यही बात हिंसा के विषय में है। हमारी वाणी और कर्म में परिलक्षित हिंसा हमारे मन में तरंगायित हिंसा की निर्बल प्रतिध्वनि मात्र है।

१. बारडोली का प्रसिद्ध सत्याग्रह, जिसमें सरदार पटेल के नेतृत्व में किसानों ने बम्बई सरकार के निर्णय के विरुद्ध सत्याग्रह किया था।—संपा०।

२. राजकोट-उपवास।—संपा०।

आप इस सीमा तक मेरे साथ चलने को प्रस्तुत हैं? आपको मेरा कथन यथार्थ लगता है? यदि ऐसा है, तो हमें अन्तस्तल से समस्त मानसिक हिंसा को निकाल बाहर करना चाहिए। किन्तु आप यदि मेरे साथ चलने में असमर्थ हैं तो प्रसन्नतापूर्वक अपने रास्ते जा सकते हैं। यदि किसी दूसरे मार्ग से आप अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं, तो प्रसन्नता से ऐसा कीजिए। ऐसा करके आप मेरे अभिनन्दन के पात्र ही बनेंगे। चाहे कुछ भी हो, कायरता को मैं कदापि सहन नहीं कर सकता। जब मैं नहीं रहूंगा, उस दिन कोई यह न कहे कि गांधी ने लोगों को कायर बनना सिखाया था। यदि आप को ऐसा लगता हो कि मेरी अहिंसा का यह परिणाम होगा, उससे कायरता ही उत्पन्न होगी, तो आपको बिना हिचकिचाहट उसे त्याग देना चाहिए। आप अपमानित और भयभीत होकर मरें, इसकी अपेक्षा मैं यह कहीं अधिक पसन्द करूंगा कि आप वीरतापूर्वक प्रहार करते और उसे झेलते हुए मरें। मेरी कल्पना की अहिंसा यदि असम्भव ही हो, तो उसका दम्भ करने की अपेक्षा अच्छा है कि आप इस अहिंसा-धर्म को ही त्याग दें।

युद्ध से पीठ दिखाकर भागना क्लीवता है। पलायन योद्धा की सबसे बड़ी अपकीर्ति है। सशस्त्र योद्धा जब अपने शस्त्रों को गँवा देता है या वे कुण्ठित हो जाते हैं, तब वह नये शस्त्रों को खोजता है। उनकी सिद्धि के लिए वह रणक्षेत्र छोड़कर चला जाता है। अहिंसक योद्धा रणक्षेत्र छोड़ना जानता ही नहीं। वह तो मन में कोई कुविचार लाये बिना सीधा हिंसा के मुंह में चला जाता है। इस प्रकार की अहिंसा आपको असम्भव लगती हो, तो हमें कम-से-कम स्वयं को तो धोखा नहीं देना चाहिए। स्पष्ट कहकर मार्ग क्यों न छोड़ दें?

मुझे न तो शस्त्र रखने हैं, न रणक्षेत्र छोड़ना है। ऐसा मैं कर ही नहीं सकता। मैं तो अहोरात्र ऐसा योद्धा बनने का प्रयत्न कर रहा हूं, जिसका मैंने वर्णन किया है। और ईश्वर की इच्छा होगी तो मैं इसी जन्म में वैसा योद्धा बन सकता हूं। ऐसा योद्धा एकाकी ही युद्ध कर सकता है।

सदोष अहिंसा

यह स्पष्ट है कि लाखों मनुष्यों के अन्तर में श्रद्धा की चिनगारी उत्पन्न करने की शक्ति आज मुझमें नहीं है। इसके लिए अहिंसा तथा ईश्वर में उच्चकोटि की श्रद्धा स्वयं काम करती है और वह दिनानुदिन मनुष्य के जीवन को प्रकाश देती रहती है।

....मैं पिछले बीस वर्षों से अहिंसा की बात तो कर रहा हूं, किन्तु मैंने अनेक बार अघटित रूप से आत्मवञ्चना की है।....आज जब मैं पिछले दिनों

का स्मरण करता हूं तो देखता हूं कि उस समय भी मैंने अहिंसा के साथ समझौता कर लिया था। केवल शारीरिक हिंसा से दूर रहने पर मैंने सन्तोष मान लिया था।

बात यह है कि मैंने विशुद्ध अहिंसा को कभी देश के समक्ष रखा ही नहीं। यदि मैंने ऐसा किया होता तो आज पूर्ण हिन्दू-मुस्लिम एकता देखने में आती। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के बिना स्वराज्य असम्भव है, यह तो मैं बराबर कहता था। किन्तु मुझे बतला देना उचित था कि हिन्दू-मुस्लिम विरोध का कारण दोनों पक्षों में शुद्ध अहिंसा के प्रति आग्रह का अभाव था।

—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० २४।६।'३९]

- सम्पूर्ण अहिंसा बहुत कठिन है। उसमें निर्बलता नहीं खप सकती।
- शिथिल व्यक्ति कर्म की अपेक्षा मन के क्षेत्र में अधिक शिथिलता दिखलाता है।
- हमारी वाणी और कर्म में परिलक्षित हिंसा हमारे मन में तरंगायित हिंसा की निर्बल प्रतिध्वनि मात्र है।
- चाहे कुछ भी हो, कायरता को मैं कदापि सहन नहीं कर सकता।
- आप अपमानित और भयभीत होकर मरें, इसकी अपेक्षा मैं यह कहीं अधिक पसन्द करूँगा कि आप वीरतापूर्वक प्रहार करते और उसे झेलते हुए मरें।
- युद्ध से पीठ दिखा कर भागना क्लीवता है। पलायन योद्धा की सबसे बड़ी अपकीर्ति है।
- अहिंसक योद्धा रणक्षेत्र छोड़ना जानता ही नहीं।
- लाखों मनुष्यों के अन्तर में श्रद्धा की चिनगारी उत्पन्न करने की शक्ति आज मुझमें नहीं है।

९३. मध्यम मार्ग

[नग्न हिंसा और शुद्ध अहिंसा के बीच का मार्ग अहिंसात्मक बरजोरी अथवा अहिंसात्मक बलप्रयोग है। मि० केस ने इस मार्ग के समर्थन में इसी शीर्षक से एक पुस्तक भी लिखी है। देश में कुछ ऐसे विचारक भी थे जो स्पष्ट रूप से कहते थे कि गांधी जी-द्वारा व्यक्त सम्पूर्ण अहिंसा उनके लिए नहीं है; वे तो अहिंसात्मक बरजोरी को ही उपयुक्त समझते हैं। गांधी जी ने ऐसे विचारकों की जो समीक्षा की, उसके आवश्यक अंश महादेव ह० देसाई के लेख 'निर्णय के बाद' से उद्धृत हैं।—संपा०]

इस प्रकार के विचारक कहते हैं कि वे हिंसा और अहिंसा दोनों में ही विश्वास रखते हैं, क्योंकि समयानुकूल हिंसा और अहिंसा दोनों से कार्य सिद्ध होता है।

वे अहिंसा को इसलिए अपनाये हुए हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में यही अधिक अनुकूल है।

किन्तु मेरे लिए तो साध्य और साधन पर्यायवाची हैं। इसलिए जब तक हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच जाते सत्य और अहिंसा ही हमारे उद्देश्य हैं। राजकोट में मैंने साधनों के साथ समझौता कर लिया था। मैंने अपनी ही तराजू पर अपने को तोला और स्वयं को हल्का पाया। किन्तु इससे कोई हानि नहीं हुई। अपनी भूल का भान होते ही मैं सम्हल गया। मेरा समर्पण निर्बलता के कारण नहीं था, बल्कि इसमें मेरी शक्ति का पूर्ण प्रदर्शन था। इसका जन्म उस अहिंसा से हुआ, जो मेरी दृष्टि में निर्बल का नहीं, सर्वश्रेष्ठ वीर का शस्त्र है।

आप कहेंगे कि हम अहिंसा, सत्याग्रह अथवा सविनय भंग की घोषणा नहीं करेंगे। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं हो जाता कि आप हिंसक, असत्याग्रही या अभद्र अवज्ञाकारी हो गये।

--ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० १।७।'३९]

- **मेरे लिए तो साध्य और साधन पर्यायवाची हैं।**

९४. अहिंसा बनाम हिंसा

एक सप्ताह पहिले जहां मैंने राजकोट के सवाल को छोड़ा था वहीं से मुझे फिर उस पर विचार करना चाहिए।

सिद्धान्तरूप से यदि किसी एक भी व्यक्ति में अहिंसा का पर्याप्त विकास हो गया है, तो वह अपने क्षेत्र में हिंसा का—भले ही वह बहुत व्यापक और उग्रतम रूप में भी हो—मुकाबला करने के साधनों को ढूंढ़ सकता है। मैंने बारबार अपनी अपूर्णता स्वीकार की है। मैं पूर्ण अहिंसा की मिसाल नहीं हूं। मैं तो अभी विकास कर रहा हूं। अहिंसा का जितना विकास मुझसे अभी तक हुआ है, अब तक की उत्पन्न परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए वह काफ़ी पाया गया है। लेकिन आज चारों ओर के हिंसामय वातावरण का मुकाबला करने में मैं अपने को असहाय अनुभव करता हूं। राजकोट-सम्बन्धी मेरे वक्तव्य पर 'स्टेट्समैन' में एक बहुत चुभता हुआ लेख निकला था। सम्पादक ने उसमें बताया था कि अंग्रेज़ लोगों ने कभी हमारे आन्दोलन को सच्चा सत्याग्रह नहीं समझा, लेकिन व्यवहार-कुशल होने की वजह से उन्होंने इस झूठी कल्पना को जारी रहने दिया। यद्यपि वे जानते थे कि यह भी एक हिंसात्मक विद्रोह था; यह प्रत्यक्षरूप से हिंसात्मक इसलिए नहीं हो सका कि विद्रोहियों के पास हथियार न थे। मैं अपनी याददास्त से ही

'स्टेट्समैन' से यह दे रहा हूं। जब मैंने यह लेख पढ़ा, तो महसूस किया कि इस दलील में भी वज़न है। उन दिनों की घटनाओं को उस समय मैं जिस रूप में देखता था, उसके प्रकाश में यद्यपि मैं उस आन्दोलन को विशुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष मानता था, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि सत्याग्रहियों में हिंसा अवश्य मौजूद थी। मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि यदि मुझमें अहिंसा का पूर्ण भान होता, तो मैं इससे थोड़ा-सा भी विचलित होने को बड़ी प्रबलता से अनुभव करता और मेरी यह भावुकता अहिंसा में किसी तरह की मिलावट के विरुद्ध विद्रोह कर बैठती।

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के एक-साथ मिलकर सत्याग्रह करने ने मेरी आँखों पर पट्टी बांध दी और मैं उस हिंसा को नहीं देख सका जो बहुत-से लोगों के दिलों में दबकर बैठी हुई थी। अंग्रेज लोग बड़े कुशल राजनीतिज्ञ और शासक हैं। वे तो वही रास्ता पसन्द करते हैं, जिसमें कम-से-कम संघर्ष हो। उन्होंने जब देखा कि कांग्रेस-जैसी बड़ी संस्था को डरा-धमकाकर कुचलने की अपेक्षा उससे समझौता कर लेना ज्यादा लाभदायक है तो वे वहां तक झुक गये जहां तक झुकना उन्होंने ज़रूरी समझा। मेरी अपनी धारणा यह है कि हमारा पिछला संघर्ष कर्मणा प्रधानतः अहिंसात्मक था। भविष्य के इतिहास-लेखक भी इसे इसी रूप में ग्रहण करेंगे। लेकिन सत्य और अहिंसा के शोधक के नाते मुझे यदि अहिंसा हृदय में नहीं है, तो सिर्फ क्रिया में उसे देखकर सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए। पहाड़ की चोटी पर से मुझे यह घोषणा करनी चाहिए कि उन दिनों की अहिंसा उस अहिंसा से बहुत नीचे थी, जिसका मैं प्रायः वर्णन करता रहा हूं।

दिल व दिमाग़ के सहयोग के बिना सिर्फ़ क्रिया में अहिंसा का वाञ्छनीय परिणाम नहीं निकलता। हमारी अपूर्ण अहिंसा की असफलता आज सबके सामने है। हिन्दुओं और मुसलमानों में आज जो लड़ाई-झगड़ा चल रहा है, उसे देखिए। दोनों एक दूसरे से लड़ने के लिए कमर कस रहे हैं। असहयोग के दिनों में जिस हिंसा को हमने दिलों में आश्रय दे रखा था, आज वह हम पर ही हावी हो गई है। वह हिंसात्मक शक्ति जो जनता में पैदा हो चुकी थी, किन्तु एक उद्देश्य को पाने के प्रयत्न ने जिसे बाँध रखा था, आज खुल पड़ी है और हम उसका आपस में एक-दूसरे के विरुद्ध प्रयोग कर रहे हैं।

यही बात, भले ही कुछ कम उग्र रूप में हो, कांग्रेसियों के आपसी झगड़ों में और कांग्रेसी सरकारों के दमनकारी उन उपायों में देखी जा सकती है, जिन्हें वे अपने प्रान्त का शासन-प्रबन्ध करने के लिए लाचार होकर इस्तेमाल में ला रहे हैं।

यह कहानी साफ़-साफ़ बता रही है कि किस तरह आज का सारा वातावरण हिंसा से पूर्ण हो गया है। मुझे आशा है कि इससे यह भी साफ़ हो जायगा कि जब तक इस वातावरण को ही बिलकुल बदल न दिया जायगा, अहिंसात्मक सार्वजनिक आन्दोलन का चलना असम्भव है। चारों ओर होनेवाली घटनाओं की ओर से आंखें बन्द कर लेना स्वयं आफ़त बुलाना है। मुझे यह सलाह दी गई है कि अगर मैं सार्वजनिक सत्याग्रह की घोषणा कर दूं, तो सब अन्दरूनी झगड़े ख़त्म हो जायंगे, हिन्दू-मुसलमान आपसी मतभेद दूर करके मिल जायंगे, और कांग्रेसी पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष तथा अधिकारों की लड़ाई भूल जायंगे। लेकिन स्थिति का मेरा अध्ययन बिलकुल विपरीत है। यदि आज अहिंसा के नाम पर कोई सामूहिक आन्दोलन शुरू कर दिया गया तो वह स्वयं असंगठित और कुछ स्थितियों में संगठित हिंसा में परिणत हो जायगा। इससे कांग्रेस बदनाम हो जायगी, स्वराज्य-प्राप्ति के कांग्रेस के युद्ध पर आघात का पहाड़ टूट पड़ेगा और बहुत से घर तबाह हो जायंगे। यह सम्भव है कि मैं जो चित्र खींच रहा हूं, वह मेरी दुर्बलता का परिणाम हो और बिलकुल झूठ हो। अगर ऐसा है, तो जब तक मैं अपनी इस दुर्बलता को दूर न कर दूं, मैं किसी ऐसे आन्दोलन का नेतृत्व नहीं कर सकता, जिसमें महान दृढ़ संकल्प और शक्ति की ज़रूरत हो।

लेकिन अगर मैं कोई शुद्ध और प्रभावशाली अहिंसात्मक उपाय की तलाश नहीं करता, तो हिंसा का फूट पड़ना भी निश्चित-सा है। जनता अपनी शक्ति और इच्छाओं को प्रकट करना चाहती है। उसे सिर्फ़ उस रचनात्मक कार्यक्रम से सन्तोष नहीं है जो मैंने बतलाया है और जिसे कांग्रेस ने सर्वसम्मति से पास कर दिया है। जैसा कि मैं पहिले भी कह चुका हूं, रचनात्मक कार्यक्रम की ओर लोगों का पूरा ध्यान न देना ही इस बात का सबूत है कि कांग्रेसियों ने अहिंसा को केवल बाहरी तौर से स्वीकार किया है, वह उनके दिल की चीज नहीं बनी।

लेकिन अगर हिंसा फूट पड़ी, तो वह बिना किसी कारण के नहीं फूटेगी। हमारा स्वराज्य-स्वप्न अभी तक बहुत दूर है। केन्द्रीय सरकार, जो आमदनी का अस्सी फ़ीसदी भाग खुद हड़प जाती है, लोगों को पीस रही है और इनकी आकांक्षाओं को कुचल रही है, उसकी ग़ैरज़िम्मेदारी अब दिन-दिन असह्य होती जा रही है।

अधिकांश रियासतों में भी भीषण निरंकुशता की भावना बढ़ रही है। मैं अपनी इस जिम्मेदारी को स्वीकार करता हूं कि मैंने कुछ रियासतों में सविनय-भंग आन्दोलन को स्थगित करा दिया है। इसका परिणाम हुआ है प्रजा और राजाओं दोनों का नैतिक पतन। लोग पस्तहिम्मत हो गये हैं। और सोचने लगे हैं कि

सब कुछ चला गया। राजाओं का पतन उनके इस विचार में है कि अब प्रजा से डरने की कोई ज़रूरत नहीं, उसे कोई वास्तविक अधिकार देने की ज़रूरत नहीं। दोनों ग़लती पर हैं। इस परिणाम से मैं निराश नहीं हुआ। वस्तुतः मैंने इन परिणामों की भविष्यवाणी पहिले ही कर दी थी। जब मैं जयपुर के कार्यकर्त्ताओं के साथ इस सलाह पर विचार कर रहा था कि वे सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दें, भले ही वह सत्याग्रह नियमों और नियन्त्रणों में रहकर चलाया जा रहा हो। प्रजा में नैतिक पतन तो यह बताता है कि उनके विचार और वाणी में अहिंसा नहीं थी, और जब जेल जाने और भारी प्रदर्शनों का जोश और नशा खत्म हुआ, लोगों ने यह समझा कि लड़ाई खत्म हो गई। राजाओं ने भी एकदम यह परिणाम निकाल लिया कि सत्याग्रहियों के विरुद्ध कठोर उपाय बरत कर और भोले-भाले लोगों को दिखाऊ सुधारों-द्वारा फुसला कर वे अपनी निरंकुशता को और भी दृढ़ कर सकते हैं।

लेकिन प्रजा और राजा दोनों इस तरह सही परिणाम पर पहुंच सकते थे। प्रजा के लिए उचित था कि मेरी सलाह की गहराई को पहचानती और शक्ति एवं दृढ़ संकल्प से रचनात्मक कार्य-द्वारा अपनी शक्ति और क्षमता को बढ़ाती। और राजा लोग सत्याग्रह बन्द होने से उत्पन्न अवसर का लाभ उठाकर न्याय की खातिर न्याय करते, अपनी प्रजा के बुद्धिमान किन्तु अग्रगामी लोगों को कुछ वास्तविक सुधार देकर सन्तुष्ट करते। लेकिन यह तभी हो सकता था, जबकि वे समय की भावना को पहिचानते। आज भी प्रजा के लिए या राजाओं के लिए बहुत देर नहीं हुई। वे अब भी इस सचाई को समझ सकते हैं।

इस सिलसिले में मुझे सर्वोच्च सत्ता को भूलना नहीं चाहिए। इस प्रकार के लक्षण प्रतीत हो रहे हैं कि सर्वोच्च सत्ता राजाओं के प्रति की गई अपनी इस पिछली घोषणा पर पछता रही है कि प्रजा जो सुधार चाहती है, उन्हें देने की राजाओं को पूरी आजादी है। इस प्रकार की कानाफूसी जोरों से होती हुई मालूम दे रही है कि घोषणा पर अक्षरशः अमल करना आवश्यक नहीं है। यह रहस्य सभी जानते हैं कि राजाओं में ऐसा कोई काम करने का साहस नहीं है, जिससे सर्वोच्च सत्ता नाराज़ हो सकती है। वे ऐसे लोगों से बात भी करना नहीं चाहेंगे, जिनसे उनकी वार्ता सर्वोच्च सत्ता पसन्द न करती हो। जब राजाओं पर इतना भारी प्रभाव डाला जाता है, यह स्वाभाविक ही है कि बहुत-सी रियासतों में शासकों की भीषण निरंकुशता के लिए सर्वोच्च सत्ता को भी ज़िम्मेदार माना जाय। इसलिए यदि कभी इस अभागे देश में हिंसा फूट पड़ी तो उसकी ज़िम्मेदारी सभी पर, सर्वोच्च सत्ता पर, राजाओं पर और सबसे ज्यादा कांग्रेसियों पर पड़ेगी। सर्वोच्च सत्ता

और राजाओं ने कभी अहिंसक होने का दावा नहीं किया। उनकी शक्ति का आधार और स्रोत ही हिंसा का प्रयोग है। लेकिन कांग्रेस ने १९२० से अहिंसा को अपनी निश्चित नीति के रूप में स्वीकार कर लिया है। और इसमें सन्देह नहीं कि उसने इस पर चलने की भी कोशिश की है। लेकिन चूंकि कांग्रेसियों ने अपने दिलों में अहिंसा को स्थान नहीं दिया, इसलिए उन्हें इस दोष का फल भुगतना ही चाहिए, भले ही वह दोष किसी इरादे से न किया गया हो। वर्तमान नाजुक समय में वह दोष ऊपर फूट पड़ा है और ऐसा लगता है कि किसी दोषपूर्ण उपाय से इस समस्या का हल नहीं हो सकता। अहिंसा का उद्देश्य उत्पीड़न या दबाव किसी तरह भी नहीं हो सकता। उसका उद्देश्य तो हृदय-परिवर्तन है। हम राजाओं का दिल नहीं बदल सके। यह कहना बेकार है कि शासकों को अपनी इच्छा से अपने अधिकार छोड़ देने के लिए प्रेरित करना असम्भव है। मैंने यह दावा किया है कि सत्याग्रह एक नया परीक्षण है। जब कांग्रेसी इस पर एक बार सच्चे दिल से अमल करेंगे तब समय ही बतलायगा कि यह सफल हुआ है या असफल? अगर एक नीति पर भी ईमानदारी से चलना हो, तो पूरे दिल से चलना चाहिए। हमने ऐसा नहीं किया। इसलिए पहिले इसके कि सर्वोच्च सत्ता या राजाओं से हम यह आशा करें कि वे न्याय करेंगे, हम कांग्रेसियों को चाहिए कि स्वयं अपने को बदलें।

लेकिन अगर कांग्रेसी अहिंसा की ओर जितना आज तक बढ़ चुके हैं, उससे आगे न बढ़ें और सर्वोच्च सत्ता व राजाओं ने भी अपनी इच्छा से आवश्यक क़दम न उठाया, तो देश को हिंसा के लिए तैयार रहना चाहिए, बशर्ते कि नई टेकनीक ने अहिंसात्मक संघर्ष का कोई ऐसा तरीक़ा न निकाल लिया, जो हिंसा के समय प्रभावशाली रूप से सफल हो सकता हो और बुराइयों को दूर कर सकता हो। हिंसा सफल नहीं होगी, सिर्फ यह तथ्य हिंसा को फूट पड़ने से रोक नहीं सकता। महज़ वैधानिक आन्दोलन से काम नहीं चलेगा।

—ह० ज०। ह० से० ८।७।'३९]

९५. अहिंसा और कायरता

अहिंसा और कायरता कभी एक साथ नहीं चल सकते। मैं एक पूर्णतया सशस्त्र और हृदय से भीरु व्यक्ति की कल्पना कर सकता हूं। शस्त्र रखने में कायरता नहीं तो भय का भूत अवश्य छिपा है। किन्तु विशुद्ध निर्भीकता के बिना सच्ची अहिंसा असम्भव है।

—ह० ज०। ह० से० १५।७।'३९]

९६. मुक्ति का एकमात्र मार्ग : अहिंसा

मैं जानता हूं कि अहिंसा की प्रगति स्पष्ट रूप से बहुत धीमी है। किन्तु अनुभव ने मुझे बतलाया है कि हमारे सम्मिलित लक्ष्य का यही सबसे निश्चित मार्ग है। युद्ध और शस्त्रास्त्र से न तो भारत को मुक्ति प्राप्त हो सकती है, न संसार को। हिंसा तो न्याय-प्राप्ति के लिए भी निष्फल सिद्ध हो चुकी है। यदि इस विश्वास के साथ, अहिंसा में पूरी श्रद्धा रखने में कोई मेरा साथ न दे, तो मैं अकेला ही इस पथ पर चलने के लिए प्रस्तुत हूं।

—सेवाग्राम २४।८।'३९। ह० से० २६।८।'३९]

९७. शासन-नीति के रूप में अहिंसा

[अहिंसाशस्त्र का उपयोग केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ने और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है अथवा वह स्वतन्त्र भारत की शासन नीति के रूप में भी प्रभावशाली हो सकता है? इस बहुचर्चित प्रश्न का उत्तर गांधी जी ने 'कसौटी पर' शीर्षक लेख में दिया है। इस लेख के उद्धरण प्रस्तुत हैं।—संपा०]

कार्यसमिति[1] के सदस्यों के साथ चर्चा करते हुए मैंने देखा कि अहिंसाशस्त्र द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ने से आगे उनकी अहिंसा कभी नहीं गई। मैंने इस विश्वास को हृदय में स्थान दे रखा था कि संसार की सबसे बड़ी साम्राज्य-वादी सत्ता के साथ लड़ते हुए कांग्रेसजनों ने अहिंसा के व्यवहार के तर्कपूर्ण परिणाम को पहचान लिया है। किन्तु अहिंसा-जैसे बड़े-बड़े प्रयोगों में कल्पित प्रश्नों के लिए मुश्किल से ही कोई गुंजाइश होती है। ऐसे प्रश्नों के उत्तर में मैं स्वयं कहा करता था कि जब हम वस्तुतः स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेंगे तभी हमें ज्ञात होगा कि हम अपनी रक्षा अहिंसात्मक तरीके से कर सकते हैं या नहीं।

किन्तु आज यह प्रश्न कल्पित नहीं है। ब्रिटिश सरकार हमारे अनुकूल कोई घोषणा करे या न करे, कांग्रेस को ऐसे किसी मार्ग का निर्णय करना ही पड़ेगा, जिसका वह भारत पर आक्रमण होने की स्थिति में अनुसरण करेगी। सरकार के साथ कोई समझौता न हो, तब भी कांग्रेस को अपनी नीति तो घोषित करनी ही होगी। उसे यह बतलाना पड़ेगा कि वह आक्रामक शक्ति का सामना हिंसात्मक साधनों से करेगी अथवा अहिंसात्मक साधनों से?

१. कांग्रेस कार्य समिति।

जहाँ तक मैं विस्तृत चर्चा के बाद कार्यसमिति के सदस्यों की मनोवृत्ति समझ सका हूं उनका विचार है कि वे सशस्त्र आक्रमण के समय अहिंसात्मक साधनों-द्वारा देश की रक्षा करने के लिए तैयार नहीं हैं।

यह दुःखद प्रसंग है। निश्चय ही अपने घर से शत्रु को बाहर करने के लिए जिन उपायों का प्रयोग किया जाता है, उसे घर से बाहर रखने के लिए भी न्यूनाधिक उन्हीं के अनुरूप साधन अपनाये जाने चाहिए। और शत्रु को घर से बाहर रखने का अर्थात् सुरक्षा का उपाय ज्यादा सरल होना चाहिए। अस्तु, वास्तविकता यह है कि हमारी लड़ाई बलवान की अहिंसात्मक लड़ाई नहीं रही है। वह तो दुर्बल के निष्क्रिय प्रतिरोध की लड़ाई रही है। यही कारण है कि महत्व के इन क्षणों में हमारे हृदय से अहिंसा की शक्ति में ज्वलन्त श्रद्धा का कोई स्वतःस्फूर्त उत्तर नहीं मिला है। अतः कार्यसमिति ने यह बुद्धिमानी की ही बात कही है कि वह इस तर्कपूर्ण क़दम को उठाने के लिए तैयार नहीं है।

इस स्थिति में दुःखद बात यह है कि कांग्रेस यदि उन लोगों में सम्मिलित हो जाती है, जो भारत की सशस्त्र रक्षा की आवश्यकता में विश्वास रखते हैं, तो इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि उसके बीस वर्ष यों ही चले गये। कांग्रेसवादियों ने सशस्त्र युद्ध-विज्ञान सीखने के प्राथमिक कर्तव्य के प्रति भारी उपेक्षा दिखलाई। मुझे भय है कि इस दुःखद अयोग्यता के लिए इतिहास मुझे ही, युद्ध के सेनापति के रूप में, उत्तरदायी ठहरायेगा। भविष्य का इतिहासकार कहेगा कि मुझे यह पहिले ही देख लेना चाहिए था कि राष्ट्र बलवान की अहिंसा नहीं केवल निर्बल का अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध सीख रहा है। वह यह भी कहेगा कि ऐसी स्थिति में मुझे कांग्रेसजनों के लिए सैनिक शिक्षा उपलब्ध कर देनी चाहिए थी।

मेरा विचार था कि भारत किसी तरह सच्ची अहिंसा सीख लेगा और इसीलिए मुझे यह अनुभव नहीं हुआ कि सहकर्मियों को सशस्त्र प्रतिरक्षा के लिए प्रशिक्षण लेने को कहूं। इसके विपरीत मैं तलवार और लाठियों को निरुत्साहित ही करता रहा। अतीत के लिए मुझे आज भी पश्चात्ताप नहीं है। मेरे मन में आज भी यही ज्वलन्त श्रद्धा है कि संसार के समस्त देशों में भारत ही ऐसा है जो अहिंसा की कला सीख सकता है। आज भी यदि वह इस कसौटी पर कसा जाय तो सम्भवतः सहस्रों ऐसे स्त्री-पुरुष मिल जायंगे, जो अपने उत्पीड़कों के प्रति कोई द्वेषभाव रखे बिना प्रसन्नता से प्राणोत्सर्ग के लिए प्रस्तुत हो जायंगे।

मैंने सहस्रों की उपस्थिति में बार-बार जोर देकर कहा है कि सम्भवतः उन्हें अधिक से अधिक कष्ट झेलने पड़ेंगे, यहां तक कि गोलियों का शिकार होना पड़ेगा। नमक सत्याग्रह के दिनों में क्या सहस्रों पुरुषों और स्त्रियों ने किसी भी सेना के सैनिकों

के ही समान वीरता से अनेक उत्पीड़न नहीं झेले थे ? भारत में लोग जैसी सैनिक योग्यता अहिंसात्मक युद्ध में प्रदर्शित कर चुके हैं, किसी आक्रमणकारी के विरुद्ध लड़ने के लिए, उससे भिन्न प्रकार की योग्यता की आवश्यकता नहीं। केवल उसका प्रयोग एक वृहत्तर पैमाने पर करना होगा।

एक बात नहीं भूलनी चाहिए। निःशस्त्र भारत के लिए आवश्यक नहीं कि उसे जहरीली गैसों या बमों से ध्वस्त होना पड़े। मैजिनो लाइन[1] ने सिगफ्रीड लाइन[2] को आवश्यक बना दिया है। वर्तमान परिस्थितियों में भारत की रक्षा इसलिए आवश्यक हो गई है कि वह ब्रिटेन का एक अंग है। स्वतन्त्र भारत का कोई शत्रु नहीं हो सकता। यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकाने की कला सीख लें और उसका पूर्ण रूप से व्यवहार करने लगें, तो मैं यह कहने का साहस करूंगा, कि भारत पर कोई आक्रमण नहीं करना चाहेगा। हमारी अर्थनीति ऐसी होगी कि वह शोषकों के लिए किसी प्रलोभन की वस्तु सिद्ध नहीं होगी।

किन्तु कुछ कांग्रेसी कहेंगे कि ब्रिटेन की बात छोड़ दी जाय तब भी भारत के सीमान्त पर अनेक सैनिक जातियाँ रहती हैं। देश पर उनका भी उतना ही अधिकार है, जितना हमारा और वे उसकी रक्षा के लिए युद्ध करेंगी। यह बिलकुल सत्य है। इसलिए अभी मैं केवल कांग्रेसियों की ही बात कह रहा हूं। आक्रमण की दशा में वे क्या करेंगे ? जब तक हम अपने सिद्धान्त पर मर मिटने के लिए तैयार न हो जायँगे, हम सारे भारत को अपना मतानुयायी नहीं बना सकते।

मुझे तो इससे विरुद्ध मार्ग उपयुक्त लगता है। सेना में पहिले से ही उत्तर भारत के मुसलमानों, सिक्खों और गोरखों की बहुत बड़ी संख्या है। यदि दक्षिण और मध्य भारत के जनसाधारण अपना प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था कांग्रेस का सैनिकीकरण कर देना चाहते हैं, तो उन्हें मुसलमानों, सिखों आदि से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ेगी। कांग्रेस को तब सेना का एक भारी बजट बनाने में भाग लेना पड़ेगा। यह सब बातें सम्भवतः कांग्रेस की सहमति लिये बिना हो जायँ। तब सारा संसार चर्चा करेगा कि कांग्रेस ऐसी चीजों में सम्मिलित है या नहीं।

संसार तो आज भारत से कुछ नवीन और अपूर्व कृत्य देखने की प्रतीक्षा में है। यदि कांग्रेस ने भी वही प्राचीन, जीर्ण-शीर्ण कवच धारण कर लिया, जिसे संसार धारण किये हुए है तो उसे संकुल विश्व में कोई नहीं पहिचानेगा। कांग्रेस का नाम तो आज इसलिए है कि वह सर्वोत्तम राजनीतिक शस्त्र के रूप में अहिंसा

१. द्वितीय महायद्ध में फ्रांस द्वारा फ्रांस में निर्मित एक यान्त्रिक रणपंक्ति।
२. उपर्युक्त रणपंक्ति के प्रतिरोध में जर्मनी द्वारा बनाई गई रणपंक्ति।

का प्रतिनिधित्व करती है। कांग्रेस यदि मित्र-राष्ट्रों की सहायता अहिंसा के सक्षम प्रतिनिधि के रूप में करती है, तो वह मित्रराष्ट्रों के उद्देश्य को ऐसी प्रतिष्ठा और शक्ति प्रदान करेगी, जो युद्ध का अन्तिम भाग्य-निर्णय करने में अमूल्य सिद्ध होगी। किन्तु-कार्य समिति के सदस्यों ने इस प्रकार की अहिंसा व्यक्त नहीं की। इसमें उन्होंने नैतिकता और साहस का ही प्रदर्शन किया है।

अतः मेरी स्थिति केवल मुझ तक ही सीमित है। मुझे अब यह देखना पड़ेगा कि इस एकान्त पथ पर मेरे साथ कोई अन्य सहयात्री है या नहीं। यदि मैं अपने को बिल्कुल अकेला पाता हूं तो मुझे दूसरों को अपने मत में मिलाने का प्रयत्न करना ही चाहिए। अकेला होऊं या अनेक के साथ, मैं अपना यह विश्वास अवश्य घोषित करूंगा कि भारत अपने सीमान्तों की रक्षा के लिए भी हिंसात्मक साधनों का सर्वथा परित्याग कर दे। शस्त्रीकरण की दौड़ में सम्मिलित होना, उसके लिए आत्मघात करना है।

भारत यदि अहिंसा को गँवा देता है, तो ससार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जायगा। जिस सिद्धान्त का गत अर्द्धशताब्दी से मैं दावा करता आ रहा हूं, उसका अनुकरण मैं अवश्य करूंगा। मैं अन्तिम श्वास तक आशा रखूँगा कि भारत अहिंसा को एक दिन अपना जीवन-सिद्धान्त बनायगा, मानव जाति के गौरव की रक्षा करेगा और जिस स्थिति से मनुष्य को ऊँचा उठा मान लिया गया है, उसमें लौटने से उसे रोकेगा।

—ह० ज०। ह० से० १४।१०।'३९]

- **समस्त देशों में भारत ही ऐसा है जो अहिंसा की कला सीख सकता है।**
- **निःशस्त्र भारत के लिए आवश्यक नहीं कि उसे जहरीली गैसों या बमों से ध्वस्त होना पड़े।**
- **यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकाने की कला सीख लें और उसका पूर्ण रूप से व्यवहार करने लगें, तो मैं यह कहने का साहस करूँगा कि भारत पर कोई आक्रमण नहीं करना चाहेगा।**
- **भारत यदि अहिंसा को गँवा देता है, तो संसार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जायगा।**
- **मैं अन्तिम श्वास तक आशा रखूँगा कि भारत अहिंसा को एक दिन अपना जीवन-सिद्धान्त बनायगा।**

९८. अहिंसा-धर्म

यदि भारत तलवार के सिद्धान्त को अपनाता है, तो सम्भव है कि वह क्षणिक विजय पा ले। किन्तु उस दशा में वह मेरे लिए उतना गौरवास्पद न रहेगा। मैं भारत को इसलिए चाहता हूं कि मेरा सब कुछ उसी के कारण है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि संसार के लिए उसका अपना एक मिशन है। उसे अन्धे की तरह युरोप की नकल नहीं करनी है। जब भारत तलवार के सिद्धान्त को मान लेगा तो वह मेरी परीक्षा की घड़ी होगी। मुझे आशा है कि मैं इस कसौटी पर खरा उतरूंगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं के परे है। यदि मुझमें उसके प्रति ज्वलन्त श्रद्धा है, तो वह मेरे भारत-प्रेम पर भी विजय पा लेगा। अहिंसा-धर्म के द्वारा भारत की सेवा करना ही मेरे जीवन का व्रत है, और मैं मानता हूं कि अहिंसा हिन्दू धर्म का मूलभूत सिद्धान्त है।

अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और साधु-सन्तों के लिए ही नहीं है; जनसाधारण के लिए भी वह उतना ही आवश्यक है।

—सेवाग्राम २९।१०।'३९। ह० ज०। ह० से० ४।११।'३९]

- **मैं भारत को इसलिए चाहता हूँ कि मेरा सब कुछ उसी के कारण है।**
- **मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं के परे है।**
- **अहिंसा हिन्दू धर्म का मूलभूत सिद्धान्त है।**

९९. मेरी अहिंसा कायर नहीं वीर बनाती है

सनातनी हिन्दू मेरी अहिंसा से घृणा कर सकते हैं। मैं जानता हूं कि बहुतों का यह खयाल है कि हिन्दू मेरे प्रभाव में रहे तो कायर बन जायंगे। लेकिन मैं ऐसे किसी आदमी को नहीं जानता, जो मेरे प्रभाव में रहकर कायर बन गया हो। अतः मेरी अहिंसा का वे चाहे जितना विरोध कर सकते हैं, किन्तु साथ ही असत्य का सहारा लेकर तो वे अपनी या हिन्दू धर्म की कुसेवा ही करते हैं।

—सेवाग्राम ३०।१०।'३९। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० ज०। ह० से० ४।११।'३९]

१००. सशस्त्र क्रान्ति और अहिंसा

.....मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि भारत सशस्त्र क्रान्ति के लिए तैयार नहीं है परन्तु यह न तो ब्रिटेन के लिए शोभा की बात है और न भारत के लिए। भारत में सशस्त्र विद्रोह की शक्ति नहीं है। ब्रिटेन के साथ सम्बन्ध होने से वह और भी कमजोर हो गया है। उसके शस्त्र छीन लेना ब्रिटिश इतिहास पर काला धब्बा है।

देश के समक्ष अहिंसा-मंत्र का प्रतिपादन करने का जीवन-कार्य मुझे ईश्वर-कृपा से प्राप्त हुआ है। अच्छा समझो या बुरा, कांग्रेस ने अहिंसा को अपना लिया है और पिछले उन्नीस साल से कांग्रेस ने—जिसे सभी लोग देश की सबसे लोकप्रिय और सबल संस्था मानते हैं—अहिंसा का पालन करने की बराबर और भरसक कोशिश की है। यही कारण है कि बलात् शस्त्र छीन लेने की बात भारत को इतनी नहीं खटकी है जितनी दूसरी हालत में खटक सकती है। यह अनुमान लगाना व्यर्थ होगा कि यदि कांग्रेस स्वराज्य-प्राप्ति के मुख्य साधन के रूप में अहिंसा को स्वीकार न करती तो वह क्या करती? कांग्रेस ने अपनी परीक्षा अहिंसा की कसौटी पर होने दी है।

—सेवाग्राम २८।११।'३९। ह० ज०। ह० से० २।१२।'३९]

१०१. अहिंसा के बिना आज़ादी भी नहीं

मैं तो अब भी अहिंसा का बलिदान करके आजादी नहीं लूं। आलोचक यह ताना दे सकता है कि ब्रिटिश सरकार से जिस घोषणा की अपेक्षा की जाती है वह कर दे तो आप मित्रराष्ट्रों की सहायता करने लगेंगे और इस तरह हिंसा के भागी-दार बन जायंगे। यह ताना उचित होगा, यदि बात यह न होती कि कांग्रेस न धन देगी, न जन। उसके नैतिक प्रभाव का उपयोग भी शान्ति के लिए किया जायगा। मैं इस अख़बार में पहिले ही कह चुका हूं कि मेरी अहिंसा बचाव और आक्रमण करनेवाली अलग-अलग किस्म की हिंसाओं को मानती है। यह सही है कि अन्त में यह भेद मिट जाता है, किन्तु आरम्भ में तो उसका मूल्य है ही। अवसर आने पर अहिंसावादी व्यक्ति के लिए यह कहना धर्म हो जाता है कि न्याय किस तरफ़ है। इसीलिए मैंने अबीसीनिया, स्पेन, चेकोस्लावाकिया, चीन और पोलैण्ड के निवासियों की सफलता चाही थी, यद्यपि मैंने प्रत्येक स्थिति में यह चाहा था कि वे लोग अहिंसात्मक मुकाबला करते तो अच्छा होता।

—सेवाग्राम ५।१२।'३९। ह० से० ९।१२।'३९ 'वही पर लगायेगा' टिप्पणी से।]

● मैं तो अब भी अहिंसा का बलिदान करके आजादी न लूँ।

१०२. अहिंसा-मार्ग की विशेषता

....अहिंसा के साथ और किसी सिद्धान्त का मेल नहीं बैठता। यदि मनुष्य-स्वभाव इसके अनुकूल नहीं बनता, तो भी कोई बिगाड़ होने वाला नहीं। अहिंसा का मार्ग ही ऐसा है कि उसमें बुराई करने वाला यदि अपनी भूल नहीं सुधारता तो वह अपनी मौत आप ही बुला लेता है।
—सेवाग्राम ११।१२।'३९ । ह० ज० । ह० से० १६।१२।'३९]

१०३. अहिंसा : श्रद्धा का आधार

मेरा दावा है कि मैं वर्तमान समय का सबसे बड़ा लोकतन्त्रवादी हूं। मेरी श्रद्धा का आधार अहिंसा है; इसीलिए मुझे मनुष्य-स्वभाव पर भरोसा है।
—ह० से० १३।१।'४०]

१०४. मानसिक हिंसा बनाम मानसिक अहिंसा

मानसिक हिंसा में कोई शक्ति नहीं होती, बल्कि उससे केवल हिंसक विचार रखनेवाले का ही नुकसान होता है। इसके बिल्कुल विरुद्ध मानसिक अहिंसा है। उसमें तो ऐसी शक्ति है, जिसे संसार अभी जानता भी नहीं। और मैं तो विचारों और कार्यों की ही अहिंसा चाहता हूं।
—सेवाग्राम १५।१।'४०। ह० से० ३०।१।'४०]

१०५. बुराई करने वालों के साथ प्रेम ही अहिंसा है

अहिंसा अपने से या दुनिया से सचाई को छिपाने में नहीं है। अहिंसा तो इसमें है कि पापी के पापों को खूब जानते हुए भी उसके साथ प्रेम का बरताव किया जाय। अहिंसा पर मेरा लगातार ज़ोर देना सफल हुआ है, क्योंकि अंग्रेजी राज के बुरे परिणामों का वर्णन करने में मैंने लगभग उन्हीं विशेषणों का प्रयोग किया है जो हिंसा में विश्वास रखनेवाले करते रहे हैं और उन बुराइयों को दूर करने का

मैंने निहायत कारगर उपाय भी बता दिया है। जो हमारे साथ बुराई न करें उनसे प्रेम करने में कोई बड़ी बात नहीं। बड़ी बात तो इसमें है कि जो हमारे साथ बुराई करे, उसके साथ हम प्रेम या अहिंसा का व्यवहार करें।

—ह० से० ३।२।'४०। हिन्दुस्तानी युरोपियनों के नेता श्री जेम्स के भाषण के उत्तर में लिखी 'चौमुखी बरबादी' टिप्पणी से।]

१०६. अहिंसा की प्रकृति

[सन १९३९ में गांधी जी-द्वारा वृन्दावन (चम्पारन) गांधी-सेवा-संघ में दिये गये भाषण का अंश।]

अहिंसा का स्वभाव ही यह है कि वह दौड़-दौड़ कर हिंसा के मुँह में चली जाय। और हिंसा का स्वभाव है कि दौड़-दौड़ कर जो जहां मिले उसको खा जाय। अहिंसक प्राणी परस्पर इसका प्रयोग नहीं कर सकते क्योंकि वे सभी अहिंसक होते हैं। लेकिन अहिंसक प्राणी जब हिंसक के समक्ष खड़ा हो जाता है तब इसकी परीक्षा होती है।

मैं आपसे फिर कहता हूं कि आप गांधीवादी नाम छोड़ दें। यह नाम निकम्मा है। आप अहिंसावादी कहलाइए। गांधी तो निकम्मा है। मैं अपूर्ण हूं; भले-बुरे का, शक्ति और दुर्बलता सबका मिश्रण हूं। इसलिए आपका दावा यह हो कि आप सत्यार्थी हैं, सत्यवादी हैं, अहिंसार्थी हैं, अहिंसावादी हैं। यह दावा पर्याप्त है।....हम अपने दोषों को देखें, उन्हें अहिंसा-तत्व के दोष न समझें। अपने दोषों के कारण जगत में अहिंसा की निन्दा न करायें।

—ह० से० २।३।'४०]

१०७. अहिंसा व्याख्यातीत है

....अहिंसा को कोई सिद्धान्त रूप में नहीं जानता। वह ईश्वर की ही भांति व्याख्यातीत है। किन्तु जैसे हम लोगों के बीच, कार्य करते हुए ईश्वर की झलक मिल जाती है, वैसे ही अहिंसा के आचरण में हम इसकी झलक पा जाते हैं।

—ह० ज०। ह० से० २।३।'४०]

१०८. सच्ची अहिंसा का स्वरूप

[गांधी-सेवा-संघ के कार्यकर्त्ताओं को सम्बोधित करते हुए]

यदि हमारी अहिंसा शूरवीर की अहिंसा न होकर निर्बल की अहिंसा है और वह हिंसा के समक्ष झुकती है तो गांधीवाद को अवश्य नष्ट हो जाना चाहिए। जब अहिंसा का उपयोग निर्बल के अस्त्र के रूप में किया जाता है तब उसका प्रहार उपयोग करने वाले के ही विरुद्ध पड़ता है।....

....सच्ची अहिंसा का तो यह तक़ाजा है कि आक्रमणकारी के हाथ से मृत्यु-शय्या पर पड़े-पड़े भी चेहरे पर मुस्कराहट खेलती रहे। अहिंसा में इतनी शक्ति है कि वह विरोधियों को मित्र बना सके और उनका प्रेम प्राप्त कर सके।
--ह० ज०। ह० से० ९।३।'४०]

१०९. अहिंसा अविनाशी है

सत्य और अहिंसा का कभी नाश नहीं होता।
--ह० से० १६।३।'४०]

११०. अहिंसा और वाद

अहिंसा को पन्थों से घृणा है। अहिंसा तो सबको मिलाकर एक करनेवाली ताक़त है। यह विभिन्नता में एकता की खोज करती है।.....कोई नया पन्थ चलाना अहिंसा के विरुद्ध है।.....
--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० १६।३।'४०]

१११. अहिंसक समाज की परिकल्पना

....अहिंसा की क्षमता के सम्बन्ध में मैं अपने व्यक्तिगत विचार प्रकट कर दूं। मेरा विश्वास है कि यदि जनता का बहुसंख्यक भाग अहिंसात्मक हो, तो राज्य का शासनकार्य अहिंसा के आधार पर चलाया जा सकता है। जहाँ तक मैं जानता हूं, भारत ही एक ऐसा देश है, जिसके ऐसा राज्य हो सकने की सम्भावना है। इसी विश्वास के आधार पर मैं अपना प्रयोग चला रहा हूं। इस-लिए अगर यह मान लिया जाय कि भारत विशुद्ध अहिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त

कर लेता है, तो उन्हीं साधनों से वह उसकी रक्षा भी कर सकता है। एक अहिंसात्मक व्यक्ति का समुदाय बाहर के आक्रमणों की कल्पना या तैयारी नहीं करता। इसके विपरीत, ऐसा व्यक्ति या समुदाय यह दृढ़ विश्वास करता है कि कोई भी उसकी शान्ति में विघ्न नहीं डालेगा। अगर कोई अकल्पित बात हुई तो अहिंसा के लिए दो मार्ग खुले हैं। एक आक्रमणकारी का अधिकार हो जाने देना, किन्तु उसके साथ सहयोग न करना। इस प्रकार मान लीजिए कि नीरो[1] का आधुनिक प्रतिरूप भारत पर आक्रमण करे, तो राज्य के प्रतिनिधि उसे अन्दर आ जाने देंगे, लेकिन उससे कह देंगे कि जनता से उसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। जनता आत्म-समर्पण की अपेक्षा मर जाना पसन्द करेगी। दूसरा तरीका यह है कि जिन लोगों ने अहिंसा की पद्धति से शिक्षा पाई है, उनके द्वारा अहिंसात्मक मुकाबला किया जाय। वे निहत्थे ही आगे आकर आक्रमणकारी की तोपों के आहार बनेंगे। दोनों ही बातों की तह में यह विश्वास निहित है कि नीरो के शरीर में भी एक हृदय है। स्त्री-पुरुषों के समूह निरन्तर आक्रमणकारी की इच्छा पर आत्म-समर्पण करने के बदले बिना कोई सामना किये केवल मरते जायँ तो यह अकल्पित दृश्य अन्त में आक्रमणकारी और उसकी सेना का हृदय पिघलाये बिना न रहेगा। व्यावहारिक दृष्टि से बलपूर्वक मुकाबला करने की अपेक्षा सम्भवतः इसमें जन-हानि अधिक नहीं होगी, और शस्त्रालयों तथा किलेबन्दी पर किसी प्रकार का खर्च न होगा। लोगों को प्राप्त अहिंसा की शिक्षा उनकी नैतिक उच्चता को इतना बढ़ा देगी, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस तरह के स्त्री-पुरुष व्यक्तिगत रूप से सशस्त्र युद्ध में दिखाई जाने वाली वीरता की अपेक्षा कहीं अधिक ऊंची श्रेणी की वीरता दिखा सकते हैं। प्रत्येक दशा में वीरता मरने में है, मारने में नहीं। अन्त में अहिंसात्मक प्रतिरोध में पराजय-जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। मेरी कल्पना का यह कोई उत्तर नहीं है कि पहले कभी ऐसा नहीं हुआ। मैंने कोई असम्भव चित्र नहीं खींचा है। मेरे बताये हुए व्यक्तिगत अहिंसा के उदाहरणों से इतिहास के अनेक पृष्ठ भरे पड़े हैं। यह कहने या मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि स्त्री-पुरुषों के समूह पर्याप्त शिक्षा के बाद समष्टि या राष्ट्र के रूप में अहिंसात्मक आचरण नहीं कर सकते। निश्चय ही मानव-समुदाय के अब तक के अनुभव का सार यह है कि मनुष्य किसी न किसी तरह जीवित रहना चाहता है। इस तथ्य से मैं यह नतीजा निकालता हूं कि प्रेम ही वह कानून है जिससे मानव-समुदाय शासित

१. एक क्रूरहृदय, सनकी और आततायी रोम-सम्राट, जिसने रोम नगर को जलवा दिया था और यह अग्निकांड निहारते हुए बांसुरी बजाई थी।

होता है। हिंसा अर्थात् घृणा का साम्राज्य हुआ होता तो हम कभी के लुप्त हो गये होते। और इस पर भी दुःख की बात यह है कि सभ्य कहे जाने वाले पुरुष और राष्ट्र अपने आचरण इस प्रकार के रखते हैं मानो समाज का आधार हिंसा हो। प्रेम ही जीवन का श्रेष्ठ और एकमात्र कानून है, यह सिद्ध करने के लिए प्रयोग करने में मुझे अकथनीय आनन्द आता है। इसके विपरीत दिये जाने वाले अगणित उदाहरण मेरे इस विश्वास को नहीं हिला सकते। भारत की मिश्रित अहिंसा[1] से भी इसको समर्थन मिला है। लेकिन अगर किसी अविश्वासी को विश्वास कराने के लिए इतना काफी नहीं है, तो एक सुहृद समालोचक को इसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के अर्थ प्रेरित करने के लिए यह काफी है।

--ह० ज०। ह० से० २०।४।'४०]

- मेरा विश्वास है कि यदि जनता का बहुसंख्यक भाग अहिंसक हो, तो राज्य का शासन-कार्य अहिंसा के आधार पर चलाया जा सकता है।
- स्त्री-पुरुषों के समूह निरन्तर आक्रमणकारी की इच्छा पर आत्मसमर्पण करने के बदले, बिना कोई सामना किये केवल मरते जायं तो यह अकल्पित दृश्य अन्त में आक्रमणकारी और उसकी सेना का हृदय पिघलाये बिना न रहेगा।
- प्रत्येक दशा में वीरता मरने में है, मारने में नहीं।
- प्रेम ही जीवन का श्रेष्ठ और एकमात्र कानून है।

११२. सच्ची अहिंसा

[गांधी सेवा संघ और चरखा संघ की कार्य समिति की संयुक्त बैठक में गांधी जी ने अहिंसा का मार्मिक विवेचन किया था। उनके भाषण के अंश संकलित किये जाते हैं।--संपा०]

सच्ची अहिंसा को हमें जरा अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। अपने प्रत्येक कार्य को आप इस कसौटी पर कसकर तो देखेंगे ही, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि आप भावुक बन जायँगे। हम केवल भावुक बनेंगे, तो भ्रम में फँस जायँगे। आपका

१. मिश्रित अहिंसा से वीरों और कायरों की मिली-जुली अहिंसा का तात्पर्य है। बापू जी का संकेत देश के वातावरण की ओर है, जिसमें पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं हो रहा था। यदा-कदा हिंसा भी फूट पड़ती थी और राजनीतिक क्षेत्र में भी अहिंसा के प्रति शंकालु तत्व विद्यमान थे।

व्यवहार स्वाभाविक होना चाहिए, जिस प्रकार आज मेरा मौन स्वाभाविक हो गया है। मैंने जब मौन रखना प्रारम्भ किया तब मुझे इसके लिए प्रयत्न करना पड़ता था, परन्तु अब मौन छोड़ना प्रयत्न-साध्य हो गया है। इसी प्रकार अहिंसा हमारे लिए स्वभाव-सिद्ध हो जानी चाहिए। कर्तव्य जब स्वभाव-सिद्ध बन जाता है, तब वह हमारा धर्म हो जाता है।

उसी प्रकार आप दिन भर जो करेंगे, उसके साथ अहिंसा का तार चलता ही रहेगा। चाहे झूठे तर्कशास्त्र के आधार पर ही क्यों न हो, आपके लिए अहिंसा ही परम धर्म होगा। झूठे तर्कशास्त्र को ही माया कहते हैं। दूसरों के लिए वह माया है। किन्तु जब तक हम उसमें फँसे हैं, तब तक हमारे लिए वह माया नहीं है। हमारे लिए वह सत्य ही है। मैं मानता हूं कि इस चरखे पर ज्यों-ज्यों एक तार कातता हूं, त्यों-त्यों मैं स्वराज्य के निकट जाता हूं। यह माया हो सकती है, लेकिन यह मुझे पागलपन से बचाती है। आपको इस तरह अनुसन्धान करना चाहिए।...

हमको पता नहीं कि इस तरह की साधना के लिए किसे कितने वर्ष लगेंगे। किसी को हजार वर्ष लग जायँगे और कोई एक ही वर्ष में कर लेगा। मुझे यह अभिमान और मोह नहीं है कि मैंने पचास वर्ष तक साधना कर ली, इसलिए जल्दी पूर्ण होऊंगा और आप अभी प्रारम्भ कर रहे हैं, इसलिए आपको अधिक समय लगेगा। यह अभिमान मिथ्या है। मैं तो अपूर्ण हूं, भीरु हूँ, इसलिए मुझे इतने वर्ष लग गये; फिर भी मैं पूर्ण नहीं हुआ। किन्तु सम्भव है कि कोई व्यक्ति आज ही प्रारम्भ करे और शीघ्र पूर्ण हो जाय। इसलिए मैंने पृथ्वीसिंह[1] से कह दिया कि तुममें हिंसक वीरता तो थी; मुझमें तो वह भी नहीं थी। यदि तुम सच्चे दिल से अपनाओगे, तो बहुत जल्दी सफल होगे, मुझसे भी आगे चले जाओगे।

मेरी अपेक्षा दूसरे लोग मेरे प्रयोग में अधिक सफल हों तो मैं नाचूंगा। वे अगर मुझे हरा दें तो मैं अपने आप को सच्चा शिक्षक समझूंगा। इसमें मैं अपनी सफलता मानता आया हूं। मैंने लोगों को जूते बनाना सिखाया है। अब वे मुझसे आगे बढ़ गये हैं। मैं जो कुछ जानता था, वह सब उन्हें देने को अधीर था। उन्होंने मुझे हरा दिया, यह मुझे अच्छा लगता है। क्योंकि उसका यही अर्थ है कि मैं योग्य शिक्षक हूं। यदि मैं अहिंसा का भी योग्य शिक्षक हूं, तो जो मुझसे अहिंसा सीखते हैं, वे मुझसे आगे बढ़ जायँगे। मुझमें जो कुछ भरा है, वह सब मैं उनको दे देना चाहता हूं।

१. सरदार पृथ्वीसिंह, एक पुराने क्रान्तिकारी।

मेरी इच्छा है कि आप लोग अहिंसा की साधना में मुझसे भी आगे बढ़ जायं। क्योंकि मैं सिद्ध नहीं हूं। आप मेरे सह-साधक हैं। मेरे पास अहिंसा का जो धन है, उसे मैं घर-घर बाँट देना चाहता हूं। उसमें कसर नहीं करना चाहता। आपको अपने हृदय से सोचना चाहिए कि यह जो कुछ हमें दे रहा है, उसका हम सारी भूमि में सिंचन करें। यह तो बूढ़ा हो गया है, हम तो तरुण हैं। हम इसके दिये हुए धन को बढ़ायेंगे। इस तरह सोचकर आप मुझसे आगे बढ़ जायंगे, तो मैं आपको आशीर्वाद दूंगा।

मैं जानना चाहता हूं कि आपमें से कितने मेरे साथ इस रास्ते पर चलने को तैयार हैं? यदि कोई न आया तो मुझे अकेला भी चलना ही है। मैं सत्तर साल का हो गया हूं, तो भी यह नहीं समझता कि बूढ़ा हो गया हूं। और मैं अकेला तो कभी हो ही नहीं सकता। अन्य कोई नहीं तो भगवान मेरे साथ रहेंगे। मुझे अकेलेपन का अनुभव कभी नहीं होता।

यदि आपकी अहिंसा-मार्ग में श्रद्धा है, तो आप अपना परीक्षण करें। कितने आदमी इस मार्ग पर चलने को तैयार हैं, इसकी खोज करें। कांग्रेसवालों को टटोलें। यह सब खोज मैं नहीं कर सकता। क्या आप कांग्रेस के महाजनों को अहिंसा की शान्ति दे सकते हैं? वे क्या करते, वे तो लाचार थे। जब वे देखते हैं कि लोगों में अहिंसा की एक बूंद भी नहीं है, तो वे कह देते हैं हम क्या करें, हम आपका मार्ग नहीं अपना सकते। मैंने जिस तरह पदाधिकार छोड़ दिया उस तरह वे तो नहीं छोड़ सकते। मैं अहिंसा को अपनी व्यक्तिगत साधना भी समझता हूं, वे तो नहीं समझते।

इसके द्वारा आप समझ जायँगे कि मैंने कांग्रेस छः साल पहिले छोड़ दी, यह ठीक ही किया। उसकी अधिक सेवा की। उसी समय मैंने देख लिया कि कांग्रेस में कई लोग ऐसे आ गये हैं, जो अहिंसा को नहीं मानते, जिनको अहिंसा ने स्पर्श भी नहीं किया है। मैं उनसे काम कैसे ले सकता था? साथ-साथ मैंने यह भी देखा कि कई अहिंसा के पुजारी कांग्रेस के बाहर पड़े हैं। इसलिए मैंने अलग हो जाना ही ठीक समझा। आज आप देख रहे हैं कि मैंने सही काम किया।

मैंने देख लिया कि मैं अन्य रूप में कोई सेवा नहीं कर सकता। अहिंसा के अतिरिक्त मुझमें अन्य कोई शक्ति नहीं है। तब मैं वहां रहकर क्या करता? मुझमें जो भी शक्ति है, वह अहिंसा की ही है। मैं अपनी अपूर्णता जानता हूं। मेरी अपूर्णता मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। किन्तु फिर भी मनुष्य अभिमानी होता है। इसलिए मैं अपनी जिन अपूर्णताओं को नहीं देखता, उन्हें आप देख लेते हैं, और मैं आत्म-परीक्षण करता हूं। इस तरह दोनों का योग कर लेता हूं।

मुझमें अहिंसा की अपूर्ण शक्ति है, यह मैं जानता हूं, लेकिन जो भी शक्ति है वह उसी की है। लाखों लोग मेरे पास आते हैं, प्रेम से मुझे अपनाते हैं। औरतें निर्भय होकर मेरे साथ रह सकती हैं। मेरे पास ऐसी कौन-सी चीज है? केवल अहिंसा की शक्ति है और कुछ नहीं। अहिंसा की यह शक्ति एक नई नीति के रूप में मैं जगत् को देना चाहता हूं। उसको सिद्ध करने के लिए हम क्या कर रहे हैं, इसका लेखा हमें अभी संसार को देना शेष है। संसार में आज जो शक्ति प्रकट हो रही है, उसके सामने मैं हारूंगा नहीं। लेकिन हमें सचाई और सावधानी से काम लेना होगा, नहीं तो हम हार जायँगे।

हम अपनी समस्त शक्ति अहिंसा की साधना में नहीं लगायेंगे, तो जीत नहीं सकते। हिटलर को देखिए। जिस चीज़ को वह मानता है, उसमें अपने सारे जीवन की शक्ति लगा देता है। पूरे दिल और पूरी श्रद्धा से उसी में लगा रहता है। इसलिए मैं हिटलर को महापुरुष मानता हूं। उसके लिए मेरे मन में काफी आदर है। वह शक्तिमान पुरुष है। आज राक्षस हो गया है। जो जी में आता है करता है, निरंकुश है। लेकिन हमें उसके गुण देखने चाहिए। उसकी शक्ति के रहस्य को पकड़ना चाहिए। तुलसीदास ने यह बात हमें सिखाई है। उन्होंने रावण की भी स्तुति की है। मेरे हृदय में रावण के लिए भी आदर है। यदि रावण महापुरुष न होता, तो रामचन्द्र जी का शत्रु नहीं हो सकता था। रामचन्द्र जी असाधारण थे; रावण भी उनका असाधारण शत्रु था।

मेरे निकट तो यह सारी काल्पनिक कथा है। लेकिन इसमें सच्चा शिक्षण भरा पड़ा है। हिटलर अपनी साधना में निरन्तर जाग्रत है। उसके जीवन में दूसरी चीज़ के लिए स्थान ही नहीं रहा है। वह लगभग चौबीस घण्टे जागता है। उसका एक क्षण भी दूसरे काम में नहीं जाता। उसने ऐसे-ऐसे शोध किये कि उन्हें देखकर ये लोग[1] दिङ्मूढ़ रह जाते हैं। उसके टैंक आकाश में चलते हैं और पानी में भी चलते हैं। उसे देखकर ये लोग दंग रह जाते हैं। उसने ऐसी बातें कर दिखाई जो इनकी कल्पना में भी नहीं थी। वह कितनी साधना कर सकता है। चौबीस घण्टे परिश्रम करने पर भी अपनी बुद्धि तीव्र रख सकता है। मैं पूछता हूं हमारी बुद्धि कहाँ है? हम जड़वत् क्यों हैं? कोई हमसे पूछता है, तो हमारी बुद्धि कुण्ठित क्यों हो जाती है?

मैं यह नहीं कहता कि हम वादविवाद करें। केवल वादविवाद में तो हम हारेंगे ही। हमें तो श्रद्धा-युक्त बुद्धि की शक्ति दिखानी है। इसी का नाम शक्ति

१. पाश्चात्य मित्रराष्ट्र।

है। अहिंसा का अर्थ केवल चरखा चलाना नहीं है। उसमें भक्ति होनी चाहिए। यदि भक्ति के बाद हमारी बुद्धि तेजस्वी नहीं हुई, तो मान लेना चाहिए कि हमारी भक्ति में त्रुटि है। हिटलर की विद्या के लिए अगर बुद्धि का उपयोग है, तो हमारी विद्या के लिए बुद्धि का उससे कई गुना उपयोग है। हम यह न समझें कि अहिंसा के विकास में बुद्धि का कोई उपयोग ही नहीं है।

--ह० से० २०।७।'४०]

- हम केवल भावुक बनेंगे, तो भ्रम में फँस जायंगे।
- आपका व्यवहार स्वाभाविक होना चाहिए, जिस प्रकार आज मेरा मौन स्वाभाविक हो गया है।
- अहिंसा हमारे लिए स्वभावसिद्ध हो जानी चाहिए।
- कर्तव्य जब स्वभावसिद्ध हो जाता है, तब वह हमारा धर्म हो जाता है।
- झूठे तर्कशास्त्र को ही माया कहते हैं।
- यदि मैं अहिंसा का योग्य शिक्षक हूं, तो जो लोग मुझसे अहिंसा सीखते हैं, वे मुझसे आगे बढ़ जायंगे।
- अन्य कोई नहीं तो भगवान मेरे साथ रहेंगे। मुझे अकेलेपन का अनुभव कभी नहीं होता।
- मैं अहिंसा को अपनी व्यक्तिगत साधना भी समझता हूं।
- अहिंसा के अतिरिक्त मुझमें अन्य कोई शक्ति नहीं है।
- मैं अपनी अपूर्णता जानता हूं। मेरी अपूर्णता मुझसे अधिक कोई नहीं जानता।
- मेरे हृदय में रावण के लिए भी आदर है। यदि रावण महापुरुष न होता तो रामचन्द्र जी का शत्रु नहीं हो सकता था।
- हमें तो श्रद्धायुक्त बुद्धि की शक्ति दिखानी है। इसी का नाम शक्ति है।

११३. अहिंसा का मार्ग

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न--आपने अंग्रेजों के सामने हथियार छोड़कर अहिंसा का मार्ग ग्रहण करने की तजबीज रखी है। इससे एक नैतिक कठिनाई पैदा होती है। 'अ' की अहिंसा 'क' की अहिंसा को उत्तेजना देती है। हिंसक मनुष्य जड़वत् बन जाता है। अगर अहिंसक जड़ पदार्थ के संघर्ष में आये तो जड़ पदार्थ पर उसकी अहिंसा का

असर होने वाला नहीं। इसलिए मुझे लगता है कि आपकी इस कल्पना में कहीं न कहीं दोष हो सकता है कि किसी छोटे से छोटे क्षेत्र में अहिंसा सफल हो जाय। इतना ही हो तो उस अहिंसा की कीमत ही क्या? उसके लिए आप जो दावा करते हैं वह तो निश्चय ही नहीं टिक सकता।

उत्तर––आप जैसा मानते हैं उस तरह अहिंसा का तुरन्त दिवाला नहीं निकलता। अहिंसा सबसे बड़ा बल है। लेकिन महान शक्तियों का सभी पूरी तरह उपयोग कर सकें तो उसकी महत्ता कहां रही? पानी-जैसे हर रोज के इस्तेमाल के पदार्थ मे जो शक्ति है उसका भी अन्त हम नहीं पा सके। जब उसकी सूक्ष्म शक्ति हमें चकित कर देती है, तो अहिंसा जैसी सूक्ष्मतम शक्ति को हमें इस तरह तुच्छ मानकर फेंक नहीं देना चाहिए बल्कि उसकी अनन्त शक्तियों की शोध धैर्य और विश्वास के साथ करनी चाहिए। हम देखते ही देखते इस शक्ति का महान प्रयोग खासी अच्छी तरह सफल कर सके हैं। मैंने इस प्रयोग को बहुत नीचा स्थान दिया है। इसे अहिंसा का नाम तक देते हुए मुझे संकोच होता है। तो भी अहिंसा के नाम से जो प्रवृत्ति चली उससे देश की भारी जागृति हुई और हम आगे बढ़े। जिनका विश्वास अविचल है वे इस प्रयोग को और आगे बढ़ा सकते हैं। सब हिंसा करनेवाले जड़वत् होते हैं, इस वाक्य में अतिशयोक्ति है। कुछ लोग जरूर पागल-जैसे बन जाते हैं। ऐसे अपवाद रूप प्रसंग के आधार पर हम अपनी नीति निश्चय करने बैठेंगे तो सम्भव है हम भूल में पड़ जायं। नियमों को सामान्य अनुभव के आधार पर बनाना चाहिए। यही सुरक्षित रास्ता है। और सामान्य अनुभव यह है कि अहिंसा द्वारा बहुत-सी हिंसा का निवारण हो जाता है। इस अनुभव के आधार पर हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि तीव्र हिंसा का प्रतिकार तीव्र अहिंसा से हो सकता है।

अब हम कुछ समय के लिए जड़ वस्तु का विचार करें। जो आदमी पत्थर से सिर मारेगा निश्चय ही उसका सिर फूटेगा। मान लीजिए कि हमारी तरफ वेग से पत्थर आ रहा है। उसके सामने जाने से दुःखद मृत्यु आने वाली है। इसलिए रास्ते से खिसक जाने से हम बच सकते हैं। पर जब खिसकने का कोई रास्ता ही न हो तब धैर्य से हम जहां हों वहीं खड़े रहकर पत्थर को पड़ने दें, तो चोट कम से कम लगेगी और मृत्यु भी आयगी तो वह दुःखद नहीं होगी।

इसी विचार-श्रेणी को बढ़ा करके हम यह कल्पना कर सकते हैं कि पागल आदमी का भी कोई सामना न करे तो अन्त में वह थक ही जायगा। ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि अनेक मनुष्यों के प्रेममय बलिदान से पागल का पागलपन ही जाता रहे? अत्यन्त पागलों के भी बुद्धिमान होने के उदाहरण देखने में आये हैं।

तात्पर्य यह है कि अहिंसा की शक्ति का कोई माप नहीं। जिसमें धीरज होगा वह जरूर उसका रस लूटेगा।

——सेवाग्राम। ह० से० २७।७।'४०]

- अहिंसा सबसे बड़ा बल है।
- बहुत-सी हिंसा का निवारण अहिंसा द्वारा हो जाता है।
- अहिंसा की शक्ति का कोई माप नहीं।

११४. अहिंसा प्रभु का काम

[किसी सज्जन ने पत्र लिखकर गांधी जी से पूछा था कि उनका गुजराती में लिखना गुजरातियों के प्रति पक्षपात है। वे हिन्दुस्तानी में क्यों नहीं लिखते? क्या उनकी दृष्टि में अन्य प्रान्तवासियों से गुजराती ज्यादा अहिंसक हैं?

गांधी जी ने इस मधुर शिकायत का उत्तर देते हुए विस्तार से बतलाया कि वे संकीर्ण प्रान्तीयता से ऊपर उठे हुए, मात्र एक भारतीय और भारतमाता के सेवक हैं। वे सत्य, अहिंसा और स्वराज्य की साधना हेतु कहीं भी जा सकते हैं। 'क्या गुजराती ज्यादा अहिंसक हैं?' शीर्षक बापू जी के इस लेख के आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं?——संपा०]

मैं जहां जाता हूं उसी ईश्वर की प्रेरणा से और उसी के कार्य-हेतु जाता हूं। मेरी समझ में अहिंसा-द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति का काम उसी का काम है। यह आजादी प्राप्त हो जाय तो सारा संसार आज जो रक्त की नदी में डूब रहा है, उससे बच सकता है।

अब पाठक देखेंगे कि इसमें गुजरात का या किसी भी प्रान्त का पक्षपात नहीं है। यदि है तो सत्य और अहिंसा का है। इनके द्वारा मुझे भगवान की कुछ झांकी-सी मिलती है। यही मेरा भगवान है। एक दिशा से देखता हूं तो वह सत्य-रूप है और दूसरी से देखता हूं तो वह अहिंसा-रूप दिखता है।...

——सेवाग्राम। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० से० २७।७।'४०]

११५. पूर्ण अहिंसावादी क्या करें ?

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न——आप चाहते हैं कि प्रत्येक प्रान्त में पूर्ण अहिंसा में विश्वास रखनेवाले लोग हों। ऐसी हालत में क्या उन सबका संगठन करना ठीक न होगा? या आप यह मानते हैं कि अहिंसा खुद अकेली ही चल सकती है?

उत्तर——पूर्ण अहिंसा को न वाणी की आवश्यकता है, न लेखनी की। और अगर इन दोनों बलों की आवश्यकता न हो तो संघबल की आवश्यकता हो ही नहीं सकती। अहिंसामयी स्त्री या पुरुष का संकल्प मात्र काम करता है। यह सत्य मेरी कल्पना में आता है। मैंने शास्त्रों में ऐसा पढ़ा है। मगर इसका अनुभव बहुत कम है, इतना कम कि मैं किसी के आगे उसे प्रमाण-रूप मानने को नहीं रख सकता। इसलिए मैंने सुसंगठित अहिंसकदल की इच्छा और आशा रखी है। साथ ही मैंने यह भी कहा है कि प्रत्येक प्रान्त में इने-गिने पूर्ण अहिंसा-भक्त हों तो उनमें अकेले खड़े रहने की शक्ति होनी ही चाहिए, अर्थात् सबके सब सैनिक हों और सेनापति भी। ऐसे अहिंसकों का संगठन हो तो अहिंसा के बारे में आज जो अविश्वास फैल रहा है वह तुरन्त दूर हो जाय और कांग्रेस आसानी से पूर्ण अहिंसा माननवाली संस्था बन जाय।

——सेवाग्राम। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० से० १०।८।'४०]

११६. अहिंसा असम्भव है ?

"अहिंसा एक अमोघ शस्त्र है। जिस मनुष्य ने अहिंसा-शक्ति को पूर्णतया साध्य कर लिया है, उसका मुकाबला संसार की कोई अन्य शक्ति नहीं कर सकती, इसे हम सिद्धान्त रूप में भले ही स्वीकार कर लें, मगर जब विचार करने बैठते हैं कि व्यवहार में यह कहां तक सम्भव है, तब दूसरे कई प्रश्न खड़े हो जाते हैं। भले कोई ऐसा महायोगी हो जो सिंह, बाघ, भेड़िया-जैसे हिंसक प्राणियों को भी अपने प्रभाव से गाय-बकरी-जैसा ग़रीब बना सके, पर साधारण जन-समूह तो बाघ-भेड़िया इत्यादि से बचने के लिए बन्दूक या दूसरे ऐसे ही किसी साधन का उपयोग कर सकते हैं।

"आपके जैसा अनन्त प्रभाव रखने वाला मनुष्य विचार मात्र से दूसरों को जीत सकता है, लेकिन साधारण जनसमूह तो अपने लाभ के लिए कचहरी, वकील,

या अन्य साधनों का ही उपयोग करता है। अनन्त भूतकाल में भी अहिंसा-शक्ति प्राप्त करके व्यवहार में उसका आचरण करने वाले व्यक्ति हमने बिरले ही सुने हैं। भगवान बुद्ध ने थोड़े समय के लिए अपनी विचार-प्रणाली के अनुसार समाज-सेवा का नेतृत्व किया मगर बाद में समाज भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन को भूलकर कुत्ते की पूंछ की तरह फिर पूर्ववत् आचरण करने लगा। भूतकाल का विचार करते हुए यह बात असम्भव मालूम होती है कि समाज अधिकाधिक अहिंसा की दिशा में ही जायगा। इसी कारण हमारे ऋषि-मुनियों ने समाज को एक तरफ रखकर सत्य और अहिंसा की सिद्धि के लिए वनवास का सेवन किया होगा। आपके प्रभाव से थोड़े से लोग भले ही अहिंसा का अभ्यास करने को ललचायें, मगर सारे समाज का इस मार्ग पर जाना असम्भव ही मालूम होता है। अर्थात् जैसे मनुष्य, बाघ, भेड़िया इत्यादि से बचने के लिए बन्दूक या ऐसे ही दूसरे हथियारों का उपयोग करता है, उसी तरह समाज सफलता प्राप्त करने के लिए अहिंसा के सिवाय दूसरे साधन ढूंढ़े, यह सम्भवित मालूम होता है। जैसे ककहरा पढ़ता हुआ बालक तिलक-कृत गीता-रहस्य जैसे ग्रन्थ नहीं समझ सकता, उसी तरह अहिंसा अमोघ अस्त्र है, इस वस्तु को विषयों में तल्लीन समाज कैसे समझ सकता है? आपकी प्रतिभा के कारण थोड़े से लोग भले ही चकाचौंध में आ जायँ, मगर इस चीज को सब लोग मानने लगें, यह असम्भव है। जहां पर विषय-भोग कैसे किया जाय, इसी में स्पर्धा होती हो, ऐसे समाज से अहिंसा की सिद्धि की आशा कैसे रखी जा सकती है? और एक बात यह भी याद रखनी चाहिए कि अहिंसा सबसे अन्तिम साध्य है। इसे प्राप्त करने के बाद दूसरा कुछ प्राप्त करने को रहता ही नहीं।

"जिस प्रकार किसी आदमी को इंजीनियर या डाक्टर बनना हो तो उसे कालेज में जाने के सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है, उसी तरह उससे भी महा कठिन अहिंसा अस्त्र के लिए कितनी तैयारियों की आवश्यकता होगी? कितने ऐसे महाविद्यालय खोलने पड़ेंगे, जिनमें केवल अहिंसा और सत्य की ही सिद्धि का शास्त्र सिखाया जाता हो? आज तो उसके बदले, विलासी साधनों का कैसे उपभोग किया जाय और कैसे उन्हें बढ़ाया जाय, इन्हीं बातों की शोध हुआ करती है। ऐसे समाज को अहिंसा की ओर कैसे ले जाया जाय? क्या वह इधर जायगा? आज तो यह असम्भव-सा लगता है। आप इसका उत्तर देंगे तो आपका आभारी हूंगा।"

इस पत्र में लेखक ने जो शंकाएं उठाई हैं, ऐसी शंकाएं अनेक लोगों के मन में पैदा होती हैं। मैंने अलग-अलग जगह ऐसी शंकाओं का समाधान करने का

प्रयत्न भी किया है। मगर चूंकि कांग्रेस की कार्य-समिति के प्रस्ताव के कारण लोग इस विषय पर विचार करने लग गये हैं, इसलिए ऊपर लिखी शंकाओं पर चर्चा करने की आवश्यकता मालूम होती है।

उक्त पत्र की ध्वनि यह है कि अहिंसा का साम्राज्य असम्भव है, और ऐसा नहीं लगता कि अहिंसा की तरफ़ समाज ने कुछ प्रगति की है। बुद्ध-जैसों ने कुछ प्रयत्न किया। उन्हें जीवनकाल में थोड़ी-बहुत सफलता भले ही मिली हो, मगर बाद में, समाज तो जहां था, वहीं का वहीं स्थिर है। अहिंसा व्यक्तिगत धर्म हो सकती है परन्तु समाज के लिए वह निरर्थक है। और हिन्दुस्तान को भी अपनी मुक्ति के लिए हिंसा का ही मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा।

मुझे लगता है कि इस दलील के मूल में ही दोष है। अन्तिम वाक्य तो अवश्य गलत है। क्योंकि कांग्रेस ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसा का मार्ग क़ायम रखा ही है। इतना ही नहीं, बल्कि कांग्रेस एक कदम आगे बढ़ी है। अन्दरूनी झगड़े-फसाद-दंगे वगैरह शान्त करने के लिए भी अहिंसा को रखा है या नहीं, इस विषय में शंका उत्पन्न होने पर, अखिल भारत कांग्रेस समिति ने एक स्पष्ट निर्णय किया है कि वहां भी अहिंसा का ही उपयोग करना है। केवल बाहरी आक्रमण के लिए कांग्रेस ने सेना की आवश्यकता स्वीकार की है। इसमें भी हम देख चुके हैं कि अखिल भारत कांग्रेस समिति की खासी अच्छी संख्या ने इस प्रस्ताव के खिलाफ़ विरोध प्रकट किया है। ऐसे सिद्धान्त के प्रश्न में यदि विरोध हो तो उसे ध्यान में तो रखना ही पड़ता है। कांग्रेस की नीति का निर्णय तो बहुमत ही कर सकता है, मगर अल्पमत के अभिप्राय का इससे उच्छेद नहीं हो जाता। वह अभिप्राय तो रहता ही है। जहां अमल करने का सवाल आये, वहां अल्पमत के लिए बहुमत के पीछे चलने का धर्म उत्पन्न होता है। जहां सिद्धान्त का मतभेद हो वहां मतभेद तो खड़ा ही है, और उसके अनुसार अवसर आने पर अमल में भी भेद पैदा हो जायगा। तात्पर्य यह है कि सर्वांगीण अहिंसा को भी समाज में स्थान मिलता है। यह बताता है कि सामाजिक अहिंसा ठीक-ठीक आगे बढ़ी है। अब यह अलग प्रश्न है कि वह यहीं खड़ी रहेगी, आगे बढ़ेगी या नहीं? इसलिए लेखक की शंका को कांग्रेस के प्रस्ताव से मदद नहीं मिलती। उल्टे इस प्रस्ताव से तो उनकी शंका का कांग्रेस के अमुक अंश में निवारण होना चाहिए। मैं एक बड़ा व्यक्ति हूं। मेरे प्रभाव में आकर समाज ने थोड़ा-बहुत किया भी। मगर मेरे बाद वह सब खत्म हो जायगा, ऐसा कहना कतई ठीक नहीं है। कांग्रेस में अनेक विचारक हैं।[1] मौलाना स्वयं

१. मौलाना अबुलकलाम आजाद।

एक विचारक हैं। वह तीव्र बुद्धि के हैं। उनका अध्ययन विस्तृत है। अरबी-फ़ारसी के अध्ययन में उनके जोड़ का विद्वान मिलना कठिन है। अनुभव ने उन्हें सिखाया है कि अहिंसा से ही हिन्दुस्तान आज़ाद होगा। अन्दरूनी विग्रह के लिए भी अहिंसा से ही काम किया जाय, यह उनका आग्रह था। पण्डित जवाहरलाल किसी से चकचौंधिया जायँ, ऐसी बात नहीं है। उनका अंग्रेजी अध्ययन किसी से कम नहीं है। काफी विचार करने के बाद उन्होंने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसा का मार्ग स्वीकार किया है। यह सच है कि वह यह कहते हैं कि अगर अहिंसा के मार्ग से स्वराज्य मिलना अशक्य हो और वह हिंसा से मिल सके, तो हिंसा का मार्ग स्वीकार करने में उन्हें संकोच नहीं होगा। किन्तु हमारे विषय के लिए यह बात अप्रस्तुत है। दूसरे अनेक ऐसे प्रौढ़ नाम हैं जो स्वराज्य-प्राप्ति के लिए केवल अहिंसा को ही साधन-रूप मानते हैं। मेरे मरने के बाद ये सब लोग अहिंसा को छोड़ देंगे, ऐसा विचार तक मन में लाना मनुष्य-स्वभाव का अपमान करना है। हर एक मनुष्य में व्यक्तित्व है, यह मान कर हमें चलना चाहिए। अगर हम एक दूसरे के प्रति इतना आदर रखें तो आगे बढ़ेंगे। और यदि दुर्बल होंगे तो एक दूसरे की मदद से ऊपर चढ़ेंगे। पत्रलेखक या दूसरे कोई यह तो नहीं ही मानते होंगे कि कांग्रेस ने और बहुत से नेताओं ने अहिंसा को अन्तिम नमस्कार कर लिया है। मैंने जो बताया है, उस मर्यादा तक तो कांग्रेस की नीति स्पष्ट हो गई है, और कायम रही है। मैं स्वीकार करता हूं कि अहिंसा के विराट स्वरूप का विचार करते हुए कांग्रेस की आँकी मर्यादा अहिंसा को बहुत संकुचित कर देती है। इससे अहिंसा की भव्यता ढक जाती है। मगर जो दलील यहां चल रही है, उसके लिए तो कांग्रेस की मर्यादित अहिंसा पूरा काम देती है। क्योंकि यहां मैं इतना ही बताने का प्रयत्न कर रहा हूं कि अहिंसा का क्षेत्र बढ़ता ही चला जाता है। कांग्रेस का अहिंसा को मर्यादित रूप में स्वीकार करना इस दलील का पर्याप्त समर्थन करता है।

जहां से कुछ भी ऐतिहासिक प्रमाण मिलने शुरू हुए हैं उस काल से लेकर आज तक के जमाने पर नज़र डालते हैं तो हम देखते हैं कि मनुष्य अहिंसा-मार्ग पर ही चलता आया है। हमारे पूर्वज एक दूसरे को खा जाते थे। बाद में वह शिकार पर गुजारा करने लगे। एक दूसरे को खाने से उन्हें घृणा होने लगी। इसके बाद शिकार पर जिन्दा रहने में भी उन्हें शर्म आई। इसलिए मनुष्य ने जमीन खोदना शुरू किया। वह जमीन से अनेक प्रकार का भोजन प्राप्त करने लगा। उसने जंगल में मंगल कर दिया। इधर-उधर भटकते हुए जिन्दगी बिताने के बजाय उसने एक जगह स्थिर होकर रहना पसन्द किया। उसने गांव और शहर बसाये। कौटुम्बिक भावना जाग्रत हुई, जिसने आगे बढ़कर सामाजिक

भावना का रूप ले लिया। यह सब उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अहिंसा की निशानियां हैं। हिंसा-वृत्ति धीरे-धीरे कम होती गई। अगर ऐसा न होता तो जिस तरह बहुत से निचले दर्जे के प्राणियों की जातियां लुप्त हो गईं उसी तरह मनुष्य जाति भी आज तक खत्म हो गई होती।

जो अनेक पैगम्बर और अवतार हो गये हैं उन्होंने भी न्यूनाधिक मात्रा में अहिंसा का ही प्रवर्तन किया है। किसी ने हिंसा का प्रचार करने का दावा ही नहीं किया। करे भी कैसे? हिंसा का प्रवर्तन करना ही क्या था? पशु रूप में तो मनुष्य हिंसक ही है। आत्मा के रूप में वह अहिंसक है। जब मनुष्य को आत्मा का भान होता है तब वह हिंसक रह ही नहीं सकता। या तो वह अहिंसा सीख जायगा या नाश को प्राप्त होगा। इसीलिए पैगम्बरों ने, अवतारों ने, सत्य, ऐक्य, भ्रातृभाव, संयम, न्याय इत्यादि का उपदेश किया है। तो भी हिंसा आज तक रही है और वह भी इस हद तक कि पत्रलेखक के जैसा विचारशील व्यक्ति भी हिंसा को ही अन्तिम उपाय मानता है। मगर जैसा मैंने ऊपर बताया है, इतिहास और अनुभव उसके विरुद्ध हैं।

अगर हम इतना स्वीकार कर लें कि आज तक अहिंसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई है, तो उससे अनायास ही यह मान्यता सिद्ध होती है कि उसे आगे बढ़ते ही जाना है। इस जगत् में कोई वस्तु स्थिर नहीं है। सब कुछ गतिमान है। आगे न बढ़े तो पीछे गिरना ही है। गति-चक्र के बाहर कोई जा ही नहीं सकता। उसके बाहर यदि है तो केवल ईश्वर ही है।

आज जो युद्ध चल रहा है उसे हिंसा की पराकाष्ठा कहा जा सकता है। मगर मेरी दृष्टि में तो यह हिंसा की होली है। लोगों में अहिंसा की जितनी कद्र आज है, उतनी कभी नहीं थी। मैं तो यह देख ही रहा हूं और जितने प्रमाण पश्चिम से मेरे पास आते रहते हैं, वे भी यही बताते हैं। ऐसी शुभ घड़ी में कांग्रेस ने जैसे-तैसे भी अहिंसा की शरण ली है। मैं लेखक को और उनके जैसे दूसरे सशंक लोगों को शंका छोड़कर श्रद्धा के साथ इस अहिंसा-यज्ञ में कूद पड़ने का निमन्त्रण देता हूं।

देखो ना, मोती निकालने वाला मरजीवा मोती निकालने के लिए समुद्र में डुबकी लगाता है।

देखो ना, मृत्यु के मुँह में जाकर वह मोतियों की मुट्ठी भर के अपने हृदय की पीड़ा मिटाता है।

किनारे पर खड़े तमाशबीन के हाथ एक कौड़ी भी नहीं आती।

प्रेम-पन्थ पावक की ज्वाला है, उसे देखकर मनुष्य पीछे भागता है।

पर जो उसके अन्दर गया है, उसे तो महासुख ही मिलता है, जलता तो देखने वाला है।[1]

—सेवाग्राम ५।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० १०।८।'४०]

- जहां से कुछ भी ऐतिहासिक प्रमाण मिलने शुरू हुए हैं, उस काल से लेकर आज तक के जमाने पर नजर डालते हैं, तो हम देखते हैं कि मनुष्य अहिंसा-मार्ग पर ही चलता आया है।
- जो अनेक पैगम्बर और अवतार हो गये हैं उन्होंने भी न्यूनाधिक मात्रा में अहिंसा का ही प्रवर्तन किया है।
- पशुरूप में तो मनुष्य हिंसक ही है। आत्मा के रूप में वह अहिंसक है।

११७. शूरवीरों की अहिंसा

नीचे लिखा प्रश्न पूछा गया है—

"आप कहते हैं अहिंसा शूरवीरों के लिए है, कायरों के लिए नहीं। लेकिन मेरी मान्यता के अनुसार तो हिन्दुस्तान में शूरवीर हैं ही नहीं। शायद हम शूरवीर होने का दावा करें किन्तु संसार इस दावे को कैसे स्वीकार कर सकता है? सारा जगत् जानता है कि हिन्दुस्तान के पास शस्त्र हैं ही नहीं, इसलिए वह स्वयं अपनी रक्षा करने के लिए अशक्त है। तो फिर शूरवीर की अहिंसा सीखने के लिए हमें क्या करना चाहिए?"

आपका यह मानना कि हिन्दुस्तान में शूरवीर हैं ही नहीं, ठीक नहीं है। विदेशियों ने हमें एक बार कायर ठहरा दिया इसलिए हम भी अपने आपको कायर मानने लगें, यह हमारे लिए लज्जा की बात है। अनेक बार ऐसा होता है कि आदमी जैसा अपने आप को मानता है, वैसा ही बन जाता है। अगर मैं हमेशा यह रटता

१. मूल भजन

हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने:
सिन्धु मध्ये मोती लेवा, मांही पड़्या मरजीवा जोने,
मरण आग में ते भरे मूठी, दिलनी दुग्धा वामे जोने।
तीरे उभा जुये तमाशा, ते कोड़ी नवपामे जोने।
प्रेमपन्थ पावक नी ज्वाला, भाली पाछा भागे जोने।
मांही पड़्या ते महासुख माने, देखनारा दाझे जोने।।

रहू कि अमुक काम मुझसे हो ही नहीं सकता, तो सम्भव है कि अन्ततः, मैं वह काम करने के अयोग्य बन जाऊं। इससे उल्टा अगर मैं यह विश्वास रखूं और मानूं कि मैं तो यह करूंगा ही तो आरम्भ में मुझमें उसकी शक्ति न हो तो भी उसे मैं प्राप्त कर लूँगा। फिर आप कहते हैं कि संसार हमें आज कायर मानता है। यह भी सही नहीं है। सत्याग्रह की लड़ाई के बाद जगत् ने हिन्दुस्तान को कायर मानना छोड़ दिया है। पश्चिम में कांग्रेस की प्रतिष्ठा पिछले बीस साल में बहुत बढ़ी है। हमारे पास शस्त्र नहीं हैं तो भी हम स्वराज्य प्राप्त करने की आशा का सेवन कर रहे हैं और स्वराज्य के बहुत नजदीक पहुँच गये हैं। संसार यह सब आश्चर्य-चकित होकर देखा करता है। वह हमारी हलचल में जगत् की शान्ति और संसार को रक्त की वैतरणी से उबारने की आशा की किरणें देखता है। अधिकांश संसार यह मानने लगा है कि जगत् में वैरभाव को मिटना है और खूनी लड़ाइयां बन्द होनी हैं, तो यह कांग्रेस की अपनाई हुई नीति के द्वारा ही होगा। इसलिए आपकी शंका और डर को स्थान नहीं है।

अब आप देख सकते हैं कि हिन्दुस्तान के पास शस्त्र नहीं है, यह चीज़ अहिंसा-मार्ग में विघ्नरूप नहीं है। यह बात सच है कि अंग्रेज सरकार ने बलात् हमारे शस्त्र छीनकर महादोष और अन्याय किया। लेकिन अगर ईश्वर प्रसन्न हो, या यूं कहिए कि हममें उस अन्याय का भी उपयोग कर सकने की बुद्धि हो, तो अन्याय से भी लाभ निकल सकता है। यही हिन्दुस्तान के बारे में हुआ है।

अहिंसा के शिक्षण के लिए शस्त्रों की आवश्यकता रहती ही नहीं। यदि शस्त्र हों भी तो उन्हें फेंक देना चाहिए, जैसे कि खान साहब ने फेंक दिये हैं। जो लोग यह कहते हैं कि अहिंसा सीखने से पहिले हिंसा सीखनी चाहिए, उनकी बात तो यह कहने जैसी हुई कि पापी ही पुण्यवान बन सकता है।

जिस प्रकार हिंसा की तालीम में मारना सीखना जरूरी है उसी प्रकार अहिंसा की तालीम में मरना सीखना पड़ता है। हिंसा में भय से मुक्ति नहीं मिलती, किन्तु उससे बचने का इलाज ढूंढ़ने की प्रवृत्ति रहती है। अहिंसा में भय को स्थान ही नहीं है। भयमुक्त होने के लिए अहिंसा के उपासक को उच्च कोटि की त्याग-वृत्ति विकसित करनी चाहिए। ज़मीन जाय, धन जाय, शरीर भी जाय, इसकी वह परवाह न करे। जिसने सब प्रकार के भय को नहीं जीता, वह पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसा का पुजारी एक ईश्वर का ही भय रखे और दूसरे सब भयों को जीत ले। ईश्वर की शरण ढूंढ़ने वाले को, आत्मा शरीर से भिन्न है, यह भान होना चाहिए। और आत्मा का भान होते ही क्षण-भंगुर शरीर का मोह उतर जाता है। इस तरह अहिंसा की तालीम हिंसा की तालीम

से एकदम उल्टी होती है। बाहर की रक्षा के लिए हिंसा की जरूरत पड़ती है; आत्मा के स्वभान की रक्षा के लिए अहिंसा की आवश्यकता है।

ऐसी अहिंसा घर में बैठे-बैठे नहीं सीखी जा सकती। उसके लिए साहस की आवश्यकता है। हम भयमुक्त हुए हैं या नहीं, यह जानने के लिए हमें जंगल में मंगल करना सीखना चाहिए। हमें श्मशान में भटकना चाहिए, शरीर का दमन करके अनेक कष्ट सहन करने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। दो आदमियों को लड़ते देखकर जो मनुष्य कांपने लगता है या भाग जाता है वह अहिंसक नहीं, कायर है। अहिंसक ऐसे झगड़ों को रोकने में अपने को कुर्बान कर देगा। जोखिम उठाकर अहिंसक अपनी परीक्षा करता है। संक्षेप में अहिंसक की बहादुरी हिंसक की बहादुरी से बहुत आगे जाती है। हिंसक की निशानी उसके हथियार हैं—वह भाला-बर्छी-तलवार हो या तमञ्चा। अहिंसक का हथियार तो रामनाम है। इतना लिखकर मैंने अहिंसा सीखनेवालों को कोई पाठ्यक्रम नहीं दिया। लेकिन इससे पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है।

इस लेख-द्वारा आप देख सकेंगे कि इन दो प्रकार की वीरताओं में कोई समानता ही नहीं है। एक का अन्त है, दूसरी का अन्त ही नहीं है। सेर के लिए सवा सेर का न्याय अहिंसा पर लागू होता ही नहीं। अहिंसा अजेय है। ऐसा बल हम प्राप्त कर सकेंगे या नहीं, इस तरह की शंका मन में न लाइए। पिछले बीस वर्ष का इतिहास हमें विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त होना चाहिए।

—सेवाग्राम २५।८।'४०। ह० ब०। मुल गुजराती। ह० से० ३१।८।'४०]

- **जिस प्रकार हिंसा की तालीम में मारना सीखना जरूरी है, उसी प्रकार अहिंसा की तालीम में मरना सीखना पड़ता है।**
- **अहिंसा में भय को स्थान ही नहीं है।**
- **अहिंसा अजेय है।**

११८. अहिंसा की मर्यादा

[कुछ अहिंसा-प्रेमी स्त्री-पुरुष गांधी जी के पास आये और उनसे अहिंसा के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये। गांधी जी और आगन्तुकों की वार्ता प्रश्नोत्तर रूप में प्रस्तुत की जाती है।—संपा०]

प्रश्न—अहिंसा की मर्यादा का पालन व्यक्तिगत जीवन तक ही सम्भव है या सामुदायिक जीवन में भी इसका पालन किया जा सकता है? यह मनुष्य तक ही सीमित है या प्राणिमात्र पर लागू है?

उत्तर—मैं इस प्रश्न के लिए तैयार न था। कांग्रेस के लिए तो अहिंसा राजनीतिक क्षेत्र हेतु ही है। अतः हमारे काम के लिए तो सम्पूर्ण अहिंसा का अर्थ है राजनीतिक क्षेत्र में प्रत्येक प्रकार की अहिंसा। इसका अर्थ यह हुआ कि कौटुम्बिक सम्बन्ध में, सरकार के साथ सम्बन्ध में अतिचार होने पर भी देश में और विदेशी आक्रमण के समक्ष हमें अहिंसा का प्रयोग करना है। इसलिए इतना ही पर्याप्त है कि मनुष्य का मनुष्य के साथ पारिवारिक व्यवहार शुद्ध अहिंसामय हो।

प्रश्न—मांसाहारी अथवा अंडाहारी को अहिंसक कहा जा सकता है?

उत्तर—अहिंसा को इससे बाधा नहीं पहुँचती। यदि ऐसा हो तो हम मुसलमानों, ईसाइयों और बहुत-से हिन्दुओं को अहिंसा के क्षेत्र में साथ नहीं रख सकेंगे। मैंने तो कई मांसाहारी देखे हैं जो शाकाहारियों से ज्यादा अहिंसक हैं।

—सेवाग्राम, २०।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से०, ३१।८।'४०]

११९. गीता क्या अहिंसा सिखाती है?

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—गीता का मुख्य उद्देश्य क्या है अनासक्ति या अहिंसा?

उत्तर—अनासक्ति ही है। आप सब जानते होंगे कि गीता के भाषान्तर का नाम मैंने अनासक्ति योग रखा है। अनासक्ति अहिंसा से आगे जाती है। जिसे अनासक्त होना है उसके लिए बहुत आवश्यक है कि वह अहिंसा सीख ले और उसका पालन करे। अनासक्ति के गर्भ में अहिंसा आ जाती है, उससे आगे नहीं बढ़ती।

प्रश्न—तो क्या गीता हिंसा-अहिंसा दोनों सिखाती है?

उत्तर—मैंने तो गीता में यह ध्वनि नहीं पाई। सम्भव है वह अहिंसा सिखाने के लिए न लिखी गई हो। किन्तु जैसे किसी काव्य का भाष्यकार उसका अनेक अर्थ निकालता है वैसे ही मैंने गीता का यह अर्थ निकाला है कि यद्यपि उसका मुख्य उपदेश अनासक्ति है, फिर भी उसमें अहिंसा की शिक्षा अवश्य दी गई है। अहिंसा तो लौकिक वस्तु है; परलोक में हिंसा-अहिंसा का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्न—लेकिन अर्जुन ने तो हिंसा-अहिंसा का प्रश्न उठाया ही था।

यदि मामप्रतिकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।

धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥[१]

श्री कृष्ण ने उत्तर में अर्जुन से स्पष्ट कहा कि हिंसा करो।

उत्तर--अर्जुन का निरा प्रज्ञावाद था। श्री कृष्ण अर्जुन के संशय का निवारण करते हुए कहते हैं, कल तक तो तुम शत्रुओं को मारते ही थे। उसमें तुमको कोई हिचक नहीं हुई। आज भी तुम उन्हें मारोगे यदि वे तुम्हारे स्वजन या सम्बन्धी न हों। आज तुम्हारे सामने प्रश्न यह है कि स्वजन को कैसे मारें? इससे स्पष्ट है कि प्रश्न हिंसा-अहिंसा का नहीं, स्वजन को मारने न मारने का था।

--सेवाग्राम, २७।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से०, १४।९।'४०]

१२०. अहिंसा : धर्म या साधन?

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न--कई वर्ष पूर्व आपसे यह पूछने की धृष्टता की थी कि चूंकि आपने अहिंसा को कांग्रेस में धर्म के रूप के रूप में नहीं, बल्कि साधन के रूप में स्थान दिया है, इसलिए क्या यह डर नहीं है कि ऐन प्रतिष्ठा के अवसर पर यह व्यर्थ हो जाय? आपने कहा था--मैं ऐसा नहीं समझता। क्या अब भी आपका वही विचार बना हुआ है? क्या आप आज अहिंसा पर विश्वास रखनेवालों का एक ऐसा मण्डल नहीं खड़ा कीजियेगा, जिसे आप छोटे-छोटे दलों में सारे देश में भेज सकें? आज तो प्रायः यही प्रतीत होता है कि हमने समय खोया है और अब हम इतने तैयार नहीं हैं कि उत्तरदायित्व ओढ़ सकें।

उत्तर--हां, अपनी इस राय पर मैं क़ायम हूं कि कांग्रेस के सामने अहिंसा को साधन के रूप में प्रस्तुत करके मैंने ठीक ही किया था। यदि मुझे अहिंसा को राजनीति में समाविष्ट करना था, तो जो मैंने किया, उससे भिन्न मैं कुछ कर ही न सकता था। दक्षिण अफ्रीका में भी मैंने उसे साधन की दृष्टि से ही प्रविष्ट किया था। वहां वह सफल हुई क्योंकि सत्याग्रहियों की संख्या कम थी और उन्हें छोटे क्षेत्र में काम करना था। इससे उन्हें सरलता से अंकुश में रखा जा सकता था। यहाँ हम एक विशाल देश में फैले हुए अनगिनत लोग थे फलतः उन्हें न तो सरलता से

१. अर्जुन श्रीकृष्ण से कहते हैं कि यदि मुझे--प्रतिकार न करने वाले निःशस्त्र को--शस्त्रधारी कौरव युद्ध में मार डालें तो यह श्रेष्ठतर है।

अंकुश में रखा जा सकता था, न शिक्षा दी जा सकती थी। इतने पर भी उन्होंने जिस प्रकार काम करके दिखाया, वह अद्‌भुत था। वे इससे भी अच्छा काम और अच्छा परिणाम दिखा सकते हैं किन्तु जो फल मिला उसके लिए मेरे मन में थोड़ी भी निराशा नहीं है। यदि मैंने अहिंसा को धर्म मानने वाले व्यक्तियों से आरम्भ किया होता, तो शायद मुझे केवल अपने से ही उसकी समाप्ति करनी पड़ती। मैं स्वयं अपूर्ण था, अपूर्ण स्त्री-पुरुषों से मैंने उसका आरम्भ किया था और एक अनजान अछूते समुद्र में मैं चल पड़ा था। भले जहाज अपने मुक़ाम पर न पहुँचा हो, पर यह तो सिद्ध हो चुका है कि वह आंधी-तूफान का ठीक-ठीक सामना कर सकता है, और यह ईश्वर की कृपा है।

—सेवाग्राम ७।४।'४२। ह० ज०। ह० से० १९।४।'४२]

१२१. मेरी श्रद्धा

....यदि मैं अकेला भी हूं, तो भी अपनी श्रद्धा पर अटल रहकर उसपर चलूंगा और विश्वास रखूंगा कि हिन्दुस्तान की जनता हिंसा के मार्ग को कभी नहीं अपनायगी.....।

—सेवाग्राम १९।४।'४२। हरिजन। ह० से० २६।४।'४२]

१२२. अहिंसा का ध्येय

....अहिंसा का ध्येय विरोधी का विनाश नहीं, उसकी शुद्धि ही होता है। जो चीज शुद्धि के योग्य ही नहीं रह गई है, वह पूर्णरूप से रोगग्रस्त शरीर की भाँति अपने आप बिना किसी बाह्य प्रयत्न के समाप्त हो जायगी।

—सेवाग्राम ५।६।'४२। ह० ज०। ह० से०, १४।६।'४२]

१२३. अहिंसा ही मानव की एकमात्र आशा है

....जब तक अहिंसा को स्वीकार नहीं किया जाता, मुझे मानवजाति के उद्धार की कोई आशा नहीं दिखाई देती। हिंसा का दिवालियापन तो हम रोज

ही अपनी आंखों देख रहे हैं। यदि आपस का यह निरर्थक और भीषण नर-संहार इसी प्रकार होता रहा, तो मानवता के लिए कोई आशा नहीं रह जाती।. . . .

—'हिन्दू' के नागपुर-स्थित संवाददाता से वार्ता के मध्य। सेवाग्राम ११।६।'४२। ह० ज०। ह० से० २१।६।'४२]

१२४. अराजकता और अहिंसा

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—यदि आपका निमन्त्रण स्वीकार करके ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान से विदा हो जाय, और फिर जैसा कि आपने कहा है देश में अराजकता फैले, तो आप स्वयं क्या करेंगे? और अपने अनुयायी कार्यकर्त्ताओं को आप क्या सलाह देंगे? आप किन अहिंसक उपायों से काम लेंगे, जिनसे अराजकता शान्त हो?

उत्तर—ऐसा अवसर आने पर मुझे और साथियों को अराजकता का नाश करने के लिए जो अहिंसक प्रयत्न करने चाहिए, वह हम करेंगे अर्थात् अराजकता उत्पन्न करने वालों को समझायेंगे और रोकेंगे। और यदि इस प्रयत्न में मरना पड़ा तो मर मिटेंगे। यदि अहिंसक वृत्ति वाले बहुतेरे साथी मिल जायँ तो अराजकता तुरन्त शान्त हो जाय। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि देश से अंग्रेजी शासन के उठते ही यहां दुर्बल की अहिंसा का कोई स्थान ही नहीं रहेगा। जिन लोगों को लूटमार करनी है, वे न तो किसी को कैद करेंगे, और न किसी पर दया करेंगे। वे स्वयं इतने दीन होंगे कि उनके पास सिवा 'मारो मारो' के और कोई नारा ही न होगा। उनकी बुद्धि या दया-वृत्ति को सरलता से न जगाया जा सकेगा। इसलिए ऐसे लोगों को जगाने की कोशिश में पर्याप्त बलिदान करना पड़ेगा।

मुझे भय तो यह है कि अराजकता के समय केवल अहिंसा ही काम न करती होगी, ऐसे दल खड़े हो चुके होंगे, जो बलपूर्वक लूटपाट मचानेवालों का दमन करने में लगे होंगे। अराजकता के समय सबकी सच्ची कसौटी हो जायगी।

—सेवाग्राम ११।६।'४२। ह० ब०। ह० से० २१।६।'४२]

१२५. अराजकता का भय और अहिंसा

जब तक अहिंसा अराजकता के भय से अपने को मुक्त नहीं करती तबतक वह अपंगु ही बनी रहेगी।

हमें यह सिद्ध कर दिखाना है कि संसार में अहिंसा से बढ़कर तेजस्विनी कोई शक्ति है ही नहीं।

—सेवाग्राम ११।६।'४२। ह० ब०। ह० से० २१।६।'४२]

१२६. अहिंसा का क्या होगा ?

प्रश्न—परन्तु अपनी अहिंसा के बारे में आप क्या कहते हैं? स्वतन्त्रता मिलने के बाद आप किस सीमा तक अपनी इस नीति को अमल में लायेंगे ?

उत्तर—यह प्रश्न आज उठता ही नहीं। अपने इन लेखों में मैं प्रथम पुरुष एक वचन का जो उपयोग करता हूं, वह तो स्थान बचाने के लिए है। मेरा प्रयत्न हिन्दुस्तान की भावना प्रकट करने के लिए है। हिन्दुस्तान एक बड़ा देश है, जिसमें हिंसक अहिंसक सभी हैं। हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय सरकार क्या नीति स्वीकार करेगी, उसे मैं नहीं कह सकता। सम्भव है कि अपनी प्रबल इच्छा के रहते हुए भी मैं तब तक जीवित ही न रहूं। किन्तु यदि उस समय तक जीवित रहा, तो अपनी अहिंसक नीति को यथासम्भव सम्पूर्णता के साथ अमल में लाने की सलाह दूंगा। विश्व की शान्ति और नवविधान की स्थापना में यही हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा योगदान भी होगा। मुझे आशा तो यह है कि चूंकि हिन्दुस्तान में इतनी लड़ाकू जातियां हैं, और चूंकि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान की सरकार के निर्णय में उन सबका हिस्सा होगा, इसलिए हमारी राष्ट्रीय नीति का झुकाव वर्तमान सैन्यवाद से भिन्न किसी अन्य प्रकार के सैन्यवाद की ओर होगा। मैं यह आशा तो अवश्य ही रखूंगा कि एक राजनीतिक शस्त्र के रूप में अहिंसा की व्यावहारिक उपयोगिता का हमारा पिछला बाईस वर्ष का प्रयोग बिलकुल विफल नहीं जायगा और हिन्दुस्तान में सच्चे अहिंसावादियों का एक सुदृढ़ दल उत्पन्न हो जायगा। कुछ भी हो, यदि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के साथ मित्रराज्यों की सन्धि हो जाय, तो वह उसके ध्येय के लिए अवश्य ही बड़ा सहायक सिद्ध होगी। जब कि वर्तमान गुलामी की दशा में तो वह युद्ध-प्रयास में बाधक ही हो सकता है, और असम्भव नहीं कि ऐन प्रतिष्ठा के अवसर पर वह वास्तविक संकट का कारण सिद्ध हो।

—सेवाग्राम ११।६।'४२। ह० ज०। ह० से० २१।६।'४२]

१२७. अहिंसा और उपवास

परोपकार के अपने रचनात्मक अर्थ में अहिंसा एक बड़ी से बड़ी शक्ति है, क्योंकि इसके कारण दुराचारी को किसी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना अथवा पहुँचाने का निश्चय किये बिना सत्याग्रही को आत्मपीड़न का इतना अवसर मिलता है, जिसकी सीमा नहीं। ऊपर मैंने जानबूझ कर परोपकार शब्द का प्रयोग किया है, प्रेम का नहीं, क्योंकि अब प्रेम शब्द की उतनी प्रतिष्ठा नहीं रही। इस आत्मपीड़न का ध्येय तो सदा यही रहा है कि उसके द्वारा दुराचारी के उत्तम गुणों को जागरित किया जाय। आत्मपीड़न द्वारा उसके दैवी स्वभाव का स्पर्श किया जाता है, जब कि प्रतिशोध उसकी आसुरी वृत्तियों को जगाता है।....

सांसारिक समस्याओं में अहिंसा का आचरण करने पर ही उसका सच्चा मूल्य जाना जा सकता है। वास्तव में परलोक नाम की कोई चीज नहीं है। सभी लोक एक हैं। इहलोक और परलोक जैसी कोई बात नहीं है। जैसा कि जींस[1] ने अपने प्रयोगों-द्वारा सिद्ध कर दिखाया है, यह समस्त विश्व-ब्रह्मांण्ड, जिसमें दूर-दूर स्थिति के नक्षत्र भी सम्मिलित हैं जो संसार की श्रेष्ठतम दूरबीन द्वारा भी नहीं देखे जा सकते, एक छोटे-से-छोटे अणु में भी समाया हुआ है। इसलिए अहिंसा के उपयोग को गुफावासियों तक और परलोक में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करने की पुण्य-साधना तक ही सीमित रखना मैं अनुचित समझता हूं। वह सद्‌गुण सद्‌गुण ही नहीं, जिसका उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में न हो पाता हो। इसलिए मैं शुद्ध राजनीतिक वृत्ति रखनेवालों से अनुरोध करूंगा कि वे अहिंसा का और उसके अन्तिम व्यक्त स्वरूप उपवास का सहानुभूति और विवेक के साथ अध्ययन करें।

--सेवाग्राम २०।७।'४२। ह० ज०। ह० से० २६।७।'४२] 'अहिंसक आन्दोलन में उपवास का स्थान' लेख का अंश।

१२८. औरतों पर अत्याचार और अहिंसा

[२९ दिसम्बर १९४५ को महिषादल से आये दो सौ स्त्री-पुरुष गांधी जी से मिले। इनमें वे लोग भी थे जो सन् बयालीस के आन्दोलन में पुलिस और फ़ौज-द्वारा सताये गये थे। इन लोगों ने गांधी जी से पूछा, जब हमारी माँ-बहिनों की लाज लूटी जा रही हो क्या तब भी हमें अहिंसक रहना चाहिए।

१. सर जेम्स जींस, ब्रिटेन के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद और खगोलशास्त्री।

गांधी जी ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश यहां संकलित किये जा रहे हैं।--संपा०]

...यह सवाल मेरी कल्पना की अहिंसा और स्वराज्य के विषय में लोगों का अज्ञान प्रकट करता है। मैं बहिनों की आबरू खोकर स्वराज्य नहीं चाहता। जो चीज अहिंसा के नाम से चलती है वह अगर आप को बहिनों की इज्जत-आबरू बचाने की ताकत नहीं देती या खुद बहिनों को इस लायक नहीं बनाती कि वे स्वयं अपनी इज्जत बचा लें, तो वह अहिंसा नहीं है। सचमुच वह कोई और ही चीज है।......

अगर आप मेरे पास यह कहते हुए आते हैं कि चूंकि आप अहिंसा की प्रतिज्ञा कर चुके हैं इसलिए अपनी बहिनों की रक्षा न कर सके तो मैं आपको अपने सामने खड़ा न रहने दूंगा। अहिंसा को कायरता की ढाल तो कदापि न बनाना चाहिए। यह तो बहादुरों का हथियार है। ऐसे अत्याचारों को बेबसी के साथ देखते रहने की अपेक्षा तो मैं यह ज्यादा पसन्द करूंगा कि आप हिंसक तरीके से लड़ते हुए मर मिटें। सच्चा अहिंसक पुरुष ऐसे अत्याचारों की कहानी कहने के लिए कभी जिन्दा न रहेगा। वह तो अहिंसक तरीके से जूझता हुआ अपनी जान पर खेल चुका होगा, मर मिटा होगा।......

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०। १०।२।'४६]

- **अहिंसा को कायरता की ढाल तो कदापि न बनाना जाहिए।**

१२९. अहिंसा का शास्त्र या कर्म ?

एक भाई सुझाते हैं कि मैंने आत्मकथा को जहां से छोड़ा है, वहां से आगे उसे शुरू करूं और अहिंसा का शास्त्र लिखूं या लिखवाऊँ।

....अहिंसा का शास्त्र लिखना मेरे लिए असम्भव है। मैं शास्त्रकार नहीं, मैं तो कर्मी हूं। जैसा मुझे आता है, वैसा कर्म, धर्म समझ कर करता चलता हूं, इसलिए मेरा सारा काम सेवा-भाव से प्रेरित होता है। उसमें से शास्त्र की रचना की जा सकती हो, तो भले की जाय। लेखक तीन नाम सुझाते हैं। उन्होंने सिलसिलेवार श्री विनोबा, श्री किशोर लाल और काका साहब ये तीन नाम दिये हैं। विनोबा लिख सकते हैं, मगर वह कभी न लिखेंगे। उनका पल-पल व्यवस्थित रीति से नियत है। उसमें से शास्त्र-रचना के लिए समय निकालना उनकी दृष्टि में अधर्म होगा। मैं भी इसे अधर्म समझूंगा। संसार को शास्त्र की नहीं, सच्चे कर्म की भूख है, और हमेशा रहेगी। जो इस भूख को मिटा सकता है, वह शास्त्र-रचना में न पड़े।

....इसका सार यह निकलता है कि फिलहाल ऐसे शास्त्र की जरूरत नहीं। मेरे जीवन-काल में जो लिखा जायगा, वह अधूरा होगा। अगर उसका लिखा जाना सम्भव हो, तो भले वह मेरे मरने पर लिखा जाय। और वह लिखा गया, तो भी मैं चेतावनी दिये देता हूं कि उसमें पूर्ण अहिंसा के दर्शन नहीं हो सकेंगे। ईश्वर का पूरा-पूरा वर्णन अभी तक कोई नहीं कर सका। अहिंसा के लिए भी यही कहा जा सकता है। मैं खुद जिसे आज मानूं या करूं, उसे कल मानूंगा या करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। यह काम त्रिकालदर्शी भगवान का है। देहधारी मनुष्य तो सदा-सर्वदा अपूर्ण ही है। उसे भगवान की उपमा चाहे दी जाय, पर वह भगवान तो कदापि नहीं। भगवान अदृश्य है, अदृष्ट है। इसलिए हम जिन्हें सन्त पुरुष मानते हैं, उनके वचनों को और आचरण को समझें, और जो चीज हमारे दिल में बस जाय उसके अनुसार अपने आचरण बनायें। शास्त्र और क्या करेगा ?

--पूना, २५।२।'४६। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ३।३।'४६]

- **अहिंसा का शास्त्र लिखना मेरे लिए असम्भव है। मैं शास्त्रकार नहीं, मैं तो कर्मी हूं।**
- **संसार को शास्त्र की नहीं सच्चे कर्म की भूख है और हमेशा रहेगी।**
- **ईश्वर का पूरा-पूरा वर्णन अभी तक कोई नहीं कर सका। अहिंसा के लिए भी यही कहा जा सकता है।**
- **मैं खुद जिसे आज मानूं या करूं, उसे कल मानूंगा या करूंगा, ऐसी प्रतिज्ञा नहीं कर सकता। यह काम त्रिकालदर्शी भगवान का है।**
- **देहधारी मनुष्य तो सदा-सर्वदा अपूर्ण ही है। उसे भगवान की उपमा चाहे दी जाय पर वह भगवान तो कदापि नहीं।**

१३०. अहिंसा : शूरों का मार्ग

....मैं बहुत ही नम्र भाव से कहना चाहता हूं कि अहिंसा का मार्ग सचमुच ही शूरों का मार्ग है। गुजरात के भक्त कवि 'प्रीतम' ने कहा है कि हरि का मार्ग शूरों का मार्ग है[1]; इसमें कायरों का काम नहीं। यहां हरि का मार्ग से मतलब है अहिंसा और सत्य का मार्ग। मैं पहिले कह चुका हूं कि अहिंसा और सत्य सिवा दूसरे किसी ईश्वर की मैं कल्पना नहीं कर सकता। यदि आपने अहिंसा को उसके पूरे-पूरे अर्थ में समझे बिना अहिंसक सिद्धान्त को अपनाया हो तो आप को उससे

१. हरिनो मारग छे शूरांनूं, नहिं कायर नुं काम जोने।

इनकार करने की छूट है।....अहिंसा हमसे अपेक्षा रखती है कि हम उलटकर चोट किये बिना चोटों को सहने की ताकत और हिम्मत दिखायें और अपने पर पड़ने वाली चोटों के जवाब में हाथ तक ऊपर न उठायें। लेकिन अहिंसा का मतलब यहीं खतम नहीं हो जाता। मौका पड़ने पर जब पूरी तरह सच्ची बात का ऐलान करने और उसके मुताबिक बरतने का कर्तव्य सामने आ पड़े तब चुप रह जाना निरी नामर्दी है।......

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० १४।४।'४६]

१३१. अहिंसा की परीक्षा

निर्दयता के समक्ष दया, हिंसा के समक्ष अहिंसा, द्वेष के समक्ष प्रेम और झूठ के समक्ष सत्य की परीक्षा हो सकती है। यह बात सही हो तो यह कहना गलत होगा कि खूनी के सामने अहिंसा बेकार है। हां, यों कह सकते हैं कि खूनी के सामने अहिंसा का प्रयोग करना अपनी जान देना है। लेकिन इसी में अहिंसा की परीक्षा है। इसकी विशेषता यह है कि जो लाचारी से मर जाता है वह अहिंसा की परीक्षा में पास नहीं होता। जो मरते हुए भी खूनी पर क्रोध नहीं करता और उसके लिए मन में ईश्वर से क्षमा मांगता है वही अहिंसक है। ईसामसीह के बारे में इतिहास यही कहता है। उन्हें जिन लोगों ने सूली पर चढ़ाया उनके लिए उन्होंने मरते-मरते ईश्वर से प्रार्थना की 'हे ईश्वर, जिन्होंने मुझे सूली पर चढ़ाया है उन्हें तू माफ करना।' ऐसी दूसरी मिसालें सब धर्मों में मिल सकती हैं। लेकिन क्राइस्ट की यह बात सारे संसार में प्रसिद्ध है।

यह अलग बात है कि हमारी अहिंसा उपर्युक्त सीमा तक न पहुंची हो। अपनी कमजोरी या अनुभवहीनता के कारण हम अहिंसा की भव्यता को नीचे न उतारें। यह ठीक नहीं होगा।....इसलिए अहिंसा की शक्ति को बुद्धि से जान लेना जरूरी है।

--ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० २८।४।'४६]

१३२. सत्य अथवा अहिंसा

[सत्य और अहिंसा में कौन श्रेष्ठ है--इस विषय पर गांधी जी से किये गये कुछ प्रश्न और उनके उत्तर।--संपा०]

प्रश्न--आप हमें आजादी की ड्योढ़ी तक ले आये हैं। इसके लिए हमें आपको

जितना धन्यवाद दें कम है। मुझे पक्का विश्वास है कि आप इसका सारा यश अहिंसा को ही देंगे क्योंकि वह आपकी सबसे प्यारी चीज है। लेकिन हमें ऐसा लगता है कि हमको अहिंसा के बजाय सत्य से अधिक शक्ति मिली है।

उत्तर—आपका यह खयाल गलत है कि मैंने अहिंसा का पक्षपात करके सत्य को दूसरी जगह दी है। आपका यह समझना भी उतना ही गलत है कि हमें सत्य ने अहिंसा से अधिक शक्ति दी है। इसके विपरीत मुझे तो पूरा विश्वास है कि देश ने जो कुछ उन्नति की है वह इसी कारण कि उसने अहिंसा को अपने युद्ध का शस्त्र वना लिया है।

प्रश्न—मेरा मतलब यह है कि देश ने आपकी अहिंसा को नहीं समझा, लेकिन सत्य को समझ लिया है, और उसने देश की शक्ति बढ़ाई है।

उत्तर—बात तो इससे बिलकुल उल्टी है। देश में इतना असत्य भरा है कि कई बार मेरा तो दम घुटने लगता है। मेरा विश्वास है कि अहिंसा का पालन ही हमें यहां तक ले आया है। चाहे उसमें कितने ही दोष क्यों न रहे हों।

प्रश्न—फिर भी आप का जोर हमेशा अहिंसा पर रहा है। आपने अहिंसा को फैलाना अपना ध्येय बना लिया है।

उत्तर—आप यहां भी गलती पर हैं। अहिंसा साध्य नहीं है। साध्य सत्य है। लेकिन हम सत्य का दर्शन केवल अहिंसा का पालन करते हुए कर सकते हैं। लेकिन हिंसा का यह आवश्यक परिणाम नहीं। यदि हम एकदिल होकर अहिंसा के पीछे चलें, तो वह हमें निश्चित रूप से सत्य के पास ले जायगी। इसलिए मैं अहिंसा की हिमायत करता हूं। सत्य मेरे स्वभाव में था लेकिन अहिंसा मुझे बड़े कष्ट और परिश्रम से मिली है। लेकिन चूंकि अहिंसा साधन है; इसलिए हमें जनता को उसकी शिक्षा देनी है। सत्य की शिक्षा इससे अपने आप मिल जाती है। क्योंकि वह अहिंसा का नैसर्गिक परिणाम है।

—ह० ज०। ह० से० २३।६।'४६] ....

- **मुझे तो पूरा विश्वास है कि देश ने जो कुछ उन्नति की है वह इसी कारण कि उसने अहिंसा को युद्ध का शस्त्र बना लिया है।**
- **अहिंसा साध्य नहीं है, साध्य सत्य है।**
- **हम सत्य का दर्शन केवल अहिंसा का पालन करते हुए ही कर सकते हैं।**
- **सत्य मेरे स्वभाव में था। लेकिन अहिंसा मुझे बड़े कष्ट और परिश्रम से मिली है।**

१३३. अहिंसक सुरक्षा

एक अंग्रेज सैनिक अधिकारी ने निम्नलिखित प्रश्न भेजे हैं। उन्होंने २८ जुलाई १९४६ के 'हरिजन' में आजादी पर मेरा लेख बड़ी दिलचस्पी से पढ़ा है। वह एक फौजी इंजीनियर हैं, अमेरिका और युरोप में खूब घूमे हैं और अपनी आंखों से जर्मनी में लड़ाई की तबाही और बरबादी देख चुके हैं।

प्रश्न—आदर्श शासन में (और निस्सन्देह वह शासन आदर्श होगा) आदमी बाहर के हमलों से किस तरह बच सकता है? आजकल जब कि मशीन का दौरदौरा है, यदि शासन के पास नये से नये हथियारों से लैस फौज न होगी तो ऐसे हथियारों वाली एक फौज हमला करके देश को जीत सकती है, और वहां के निवासियों को गुलाम बना सकती है।

उत्तर—सवाल पूछनेवाले भाई कहते हैं कि उन्होंने मेरे लेख को बड़े ध्यान से बार-बार पढ़ा और फौजी आदमी होते हुए भी उसे पसन्द किया है। किन्तु स्पष्ट पता चलता है कि मेरे लेख में जो असल बात है उसको समझने में वह चूक गये हैं। वह बात यह है कि एक व्यक्ति की तरह एक कौम, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो और कौम तो क्या एक जमात भी हथियारों से लैस सारी दुनिया के विरुद्ध अपने मान की रक्षा कर सकती है। किन्तु शर्त यह है कि उसमें सब, एक मत के हों और उन में इस हिफाजत के लिए पक्का इरादा हो। यही निहत्थे लोगों की शक्ति और सौन्दर्य हैं, जिसकी मिसाल नहीं मिल सकती.। यही अहिंसक बचाव है, जो किसी मंजिल पर भी न हार जानता है, न हार मानता है। इसलिए जिस कौम या गिरोह ने हमेशा के लिए अहिंसा का रास्ता अपना लिया है वह अणुबम से भी गुलाम नहीं रक्खा जा सकता।

—सेवाग्राम ८।८।'४६, ह० ज० १८।८।'४६; ह० से० १८।८।'४६]

१३४. पश्चिमी जनतन्त्र और अहिंसा

[गांधी जी के साथ एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—दुनिया में जिधर देखिए उधर मारकाट, दूसरों का स्वत्व-अपहरण, और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत सिद्ध करने की बात चल रही है। और यह भी इंग्लैड और अमरीका-जैसे देशों में हो रहा है, जहां लोकमत को ही सबसे

ऊंचा स्थान दिया गया है। ऐसी दशा में आपकी अहिंसा क्या कर सकती है; इस विषय में आपने विचार किया है?

उत्तर—'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली बात चल रही है, यह सच है। मगर इंग्लैंड और अमरीका में लोकमत को सबसे ऊँचा स्थान दिया गया है, यह मानना मेरे विचार से भूल है। लोगों की आवाज का अर्थ है परमेश्वर की आवाज। इसीलिए हमारे यहां कहते हैं कि पंच यानी परमेश्वर। मगर जहाँ पंच ही दूसरों को खा जाय, वहां यह कैसे कहा जा सकता है कि पंचों की आवाज परमेश्वर की आवाज है? अमरीका और इंग्लैड रंगीन (काले) लोगों के श्रम पर निर्भर हैं। वे लोगों को चूसते हैं, यह तो हम देखते ही हैं। इसका उदाहरण देने की जरूरत नहीं। दूसरों पर जीनेवालों में भी सहयोग हो सकता है परन्तु इसीलिए उनकी आवाज पंच की अवाज नहीं कही जा सकती। जहां पंच की आवाज परमेश्वर की आवाज के समान हो, वहां पंच दूसरों का शोषण करके जीने से इन्कार करेगा। उसकी तराजू के एक पल्ले में सत्य और दूसरे में अहिंसा होगी। इसलिए वह तराजू हमेशा पूरा तौलेगी। इसमें मेरा जवाब आ जाता है। मेरी अहिंसा अपंग नहीं, दुर्बल भी नहीं; वह सबसे श्रेष्ठ वस्तु है। क्योंकि जहां अहिंसा है, वहां सत्य है। और सत्य तो परमेश्वर है। परमेश्वर कैसे काम करता है, यह मैं नहीं जानता। इतना जानता हूं कि वह सर्वव्यापी है। और जहां वह है, वहां कुशल ही है। यानी वहां सबके लिए एकता, न्याय वर्तमान ही है। संसार के जिस भाग में सत्य और अहिंसा का सिक्का चलेगा, वहीं परम शान्ति और परम सुख होगा। अगर शान्ति और सुख कहीं नहीं है, तो हमें समझना चाहिए कि सत्य और अहिंसा भी आज लुप्त है। मगर वे बिलकुल लुप्त तो हो नहीं सकते। इसलिए जिसे विश्वास है, वह विश्वास रूपी नाव में बैठकर जायगा और अन्त में सबको तार देगा।

—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० २९।९।'४६]

१३५. अहिंसा और मतभेद

अहिंसा का धर्म है कि वह मतभेदों को भी प्रेम के साथ सहन करे।

—नई दिल्ली १।१०।'४६। मूल अंग्रेजी। ह० से० ६।१०।'४६]

१३६. हिंसा के तरीके

सीधी लकीर एक ही होती है। अहिंसा एक सीधी लकीर है। जो लकीरें सीधी नहीं वे कई तरह की होती हैं। जिस बच्चे ने कलम पकड़ना सीख लिया है वह चाहे अन्य कितनी ही तरह की लकीरें खींच ले, लेकिन एक सीधी लकीर नहीं खींच सकता। धोखे से एकाध बार वह सीधी बन जाय तो बात दूसरी है। कई लोग पूछते हैं कि मैंने जिस हिंसा की इजाजत दी है, क्या उसमें वे सब बातें आ सकती हैं जिसका वे अपने खत में जिक्र करते हैं। यह विचित्र बात है कि सभी खत अंग्रेजी में लिखे हुए हैं। इन लिखने वालों को मेरा लेख दुबारा पढ़ जाना चाहिए। तब उन्हें मालूम हो जायगा कि मैं क्यों इन सवालों का जवाब नहीं दे सकता। शायद मैं इसलिए भी जवाब देने लायक नहीं हूं कि मैंने कभी हिंसा की ही नहीं। असल में मैंने तो कभी हिंसा की इजाजत भी नहीं दी। मैंने बहादुरी और कायरता के दो दर्जों का ही बयान किया है। वैध चीज तो अहिंसा ही है। यहां सुझाये गये अर्थ में हिंसा कभी उचित नहीं हो सकती यानी इंसान के बनाये कानून में हिंसा कभी कानून नहीं हो सकती। अपने या किसी निराधार के बचाव के लिए जो हिंसा की जाती है, वह भी वैध या कानूनी तो नहीं होती फिर भी वह एक बहादुरी का काम जरूर है। यह डरकर शरण जाने से कहीं अच्छा है। कायरता किसी पुरुष या स्त्री को शोभा नहीं देती। हिंसा में भी बहादुरी की कई किस्में और दर्जे होते हैं। हर एक आदमी को इसका फैसला खुद करना चाहिए। दूसरा कोई न तो यह फैसला कर सकता है न उसे करने का अधिकार है।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० २७।१०।'४६]

- **अहिंसा एक सीधी लकीर है।**
- **कायरता किसी पुरुष या स्त्री को शोभा नहीं देती।**

१३७. श्रद्धा का साहस

अहिंसा या तो जीवन का नियम है या नहीं है। मेरे एक दोस्त कहा करते थे कि पतञ्जलि के योग-दर्शन का अहिंसा-विषयक सूत्र 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' (अहिंसा की सिद्धि होने पर उसके पास जाने वाली बैर-बुद्धि शान्त हो जाती है) एक बड़ी गलती है। इसमें सुधार करने की जरूरत है और 'अहिंसा परमोधर्मः' इस वचन को भी इसके पहले 'अ' को निकालकर 'हिंसा परमोधर्मः' के रूप में पढ़ना और समझना चाहिए। उनकी बात का मतलब यह था कि मनुष्य का

सबसे श्रेष्ठ धर्म अहिंसा नहीं बल्कि हिंसा है। इसलिए अगर ऐन कसौटी के वक्त अहिंसा के कानून के बारे में मेरी श्रद्धा डिग जाय तो मुझे अपने उन दोस्तों का सुझाया हुआ वाहियात परिवर्तन मंजूर कर लेना पड़े।

—खजिरखील, १६।११।'४६। ह० ज०, २४।११।'४६। ह० से०, २४।११।'४६]

१३८. दुर्बलों बनाम बलवानों की अहिंसा

....अभी तक हिन्दुस्तान में जिस अहिंसा पर हमने अमल किया था, वह दुर्बलों की अहिंसा थी। किन्तु अब जिस प्रयोग में यहां लगा हूं वह बलवानों की अहिंसा है।

—२८।१२।'४६ की प्रार्थना-सभा में। ह० से० २।२।'४७]

१३९. मेरी अहिंसा की कसौटी

[१९४६-४७ में बंगाल, पंजाब और बिहार में घोर हिंसा और अविश्वास का वातावरण था। मनुष्य के अन्दर की दबी पशुता ऊपर आ गयी थी और खुलकर खेल रही थी। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे। ऐसे भयानक समय में गांधी जी बंगाल में गांव-गांव घूमकर लोगों को शान्ति का सन्देश दे रहे थे। उनके तत्सम्बन्धी भाषणों से अहिंसा-विषयक अंश यहां संकलित कर दिये गये हैं।—संपा०]

....आज मैं अपने को जिस अंधेरे में घिरा हुआ पाता हूं, वैसा अंधेरा मैंने पहिले कभी महसूस नहीं किया था। सचमुच आज मेरी अहिंसा बहुत कड़ी कसौटी पर कसी जा रही है।....

यह सच है कि पौ फटने के पहिले रात का अंधेरा बहुत ही घना हो जाता है। मैं खुद आज ऐसा ही घना अँधेरा महसूस कर रहा हूं और यद्यपि दूर बैठे हुए दोस्तों को सुबह की लाली दिखाई देती होगी किन्तु स्वयं मुझे तो अभी तक ऐसा लगता है कि मेरे आस-पास घने अँधेरे के सिवा और कुछ नहीं है।

पतञ्जलि के योगसूत्र के एक सूत्र में कहा गया है कि जिसके हृदय में अहिंसा पूरी तरह बस जाती है उसके सामने बैर और बदमाशी की सम्पूर्ण वृत्तियां शान्त हो जाती हैं। मैं देखता हूं कि मेरी आस-पास की हालत अभी ऐसी हुई नहीं है। इससे

मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि मेरी अहिंसा अभी इस काल की कसौटी पर सौ टंच पूरी नहीं उतरी है।

--२७।१२'।४६। श्रीरामपुर डायरी से। ह० से० २।२'।४७]

१४०. लोकतन्त्र और अहिंसा

....पूर्णतः अहिंसा की नीति पर चलनेवाली दुनिया की एक भी संस्था को जबतक हम नहीं जानते, तबतक हम यह दावा नहीं कर सकते कि कोई भी संस्था पूरी तरह लोकतन्त्र के ढंग पर चल रही है, और इस बात का स्पष्टीकरण भी बहुत सीधासादा है। आज यह अच्छी तरह से सिद्ध किया जा सकता है कि लोकतन्त्र को जबतक पूर्ण अहिंसा की नींव पर न खड़ा किया जाय तबतक उसमें पूर्णता नहीं आती।

--९।२'।४७ नोआखाली (बंगाल)। ह० से०। २।३'।४७]

१४१. हिंसा बनाम अहिंसा

यदि कोई मुझे गाली दे तो मेरे उलटकर गाली दे देने से काम नहीं चलेगा। बुराई का उत्तर बुराई से देने पर वह बुराई घटती नहीं बल्कि बढ़ती है। यह एक प्राकृतिक नियम है कि अहिंसा ज्यादा बड़ी हिंसा से कभी शान्त नहीं होती। उसको शान्त करने की दवा केवल अहिंसा या उसका मुकाबला न करना ही है। किन्तु मुकाबला न करने का सच्चा अर्थ प्रायः गलत समझा गया है, और तोड़ा मरोड़ा भी गया है। उसका अर्थ यह कभी नहीं रहा कि अहिंसक आदमी को आक्रामक की हिंसा के सामने झुक जाना चाहिए। हिंसा का उत्तर हिंसा से न देते हुए, अहिंसक को, हिंसक की अनुचित मांगों के सामने सिर झुकाने से, अपनी मृत्युपर्यन्त इन्कार करते रहना चाहिए। मुकाबला न करने का सच्चा अर्थ यह है।

उदाहरण के लिए यदि कोई हिंसा की धमकी देकर मुझसे कोई अधिकार मनवाना चाहे तो मैं तुरन्त उस हिंसा को लौटाने के लिए दौड़ूंगा नहीं। ...यदि मुझे सन्तोष हो गया कि उसकी मांग सचमुच प्रयत्न करने योग्य है तो मुझे इसका डंका पीटने में कोई आपत्ति न होगी कि मांग न्यायोचित है।...किन्तु मांग के पीछे यदि जबर्दस्ती हो तो अहिंसक के लिए केवल एक ही रास्ता रह जाता है कि जब तक उसे उसके न्यायोचित होने का विश्वास न हो जाय वह अहिंसक प्रतिरोध करता रहे। उसे हिंसा का जवाब हिंसा से नहीं देना है वरं...मांग के सामने

झुकने से इन्कार कर उस हिंसा को विफल कर देना है। दुनिया में जीने का यही एक सभ्य तरीका है। किसी भी दूसरे तरीके का परिणाम केवल हथियार बढ़ाने की होड़ हो सकती है। बीच-बीच में शान्ति, हार एवं थकान से पैदा हुई और आवश्यकता के कारण कायम रखी जानेवाली शान्ति होगी। उसमें और अधिक भयानक एवं कारगर हिंसा की तैयारियाँ होती रहेंगी। अधिक भयानक एवं कारगर हिंसा के द्वारा शान्ति कायम करने का अनिवार्य परिणाम अणु-बम हुआ है, और वे सब बातें हुई हैं जिनकी अणुबम निशानी है। उसमें अहिंसा और प्रजातन्त्र की पूरी अस्वीकृति प्रकट हुई है। प्रजातन्त्र तो बिना अहिंसा के सम्भव ही नहीं है।

अहिंसक प्रतिरोध में हिंसक युद्ध के लिए आवश्यक साहस से श्रेष्ठ साहस की आवश्यकता होती है। क्षमा वीरों का गुण है, न कि कायरों का। . . .

अहिंसा की शिक्षा प्रत्येक धर्म में वर्तमान है, किन्तु मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में उसके आचरण को एक वैज्ञानिक रूप दिया गया है। अगणित ऋषि-मुनियों ने तपस्या करके अपने जीवन का उत्सर्ग किया है, और अन्त में कवियों ने अनुभव किया कि उनके बलिदानों से सफेद बर्फवाला हिमालय पवित्र हो गया है। किन्तु आज अहिंसा के उस आचरण का लगभग अन्त हो चुका है। क्रोध का उत्तर प्रेम से और हिंसा का अहिंसा से देने का सनातन नियम फिर से जीवित किया जाना चाहिए। राजा जनक और रामचन्द्र के इस देश के सिवा यह और कहाँ अधिक तत्परता से किया जा सकता है?

—११।३।'४७ बिहार में यात्रा करते हुए। ह० से० ३०।३'।४७। मूल अंग्रेजी विवरण से।]

- **यह एक प्राकृतिक नियम है कि हिंसा ज्यादा बड़ी हिंसा से कभी शान्त नहीं होती।**
- **प्रजातन्त्र तो बिना अहिंसा के सम्भव ही नहीं है।**
- **क्रोध का उत्तर प्रेम से और हिंसा का अहिंसा से देने का सनातन नियम फिर से जीवित किया जाना ही चाहिए।**

१४२. ज्वालामुखी में भी शान्ति

हमारे दिल में ज्वालामुखी दहक रहा हो तब भी ठण्ढा रहने में हमारी अहिंसा की परीक्षा है।

—नई दिल्ली ५।४।'४७। प्रार्थना सभा के प्रवचन से।]

१४३. हिंसा

हिंसा शैतान का काम है और मैं अपनी जिन्दगी भर उसके खिलाफ लड़ता रहा हूँ।

—नई दिल्ली, ३।४।'४७। ह० से० २०।४।'४७]

१४४. तलवार से शान्ति न होगी

तलवार के जोर से अगर कोई आदमी कुछ ले लेता है तो उससे बड़ी दूसरी तलवार से वह छीन लिया जाता है।...हिन्दुस्तान ने दुनिया को नया रास्ता बताया है यही हमारी स्वतन्त्रता का कारण है। वैसे तो दुनिया में तलवार का बदला तलवार से लेनेवाले बहुत होते हैं। बदला क्या, वे तो एक के बदले दस को काटने की बात करते हैं। मैं कहूँगा, दस नहीं एक के बदले सौ भी काटो, फिर भी शान्ति न होगी। मारकर मरने में कोई बहादुरी नहीं है। वह झूठी है। न मारकर मरने वाला ही सच्चा शहीद है।

—नई दिल्ली, १।५।'४७ प्रार्थना-सभा में। ह० से० १८।५।'४७]

१४५. अहिंसा में दृढ़ विश्वास

[नीचे का प्रश्नोत्तर यनाइटेड प्रेस आफ़ अमेरिका के संवाददाता और गांधी जी के बीच हुआ था।—संपा०]

प्रश्न—पिछले पांच महीनों के अपने प्रयोग के नतीजे को देखते हुए क्या आप अनुभव करते हैं कि दुनिया के सवालों को हल करने में अहिंसा का सिद्धान्त अब भी विजयी हो सकता है?

उत्तर—नोआखाली में पांच महीने बिताने से मेरा यह पिछला अनुभव पक्का ही हुआ है कि अहिंसा हमारी सम्पूर्ण तकलीफों को दूर कर सकती है।

—अंग्रेजी से। ह० से० ८।६।'४७]

१४६. अहिंसा चुम्बक है

प्रेम या अहिंसा दुनिया का जबर्दस्त चुम्बक है। वह कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाता।

—सुशीला नय्यर की ९।६।'४७ की साप्ताहिक अंग्रेजी चिट्ठी से। ह० से० १५।६।'४७]

१४७. एकमात्र साधन

केवल प्यार ही घृणा को जीत सकता है।

—नई दिल्ली २२।६।'४७। ह० से० २९।६।'४७]

१४८. अहिंसा के साथ ईश्वर है

एक अकेला आदमी अगर दुनिया का सामना करने चले तो वह अहिंसा से ही कर सकता है। अहिंसा के साथ ईश्वर होता है। उसके सामने तलवार टूट जायगी।

—नई दिल्ली, १३।७।'४७। प्रा० प्र० भाग १, पृष्ठ २४६]

१४९. सत्य और अहिंसा : एक सिक्के के दो पहलू

कोई असत्य से सत्य को नहीं पा सकता। सत्य को पाने के लिए सदा सत्य का आचरण करना ही होगा। क्या अहिंसा और सत्य की जोड़ी है? बिल्कुल नहीं। सत्य में अहिंसा छिपी हुई है और अहिंसा में सत्य।...सत्य और अहिंसा ,क ही सिक्के के दो बाजू हैं। दोनों का मूल्य एक है। केवल पढ़ने में अन्तर है। एक ओर अहिंसा है, दूसरी ओर सत्य। पूर्ण पवित्रता के बिना अहिंसा और सत्य निभ नहीं सकते। शरीर या मन की अपवित्रता छिपाने से असत्य एवं हिंसा ही पैदा होगी।

—नई दिल्ली ६।७।'४७। ह० से० १३।७।'४७]

१५०. बहादुरों की हिंसा और अहिंसा

कुछ लोग मुझसे पूछ रहे हैं कि तुमने ३२ साल तक सत्य और अहिंसा का नाम लिया। क्या उसी का यह नतीजा नहीं देखा जा रहा है कि आज देश में हर जगह छुरों और गोलियों से मारकाट मची हुई है? इस तरह कौन कब तक यहाँ जिन्दा रहेगा? इस पर मैं यह कहूँगा कि आज जब इतनी बेचैनी फैल रही है तब वह अहिंसा तो नहीं हुई। तब क्या ३२ वर्ष तक मेरा झूठ और फरेब का राज चलता रहा? ३२ वर्ष तक करोड़ों आदमियों ने जो मुझसे अहिंसा की तालीम ली, क्या वे एकाएक आज झूठे और हिंसक बन गये? मैं तो यह कबूल कर चुका हूँ कि हमारी अहिंसा दुर्बलों की थी। किन्तु सचाई तो यह है कि दुर्बलों के साथ अहिंसा का मेल कभी बैठता ही नहीं। अतः उसे अहिंसा की जगह निष्क्रिय प्रतिरोध कहना चाहिए। किन्तु मैंने जो अहिंसा चलाई थी वह दुर्बलों की नहीं थी, जब कि निष्क्रिय प्रतिरोध दुर्बलों का होता है। उसमें सबलता नहीं आई थी। इसके अलावा निष्क्रिय प्रतिरोध सक्रिय और सशस्त्र प्रतिरोध की तैयारी होता है। नतीजा यह हुआ कि लोगों के दिल में जो हिंसा भरी थी, वह एकाएक बाहर निकल पड़ी।

निष्क्रिय प्रतिरोध भी तो हमारा असफल नहीं हुआ। हमने अपनी स्वतन्त्रता लगभग प्राप्त कर ली। आज जो हिंसा दिखाई दे रही है, वह भी नामर्दों की हिंसा है। एक मर्द की भी हिंसा होती है। मान लीजिए, चार-पांच आदमी अपनी तलवारों से लड़ते-लड़ते मर जाते हैं। उसमें हिंसा जरूर है परन्तु वह मर्दों की हिंसा है। जब दस-बारह हजार सशस्त्र आदमी एक गाँव के निहत्थे लोगों पर हमला करके स्त्री-बच्चों समेत उन्हें काट डालते हैं तो वह नामर्दों की हिंसा हुई। अमरीका का ऐटम बम एक तरफ़ और सारा जपान एक तरफ। यह भी नामर्दों की ही हिंसा थी। मर्दों की अहिंसा तो देखने की चीज होती है। उसी अहिंसा को देखते हुए मैं मरना चाहता हूँ। उसके लिए हृदय में बल होना चाहिए। वह एक बड़ा खूबीवाला अस्त्र है। यदि सबलों की अहिंसा को लोगों ने जान लिया होता तो इधर जो जान-माल का नाश हुआ है, वह कभी न होता।

—नई दिल्ली, ४।७।'४७। तथा प्रा० प्र० भाग १, पृष्ठ २१९-२०। ह० से० १३।७।'४७]

- **मर्दों की अहिंसा तो देखने की चीज होती है। उसी अहिंसा को देखते हुए मैं मरना चाहता हूं।**

१५१. मेरे एवं कांग्रेस के बीच भेद

यदि आप गहराई में उतरेंगे तो पता चलेगा कि मेरे और कांग्रेस के नेताओं के बीच केवल एक ही मौलिक मत-भेद है, दूसरे सम्पूर्ण भेद उसी के साथ जोड़े जा सकते हैं। अहिंसा मेरा धर्म है, कांग्रेस ने उसे कभी धर्म नहीं माना। कांग्रेस ने उसे सदा नीति के रूप में अपनाया है। कोई नीति तभी तक धर्म का रूप लिये रहती है जबतक वह अपनाई जाती है, इसके बाद नहीं। आवश्यकता पड़ने पर कांग्रेस को अपनी नीति बदलने का पूरा अधिकार है। किन्तु धर्म कभी बदला नहीं जाता। उसमें परिवर्तन की गुंजाइश ही नहीं होती .....

कांग्रेस के विधान में शान्तिपूर्ण शब्द का प्रयोग किया गया है, अहिंसक शब्द का नहीं। जब १९३४ में कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में हुआ था, तब मैंने शान्तिपूर्ण शब्द की जगह अहिंसक शब्द रखवाने की बड़ी कोशिश की किन्तु मैं सफल न हो सका। इसलिए शायद शान्तिपूर्ण शब्द का अर्थ अहिंसक से कुछ घटकर किया जा सकता है। मैं स्वयं तो ऐसा नहीं मानता किन्तु मेरी राय की बात करना व्यर्थ है। . . . .आपको और मुझे तो केवल इतना ही समझ लेना चाहिए कि कांग्रेस का आज का व्यवहार सच्चे अर्थ में अहिंसक नहीं है। यदि कांग्रेस ने अहिंसक नीति की प्रतिज्ञा की होती तो वह किसी फौज का समर्थन नहीं करती किन्तु वह तो ऐसी फौज रखने में शान समझती है जो—यदि लोगों ने मेरी बात न सुनी तो—नागरिकों को बरबाद कर सकती है और हिन्दुस्तान में सैनिक शासन स्थापित कर सकती है।

मैंने स्पष्ट शब्दों में इस बात को पूर्णतः स्वीकार किया है कि पिछले तीस वर्षों से हमने जो किया वह अहिंसक विरोध नहीं बल्कि मन्द विरोध था। केवल कमजोर ही मन्द विरोध करते हैं, क्योंकि वे चाहने पर भी सशस्त्र विरोध नहीं कर सकते। यदि हम अहिंसक विरोध का उपयोग जानते, जो शक्तिमान एवं वीर हृदय वाले ही कर सकते हैं, तो हम संसार के सामने स्वतन्त्र भारत का बिल्कुल ही दूसरा चित्र रखते।

—नई दिल्ली, १४।७।'४७ प्रार्थना-सभा के भाषण से। ह० से० २७।७।'४७]

- **अहिंसा मेरा धर्म है, कांग्रेस ने उसे कभी धर्म नहीं माना।**
- **कांग्रेस का आज का व्यवहार, सच्चे अर्थ में अहिंसक नहीं है।**
- **यदि हम अहिंसक विरोध का उपयोग जानते तो संसार के सामने स्वतन्त्र भारत का बिल्कुल ही दूसरा चित्र रखते।**

१५२. अहिंसा का विज्ञान और प्रयोग

एक प्रश्नोत्तर

प्रश्न—जब आप नोआखाली में थे तब प्रायः कहाँ करते थे कि यदि मुझे अपने मिशन में सफलता न मिली तो वह मेरी अपनी अहिंसा की असफलता होगी, स्वयं अहिंसा की नहीं। यहां कलकत्ता में जो सफलता प्राप्त हुई है उसे देखते हुए क्या आप सोचते हैं कि आपकी अहिंसा सफल हुई है या सफलता के मार्ग पर है?

उत्तर—अहिंसा के विषय में मेरे विचारों का यह ठीक बयान है। अहिंसा सदा अचूक होती है। इसलिए जब वह असफल हुई दिखाई पड़े तो वह असफलता अहिंसा का उपयोग करनेवाले की अयोग्यता के कारण समझनी चाहिए। मैंने कभी यह अनुभव नहीं किया कि नोआखाली में मेरी अहिंसा असफल रही, न यही कहा जा सकता है कि वह सफल हुई है। अभी तो उसकी परीक्षा हो रही है।....

अहिंसा के प्रयोग की सफलता या असफलता के विषय में अभी से कोई बात कहना जल्दबाज़ी होगी।....यदि हम अहिंसा के विज्ञान और उसके प्रयोग को जानते हैं तो हम अवश्य सफल होंगे।

—कलकत्ता, ३१।८।'४७। अंग्रेजी। ह० से० ७।९।'४७]

● **अहिंसा सदा अचूक होती है।**

१५३. अहिंसा की मर्यादा

एक सज्जन द्वारा मुझे लिखे गये पत्र का सार यह है—

"व्यक्तिगत अहिंसा समझी जा सकती है। मित्रों के बीच की समाजी अहिंसा भी समझ में आ सकती है। किन्तु आप तो कहते हैं कि शत्रुओं के सामने भी अहिंसा का प्रयोग किया जा सकता है। यह तो आकाश के फूल-सी असम्भव बात मालूम पड़ती है। कृपया यह हठ छोड़ दें तो अच्छा हो। यदि आप अपना यह हठ न छोड़ेंगे तो आज तक की कमाई प्रतिष्ठा खो देंगे। आप महातमा माने जाते हैं इसलिए समाज के बहुत से लोग आपके रास्ते चलकर बड़े दुखी और पददलित हो रहे हैं, और आगे भी होंगे। इससे समाज की हानि हो रही है।"

जिस अहिंसा की सीमा एक व्यक्ति तक है, वह समाज के काम की नहीं। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसकी शक्तियाँ ऐसा होनी चाहिए कि समाज के सब लोग प्रयत्न से उन्हें अपने में बढ़ा सकें। मित्रों के बीच ही जो सीखा और बढ़ाया जा सके, वह गुण विनय या नम्रता है। उसमें अहिंसा का थोड़ा अंश है। किन्तु वह

अहिंसा के नाम से पहिचाने जाने लायक नहीं है। अहिंसा के सामने वैर का त्याग होना ही चाहिए, यह महावाक्य है। अर्थात् जहां वैर अपनी अन्तिम सीमा तक पहुंच चुका हो वहां प्रयोग की जानेवाली अहिंसा भी ऊंची से ऊंची चोटी तक पहुंची हुई होनी चाहिए। यह अहिंसा सीखने में बहुत समय लगेगा। सम्भव है, पूरा जीवन समाप्त हो जाय। किन्तु इसके बाद वह निरर्थक या बेकार नहीं हो जाती। इस अहिंसा के रास्ते चलते-चलते कई अनुभव होंगे। वे सब दिन-दिन अधिकाधिक भव्य एवं प्रभावशाली होते जायंगे। अहिंसा की अन्तिम चोटी पर पहुँचने पर उसकी सुन्दरता कैसी होगी इसकी झांकी यात्री को नित्यप्रति देखने को मिलती रहेगी और उसका आनन्द एवं उत्साह बढ़ेगा। इसका अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि यात्री को मार्ग में दिखाई पड़नेवाले सम्पूर्ण दृश्य मीठे और लुभावने मालूम होंगे। अहिंसा का मार्ग गुलाब के फूलों का सेज नहीं, वह काँटों का रास्ता है। प्रीतम कवि ने गाया है कि 'हरिनो मारग छे शूरानो, नहिं कायरनुं काम जोने।'

इस समय वातावरण इतना विषैला बन गया है कि हम सयाने और अनुभवी लोगों के वचन याद रखने से इन्कार करते हैं। नित्यप्रति होनेवाले छोटे-मोटे अनुभवों को भी नहीं देख सकते। बुराई का बदला भलाई से चुकाना चाहिए, यह बात सबके मुंह पर होती है। इसका नित्यप्रति अनुभव भी होता है। फिर भी हम यह क्यों नहीं देख सकते कि यदि यह दुनिया वैर से भरी होती तो इसका कभी अन्त हो गया होता? अन्त में तो दुनिया में प्रेम ही बढ़ता है। उसी से दुनिया टिकी है और टिकती है।

इतनी बात सच है कि अहिंसा का प्रशिक्षण लेना पड़ता है और उसे बढ़ाना पड़ता है। उसकी गति ऊपर होती है, इसलिए उसकी ऊंची से ऊंची चोटी तक पहुंचने में कठोर श्रम करना पड़ता है। नीचे उतरने में मेहनत नहीं पड़ती। हम सब इस बारे में अशिक्षित हैं, इसलिए जीवन में मार-काट, गाली-गलौज ही हमारा स्वाभाविक अनुभव होता है।

अहिंसा अनुभव से मंजे हुए आदमी को ही चुनती है।

—नई दिल्ली ८।१२।'४७। गुजराती। ह० ब०। ह० से० १४।१२।'४७]

- **अहिंसा का मार्ग गुलाब के फूलों की सेज नहीं, वह काँटों का रास्ता है।**
- **यदि यह दुनिया वैर से भरी होती तो इसका कभी अन्त हो गया होता।**
- **अन्त में तो दुनिया में प्रेम ही बढ़ता है; उसीसे दुनिया टिकी है और टिकती है।**

१५४. अहिंसा का पालन

....जो आदमी आत्मा से लूला है, पंगु हैं, अन्धा है, वह अहिंसा को समझ नहीं सकता, अहिंसा का पालन कर नहीं सकता।
--नई दिल्ली २४।१२।'४७। ह० से० ४।१।'४८]

१५५. अहिंसा कभी व्यर्थ नहीं जाती

(एक युरोपीय भाई एवं गांधी जी के बीच के पत्र)

युरोपीय भाई लिखते हैं:—

"रॉय वाकर ने आपके काम पर, जो प्रशंसनीय है, 'स्वोर्ड आफ़ गोल्ड' (स्वर्ण-खंग) नाम की एक पुस्तक लिखी है जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े होने लगते हैं। मैंने उस पुस्तक को ध्यान से पढ़ा। उससे पता चला कि आपने जीवन-भर अहिंसा पर चलने और दूसरों को चलाने की पूरी चेष्टा की है। पुस्तक पढ़कर मुझे तसल्ली हो गई कि कम से कम जहाँ तक हिन्दुस्तान के नेताओं और जन-साधारण का सवाल है, अपनी अपार लगन की बदौलत आपको अपने कार्य में सफलता मिली है। ब्रिटेन ने जो प्रकटतः इस प्रकार की नेकदिली और मैत्री के साथ हिन्दुस्तान छोड़ दिया, उससे यह आशा होती है कि अहिंसा का सम्मान अब केवल आपके देश तक ही सीमित नहीं है। जान पड़ता है, हिंसा की शक्तिमान, मोटी दीवारें पहिली बार कहीं-कहीं कुछ टूटी हैं और मानव-समाज के लिए कुछ भले दिन आनेवाले हैं।

"परन्तु जार्ज डेवीज के 'पीसन्यूज' (शान्ति-समाचार) के अन्तिम संस्करण में यह छपा है कि आप स्वयं एक प्रकार से अपनी हार मान रहे हैं, जिसे पढ़कर मुझे उतनी ही अधिक निराशा हुई। मेरा दिल यह पढ़कर बड़ा दुखी हुआ कि आपको स्वयं आज जो निराशा अपने हृदय में अनुभव हो रही है; वह पहिले कभी न हुई थी। यह बिलकुल सच है कि ईश्वर आदमी की सफलता नहीं देखता वरं उसकी सचाई एवं प्रेम देखता है। फिर भी यह देखकर दुःख होता है कि मानवी समाज हिंसा में इतना डूबा हुआ है कि आपने और आपके थोड़े से साथियों ने जीवन-भर जो आत्मिक शक्ति प्रदर्शित की है और जबर्दस्त बलिदान किये हैं, उनका भी समाज पर असर नहीं हुआ।

"मैं जानता हूं कि वस्तुओं की वास्तविकता को जितनी अच्छी तरह आप

देख और समझ सकते हैं, मैं नहीं देख सकता। आप कहीं अच्छा समझ सकते हैं। फिर भी मैं नहीं मान सकता कि आपके इतने प्रबल और वीरतापूर्ण प्रयत्न व्यर्थ जायँ और मानव समाज पर उनका प्रभाव न हो। आपने अपने शब्दों से और अपने कामों से जो अच्छे बीज परिश्रमपूर्वक निरन्तर अपने चारों ओर बोये हैं, वे व्यर्थ चले जायँगे, यह दिल नहीं मानता।

"जो भी हो, कम से कम मैं (और मुझे भरोसा है कि जो बात मैं कहता हूँ वही करोड़ों के दिल से निकल रही है) अपना यह आवश्यक कर्त्तव्य मानता हूँ कि आप जिस चीज को मानव-समाज की भलाई और उसकी मुक्ति का एक मात्र मार्ग समझते थे, उसके हित आपने जो अपना सारा जीवन दे दिया उसके लिए मैं हृदय से आपका असीम आभार मानूं।"

गांधी जी का उत्तर

जिस रिपोर्ट का आपने उल्लेख किया है, वह मैंने नहीं देखी। कुछ भी हो, मैंने जो कुछ कहा है उसका आशय अहिंसा की असफलता से नहीं है। मैंने जो कुछ कहा है उसका मतलब यह है कि मैं स्वयं समय पर यह न देख सका कि जिसे मैंने अहिंसा समझा था वह अहिंसा थी ही नहीं बल्कि दुर्वलों का 'पैसिव रेजिस्टेंस'—मन्दप्रतिरोध था, जो किसी अर्थ में भी कभी अहिंसा कहा ही नहीं जा सकता। आज हिन्दुस्तान में जो भाई-भाई की लड़ाई हो रही है, वह प्रत्यक्ष परिणाम उन शक्तियों का है जो तीस वर्ष के कारनामों ने पैदा कर दी हैं। इसलिए आज दुनिया-भर में जो हिंसा फूट पड़ी है उसे ठीक-ठीक देखने का सही तरीका यही है कि हम इस बात को समझें कि शक्तिमान लोगों की उस अहिंसा का ढंग, जिसे कोई जीत ही नहीं सकता, अभी हम पूरी तरह समझ ही नहीं पाये हैं। सच्ची अहिंसा की शक्ति का एक कण भी कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। इसलिए मुझे यह घमण्ड नहीं करना चाहिए—और न आप-जैसे दोस्तों को इस धोखे में रहना चाहिए—कि मैंने अपने अन्दर भी कोई वीरतापूर्ण और टकसाली अहिंसा प्रदर्शित की है। मैं केवल इतना दावा कर सकता हूं कि मैं बिना रुके उस ओर बढ़ा चला जा रहा हूं। मेरी इस बात से अहिंसा में आपका विश्वास दृढ़ हो जाना चाहिए और इससे आपको तथा आप-जैसे दोस्तों को इस मार्ग पर और तीव्रगति से बढ़ने में मदद मिलनी चाहिए।

—नई दिल्ली, १।१।'४८। मूल अंग्रेजी। ह० ज०। ह० से० ११।१।'४८]

● **सच्ची अहिंसा की शक्ति का एक कण भी कभी व्यर्थ नहीं जा सकता।**

[२]

अहिंसा : व्यवहार-पक्ष

१. मुसलमानों को अहिंसा की चेतावनी

......मुसलमानों की न्यायपूर्ण मांगों को सफल बनाने में मैं सच्चे हृदय से उनका तबतक साथ देता रहूंगा, जबतक वे किसी प्रकार की हिंसक प्रवृत्ति नहीं दिखालायेंगे और पूर्ण आत्म-संयम के साथ काम करेंगे। किन्तु जिस दिन मुझे यह मालूम हो जायगा कि मुसलमानों ने हिंसा की प्रवृत्ति दिखलाई है, या इसके लिए यत्न किया है, तो मैं तुरन्त उनका साथ छोड़ दूंगा और प्रत्येक हिन्दू तथा अन्य उन लोगों से जो मेरी बात मानने को प्रस्तुत होंगे, ऐसा करने की सलाह दूंगा। इसलिए मेरा कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति को घोर से घोर उत्तेजना मिलने पर भी पूर्णतया आत्मसंयम से काम लेना चाहिए। यदि दृढ़ता के साथ नम्रता का संयोग कर दिया गया तो विजय असन्दिग्ध है। किन्तु यदि क्रोध, द्वेष अथवा आवेश से काम लिया गया तो पतन अवश्यम्भावी है। इसका अन्तिम परिणाम यह होगा कि हिंसा का राज्य छा जायगा। यदि मेरा कोई भी साथी न रह जाय और मुझे एकाकी हो जाना पड़े, तब भी मैं प्राणपण से इसे दबाने का प्रयत्न करूंगा।

—यं० इं० १०।३।'१९]

२. वचन की हिंसा

...केवल हिंसा का निवारण ही पर्याप्त नहीं है। हिंसापूर्ण भाषण का भी इतना ही प्रभाव पड़ता है, जितना हिंसापूर्ण आचरण का।

—यं० इं० ३।१२।'१९]

३. अहिंसा का आशावाद

...मैं दृढ़ता और साहस के साथ कह सकता हूं कि जिस समय अंग्रेजों को विश्वास हो जायगा कि यद्यपि उनकी संख्या भारत में नितान्त हीन है, तथापि उनके जान-माल की पूरी तरह रक्षा हो रही है और इसका कारण उनके हाथ में अनेक प्रकार के विनाशकारी, विषैले अस्त्रों का होना नहीं अपितु यह है कि भारतीय उन लोगों की प्राणहानि उचित नहीं समझते, जिन्हें वे भीषण भूल करने

वाला समझते हैं, उसी दिन आप देखेंगे कि भारत की ओर से अंग्रेजों का विचार बदल जायगा। और उसी दिन से उन समस्त अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग बन्द हो जायगा, जो इस समय भारत में अतिक्रूरता के साथ प्रयुक्त होते दिखाई देते हैं। मैं जानता हूं कि यह सुदूर भविष्य की बात है, किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं। यदि मुझे सुदूर में भी प्रकाश दीख रहा है, तो मेरा कर्तव्य उसी को लक्ष्य कर आगे बढ़ने का है। यदि मुझे इस कूच में साथी मिलते रहे, तो मैं इसे आशातीत सफलता मानूंगा। मैंने अपने अंग्रेज मित्रों से वार्ता करते हुए उन्हें भलीभांति समझा दिया है कि मैं निरन्तर अहिंसा की शिक्षा देता आया हूं और मैंने इसकी पूर्ण व्यावहारिक उपयोगिता दिखला दी है। यही कारण है कि खिलाफत के सम्बन्ध में मुसलमानों के हृदय में जो हिंसा की प्रवृत्ति है, वह अभी तक दबी पड़ी है।

—यं० इं० २।६।'२०]

४. हिंसा का परित्याग

. . . इस बात को सदा स्मरण रखना चाहिए कि हमारी सफलता के लिए दो बातें नितान्त आवश्यक हैं। पहिली बात यह है कि हमें हिंसा के भाव से हर तरह दूर रहना होगा और अहिंसा का राज्य स्थापित करना होगा। और दूसरी यह कि हमें हर प्रकार के त्याग-हेतु प्रस्तुत रहना पड़ेगा। जहां भी हिंसा प्रकट हुई, वहां असहयोग का चलना या चरितार्थ होना असम्भव-सा है। हिंसा का भाव उदय हुआ कि मनुष्य के हृदय में क्रोध आया और क्रोध आया कि वह अन्धा हुआ, कर्तव्याकर्तव्य का ध्यान भूल गया और व्यर्थ में अपनी अमूल्य शक्ति का ह्रास करने लगा। क्रोध का दमन करने में शक्ति का सञ्चय होगा और इस शक्ति के सदुपयोग से असम्भव कार्य भी सम्भव हो जायगा।

—यं० इं० ४।८।'२०]

५. खिलाफत और अहिंसा

श्री जकारिया ने अपने साप्ताहिक पत्र में एक लेख लिखा था। इसका शीर्षक था 'अहिंसा के विरोधी खिलाफत के सिद्धान्त को हाथ में लेकर कोई मनुष्य अहिंसा का प्रतिपादक कैसे बन सकता है?' सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसायटी के श्री बेन ने यह लेख मेरे पास भेजा और कहा है कि मैं खिलाफ़त के प्रश्न पर उन युक्तियों को लेकर विचार करूं जिनका प्रतिपादन इस लेख के लेखक ने किया है। लेखक

ने लिखा है 'मुझे न तो खिलाफ़त-सिद्धान्त के मूल्य की चिन्ता है और न अहिंसा के मूल्य की किन्तु मेरा कथन है कि ये दोनों बातें परस्पर-विरोधी हैं। जो कुछ मैं चाहता हूं, वह यह कि इस प्रश्न पर दोनों तरह से पूर्ण विचार होना चाहिए। मानव-समाज का अर्वाचीन इतिहास पढ़ने से विदित होता है कि दूषित विचार तथा समझौते के भाव ने मानव जाति को सर्वाधिक क्षति पहुंचाई है। इसके उदाहरण-स्वरूप राष्ट्रपति विलसन के पतन का प्रमाण देकर लेखक ने आगे लिखा है—'क्या सत्याग्रह के आधार-स्तम्भ (महात्मा गांधी) उस चेतावनी पर ध्यान देंगे ? क्या वह अपने जीवन के साथ विश्वासघात करने से दूर रहेंगे ? क्या वह हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रलोभन में पड़ कर अपने जीवन के सिद्धान्तों के विरुद्ध सत्य को नीचे दबायेंगे और खिलाफ़त के प्रश्न पर मुसलमानों के साथ समझौता करेंगे ?'

इस लेख ने मुझे बाध्य कर दिया है कि खिलाफत के सम्बन्ध में अपनी स्थिति पर पुनः कुछ शब्द लिखूं। यदि मैं केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रलोभन में पड़कर अपने जीवन के सिद्धान्त अहिंसा को तिलाञ्जलि देकर खिलाफत का साथ दूं, तो मैं अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात करूँगा। किन्तु जब मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि मुसलमानों की मांग हर प्रकार से संगत और न्यायपूर्ण है, तभी मैंने इसमें हाथ लगाया है। मेरे लिए यह अपूर्व अवसर था जो शायद इस जीवन में पुनः न उपस्थित होता। मैंने भलीभांति विचार कर देखा कि यदि मैं इस अवसर पर मुसलमान भाइयों के साथ हो जाऊं और संकट के समय उनका हाथ बटाऊं तो निःसन्देह दोनों जातियों में आजन्म मैत्री हो जायगी। मैंने हर प्रकार से देखा कि इस अवसर से लाभ उठाना अत्यावश्यक है। मैंने भली प्रकार सोचा-विचारा तो मुझे यह भी निश्चय हो गया कि जबतक ये दोनों जातियां परस्पर भेदभाव को त्याग कर मैत्री के एक सूत्र में नहीं बँध जातीं, तबतक भारत का उद्धार असम्भव है।

श्री जकारिया ने आगे लिखा है—'खिलाफत की शक्ति बल-प्रयोग में है। खलीफ़ा इस्लाम धर्म का प्रतिनिधि है। यह इस्लाम की रक्षा के लिए उत्तरदायी है। तलवार के बल पर भी उसे इस्लाम की रक्षा करनी होगी। इस दशा में वह मनुष्य (महात्मा गांधी) जिसने अहिंसा का व्रत ग्रहण किया है, ऐसी संस्था को बचाने के लिए युद्ध करना चाहता है, जो अपनी रक्षा के लिए तलवार का भी प्रयोग कर सकती है।'

खिलाफत के विषय में श्री जकारिया का जो मत है, वह सर्वथा सत्य है। किन्तु उन्होंने अहिंसा के प्रतिपादक के कर्तव्य का मिथ्या अनुमान लगाया है।

जिस व्यक्ति ने अहिंसा का व्रत धारण किया है, वह किसी वस्तु की रक्षा के लिए किसी प्रकार भी हिंसा अथवा बल-प्रयोग नहीं करेगा। किन्तु उसका अभिप्राय यह नहीं कि वह अहिंसा के सिद्धान्त पर उन संस्थाओं की सहायता भी नहीं कर सकता, जो स्वयं अहिंसात्मक नहीं है। यदि इस बात को बिल्कुल उल्टा कर दें तो हमें भारत की स्वराज्य-प्राप्ति के लिए भी चेष्टा नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह तो निश्चित है कि स्वराज्य प्राप्त करने के पश्चात् भारत को कुछ सेना और पुलिस अवश्य रखनी पड़ेगी। इस बात को और भी स्पष्ट करने के लिए एक अन्य उदाहरण देना उचित होगा। मेरा पुत्र अहिंसा में विश्वास नहीं करता इसलिए यदि उसके साथ किसी प्रकार का अन्याय किया गया है तो उसके प्रतिकार-हेतु उसकी सहायता करना मेरा धर्म नहीं है।

यदि श्री जकारिया की विचार-प्रणाली के अनुसार काम किया जाय तो अहिंसा-सिद्धान्त को मानने वाले को व्यापार-व्यवसाय में भी किसी प्रकार भाग नहीं लेना चाहिए। श्री जकारिया के मत के भी अनेक व्यक्ति मिल सकते हैं, जिनका यही विश्वास है कि अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार करने का अभिप्राय है हर प्रकार के कार्य या व्यवसाय को बन्द कर देना।

किन्तु अहिंसा के सिद्धान्त से मेरा यह अभिप्राय नहीं। मेरी धारणा यह है कि अहिंसा-व्रत ग्रहण करने वाले को स्वयं किसी प्रकार हिंसा नहीं करनी चाहिए और यथासाध्य समझा-बुझाकर अन्य लोगों को अहिंसक बनने के लिए प्रेरित करना चाहिए। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अथवा संस्था अहिंसा-सिद्धान्त से पूर्णतया सहमत नहीं होती और उसकी माँग न्यायोचित है, और मैं जानबूझ कर उसकी सहायता नहीं करता, तो अपने साथ विश्वासघात करता हूं। जब मैं यह जान गया हूं कि मुसलमानों का पक्ष उचित और न्यायसंगत है और मित्र-शक्तियां अनीति से इस्लाम के नाश की योजना कर रही हैं, तो यदि मैं अहिंसात्मक उपायों-द्वारा उन शक्तियों के विरुद्ध मुसलमानों की सहायता न करूं, तो मैं हिंसा-प्रचार का दोषी समझा जाऊंगा। जहां दोनों दल हिंसा के प्रतिपादक हैं, वहां भी एक पक्ष में न्याय और नैतिकता अवश्य होगी। यदि कोई व्यक्ति लुट गया है और वह अपनी लुटी हुई सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए शस्त्र-संग्रह कर रहा है, तब भी न्याय तो उसके पक्ष में अवश्य है। क्षतिग्रस्त पक्ष को किसी प्रकार समझा-बुझाकर अहिंसा के मार्ग पर लाया जाय और अहिंसा द्वारा ही अपने शत्रु पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो यह अहिंसा की पूर्ण विजय मानी जायगी।

मैंने अहिंसा के सिद्धान्त में जो नियन्त्रण लगाया है, इसके आधार पर श्री जकरिया मुझे अहिंसा का प्रतिपादक भले ही न कहें किन्तु मैं उनसे केवल यही कह

सकता हूं कि जीवन एक जटिल समस्या है और सत्य तथा अहिंसा ऐसे सिद्धान्तों को उपस्थित करते हैं, जहां विचार और विन्यास कोई काम नहीं करते।... सत्य तथा उसके प्रयोग के एक मात्र उपाय सत्याग्रह की प्राप्ति धीरता, तत्परता तथा अटल भक्ति और प्रार्थना से होती है।

--यं० इं० १।६।'२१ श्री छविनाथ पाण्डेय-कृत एवं हिन्दी पुस्तक भवन, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हिन्दी अनुवाद से]

- जिस व्यक्ति ने अहिंसा का व्रत धारण किया है, वह किसी वस्तु की रक्षा के लिए किसी प्रकार भी हिंसा अथवा बल-प्रयोग नहीं करेगा।
- मेरी धारणा यह है कि अहिंसा-व्रत धारण करने वाले को स्वयं किसी प्रकार की हिंसा नहीं करनी चाहिए और यथासाध्य समझा-बुझाकर अन्य लोगों को अहिंसक बनने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- जहां दोनों दल हिंसा के प्रतिपादक हैं, वहां भी एक के पक्ष में न्याय और नैतिकता अवश्य होगी।
- जीवन एक जटिल समस्या है।
- सत्य तथा अहिंसा ऐसे सिद्धान्तों को उपस्थित करते हैं, जहां विचार और विन्यास कोई काम नहीं करते।

६. अहिंसा की प्रसव-पीड़ा

मां को प्रसूति की पीड़ा भोगनी ही पड़ती है। दूसरों का काम यह है कि वे उसमें मदद करें। मैं अहिंसा और सत्य-धर्म को जन्म देना चाहता हूं। इसलिए उपवास आदि की पीड़ा भोगने का पात्र मैं अकेला ही हूं।

--चौरीचौरा हत्याकाण्ड के बाद. साबरमती जेल से उपवास के बीच स्व० देवदास भाई को लिखे पत्र से। हि० न० जी० ७।१०।'२३]

७. अहिंसा-पालन की शर्तें

राजनीतिक क्षेत्र में मैंने पचीस साल से भी अधिक अहिंसा से काम लिया है और उसके अनुभव से मुझे यह बात सूर्य-प्रकाश के सदृश स्पष्ट दिखाई देती है कि हमें प्रत्येक हलचल में, विचार, वाणी और व्यवहार में खूब सावधान रहना चाहिए। नम्रता और सत्य-परायणता के बिना अहिंसा का पालन होना असम्भव है और जबकि ऐसी अहिंसा उन संग्रामों से भी सफल हुई है जो धार्मिक नहीं कहे

जा सकते, तो फिर आप लोगों के लिए, जो कि शुद्ध धार्मिक संग्राम का संचालन कर रहे हैं, उसका पालन सचमुच बायें हाथ का खेल होना चाहिए।

कारावास के पूर्व अहिंसा के सम्बन्ध में मेरा जो मत था उसे दोहराने की ज़रूरत मुझे मालूम पड़ती है। क्योंकि इन पिछले थोड़े साल की घटनाओं के चिन्तन-मनन से मुझे ऐसा मालूम होता है कि हम अहिंसात्मक संग्राम के संचालन करने का दावा तो करते हैं परन्तु असहयोग के पहिले के ज़माने में जिस प्रकार हम अहिंसा का पालन नहीं करते थे उसी प्रकार असहयोग के इन दो वर्षों के बीच भी हमने विचार और वाणी के द्वारा अहिंसा-धर्म का पालन नहीं किया है। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि मेरे पकड़े जाने के पहिले तीन महीने में अपनी स्थिति के सम्बन्ध में मैंने 'यंग इंडिया'[1] में जो लेख लिखे थे वे आज उन दिनों से भी अधिक यथार्थ मालूम पड़ते हैं।

—पूना से २५ फरवरी, १९२४ को अकालियों के नाम लिखे पत्र से। हि० न० जी०, २।३।'२४।]

८. सत्य, स्वतन्त्रता, स्वराज्य और अहिंसा

...मैं तो ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ—सत्य ही ईश्वर है। और ईश्वर को पहिचानने का मेरे निकट तो एक ही अचूक साधन-अहिंसा है, प्रेम है। मैं भारत की आज़ादी के लिए क्यों प्रयत्न कर रहा हूँ? इसलिए कि मेरा स्वदेशी धर्म मुझे सिखाता है कि इस देश में मेरा जन्म हुआ है; इस देश की संस्कृति मुझे विरासत में मिली है। इसलिए मैं अपनी माता की सेवा करने का अधिक से अधिक पात्र हूँ और मेरी सेवा पर इस जन्मभूमि का पहिला हक़ है। परन्तु मेरी स्वदेश-भक्ति दूसरे देश की सेवा से विमुख नहीं करती। इसमें दूसरे देश को हानि पहुँचाने की कोई बात ही नहीं है बल्कि सभी के सच्चे लाभ के लिए जगह है। मेरी कल्पना का भारतीय स्वराज्य दुनिया के लिए संकट-रूप हो ही नहीं सकता।

इसलिए कि वह संकट-रूप न हो पाये, स्वराज्य प्राप्त करने के साधनों का शुद्ध अहिंसात्मक होना आवश्यक है। भारत यदि हिंसात्मक साधनों को ग्रहण कर ले तो मैं जो दिलचस्पी भारतीय स्वराज्य में ले रहा हूँ, बन्द हो जाय। क्योंकि उस साधन का फ़ल स्वतन्त्रता नहीं, बल्कि स्वतन्त्रता के पर्दे में गुलामी होगी।

१. गांधी जी का अंग्रेजी साप्ताहिक विचारपत्र।

अभी तक हम जो स्वतन्त्रता न प्राप्त कर सके उसका कारण यही है कि हम विचार, वाणी और आचार में अहिंसानिष्ठ नहीं रहे हैं। हाँ, यह बात सच है कि अहिंसा को हमने धर्म के रूप में ग्रहण नहीं किया है—व्यवहारनीति के रूप में पसन्द किया है। हम जानते हैं कि भारतवर्ष को दूसरे किसी साधन से स्वराज्य नहीं मिल सकता। किन्तु इसके कारण हमारी व्यवहारनीति में पाखण्ड को स्थान नहीं मिल सकता, न मिलना चाहिए। अहिंसा का स्वाँग बनाकर हम हिंसा को आश्रय नहीं दे सकते। एक साध्य के लिए, एक नियतकाल तक अहिंसानिष्ठ होने का हम दावा करते हैं। ऐसी हालत में हमारे विचार और उच्चार उस साध्य के और उस समय के लिए हमारे आचार के अनुरूप अवश्य होने चाहिए। एक ईमानदार जेलर फाँसी की सज़ा पाये हुए कैदी के प्रति ऐसा ही भाव रखता है। वह अपनी जान को जोखिम में डालकर भी फाँसी के दिन तक उसकी रक्षा करता है; उसके प्राण की रक्षा का ही विचार करता है,...अतः जहाँ तक उस व्यक्ति और उस समय का सम्बन्ध है, वह विचार, उच्चार और आचार में अहिंसानिष्ठ है।...

—'यं० इं० के पाठकों के प्रति' लेख से। यं० इं०। हि० न० ६।४।'२४]

९. हिंसा की लहर

[१९२३-२४ में हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की जो विषाक्त लहर देश भर में, विशेषतः उत्तर भारत में फैल गई थी, उससे गांधी जी का हृदय विदीर्ण हो गया था। उन्होंने वर्षों से भारतीय जन-समूहों को जिस अहिंसा-धर्म की दीक्षा दी थी और प्रेम के मार्ग पर अग्रसर किया था, वह जैसे सहसा विस्मृत हो गई थी; लोगों ने उसकी छाती में गहरे घाव कर दिये थे। लगता था जैसे अहिंसा पर से लोगों का विश्वास उठ गया हो। इन्हीं सबकी विवेचना करते हुए गांधी जी ने हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य पर एक लम्बा वक्तव्य दिया था। उसमें से अहिंसा-विषयक महत्वपूर्ण अंश यहां दिये जा रहे हैं।—संपा०]

अहिंसा से घबड़ा उठे हैं

...ऐसा लगता है कि दिमाग़ रखनेवाले लोग अहिंसा से घबड़ा उठे हैं। मैंने अहमदाबाद, वीरमगांव, बम्बई और अन्त में चौरीचौरा हत्याकाण्ड के बाद जो सत्याग्रह को स्थगित कर दिया, उसका यथार्थ आशय उनकी समझ में नहीं आया है। अन्तिम दंगे के समय मैंने जो किया वह आखिरी बात थी। बस, दिमाग़ रखनेवाले लोगों ने समझा कि अब थोड़े दिनों के अन्दर सत्याग्रह की—और इसी-

लिए स्वराज्य की भी सम्पूर्ण आशाएं निरर्थक हैं। अहिंसा पर उनका भरोसा केवल ऊपरी था। दो साल पहिले एक मुसलमान मित्र ने मुझसे दिल खोलकर कहा था-- 'मैं आपके अहिंसा-धर्म को नहीं मानता। और यदि औरों को नहीं तो कम से कम अपने मुसलमान भाइयों को तो मैं इसे सीखने देना नहीं चाहता। जिन्दगी का कानून तो हिंसा ही है। अहिंसा-धर्म का जो अर्थ आप करते हैं उससे यदि स्वराज्य मिलता हो तो मुझको उसकी ज़रूरत नहीं। मैं तो अपने शत्रु से अवश्य घृणा करूँगा।' यह एक ईमानदार व्यक्ति हैं। मैं इनकी बड़ी इज्ज़त करता हूं। दूसरे एक मुसलमान दोस्त का भी ऐसा ही समाचार मिला है। सम्भव है, वहँ गलत हो किन्तु जिन्होंने लिखा है, वह ऐसे नहीं हैं।

हिन्दुओं की घृणा

और अहिंसा के प्रति यह घृणा अकेले मुसलमानों में ही दिखलाई पड़ती हो, ऐसा नहीं है। मेरे हिन्दू मित्रों ने भी ऐसी ही बातें, यथाशक्य अधिक जोश के साथ, कही हैं। मैं हद दर्जे तक के अहिंसा-धर्म की हिमायत करता हूं, इससे कितनों ही ने मेरा अपने को हिन्दू कहने का अधिकार भी छीन लिया है। उनका कहना है कि मैं प्रच्छन्न ईसाई हूं। मुझसे बड़ी संजीदगी के साथ कहा गया है कि भगवद्गीता का यह अर्थ करने में कि उसमें शुद्ध, अव्यभिचारी अहिंसा-धर्म का उपदेश किया गया है, मैं गीता के अर्थ का सचमुच अनर्थ करता हूं। मेरे कितने ही हिन्दू मित्र मुझसे कहते हैं कि अवसर-विशेष पर हिंसा को भगवद्गीता ने मनुष्य का धर्म माना है और उसके लिए वह कर्तव्य बनाया गया है। कुछ ही दिन पहिले एक भारी विद्वान् शास्त्री जी ने गीता के मेरे अर्थ पर क्रोध एवं घृणा व्यक्त करते हुए कहा कि कितने ही टीकाकारों ने गीता का जो अर्थ निकाला है कि 'गीता में दैवी और आसुरी सम्पत्ति के सनातन युद्ध का वर्णन है और उसमें आसुरी सम्पत्ति को बिना संकोच और बिना दया-माया निर्मूल करना हमारा कर्त्तव्य बताया गया है, उसको यथार्थ मानने का कोई भी आधार नहीं है।

अहिंसा के विरुद्ध इन सम्पूर्ण सम्मतियों को इतने विस्तृत रूप में यहां इसलिए दे रहा हूं कि राष्ट्रीय समस्या का जो उपाय मेरे पास है उसे समझने के लिए इन विचारों को समझ लेने की ज़रूरत है।

इस प्रकार आज जो दृश्य मैं अपने आस-पास देख रहा हूं वह अहिंसा के विचार के प्रसार के विरुद्ध एक प्रबल रुकावटी सवाल है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि हिंसा की एक प्रबल लहर उठती आ रही है। हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा अहिंसा के विषय में फैली बेदिली का ही एक रूप है।

इस प्रश्न पर विचार करते समय मेरा ख्याल न करना चाहिए। मेरा धर्म तो मेरे और मेरे सिरजनहार के बीच की बात है। यदि मैं हिन्दू होऊंगा तो सम्पूर्ण हिन्दू जगत् के त्याग देने पर भी मेरा हिन्दूपन मिट नहीं सकता। फिर भी मैं इतना अवश्य कहूंगा कि अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्मों का अन्तिम ध्येय है।

सीमित अहिंसा

परन्तु हिन्दुस्तान से तो मैंने यह कभी नहीं कहा कि वह उस चरम सीमा वाली अहिंसा कों स्वीकार करे जिसका अपराध मुझ पर लगाया गया है, यदि किसी अन्य कारण से नहीं तो केवल इस कारण कि मैं अपने को इस बात के लिए पूर्णतः योग्य नहीं मानता कि यह पुराना सन्देश फिर एक बार वर्तमान जगत् को सुनाऊं। मैं मानता हूं कि यह मेरी समझ में तो सोलहो आना आ गया है और मेरे हृदय में भी अच्छी तरह जम गया है, किन्तु अभी तक मेरी शिरा-शिरा में, मेरे रगोरेशे में पूरी तरह घुलमिल नहीं पाया है। मैं समझता हूं कि ऐसी बात पेश करने में ही मेरे काम की मजबूती है जिसे मैंने बार-बार अपनी ज़िन्दगी में आज़मा लिया हो। फिर अपने देशभाइयों से अहिंसा-धर्म को उनके अन्तिम और सबसे बड़े धर्म के रूप में नहीं वरं भिन्न-भिन्न जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों में अपना आचरण ठीक-ठीक रखने और स्वराज्य प्राप्त करने के लिए ही उसे स्वीकार करने की बात मैं कह रहा हूं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी किसी भी जाति को अपने पारस्परिक झगड़ों और मतभेदों का फैसला एक दूसरे के सिर फोड़कर कदापि न करना चाहिए। स्वराज्य प्राप्त करने के हमारे साधन भी हिंसारहित होने चाहिए। इसे मैं हिन्दुस्तान के सामने दुर्बल के अस्त्र के रूप में नहीं वरं बलवान के अस्त्र के रूप में रखने का साहस करता हूँ।

. . .यदि हम अपनी धार्मिक अभिलाषाओं के विषय में एक दूसरे पर जबर्दस्ती करके उससे अपनी इच्छा की पूर्ति कराने की निरर्थक चेष्टा यों ही जारी रखेंगे तो हमारी आगामी पीढ़ी हम दोनों क़ौमों को अधर्मी और जंगली ही समझेगी। एक लाख अंग्रेजों की अक्ल ठिकाने लाने के लिए ३० करोड़ लोगों को हाथ उठाने का इरादा करते हुए शर्म से डूब मरना चाहिए। एक लाख लोगों के दिल को बदल देना, या यदि आप ऐसा न चाहते हों तो उन्हें इस मुल्क से विदा कर देना, बस इतने काम के लिए हमें तलवार की नहीं केवल निश्चय भर कर लेने की आवश्यकता है। यदि इस बात की कमी होगी तो हमसे तलवार भी न खिंच सकेगी। यदि हम निश्चय का बल प्राप्त कर लेंगे तो देखेंगे कि हमें तलवार की आवश्यकता ही नहीं रही।

इस प्रकार उपर्युक्त बातों को प्राप्त करने के लिए अहिंसा-तत्व को अंगीकार करना हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए, हमारी क़ौमी हस्ती के लिए बिल्कुल स्वाभाविक एवं आवश्यक शर्त्त है। इसके द्वारा हम अपनी सामुदायिक शरीर-शक्ति से भी अच्छी तरह काम लेना सीखेंगे। अभी तो हम इस शक्ति को आपस में लड़कर ही गवां रहे हैं और परिणाम यह होता है कि ऐसे प्रत्येक झगड़े-लड़ाई के बाद हर पक्ष पहिले से अधिक दुर्बल होता है। फिर तलवार की शक्ति पर की गई प्रत्येक राज्यक्रान्ति को भी, यदि उसकी पीठ पर सम्पूर्ण राष्ट्र न हो तो महज़ पागलपन ही माना जाना चाहिए। और यदि देश पीठ पर है तो असहयोग के किसी भी अंश के द्वारा, बिना एक बूँद लहू गिराये लोग इस लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

मैं यह नहीं कहता कि चोरों और डाकुओं के साथ, या यदि विदेशी लोग आप पर हमला कर दें तो उनके साथ भी आप अहिंसा से काम लें। किन्तु ऐसे खतरे के समय हम ज्यादा योग्यतापूर्वक और अधिक कुशलता के साथ सामना कर सकें, इसके लिए भी हमें अपने जोश पर नियन्त्रण रखने की आदत डालना जरूरी है। ज़रा-ज़रा सी बात में तलवार खींच लेना ताक़त का नहीं, दुर्बलता का चिह्न है। आपस में जूता-पैजार शरीर-बल की नहीं, नामर्दी की तालीम है। अहिंसा का जो तरीका मैं बता रहा हूं, उसमें दुर्बलता का ज़रा भी अन्देशा नहीं। . . .

हमारा भ्रम

जो लोग यह मान रहे हैं कि अहिंसा की शिक्षा से हम प्रमादी और अकर्मण्य बन रहे हैं वे यदि क्षण भर के लिए भी सोचकर देखेंगे तो उन्हें मालूम होगा कि हम सच्चे अर्थों में कभी अहिंसा-परायण रहे ही नहीं। हां, यह बात सच है कि हमने प्रत्यक्ष शारीरिक हिंसा नहीं की परन्तु हमारे दिल में तो हिंसा सुलगती रहती थी ! . . .यदि हम अपनी अन्तरात्मा के प्रति अपने दिल से सच्चे बने रहते तो अब तक हमने अप्रतिम हेतु-बल एवं निश्चय-बल प्राप्त कर लिया होता।

[इसके बाद गांधी जी कहते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य दूर करने की पहिली शर्त अहिंसा है। वह दोनों जातियों के बीच के झगड़े का इलाज करनेवाले किसी भी निश्चय की सफलता के लिए जरूरी है। बिना इसके इस झगड़े को दूर करने के लिए जमीन तैयार करना बड़ा मुश्किल है। हर हालत में इतना ठहराव हो ही जाना चाहिए कि चाहे जितने भी झगड़े हों, कोई पक्ष कानून को अपने हाथ में नहीं लेगा। इसके बाद गांधी जी उन कारणों की विवेचना करते हैं जिनके कारण ये दंगे होते हैं।]

मेरा निजी अनुभव इस विचार को पुष्ट करता है कि मुसलमान सामान्यतः गुण्डे और हिन्दू प्रायः कायर होते हैं। . . .जहां कायर रहते हैं वहां गुण्डे ज़रूर रहेंगे। . . .किन्तु मैं तो मुसलमानों पर, उनके गुण्डापन पर क्रोध करने के बजाय, हिन्दू होने के नाते, हिन्दुओं की नामर्दी का ख्याल कर बड़ी लज्जा का अनुभव करता हूं। जिनके घर लूटे गये वे अपने माल-असबाब की रक्षा करते हुए मर क्यों न मिटे? जिन बहिनों की बेइज्ज़ती हुई उनके नाते-रिश्तेदार उस समय कहां चले गये थे? क्या वे बिल्कुल उत्तरदायी नहीं?

मेरे अहिंसा-धर्म में संकट के समय स्वजनों को मुसीबत में छोड़कर भाग खड़े होने के लिए स्थान नहीं है। मारना या नामर्दी के साथ भाग खड़े होना, इनमें से यदि मुझे किसी बात को पसन्द करना पड़े तो मेरा सिद्धान्त कहता है कि मारने का, हिंसा का रास्ता स्वीकार करो, क्योंकि यदि मैं अन्धे को प्रकृति का वैभव देखना सिखा सकूं तो नामर्द को अहिंसा-धर्म सिखा सकूं। अहिंसा वीरता की सीमा है। और मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है कि हिंसा के मार्ग से शिक्षण पाने वाले लोगों के सामने अहिंसा की श्रेष्ठता सिद्ध करने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। पहिले जब मैं स्वयं डरपोक था, मैं भी हिंसा के भाव रखता था किन्तु ज्यों-ज्यों मेरा डरपोकपन दूर होने लगा त्यों-त्यों मैं अहिंसा का मूल्य समझने लगा। जो हिन्दू अपने कर्त्तव्य का स्थान छोड़कर खतरे के समय भाग खड़े हुए, वे इसलिए नहीं भागे कि वे अहिंसा-परायण थे या वे मारना नहीं चाहते थे बल्कि इसलिए कि वे मरना—नहीं, अपने प्राणों को किसी प्रकार का कष्ट देना नहीं चाहते थे। जब खरगोश शिकारी कुत्ते से डरकर भागता है तब वह अहिंसा के ख्याल से नहीं भागता। बेचारा उसकी शक्ल देखकर ही घबड़ा जाता है और जान लेकर भाग खड़ा होता है। जो हिन्दू अपनी जान लेकर भाग गये वे यदि हंसते हुए अपनी छाती खोलकर अपनी जगह पर खड़े रहे होते और वहीं मर मिटते तो वे सच्चे अहिंसापरायण कहे जाते, उनका यश और गौरव छा जाता, उनका धर्म चमक उठता, और उनपर हमला करने-वाले मुसलमान उनके मित्र बन जाते। यदि वे अपने स्थान पर खड़े रहकर दो दो हाथ ही कर लेते तो भी बेहतर था. . .।

—यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी० १।६।'२४]

- **मुझे ऐसा लगता है कि हिंसा की एक प्रबल लहर उठती आ रही है।**
- **मेरा धर्म मेरे और मेरे सिरजनहार के बीच की बात है।**
- **अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्मों का अन्तिम ध्येय है।**
- **एक लाख अंग्रेजों की अक्ल ठिकाने लाने के लिए ३० करोड़ लोगों को हाथ उठाने का इरादा करते हुए शर्म से डूब मरना चाहिए।**

- प्रत्येक झगड़े-लड़ाई के बाद हर पक्ष पहिले से अधिक दुर्बल होता है।
- ज़रा-ज़रा सी बात में तलवार खींच लेना ताक़त का नहीं, दुर्बलता का चिह्न है।
- मुसलमान सामान्यतः गुण्डे और हिन्दू सामान्यतः कायर होते हैं।
- अहिंसा वीरता की सीमा है।

१०. अहिंसा की प्रतिज्ञा

अहिंसा की प्रतिज्ञा करके हिंसाभाव को धारण किये रहने की अपेक्षा अहिंसा की प्रतिज्ञा ही न करना क्या अच्छा नहीं है?

--५।११।'२४ को कलकत्ता की सभा में प्रश्नोत्तर रूप में। न० जी०। हि० न० जी० १६।११।'२४]

११. मारना कब ठीक है?

[गांधी जी ने अहिंसा की व्याख्या करते हुए सदा यही कहा है कि वह वीर का धर्म है, कायर का नहीं। कायरता से तो हिंसात्मक प्रतिकार भी अच्छा है। यही बात उन्होंने उन भगोड़े हिन्दुओं से भी कही जो अपनी मां-बहिनों को छोड़ भाग खड़े होते थे। विशेष स्थिति में कायर की भाँति मैदान छोड़कर भाग जाने की अपेक्षा मुसलमानों के प्रति हिंसा करने की उन्होंने सलाह दी थी। इस पर असहयोग काल में दिल्ली के एक नेता लाला शंकरलाल ने आपत्ति उठाई थी और गांधी जी ने उसका समाधान किया था। शंकरलाल जी की आपत्ति और गांधी जी का उत्तर दोनों महत्वपूर्ण हैं इसलिए यहां दिये जा रहे हैं।--संपा०]

शंकरलाल जी की आपत्ति

दिल्ली के लाला शंकरलाल लिखते हैं—'ऐसा छपा है कि आपने हिन्दुओं को यह सलाह दी है कि कुछ विशिष्ट अवसरों पर वे मुसलमानों को मार सकते हैं--जैसे जब वे गोवध कर रहे हों। मैंने इस रिपोर्ट को पढ़ा नहीं है किन्तु चूंकि यह मामला बहुत महत्वपूर्ण है इसलिए इसके बारे में बिल्कुल निश्चित बात नहीं कही जा सकती। मेरा यह मत है कि सारी दुनिया या मुसलमानों से झगड़ा मोल लेकर गाय की रक्षा करना हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। यदि हिन्दू इस प्रकार की कोई कार्रवाई करेंगे तो वे जब्रन दूसरे से अपना मत मनवाने के अपराधी होंगे।

उनका कर्त्तव्य केवल इतना ही है कि वे गाय का अच्छी तरह प्रेम के साथ लालन-पालन करें। पर मुझे यहां चलते-चलते यह भी कह देना चाहिए कि हिन्दू इस कर्त्तव्य का पालन करने में बड़ी ग़फलत करते हैं। उनके पास सारी दुनिया को गोरक्षा के पक्ष में कर लेने का केवल एक ही उपाय है—स्वयं अपने को सब प्रकार से गोरक्षा का पदार्थपाठ पढ़ावें। किन्तु हां, दुनिया का हर व्यक्ति, और इसलिए हर हिन्दू इस बात के लिए बाध्य है कि अपनी जान देकर भी अपनी मां, बहिन, बीबी और लड़की, क्या जिन जिनकी रक्षा का भार विशेष रूप से उस पर है, उसकी रक्षा करे।"

गांधी जी का उत्तर

मेरा धर्म मुझे शिक्षा देता है कि औरों की रक्षा के लिए अपनी जान दे दो, दूसरे को मारने के लिए हाथ तक न उठाओ। परन्तु मेरा धर्म मुझे यह कहने की छुट्टी देता है कि यदि ऐसा मौका आ जाय कि एक ओर अपने ज़िम्मे के लोगों या काम को छोड़कर भाग जाने अथवा हमला करनेवाले को मारने में से किसी एक बात को पसन्द करना हो तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह मारते हुए वहीं मर जाय, पर अपना स्थान छोड़कर हर्गिज़ न भागे। मुझे ऐसे हट्टे-कट्टे पचहत्ते लोगों से मिलने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है जो सीधे-सरल भाव से आकर मुझसे कहते हैं और जिसे मैंने बड़ी शर्म के साथ सुना है कि बदमाश मुसलमानों को हिन्दू अबलाओं पर बलात्कार करते हुए हमने अपनी आँखों देखा है। जिस समाज में जवांमर्द लोग रहते हों वहां बलात्कार की आँखों-देखी गवाहियां देना प्रायः असम्भव होना चाहिए। ऐसे जुर्म की खबर देने के लिए एक भी व्यक्ति जीवित न रहना चाहिए। एक भोलाभाला पुजारी, जो अहिंसा का अर्थ नहीं जानता था, मुझसे खुशी-खुशी आकर कहता है—"साहब, जब हुल्लड़बाजों की भीड़ मन्दिर में मूर्ति तोड़ने को घुसी तो मैं बड़ी चालाकी के साथ छिप रहा।" मेरा मत है कि ऐसे लोग पुजारी होने के तनिक भी योग्य नहीं हैं। उसे तो वहीं मर जाना चाहिए था। तब अपने रक्त से उसने मूर्ति को पवित्र कर दिया होता। और अगर उसे यह हिम्मत न थी कि अपनी जगह पर बिना हाथ उठाये और मुँह से यह प्रार्थना करते हुए कि 'ईश्वर! इस खूनी पर रहम कर' मर मिटे तो उस हालत में उन मूर्ति तोड़नेवालों का संहार करना भी उसके लिए ठीक था। परन्तु अपने इस नश्वर शरीर को बचाने के लिए छिप रहना मनुष्योचित न था। सच बात यह है कि कायरता स्वयं ही एक सूक्ष्म और इसीलिए भीषण प्रकार की हिंसा है और शारीरिक हिंसा की अपेक्षा उसे निर्मूल करना बहुत ही कठिन है। कायर मनुष्य हर्गिज़ अपनी जान

को जोखिम में नहीं डालता किन्तु जो व्यक्ति दूसरे को मारता है वह कभी-कभी तो उसे जोखिम में डालता है। और एक अहिंसा-परायण मनुष्य की जान तो सदा उस व्यक्ति के हवाले रहती है जो उसे लेना चाहता है। क्योंकि वह जानता है कि इस शरीर के अन्दर बसनेवाली आत्मा का नाश कभी नहीं होता और यह हाड़-मांस का पिंजड़ा क्षणभंगुर है। मनुष्य जितना ही अधिक अपनी जान देता है उतना ही अधिक वह उसे बचा लेता है। इसलिए अहिंसा के लिए, युद्ध के सैनिकों से बढ़कर पराक्रम प्रकट करने की आवश्यकता होती है। गीता कहती है— सिपाही वह है जो खतरे में पीठ दिखाना नहीं जानता।

——यं० इं०। हि० न० जी०,८।१।'५२]

- **जिस समाज में जवांमर्द लोग रहते हों वहां बलात्कार की आँखों-देखी गवाहियां देना प्रायः असम्भव होना चाहिए।**
- **कायरता स्वयं ही एक सूक्ष्म, इसीलिए, भीषण प्रकार की हिंसा है।**
- **अहिंसा के लिए युद्ध के सैनिकों से बढ़कर पराक्रम प्रकट करने की आवश्यकता होती है।**

१२. क्या अहिंसा की भी कोई सीमा है ?

एक सज्जन ने, अपना पूरा नाम-पता देकर एक लम्बा पत्र भेजा है। उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है:—

"आप शायद जानते होंगे कि इस समय मद्रास में कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के साथ क्या हो रहा है। गत दो दिनों में तो जस्टिस पार्टी वालों ने उनके साथ दुर्जनता की हद करदी है। कांग्रेस उम्मीदवार...के लिए श्रीयुक्त...के साथ श्रीयुक्त...मतदाताओं से पैरवी कर रहे थे। जस्टिस पार्टी का एक दल उनके पीछे लगा फिरता था। जब ये लोग जस्टिस पार्टी के उम्मीदवार के घर के पास पहुँचे तब जस्टिस पार्टीवालों ने कांग्रेस कार्यकर्ताओं को अचानक घेर लिया और...के तथा...के मुंह पर थूक दिया। आप स्वयं इस बात को जानते हैं कि मुंह पर थूकना कैसा भयंकर अपमान है। क्या साम्प्रदायिकता ने सार्वजनिक जीवन और कार्य को इतना नीचे गिरा दिया है ? आप के पास यह बात लिखने का मतलब यही है कि आप अपने अहिंसा-तत्व का स्पष्टीकरण इस सम्बन्ध में करें कि ऐसे गम्भीर अपमान की स्थिति में कांग्रेसवादियों का क्या कर्त्तव्य है। श्रीयुत...पर मार भी पड़ी है। हम यह बात मानते हैं कि जहां तक सरकार से सम्बन्ध है, अपने कामों में हमारे लिए अहिंसा का पालन समयानुकूल है। परन्तु क्या हम अपने उन भ्रान्त

और निष्ठुर भाइयों से भी उसी अहिंसा का व्यवहार करें जो शान्त कांग्रेस कार्य-कर्त्ताओं को भी मारना-पीटना, उन पर थूकना और मैला फेंकना शुरू करते हैं? मैं आपको यह बतला दूं कि कांग्रेस के प्रेमी बहुत हैं और ये भाड़े के गुण्डे उंगलियों पर गिन लिये जा सकते हैं और यदि हम लोग जौर-जब्र से काम लें तो बात की बात में यह गुण्डाशाही बिल्कुल बन्द कर दे सकते हैं। परन्तु हम लोग एक ऐसी संस्था के सदस्य हैं जिसका मूल सिद्धान्त है अहिंसा। किन्तु उनका यह चिढ़ाना दिन-दिन बढ़ता ही जाता है और कांग्रेसवालों के लिए शायद किसी दिन अपने नवजवानों को हिंसा के मार्ग से रोकना असम्भव हो जायगा। इसलिए मैं आपसे पूछता हूं कि व्यक्तिगत रूप से अत्याचार से अपना बचाव करना अहिंसातत्व के विरुद्ध है? किन शर्तों पर यह सम्भव है? जस्टिसपार्टी की गुण्डाशाही से हमारी अहिंसकता की कड़ी परख हो सकती है। इसलिए, इस नाजुक मौके पर, आपकी सलाह से हम मद्रासवालों को बड़ा लाभ होगा। . ."

आदमियों एवं स्थानों के नाम मैंने जान-बूझकर हटा दिये हैं क्योंकि उनसे मुझे यहां कोई मतलब नहीं। प्रसंगोचित अहिंसा का ज़माना बहुत दिन हुए बीत गया। जो मन में अहिंसक नहीं रह सकते हैं उन्हें पत्रलेखक की बतलाई हुई स्थिति में भी अहिंसक बने रखने के लिए कोई बाध्य नहीं करता। अहिंसा कांग्रेस का मन्तव्य है सही, परन्तु आज अहिंसक बने रहने के लिए किसी को कांग्रेस के मन्तव्य की पर्वा नहीं है। प्रत्येक कांग्रेसवादी जो अहिंसक है, वह इसलिए अहिंसक है कि दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता। इसलिए मेरी ज़ोरदार सलाह है कि किसी कांग्रेसवादी को मेरे पास या किसी दूसरे कांग्रेसवादी के पास अहिंसा के प्रश्न पर सलाह लेने जाने की ज़रूरत नहीं है। सब किसी को अपनी ही ज़िम्मेदारी पर काम करना होगा और अपनी बुद्धि एवं विश्वास के अनुसार कांग्रेस के मन्तव्य का अर्थ लगाना होगा। मैंने प्राय: देखा है कि उन्हीं निर्बल मनुष्यों ने, जो अपनी कायरता के कारण, अपनी या अपने आश्रितों की इज्ज़त की रक्षा नहीं कर सके, कांग्रेस के मन्तव्य की या मेरी सलाह की आड़ ली है। मुझे बेतिया[1] के निकट की एक घटना याद आ रही है। उस समय असहयोग (आन्दोलन) ज़ोर पर था। कुछ गाँव वाले लूटे गये थे। वे अपनी स्त्रियों और बच्चों तथा घर का सामान लुटेरों के हाथ में छोड़कर भाग गये। अपना बोझ छोड़कर इस तरह भाग जाने की कायरता के लिए जब मैंने उनकी भर्त्सना की तो उन्होंने निर्लज्जतापूर्वक अहिंसा की दुहाई दी। मैंने सार्वजनिक रूप से उनके इस आचरण की निन्दा की और कहा कि मेरी अहिंसा के अनुसार

१. चम्पारन (बिहार) का एक कस्बा।

उनकी हिंसा भी उचित हैं जो अहिंसा की वृत्ति न रख सकते हों और जिनकी रक्षा में स्त्रियां और बच्चे हों। अहिंसा कायरता को छिपाने की आड़ नहीं है, बल्कि वीरों का सबसे बड़ा गुण है। अहिंसा के पालन में, तलवार चलाने से कहीं अधिक वीरता की आवश्यकता हैं। कायरता और अहिंसा का जरा भी मेल नहीं है। तलवार को छोड़कर अहिंसा ग्रहण करना सम्भव हैं। कभी-कभी तो सहज भी है। इसलिए अहिंसा के अन्दर यह बात पहिले से ही मान ली जाती है कि उसे माननेवाले में चोट करने की ताकत भी होगी ही। यह बदला लेने की प्रवृत्ति पर जान-बूझकर लगाया हुआ लगाम है। परन्तु निष्क्रिय होकर, अबलाओं की भाँति असहाय बनकर आत्म-समर्पण करने से तो बदला लेना ही कहीं अच्छा है। क्षमा उससे भी बड़ी चीज है। बदला लेना भी दुर्बलता ही हैं। बदला लेने की इच्छा इस भय से उत्पन्न होती है कि शायद उस प्राणी के द्वारा कोई हानि—वास्तविक या काल्पनिक—होगी। जब कुत्ता डरता हैं तभी भूंकता हैं और काटता हैं। उस आदमी को, जिसे संसार में किसी से भय नहीं हैं, उस आदमी पर क्रोध करना भी एक पतन मालूम होगा जो उसे हानि पहुँचाने की विफल चेष्टा कर रहा हो। छोटे बच्चे सूर्य पर धूल फेंकते हैं परन्तु वह तो उनसे बदला नहीं लेता। इससे उनकी अपनी ही हानि होती है।

मुझे पता नहीं कि जस्टिसपार्टी वालों के दुष्कृत्यों का जो वर्णन पत्र-लेखक ने किया है, ठीक ही है। शायद इस फरियाद का एक और भी रूप होगा किन्तु सभी बातें सच्ची मान लेने पर, मैं तो उन लोगों को बधाई ही दूंगा जिनके ऊपर थूका गया है, मैला फेंका गया है या मार पड़ी है। यदि अपमान सहकर मन में भी बदला लेने के भाव न लाने का उनमें साहस था तो इससे उनको कोई हानि नहीं पहुंची है। परन्तु यह उनकी भूल कही जायगी, यदि उन्होंने क्षुब्ध होते हुए भी केवल हवा का रुख देखकर ही बदला नहीं लिया। स्वाभिमान का भाव सभी प्रसंगों को भूल जाता है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि ये कांग्रेसवाले, जो उन गुण्डों से गिनती में इतने अधिक थे, उन्हें दण्ड ही क्या दे सकते थे? क्या वे भी मैले का जवाब मैले से, थूक का थूक से और गाली का गाली से देते? या इस बहुसंख्यक दल के स्वाभिमान की रक्षा उन थोड़े से गुण्डों की उपेक्षा करने में होती? जिस समय असहयोग की तूती बोल रही थी, उस समय की बात मैं जानता हूं कि जो गुण्डे सभाओं में गड़बड़ करना चाहते थे उनके साथ क्या व्यवहार होता था? उन्हें स्वयंसेवक पकड़कर बैठाये रहते किन्तु किसी प्रकार की चोट नहीं पहुँचाते थे और यदि वे शोर करते तो उनके गुल-गपाड़े की उपेक्षा ही की जाती थी। मैं जानता हूं कि उस युग में भी बहुत बार अहिंसा का नियम तोड़ा जाता था और जो

लोग सभाओं में विघ्न डालते थे या विरोध में कुछ बोलते थे, उन्हें प्रबल बहुसंख्या शोर करके बैठा देती थी या कभी-कभी तो उन्हें बलात् बैठा दिया जाता था। इसमें उस बहुसंख्या का और उस आन्दोलन का अपमान ही है। वे इस प्रकार बिना सोचे हुए, उस आन्दोलन को धोखा देते और अर्थ का अनर्थ करते थे। इसलिए मैं, इस कांग्रेसवादी पत्रलेखक से तथा उन कांग्रेसवादियों से, जिनके वह प्रतिनिधि हैं, कहना चाहता हूं कि यदि जस्टिस पार्टी या किसी और पार्टी को अपनी ओर कर लेना उन्हें मंजूर हो तो उनके साथ नम्रता का ही व्यवहार करना होगा—भले ही वे उद्दण्डता प्रदर्शित करें। यद्रि सब प्रकार के विरोधियों को दबाना ही इष्ट है तो फिर दोनों ओर से डायरशाही का व्यवहार ही उचित दवा है। यह दूसरा सवाल है कि उससे हम स्वराज्य के निकट पहुँच सकेंगे या नहीं।

जहां विश्वास ही न हो वहां मेरी सलाह बेकार है। इसलिए सब कांग्रेस-वादियों को सब तर्क-वितर्क करने के बाद एक निश्चय कर लेना चाहिए और उसी के अनुसार काम करना चाहिए। इसका क्या नतीजा होगा, इसकी कुछ भी पर्वा न करनी चाहिए। इसमें भूल होने की सम्भावना है, फिर भी उनका आचरण उचित कहा जायगा। अज्ञान-वश की हुई हजारों भूलें, उस बिल्कुल सही और शुद्ध काम से अच्छी हैं जिसके पीछे विश्वास का आधार न हो। वह सफेदपोश की की हुई चोरी होगी। सब से बड़ी बात तो यह है कि यदि हमें देश के साथ सच्चे बनकर रहना और उसे उसके अभीष्ट स्थान पर पहुँचाना ही इष्ट है तो हमें अपने आपके साथ भी सत्य का ही व्यवहार करना होगा। मैं नहीं कर सकता—ऐसे वाक्य का व्यवहार अहिंसा के विषय में नहीं होना चाहिए। यह कोई पोशाक नहीं है कि जब चाही पहिन ली और जब चाही उतार दी। इसका स्थान हमारे हृदय में है और हमें अपने जीवन के साथ इसका अटूट सम्बन्ध जोड़ना होगा।

—यं० इं०। हि० न० जी०, १२।८।'२६]

- **प्रत्येक कांग्रेसवादी जो अहिंसक है केवल इसलिए अहिंसक है कि दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता।**
- **कायरता को छिपाने की आड़ अहिंसा नहीं है, बल्कि वीरों का सबसे बड़ा गुण है।**
- **कायरता और अहिंसा का जरा भी मेल नहीं है।**

१३. पाशविक शक्ति और अहिंसा

यदि किसी को शक्ति की जंजीरें तोड़नी हैं तो यह उन्हीं तरीकों से हो सकेगा जो आज के मात्र पशुबल के उपासकों से बिलकुल भिन्न हों। वर्तमान पशुबल के पूजन में भी एक तत्व है और उसका समर्थन करने वाला एक इतिहास भी है। इसे भुलाया नहीं जा सकता। यदि लोगों को अहिंसा में अटल विश्वास हो तो उसके समर्थकों को जो अत्यन्त अल्पसंख्या में हैं, इससे भयभीत होने का कोई स्थान नहीं। किसी कारणवश इस विश्वास की न्यूनता अनुभव होती है कि पशुबल के अभाव में भी समाज का संगठन स्थिर रखा जा सकेगा। यदि केवल एक व्यक्ति समस्त संसार का निरोध कर सकता है तो दो या इससे अधिक व्यक्ति मिलकर क्यों न करें? मैं जानता हूं कि इसका क्या उत्तर दिया गया है। हम लोगों में जो क्रान्ति धीरे-धीरे हो रही है उसकी शक्तियों का पता केवल समय ही बतायेगा।
—य० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी० २१।१०।'२६]

१४. अहिंसा वैर मिटाती है

आप भला तो जग भला। अहिंसा के नजदीक वैर टूट जाता है, यह पतञ्जलि भगवान ने लिखा है। अगर हम खुद गुलाम हों तो हम सारे संसार को गुलाम मानेंगे। मतलब यह है कि निर्दोष मनुष्य को कौन धोखा देने जाता है? उसके साथ कोई दया करेगा तो वह वापस उसी को लगेगा। अगर हम प्रतिकार न करें तो उसकी दुष्टता ही उसे गिरा देती है। उसे ठोकर लगती है और वह सीधा हो जाता है।

...जिस आदमी ने दण्डनीति ग्रहण की है, शस्त्र-नीति ग्रहण की है उसे छल-कपट करना ही पड़ता है। इस नीति के साथ छल-कपट लगे ही हुए हैं।
—साबरमती आश्रम की बहिनों की प्रार्थना सभा में दिये गये प्रवचन से। १९२६]

१५. अहिंसक कर्म की स्वाधीनता

सत्य का पालन करने के लिए, अहिंसा का पालन करने के लिए अगर सारी दुनिया की मदद चाहिए तब तो मनुष्य पराधीन बन जाय। किन्तु ईश्वर ने इतना सुन्दर नियम बनाया है कि सारा संसार विमुख हो जाय तो भी मनुष्य सत्य का, अहिंसा का पालन कर सकता है। अगर हम झगड़ा न करना चाहें तो दूसरा

आदमी झगड़ा कर ही नहीं सकता। अन्त में वह थक कर चुप हो जायगा। गुस्से के जवाब में गुस्सा करने से वह बढ़ता है; जलते घी में घी डालने-जैसा होता है।
--साबरमती आश्रम की बहिनों की प्रार्थना सभा में दिये गये प्रवचन से। १९२६]

१६. अहिंसा की कुछ पहेलियां

एक सज्जन पूछते हैं:--

"मैं रेल गाड़ी के किसी डब्बे में चढ़ने जाता हूं। भीतर एक आदमी है जो जगह रहते हुए भी दरवाजा बन्द किये हुए है और मुझे चढ़ने नहीं देता। इस स्थिति में मैं क्या करूं?"

तीन रास्ते हैं १. स्टेशन अफसर से फरियाद करना, २. शरीर में बल और हिम्मत हो तो बलपूर्वक दरवाजा खोलकर अन्दर दाखिल होना, और भीतर बैठा हुआ मुसाफिर लड़ाई करे तो उसके साथ लड़ना, ३ यदि हिम्मत हो और आत्मबल हो तो उस अन्यायी को सगा भाई मानकर विनय करना; विनय न माने तो अपना अधिकार छोड़कर दूसरी जगह ढूंढ़ना और वह न मिले तो ट्रेन छोड़ देना। विश्वास रखना चाहिए कि इसमें अपना और उस अन्यायी दोनों का लाभ है। यह विचार करने का हमारा अधिकार नहीं है कि वह कब समझेगा।

तीनों रास्ते ग्राह्य हैं। पर तीसरा केवल धार्मिक है। पहिले दो व्यावहारिक हैं, मगर अधर्म नहीं हैं।

चौथा रास्ता भी सोच सकता हूं। आप कायर होकर, लड़ने में मार खाने के डर से, दूसरी जगह ढूंढ़ सकते हैं। यह अधर्म है, इससे इसे ग्राह्य रास्तों में स्थान नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह रहा:--

"मैं रेलगाड़ी में बैठा हूं। किसी स्टेशन पर पानी पीने नीचे उतरा और इसी बीच कोई आदमी मेरी जगह पर बैठ गया। अब वह जगह छोड़ने को राजी नहीं होता। तब भला मैं क्या करूं?"

मुझे लगता है कि पहिले सवाल के जवाब में इसका भी जवाब आ जाता है।

ऐसे प्रसंग तो रेलगाड़ी में बराबर आया ही करते हैं। मेरे ऊपर ऐसी आपत्तियां अनेक बार आई हैं। हर जगह मैंने तीसरा ही रास्ता लिया है, और मुझे उससे सन्तोष हुआ है। कितनी बार तो उससे अन्यायी का हृदय पिघलने की मुझे याद है। कोई पाठक यह न समझे कि मैं था महात्मा, इससे लोग मुझे पहचानकर

सीधे हो जाते हैं। मेरे अनेक अनुभव जो कुछ मुझे याद हैं, महात्मा बनने के पहले के ही हैं।

परन्तु तीसरे रास्ते में एक शर्त तो है ही। यह रास्ता लेने वाले में धर्म-जागृति होनी चाहिए, और इसमें अनुकरण नहीं होना चाहिए। जो उस अन्यायी के ऊपर क्रोध आये तो समझना चाहिए कि तीसरा रास्ता पचा नहीं है। धर्म तो अन्तर की बात है। दूसरे की नकल करते जाने में धर्म-पालन के बजाय पतन ही अधिक सम्भव है। गुजरात की अहिंसा को कायरता और नामर्दी का रूप पकड़े हुए मैंने अनेक बार देखा है। इस भीरु तीसरे रास्ते की चर्चा करते हुए मुझे संकोच होता है और पहिले दो रास्तों की चर्चा की जरूरत नहीं जान पड़ती। यह बतलाने की भी आवश्यकता नहीं है कि ये रास्ते सपाट और विशाल हैं। तीसरा विकट, सँकरा और इतना ऊंचा है कि चढ़ने में आदमी हाँफने लगे, इसलिए उसकी चर्चा जितनी की जाय वही कम है। विशेष रूप से गुजरात में और साधारणत: सारे भारत में जहाँ हम चौथा अधर्म का ही रास्ता लेते देखे जाते हैं, पहिले दोनों रास्ते ही बताने को बच रहते हैं। दो में से एक लेने वाले को किसी दिन तीसरा सिखलाया भी जा सकता है। मगर इसमें मुझे शंका है कि चौथे रास्ते चलनेवाला तीसरा रास्ता कभी सीख सकेगा।

—न० जी०। हि० न० जी० १५।९।'२७]

● **धर्म तो अन्तर की बात है। दूसरे की नकल करते जाने में धर्म-पालन के बजाय पतन ही अधिक सम्भव है।**

१७. नैल का पुतला और अहिंसा

एक गुजराती मित्र अपने मित्र को, जो मेरे भी मित्र हैं, लिखे हुए अपने एक पत्र में इस प्रकार दलील करते हैं,—'कभी-कभी बापू की अहिंसा को मैं समझ नहीं पाता हूं। जैसा कि उन्होंने पहले लारेंस के पुतले को हटाने के लिए किया था आज वे नैल के पुतले को हटा देने की हलचल को प्रोत्साहन दे रहे हैं। मेरी दृष्टि में तो यह हिंसा-सी मालूम देती है, क्योंकि इस हलचल से अंग्रेजों के प्रति तिरस्कार उत्पन्न होगा। और बापू उसी से दूर रहना चाहते हैं। और जहां मुझे हिंसा नहीं दिखाई देती उन्हें हिंसा नजर आती है, जैसा कि हथियारबन्दी के कानून को दूर करने के लिए हथियार उठाने में उन्हें मालूम हुआ था। मेरे ख्याल से तो पहले मामले में अहिंसामय दिखाई पड़ने वाले साधनों से हिंसा की मनोवृत्ति पैदा होने का बहुत बड़ा खतरा है और दूसरे मामले में एक उत्तम उद्देश्य को सिद्ध करने में थोड़ी-सी

हिंसा हो जाने का भय है। मेरा ख्याल था कि बापू ऐसे कामों की हिम्मत जरूर ही करेंगे,

उनके तर्क के प्रति न्याय करने के लिए और पाठक उसे आसानी से समझ सकें इसलिए मैंने मूल-गुजराती में लिखे उनके तर्क को बढ़ाकर लिखा है।

अहिंसा तेज तत्व की बनी है। इसमें कोई शक नहीं कि नैल का पुतला हटाने की हलचल, और ऐसी ही दूसरी हलचलों से अंग्रेजों के प्रति तिरस्कार बढ़ने का भय है। जो सुधारक अहिंसा का प्रचार करना चाहता है उसे इस बात को ध्यान में रखना चाहिए और उससे बचते रहना चाहिए। परन्तु इसके लिए वह तिरस्कार के कारणों को अन्दर दबाये रखने की हिम्मत नहीं कर सकता।

प्रेम के रूप में अहिंसा जगत् में सर्वाधिक कार्यकारी शक्ति है। गुजरात के कवि शामलदास कहते हैं कि 'भलाई के बदले भलाई करना कोई बड़ी बात नहीं; बहुतेरे ऐसा करते हैं। बुराई के बदले भलाई करना ही बड़ी बात है।' यह स्पष्ट है कि यहां अहिंसा के गुण ही गाये गये हैं। संसार में जहां देखो, तिरस्कार पैदा होने के कारण दिखाई देंगे। प्राचीन ऋषियों ने देखा कि इस स्थिति का एक ही उपाय हो सकता है और वह है तिरस्कार को प्रेम के जरिये नष्ट कर देना। इसलिए जहां तिरस्कार का कारण होता है, वहीं यथार्थत: प्रेम-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। सच्ची अहिंसा तिरस्कार के कारणों की तरफ से आँख नहीं मूँद सकती परन्तु उनके अस्तित्व का ज्ञान होने पर उनको बाहर लाकर मनुष्य पर अपना प्रभाव डालती है। अगर यह बात न होती तो अहिंसात्मक साधनों के द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने की हलचल असम्भव हो जाती, क्योंकि स्वराज्यवादी को कदम-कदम पर विदेशी सरकार और उनके कारिन्दों के दोषों को दिखाना पड़ता है। अहिंसा के नियम (बुराई के बदले भलाई करना, अपने शत्रु से भी प्रेम करना) में शत्रु के दोषों का ज्ञान भी जरूरी होता है। इसलिए शास्त्रों में यह कहा गया है—'क्षमा वीरस्य भूषणम्।'

अब शायद यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि अहिंसा में विश्वास रखने वाले को नैल के पुतले को हटाने की या वैसी ही दूसरी हलचल का क्यों समर्थन करना चाहिए। परन्तु अहिंसा को मानने वाले के लिए हथियार उठाने की इजाजत नहीं हो सकती। और मेरी राय में शस्त्रबन्दी के कानून को सर्वथा उठा देने का उद्देश्य कोई उद्देश्य भी न होगा। इसलिए शस्त्रबन्दी के कानून को मिटाने के लिए हथियार उठाना अहिंसा की योजना के अन्तर्गत नहीं हो सकता। नैल के पुतले के सम्बन्ध में इस हलचल की कुछ बारीक परीक्षा करना अब आवश्यक मालूम होता है। पुतले के आगे के भाग पर यह खुदा हुआ है:—

जेम्स ज्यार्ज स्मिथ नैल
महारानी के ए० डी० सी०
मद्रास प-यूजीलर्स के लेफटेनेंट कर्नल
भारत में ब्रिगेडियर जनरल
बहादुर, निश्चयी, स्वावलम्बी सिपाही
बंगाल के बलवे की लहर को
शान्त करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ

लखनऊ को बचाने में जिसकी ४७ वर्ष की उम्र में २५ सितम्बर १८५७ को मृत्यु हुई।

पीछे की तरफ यह खुदा हुआ है:—

१८६० में सार्वजनिक चन्दे से खड़ा किया गया।

मैं यह कह सकता हूं कि यह बात असत्य है। यह झूठा इतिहास है। यह लिखते समय मेरे पास काये और मैलिसन की पुस्तकें नहीं हैं परन्तु एक मित्र ने थोमसन की 'दि अदर साइड आफ दी मेडल' (पदक की दूसरी ओर) ला देने की कृपा की है। उससे मालूम होता है कि शाला और कालेजों में हमें कैसा ग़लत इतिहास पढ़ाया जाता है। उस किताब से नीचे का अवतरण लिया गया है:—

"कानपुर की रिहाई के लिए जब वे जल्दी आगे बढ़े जा रहे थे जनरल नैल ने मेजर रैनोड को ये सूचनाएँ दी थीं:—

कुछ दोषी गांव नाश करने के लिए चुने गये हैं और उनमें रहने वाले तमाम लोग कत्ल किये जायं।

रेजिमेण्टों के तमाम सिपाही, जो अपनी सफाई न पेश कर सकते हों फांसी पर लटका दिये जायं। फतेहपुर का शहर जिसने बलवा किया था और पठानों का वास उसके बाशिन्दों के साथ नष्ट कर दिया जाय; क्रान्तिकारियों के नेताओं को खासकर फतेहपुर के लोगों को, फांसी पर लटका दिया जाय। यदि डिप्टी-कलक्टर पकड़ा जाय तो उसे फांसी दे दी जाय और उसका सिर काट कर शहर के एक मुख्य मुसलमान के मकान पर लटका दिया जाय।

काये के मतानुसार:—

और इसमें कोई सन्देह नहीं कि नैल के कार्यों के अलावा जब नैल ने कानपुर की ओर एक मेजर को भेजा था, लोगों को बड़ी बेदर्दी के साथ मार डाला गया। और बाद को नैल ने ऐसे कार्य किये थे जो कत्लेआम से भी बढ़कर थे। जानबूझ कर लोगों को कष्ट देकर मारा गया और वह भी इस तरह के कष्ट देकर कि यहां के बाशिंदों के खिलाफ ऐसा कष्ट देकर मारना कभी सिद्ध नहीं हुआ है।"

सर ज्यार्ज केम्पबेल कहते हैं:—

"नैल उन लोगों में से है जो खून-खराबी के बल पर वीर बनाया गया है और उस समय उसकी मृत्यु के कारण उसके कार्यों की बहुत कुछ आलोचना होती हुई रुक गई। लेकिन अब जब कि वह भूतकाल के इतिहास की बात हो गई है, बहुत ही निष्पक्ष प्रमाणों से जो कुछ मैं जान सका हूं, उसके आधार पर यह कह सकता हूं कि उसमें ऐसी कोई विशेष बात न थी।...मैं नैल को उनके खूनी कामों के लिए और खास कर उस अव्यवस्था में उनके हिस्से के कारण, जिसकी वजह से हमने लुधियाना का रेजीमेंट खोया था कभी माफ नहीं कर सकता हूं। इलाहाबाद में उनके खूनखराबी और अविश्वास के कारण फतेहपुर रेजीमेंट अपने से बदल गया। लुधियाना रेजीमेंट की इसी रेजिमेंट ने अच्छी सेवाएँ की थीं।"

इस वीर की, जिसके मान में सार्वजनिक चन्दे से यह पुतला खड़ा किया गया है, सच्ची पहिचान कराने के लिए, बहुत-कुछ अवतरण दिये जा सकते हैं। ऐसे पुतले कुछ खास बात सूचित करते हैं। ब्रिटिश सरकार जिन तत्वों—भय और असत्य—की पोषक है उनके ये स्पष्ट प्रमाण हैं। ये शब्द सख्त हैं लेकिन उतने ही सच्चे हैं। इसीलिए प्रत्येक भारतीय और अंग्रेज के लिए इस भय और असत्य का अपनी शक्ति भर सामना करना कर्त्तव्य हो जाता है। परन्तु इनका सामना करने की रीति वैसे ही भय और झूठ के द्वारा बदला लेना नहीं है, परन्तु उसके विरुद्ध भय का अहिंसा से और असत्य का सत्य से सामना करना है। यह रास्ता कठिन हो सकता है, परन्तु यदि भारत और संसार जीवित रहना चाहता है तो यही एक रास्ता है। इसलिए जिन युवकों ने यह युद्ध शुरू किया है यदि वे प्रामाणिकता और अहिंसा के साथ उसको जारी रखते हैं तो सहानुभूति के पात्र हैं और यह ठीक ही है कि स्थानिक महासभा समिति ने इस मामले को उत्साह से अपने हाथ में ले लिया है।

—यं० इं०। हि० न० जी० २९।९।'२७]

- **अहिंसा तेज तत्व की बनी है।**
- **प्रेम के रूप में अहिंसा जगत् में सर्वाधिक कार्यकारी शक्ति है।**

१८. अहिंसा और रचनात्मक कार्य

जेल जाने के पहले भी मैंने यही कहा था कि किसी अहिंसावादी के लिए एक ही बात कहना सम्भव है और वह है रचनात्मक कार्य को पूरा कर देना।

—यं० इं०। हि० न० जी०। १०।११।'२७]

१९. अमोघ अस्त्र : अहिंसा

आप देखेंगे कि मैं यह बात कहने से कभी नहीं थकता कि चाहे जो हो जाय लेकिन सत्य और अहिंसा पर दृढ़ रहना चाहिए। मेरी नम्र सम्मति में अगर ये दोनों शर्तें पूरी हो जायं तो आप दुनिया की किसी शक्ति का मुकाबला कर सकते हैं और अन्त में न तो आपका कुछ बिगड़ेगा और न आपके उस नाम के विरोधी का बाल भी बाँका होगा। उस समय हो सकता है कि वह आपके अहिंसक वारों का मतलब न समझ सके, आपके बारे में गलतफहमी फैलाये, लेकिन जबतक आप सत्य और अहिंसा पर डटे खड़े हैं आपको उसकी राय या भावों की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। तब आपके लिए यह ठीक ही होगा और आप अन्य तरीकों की अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से आगे बढ़ सकेंगे। यह रास्ता देखने में लम्बा मालूम पड़ सकता है। लेकिन आप अगर मेरे ३० साल के निरन्तर अनुभव पर विश्वास करें तो मैं कहता हूँ कि यही रास्ता सफलता के लिए सबसे छोटा है। मैंने इससे छोटा रास्ता नहीं सुना है।

—यं० इं०। हिं० न० जी०। ८।१२।'२७]

२०. अहिंसा का अपराध

"क्या आप मानते हैं कि खलों का दमन और सन्तों का रक्षण हर एक आदर्श सरकार और महात्मा जनों का कर्तव्य है? अगर आप इसे स्वीकार करते हैं तो फिर इस युग-युग के पुराने सिद्धान्त से आपके राजनीतिक आदर्शवाद का कहां मेल बैठता है? क्या कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अर्जुन को कृष्ण के उपदेश का सार यही नहीं है?

"क्या अवतारों की भी यही नीति नहीं थी? इसी से तो राजा बलि का राज्य छीना गया, बलि मारा गया, जरासन्ध का नाश हुआ?

"आप साधारण आदमियों से और वह भी बहुतों से यह आशा कैसे रखते हैं कि वे अपने अविवेकी शत्रुओं के वार बिना किसी तरह का बदला लिये सहते जायंगे? इस दृष्टि से क्या हम आपकी भावनामय शिक्षाओं और उपदेशों को व्यावहारिक और मामूली आदमियों के लिये अशक्य गिनने में भूल करते हैं? दक्षिण अफ्रीका में आपकी अस्थायी और थोड़ी-थोड़ी करके मिली हुई सफलता को बहुत बढ़ा दिया गया है और साधारण बुद्धि के हिन्दुस्तानी आँख मूँदकर भेड़ों के जैसे यह भूल करके कि दक्षिणी अफ्रीका का उदाहरण हिन्दुस्तान जैसे विशाल

देश पर, जिसमें बहुत सी भाषाएं और धर्म हैं, लागू नहीं पड़ता, आपके पीछे चल कर मुश्किलों में पड़ गये हैं। बहुत से देशभक्तों का जीवन बर्बाद करने के बाद क्या आपने अब तक यह नहीं समझा है कि एक वर्ष में स्वराज्य की आपकी घोषणा गलत साबित हुई है? क्या आप यह नहीं कबूल करते कि बारडोली में आपके पीछे हटने से गुंटूर वालों के बीच बड़ी घबड़ाहट फैल गई जो आपके कार्यक्रम के अनुसार बड़ी वीरता और मर्दानगी से कर देना बन्द किये हुए थे।

"क्या हम पूछ सकते हैं कि खिलाफत आन्दोलन में आपके पड़ने और उसके फल-स्वरूप थोड़े से धर्मान्ध मुसलमानों के हाथ में महासभा पड़ जाने का क्या अर्थ हुआ है? जिस हिन्दू-मुस्लिम एकता के बारे में आपने इतना लिखा है, हिन्दुओं से इतनी अपील की है, मुसलमानों के संकट की घड़ी के टलते ही क्या वह बालू की भीत-सी गिर नहीं गई है? क्या आप अपनी पवित्र शिक्षाओं से इसकी कभी आशा रखते हैं कि धर्मान्ध और बहादुर मुसलमानों और जाति-रोग के रोगी और भीरु हिन्दुओं में कभी मेल होगा? क्या आपको कभी इसका भान हुआ है कि जब से अहिंसा के सिद्धान्त की बदौलत कांग्रेस में आप मुखिया बने तभी से साम्प्रदायिक झगड़े बराबर ही बढ़ते गये हैं?

"क्या आप इसे कबूल नहीं करेंगे कि आपकी राजनीति चाहे धर्म के नाम पर जितनी ही क्यों न ढाँकी जाय मगर उससे पण्डित मालवीय, देशबन्धु दास, लाला लाजपत राय, श्रीयुत विजयराघवाचार्य, श्री केलकर, डाक्टर मुंजे, और दूसरे अखिल भारतीय नेता आजिज आ गये थे?

"क्या आपने महात्मा तिलक का नेतृत्व, कम से कम शुरू में ही सही, स्वीकार नहीं किया है। तब इसकी क्या वजह है कि आप आज राष्ट्र के हित के विरोधी, गहन सामाजिक और धार्मिक झगड़े उखाड़ रहे हैं? क्या आपको यह नहीं भासता है कि पहिले से ही दासवृत्ति वाले हिन्दुओं में इससे और भी अधिक फूट फैलती है? तब क्या आप हमारे उन शत्रुओं का ही काम अप्रत्यक्ष रूप से नहीं साध रहे हैं जिनकी एकमात्र दलील यह है कि हम अपनी सामाजिक निर्बलताओं के कारण राजनीतिक स्वतन्त्रता के अयोग्य हैं?

"क्या ऊंची जाँति के हिन्दुओं के मन्दिरों में, जिन्हें ऊंची जाति वालों ने केवल अपने ही लिए बनाया था, घुसने के लिए पंचमों को उत्तेजित करके आप ठीक काम करते हैं? आप क्या अपने को त्रिनेत्र रुद्र समझते हैं कि युग-युग से चले आते रीतिरस्म को एकबारगी तोड़ डालें? हाल में हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आपने विधवा-विवाह का समर्थन करना शुरू किया है और अपरिपक्व बुद्धि के नवयुवकों को विधवाओं से विवाह करने की सलाह बेधड़क दी है? क्या आप

यह नहीं मानते कि स्वामी विवेकानन्द और दूसरे लोगों ने विधवा-विवाह का समर्थन न करके चतुराई ही की, क्योंकि, आज कुमारी कन्याओं के विवाहों में होने वाली कठिनाइयों को वे जानते थे? क्या हम पूछ सकते हैं कि इन सब अत्यन्त विवादग्रस्त प्रश्नों को, जो शुद्ध राजनीतिक हैं और जिन पर आशा की जाती है कि हम सब एक मत होंगे स्वराज्य के साथ मिला देने से कहां तक मेल होगा?

"विज्ञान की उन्नति के इस युग में आपका चर्खा लोकप्रिय नहीं हो सकता। क्या आप अपने अनुभवों के आधार पर यह नहीं सोचते कि अगर अप केवल मजदूरों के संगठन के काम में लगे रहें तो अच्छा होगा?

"अहिंसा धर्म में सच्चा विश्वासी होने के कारण क्या आपका यह कर्त्तव्य नहीं है कि आप उन म्युनिसपैलिटियों से मानपत्र स्वीकार न करें जिनके यहां कसाईखाने चलते हैं?"

बरहमपुर में मुझे किसी भाई ने एक लम्बा पत्र भेजा था। ऊपर उसी का सारांश दिया गया है। चूँकि मुझे यह मानने का कारण है कि इस पत्रलेखक ने वे बातें खुलासा कहने का साहस किया है जो दूसरे लोग मन में छिपाये हुए हैं, मुझे जान पड़ता है कि इस इल्जाम का जवाब देना जरूरी है।

इन सवालों का ब्योरेवार जवाब देना जरूरी नहीं है। हममें से बहुत लोग यह बड़ी भारी भूल करते हैं कि वे शास्त्रों का अक्षरशः अर्थ लगाने लगते हैं। वे भूल जाते हैं कि शब्दों के पीछे चलनेवाला मरता है और भावों के पीछे चलनेवाला जी उठता है। महाभारत और पुराण न तो बिल्कुल इतिहास ही हैं और न तो धर्मशास्त्र ही। मुझे लगता है कि मनुष्य के धार्मिक इतिहास को भिन्न-भिन्न रूपों में समझाने के लिए वे विचित्र रूप से लिखे गये हैं; उनमें वर्णित सभी नायक हम लोगों जैसे अंशपूर्ण नश्वर प्राणी हैं। अगर अन्तर है तो असम्पूर्णता की मात्रा में है। हम आँख मूँदकर अनुकरण नहीं कर सकते। महाभारत की सारी शिक्षा का सार इतने में ही दिया हुआ है।—'सत्यम् जयते नानृतं।' यह सत्य है कि सत्य सभी वस्तुओं को अवश्य ही जीत लेता है।

मगर मैं शास्त्रों में लिखी हरेक बात का औचित्य सिद्ध करने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। इन ग्रन्थों को श्रद्धा के साथ पढ़ने पर मुझपर सब मिलाकर जो असर पड़ता है, मैं उसी को मानता हूँ। हर एक आदमी को जो सच्चा होना चाहता है यही करना पड़ेगा। इस तरह मेरा दावा है कि अहिंसा और सत्य में मेरा विश्वास उन्हीं ग्रन्थों के पढ़ने से जगा है, पैदा हुआ है, जिनमें से मेरे भाई ये विरोधी बातें ला रखते हैं। नहीं, यही नहीं, बल्कि मेरा विश्वास आज मेरे जीवन का परम आवश्यक

अंग हो रहा है, और इसलिए इन किताबों के या किन्हीं और किताबों के विना सहारे स्थिर रह सकता है। निश्चय ही, हर एक धार्मिक प्रकृति वाले आदमी के जीवन में वह समय आता ही है जब उसे अपने ही सहारे खड़ा रहना पड़ता है। इसलिए यह भले ही सिद्ध किया जाय कि अवतारों ने फलां काम किया था, फलां काम नहीं किया था, मगर इसका मुझपर कोई असर नहीं पड़ सकता। दिन-दिन बढ़ता और सबल होता हुआ मेरा अनुभव मुझे कहता है कि जहां तक आदमी के लिए सम्भव हो उस हद तक सत्य और अहिंसा का पालन किये बिना, न तो व्यक्तियों को और न जातियों को ही शान्ति मिल सकती है। बदला लेने की नीति को कभी सफलता नहीं मिली है। बदला लेने से, जिसमें अक्सर धोखेबाजी और जोर-जबर्दस्ती भी शामिल होती है, कभी-कभी अस्थायी और दिखाऊ सफलता मिलने के इक्के-दुक्के उदाहरणों से हम घबरा न जायँ। संसार आज इसलिए खड़ा है कि यहां पर घृणा से प्रेम की मात्रा अधिक है, असत्य से सत्य अधिक है। इसकी जाँच कोई भी, जो सोचने की तकलीफ उठावे, कर सकता है। धोखेबाजी और जबरर्दस्ती तो बीमारियां हैं; सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य है। यह बात कि संसार अभी तक नष्ट नहीं हो गया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि संसार में रोग से अधिक स्वास्थ्य है। इसलिए जो इसे समझ लें वे अत्यन्त विरोधी स्थितियों में भी स्वास्थ्य के नियमों का पालन करें।

मेरे उपदेश और शिक्षाएं भावुकतामय या अव्यावहारिक नहीं हैं। मैं वही सिखलाता हूं जो पुराना है और जो कहता हूं वही करने की कोशिश करता हूं और मेरा यह दावा है कि जो मैं करता हूं वह हर आदमी कर सकता है क्योंकि मैं एक बहुत मामूली आदमी हूं; मेरे सामने भी वही प्रलोभन हैं; मुझमें भी वही कमजोरियां हैं जो हममें से निर्बल से निर्बल मनुष्य में हैं।

दक्षिण अफ्रीका में उस समय के लक्ष्य की सफलता के अन्दाज के हिसाब से पूरी सफलता मिली थी। जो बात छोटे समाजों पर लागू है वही बड़े समाजों पर भी। हां, काम उसी तरह मगर ज्यादा पैमाने पर करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पद्धति में इतना अधिक विश्वास है कि मैं यह भविष्य कथन कर सकता हूं कि आनेवाली पीढ़ियां १९२० और १९२१ साल को भारतवर्ष के इतिहास में सबसे चमकदार पृष्ठ समझेंगी और उनमें भी बारडोली का पीछे हटना सबसे महान काम समझा जायगा। बारडोली के निश्चय ने हिन्दुस्तान को इस लायक बनाया है कि वह दुनिया के सामने आँखें सीधी रक्खे, सिर ऊँचा रख सके। कांग्रेस का वर्तमान मन्तव्य रहते हुए, राष्ट्र के लिए यही एक मात्र सच्चा, बहादुरी का और प्रतिष्ठित रास्ता था। स्वराज की लड़ाई कुछ खेल नहीं थी। और

अगर किसी को बिना चाहे तकलीफ उठानी पड़ी तो वह इसलिए पड़ी थी कि वे आग के साथ खेल रहे थे।

खिलाफत आन्दोलन में पड़ने से दोनों जातियां सबल हुईं और वह सामूहिक चेतना उत्पन्न हुई है जिसके और तरह से होने में एक जमाना लग जाता। अगर सच्ची एकता कभी होगी तो मेरी ही शिक्षाओं के मानने से होगी। आज के हिन्दू-मुस्लिम झगड़े, हिन्दुओं के आपस के झगड़े और मुसलमानों के अपने घर के झगड़े सामूहिक चेतना के चिह्न हैं। आज जो चीज़ हम देख रहे हैं वह तो आत्मशुद्धि की प्रक्रिया में मैल का ऊपर निकल आना है। लेखक महोदय चीनी साफ करने के किसी कारखाने में चीनी का साफ किया जाना देख आयें तब वे मेरा मतलब समझ जायंगे। यह मैल सिर्फ फेंक दिये जाने के लिए ही ऊपर सतह तक आ गई है। मुझे इसका कोई पता नहीं है कि पण्डित मदनमोहन मालवीय और लेखक के गिनाये दूसरे नेता मेरी राजनीति से ऊब गये हैं। कुछ के बारे में तो मैं जानता हूं कि उनके साथ बात इसकी उल्टी ही है। मगर वे अगर ऊब भी गये हों तो भी मुझे आशा है कि मेरा विश्वास मेरे उन मित्रों का मतभेद भी सह सकेगा जिनकी सम्मति का मेरे सामने कुछ मूल्य है।

लोकमान्य के बारे में लेखक अपना अज्ञान तब प्रकट करते हैं जब वे उनकी वे नीतियां बतलाते हैं जो लोकमान्य की कभी थीं ही नहीं। मैं जानता हूं कि मेरे और उनके बीच मौलिक अन्तर थे, मगर लेखक जिनकी कल्पना करते हैं वे अन्तर नहीं थे। हमें अपने नेताओं से यह सीखना चाहिए कि उनके कामों की, बेजाने, बेसमझे आँख मूंदकर नकल न करें। हमें उनसे उनकी बहादुरी, उनका महान देशप्रेम और अपने आदर्शों पर दृढ़ रहने की प्रवृत्ति सीखनी चाहिए। हम जब बिना कारण के या यथेष्ट ज्ञान के उनके इक्के-दुक्के कामों की नकल करने लगते हैं, तब बड़ी भारी भूल करते हैं।

मेरा दावा है कि जो समाज-सुधार के काम मैं कर रहा हूं, और जिनमें परमात्मा की कृपा से मेरे कई प्रसिद्ध देशवासी भी मेरा साथ देते हैं, उनके बिना हिन्दू धर्म के नष्ट हो जाने का खतरा है।

लेखक के अविश्वास के होते हुए भी चर्खा बराबर प्रगति करता ही जा रहा है। मजदूरों के हित के सागर में चर्खे का काम मेरा हिस्सा है।

म्यूनिसिपैलिटियों से मानपत्र स्वीकार करते समय मेरा दावा होता है कि उनके कसाईखाने में होती हुई हत्याओं से मैं छू नहीं जाता हूं। इसके उल्टे उन मानपत्रों से मुझे उन्हें अपने सिद्धान्त का उपदेश देने का अवसर मिलता है। और

मुझे यह लिखते हुए खुशी होती है कि वे इससे कभी बुरा नहीं मानतीं और कभी-कभी उसे स्वीकार भी कर लेती हैं।

—यं० इं०। हि० न० जी०। १५।१२।'२७]

- हम आँख मूंदकर अनुकरण नहीं कर सकते।
- हर धार्मिक प्रकृतिवाले आदमी के जीवन में वह समय आता ही है जब उसे अपने ही सहारे खड़ा रहना पड़ता है।
- बदला लेने की नीति को कभी सफलता नहीं मिली है।
- संसार आज इसलिए खड़ा है कि यहाँ पर घृणा से प्रेम की मात्रा अधिक है, असत्य से सत्य अधिक है।
- धोखेबाजी और ज़बर्दस्ती तो बीमारियाँ हैं; सत्य और अहिंसा स्वास्थ्य है।

२१. अहिंसा का मर्म

[बालासोर, उड़ीसा में कार्यकर्ताओं के प्रति]

आपको यह समझ लेना चाहिए कि यद्यपि अहिंसा ही मेरा धर्म है किन्तु मैं हिंसा का भी सिद्धान्त और प्रयोग समझने का दावा करता हूँ।

...बदला लेने की शिक्षा देनी हो तो भी उन्हें केवल ज़बानी यह कह देने से नहीं होगा कि बदला लो। हिंसा के सिद्धान्त और प्रयोग के किसी अभ्यासी से आप पूछिए कि वह उन्हें बदला लेना कैसे सिखायेगा। यदि उन्हें यह कहा जाय कि बे-सोचे-बिचारे हर किसी के मुक्के का जवाब घूंसे से दिया करो तो वे तुरन्त ही कुचल दिये जायंगे; फिर से उठ भी नहीं सकेंगे। पहिले तो उन्हें अपनी शक्ति का भान करना होगा।

किन्तु मुझे तो हिंसा का पाठ पढ़ाना नहीं था, इसलिए मैंने दो-एक रास्ते बतलाये जिनसे वे हिंसा किये बिना भी अपना कुछ बचाव कर सकते थे। यहाँ मेरे सामने चम्पारन का उदाहरण था। यदि मैं चम्पारन की रैयत से बदला लेने को कहता तो वह अवश्य पिस जाती। मैं जो कुछ वहाँ कर सका, उसका कारण यह था कि मैं उन्हें हिंसा से दूर रख सका था। हाँ, मुझे अहिंसा के सम्पूर्ण सिद्धान्त का विवेचन बाणपुर वालों के आगे करने की ज़रूरत नहीं थी, जैसे कि किसी योग्य डाक्टर को अपनी दवा के गुण-दोषों पर रोगी से बहस करने की ज़रूरत नहीं है। वह तो उसे सिर्फ दवा भर दे देता है।

अब बेतिया (चम्पारन) की स्थिति से यहाँ की तुलना कीजिए। वहाँ और यहाँ में ज़मीन-आसमान का अन्तर है (यहां पर गांधी जी ने अपने चम्पारन जाने और सन् १९१६ में वहाँ काम आरम्भ करने की पूरी कथा कह सुनाई।) जब मैं १९२० में बेतिया गया था, लोगों ने मुझसे कहा कि पुलीस ने हमारी औरतों के गहने लूटे हैं, कहीं-कहीं उनके शरीर पर भी हाथ लगाया है और हम लोग यह हाल देखकर बाल-बच्चों और घर-बार छोड़कर भाग गये। मैंने पूछा—'तुम लोग भागे क्यों?" उत्तर मिला—"आपने ही तो अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। हम पुलिस के जोर-जुल्म का जवाब कैसे देते?" मुझे इससे चोट लगी। मैंने उन्हें अहिंसा का मर्म समझाया, और कहा—अहिंसा कायरता नहीं है, यह सबसे बड़ी वीरता है। यदि तुम अपने को रोक नहीं सकते थे तो तुम्हें भागना नहीं चाहिए था बल्कि पुलीस से लड़ना, और अपने बालबच्चों की जान और इज्ज़त बचाने में मर जाना चाहिए था।

—यं० इं०। हि० न० जी० २९।१२।'२७]

- **अहिंसा कायरता नहीं है, यह सबसे बड़ी वीरता है।**

२२. अहिंसा लघुत्तम मार्ग

मेरा रास्ता साफ है। जो स्वतन्त्रता हम चाहते हैं, उसके लिए हमने अभी कुछ भी कीमत नहीं दी है। इसलिए मैं तो मानता हूं कि ये राजनीतिक कैदी उस कीमत का एक छोटा अंश हैं जो हमें मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार पाने के लिए देनी चाहिए। और हमें सब अत्याचार स्वेच्छा से सहने होंगे, न कि भेड़-बकरियों-जैसे असहाय होकर। यह काम हम हिंसा और अहिंसा किसी के द्वारा कर सकते हैं। हिंसा का रास्ता तो हमें अन्त में ऐसी जगह ले जाकर छोड़ देगा जहां से आगे हम कहीं जा नहीं सकते और बहुत से अनिच्छुक स्त्रीपुरुषों के कष्टों की सीमा नहीं रहने देगा जो न जानते हैं कि स्वतन्त्रता क्या चीज है, और न उस बहुमूल्य वस्तु को खरीदने का जिनको कुछ शौक ही है। अहिंसा का रास्ता सबसे पक्का और छोटा है और इसमें कम से कम कष्ट सहना पड़ता है, और वह भी केवल उन्हीं को जो कष्ट सहने को तैयार हों बल्कि जो उसीकी खोज में हों।

—यं० इं०। हि० न० जी० २९।१२।'२७]

- **यही (अहिंसा का) रास्ता सफलता के लिए सबसे छोटा रास्ता है। इससे छोटा रास्ता मैंने नहीं सुना।**
- **अहिंसा का रास्ता सबसे पक्का और छोटा है और इसमें कम से कम कष्ट सहना पड़ता है।**

२३. अहिंसा सबके लिए शुभकारी

....अहिंसा से परिवर्तन साध्य है, नाश नहीं। प्रजावाद को राज्यों में सिद्ध किया जा सकता है, राजाओं का या राज्यों का नाश करके नहीं। राजा-प्रजा दोनों में जो कुछ अच्छा हो उनका मेल कराया जा सकता है। थोड़े में कहें तो दोनों के बीच सम्बन्ध धर्म का रहे, पशुबल का नहीं। आज की हवा नाशक है; प्राचीन सभ्यता पोषक है। अहिंसा से सबका शुभ सधता है; हिंसा एक के नाश पर दूसरे की वृद्धि का पाया रचती है।

—न० जी०। हि० न० जी० २।२।'२८]

२४. अहिंसा की गंगा

....सत्य और अहिंसा के सिवा दूसरा धर्म नहीं है। आप अहिंसा के उपासक होकर खटपट क्यों करते हो? रागद्वेष के मानी हैं हिंसा। केवल खटमल एवं जूं को न मारने में अहिंसा समाप्त नहीं हो जाती। यह तो छोटी से छोटी अहिंसा है। जिसके हृदय में से प्रेम की धारा निरन्तर बहा करती है, वह जगत् का कल्याण करता है। यह मेरा वाक्य नहीं है, यह तो महावीर कह गये हैं, यह तो गीता का वचन है। मैंने तो इसकी बानगी भर अभी देखी है। इस सत्य और अहिंसा के पालन में मेरा काम सधता है। आप अगर इसका पालन करें तो उबर जायंगे।....यदि आप सत्य की धारा को समझ लेंगे, अहिंसा की गंगा को समझेंगे तो मेरी बताई बातें आपको कडुवी न लगेंगी और उनपर आचरण करना सहज हो जायगा।

—न० जी०। हि० न० जी० ९।२।'२८]

२५. अहिंसा किताबी सिद्धान्त नहीं है

....मेरी अहिंसा कोई किताबी सिद्धान्त नहीं है जो अनुकूल अवसर देख-कर बतलाया जाय। यह ऐसा सिद्धान्त है जिसे मैं सभी कार्यक्षेत्रों में लाने का प्रयत्न अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में कर रहा हूँ। अहिंसा को प्रविष्ट कराने की मेरी कोशिश प्रायः मेरी अपनी ही दुर्बलता या अज्ञान के कारण चौपट हो जाती है। उस समय मुझे अपने इसी ध्येय के लिए हिंसा को मन से ही स्वीकार करके उसे सहन करना पड़ता है। १९२१ में मैंने बेतिया के निकट के गाँववालों से कहा था

कि तुमने बुरे मतलब वाले अमलों का विरोध न करके उनके आने पर भाग जाने में कायरता दिखाई है। एक दूसरे अवसर पर किसी पुजारी के कारण मैं लज्जित हुआ था, जिसने कहा कि कुछ बदमाशों के मन्दिर लूटने और मूर्ति तोड़ने के लिए आने पर मैं चुपचाप जान लेकर भाग निकला। मैंने उसे कहा कि यदि तुम अपने स्थान पर अहिंसा-भाव से डटे रह कर अपनी मूर्ति की रक्षा में मर नहीं सकते थे तो तुम्हें दूसरों को मारकर भी मूर्ति की रक्षा करनी चाहिए थी। इसी भाँति मैं मानता हूँ कि वर्तमान कुशासन से तो हिंसा के द्वारा भी हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता प्राप्त करना अच्छा है, अपेक्षाकृत इसके कि उसका धन और इज्ज़त दिन-रात लूटी जाती रहे और वह असहाय होकर तमाशा देखे।

....मेरी अपनी स्थिति और विश्वास दोनों स्पष्ट और दुविधारहित हैं। मैं न तो वर्तमान शासन चाहता हूँ, न अन्धेर-खाता। मैं अन्धेर के रास्ते से गुजरे बिना, सच्ची सुव्यवस्था स्थापित देखना चाहता हूँ। मैं इस अव्यवस्था को अहिंसा से नष्ट करना चाहता हूँ अर्थात् बुराई करनेवालों का मत ही बदलना चाहता हूँ। इसी काम के लिए मेरा जीवन समर्पित है। और ऊपर जो कुछ मैं लिख आया हूँ, वह अहिंसा के मेरे ज्ञान से सीधे निकलता है। अहिंसा से बड़ी कोई शक्ति मनुष्य जाति को ज्ञात नहीं है। इसकी शक्ति या प्रभावकारिता में मेरा विश्वास अटल है और उसी भाँति मेरा यह विश्वास भी अचल है कि केवल अहिंसा के द्वारा ही स्वतन्त्र होने की शक्ति हिन्दुस्तान में है। किन्तु सत्य को छिपाने से, चाहे इस समय वह कितना भी बुरा लगता हो, शक्ति नहीं मिल सकती। भगवान न करे कि हिन्दुस्तान को अहिंसा का पाठ पूरा-पूरा पढ़ने के पहिले खूनी लड़ाई लड़नी पड़े। किन्तु वह बीच की सीढ़ी जो प्रायः आवश्यक जान पड़ती है, उसके भी भाग्य में बदी होवे तो उसे अपने मुक्ति-मार्ग में उससे भी गुजरना ही पड़ेगा और वह आज की प्रचलित व्यवस्था से तो अवश्य ही अच्छी गिनी जायगी। प्रचलित व्यवस्था तो एक उजला कफ़न मात्र है जिसके नीचे केवल हिंसा ही हिंसा छिपी हुई है।

—यं० इं०। हिं० न० जी० १।३।'२८]

- **मैं मानता हूँ कि वर्तमान कुशासन से तो हिंसा के द्वारा भी हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता प्राप्त करना अच्छा है।**
- **अहिंसा से बड़ी कोई शक्ति मनुष्य-जाति को ज्ञात नहीं है।**
- **प्रचलित व्यवस्था तो एक उजला कफ़न मात्र है जिसके नीचे केवल हिंसा ही हिंसा छिपी हुई है।**

२६. हमारा कर्तव्य

[गोधरा में हुए साम्प्रदायिक दंगे के विषय में गांधी जी ने 'नवजीवन' में एक टिप्पणी लिखी। इसका शीर्षक था 'गोधरा में हिन्दू-मुसलमानों के बीच लड़ाई।' इसपर अनेक हिन्दुओं ने गांधी जी को पत्र लिखकर शीर्षक सुधारने को कहा। एक स्वयंसेवक ने लम्बा-सा पत्र लिखकर दो घटनाएं उद्धृत कीं जिनमें मुसलमानों द्वारा हिन्दू व्यापारी से बिना मूल्य दिये चावल लेने और सरेआम हिन्दू स्त्रियों का अपमान करने का प्रसंग था। स्वयंसेवक ने उपालम्भ देते हुए गांधी जी को यह भी लिखा कि उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दंगों के सम्बन्ध में ही क्यों मौन लिया है? उन्हें अहिंसा या खिलाफत के प्रश्न पर भी मौन ले लेना चाहिए था। जब मुस्लिम आतंक से हिन्दुओं की हानि हो रही है, तो वे चुप क्यों हैं? गांधी जी ने इन प्रश्नों के जो उत्तर दिये, उनके आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।—संपा०]

अहिंसा कुछ डरपोक का, निर्वल का धर्म नहीं है। यह तो बहादुर और जान पर खेलनेवालों का धर्म है। तलवार से लड़ते हुए जो मरता है वह अवश्य बहादुर है। किन्तु जो मारे बिना धैर्यपूर्वक खड़ा हुआ मरता है वह अधिक बहादुर है। इसलिए जो मार के डर से चावल के बोरे दे देता है, वह डरपोक, कायर है; अहिंसक नहीं। वह अहिंसा के तत्व को नहीं जानता।

मार के डर से जो स्त्रियों का अपमान सहन करता है, वह मर्द न रहकर नामर्द बनता है। वह पति, पिता या भाई बनने योग्य नहीं। ऐसे आदमियों को फरियाद करने का अधिकार नहीं है। जहां नामर्द बसते हैं वहां बदमाश तो होंगे ही।

जो चतुर हैं, सयाने हैं वे अगर हिन्दू-मुस्लिम झगड़े के मूल में स्थित दोनों जातियों की निर्बलता को देख लें तो हम इन झगड़ों का हल तुरन्त ही निकाल सकते हैं। दोनों को बलवान और चतुर बनना शेष है। दोनों अथवा एक, समझकर होशियार बनें तो यह अहिंसा का मार्ग हुआ। दोनों हार कर होशियार बनेंगे तो यह हिंसा का मार्ग होगा। मनुष्य समाज यानी स्वतन्त्रता पूजनेवाले समाज में कायर को स्थान नहीं है; स्वराज्य कायर के लिए नहीं है।

इसलिए ये घटनाएं लिखकर अहिंसा की निन्दा या मुझ पर रोष करना मेरी दृष्टि में व्यर्थ है। १९२१ के वर्ष बेतिया के अनुभव के बाद से ही मैं कहता आया हूं कि जो मरकर अपनी या स्वजनों की रक्षा नहीं कर सकता उसे मारकर अपनी या स्वजनों की रक्षा करने का अधिकार है। यह उसका धर्म है। जिसमें इतनी शक्ति न हो, वह नपुंसक है। उसे कुटुम्ब का स्वामी या पालक होने का अधिकार

नहीं। उसे अरण्य का सेवन करना चाहिए। अथवा वह सदा लाचार की स्थिति में रहेगा। उसे रोज चींटी की तरह पेट के बल रेंगने की तैयारी में रहना चाहिए।

मेरे पास एक मात्र अहिंसा का मार्ग है। मुझे हिंसा का मार्ग नहीं रुचता; उसे सिखलाने की शक्ति मैं नहीं पैदा करना चाहता। आज जो वातावरण फैला है, उसमें अहिंसा के प्रचार को स्थान नहीं है। इसलिए मैं चालू लड़ाइयों के बारे में मौन धारण किये बैठा रहा हूं। मैं विश्वास जरा भी नहीं खो बैठा हूं कि हिन्दू-मुसलमान को किसी न किसी दिन एक होना ही है। हम यह कैसे जानें कि ये कब और कैसे मित्र बनेंगे? भविष्य की सरदारी का इजारा ईश्वर ने अपने ही हाथों में रखा है। हमें उसने विश्वास रूपी नौका दी है। हम उसमें बैठें तो सहज ही शंका रूपी-समुद्र पार कर जायंगे।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० ११।१०।'२८]

- **अहिंसा डरपोक का, निर्बल का धर्म नहीं है। यह तो बहादुर और जान पर खेलनेवालों का धर्म है।**
- **जो मरकर अपनी या स्वजनों की रक्षा नहीं कर सकता उसे मारकर अपनी या स्वजनों की रक्षा का अधिकार है।**

२७. बम और छुरी

यह बिलकुल सच है कि हिंसा में संसार का विश्वास ही बम और छुरी की उत्पत्ति का कारण है। हिंसा को ही लोग मनचाहे इन्साफ का जरिया समझते हैं। केवल राष्ट्रों के दण्ड-विधान में अपराध न माने जाने के कारण संगठित विनाश कोई अच्छी बात नहीं कही जा सकती। वे नये-नये हथियारों का आविष्कार कर रहे हैं। उसके कारण बढ़ती हुई हिंसा के भावों से दुनिया का गला घुट रहा है। यदि किसी दिन दुनिया के समस्त देशों और धर्मों के कुछ गरम दिल लोग अपनी जान को खतरे में डालकर भी कानून तोड़ने लगें तो इसमें कोई आश्चर्य न होगा। जब तक दुनिया के लोग लड़ाई की बात को सहते या निभाते रहेंगे तब तक दुनिया में बम फेंकने वाले और हत्यारे भी बने रहेंगे। यदि देश में उनसे सहानुभूति न रखने का वातावरण हो, उनके कामों से नफरत करें, तो उन पर अवश्य ही अंकुश रखा जा सकता है।

छुरी की अपेक्षा बम का सवाल बहुत आसानी से हल हो सकता है। बम को भारत में कोई आश्रय नहीं है। अगर सरकार चाहे तो उसे आज ही बन्द कर सकती है। डर या आतंक से नहीं, बल्कि उदारतापूर्वक समय रहते राष्ट्र की मांग

स्वीकार करके। लेकिन यह तो होना नहीं है। यह तो निराश होने के लिए आशा करना है। सरकार अपनी नीति बदलकर यह काम नहीं कर सकती। उसका हृदय परिवर्तित होने पर ही यह हो सकता है। लेकिन आज इस बात को मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि सरकार यह सब करेगी।

--हि० न० जी० १८।४।'२९]

● **हिंसा में संसार का विश्वास ही बम और छुरी की उत्पत्ति का कारण है।**

२८. अहिंसा का मन्त्र

[बर्मा-यात्रा के दौरान गांधी जी ने बौद्ध भिक्षुओं एवं बर्मी जनता के समक्ष निम्नलिखित भाषण दिया था।--संपा०]

आज इतनी बड़ी तादाद में पीताम्बरधारी पुंगियों और बर्मा-वासी सज्जनों एवं महिलाओं को यहां एकत्र देखकर बहुत ही आनन्द होता है। यह सम्भव नहीं कि मैं इतने विशाल और ऐसे समाज के साथ ज्यादा समय तक रह सकूं। अतएव आज जो विषय आपको और मुझे भी बहुत ज्यादा प्यारा है, उस पर थोड़ा विवेचन करना चाहता हूं। आपने हर एक सभा में और हर एक जगह मेरे अहिंसा के सन्देश और खादी के मन्त्र को जो आशीर्वाद दिया है वह निरर्थक तो नहीं हो सकता। अतः मैं इस मन्त्र का क्या अर्थ करता हूं, थोड़े में आपको समझाऊंगा। मैं तो अहिंसा को जगत् की महाप्रचण्ड शक्ति समझता हूं। अगर हम यह समझ सकें तो यह शक्ति हमारे लिए नित्य पूर्व में उदय होनेवाले सूर्य के समान लाभ-दायी हो जाय, यद्यपि इसका बल तो सहस्रों सूर्यों से भी ज्यादा है। अहिंसा रूपी सूर्य रात-दिन प्रकाश, प्राण, शान्ति और सुख की किरणें बरसाता रहता है। फिर भी अहिंसा के उपासक इस देश में हमें प्रकाश, प्राण और सुख के दर्शन क्यों नहीं होते? यहाँ तो अहिंसा के मन्त्र का आपके हृदय के ऊपरी भाग तक ही स्पर्श हुआ मालूम पड़ता है। आइए, इस बारे में हम एक-दो बातों पर विचार करें। जहाँ अहिंसा धर्म को सबसे ऊंचा स्थान मिला हो वहाँ ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह और पाप-प्रपञ्च वगैरह की हस्ती रह नहीं सकती। लेकिन आज तो आप लोग कई दलों में बंटे हुए हैं। और यह दलबन्दी भी किसी अच्छे हेतु से नहीं है। आपके प्रान्त की राज्य-व्यवस्था के अंकों को देखने से पता चलता है कि आपके यहाँ जुर्मों की तादाद बहुत बढ़ी हुई है। आप लोग खून तो चाहे जब और चाहे जैसी सड़ी-सी बात पर कर गुजरते हैं। अतएव मेरे सामने बैठे हुए बौद्ध धर्म के रक्षक पुंगियों

से मैं दो बातें कहना चाहता हूं। मैं लंका हो आया हूँ और मैंने ब्रह्मदेश भी ठीक से घूम लिया। मेरा अनुभव कहता है कि हम लोगों ने भारत में आपके मुकाबले कहीं अच्छी तरह भगवान बुद्ध के उपदेशों को अपनाया और उनका पालन किया है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जब संसार में पाप का फैलाव दिन प्रतिदिन बढ़ने लगे तब ऋषि और द्रष्टागण अधिकाधिक तपश्चर्या करें। जब गौतम बुद्ध ने अपने चारों ओर अन्धकार, अन्याय और अत्याचार का अटल राज्य पाया तब वह जंगल में चले गये थे और वहां उपवास और प्रार्थना-द्वारा प्रकाश पाने की प्रतीक्षा में रहे। जब उनके समान समर्थ और पवित्र पुरुष को इस तरह की तपस्या करनी पड़ी तो हमारे समान पामर मनुष्यों को, श्वेत या पीताम्बरधारी प्राणियों को, तो इस तपश्चर्या की कितनी बड़ी जरूरत होगी? अगर आपको अन्धकारमय मार्ग पर प्रकाश डालने के लिए दीपक बनना हो तो सिवा तपस्या के और कोई मार्ग नहीं है। यहां इतनी बड़ी तादाद में पुंगी सज्जन एकत्र हैं कि अगर वे इस कार्य को अपने हाथ में ले लें तो उनके कारण तुरन्त ही बर्मा के जीवन की कायापलट हो जाय। अगर यह हो सका तो उस हालत में निर्जीव रूढ़ियाँ आपकी रहनुमाई नहीं करेंगी। बल्कि आप अपना हृदय टटोलेंगे, अपने शास्त्र-वचनों का पारदर्शी मनन करेंगे और उनमें छुपे सत्य की खोज करके अपने आस-पास प्राण और चैतन्य का प्रसार करेंगे। इससे आपको पता चलेगा कि अहिंसा के लिए सिर्फ जीव की हत्या न करना ही काफी नहीं है बल्कि अपने भोजन और भोग के लिए किये गये प्राणिवध को सह लेना भी पाप है। साथ ही आप यह भी समझने लगेंगे कि अहिंसा के हिमायती के मुंह में लगातार धुआं उगलने वाली बीड़ी शोभा नहीं देती और न जीवन को विलासी बनाना ही शोभा देता है। ऐसे सुन्दर जलवायु वाले और भोले-भाले लोगों की बस्ती वाले देश में शराबखोरी का बोल-बाला हो, क्या यह लज्जास्पद नहीं है? आगे चलकर आप यह भी महसूस करेंगे कि जो आदमी अहिंसक है अर्थात् जिसका दिल जीव-मात्र के लिए प्रेम और दया से भरा हुआ है उसमें भय तो ठहर ही नहीं सकता। मैं आशा करता हूं, कि न तो आप भय के वश होंगे, न दूसरों को होने देंगे। अहिंसा-मन्त्र का अर्थ है निडरता का मन्त्र—अभयमन्त्र; मुझे आशा है, आप इन शब्दों से दुखी न होंगे। अहिंसा और सत्य के उपासक के नाते ही मैंने आपकी सेवा में दो बातें कही हैं। पिछले ४० वर्षों में मैं जिस रूप में अहिंसा-धर्म को समझ पाया हूं उसे उसी रूप में आपके सामने रख चुका हूं। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि आपके हृदय में शुद्ध अहिंसा का उदय हो।

—हिं० न० जी० २५।४।'२९]

- मैं तो अहिंसा को जगत् की महा प्रचण्ड शक्ति समझता हूँ।
- अहिंसा रूपी सूर्य रात-दिन प्रकाश, प्राण, शान्ति और सुख की किरणें बरसाता रहता है।
- जहाँ अहिंसा-धर्म को सबसे ऊँचा स्थान मिला हो वहां ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, और पाप-प्रपञ्च वगैरह की हस्ती रह नहीं सकती।
- जब संसार में पाप का फैलाव दिन प्रति दिन बढ़ने लगे तब ऋषि और दृष्टा-गण अधिकाधिक तपश्चर्या करें।
- अहिंसा के लिए सिर्फ जीवहत्या न करना ही काफ़ी नहीं है बल्कि अपने भोजन और भोग के लिए प्राणिवध को सह लेना भी पाप है।
- अहिंसा के हिमायती के मुंह में लगातार धुआँ उगलने वाली बीड़ी शोभा नहीं देती।
- अहिंसा-मन्त्र का अर्थ है निडरता का मन्त्र--अभय-मन्त्र।

२९. अहिंसा-युक्ति अथवा धर्म ?

जिसके हाथ में अहिंसा रूपी अस्त्र है, वह कभी निःशस्त्र नहीं। उसके पास पाशवी शस्त्र भले न हों, पर उसके पास दिव्य शस्त्र होते हैं। अहिंसा ब्रह्मास्त्र है, और उसका मुकाबला करनेवाला एक भी शस्त्र आज तक विधाता ने नहीं बनाया, न वह बना सकेगा। पर मैं इतना स्वीकार करूंगा कि भारत ने अहिंसा शस्त्र को पूरी तरह नहीं पहिचाना है; भारत ने युक्ति रूप में ही उसका उपयोग किया है। और यही वजह है कि वह कमजोर का हथियार जान पड़ती है। इसी कारण उक्त प्रश्न पैदा हो सका है, और इसीलिए दुनिया का खून खौल नहीं उठा। दुनिया ने हमें नितान्त निर्दोष नहीं माना। उसने हमें होशियार युक्तिबाज के रूप में पहिचाना है। और ऐसों पर पड़ने वाले लाठी-प्रहार से जितनी उत्तेजना पैदा हो सकती थी, हुई है। मैं तो इसपर से त्रिराशि का हिसाब करूंगा। यदि युक्ति रूप में प्रयुक्त अहिंसा से दुनिया में इतना कोलाहल मचा है तो जब हिन्दुस्तान शुद्ध अहिंसा को पहिचान लेगा कितना कोलाहल मचेगा? जवाब : दुनिया का खून खौल उठेगा।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० ७।५।'३१]

- **अहिंसा ब्रह्मास्त्र है और उसका मुकाबला करनेवाला एक भी शस्त्र आज तक विधाता ने नहीं बनाया, न वह बना सकेगा।**

३०. निर्बल की बात मानना अहिंसा है

अहिंसा में मेरी अविचल श्रद्धा का अर्थ ही यह है कि यदि अल्पमतवाली जातियां वस्तुतः निर्बल हों तो जनता उनकी बात मान ले। यदि हमें अहिंसक प्रणाली से स्वराज्य प्राप्त करना हैं तो इस दृष्टि-बिन्दु को स्वीकार करना ही होगा। अन्य मार्ग नहीं।

--हि० न० जी० ९।७।'३१]

३१. अहिंसा अथवा नैतिकता का प्रश्न

[बम्बई के एक सज्जन ने गांधी जी से पूछा कि चोर-उचक्कों के रँगे हाथ पकड़ जाने पर सामान्य राह-चलते लोग उनपर निर्दय प्रहार करने लगते हैं। क्या यह अहिंसा के अनुरूप है? विशेष कर उस स्थिति में जब कि मारनेवालों में से अधिकांश काले बाजार, घूस या अन्य अनैतिक कार्य करने वाले प्रच्छन्न चोर होते हैं। गांधी जी ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया, उसके आवश्यक अंश उद्धृत हैं।--संपा०]

ऐसी शिकायत का अनुभव असाधारण नहीं। बड़े शहरों में ऐसा अनुभव किसे न हुआ होगा? हम कायर हैं इसलिए गिरहकट जैसी चींटी पर चतुरंगिणी लेकर चढ़ाई कर देते हैं। अहिंसा का तो यहां प्रश्न भी उत्पन्न नहीं होता, वीर हिंसक व्यक्ति भी इस तरह किसी पर चोट नहीं करेगा। बन्दी चोर अथवा हत्यारे को भी दण्ड देने का अधिकार जनता को नहीं है। जनता ऐसे व्यक्ति को पकड़-कर पुलिस को सौंप सकती है।

सच है कि चोर को मारनेवाले अनेक जन स्वयं सफेद चोर हैं। इसीलिए प्राचीन काल में जब लोगों ने एक वेश्या को पत्थर मारने का निश्चय किया तो ईसा मसीह ने मधुर वाणी में कहा था कि आप में जो निर्दोष हो वह पहिला पत्थर फेंके। कथाकार का कथन है कि पत्थर फेंकने का साहस किसी को न हुआ।

गूंगा बहरे को क्या हंसे? गिरहकट को सम्भवतः भोजन का अभाव हो जब कि सफेद चोर अपने भोगों की तृप्ति-हेतु चोरी करता है। अपराधी अपराधी का न्याय नहीं कर सकता, इस विचार के विस्तार से ही अहिंसा का जन्म हुआ है। किन्तु अहिंसा के सरोवर तक न पहुँचें और सामान्य न्याय की तलैया तक पहुँच जायं, इतना भी पर्याप्त है।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० २३।७।'३१]

- बन्दी, चोर अथवा हत्यारे को भी दण्ड देने का अधिकार जनता को नहीं है।
- चोर को मारने वाले अनेक जन स्वयं सफेद चोर हैं।
- अपराधी अपराधी का न्याय नहीं कर सकता।

३२. अहिंसक सेना

[कांग्रेस सेवादल के चुने हुए स्त्री-पुरुषों के समक्ष गांधी जी ने जो सन्देश दिया था उसके आवश्यक अंश यहां उद्धृत हैं।—संपा०]

सेवादल को कांग्रेस-भूमि का नमक बना दीजिए। यह सेना किसी भी हिंसक सेना की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होगी। हिंसक सेना असत्य-विष और साम्प्रदायिक कलह-वृद्धि को नहीं रोक सकती किन्तु आपकी अहिंसक सेना उसे रोकने में समर्थ हो सकेगी। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे जीवनकाल में ही वह समय आ सकता है जब कि यह अहिंसक सेना एक वास्तविक एवं जीवन्त सत्य होगी और यह प्रख्यात सैनिकों को परास्त करेगी।

यह एक कोरा स्वप्न नहीं है। हिंसक सेना में तो प्रत्यक्ष संकीर्णताएं होती हैं किन्तु अहिंसक सेना में ऐसी कोई बात नहीं होती। एक बार उसके हृदय में अग्नि प्रज्वलित हो जाने पर फिर उसे किसी शिक्षा अथवा अनुशासन की आवश्यकता नहीं रहती।

—हि० न० जी० १३।८।'३१]

३३. अहिंसा का लक्षण

[गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए लन्दन जाते समय गांधी जी को मिस्र आदि देशों से अभिनन्दन एवं बधाई के सन्देश प्राप्त हुए। इनमें गांधी जी को अहिंसक युद्ध के मान्य सेनापति और विश्व-शान्ति का प्रतीक कहा गया था। गांधी जी ने इन उदगारों का उल्लेख करते हुए अहिंसा के सम्बन्ध में जो सन्देश गुजरातवासियों को दिया उसके आवश्यक अंश संकलित हैं।—संपा०]

यदि हम शरीर-बल से स्वातन्त्र्य-युद्ध लड़ रहे होते तो आज संसार भारत की ओर जिस प्रकार देख रहा है कदाचित् उस प्रकार न देखता। लगता है कि पाखण्ड और रक्त की नदियों से संसार ऊब गया है। जहां देखिए इसे असत्य दिखाई देता है और यह स्वयं उसमें भाग लेकर दुखी होता है। इसलिए भारत-द्वारा घोषित अहिंसा एवं सत्य के दावे को स्वीकार कर विश्व आश्वासन पाता है। यह शुभ-

कामना करता है कि भारत इन दोनों साधनों से विजयी हो स्वातन्त्र्य प्राप्त करे। विश्व की यह आशा किस प्रकार पूरी हो ?

भारत के अन्य भागों का विचार न कर डाक बन्द करते समय मैं गुजरात का विचार करता हूं। क्या गुजरात शत प्रतिशत सत्य और अहिंसा की कसौटी पर खरा उतरा है? क्या यहां के स्वयंसेवक एवं स्वयंसेविकाएं लालच, द्वेष, क्रोध, भय, असत्य आदि से सर्वथा मुक्त हैं ?

खादी अहिंसा का एक बड़ा बाह्य चिह्न है। क्या गुजरात-निवासी कांग्रेस-वादी भी सिर से पैर तक निरन्तर खादीधारी हैं? क्या दरिद्रनारायण के लिए वे नित्य कताई-यज्ञ करते हैं? क्या गुजरात ने अस्पृश्यता, शराब और विदेशी वस्त्र के बहिष्कार को पूर्ण किया है? ये सब भी सामुदायिक अहिंसा के बाह्य लक्षण हैं। ये और इन्हीं की भाँति अनेक प्रश्न मन में उठा करते हैं और मैं व्याकुल हो उठता हूँ। एक ओर मैं यह दावा करता हूं कि देश ने सत्य एवं अहिंसा को ग्रहण कर लिया है। इसके सबल कारण भी हैं। किन्तु अन्य दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इसमें पूर्ण सत्य तो नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि जिसे मैं आज सत्य और अहिंसा का लक्षण मानता हूं वे सब हमने ग्रहण कर लिये हैं किन्तु आशावादी होने के कारण मैं यह मान कर अपनी नाव चलाये जा रहा हूं कि स्वयं में शेष त्रुटियों को हम किसी प्रकार ठीक कर लेंगे।

--न० जी०, मूल गुजराती। हि० न० जी० १।१०।'३१]

- **खादी अहिंसा का एक बड़ा बाह्य चिह्न है।**

३४. हिंसा मेरी बाधा

मुझे अपने पक्ष की हिंसा अधिक कष्टप्रद प्रतीत होती है। मेरी स्वार्थबुद्धि यह है कि हिंसा मेरे काम में बाधा डालती है।

--महादेव ह० देसाई द्वारा प्रस्तुत लन्दन का पत्र से। हि० न० जी० २६।११।-'३१]

३५. अहिंसक युद्ध में आत्म-बलिदान

स्वतन्त्रता का मूल्य रक्त से देने का मेरा विचर आप को चौंका देता है। मैं भारत की सब स्थितियों से परिचित होने का दावा करता हूं इसलिए कहता हूं कि वह एक-एक इंच कर आनेवाली मृत्यु से मर रहा है।

यदि ईश्वर की ऐसी इच्छा है तो हमें कष्ट-सहन की कसौटी में से गुजरना चाहिए। मैंने दूसरे लोगों का रक्तपात करने की बात नहीं कही है क्योंकि मैं जानता हूं कि हिंसक दल मिटते जा रहे हैं। किन्तु हमारे अपने रक्त की गंगा बहाने की वर्तमान स्थिति का सामना करने के लिए स्वेच्छापूर्वक शुद्ध आत्मबलिदान करने की बात मैंने कही थी।

--महादेव ह० देसाई द्वारा प्रस्तुत 'लन्दन का पत्र' में संकलित गांधी जी के भाषण का अंश। हि० न० जी०, २६।११।'३१]

३६. अहिंसक प्रेम

....धुरन्धर से मैं तुरन्त मिला। और अब भी उसके हाल मालूम करता रहता हूं क्योंकि कूच[1] में उसका अच्छा परिचय हुआ था। फिर तेरे लिए भी उसके जीवन में रस लेता हूं क्योंकि तेरे जीवन में लेता हूं। यह व्यक्तिगत प्रेम-विशेष का उदाहरण नहीं है, बल्कि अहिंसा का है। अगर किसी खास व्यक्ति के लिए ही प्रेम हो और दूसरे के प्रति द्वेष हो अथवा प्रेम हो ही न तो यह प्रेम-विशेष है। मुझमें ऐसा प्रेम-विशेष नहीं है, ऐसा मैं मानता हूं। तेरे लिए मैं जो करता हूं वह तेरी जरूरत को समझकर; तू मुझसे आशा रखती है इसलिए और मेरी अपनी गरज से भी करता हूं क्योंकि मैं तुझसे बहुत आशा रखता हूं। इसमें तू व्यवहार-बुद्धि देखे तो मैं उससे इन्कार नहीं करूंगा। मैं इसे अहिंसक स्वभाव मानता हूं...

--कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। १७।५।'३२]

३७. अहिंसा की जननी नम्रता

...किसी का न्याय मत करो, नहीं तो दूसरे तुम्हारा न्याय करेंगे। परन्तु तेरी आलोचना तुझे शोभा नहीं देती। तू उसका अर्थ ही नहीं समझ पाई। तेरी आलोचना में बहुत अहंकार भरा है। नहीं तो दूसरे तुम्हारा न्याय करेंगे का अर्थ तो यह है कि हमें ऐसे दोष में नहीं पड़ना चाहिए जिसका दूसरे न्याय करें। जगत् के सामने हम उद्धत न बनें। दुनिया को जो कहना या करना हो सो कहे या करे, ऐसा विचार या ऐसा वचन हम कैसे प्रकट कर सकते हैं। दुनिया के सामने हम रंक हैं यानी हम सत्यमार्ग पर चलते हैं तब भी जगत् को दण्ड नहीं देते, उसका

[1] दांड़ी कूच।

न्याय नहीं करते, परन्तु जगत् के दण्ड को, न्याय को हम सहन करते हैं। इसी का नाम नम्रता, अहिंसा है।....

--कु० प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से ३०।७।'३२]

३८. अहिंसक प्रवृत्ति

[मन्दिरों के सम्बन्ध में समझौता करने के बाद गांधी जी के उद्गार]

इसमें हम कोई त्याग नहीं करते; दूसरों की भावना का आदर करते हैं। ये लोग हमें दूर रखते हैं। इसमें अनुदारता और कृपणता है। हम उनके प्रति यह अनुदारता और कृपणता नहीं दिखाना चाहते, इसीलिए यह सूचना है। इस सूचना को ये स्वीकार करें या अस्वीकार करें, इसमें इन लोगों की बहुत बड़ी कसौटी है। हम बच्चों को प्याज का बड़ा शौक था। वैष्णव धर्म में प्याज नहीं खाया जाता। किन्तु हम मां के साथ झगड़ा करते। मां बेचारी स्वयं न खाती, किन्तु हमारे लिए अलग प्याज बनाकर हमें खिलाती थी और हमें खिलाते हुए आलोचना करके उसने हमारी यह आदत छुड़वा दी। यह उसकी शुद्ध अहिंसा और उसका शुद्ध सत्याग्रह था। हमारा सिद्धान्त भोग का था; उसका त्याग का। अपना त्याग न छोड़ते हुए और हमारे भोग को रिझाकर भी वह प्रेम के जोर से उसे छुड़वा सकी।

--यरवदा जेल, २०।१।३३। महादेव भाई की डायरी, भाग ३, पृष्ठ ७२।]

३९. गुण्डापन का इलाज

अहिंसा से, मरने की तैयारी से ही गुण्डापन जीता जा सकता है। यदि हम शुद्ध नहीं होंगे तो केवल जड़ता से ही मर जाने वाले हैं।

--यरवदा जेल २९।३।'३३। महादेव भाई की डायरी, भाग ३, पृष्ठ २०९।]

४०. अहिंसा की परिभाषा

[एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न--हम ठीक-ठीक समझ लेना चाहते हैं कि अहिंसा से आपका क्या मतलब है? यदि आपका अहिंसा का अर्थ व्यक्तिगत द्वेष का अभाव है तो हमें आपत्ति

नहीं। हमें आपत्ति इस बात पर है कि आप अहिंसा को और न मारने को एक ही बात बताते हैं। लड़ाइयां व्यक्तिगत कारणों से नहीं परन्तु राष्ट्रीय सम्मान या हितों के रक्षार्थ लड़ी जाती हैं। विवादास्पद विषयों पर हमेशा नैतिक और शारीरिक दोनों ताकतें पूरी तरह लगाकर लड़ाइयां की गई हैं। जब सब लोग हमारे राष्ट्रीय आदर्शों की विजय के लिए सफलतापूर्वक शरीर-बल इस्तेमाल कर सकते हैं और जब यह सबसे जल्दी का रास्ता है तब आपको इस पर एतराज क्यों है? इसके सिवा संसार अब भी इतना आगे नहीं बढ़ा है कि नैतिक रूप में समझाने-बुझाने की कद्र कर सके।

उत्तर——मेरी अहिंसा में नैतिक के अतिरिक्त और किसी प्रकार के बल-प्रयोग की गुंजाइश नहीं। परन्तु यह कहना एक बात है कि राष्ट्रीय झगड़े निपटाने के लिए संसार में शरीर-बल काम में लिया गया है या आजकल लिया जा रहा है, यह कहना बिलकुल दूसरी बात है कि उसका प्रयोग जारी रहना चाहिए।

यदि हम पश्चिम की देखादेखी हिंसा को अपनायेंगे तो जैसे पश्चिम तेजी से दिवालिया बनता जा रहा है वैसे हम भी जल्दी ही दिवालिये हो जायंगे। अभी उस दिन की बात है। एक युरोपियन मित्र से मेरी बातचीत हो रही थी। वे इस बात से बहुत खिन्न थे कि पश्चिम के बड़े-बड़े उद्योगों वाले राष्ट्र संसार की रंगीन जातियों का भरपूर शोषण कर रहे हैं। सभ्यता के सामने आज यही समस्या है। अहिंसा के सिद्धान्त की इस समय परीक्षा हो रही है। आत्मबल की पशुबल के साथ जीवन-मरण की बाजी लगी हुई है। हमें इस संकट-काल में परीक्षा से बचने की कोशिश नहीं करनी चाहिए।

——'अमृतबाजार पत्रिका' ३।८।'३४। नवजीवन प्रकाशन मन्दिर-द्वारा प्रकाशित 'विद्यार्थियों से' संकलन का अंश।]

४१. अहिंसा का सिद्धान्त : व्यक्तिगत अथवा समष्टिगत?

[गांधी जी से पूछा गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न——जब आपका विश्वास है कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने का एकमात्र साधन जनक्रान्ति ही है, तो क्या आप इसे व्यावहारिक बात मानते हैं कि ऐसी क्रान्ति के दौरान मिलनेवाले सभी तरह के उत्तेजनाओं के बावजूद जनसाधारण मन, कर्म से सर्वथा अहिंसक रहेंगे और रह सकते हैं? किसी व्यक्ति के लिए उस आदर्श तक पहुँचना सम्भव हो सकता है, परन्तु क्या आपके खयाल से जनसाधारण के लिए भी अहिंसा का यह आदर्श अमल में लाना सम्भव है?

उत्तर--अब इस मंजिल पर पहुँचकर आपकी ओर से यह प्रश्न उठना अचम्भे की बात है । क्योंकि जब कभी हिंसा हुई है तभी वह जनसाधारण की तरफ से नहीं वल्कि मैं कहूंगा कि विशेष वर्गों की तरफ से हुई है--अर्थात् पढ़े-लिखे लोगों की प्रेरणा से हुई है। हिंसक युद्ध में भी यद्यपि व्यक्ति कभी-कभी मनमानी कर वैठते हैं और सब कुछ भूल जाते हैं परन्तु अधिकांश योद्धा न ऐसा करने का साहस करते हैं और न ऐसा करते हैं। वे हुक्म मिलने पर ही हथियार चलाते हैं और आज्ञा पाने पर गोली चलाना बन्द कर देते हैं, भले ही व्यक्तिगत रूप में बदले या प्रतिरोध की भावना कितनी ही अधिक हो। प्रत्यक्ष तो कोई कारण नहीं दीखता कि अहिंसक युद्ध में जनसाधारण यदि अनुशासन की तालीम पाये हुए हों तो उतने ही अनुशासन का परिचय क्यों नहीं दे सकते जितना संगठित युद्ध में सैनिक आम तौर पर देते हैं। इसके सिवा अहिंसक सेनापति को यह विशेष सुविधा है कि उसे अपने युद्ध का सञ्चालन करने के लिए हजारों सेनापतियों की जरूरत नहीं होती। अहिंसा के सन्देश को पहुंचाने के लिए इतने सारे लोगों की आवश्यकता नहीं होती। थोड़े से ही सच्चे पुरुष या स्त्रियां हों और उन्होंने अहिंसा-वृत्ति को पूरी तरह अपना लिया हो, तो अन्त में उनकी मिसाल की छूत सारे जनसाधारण को लगे बिना नहीं रहेगी। आन्दोलन के आरम्भ में मुझे ठीक यही अनुभव हुआ। मैंने देखा कि लोगों का सचमुच यह विश्वास है कि मैं अहिंसा का उपदेश देता हूं तो भी अपने दिल में मैं हिंसा के ही पक्ष में हूं। उन्हें नेताओं के भाषणों का इसी तरह अर्थ समझने और करने की तालीम मिली थी। परन्तु जब उन्होंने समझ लिया कि मैं जो कहता हूं वही मेरा मतलब होता है तब उन्होंने अत्यन्त कठिन परिस्थिति में भी आचरण में अहिंसा का पालन अवश्य किया। चौरीचौरा काण्ड की पुनरावृत्ति कहीं नहीं हुई है। मन में अहिंसा रखने के बारे में तो केवल ईश्वर ही फैसला कर सकता है। परन्तु यह निश्चित है कि आचरण में हिंसा तब तक कायम नहीं रह सकती जब तक साथ ही साथ विचार में अहिंसा न हो।

--'अमृतबाजार पत्रिका'। नवजीवन प्रकाशन मन्दिर द्वारा प्रकाशित 'विद्यार्थियों से' संकलन का अंश। ३।८।'३४]

४२. अहिंसक भारत और सेना

....[1]नरीमान का और तेरा सम्वाद अच्छा है। यह सच है कि अधिकतर

१. वम्बई के एक कांग्रेसी नेता; अब स्वर्गीय।

लोग अहिंसा का पालन नीति के रूप में ही करते हैं। परन्तु तेरे-जैसे कुछ तो हैं ही जो धर्म समझकर उसका पालन करने का महाप्रयत्न कर रहे हैं। अंत में तो यही अहिंसा काम देगी।

भारत के स्वतन्त्र होने पर भी सेना तो रहेगी ही। अपनी अहिंसा में मैं अभी इतनी शक्ति नहीं पाता कि जिससे लोग सेना की अनावश्यकता की बात मान लें। और सेना होगी तो सैनिक शिक्षण भी होगा ही। यह तो अनुमान हुआ। ऐसा होना असम्भव नहीं कि यदि हम सचमुच अहिंसा से स्वतन्त्रता ले लें तो सेना की ज़रूरत न रह जाय। जिस प्रकार अहिंसा की शक्ति अपार है उसी प्रकार अहिंसक की शक्ति भी अपार है। अहिंसक खुद कुछ नहीं करता। उसका प्रेरक ईश्वर होता है। इसलिए वह स्वयं कैसे कह सकता है कि भविष्य में उससे ईश्वर क्या काम करायेगा। इसलिए यहां सिद्धान्त के साथ समझौते का प्रश्न नहीं, शक्ति की माप का प्रश्न है। साँप से डरकर मैं उसे मारूं तो मैं कोई समझौता नहीं करता। अपनी अशक्ति का प्रदर्शन करता हूं। ईश्वर ने मुझे इससे ज्यादा शक्ति नहीं दी। अथवा ऐसी शक्ति पाने लायक शुद्धि नहीं दी; तप नहीं किया, यह कहा जायगा। समझौता तो मनुष्य जानबूझ कर करता है।....

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ५।४।'३५]

४३. अनिवार्य हिंसा

जो पति अत्यन्त दुख पा रहा है, और जिसका दुःख सेवा से भी शान्त नहीं हो सकता, उसकी मृत्यु साधने में मैं पाप नहीं देखता। परन्तु पति होश में हो तो उससे पूछ लेना चाहिए। वह अति दुख पाते हुए भी जीना चाहे तो उसे जीने देना चाहिए।

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। २१।६।'३५]

४४. अहिंसा किसे कहें ?

प्रिय महात्मा जी, आप इधर कुछ हफ्तों से कांग्रेस के काम में व्यस्त थे इसलिए मेरे 'वचन की अहिंसा'-विषयक प्रश्न के उत्तर में लिखे हुए आपके पत्र की पहुँच मैंने नहीं लिखी, और १९ दिसम्बर के 'हरिजन' में आपने प्रस्तुत प्रश्न की विस्तार-पूर्वक चर्चा करने का जो सौजन्य दिखाया उसके लिए मैंने आपको धन्यवाद नहीं दिया। मैंने आपकी दलील ध्यान से पढ़ी है और उसपर काफ़ी विचार भी किया है किन्तु जो ईसाई पादरी गत सौ वर्ष से आपकी मातृभूमि के कल्याणार्थ इतनी

बड़ी सुसेवा कर रहे हैं उन पादरियों के वर्ग के सम्बन्ध में आपने जिन शब्दों का उपयोग किया है, उनमें आप अहिंसक नहीं रहे, यह विचार मैं अपने दिल से दूर नहीं कर सका।

आप कहते हैं--'हिंसा में आवश्यक वस्तु यह है कि विचार, वचन या आचार के पीछे हिंसक हेतु होना ही चाहिए, अर्थात् वहां विरोधी को क्षति पहुंचाने का इरादा होगा।' आपकी यह बात ठीक है, मैं ऐसा नहीं मानता। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि कोई पिता अपने हठी और कहना न माननेवाले लड़के के किसी अपराध के लिए उसके गाल पर थप्पड़ मार देता है। पिता के इस काम के पीछे हिंसक हेतु था या उसके दिल में अपने लड़के को चोट पहुंचाने का इरादा था, यह कोई एक क्षण के लिए भी नहीं मान सकता। तो भी लड़के के गाल पर थप्पड़ मारने में निरी हिंसा थी, क्योंकि उससे बालक के गाल पर चोट पहुंची। इसी तरह, जब कोई आदमी अपने विरोधी के खिलाफ़ उसके दिल या उसकी भावना को दुखाने वाले शब्द कहता है तब उसके उन शब्दों के पीछे, माना कि हेतु अहिंसक था, तो भी उसने हिंसा तो की ही क्योंकि जैसे उपर्युक्त उदाहरण में पिता ने अपने लड़के के गाल को चोट पहुंचाई वैसे ही इस आदमी ने अपने विरोधी की भावना को आघात पहुंचाया है। आप आगे चलकर कहते हैं:--'अहिंसा की सच्ची कसौटी तो यह है कि हिंसा करने के लिए कोई कितना ही उभाड़े तब भी मनुष्य इस तरह विचार करे, बोले या बरते कि जिससे उसके विरोधी के शरीर, मन या आत्मा को चोट न पहुंचे।' आपने यह वाक्य ठीक कहा है--यदि व्यक्तियों या समाजों में अथवा राष्ट्रों में विचार की अहिंसा विकसित करनी हो तो सत्य, क्षण भर के लिए वह चाहे जितना कठोर या कटु लगे तो भी, कह देना चाहिए। परन्तु ज़रा अधिक धैर्य, संयम और सद्भावपूर्वक विरोधी के विरुद्ध उसके यही विचार कुछ मुलायम भाषा में व्यक्त किये जा सकते हों तब यह ठीक नहीं कि कठोर सत्य कठोर वाणी में कहना चाहिए। इस चर्चा में आपकी वाणी की कठोरता के मुकाबले में दीनबन्धु एण्डरूज की दलील करने की नर्मी से भरी हुई मिठास कितनी स्पष्ट दीख पड़ती थी। महात्मा जी, आपका सदा का स्वभाव तो उदाहरणीय शान्ति, धैर्य और संयम से बात करने का है, इसलिए आप इस कठोरता को सहज ही दूर कर सकते थे। इस कठोरता में, मैं फिर कहता हूं, आपने पादरी वर्ग के प्रति वचन की हिंसा की है।

आपकी आयु और आरोग्य का शुभचिन्तक,

आपका,

पूना, १०-१-१९३६

अ० सो० वाडिया

पुनश्च––आप चाहें तो 'हरिजन' में इस पत्र को खुशी से छाप सकते हैं।

इस पत्र को मैं सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूं। किन्तु श्री वाडिया ने जो मत प्रकट किया है, उससे मेरी राय बिल्कुल भिन्न है। लड़के को तमाचा यदि क्रोध या अधीरता से न मारा गया हो तो वह हिंसा निश्चय ही नहीं है, जैसे कि उसे जब सांप ने काटा हो और उसे जाग्रत रखने की ज़रूरत हो, या जब बालक तेज़ बुखार के ज़ोर में बिल्कुल पागल की तरह भाग-दौड़ कर रहा हो, और कसकर तमाचा मारने से ही होश में आता हो, तो उस समय मारा हुआ तमाचा हिंसा में नहीं आता। इससे चोट तो अवश्य पहुँची, परन्तु तमाचा न मारा होता तो वह अवश्य ही मर जाता। प्रत्येक सर्जन डाक्टर तकलीफ़ तो पहुँचाता है परन्तु हर समय वह हिंसक नहीं होता बल्कि परोपकारी कहा जाता है, और यह तकलीफ़––कभी-कभी तो बड़ी गहरी तकलीफ़––पहुँचाने के लिए उसका एहसान माना जाता है और उसे काफ़ी बड़ी फीस मिलती है। वह श्री वाडिया की व्याख्या के अनुसार नहीं, किन्तु मेरी व्याख्या के अनुसार काम करता है। मेरे विद्वान् पत्र-लेखक के कथनानुसार देखा जाय तो ईसा मसीह ने अपने जमाने के कुछ लोगों को साँपों की सन्तति कहकर निरी हिंसा का प्रयोग किया था। उनके शब्दों और उनके कार्यों से उनके जमाने के लोगों को इतनी चोट पहुंची कि अन्त में वे उनके प्राणों के गाहक बन गये। और सत्य, जैसा कि लेखक कहता है, यदि कठोर हो सकता है तो उसे व्यक्त करने का नम्रतापूर्ण मार्ग ऐसा कौन सा है, जिससे विरोधी को कभी क्रोध आये ही नहीं? कोई आदमी निरा सफेद झूठ बोलता है या दिन-दहाड़े डकैती या हत्या करता है तो मैं अपने उस भाई को––भाई तो वह अवश्य ही है––झूठा या चोर या हत्यारा कहूं या नहीं? या फिर द्राविड़ी प्राणायाम-जैसी भाषा काम में लाकर यह कहूं कि वह सत्यवादिता के चारों ओर की भूमि में भ्रमण करता है, या जो चीज उसकी नहीं है उसे वह शायद बिना चोरी के इरादे के उठा लेता है अथवा उसका इरादा शायद प्राण लेने का नहीं है, पर वह निर्दोष हत्या करता है? और ऐसी भाषा का यदि मैं प्रयोग करूं तो जिस आदमी के बारे में मैंने कहा हो उसे मेरी वाणी से कभी चोट पहुंचे ही नहीं, इसका क्या ज़रा भी आश्वासन है? कठोर सत्य विवेक और नम्रतापूर्वक कहा जा सकता है, परन्तु पढ़ने में तो वे शब्द कठोर लगेंगे ही। सत्य का पालन करना हो तो आपको झूठे को झूठा कहना ही चाहिए। यह शब्द शायद कठोर समझा जाय, परन्तु उपयोग इस शब्द का करना ही पड़ेगा। जिस उदाहरण के विषय में श्री वाडिया ने आपत्ति उठाई है, उसके बारे में मुझे ज़रा भी पश्चात्ताप नहीं हुआ।

मैं इन मित्र से कहना चाहता हूं कि पादरियों ने जो स्कूल, अस्पताल आदि

स्थापित किये हैं उनके इन कामों से प्रभावित होकर मेरे इन मित्रों ने भी, दूसरे बहुत से अच्छे आदमियों की तरह, अपनी निर्णय-शक्ति को कलुषित होने दिया है। इन पादरियों के परोपकारी कार्यों के लिए इन्हें पूरा-पूरा यश देते हुए भी मेरी स्थिरबुद्धि मुझसे कहती है कि उनके कामों के पीछे लोगों को धर्मान्तरित करने का जो हेतु रहता है उसके कारण उन कामों का तेज मन्द पड़ जाता है। धर्माचरण और धर्मान्तर की प्रवृत्ति के विषय में मैंने जो वचन कहे हैं वे किसी प्रकार हिंसक नहीं ठहरते।

इसलिए श्री वाडिया जिस निर्णय पर पहुंचे हैं उसमें, या अहिंसा के विषय में उन्होंने दीनबन्धु एण्डरूज़ की तुलना में मुझे जो नीचे रखा है, उसमें मुझे सम्मति नहीं देनी है। मेरे स्वभाव में उदाहरणीय शान्ति, धैर्य और संयम है, ऐसा यदि वह सचमुच ही मानते हैं तो मैं उन्हें विश्वास दिला सकता हूं कि जिस प्रसंग का उल्लेख उन्होंने किया है उस प्रसंग में मैंने अपना ऐसा एक भी गुण हाथ से नहीं जाने दिया था जिसे कि वे मेरा गुण मानते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि मैंने कभी संयम को खोया ही नहीं। मैं संयम ज़रूर खो बैठता हूं, और वे प्रसंग मेरे लिए लज्जाजनक होते हैं। श्री वाडिया को ऐसे प्रसंग देखने का मौका नहीं आया तो इसका कारण यह है कि सार्वजनिक जीवन में, और विशेषत: जो मुझे अपना शत्रु मानते हैं, उनके प्रति किये गये बर्ताव में संयम रखने की कठिन तालीम मैंने अपने मन को दी है। परन्तु यही बात मैं अपने खानगी जीवन के सम्बन्ध में नहीं कह सकता। जिनका मेरे साथ अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है, वे तो जानते हैं कि मैं उनके साथ अधीर हो सकता हूं और कभी-कभी तो छूटे हुए जंगली रीछ की तरह बर्ताव कर बैठता हूं। मैं जानता हूं कि उनके साथ भी मुझे अधीर नहीं होना चाहिए। वे अत्यन्त उदारता के साथ मेरा क्रोध बर्दाश्त कर लेते हैं, क्योंकि उन्हें यह पक्का विश्वास है कि मेरे मन में उनके सम्बन्ध में कोई बुरा भाव नहीं है, और मैं उनका अच्छे-से अच्छा मित्र और मार्ग-दर्शक हूं। परन्तु उनके प्रमाणपत्र का मेरे लिए कोई मूल्य नहीं। इससे कभी मैं भुलावे में पड़ा ही नहीं। मैं जानता हूं कि यदि उनके प्रति मैं अनासक्तिपूर्वक बर्ताव कर सकूं, और उन्होंने स्वयं नित्य के आचरण के लिए जो नियम ग्रहण किया हो उसमें वे मेरी दृष्टि से चूकते हुए मालूम होते हों तब मैं उन्हें दोष न लगाऊं तो मैं अधिक अच्छा मनुष्य और उनका अधिक अच्छा मार्ग-दर्शक हो सकता हूं। किन्तु गीता में बताई हुई अनासक्ति की साधना मानो खांड़े की धार पर चलना है, तो भी पूर्ण शान्ति और आत्मा तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए वह आवश्यक है।

—मूल अंग्रेजी। ह० ज० ६।२।'३७। ह० से० १३।२।'३७]

● गीता में बताई हुई अनासक्ति की साधना मानो खांडे की धार पर चलना है।

४५. अहिंसा पर बातचीत

[१९३६ में नीग्रो लोगों का एक शिष्टमण्डल भारत आया था। उन्होंने गांधी जी से अहिंसा तथा अपनी समस्याओं के हल के सम्बन्ध में बातचीत की थी। १९३७ ई० में 'यंगमैंस क्रिश्चियन असोसिएशन' की विश्व-समितियों की बैठक के लिए जो नीग्रो सज्जन आये, उन्होंने भी इसी विषय पर बातचीत की। डा० टोबिया एवं प्रो० मेज़ से गांधी जी की जो बातें हुईं उसका विवरण स्व० महादेव भाई ने 'हरिजन' पत्रों में प्रकाशित कराया था। उसी से लेकर आवश्यक अंश यहां प्रश्नोत्तर के रूप में दिये जा रहे हैं।—संपा०]

डा० टोबिया—आपके अहिंसा-सिद्धान्त ने मेरे जीवन पर बहुत ज्यादा प्रभाव डाला है। क्या सदैव की भाँति अब भी आप इस पर इतना ही दृढ़ विश्वास रखते हैं?

गांधी जी—अवश्य; बल्कि मेरा विश्वास तो इसपर बराबर बढ़ता ही जा रहा है।

डा० टोबिया—संयुक्त राज्य अमेरिका के नीग्रो लोग, जिनकी संख्या १ करोड़ २० लाख है, सामूहिक हिंसा से मुक्ति, मताधिकार की पर्चियों के अबाध उपयोग, अलग रखे जाने से छुटकारा-जैसे मौलिक अधिकार प्राप्त कर ने के लिए लड़ रहे हैं। क्या आप, हिन्दुस्तान की अपनी लड़ाई के अनुभ व के आधार पर, हमें कुछ सलाह और प्रोत्साहन देंगे?

गांधी जी—दक्षिण अफ्रीका में मुझे भी ऐसी कुछ बातों के विरुद्ध लड़ना पड़ा था, यद्यपि वह लड़ाई थी कहीं छोटे रूप में। कुछ कठिनाइयां तो अब भी बनी हुई हैं। मैं जो कुछ कह सकता हूं वह यही कि उनसे मुक्ति पाने के लिए अहिंसा के सिवा और कोई रास्ता नहीं है किन्तु यह रास्ता दुर्बल एवं अज्ञान लोगों का नहीं बल्कि बलवान और बुद्धिमान लोगों का है।

डा० टोबिया—बताइए कि अपने नीग्रो भाइयों को उनके भविष्य के विषय में मैं क्या कहूं?

गांधी जी—हक़ तो उनका है ही। इसके साथ यदि वे अहिंसा को अपना एकमात्र अस्त्र बना लें तो उनका भविष्य निश्चित रूप से उज्ज्वल है।

[प्रो० मेज़ से गांधी जी की जो बातें हुईं, उनमें तो उन्होंने अपना हृदय ही उंडेल दिया।]

ग़लत नाम

गांधी जी—अहिंसातमक प्रतिरोध (नान-वायोलेंट रेसिस्टेंस) के लिए निष्क्रिय

प्रतिरोध (पैस्सिव रेसिस्टेंस) ग़लत नाम है, क्योंकि हिंसात्मक प्रतिरोध की अपेक्षा यह कहीं ज्यादा क्रियात्मक (ऐक्टिव) है। यह प्रत्यक्ष और सतत है किन्तु तीन-चौथाई अदृश्य और केवल एक-चौथाई दृश्य है। अपने प्रकट रूप में अर्थात् चर्खे के रूप में, जिसे मैंने अहिंसा का प्रतीक कहा है, यह प्रभावहीन मालूम पड़ता है। अपने दृश्य रूप में वह बेअसर मालूम पड़ता है, किन्तु अन्तिम परिणाम की दृष्टि से यह अत्यन्त क्रियाशील और बहुत अधिक प्रभावकारी है। अहिंसावादी कताई में जो खामी कर रहे हैं, उसे इस ज्ञान के कारण मैं देख सकता हूं। मैं उनसे अधिक जागरूकता और अथक अध्यवसाय के लिए कहता हूं। अहिंसा को ठीक तरह समझकर प्रयुक्त किया जाय तो वह बड़ी भारी क्रियात्मक शक्ति है। हिंसात्मक व्यक्ति की हलचल जबतक रहती है तब तक अत्यधिक दृश्य होती है किन्तु होती है वह सदैव अल्पकालिक। इटालियनों ने अबीसिनियनों को कत्ल कर दिया, इससे ज्यादा दुःखद दृश्य भला क्या हो सकता है? उसमें छोटी हिंसा बड़ी हिंसा के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी। किन्तु यदि अबीसीनियन युद्ध न करके अपने को कत्ल होने देते तो जान तो यही पड़ता कि वे कुछ नहीं कर रहे हैं किन्तु उस समय दिखाई न देने पर भी उनकी हलचल कहीं अधिक प्रभावकारी होती। एक ओर हिटलर और मुसोलिनी तथा दूसरी ओर स्टालिन हिंसा का तात्कालिक प्रभाव ही दिखला सकते हैं। किन्तु यह चंगेज के कत्ल की तरह अल्पकालिक ही होगा, जब कि बुद्ध के अहिंसात्मक कार्य का प्रभाव अब भी कायम है और सम्भवतः युग के साथ-साथ बढ़ता जायगा। जितना ही इस पर आचरण हो उतनी ही अधिक प्रभावकारी और अक्षय यह बात है। और अन्त में सारा संसार हक्का-बक्का होकर चिल्ला पड़ता है कि 'अरे, यह तो चमत्कार हो गया।' जितने भी चमत्कार हुए हैं वे सब अदृश्य शक्तियों के चुपचाप और प्रभावकारक रूप में काम करते रहने से ही हुए हैं। इनमें अहिंसा अत्यधिक अदृश्य और बहुत अधिक प्रभावकारी है।

क्या सर्वसाधारण को सिखाया जा सकता है?

प्रो० मेज़—अहिंसा की उच्चता के बारे में मेरे मन में कोई शंका नहीं है किन्तु मुझे जिस बात की चिन्ता है वह यह कि बड़े पैमाने पर इसका आचरण कैसे किया जा सकता है और प्रेम के विषय में सर्वसाधारण के मन को अनुशासन में रखना कितना कठिन है। व्यक्तियों को अनुशासन में रखना अपेक्षाकृत सरल है। जब सर्वसाधारण अनुशासन भंग कर दें तब नाकेबन्दी का क्या रूप होगा? तब हम लौट पड़ें या आगे बढ़ते जायं?

गांधी जी—हमारे आन्दोलन में, यहां हमें इस बात का अनुभव हो चुका

है। केवल प्रचार करने से लोग दक्ष नहीं बनते। अहिंसा तो ऐसी चीज़ है जिसका प्रचार नहीं किया जा सकता। इसपर तो आचरण करना पड़ता है। हिंसा का अभ्यास तो बाह्य प्रतीकों के द्वारा कराया जा सकता है। पहिले तख्ते पर निशाना लगाते हैं, फिर चाँदमारी होती है। उसके बाद जानवरों का शिकार करके आप नाश की कला में निपुण बन जाते हैं। किन्तु अहिंसक आदमी के पास कोई प्रत्यक्ष हथियार नहीं होता और इसलिए न केवल उसकी वाणी बल्कि उसका कार्य भी प्रभावहीन मालूम होता है। मैं आपसे ऐसी हर तरह की मीठी बातें कर सकता हूं जिनका कोई अर्थ नहीं होता। दूसरी ओर आपके प्रति सच्चा प्रेम रखते हुए भी मेरा बाह्य प्रदर्शन या प्रकट व्यवहार नागवार लगने-जैसा हो सकता है। इस प्रकार ऊपर से दोनों मामलों में मेरा व्यवहार एक-सा होते हुए भी उनका प्रभाव भिन्न-भिन्न हो सकता है। क्योंकि हमारे कार्य का असर जितना हम जानते हैं, प्रायः उससे कहीं ज्यादा होता है। इस तरह मेरे ऊपर आप अनजाने जो असर डाल रहे हों, उसे सम्भव है, मैं कभी जान ही न सकूं। किन्तु जान-बूझकर डाले जानेवाले असर से वह स्थायी और कहीं ज्यादा होगा। हिंसा में तो अदृश्य कुछ है ही नहीं। दूसरी ओर अहिंसा तीन-चौथाई अदृश्य है, और इसीलिए उसी अदृश्यता के अनुपात में उसका असर भी ज्यादा है। अहिंसा जब क्रियात्मक हो जाती है तो असाधारण गति के साथ आगे बढ़कर चमत्कार का रूप धारण कर लेती है। अतः सर्वसाधारण के मन पर पहिले अज्ञात रूप से इसका असर होता है और फिर ज्ञात रूप में। जब यह ज्ञात रूप में असर करने लगती है तो प्रकट विजय सामने आ जाती है। स्वयं मेरे अनुभव की बात तो यह है कि जब जनता कमज़ोर पड़ती हुई मालूम होती थी तब भी मेरे अन्दर पराजय की कोई भावना नहीं थी। इस प्रकार १९२२ में सविनय अवज्ञा का परित्याग करने के बाद भी मेरा अहिंसा की शक्ति में पूरा विश्वास था, और आज भी मैं उसी आशापूर्ण मनःस्थिति में हूं। यह केवल भावुकता की बात नहीं है। मान लीजिए कि मुझे अरुणोदय का कोई चिह्न न दिखाई दे, तो क्या मुझे अरुणोदय होने का भरोसा छोड़ देना चाहिए? नहीं, मुझे अपना विश्वास नहीं छोड़ना चाहिए। अपने उपयुक्त समय पर प्रत्येक बात अवश्य होगी।....अपाहिज, अन्धे और कोढ़ी हिंसात्मक लड़ाई में शरीक नहीं हो सकते। यही नहीं बल्कि अन्य लोगों के लिए भी सेना में भर्ती होने की अवस्था मर्यादित होती है किन्तु अहिंसात्मक लड़ाई में उम्र की कोई कैद नहीं है; अन्धे, अपाहिज और रोगी भी उसमें शरीक हो सकते हैं--न केवल पुरुष वरन् स्त्रियां भी। अहिंसा की भावना जब लोगों पर छा जाती है और वास्तविक रूप में काम करने लगती है, तब उसका प्रभाव सब के लिए दृश्य या प्रत्यक्ष हो जाता है।

....हो सकता है कि अपने जीवन-काल में मुझे सफलता न मिले किन्तु इस बात में मेरा विश्वास आज सदा से भी अधिक दृढ़ है कि विजय अहिंसा के द्वारा ही होगी।....जब मैं सेगांव आया तो मुझसे कहा गया कि यहां के लोग कदाचित् आपसे सहयोग न करें और सम्भव है आपका बहिष्कार भी करें। मैंने कहा––जो भी हो किन्तु अहिंसात्मक कार्य का तो यही तरीका है। यदि ऐसे गांव में जाऊं जो दूर भी हो और एक तरफ भी हो, तो प्रयोग और अच्छी तरह होगा। यह बात अहिंसा की कला की खोज करते हुए मुझे मालूम हुई है। हरएक दिन जो गुजरता है मेरे विश्वास को प्रखर बनाता है। इस विश्वास को सफल करने के लिए ही यहां आया हूं और यदि ईश्वर की यही इच्छा हुई कि इसी में मेरा प्राणान्त हो तो ऐसा करते हुए ही मैं मर भी जाऊंगा। अहिंसा का तभी कुछ महत्व हो सकता है जब कि विरोधी शक्तियों के मुकाबिले में उसे काम करना पड़े....

क्या प्रेम-भाव से हिंसा सम्भव है ?

प्रो० मेज––क्या प्रेम-भाव से हिंसा करना सम्भव है ?

गांधी जी––नहीं, कभी नहीं। अपने स्वयं के अनुभव का एक उदाहरण आपको बताता हूं। एक बछड़े की टाँग टूट गई थी और भयंकर रूप से घाव ही घाव हो गये थे। यहां तक कि उससे कुछ खाया नहीं जाता था और बड़ी मुश्किल से वह सांस लेता था। तीन दिन तक मैं अपने आप से और अपने साथियों से उसके विषय में तर्क-वितर्क करता रहा। इसके बाद मैंने उसे मरवा दिया। मेरा वह काम अहिंसात्मक था, क्योंकि वह बिलकुल निःस्वार्थ भाव से किया गया था। ऐसा करने में मेरा एकमात्र उद्देश्य यही था कि बेचारा बछड़ा पीड़ा से मुक्त हो जाय। कुछ लोगों ने मेरे इस काम को हिंसात्मक कहा है किन्तु मैं तो उसे एक सर्जन का आपरेशन कहता हूं। यदि मेरा पुत्र भी ऐसी ही हालत में हो तो उसके साथ भी मैं ठीक ऐसा ही करूंगा। मेरा कहना यही है कि ज्योंही आप अपवादों की बात करते हैं, अहिंसा हमारे अस्तित्व के सर्वोच्च नियम के रूप में समाप्त हो जाती है।

प्रो० मेज––किसी विशाल बहुमत के विरुद्ध अल्पमत को क्या करना होगा ?

गांधी जी––मैं कहूंगा कि बहुमत की अपेक्षा अल्पमत अहिंसा-द्वारा कहीं अधिक काम कर सकता है। साइमंड्स नाम के मेरे एक अंग्रेज मित्र थे। वह कहा करते थे––'मैं तभी तक आपके साथ हूं जब तक आप अल्पमत में हैं। जैसे ही आप बहुमत में आ जायंगे, मैं अलग हो जाऊंगा।' मुझे दक्षिण अफ्रीका में अपने अल्पमत का नियन्त्रण करने में उतनी कठिनाई नहीं हुई जितनी कि यहां बहुमत का नियन्त्रण करने में हुई है। किन्तु इसपर से यह कहना बिलकुल गलत होगा कि

अहिंसा दुर्बलों का अस्त्र है। क्योंकि अहिंसात्मक व्यवहार में तो हिंसात्मक व्यवहार से भी ज्यादा वीरता की आवश्यकता होती है। डेनियल ने जब मीडियाइयों और फारस वालों के नियमों का भंग किया तो उसका कार्य अहिंसात्मक था।

शत्रु पर पड़ने वाला प्रभाव

प्रो० मेज़—आपकी अहिंसा के फल-स्वरूप शत्रु की जो दुर्दशा हो सकती है उसका भी आपको कोई ख्याल होता है?

गांधी जी—अवश्य। उस हालत में आपको उसी प्रकार अपना आन्दोलन स्थगित करना पड़ेगा जैसे दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेज़ मजदूरों के भी सरकार के विरुद्ध हो जाने पर मैंने किया था। युरोपियन मजदूरों ने तो मुझे अपने साथ मिलकर सरकार से संयुक्त मोर्चा लेने को कहा था किन्तु मैंने इन्कार कर दिया।

प्रोफेसर बीच में ही बोल उठे—फिर अहिंसा कभी आप पर उलटकर आघात नहीं करेगी जबकि हिंसा अपने आपको ही नष्ट कर देगी।

गांधी जी—हां। हिंसा से तो हिंसा ही पैदा होगी, किन्तु मैं आपको बताऊं कि मेरा तर्क एक महापुरुष की इस बात से कट जाता है—अहिंसा के इतिहास की ओर देखो। ईसा मसीह तो सूली पर चढ़ जाते हैं किन्तु उनके अनुयायी खून बहाते हैं। किन्तु इससे कुछ सिद्ध नहीं होता। फ़ैसला देने के लिए हमारे पास पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं। हम तो ईसा मसीह के सम्पूर्ण जीवन के विषय में भी नहीं जानते। उनके अनुयायियों ने कदाचित् अहिंसा के सन्देश को पूरी तरह हृदयंगम नहीं किया है।....किन्तु आप यह न समझ लें कि अहिंसा के विषय में मैं जो कुछ कहूं वही अन्तिम है। मैं अपनी मर्यादाओं को जानता हूँ। मैं तो सत्य का एक विनम्र शोधक मात्र हूं और मैं जो कुछ दावा करता हूं वह बस यही है कि मैंने जो भी प्रयोग किये, उनमें से प्रत्येक ने मेरे इस विश्वास को ज्यादा से ज्यादा गहरा किया है कि मनुष्य जाति के पास अहिंसा सबसे ज़बर्दस्त शक्ति है और इसका व्यवहार न केवल व्यक्तियों तक सीमित है बल्कि सामूहिक रूप में भी इस पर अमल किया जा सकता है।

—मूल अंग्रेजी। ह० ज० २०।३।'३७। ह० से० २७।३।'३७]

- **अहिंसा को ठीक तरह समझ कर प्रयुक्त किया जाय तो वह बड़ी भारी क्रियात्मक शक्ति है।**
- **जितने भी चमत्कार हुए हैं वे सब अदृश्य शक्तियों के चुपचाप और प्रभावकारी रूप में काम करने से ही हुए हैं।**
- **अहिंसा ऐसी चीज है जिसका प्रचार नहीं किया जा सकता।**

- अहिंसा का तभी कुछ महत्व हो सकता है जबकि उसे विरोधी शक्तियों के मुकाबिले में काम करना पड़े।
- अहिंसात्मक व्यवहार में हिंसात्मक व्यवहार से भी ज्यादा वीरता की आवश्यकता होती है।
- मनुष्य जाति के पास अहिंसा सबसे जबर्दस्त शक्ति है।

४६. सत्य और अहिंसा का संगठन

मैं ज़ोर देकर कहता हूं कि सत्य और अहिंसा का संगठन हो सकता है, अन्यथा वे मेरे लिए सनातन सिद्धान्त नहीं रहेंगे। सनातन सिद्धान्त में, जैसा कि जैन कहते हैं, कोई अपवाद नहीं हुआ करते। अतः सत्य और अहिंसा मठवासी संन्यासियों के ही धर्म नहीं हैं; अदालतों, धारासभाओं और अन्य व्यवहारों में भी ये सनातन सिद्धान्त लागू हो सकते हैं। आपकी श्रद्धा की बड़ी कठोर परीक्षा होनेवाली है परन्तु इस कठोर परीक्षा के डर से ही आप उससे पहलू न बचायें।

सत्य और अहिंसा जड़ बुद्धिवालों के लिए नहीं हैं। इनकी शोध या अनुसरण करने के फलस्वरूप शरीर, बुद्धि और आत्मा की उन्नति होनी ही चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता है, तो या तो सत्य और अहिंसा मिथ्या हैं या हम मिथ्या हैं। चूंकि सत्य और अहिंसा का मिथ्या होना असम्भव है इसलिए हमीं मिथ्या ठहरते हैं। सारा ही रचनात्मक कार्यक्रम....सत्य और अहिंसा की ही शोध के लिए है। धारासभाओं में जाने की यदि हमारे लिए कोई दिलचस्पी हो सकती है तो वह केवल इसीलिए हो सकती है; किसी और कारण से नहीं। सत्य और अहिंसा साधन भी हैं और साध्य भी, और यदि अच्छे-सच्चे आदमी धारा सभाओं में भेजे जायं, तो वह सत्य और अहिंसा की ठोस शोध का साधन बन सकती है। यदि ऐसा नहीं हो सकता तो यह अपराध हमारा है, न कि उनका।

—गांधी-सेवा-संघ हुगली में गांधी जी के उपसंहारात्मक भाषण से। ह० से० ८।५।'३७]

- सारा रचनात्मक कार्यक्रम सत्य और अहिंसा की ही शोध के लिए है।

४७. साम्प्रदायिक दंगे और अहिंसक सेना

[इलाहाबाद में हुए भयंकर साम्प्रदायिक दंगे से क्षुब्ध होकर गांधी जी ने उसके परिप्रेक्ष्य में अहिंसा और शान्ति-सैन्य-गठन पर विचार व्यक्त किये। उसके आवश्यक अंश उद्धृत हैं।—संपा०]

ये दंगे और अन्य कुछ बातें ऐसी हैं जिन पर स्थिर भाव से हमें सोचना ही चाहिए कि क्या वस्तुतः महासभा[1] का विकास हो रहा है और वह अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करती जा रही है?

....मेरा विश्वास है कि महासभा की व्यापक वृद्धि, चाहे वह कितनी अधूरी क्यों न हो, उसके द्वारा अहिंसा-नीति के स्वीकार और पालन के कारण हुई है। किन्तु अब कांग्रेसी अहिंसा के रूप पर विचार करने का समय आ गया है।

प्रश्न यह है कि यह अहिंसा दुर्बलों अथवा असहायों की अहिंसा है या बलवान और सशक्तों की? यदि निर्बलों की है तो यह हमें अपने लक्ष्य पर कभी न पहुंचायेगी अपितु दीर्घ काल तक इसका पालन किया गया तो यह हमें सदा के लिए स्वराज्य के अयोग्य बना देगी।

निर्बल और असहाय तो व्यवहार में इसलिए अहिंसक बनते हैं कि इसके अतिरिक्त वे कुछ कर ही नहीं सकते। किन्तु वस्तुतः उनके हृदय में हिंसा निहित रहती है और वे केवल उसके प्रदर्शन हेतु अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं। अतः कांग्रेसवादियों के लिए यह आवश्यक है कि वे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से इस बात की जांच करें कि उनकी अहिंसा किस प्रकार की है।

....अब तक अर्थात् सत्रह वर्ष तक अहिंसा का पालन कर लेने के पश्चात् महासभा में इतनी सामर्थ्य तो आही जानी चाहिए कि वह कुछ सहस्र नहीं बल्कि लाखों ऐसे स्वयंसेवकों की अहिंसक सेना खड़ी कर सके जो उन समस्त अवसरों पर काम आ सके जिनके लिए पुलिस और सेना की आवश्यकता पड़ती है।

हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि शान्ति की स्थापना करने वाले एक वीर गुप्ता ही नहीं अपितु सैकड़ों सामने आ सकें और अहिंसक सेना सशस्त्र सेना की भांति न केवल दंगे के समय बल्कि शान्ति के समय भी काम करे।

ये सैनिक सतत ऐसे रचनात्मक कार्यक्रमों में लगे रहेंगे जिनसे दंगों का होना असम्भव हो जाय। साथ ही जिस प्रकार सेना को किसी भी आवश्यकता-हेतु प्रस्तुत रहना चाहिए उसी प्रकार इन सैनिकों का यह कर्तव्य होगा कि वे विविध जातियों

१. भारतीय राष्ट्रीय महासभा।

२. इलाहाबाद के श्री पशुपतिनाथ गुप्त साम्प्रदायिक दंगे को शान्त करने में बुरी तरह आहत हुए थे। गांधी जी ने यह लेख लिखा तब उनकी मृत्यु की सूचना ही मिली थी किन्तु बाद में इसका खण्डन किया गया और गम्भीर रूप में आहत होने का विवरण प्रकाशित किया गया। —संपा०।

को सम्मिलित करने के अवसर ढूंढ़ते रहें और शान्ति-प्रचार का कार्य करते रहें। वे ऐसे कार्य-कलाप में लगे रहें जिससे उनका सम्पर्क अपने मुहल्लों अथवा डिवीजन के प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बच्चे से बना रहे और भीड़ के क्रोध को शान्त करने के लिए वे पर्याप्त संख्या में प्राणों की आहुति-दान हेतु प्रस्तुत रहें। ऐसी कुछ सौ अथवा कुछ सहस्र मृत्यु दंगों को सदा के लिए समाप्त कर देगी। जान-बूझकर भीड़ के क्रोध का शिकार होने वाले कुछ सौ तरुण स्त्री-पुरुषों का बलिदान ऐसे उन्माद का सामना करने के लिए पुलिस और सेना की अपेक्षा निश्चय ही किसी भी दिन एक सस्ता और वीरतापूर्ण उपाय ही होगा।

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० २६।३।'३८]

- **निर्बल और असहाय तो व्यवहार में इसलिए अहिंसक बनते हैं कि वे इसके अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकते।**

४८. आतम-निरीक्षण की आवश्यकता

[उत्तर प्रदेश--तत्कालीन संयुक्त प्रान्त--के साम्प्रदायिक दंगों से व्यथित होकर गांधी जी ने अपने दो सहकर्मियों से वार्ता करते हुए अहिंसा के सम्बन्ध में आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। वार्ता के आवश्यक अंश उद्धत हैं।--संपा०]

....मुझे इस बात के लिए खेद है कि हमारे मन्त्रियों[1] को सेना और पुलिस बुलानी पड़ी।....मुझे ऐसा लगता है कि यहां कांग्रेस की हार और अंग्रेजों की जीत हुई है। ऐसे अवसरों पर हमारी अहिंसा कैसे असफल हो जाती है? तो क्या यह निर्बलों की अहिंसा है? हमारी अटल श्रद्धा से हमें गुण्डे भी न डिगा सकें; वे हमें यह कहने को विवश न कर सकें कि हम उन्हें फाँसी के तख्ते पर लटका देंगे अथवा गोली से उड़ा देंगे। वे भी तो हमारे ही देशवासी हैं। यदि वे हमें मारते हैं तो उन्हें ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए।

आप निर्बलों की अहिंसा को संगठित हिंसा के मुकाबले में नहीं ला सकते। उसके लिए तो सर्वश्रेष्ठ वीरों की अहिंसा ही उपयुक्त हो सकती है।

आप कहेंगे कि हम पर्याप्त अहिंसक बने रहे, हम लोगों ने सविनय अवज्ञा के समय अहिंसात्मक रहकर लाठियों और उससे भी बदतर बातों को सहन किया।

१. कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से अभिप्राय है।--संपा०

इस पर मेरा-उत्तर है कि हम ने यह सब किया अवश्य किन्तु पर्याप्त मात्रा में नहीं किया। हम लोगों को दांडी-यात्रा के अन्त में स्वराज्य इसलिए नहीं मिला कि हमारी अहिंसा उच्चकोटि के वीरों की विशुद्ध अहिंसा नहीं थी।

अपने ऊपर किये गये अत्याचारों को सहन करने के परिणामस्वरूप हम कई पग आगे बढ़ गये फिर भी हम लोगों में हिंसात्मक वृत्ति छिपी पड़ी रही।

....उसी समय से हम पग-पग पर आगे बढ़ रहे हैं। किन्तु अब आत्म-निरीक्षण का समय आ गया है।

—ह० ज०। ह० से० २।४।'३८]

४९. अहिंसा अथवा हिंसा ?

संयुक्त प्रान्त में हाल में जो दंगे हुए हैं, उनके सम्बन्ध में मेरी आलोचनाओं की तरफ बहुतों का ध्यान गया है। मित्रों ने मेरे पास अखबारों की कतरनें भेजी हैं। उनमें लिखित या ज़बानी आलोचना का सार यह है—

१. मेरा लेख कुछ खब्तियों-का सा है।

२. मैंने उसे पूरी सामग्री के बिना लिखा है।

३. असहयोग या निष्क्रिय प्रतिरोध-सम्बन्धी अपने विचारों से मैं हट गया हूं।

४. मैं लिबरलों या नरमदल वालों की नीति पर आ गया हूं।

५. कांग्रेसियों ने पारस्परिक व्यवहार में अहिंसा को कभी नहीं अपनाया था।

६. मैं मानव-स्वभाव से असम्भव बातों की आशा कर रहा था।

७. यदि मेरी बात मानी जाय, तो स्वराज्य कदापि नहीं प्राप्त होगा, क्योंकि सारा भारत कभी अहिंसक नहीं बन सकता।

आलोचना में से और भी बहुत कुछ ले सकता था, लेकिन मैंने केवल संगत अंश ही लिये हैं।

१. अगर मेरा लेख खब्तियों-का सा है, तो उसके आसार अभी भी मुझमें मौजूद हैं, क्योंकि आलोचनाओं को उपयुक्त ध्यान से पढ़ने के बाद भी, मैंने जो बात कही थी उसमें परिवर्तन करने जैसी कोई बात मुझे नहीं दिखाई देती। आलोचकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि मेरी तजवीज निश्चित और परिमित थी। अहिंसक उपायों से स्वराज्य तबतक प्राप्त नहीं हो सकता, जबतक कि हमारी अहिंसा वीरों की अहिंसा न हो जो सफलतापूर्वक हिंसा का सामना कर सके।

मैंने यह दावा कभी नहीं किया कि स्वराज्य अन्य उपायों से प्राप्त नहीं हो सकता। यदि उसे अन्य किसी उपाय से प्राप्त भी किया जा सकता हो तो उसके लिए हमारी तैयारी नहीं है, क्योंकि हम ब्रिटेन से अपनी ताकत की जोर-आजमाई के लिए तैयार नहीं हैं।

२. जहां तक सामग्री का प्रश्न है, यही पर्याप्त है कि दंगे हुए। फिर वे कितने ही छोटे क्यों न हों। कांग्रेसवादी अहिंसात्मक तरीके से उनका सामना न कर सके और उन्हें शान्त करने के लिए पुलिस और फौज की सहायता लेनी पड़ी। इन तीन मुख्य बातों के बारे में कोई मतभेद नहीं है। और मैं जिस निष्कर्ष पर पहुंचा उसके लिए यही बातें पर्याप्त थीं। इसमें मन्त्रियों पर कोई आक्षेप नहीं है। बल्कि यह बात मैं खुद स्वीकार कर चुका हूं कि वे और कुछ कर ही नहीं सकते थे। किन्तु यह निष्कर्ष तो शेष रहता ही है कि कांग्रेसी अहिंसा आवश्यकता के समय सफल सिद्ध नहीं हुई।

३. मेरे लेख में ऐसी कोई बात नहीं है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता हो कि असहयोग और सत्याग्रह में मेरा विश्वास नहीं रह गया है। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि इनमें मेरा विश्वास आज पहिले से भी अधिक है। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए ये दोनों उपाय पूर्णतः पर्याप्त हैं। शर्त यही है कि जिस अहिंसा पर अमल किया जाय, वह वीरों की अहिंसा हो।

४. लिबरलों की नीति पर मैं आ सकूं तो अच्छा ही है। क्योंकि उनमें मेरे व्यक्तिगत मित्र बहुत से हैं। किन्तु उनके पास कोई शक्ति नहीं है, जब कि मैं इस बात का दावा करता हूँ कि मेरे पास अचूक शक्ति है। मैंने वह लेख यह दिखलाने के लिए लिखा था, कि दंगे में बलप्रयोग असफल नहीं रहा, बल्कि वह संस्था असफल रही, जिसने क्रियात्मक और रचनात्मक अहिंसा को अपनी बना रखा है।

५. आलोचकों का ध्यान मैं कांग्रेस के अनेक प्रस्तावों की ओर आकर्षित करता हूँ, जिनमें अहिंसा के प्रयोग को केवल अंग्रेजों तक ही सीमित नहीं रखा गया है, बल्कि कार्य-समिति की बैठकों में होने वाली बहसों में भी इस बात पर जोर दिया जाता रहा है कि हमें परस्पर भी अहिंसा की ही आवश्यकता है। यह मुझे अच्छी तरह याद है।

६. यह सत्य है कि मानव स्वभाव ने अभी तक अहिंसा का बड़ी अच्छी तरह स्वागत किया है। किन्तु मतलब उस अहिंसा से है, जिसे कांग्रेस ने अपनाया है। कांग्रेसवादियों को एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं, जो कि उन्हें अहिंसा के प्रति वचनबद्ध करती है। मेरा प्रश्न पहले भी यही था और अब भी यही है

कि यदि उनमें अहिंसा है तो वह दंगों से निपटने तथा उद्देश्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए।

७. इस आक्षेप का उत्तर इससे पहले के अंक में दिया जा चुका है। किन्तु मुझे भय है कि हमारी अहिंसा वीरों की अहिंसा नहीं है। कांग्रेसवादी मेरी इस चेतावनी की उपेक्षा न करें क्योंकि अहिंसा के विषय में आखिर कांग्रेसी विशेषज्ञ मैं ही तो समझा जाता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी क्षमता कितनी ही कम क्यों न हो, मैंने जो विचार बनाये हैं और जो उपाय सुझाये हैं उनपर मुझे विश्वास है। अहमदाबाद-वीरमगांव के दंगे, युवराज के आगमन पर हुआ बम्बई का दंगा और बारडोली-सत्याग्रह के समय घटित चौरीचौरा काण्ड को उदाहरण के रूप में पेश करता हूँ। मेरे कहने पर जो उपाय प्रयुक्त किये गये, उनकी उस समय आलोचकों ने कुछ कम आलोचना नहीं की। किन्तु उनके परिणामों ने यह पूरी तरह सिद्ध कर दिया है कि उन उपायों का प्रयोग नितान्त उचित था। वर्तमान निदान और उपाय के बारे में भी मुझे कोई सन्देह नहीं है। अहिंसा और उसकी प्रवृत्ति के विषय में यदि हमारा जीवन्त विश्वास है तो जो उपाय मैंने सुझाये हैं, वे हमारी सामर्थ्य से बाहर के नहीं हैं। उनमें से कुछ उपाय ये हैं—

१. हिन्दू-मुस्लिम समस्या कैसे हल हो, इसका कुछ उपाय हमें ढूंढ़ना ही चाहिए। साम्प्रदायिक के बजाय हिन्दू-मुस्लिम शब्द मैं जान-बूझ कर इसलिए कहता हूँ, कि यदि हमें उसका निराकरण प्राप्त हो जाय तो दूसरी समस्या अपने आप सुलझ जायगी।

२. कांग्रेस रजिस्टरों में ऐसी आमूल शुद्धि होना आवश्यक है, जिससे कोई कल्पित मतदाता न बन सके। क्योंकि मेरे पास जो विवरण आते रहते हैं उनसे ज्ञात होता है कि हमारे रजिस्टरों में बहुत से ऐसे फर्जी नाम होते हैं, जिन्हें सही बिलकुल नहीं कहा जा सकता।

३. कांग्रेसवादियों को इस बात का भय नहीं करना चाहिए कि हम अल्पमत में आ जायँगे।

४. प्रत्येक प्रान्तीय समिति को तुरन्त ऐसे स्वयंसेवक दल संगठित करने चाहिए, जो मन-वचन-कर्म से अहिंसा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हों। और उनके लिए ऐसे शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे वे हर प्रकार के उपयोग के लिए तैयार रहें।

इन सूचनाओं में अव्यावहारिक कोई बात नहीं है। हां, जो लोग इन्हें व्यवहार करें उनका अहिंसा में जीवन्त विश्वास न हो तो ये अवश्य अव्यावहारिक हैं। किन्तु यदि अहिंसा में उनका ऐसा विश्वास न हो तो कांग्रेस और राष्ट्र के लिए यही अच्छा

होगा कि कांग्रेस के शब्दकोष से अहिंसा को जितना शीघ्र हो सके हटा दिया जाय। निश्चय ही इसका मतलब यह नहीं कि अहिंसा के बदले विशुद्ध हिंसा को अपना लिया जाय। दुनिया में हमारी कांग्रेस ने ही स्वराज-प्राप्ति के लिए विशुद्ध अहिंसा को अपनाया है। यही उसकी एकमात्र शक्ति है। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि हमारी अहिंसा वैसी न हुई, जैसी कि उसे होनी चाहिए, तो राष्ट्र को उससे बड़ा नुकसान पहुँचेगा। क्योंकि उसकी अन्तिम परीक्षा में हम वीर के स्थान पर कायर सिद्ध होंगे। और स्वतन्त्रता-हेतु लड़ने वालों के लिए कायरता से बड़ा कोई अपमान नहीं है। पीछे मुड़ जाने में निश्चय ही शर्म की कोई बात नहीं। यदि हम यह अनुभव करें कि हिंसक युद्ध के बिना हम ब्रिटिश सत्ता को नहीं हटा सकते, तो हमें, अर्थात् कांग्रेस को राष्ट्र से स्पष्ट कह देना और उसे उसके लिए तैयार रहना चाहिए। इसके बाद जो सारी दुनिया में हो रहा है वही हम भी करें अर्थात् जब आवश्यकता हो खामोश रहें और जब अवसर देखें तब वार करें। यदि हमारी नीति अथवा ध्येय यही होना है तो कहना चाहिए कि पिछले बहुमूल्य सत्रह साल हमने यों ही गँवा दिये। किन्तु समझकर भूल सुधार लेने में कोई बुराई नहीं है। और राष्ट्र के जीवन में सत्रह साल हैं ही क्या? कांग्रेसवादियों ने यह चेतावनी मिल जाने पर भी यदि अहिंसा और हिंसा के बीच चुनाव नहीं किया तो निश्चित है कि उनके समक्ष बड़ी कठिनाइयां आयेंगी।

—ह० ज०। ह० से०। ९।४।'३८]

५०. हमारी टेक

हमारे संघ[1] के अध्यक्ष किशोरलाल भाई मुझसे भी अधिक रुग्ण रहते हैं, फिर भी उन्होंने अच्छा, लम्बा और विचारपूर्ण भाषण तैयार किया है। हमारे सेवकों में एक दूसरे के विषय में गलतफहमियां हैं और वैमनस्य भी है; हम न एक दूसरे को समझते हैं, न सहन करते हैं.....इत्यादि विषयों की चर्चा उन्होंने खूब विस्तार से की है और पूछा है कि अगर हमारी श्रद्धा का प्रतिबिम्ब हमारे नित्य के जीवन में अधिक से अधिक नहीं पड़ रहा है तो क्या श्रद्धा का वस्तुतः कुछ मूल्य है? क्या हमें वास्तव में यह प्रतीति होती है कि हम दिन-दिन अपने ध्येय की ओर बढ़ते जा रहे हैं? हमलोग पारसाल जब हुगली में मिले थे तब से क्या आज हम अधिक अहिंसक हैं? पहिले की अपेक्षा हमारी खीझ या क्रोध में क्या

१ गांधी-सेवा-संघ से अभिप्राय है।—संपा०।

कुछ कमी हुई है? ऐसे प्रश्न हमें अपने मन से बार-बार पूछना चाहिए। क्योंकि सत्य और अहिंसा का मार्ग खाँडे की धार-जैसा है। खुराक ठीक तरह से ली जाय तो वह शरीर को पोषण देती है। इसी तरह अहिंसा का ठीक तरह से पालन किया जाय तो वह आत्मा को पोषण देती है। शरीर की खुराक तो मर्यादित मात्रा में और अमुक -अमुक समय पर ही ली जा सकती है। किन्तु अहिंसा का सेवन तो हमें दिन-रात जारी रखना है। इसमें तृप्ति-जैसी कोई वस्तु ही नहीं । मैं एक ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ, यह भान मुझे प्रतिक्षण रखना है। और इस ध्येय की दृष्टि से मुझे अपने विचार-आचार आदि का परीक्षण करते रहना है।

अहिंसा की पहिली सीढ़ी यह है कि हम अपने नित्य के जीवन में, पारस्परिक व्यवहार में सत्य, सहिष्णुता, प्रेम और करुणा आदि गुणों को विकसित करें। अंग्रेजी में एक कहावत है कि प्रामाणिकता एक श्रेष्ठ व्यवहार-नीति है। किन्तु अहिंसा की दृष्टि से यह केवल व्यवहार-नीति नहीं है। व्यवहार-नीति तो शायद बदल भी जाय और बदलती ही है। पर अहिंसा तो एक अविचल सिद्धान्त है। जब इर्द-गिर्द हिंसा का दावानल प्रज्वलित हो रहा हो, तब भी इसका पालन करना चाहिए। अहिंसक मनुष्य यदि अहिंसा का पालन करता है तो उसमें कोई पुण्य की बात नहीं। वस्तुतः वह अहिंसा ही है, या क्या है, यह कहना कठिन हो जाता है। हिंसा के मुकाबले में ही मनुष्य अहिंसा और हिंसा के बीच का भेद समझ सकता है। यह तो तभी सम्भव है जब हम सतत् जागृत रहें; निरन्तर अपने ऊपर चौकसी रखें, और अविरत प्रयत्न करते हैं।

दंगे

संयुक्त प्रान्त के दंगों से मेरे दिल को सख्त चोट पहुँची है। मैंने मौलाना अबुल-कलाम आज़ाद और बोस-बन्धुओं के साथ अहिंसा की दृष्टि से इस पर चर्चा की। मुझे ऐसा लगा कि हम अपने ध्येय के नज़दीक नहीं जा रहे हैं। बल्कि उससे हट रहे हैं। हरिपुरा में मेरे मन में यह आशा पैदा हुई थी कि हमारी ताकत बढ़ती जा रही है और हमारी खामियों के बावजूद मैं अपने जीवन-काल में स्वराज्य देख सकूंगा। मैंने यह सोचा था कि इस साल हम वह शक्ति प्राप्त कर लेंगे। लेकिन इलाहाबाद और दूसरी जगह जो दंगे हुए उनसे मेरे दिल को सख्त चोट लगी है। हमें पुलिस और फौज की मदद लेनी पड़ी, यह हमारे लिए लज्जाजनक बात हुई।

मान लीजिए कि वाइसराय कांग्रेस के अध्यक्ष को मिलने के लिए बुलाते हैं

और उनसे कांग्रेस की शर्तें पूछते हैं तो क्या आप ऐसा मानते हैं कि राष्ट्रपति छाती ठोककर यह कह सकेंगे कि कांग्रेस राज्य का सारा प्रबन्ध हाथ में लेने की ताकत रखती है। और अंग्रेज हमारे देश से चले जायं? क्या हम उनसे यह कह सकते हैं कि हम पुलिस और फौज के बगैर अपना काम चला सकेंगे, राजाओं के साथ, जमींदारों के साथ और मुसलमानों के साथ हम अहद कर सकेंगे? मुझे लगता है कि हम सत्यपूर्वक यह नहीं कह सकते कि हम इन लोगों के साथ कोई अहद कर सकेंगे। और फिर भी अगर हमारे अन्दर सच्ची अहिंसा हो तो हममें इन चीजों के कहने और करने की ताकत होनी चाहिए।

निर्बल का शस्त्र नहीं

इसलिए मैं आपसे और खुद अपने से भी यह सवाल पूछता हूँ कि हमारी अहिंसा सबल का शस्त्र होने के बजाय––जैसा कि उसे होना चाहिए––निर्बल का शस्त्र तो नहीं है? यह सच है कि यह कुछ हद तक निर्बल के हाथ में भी काम दे सकती है और इस तरह इस शस्त्र ने हमारे हाथ में काम दिया भी है। पर जब यह हमारी निर्बलता ढंकने का परदा बन जाती है तब यह हमें नामर्द बना देती है। कायरता से तो बहादुरी के साथ शारीरिक बल काम में लाना सहस्र गुना अच्छा है। कायरता की अपेक्षा लड़ते-लड़ते मर जाना हजार गुना अच्छा है। हम सब मूलतः तो शायद पशु ही होंगे। और मैं यह मानने को तैयार हूँ कि हम धीरे-धीरे विकास के क्रमानुसार पशु से मनुष्य हुए हैं। अतः हम पशुबल लेकर तो अवतीर्ण हुए ही थे, लेकिन हमारा मानव-अवतार इसलिए हुआ कि हमारे अन्तर में जो ईश्वर बसता है उसका साक्षात्कार हम कर सकें। यह मनुष्य का विशेष अधिकार है। और यही इसके और पशु-सृष्टि के बीच अन्तर है। पर ईश्वर का साक्षात्कार करने का अर्थ यह है कि हम भूतमात्र में उसे देखें, अर्थात् भूतमात्र के साथ हम ऐक्य साधन करें। यह तो तभी हो सकता है जब हम स्वेच्छापूर्वक शरीर-बल का उपयोग त्याग दें और हमारे हृदय में जो अहिंसा सुप्त रूप से पड़ी है उसे विकसित करें। इस वस्तु का उद्भव तो सच्चे बल से ही होगा। क्या हमारे अन्दर इस प्रकार की बलवान की अहिंसा है? यह तो एक अशक्य आदर्श है, ऐसा कह कर इसे त्याग देने और उसके स्थान पर हिंसा-पद्धति स्वीकार करने की तो हमें छूट है ही। पर यह चुनाव किये बिना हमारा काम चलने का नहीं।

और अगर यह बलवान का शस्त्र है, तो इससे निश्चय ही कुछ परिणाम फलित होंगे। हम लोगों में दंगों का मुकाबला करने तथा हिन्दू-मुसलमानों में जो वैमनस्य बढ़ता जाता है उसे रोकने की शक्ति होनी चाहिए। आप पूछेंगे कि

हमें अहिंसा के उपासकों के तरीके से इन दंगों को शान्त करने के लिए क्या करना चाहिए था ? मैं कहूँगा कि दंगा शान्त करने का काम सबसे पहले कांग्रेस कमेटी का था। इस किस्म के संकट के अवसर पर सेवा करने वाले हजारों स्वयंसेवक हमारे पास तैयार होने चाहिए। १९२१ में स्वयंसेवकों के लिए हमने एक प्रतिज्ञा तैयार की थी, जिसमें यह शर्त रखी थी कि स्वयंसेवक को मन, वचन, कर्म से अहिंसक होना चाहिए। हकीम साहब अजमल खां, उस वक्त कांग्रेस-सभापति थे। उन्होंने खिलाफत के स्वयंसेवकों से भी यह प्रतिज्ञा लेने के लिए कहा। कुछ मौलाना कहने लगे कि स्वयंसेवक, वचन और कर्म में अहिंसक रहें यह तो उन्हें गुलाम बनाने-जैसी बात है। उन्होंने कहा कि मैं लोगों के दिल का मालिक बनना चाहता हूँ। मैंने कहा, नहीं मालिक किसी एक व्यक्ति को नहीं बल्कि अहिंसा को बनाना है। अन्त में उन्होंने वह प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली। पर यह प्रतिज्ञा १७ साल पहले ली गई थी। फिर भी इस अहिंसा से जो अमोघ बल पैदा होना चाहिए वह हमारे अन्दर पैदा नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि हमने ऐसा अहिंसक स्वयंसेवक दल तैयार करने का कष्ट नहीं उठाया; मेहनत नहीं की। अगर हमसे यह न हो सके, इस प्रतिज्ञा का पालन हम न कर सकें, तो इस सारी चीज़ पर फिर से विचार करना अच्छा होगा। दुःख का विषय यह है कि यह प्रतिज्ञा तो अब भी कायम है पर यह कागज़ पर ही रह गई है। इस प्रतिज्ञा में जिस प्रकार की सेवा की कल्पना की गई है वह अगर हमारे पास काफ़ी होती तो हमारे देश में आज इस किस्म के दंगे न होते। और अगर होते भी तो इन अहिंसक सैनिकों ने उन्हें शान्त करने के प्रयत्न में अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दी होती। हमने तो एक ही आदमी के प्राणार्पण करने की बात सुनी है। मैं उसके प्राणार्पण की प्रशंसा करता हूं। किन्तु इस प्रकार अपने प्राणों की आहुति देने के लिए अनेक स्वयंसेवक सामने आये होते तो मेरी छाती हर्ष से फूल जाती। आपको क्या ऐसा मालूम होता है कि यह खाली स्वप्न है? आप यह मानते हैं कि ऐसी अहिंसक सेना के द्वारा भी हम दंगों को शान्त नहीं कर सकते ? आपको सचमुच ऐसा मालूम होता हो, शान्त चित्त और तटस्थ वृत्ति से विचार करने पर सचमुच आप इस निर्णय पर पहुंचते हों तो आपको इस निर्णय पर भी आ जाना चाहिए कि स्वराज अहिंसा के द्वारा प्राप्त होने का नहीं।

—ह० से० ९।४।'३८]

- **सत्य और अहिंसा का मार्ग खाँड़े की धार-जैसा है।**
- **कायरता की अपेक्षा लड़ते-लड़ते मर जाना हजारगुना अच्छा है।**

५१. अहिंसा का अर्थ

[गांधी जी की सीमाप्रान्त यात्रा के समय पेशावर के इस्लामिया और एडवर्ड्स कालेजों ने उन्हें मानपत्र दिये। इनमें उन्हें हिन्दू-मुस्लिम एकता का सूत्रधार, अहिंसा का उपासक और सीमान्त गांधी (खान अब्दुल गफ्फार खां) का रहनुमा कहा गया था। गांधी जी ने इसके उत्तर में जो उद्‌गार व्यक्त किये, उनके आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।—संपा०]

यह अच्छा हुआ कि आपने हिन्दू-मुस्लिम एकता के सवाल का जिक्र किया। आपसे मैं यह पूछूंगा कि आप लोग इस महान कार्य को आगे बढ़ाने के लिए क्या कर सकते हैं? निःसन्देह यह कार्य आप नवयुवकों का है। हम लोग तो अब बूढ़े हो चले और मौत के किनारे बैठे हैं। इसलिए यह बोझ अब आप ही लोगों को उठाना है।

यह महान् उद्देश्य किस प्रकार पूर्ण हो सकता है, इसे आपने स्वयं ही अपने मानपत्र में अहिंसा की और खानसाहब की प्रशंसा करके बतला दिया है। मुझे ज्ञात नहीं कि आप लोगों ने यह प्रशंसा समझ-बूझकर की है या नहीं? और आपने जो कहा उसका आप ठीक-ठीक अर्थ भी समझ गये हैं या नहीं? आशा है कि आपने जो कहा है, उसका अर्थ समझते हैं और इन शब्दों को आपने तौल कर ही रखा है। यदि ऐसी बात है तो मैं आप को एक क़दम आगे ले जाना चाहता हूं।

एक उर्दू अखबार ने लिखा है कि मैं यहां सरहद के पठानों को कायर बनाने के लिए आया हूं। सच बात तो यह है कि खानसाहब ने मुझे इसलिए बुलाया है कि पठान लोग मेरी ही ज़बान से अहिंसा का सन्देश सुनें और मैं स्वयं अपनी आंखों से देख सकूं कि पठानों ने अहिंसा को किस सीमा तक अपनाया है? इसका अर्थ यह है कि जो भय उस उर्दू अखबार ने प्रकट किया है, वह खान साहब को तो स्वप्न में भी नहीं है। क्योंकि, उनको यह ज्ञात है कि सच्ची अहिंसा में इतनी अधिक शक्ति है कि उसके मुकाबले में भीषण से भीषण हिंसा टिक नहीं सकती।

अतएव, यदि आप अहिंसा के सच्चे स्वरूप को समझते हैं और खान साहब के काम की क़द्र करते हैं, तो आपको अहिंसा की प्रतिज्ञा लेनी पड़ेगी। यद्यपि आज के वातावरण में अत्यधिक हिंसा भरी हुई है और हम रातदिन फौजी दांव-पेचों, हवाई बेड़ों, अस्त्रशस्त्रों की तैयारियों और जंगी जहाजों की बातें किया करते हैं, फिर भी आपको अहिंसा से ही चिपके रहने का निश्चय करना पड़ेगा।

आपको यह समझ लेना है कि निःशस्त्र अहिंसा की शक्ति हर समय शस्त्रबल की अपेक्षा बहुत ऊंची है। मैंने तो स्वयं अपनी स्फूर्ति से ही अहिंसा को अपनाया

था। मुझे बचपन में घर के वातावरण में ही इसकी शिक्षा मिली थी। इसमें हिंसा की अपेक्षा अधिक शक्ति निहित है; यह मैं दक्षिणी अफ्रीका में समझ सका। मुझे संगठित हिंसा और साम्प्रदायिक द्वेष का सामना अहिंसा-द्वारा करना पड़ा था। मैं दक्षिण अफ्रीका से यह प्रतीति लेकर लौटा कि हिंसा की अपेक्षा अहिंसा का मार्ग श्रेष्ठ है।

हिंसा-मूलक प्रणाली के लिए यदि काफी शिक्षा की आवश्यकता है; तो अहिंसात्मक तरीके के लिए उससे भी अधिक शिक्षा की आवश्यकता है। यह शिक्षा हिंसा की शिक्षा से अत्यधिक कठिन होती है। इस शिक्षा में पहिली आवश्यक चीज तो ईश्वर के विषय में जीवन्त श्रद्धा है। जिसके अन्दर ईश्वर-विषयक सच्ची श्रद्धा होगी वह जबान से उसका नाम लेते हुए कभी बुरा काम नहीं करेगा। वह तो तलवार पर नहीं बल्कि एक ईश्वर पर अपना सम्बल रखेगा। आप शायद यह कहें कि नामर्द व्यक्ति भी यह कहकर भगवान के भक्तों में खप जायगा कि वह तलवार काम में नहीं लाता। ईश्वर-विषयक आस्तिकता का चिह्न कायरता नहीं। जो ईश्वर पर सच्ची आस्था रखता है उसमें तलवार के प्रयोग की शक्ति होती है किन्तु वह इसे काम में लाता नहीं, क्योंकि वह जानता है कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर की ही प्रतिमा है।

कहते हैं कि इस्लाम सार्वदेशिक बन्धुत्व में विश्वास रखता है। किन्तु मैं आपसे कहता हूं कि यह बन्धुत्व केवल मुसलमानों का नहीं, अपितु मानवमात्र का है।

अब मैं अहिंसा की शिक्षा के लिए दूसरी आवश्यक वस्तु पर आता हूं। वास्तव में इस्लाम का अल्लाह, ईसाइयों का गाड और हिन्दुओं का ईश्वर एक ही है। हिन्दू धर्म में जिस प्रकार ईश्वर के सहस्रों नाम हैं, उसी तरह इस्लाम में भी अल्लाह के अनेक नाम हैं। ये नाम उनके विभिन्न व्यक्तित्वों को नहीं, बल्कि अलग-अलग गुणों को बतलाते हैं। इस क्षुद्र मनुष्य ने नम्र भाव से ईश्वर में गुणों का आरोपण करके उसके वर्णन का प्रयत्न किया है। किन्तु ईश्वर तो गुण-दोष से परे है। उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह तो अचिन्त्य, अप्रमेय है। ऐसे ईश्वर के विषय में जीवन्त श्रद्धा होने का अर्थ है, मनुष्य मात्र को अपना बन्धु मानना। इसका अर्थ यह भी है कि समस्त धर्मों, मजहवों के विषय में समान आदर-भाव रखना। इस्लाम आप को प्रिय है, तो हिन्दूधर्म मुझे प्रिय है, और ईसाई धर्म ईसाइयों को प्रिय है; अपने धर्म से अन्य धर्मों को श्रेष्ठ मानना एवं अन्य धर्मावलम्बियों को अपना धर्म स्वीकृत करने को कहना न्यायसंगत नहीं है। यह असहिष्णुता की पराकाष्ठा है। और असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है।

तीसरी आवश्यक वस्तु है सत्य एवं पवित्रता को स्वीकार करना। यह सम्भव ही नहीं कि मनुष्य ईश्वर-विषयक प्रबल आस्था रखने का दावा करे किन्तु वह पवित्र और सत्यनिष्ठ न हो।

मैं आपसे यह कहूंगा कि आपने यदि खानसाहब की सेवाओं की और अहिंसा की प्रशंसा सच्चे हृदय से की है, तो इन चीजों को मानना आपका कर्त्तव्य हो जाता है।

जो लोग अग्रणी होने का दावा करते हैं, उन्हें इन सब बातों को स्वीकार करना पड़ेगा और दैनिक जीवन में इनका व्यवहार करके दिखाना पड़ेगा। समाज में आपको सामान्य व्यक्ति नहीं बनना है। आपको उसका नेतृत्व करना है। आप इसका पालन कर सकें, तो विश्वास रखिए, आपके पास यह कहने का कोई बहाना नहीं रहेगा कि अहिंसा आपको कापुरुष बना देगी। आपकी अहिंसा तो श्रेष्ठतम वीरों की अहिंसा होगी।

--ह० से० २१।५।'३८]

- **सच्ची अहिंसा में इतनी अधिक शक्ति है कि उसके मुकाबले में भीषण से भीषण हिंसा नहीं टिक सकती।**
- **निःशस्त्र अहिंसा की शक्ति हर समय शस्त्रबल की अपेक्षा ऊंची है।**
- **ईश्वर-विषयक आस्तिकता का चिह्न कायरता नहीं।**
- **प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर की ही प्रतिमा है।**
- **ईश्वर तो गुणदोष से परे है। वह तो अचिन्त्य, अप्रमेय है।**
- **असहिष्णुता एक प्रकार की हिंसा है।**

५२. शान्ति-सेना की प्रमुख शर्त--अहिंसा

[साम्प्रदायिक दंगे के प्रतिरोध हेतु गांधी जी ने शान्ति-सेना के गठन का सुझाव दिया था। उन्होंने शान्ति-सेना के सदस्यों के लिए प्रथम और अन्यतम शर्त के रूप में अहिंसा का निर्देश किया है। आवश्यक अंश दिये जा रहे हैं।--संपा०]

(१) पुरुष हो या स्त्री शान्ति-सेना के सदस्य का अहिंसा में जीवित विश्वास होना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जब ईश्वर में उसका जीवित विश्वास हो। अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वर की कृपा और शक्ति के बिना कुछ कर ही नहीं सकता। इसके बिना वह व्यक्ति क्रोध, भय और प्रतिकार की भावना त्याग कर मरने को प्रस्तुत न होगा। ऐसा साहस तो इस भावना से ही आता है कि सब के हृदय में ईश्वर का निवास है और इसकी उपस्थिति में किसी भी भय का प्रयोजन नहीं।

ईश्वर की सर्वव्यापकता के ज्ञान का अर्थ यह भी है कि जिन्हें विरोधी अथवा गुण्डा कहा जा सकता है, हम उनके प्राणों का भी ध्यान रखें। उद्देश्यपूर्वक किया गया यह हस्तक्षेप मनुष्य के क्रोध को उस समय शान्त करने का एक तरीका है, जब उसके अन्दर का पशुभाव उस पर हावी हो।

(२) इस शान्ति के दूत में संसार के सभी विशिष्ट धर्मों के प्रति समान श्रद्धा होना आवश्यक है। इस प्रकार यदि वह हिन्दू है तो वह भारत में प्रचलित अन्य धर्मों का आदर करेगा। अतएव उसे देश में प्रचलित विभिन्न धर्मों के सिद्धान्तों का ज्ञान होना चाहिए।

--ह० ज०। ह० से० १८।६।'३८]

- **शान्ति-सेना के सदस्य का अहिंसा में जीवित विश्वास होना चाहिए।**
- **अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वर की कृपा और शक्ति के बिना कुछ कर ही नहीं सकता।**

५३. कांग्रेस और हिंसा

महादेव ने कांग्रेसवादियों-द्वारा की जा रही हिंसात्मक कार्रवाइयों की शिकायतें मुझे बतलाई हैं। इनमें से एक शिकायत तो यह है कि शान्त धरने के नाम पर धरना देने वाले लोग ऐसे उपायों का सहारा ले रहे हैं, जो हिंसा की सीमा तक पहुंच जाते हैं। उदाहरणार्थ वे जीवित व्यक्तियों को खड़ा करके दीवार-सी बना लेते हैं। इससे कोई स्वयं को अथवा दीवार बनाने वालों को चोट पहुँचाये बिना पार नहीं कर सकता।

शान्त पिकेटिंग मेरी चलाई हुई है। किन्तु मुझे ऐसा एक भी उदाहरण स्मरण नहीं, जिसमें मैंने ऐसी पिकेटिंग को प्रोत्साहन दिया हो। एक मित्र ने इस सम्बन्ध में धरासणा का हवाला दिया है। वहां मैंने नमक कारखाने पर अधिकार करने की बात अवश्य सुझाई थी किन्तु इस प्रकरण में वह बात बिलकुल लागू नहीं होती।

धरासणा में तो हमारा लक्ष्य नमक-कारखाने पर था। इसे सरकार के अधिकार से छीनकर अपने अधिकार में लेना था। इसे कठिनता से ही पिकेटिंग कहा जा सकता है। किन्तु यह तो शुद्ध हिंसा है कि कर्मचारियों अथवा श्रमिकों के समक्ष खड़े होकर उन्हें काम पर जाने से रोका जाय। अतएव इसे तो छोड़ ही देना चाहिए।

दूसरे जिस उदाहरण की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया गया, वह यह है कि कांग्रेसवादियों के एक दल ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी-द्वारा स्वीकृत कांग्रेस कमेटी

के दफ्तर पर अधिकार कर लिया है। यह तो निश्चित रूप से अक्षम्य उद्दण्डता है।

तीसरा उदाहरण शोर अथवा गड़बड़ मचाकर सभा भंग करने का है।

चौथा पूंजीपतियों को बुरा-भला कहकर उन्हें लूटने के लिए लोगों को उकसाने का है।

ये सब हिंसा और अनुशासन-हीनता के स्पष्ट उदाहरण हैं। मुझसे कहा गया है कि ऐसी गड़बड़ी बढ़ रही है।....

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश पद्धति पूंजीवाद का पक्ष लेती है, जब कि कांग्रेस उसका पक्ष नहीं ले सकती क्योंकि वह लाखों भूखों मरने वालों के प्रति पूर्ण न्याय का उद्देश्य रखती है। किन्तु जब तक कांग्रेस की मौलिक नीति अहिंसा है, तब तक वह छीनाझपटी का आश्रय नहीं ले सकती। वह किसी कांग्रेसवादी अथवा उनके दल को कानून हाथ में लेने की आज्ञा नहीं दे सकती। वह किसी वर्ग के व्यक्तियों को अपमानित अथवा लाञ्छित कैसे होने दे सकती है? कांग्रेस हिंसात्मक पिकेटिंग अथवा हिंसा को उत्तेजना देने वाले भाषणों को भी नहीं सहन कर सकती।

यदि समय रहते हिंसा पर रोक न लगाई गई तो कांग्रेस अपने ही आन्तरिक पतन से नष्ट हो जायगी।....यदि कांग्रेसवादी सामान्य तौर पर अहिंसा से ऊब गये हों, तो जितनी जल्दी कांग्रेस विधान की पहली धारा बदल दी जाय, उतनी ही देश और सम्बन्धित लोगों के हक़ में अच्छा होगा। इस महान संस्था के विषय में ऐसा तो नहीं कहा जाना चाहिए, कि उसने असत्य और हिंसा को ढांकने के लिए सत्य और अहिंसा को अपना आवरण बना रखा है।

--ह० ज०। ह० से० १३।८।'३८]

- **यदि समय रहते हिंसा पर रोक न लगाई गई तो कांग्रेस अपने ही आन्तरिक पतन से नष्ट हो जायगी।**

५४. शत्रु के प्रति अहिंसात्मक व्यवहार

हम-जैसे वीर स्त्री-पुरुषों के लिए, यह कितनी बुरी बात होगी कि हम अपने स्वार्थ के लिए अंग्रेजों का अनिष्ट चाहें। अहिंसात्मक युद्ध में शत्रु का अनिष्ट चाहने की तनिक भी गुंजाइश नहीं। अहिंसात्मक व्यक्ति अपनी ही शक्ति पर विश्वास रखता है। वह विरोधी की निर्बलता से लाभ उठाने से इन्कार कर देता है।

--ह० ज०। ह० से० ३।९।'३८]

५५. शान्ति-सैनिक की समस्त प्रवृत्तियों का आधार अहिंसा है

[नौशेरा में खुदाई खिदमतगारों-द्वारा अर्पित मानपत्र का उत्तर देते हुए गांधी जी ने अहिंसक शान्ति-सेना की विवेचना की थी। आवश्यक अंश संकलित हैं।——संपा०]

आपने विश्वास दिलाया है कि आप अहिंसा-सिद्धान्त को पूर्ण रूप से समझ गये हैं और इसे सदा पकड़े रहेंगे। इस आश्वासन को मैं शत प्रतिशत स्वीकार किये लेता हूं। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूं।. . . .यदि आप इस पूरे सिद्धान्त पर अमल कर सकें तो एक नया इतिहास निर्मित करेंगे।. . . .

आपने यह सिपाहियों-जैसी बनावट की वर्दी और उनकी परिभाषा स्वीकार की है। उनके और आपके बीच केवल इतनी ही समानता है। किन्तु उनकी प्रवृत्ति का मूल हिंसा है, जब कि आपकी समस्त प्रवृत्तियाँ अहिंसा पर आधारित हैं।. . . शस्त्र बांधने वाले सैनिक को दूसरों की जान लेने की शिक्षा मिलती है। उसके स्वप्न भी मार-काट से सम्बन्ध रखते हैं। वह समर-भूमि में बाहुबल से लड़ने और कीर्ति प्राप्त करने के स्वप्न देखता है। गोया वह हिंसा को एक कला बना देता है।

इसके विपरीत सत्याग्रही खुदाई खिदमतगार सदा मौन सेवा का अवसर ढूंढ़ने को अधीर रहेगा। उसका सारा समय प्रेमपूर्ण सेवा में बीतेगा। उसके स्वप्न मार-काट से नहीं अपितु पर-सेवा-हेतु अपने प्राण त्याग देने से सम्बन्ध रखते हैं। उसने निर्दोष रीति से अपने भाइयों के लिए प्राण देने को एक कला बना लिया है।

——ह० से० ५।११।'३८]

५६. हिंसक बनाम अहिंसक

[सीमाप्रान्त में गांधी जी-द्वारा दिये गये एक प्रवचन का अंश।——संपा०]

. . . .अहिंसात्मक संगठन के मौलिक सिद्धान्त हिंसात्मक संगठन के सिद्धान्तों से भिन्न एवं बिलकुल उल्टे हैं। उदाहरण के लिए सेना में अधिकारी और सैनिक के बीच स्पष्ट अन्तर होता है। सैनिक अपने अधिकारी का मातहत और उससे नीचा होता है। किन्तु अहिंसात्मक सेना में सेनापति प्रथम सेवक——अपने साथियों में सबसे पहला-होता है। उसे साधारण सैनिकों से अधिक कोई रियायत अथवा उच्चता नहीं मिलती।. . . .

दूसरा अन्तर यह है कि सैनिक संगठन में साधारण सैनिक अपने सेनापतियों के चुनाव में कोई हिस्सा नहीं लेता। वे तो सैनिकों पर थोपे जाते हैं। उन्हें अपने सैनिकों पर अबाध अधिकार होते हैं। अहिंसात्मक सेना में सेनापति तथा अन्य अधिकारी निर्वाचित अथवा उन्हीं-जैसे होते हैं। इनकी हुकूमत नैतिक होती है। इनका आधार एकमात्र साधारण सैनिकों के स्वैच्छिक आज्ञापालन पर होता है।...

दबाव नहीं हृदय-परिवर्तन

....अहिंसा अथवा प्रेम की वाणी में, अपने विरोधी अथवा किसी को भी विचारों-द्वारा भी शत्रु समझना अपराध कहलायेगा। अहिंसा का उपासक तो बदला लेने की इच्छा करने के बजाय खुदा से यही दुआ मांगेगा कि उसके विरोधी का हृदय परिवर्तित हो जाय। मैं इस पुरानी कहावत को पूर्ण रूप से मानता हूं कि सच्ची अहिंसा पत्थर को भी पिघला देती है।....

....आप लोगों में यदि प्रेम की शक्ति से शत्रु के हृदय-परिवर्तन कर देने की अन्तर्प्रेरणा न हो, तो उचित होगा कि आप क़दम पीछे हटा लें। तब अहिंसा आपके लिए नहीं है। आप पूछेंगे कि चोर, डाकू और असहाय स्त्रियों पर आक्रमण करने वालों के साथ क्या करना चाहिए? क्या खुदाई खिदमतगार को इनके साथ भी अहिंसा का व्यवहार करना चाहिए? मेरा उत्तर है कि अवश्य करना चाहिए। दण्ड देने वाला तो एक ईश्वर ही है। वही सच्चा न्यायकर्ता है। दोषों से पूर्ण मनुष्य की हस्ती ही क्या?

परन्तु हिंसा-त्याग का अर्थ भावशून्यता अथवा बुराई के समक्ष विवशता व्यक्त करना न समझिएगा। यदि अपनी अहिंसा सच होगी, वह प्रेम से उद्‌भूत होगी, तो वह बुराई का सामना करने में पशुबल की अपेक्षा अधिक अचूक इलाज सिद्ध होगी। मैं तो यह आशा रखता हूं कि आप लोग चोर, डाकुओं को उनकी भूलें समझा दें। ऐसा करते हुए मौत का भी सामना करना पड़े, तो उसके लिए तैयार रहें।....

--ह० ज०। ह० से० २६।११।'३८]

- **सच्ची अहिंसा पत्थर को भी पिघला देती है।**
- **दण्ड देने वाला तो एक ईश्वर ही है। वही सच्चा न्यायकर्ता है।**

५७. शस्त्र-त्याग और अहिंसा

[सीमाप्रान्त के पनियाला स्थान पर खुदाई खिदमतगारों के बीच दिये गये गांधी जी के भाषण क। अंश।--संपा०]

आपने अहिंसा को एक कामचलाऊ साधन के तौर पर नहीं, बल्कि स्थायी धर्म के रूप में ग्रहण किया है। इसलिए महज बाहर से तलवार का त्याग कर देने पर भी अगर आपके दिलों में वह जगह किये हुए है, तो आप बहुत आगे नहीं बढ़ सकेंगे। जब तक आपके अन्दर तलवार से बढ़कर ताकत पैदा नहीं हो जाती, तबतक आपका तलवार-त्याग सच्चा नहीं कहा जा सकता।. . . .अहिंसा का रास्ता तो यह है कि जो आपको अपना दुश्मन समझता हो, आप उसे भी अपना दुश्मन न समझें।

--ह० ज०। ह० से० ३।१२।'३८]

५८. अहिंसा में हार नहीं

लोग अहिंसा का पाठ समझ गये हों और मारपीट वगैरह सहन कर लें तो उनकी हार होती ही नहीं।

--मणिबहन पटेल को लिखे गये पत्र से। ५।१२।'३८]

५९. दुश्मन के प्रति घृणा नहीं, प्रेम

[पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के मानसेहरा स्थान पर गांधी जी ने खुदाई खिदमतगारों के समक्ष भाषण किया। उसमें उन्होंने बतलाया कि मूलतः प्रेम ही विकसित होकर अहिंसा का रूप ग्रहण करता है। इस भाषण के आवश्यक अंश यहां दिये जाते हैं।--संपा०]

हम दुश्मन से नफ़रत न करें, इतना ही काफ़ी नहीं है। उसके लिए हृदय में ऐसा भाव होना चाहिए कि वह भी हमारी ही तरह मनुष्य है। इन दिनों तो यह कहना एक फ़ैशन-सा बन गया है कि अहिंसात्मक रूप में समाज का संगठन नहीं हो सकता। इस बारे में मेरा मतभेद है।

कुटुम्ब में पिता जब अपने कोमल बच्चे को थप्पड़ मारता है, तो बच्चा बदला लेने का कोई विचार नहीं करता। वह पिता का कहना उस मार के कारण नहीं बल्कि उसके पीछे छुपी पिता के हृदय को पहुँचने वाली चोट के कारण मानता है।

मेरी राय में यही वह तरीक़ा है, जिससे समाज चलता है या उसे चलना चाहिए। जो बात कुटुम्ब के लिए ठीक है वही समाज के लिए भी उपयुक्त होनी चाहिए। समाज भी तो आख़िर एक बड़ा कुटुम्ब ही है। यह तो मनुष्य की कल्पना है, जिसने इसको मित्रों और शत्रुओं के विभिन्न समूहों में विभक्त कर रखा है। लड़ाई-झगड़े के बीच भी अन्त में तो प्रेम की शक्ति से ही काम निकलता है और उसी से दुनिया क़ायम रहती है।....

—ह० से० १०।१२।'३८]

६०. अहिंसा की कल्पना

मैंने वीरावाला[1] के साथ जो प्रयोग किया है वह करने योग्य है क्योंकि मैं अहिंसा का जो अर्थ करता हूं उसके अनुसार साँप को भी मेरे हाथ में खेलना चाहिए। वह मेरे स्पर्शमात्र से यह समझ जायगा कि मेरा इरादा उसे चोट पहुँचाने का नहीं है। किन्तु उसी साँप को छूने की इज़ाज़त मैं दूसरे को नहीं दूंगा। अहिंसा का यह अर्थ नहीं है कि हिंसक समान रूप से सबके लिए अहिंसक बन जाय। किन्तु जिसने उसके साथ अहिंसा का बर्ताव किया हो उसके लिए तो वह अवश्य अहिंसक बन जायगा। वीरावाला साधु बन जायगा, ऐसा नहीं है किन्तु वह मेरे साथ अवश्य सीधा चलेगा।

—२४।१२।'३८ वर्धा। (बापू की छाया में।]

६१. अहिंसा का आचरण

[लार्ड लोथियन के पत्र के उत्तर में गांधी जी ने जो विचार व्यक्त किये उनके आवश्यक अंश संकलित हैं।—संपा०]

....निश्चित रूप से अहिंसा पर निर्भर समाज में शासन का रूप क्या हो, इस बारे में कुछ लिखने से मैं जानबूझ कर बचता रहा हूं। अहिंसा पर सारा संसार इसी तरह क़ायम है, जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण से पृथिवी अपनी स्थिति पर बनी हुई है। लेकिन जब गुरुत्वाकर्षण के नियम का पता चला, तो इस शोध के ऐसे परिणाम निकले, जिनके बारे में हमारे पूर्वजों को कुछ ज्ञान न था। इसी प्रकार जब निश्चित रूप से अहिंसा के नियमानुसार समाज का निर्माण होगा, तो

---

१. बापू के राजकोट के उपवास के समय राजकोट राज्य के दीवान।

खास-खास बातों में उसका ढांचा आज से भिन्न होगा। लेकिन मैं पहले से ही नहीं कह सकता कि सम्पूर्णतः अहिंसा पर निर्भर शासन का रूप कैसा होगा?

आज तो अहिंसा के नियम की उपेक्षा करके हिंसा को ऐसा स्थान दिया गया है मानों वही शाश्वत नियम है। इसलिए इंगलैण्ड, अमरीका और फ्रांस में जिन लोकतन्त्रों को हम काम करते हुए देखते हैं, वे केवल नाम के लोकतन्त्र हैं क्योंकि वे भी नाजी जर्मनी, फासिस्त इटली या सोवियत रूस से कुछ ही कम हिंसा पर निर्भर हैं।....

मैं यह मानता हूं कि अहिंसा को राष्ट्रीय पैमाने पर स्वीकृत किये बिना वैधानिक या लोकतन्त्रीय शासन-जैसी कोई चीज़ नहीं हो सकती। इसलिए मैं अपनी शक्ति को इस बात का प्रतिपादन करने में लगाता हूं कि अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का नियम है। मैं समझता हूं कि मैंने प्रकाश देख लिया है, यद्यपि वह कुछ धुंधले रूप में ही है।...

मैं प्रायः कहता रहा हूं कि यदि साधनों की सावधानी रखी जाय तो ध्येय स्वयं अपनी फिक्र कर लेगा। अहिंसा साधन है और लक्ष्य हर एक राष्ट्र के लिए पूर्ण स्वाधीनता है। अन्तर्राष्ट्रीय संघ तभी होगा जबकि उसमें शामिल होनेवाले बड़े-छोटे राष्ट्र पूरी तरह स्वाधीन हों। जो राष्ट्र अहिंसा को जितना हृदयंगम करेगा वह उतना ही स्वाधीन होगा। एक बात निश्चित है, अहिंसा पर आधार रखने वाले समाज में छोटे से छोटा राष्ट्र भी बड़े से बड़े राष्ट्र के समान ही रहेगा। बड़प्पन और छोटेपन का भाव बिलकुल नहीं रहेगा।....

इस प्रकार स्वयं ही यह परिणाम निकलता है कि जब तक अहिंसा को केवल नीति के बजाय एक जीवित शक्ति अर्थात् अटूट ध्येय के रूप में स्वीकार न कर लिया जाय, तब तक मुझ-जैसों के लिए, जो अहिंसा के हामी हैं, वैधानिक या लोकतन्त्रीय शासन एक दूर का स्वप्न होगा। जब कि मैं विश्व में भी अहिंसा का हामी हूं, मेरा प्रयोग हिन्दुस्तान तक ही सीमित है।....

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० ११।२।'३९]

- **अहिंसा पर सारा संसार इसी तरह कायम है, जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण से पृथिवी अपनी स्थिति पर बनी हुई है।**
- **अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का नियम है।**
- **अहिंसा साधन है, और लक्ष्य हर एक राष्ट्र के लिए पूर्ण स्वाधीनता है।**

६२. शुद्ध अहिंसा का नवीन प्रयोग

समझाने का तो समय नहीं है किन्तु मेरी दृष्टि से शुद्ध अहिंसा का यह नया ही प्रयोग है। बिना किसी शर्त्त के सत्याग्रह बन्द कर रहा हूं और यदि समझौता हो गया तो सारा ही भार अपने सिर पर उठा लेना चाहता हूं।

आज़ादी की लड़ाई यदि अहिंसा पर आधार रखती हो तो गुण्डों को भी सुधारना इस लड़ाई का एक हिस्सा ही है, फ़िर भले ही वे लोग प्रजापक्ष में हों, या अधिकारियों में हों।

— ह० से० १८।३।'३९]

६३. क्या आप शुद्ध अहिंसा का पालन करते हैं?

किशोरलाल[1] ने अहिंसा के मुख्य फलितार्थों का विस्तार से जो वर्णन किया है वह ठीक ही है; हमारी अहिंसा से हमारे प्रति हमारे विरोधी का रुख सख़्त होने के बजाय नरम होना चाहिए। इससे उसका हृदय पिघलना चाहिए और उसके अन्दर हमारे लिए सहानुभूति की भावना जागरित होनी चाहिए। हिंसा का काम जो कुछ उसके रास्ते में आये उन सबको नष्ट करना है; अहिंसा का काम हिंसा के मुंह में अपने आप चले जाना है। अहिंसा के वातावरण में किसी को अपनी अहिंसा की अग्नि-परीक्षा का अवसर नहीं मिलता। उसे तो तभी कसौटी पर कसा जा सकता है जब कि हिंसा से मुकाबला हो।

....मैं अपने मन में सोच रहा था कि दरबार वीरावाला का हृदय-परिवर्तन करने में हम अब तक क्यों असफल रहे हैं? इसका सीधा जवाब यह है कि अहिंसात्मक रूप में हमने उनके साथ व्यवहार नहीं किया है। हमने उन्हें बुरा-भला कहा है, और सत्याग्रही क्या कहते हैं, इस पर मैंने पूरा ध्यान नहीं रखा है। मैंने अपनी वाणी पर भले ही काबू रखा हो, लेकिन दूसरों की वाणी पर मैंने वैसा काबू नहीं रखा।

....आप में से कुछ लोग गांधीवादी कहलाते हैं। गांधीवादी नाम रखने योग्य नहीं है। इसके स्थान पर अहिंसावादी क्यों न कहा जाय? गांधी तो अच्छाई और बुराई, निर्बलता और बल, हिंसा और अहिंसा का सम्मिश्रण है। पर अहिंसा में कोई मिलावट नहीं है। अब बतलाइए कि अहिंसावादी की हैसियत

---

१. स्वर्गीय किशोरलाल मश्रुवाला, गांधी-सेवा-संघ के प्रधान।

से क्या आप यह कह सकते हैं कि आप शुद्ध अहिंसा का पालन करते हैं? क्या आप कह सकते हैं कि अपनी नुक्ताचीनी पर आप नाराज़ और क्षुब्ध नहीं होते? मुझे भय है कि बहुत से लोग ऐसी कोई बात नहीं कह सकते।

आप उस पर उल्टे यह कहेंगे कि स्वयं मैंने इस हद तक अहिंसा-पालन करने का दावा कभी नहीं किया है। ऐसा हो तो मैं मानता हूं कि उस हद तक मेरा अहिंसा-पालन सदोष रहा है। अहिंसा तो अपने दोषों को बढ़ाकर और अपने विरोधियों के दोषों को कम करके बताती है। अहिंसावादी अपनी आँख के तिनके को पहाड़ समझता है और अपने विरोधी की आंख के पहाड़ को तिनका समझता है। पर हमने तो इससे अन्यथा किया।

....सत्य और अहिंसा में हृदय से श्रद्धा रखनेवाले बीस सच्चे सदस्य दो सौ उन सदस्यों से अच्छे रहेंगे, जो इस ओर से उदासीन हों। ये दो सौ सदस्य एक दिन हमें सर्वनाश की ओर ले जायंगे। किन्तु बीस सच्चे सदस्यों के कारण एक दिन सच्चे सदस्यों की ही संख्या दो सौ तक पहुँच सकती है।

आप लोगों में से कितने ऐसे हैं, जिनकी चर्खे में जीवित श्रद्धा है? क्या आप उसे हृदय से अहिंसा का प्रतीक मानते हैं? अगर हमारी ऐसी श्रद्धा है तो हमारी कताई में स्वतः एक शक्ति होगी।

—१३।५।'३९, गांधी सेवा संघ के पांचवें अधिवेशन, में दिये गये बापू के भाषण के सारांश से।]

- **हमारी अहिंसा से हमारे प्रति विरोधी का रुख सख्त होने के बजाय नरम होना चाहिए।**
- **अहिंसा का काम जो रास्ते में आये उन सबको नष्ट करना है; अहिंसा का काम हिंसा के मुँह में अपने आप चले जाना है।**
- **गांधी तो अच्छाई और बुराई, निर्बलता और बल, हिंसा और अहिंसा का सम्मिश्रण है पर अहिंसा में कोई मिलावट नहीं है।**

६४. अहिंसक युद्ध की सफलता

[राजकोट सत्याग्रह की समाप्ति के बाद गांधी जी वहां से चलने लगे, तो उन्होंने परिषद् के कार्यकर्त्ताओं के साथ हृदयग्राही बातचीत की। ढाई घंटे तक चलने वाली इस वार्ता में गांधी जी ने अपने हृदय की समस्त भावनाएं उँड़ेलकर रख दीं। इसके उद्धरण नीचे प्रस्तुत हैं।—संपा०]

मुझे एक बात खटक रही थी। अहिंसा में हिंसक की हिंसा को शमन करने की शक्ति होनी चाहिए। यदि अहिंसा का यह गुण सिद्ध नहीं हो सकता, तो मान लेना चाहिए कि उसमें कहीं न कहीं कोई त्रुटि है।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीय जनता ने सत्याग्रह के परिणामस्वरूप जो कुछ प्राप्त किया, वह कुछ शत्रुता से प्राप्त नहीं किया था। सत्याग्रह के अन्त में तो जनरल स्मट्स[1] मेरे अजीवन मित्र बन गये थे....।

दक्षिण अफ्रीका में तो मुट्ठी भर भारतीय थे और उनके विरुद्ध समस्त बोअर प्रजा थी।....किन्तु यहां तो प्रश्न केवल दरबार श्री वीरावाला के हृदय में प्रवेश करने का है। आप लोगों से मुझे इस परम पुरुषार्थ की अपेक्षा है।

अहिंसा की भाषा यह कहना नहीं है कि जब तक दरबार श्री वीरावाला[2] यहां से चले नहीं जायंगे तब तक शान्ति नहीं होगी। अहिंसा का लक्षण तो सीधे हिंसा के मुँह में दौड़ जाना है। यदि गायों को इस तथ्य का ज्ञान हो जाय और वे सब की सब दौड़ कर शेर के मुँह में चली जायँ, तो सम्भव है कि शेर की गोमांस खाने की रुचि चली जाय।

अहिंसा कायर का शस्त्र नहीं है। आप को सत्याग्रही बनना है तो आपका आलस्य-अज्ञान आदि सब दूर हो जाना चाहिए। इसी स्थिति में अहिंसा का अस्तित्व रह सकता है। सच्ची अहिंसा आने के बाद आपकी वाणी से, आपके आचार-व्यवहार से अमृत झरने लगेगा। और इच्छा अथवा अनिच्छा से शत्रु उससे अपरिचित नहीं रह सकेगा।

अहिंसा से एक प्रकार का भय तो उत्पन्न होता है—जैसा कि बालक व्यालू किये बिना रूठ कर सो जाता है, तब माता को होता है। किन्तु अहिंसा का परिणाम तिरस्कार कैसे हो सकता है?

अहिंसा की यह व्याख्या यदि आपके सामर्थ्य से बाहर हो, तो आप उसे अस्वीकार कर सकते हैं, और अपना मार्ग स्वयं चुन सकते हैं। मुझसे बाहर से जितनी सहायता हो सकेगी करता रहूंगा। किन्तु यदि आपने अहिंसा के पथ पर ही चलने का निश्चय कर लिया है, तो आपको यह समझ लेना चाहिए कि पूर्ण आत्म-शुद्धि के प्रयत्न में मर मिटना, इसकी पहली शर्त है। अहर्निश अहिंसा की स्तुति करने वाले साधक के रूप में, मैं उसे अपना धर्म समझूंगा कि अन्तर में भरे हुए

---

१. दक्षिण अफ्रीका के तत्कालीन प्रधानमन्त्री।

२. राजकोट के मुख्यमन्त्री।

दोषों को निकालकर आपके सामने रख दूं। ऐसा करने से आप को सहायता देने की मेरी शक्ति सहस्रगुना बढ़ जायगी।

....अहिंसा और हिंसा के मध्य आपको अपना अन्तिम चुनाव कर लेना है। मैं चाहता हूं कि आप कभी कायर न बनने पायें। सम्भव है, मर्यादित हिंसा में से आप किसी दिन अहिंसा की शिक्षा प्राप्त कर लें। किन्तु त्रिशंकु की तरह आप का हिंसा-अहिंसा के मध्य अधर में लटकना तो एक भयंकर स्थिति है। यह मार्मिक समस्या आपके ही समान आज सारे देश के सामने है। इसका निर्णय आपको तत्काल कर लेना चाहिए। यदि आपके लिए अहिंसा ही ग्राह्य है, तो वह आपके पास मेरी शिक्षा के द्वारा नहीं, एक स्वतन्त्र प्रेरणा के रूप में आनी चाहिए।

....ऐसी अहिंसा की साधना हेतु साधन-स्वरूप और उसके प्रतीक की भांति, चर्खे से श्रेष्ठ अन्य कोई साधन, मैं आपको नहीं बतला सकता।

मेरी अहिंसा एक वैज्ञानिक प्रयोग है। वैज्ञानिक प्रयोग में निष्फलता के लिए स्थान नहीं। निर्धारित परिणाम-प्राप्ति के मार्ग में से बड़े-बड़े वैज्ञानिक आविष्कार भी होते देखे गये हैं। यदि आप अहिंसा पर स्थिर रहना चाहते हैं, तो आपको इस मनोवृत्ति से मेरे द्वारा निर्धारित अहिंसा का प्रयोग करना चाहिए।

—ह० से० २०।५।'३९]

- **अहिंसा में हिंसक की हिंसा को शमन करने की शक्ति होनी चाहिए।**
- **अहिंसा का लक्षण तो सीधे हिंसा के मुंह में दौड़ जाना है।**
- **अहिंसा कायर का शस्त्र नहीं है।**
- **पूर्ण आत्म-शुद्धि के प्रयत्न में मर मिटना इस (अहिंसा) की पहिली शर्त्त है।**
- **मेरी अहिंसा एक वैज्ञानिक प्रयोग है।**

६५. अहिंसा का व्यापक रूप

[राजकोट-उपवास के बाद गांधी जी से वार्ता के दौरान एक कार्यकर्ता ने कहा कि वे लोग अहिंसा को केवल एक नीति के रूप में स्वीकार करते हैं। वे उसे धर्मभाव से मानने को प्रस्तुत नहीं हैं। गांधी जी ने उनकी स्पष्टोक्ति पर सन्तोष व्यक्त करते हुए, उन्हें अहिंसा की विस्तृत परिभाषा समझाई। उसका आवश्यक अंश प्रस्तुत है।—संपा०]

भय की बात तो यह है कि अनेक व्यक्ति अहिंसा में विश्वास रखने का दम्भ करते हैं, किन्तु उनके अन्तर में इस प्रकार का निश्चय नहीं होता। हिंसा का अर्थ

किसी के शरीर को प्रत्यक्ष हानि पहुँचाना ही नहीं है। युक्ति-अयुक्ति, असत्य-प्रपञ्च, छल-कपट संक्षेप में कहा जाय तो सभी अस्वच्छ और कुटिल मार्गों की गणना हिंसा में है। जिसने एक बार अहिंसा को धर्मभाव से अथवा नीति के रूप में स्वीकार कर लिया, उसके लिए इन तमाम मलिन मार्गों का त्याग आवश्यक है।

अतएव अहिंसावादी कुन्दन-जैसा शुद्ध, न्यायपरायण, व्यवहार में सरल, सत्यवादी, पूर्णतया निरपेक्ष और निरभिमानी होता है। अहिंसा की पृष्ठभूमि में अवस्थित भाव-व्यवहारों में कोई त्रुटि अथवा भ्रम नहीं होना चाहिए। धर्म और नीति-सम्बन्धी विवाद को एक तरफ रखकर सामान्य रीति से यह आशय समझ लेना चाहिए।

--ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ३।६।'३९]

- **हिंसा का अर्थ किसी के शरीर को प्रत्यक्ष हानि पहुँचाना ही नहीं है।**
- **युक्ति-अयुक्ति, असत्य-प्रपञ्च, छल-कपट, संक्षेप में कहा जाय तो सभी अस्वच्छ और कुटिल मार्गों की गणना हिंसा में है।**

६६. रक्तहीन क्रान्ति और अहिंसा

[राजकोट सत्याग्रह के स्थगन के पश्चात् गांधी जी का अहिंसा के प्रति अगाध विश्वास पहले की अपेक्षा और भी दृढ़ हो गया। किन्तु अनेक व्यक्ति सन्दिग्ध हो उठे कि गांधी जी का यह विश्वास उन लोगों की किस प्रकार सहायता करेगा, जो शीघ्र ही स्वराज्य चाहते हैं? गांधी जी अहिंसा को जिस रूप में देखते हैं, उसका आग्रह करने से स्वराज्य स्वप्न तो नहीं बन जायगा?

गांधी जी ने इस सम्बन्ध में त्रावणकोर के मित्रों के समक्ष जो वक्तव्य दिया, उसके आवश्यक अंश महादेव ह० देसाई के लेख 'निर्णय के बाद से' उद्धृत किये जा रहे हैं।--संपा०]

जैसा कि मैंने बहुधा कहा है, मेरे लिए सत्य ही स्वराज्य से पूर्व अहिंसा का प्रश्न आ जाता है। मैं अराजकता और लाल क्रान्ति-द्वारा शक्ति प्राप्त करने की तनिक भी इच्छा न करूंगा, क्योंकि मैं निर्बलतम और छोटे मनुष्य के लिए भी स्वतन्त्रता चाहता हूं। यह तभी सम्भव है, जब हम अहिंसा-द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करें। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो निर्बल मर जायगा, केवल शक्तिशाली ही सत्ता पर अधिकार कर लेगा और उसका उपभोग करेगा।

आप लोग भी यदि वास्तव में कुछ काम करना चाहते हैं, तो अहिंसा को अन्य सब बातों के पहिले रखे बिना नहीं रह सकते। जब अहिंसा को मान लिया

तब उसे अन्य सब बातों से पूर्व रखना ही होगा। केवल इसी स्थिति में विरोधी अहिंसा का सामना नहीं कर सकता ?

यदि ऐसा न करेंगे, तो अहिंसा एक खाली पोल और प्रभाव तथा शक्ति-रहित निस्तेज वस्तु हो जायगी। एक सैनिक जब अपनी जान हथेली पर रखकर लड़ता है, तभी उसकी दुर्दमनीय शक्ति का विरोध करना कठिन हो जाता है। अहिंसा के सैनिक के लिए भी यही बात है।

....मैं अपने हृदय की उथल-पुथल भी आपको समझा दूं। जैसा कि आपको बता चुका हूं, मैंने समझा था कि रियासतों में हम शीघ्र ही उत्तरदायी शासन प्राप्त कर लेंगे। किन्तु अब हमें ज्ञात हुआ है कि सब लोगों को अहिंसा के मार्ग पर हम एकदम अपने साथ नहीं ले जा सकते। आप कहते हैं कि केवल थोड़े-से गुण्डे ही हिंसा करते हैं। किन्तु अहिंसात्मक स्वराज्य प्राप्त करने की शक्ति का अर्थ है कि उसकी प्राप्ति के पूर्व हमारे अन्दर गुण्डों पर भी नियन्त्रण करने की शक्ति हो। ऐसी ही शक्ति हमने असहयोग के दिनों में प्राप्त कर ली थी।

यदि हिंसा की शक्तियों पर भी आपका पूर्ण नियन्त्रण है, यदि आप सर्वोच्च ब्रिटिश सत्ता की चिन्ता किये बिना या मेरी अथवा कांग्रेस की बाह्य सहायता की अपेक्षा बिना आखिरी दम तक लड़ाई जारी रखने को प्रस्तुत हैं, तो आप को कुछ समय के लिए भी अपनी मांग कम करने की आवश्यकता नहीं। तब तो वास्तव में आप मेरी सलाह की आवश्यकता ही न समझेंगे।

सम्पूर्ण अहिंसा का मार्ग

....तैयारी दो प्रकार की हो सकती है। आप इतना बड़ा प्रदर्शन करके सरकार को बुरी तरह परेशान कर सकते हैं। इसके परिणाम-स्वरूप सरकार को गोली चलानी पड़ सकती है या उसे विवश होकर झुकना पड़ सकता है। किन्तु मेरी व्याख्या के अनुसार ऐसा प्रदर्शन अहिंसात्मक नहीं हो सकता। मेरा झुकाव पहले से परिवर्तित नहीं हुआ है। केवल बल देने में थोड़ा-बहुत अन्तर है।

मैंने पहले इस विचार से अहिंसा के सम्बन्ध में समझौता कर लिया था कि इससे भारत अहिंसा के मार्ग पर और अधिक प्रगति करेगा किन्तु मेरी वह आशा पूर्ण नहीं हुई। इसी प्रकार सम्भव है कि जो अहिंसा आप प्रदर्शित करें वह प्रभावशाली तो प्रतीत होती हो, किन्तु मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध न हो। यदि वह अहिंसा शुद्ध नहीं है तो मैं उसे मान नहीं सकता। मैं किसे अस्वीकृत नहीं करूंगा, यह आज नहीं कह सकता। मैं वैदिक ऋषि की भाषा में यहीं तक कह सकता हूं कि नेति नेति

(यह नहीं, यह नहीं) किन्तु अभी मैं यह कहने में असमर्थ हूं कि यही है, यही है। कारण यह है कि अभी तक मुझे पूर्ण साक्षात्कार नहीं हुआ है।

—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० १।७।'३९]

- **मैं अराजकता और लाल क्रान्ति-द्वारा शक्ति प्राप्त करने की तनिक भी इच्छा न करूंगा, क्योंकि मैं निर्बलतम और छोटे मनुष्य के लिए भी स्वतन्त्रता चाहता हूं।**
- **अहिंसात्मक स्वराज्य प्राप्त करने की शक्ति का अर्थ है कि उसकी प्राप्ति के पूर्व हमारे अन्दर गुण्डों पर भी नियन्त्रण करने की शक्ति हो।**
- **मैं वैदिक ऋषि की भाषा में यहीं तक कह सकता हूं कि नेति नेति; किन्तु अभी मैं यह कहने में असमर्थ हूँ कि यही है, यही है। कारण यह है कि अभी तक मुझे पूर्ण साक्षात्कार नहीं हुआ है।**

६७. विशुद्ध अहिंसा

....ईश्वर पर आधारित होने के बजाय वायसराय पर आधारित होने में, अथवा यों कहिए कि ठाकुरसाहब[1] को ठिकाने पर लाने के लिए मैंने ईश्वर की सहायता से वायसराय[2] को बुलाने का प्रयत्न किया। मेरा यह कार्य विशुद्ध हिंसा का था। मेरे अनशन में ऐसी हिंसा के लिए तनिक भी स्थान नहीं हो सकता।

इस राजकोट[3]-प्रकरण ने मेरे जीवन में एक नवीन सत्य-दर्शन की वृद्धि की यह कि पूरे १९२० से राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध में हम जिस अहिंसा का दावा करते आ रहे हैं, वह अद्‌भुत होते हुए भी सर्वथा विशुद्ध नहीं थी। अतः इसके जो परिणाम आज तक हुए वे यद्यपि असाधारण कहे जा सकते हैं, तथापि हमारी अहिंसा के पूर्णतः विशुद्ध होने की स्थिति में, इसके परिणाम अधिक मूल्यवान सिद्ध होते। मन-वाणी-सहित सम्पूर्ण अहिंसा के युद्ध से विरोधी में कभी स्थायी हिंसावृत्ति नहीं उत्पन्न हो सकती। किन्तु मैंने देखा कि देशी राज्यों के युद्ध ने राजाओं तथा उनके परामर्शदाताओं में हिंसावृत्ति उत्पन्न कर दी है।

....भारत आज ऐसी असम्भव स्थिति का सामना कर रहा है, जो बहुत दिन नहीं चल सकती। विवेक की सीमा में आ सकने योग्य समय के अन्दर

---

१. राजकोट के तत्कालीन महाराज ठाकुर धर्मेन्द्र सिंह।

२. भारत के तत्कालीन वायसराय!

३. राजकोट-सत्याग्रह।

उसे या तो अहिंसक युद्ध की कोई प्रणाली ढूंढ़ निकालनी होगी, अथवा उसे हिंसा या अराजकता में फँसना पड़ेगा।

--ह० ज०। ह० से० १।७।'३९]

६८. अहिंसा की तराज़ू पर

....मैं भले ही कानूनी तौर पर खरा उतर जाऊं, लेकिन यदि अहिंसा की तराज़ू पर मेरे कामों को तौला जाय तो मैं भी बुरी तरह असफल सिद्ध होऊंगा। अहिंसा तो शूर-वीर और दृढ़ लोगों की ही अहिंसा होनी चाहिए। इसलिए मैंने यह कहने में कभी संकोच नहीं किया कि यदि हमारे हृदय में हिंसा है, तो अपनी नपुंसकता छिपाने के लिए अहिंसा का चोला पहनने की अपेक्षा हिंसात्मक रहना ही अच्छा है। नपुंसकता की अपेक्षा हिंसा सदा अच्छी है। एक हिंसक से कभी अहिंसक होने की आशा की जा सकती है, लेकिन नपुंसक से कभी ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० ज०। ह० से० २१।१०।'३९]

- **नपुंसकता की अपेक्षा हिंसा सदा अच्छी है।**
- **एक हिंसक से कभी अहिंसक होने की आशा की जा सकती है लेकिन नपुंसक से कभी ऐसी आशा नहीं की जा सकती।**

६९. हृदय में हिंसा, मुँह में अहिंसा

....अहिंसा और उसके अनेक फलितार्थों की हमने पूरी क़द्र नहीं की। इसी एक महान दोष से हमारी दूसरी सब कमजोरियां पैदा हुई हैं। हमने कायिक अहिंसा का तो अच्छा-खासा पालन किया है, परन्तु अपने दिलों में हिंसा को आश्रय दे रखा है। इसलिए सरकार के मुकाबले हमारी अहिंसा, हमारी सक्रिय हिंसा की अयोग्यता का परिणाम है। यही कारण है कि हम अपने आपस के बर्ताव में हिंसा की तरफ बहक गये हैं।

....जहाँ तक मैं देख सकता हूं, सत्य और अहिंसा का कड़ाई के साथ पालन किये बिना हिन्दुस्तान को स्वन्तत्रता नहीं मिल सकती। अगर मेरी सेना ऐसी हो कि जिन शस्त्रों से मैं उसे सुसज्जित करूं उनकी क्षमता में उसे सन्देह हो तो मेरे सेनापतित्व से कोई लाभ न होगा। अपने देश के शोषण का मैं वैसा ही पक्का

शत्रु हूँ, जैसा कि कोई हो सकता है। विदेशी जुए से अपने देश को पूर्णतः मुक्त करने के लिए भी मैं उतना ही अधीर हूँ जितना कि कोई गरम से गरम कांग्रेसवादी हो सकता है। लेकिन एक भी अंग्रेज या भूमण्डल के किसी भी मानवप्राणी से मुझे कोई घृणा नहीं है।...

--सेवाग्राम २४।१०।'३९। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० ज०। ह० से० २८।१०।'३९]

- **हमने कायिक अहिंसा का पालन किया है परन्तु दिलों में हिंसा को आश्रय दे रखा है।**
- **हमारी अहिंसा हमारी सक्रिय हिंसा की अयोग्यता का परिणाम है।**

७०. अहिंसा का अनुसन्धान

सत्य और अहिंसा को हम यूं ही अलापते न फिरें, बल्कि अपने दैनिक जीवन में उनसे काम लें। गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसन्धान से उसपर आधार रखने वाले दूसरे बहुत से आविष्कार हुए। इसी तरह जब तक हम अहिंसा के नये-नये प्रयोगों के आविष्कार न करेंगे, तब तक आप उससे लाभ नहीं उठा सकते। आपको उसे एक विज्ञान में परिणत करना है।

—सेवाग्राम २३।१०।'३९। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० ज०। ह० से० २८। १०।'३९।]

७१. श्रम, खादी और अहिंसा

जिनका यह विश्वास है कि अहिंसा से ही भारत आजाद हो सकता है और आजादी मिल जाने पर अहिंसा से ही उसकी रक्षा की जा सकती है, वे यह भी ज़रूर मानेंगे कि आप लोग देश की खातिर उपयोगी परिश्रम करके ही बड़े पैमाने पर अहिंसा का पालन कर सकते हैं।

....जिस मुल्क की सभ्यता की बुनियाद अहिंसा पर खड़ी हो, उसे हर घर अधिक से अधिक स्वावलम्बी बनाने की ज़रूरत होगी। एक जमाने में भारतीय समाज की रचना, अनजाने ही सही, अहिंसा के आधार पर थी। समय-समय पर खूंखार जातियों के झुण्ड इस देश पर चढ़कर आते थे, पर हमारे घरेलू जीवन यानें गांव की शान्ति भंग न होती थी।....

कांग्रेसवादियों को यह दलील स्वीकार न हो, तो मेरी राय में ऐसी अहिंसा स्थापित करना असम्भव है, जिस पर किसी भी लालच का असर न हो सके और जो भारी-से-भारी मुसीबतों के सामने भी चट्टान की तरह खड़ी रह सके। ऐसी अहिंसा के बिना देश इस तरह की लड़ाई नहीं लड़ सकता, जिसमें न पीछे हटने का काम हो और न हार खाने का। न इसके बिना कांग्रेस कभी अंग्रेजों के और दुनिया के सामने अपना अहिंसा का दावा ही साबित कर सकती है।

मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि ऐसी व्यापक अहिंसा के न होने से ही हम क़ौमी एकता कायम नहीं कर सके। सच तो यह है कि कांग्रेसवादी आपस के व्यवहार में भी इस तरह की अमली अहिंसा का परिचय नहीं दे सके हैं। और मेरा तो यहां तक विश्वास हो रहा है कि खादी के कार्यक्रम में हमारी जितनी कसर रहेगी, उतनी ही कमी हमारी अहिंसा में रहेगी....

—सेवाग्राम ४।१२।'३९। ह० से० ९।१२।'३९। 'अभूतपूर्व सम्भावना' टिप्पणी का अंश।]

७२. अहिंसा का वास्तविक रूप

मैंने इस अखबार में यह कहने में आनाकानी नहीं की है कि हमारी अहिंसा नामर्दी से पैदा होने वाले अहिंसात्मक व्यवहार के रूप में रही है। यही कारण है कि आज हमें विवश होकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि भले ही निर्बलता की इस अहिंसा से हमें अंग्रेजी राज से छुटकारा मिल जाय, पर इससे हमारे अन्दर विदेशी आक्रमण का सामना करने की शक्ति नहीं आ सकती। इस बात से और यह बात सच्ची है—प्रकट होता है कि यदि निर्बलों की इस अहिंसा के सामने, जिसे अहिंसा कहना ही ग़लत है, अंग्रेज लोग झुक जायं तो यह सिद्ध हो जायगा कि उन्होंने सत्ता छोड़ने का निश्चय-सा कर लिया था और अमनपसन्द प्रजा को भयभीत करने की जोखिम उठाकर वे उससे चिपटे नहीं रहना चाहते।

—सेवाग्राम २४।१२।'३९। ह० ज०। ह० से० ३०।१२।'३९।]

● हमारी अहिंसा नामर्दी से पैदा होनेवाले अहिंसात्मक व्यवहार के रूप में रही है।

७३. अहिंसा से ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था सम्भव है

[अहिंसा के व्यवहार पक्ष-सम्बन्धी डा० लोहिया द्वारा उठाये गये प्रश्नों पर गांधी जी का उत्तर।]

मैं समाजवादियों की इस मान्यता से सहमत नहीं हूं कि जब बड़े कारखानों की योजना बनानेवाला और उसका स्वामी राज्य हो जायगा सब जीवन के लिए आवश्यक चीजें बड़े कारखानों में तैयार करने से जनसाधारण का भला होगा। हेतु तो पश्चिमी और पूर्वी दोनों तरह की कल्पना में एक ही है, यानी यह कि सारे समाज को अधिक से अधिक सुख मिले और जिस घिनौने भेदभाव के कारण एक ओर करोड़ों नंगे-भूखे और दूसरी तरफ मुट्ठी भर मालदार रहते हैं, वह भेदभाव मिट जाय। मेरा विश्वास है कि यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जब संसार के अच्छे और विचारशील लोग मान लें कि अहिंसा के आधार पर ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था रची जा सकती है। मेरी राय में ग़रीबों के हाथ में हिंसा-द्वारा सत्ता लाने का प्रयत्न अन्त में सफल न होगा। जो वस्तु हिंसा से प्राप्त की जाती है, वह उससे बढ़ कर हिंसा के सामने टिक नहीं सकती और हाथ से निकल जाती है। यदि कांग्रेसवादी अहिंसा के ध्येय पर सचाई से डटे रहें और उस पर अमल करें तो भारत का उद्देश्य पूरा हुआ समझना चाहिए।

—सेवाग्राम २४।१।'४०। ह० ज०। ह० से० २७।१।'४०।]

७४. अहिंसक आचरण

[गांधी सेवासंघ के मलिकन्दा अधिवेशन में दिये गये गांधी जी के भाषण का अंश--संपा०]

....आपको मालूम होना चाहिए कि जिस समाज का आधार हिंसा होती है उसका भी सञ्चालन विशेषज्ञ ही करते हैं। हमें सत्य और अहिंसा के पाये पर समाज की स्थापना करने वाला विशेषज्ञ बनना है।

हमें सत्य और अहिंसा को केवल व्यक्तियों के अमल की चीज़ ही नहीं बनाना है, बल्कि ऐसी चीज़ बनाना है जिस पर कि समूह, जातियां, और राष्ट्र भी अमल कर सकें। कम से कम मैं तो यही सपना देखता हूं। मैं इसी को सच्चा करने के लिए जीता हूं और इसी की कोशिश करते हुए मरूंगा। मेरी श्रद्धा मुझे नित-नये सत्य खोज निकालने में सहायता देती है। अहिंसा आत्मा का स्वभाव है, इस कारण हर व्यक्ति जीवन की सभी बातों में उस पर अमल कर सकता है। यदि सभी मामलों में अहिंसक आचरण न हो सके तो फिर अहिंसा का व्यावहारिक मूल्य कुछ नहीं।....

—सेवाग्राम ४।३।'४०। ह० से० १६।३।'४०]

७५. अहिंसा की सच्ची परीक्षा

अहिंसा की सच्ची परीक्षा तो उसी वक्त होती है जब उसका वास्ता उसे तिरस्कार करनेवालों से पड़ता है।

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी से। ह० से० १६।३।'४०]

७६. अहिंसा प्रतिष्ठायाम् वैरत्यागः

[अहिंसा पर अमल करते हुए उसके अनुयायियों के समक्ष पग-पग पर चकरानेवाली पहेलियाँ आती हैं। किन्तु कोई व्यक्ति उसे निष्क्रियता का सिद्धान्त बनाकर कर्म का समस्त स्रोत ही बन्द करके बैठ जाय तो वह आध्यात्मिक दृष्टि से आत्महत्या करता और अपनी अहिंसा को लजाता है।

शान्ति-निकेतन-यात्रा के बीच गांधी जी ने अहिंसा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्सुक शान्तिवादियों को उपर्युक्त सूत्र से अवगत कराया। प्रश्नकर्ताओं की शंकाएं गांधी जी के समाधान-सहित दी जा रही हैं।--संपा०।)

प्रश्न--अपने से अधिक पशुबल समक्ष होने पर कोई स्वयं को निःसहाय समझे, तो क्या उस समय बुराई को रोकने के लिए वाञ्छित हिंसा करना उचित होगा?

उत्तर--हां, किन्तु आप में अच्छी अहिंसा होगी तो निःसहायता का ख्याल होने की आवश्यकता न पड़ेगी। हिंसा के समक्ष लाचारी का भाव आना अहिंसा नहीं, कायरता है। अहिंसा को कायरता के साथ नहीं मिलाना चाहिए।

[प्रश्नकर्ता ने एक विशेष परिस्थिति का उदाहरण प्रस्तुत किया और पूछा]

प्रश्न--मान लीजिए कोई आकर आपका अपमान करे, तो आप अपने को इस तरह जलील होने देंगे?

उत्तर--आपको अपमान का अनुभव हो तो स्वाभिमानरक्षा के लिए आपका उस गुण्डे के मुंह पर थप्पड़ मारना या आवश्यकतानुसार कुछ भी करना उचित होगा। आप कायर नहीं हैं तो उस स्थिति में स्वाभाविक परिणाम बल-प्रयोग होगा। लेकिन आपने अहिंसा-भावना को पचा लिया है तो आपके अन्दर अपमान का विचार पैदा नहीं होगा। उस स्थिति में आपके अहिंसक व्यवहार से या तो गुण्डा खुद शर्माकर आपका अपमान नहीं करेगा या वह अपमान आपको अपमान ही न लगेगा। वह सिर्फ गुण्डे के मुंह में ही रह जायगा, आपको छुएगा तक नहीं।

प्रश्न--मान लीजिए कोई रुग्ण या पागल किसी की हत्या पर उतारू होकर इधर-उधर घूम रहा है, तो क्या आप उसे रोकने के लिए शरीरबल काम में लाना

उचित समझेंगे ? अथवा आप उस समय झगड़े के स्थल पर पहुंचते हैं, जब स्थिति पहले ही बहुत आगे बढ़ चुकी हो, भीड़ काबू के बाहर हो गई हो और आप को असहायता का अनुभव हो तो क्या अश्रुगैस-जैसी किसी चीज़ का इस्तेमाल करना उचित होगा ?

उत्तर——मैं ऐसे मौके पर सहन तो सदा ही करूंगा लेकिन अहिंसा के दृष्टिकोण से हिंसा को उचित कभी नहीं बता सकता। मैं यह कहूंगा कि आपमें अभी उस दर्जे की अहिंसा नहीं आई कि शुद्ध अहिंसक इलाज करने का आत्म-विश्वास हो। अगर इस मात्रा में अहिंसा हो तो आपकी मौजूदगी ही पागल को शान्त करने के लिए काफ़ी होगी। अहिंसा के पीछे खुद उसी का बल रहता है। यह कोई यन्त्र नहीं है कि आपने कह दिया 'मैं बल-प्रयोग नहीं करूंगा' और अहिंसक हो गये। इसका अनुभव हृदय में होना चाहिए, आपके अन्दर पापी के प्रति प्रेम और दया की बाढ़ आनी चाहिए। यह भाव होगा तो किसी न किसी कर्म-द्वारा प्रकट होगा। वह कर्म संकेत, दृष्टिपात या मौनमात्र हो सकता है। उसका रूप कुछ भी हो उससे पापी का हृदय पिघलेगा और उसे पाप से बचा लेगा।

अहिंसा के आदर्श के अनुसार अश्रु-गैस का प्रयोग उचित नहीं। लेकिन यदि मैं यह देखूं कि मैं लाचार हो गया हूं और इस गैस के सिवा अन्य किसी उपाय से लड़की को बलात्कार से नहीं बचा सकता या गुस्से से अन्धी जनता को पागलपन करने से नहीं रोक सकता तो सारी दुनिया के विरोध करने पर भी गैस के प्रयोग का समर्थन करूंगा। जब धर्मराज के दरबार में मुझसे जवाब मांगा जायगा और मैं यह उज्र पेश करूंगा कि अपने अहिंसक धर्म से विवश होने के कारण इन घटनाओं को रोक नहीं सका तो वह मुझे क्षमा नहीं करेंगे। अहिंसा तो अपने आप काम करती है। पूर्ण अहिंसक मनुष्य स्वभाव से ही ऐसा बन जाता है कि वह हिंसा कर ही नहीं सकता। अथवा यों कहिए कि उसके लिए हिंसा का कोई उपयोग नहीं रह जाता, उसकी अहिंसा हर परिस्थिति में उसे पूरा काम देती है।

इसलिए जब मैं यह कहता हूं कि किसी भी मात्रा और परिस्थिति में बल-प्रयोग बुरा है, तो मेरा आशय है कि उसे तारतम्य की दृष्टि से देखना चाहिए। मेरे लिए एक शाश्वत सिद्धान्त में अपवाद स्वीकार करने से यह कहना बेहतर है कि मुझमें काफी अहिंसा नहीं है। जब मैं अपवाद नहीं स्वीकार करूंगा तो मुझे अहिंसा की कला में निपुण होने की प्रेरणा मिलेगी। मैं पतञ्जलि के इस योगसूत्र में अक्षरशः विश्वास रखता हूं कि अहिंसाप्रतिष्ठायाम् वैरत्यागः——अर्थात् अहिंसा के समक्ष हिंसा नहीं टिकती।

प्रश्न——क्या कोई राज्य अहिंसा के सिद्धान्त पर पूरी तरह अमल कर सकता है?

उत्तर——सरकार को पूरी तरह अहिंसक रखने में सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि वह सारी जनता की प्रतिनिधि होती है। इस तरह के 'सतयुग' की मैं आज कल्पना नहीं कर सकता। लेकिन मुझे यह भरोसा अवश्य है कि अहिंसा-प्रधान समाज सम्भव है और मैं उसी के लिए पच रहा हूं। जो सरकार ऐसे समाज की प्रतिनिधि होगी वह कम से कम बलप्रयोग करेगी। लेकिन सरकार किसी भी काम की हुई तो वह अराजकता नहीं फैलने देगी। इसी कारण मैंने कहा कि जिस सरकार की बुनियाद मुख्यतः अहिंसा पर होगी, उसे भी थोड़ी-सी पुलिस सहायता की जरूरत तो होगी ही।

——श्री प्यारेलाल के लेख से। रेल में २७।२।'४० ह० से० २३।३।'४०]

- **हिंसा के समक्ष लाचारी का भाव आना अहिंसा नहीं, कायरता है।**
- **अहिंसा के पीछे खुद उसी का बल रहता है।**
- **मैं पतञ्जलि के उस योगसूत्र में अक्षरशः विश्वास रखता हूं कि अहिंसा प्रतिष्ठायाम् वैरत्यागः अर्थात् अहिंसा के समक्ष हिंसा टिक नहीं सकती।**

७७. विरोधी के प्रति अहिंसा की दृष्टि

[रामगढ़-कांग्रेस की विषय-निर्वाचनी की बैठक में दिये गये गांधी जी के भाषण का एक अंश——सं०]

. . . . मुझे अंग्रेजों से वैर नहीं। जब मैंने सुना कि लार्ड जैटलैण्ड घायल हुए हैं तो मेरे दिल में चोट लगी। यह मेरा स्वभाव है। इसलिए मैं सदा उनके प्रति सद्भाव रखकर काम करता हूँ और सद्भाव रखने की कोशिश करता हूं। यह बात दूसरी है कि मैं ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश करना चाहता हूं। लेकिन मैं यह करना चाहता हूं उनका हृदय-परिवर्तन करके जो उस साम्राज्यवाद से सम्बन्ध रखते हैं। अहिंसा में जो शक्ति मैं बताता हूं वह है, तो उसका विरोधी पर जरूर असर होगा। असर न हुआ तो यह कसूर मेरा होगा, अहिंसा का नहीं।

——ह० से० ६।४।'४०]

७८. क्या सम्पत्ति की हानि करना हिंसा नहीं है ?

प्रश्न––क्या आप जानते हैं कि बहुत-से कांग्रेसी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि सम्पत्ति की हानि जैसे––रेल की पटरियों को नष्ट करना, थानों को जला डालना, तार के खम्भों को काट डालना, लेटर बक्सों को जलाना आदि हिंसा नहीं है ?

उत्तर––मैं इसको आज तक नहीं समझ सका। यह तो शुद्ध हिंसा है। सत्याग्रह का अर्थ तो स्वयं कष्ट-सहन है; दूसरों को कष्ट में डालना नहीं। कई बार किसी को शारीरिक हानि पहुँचाने की अपेक्षा उसकी सम्पत्ति को हानि पहुँचाने में अधिक हिंसा होती है। क्या तथाकथित सत्याग्रही जुर्मानों या अपनी सम्पत्ति कुर्क कराने की अपेक्षा जेल जाने को ज्यादा अच्छा नहीं समझते ? मेरे एक आलोचक ने कहा–'मुझे उत्पातपूर्ण अवज्ञा का प्रचार करने में सफलता मिली है, लेकिन मैं लोगों को अहिंसात्मक अवज्ञा सिखाने में एकदम विफल रहा। जल्दी में मैंने गाड़ी को घोड़े के आगे बांध दिया इसलिए सविनय अवज्ञा सम्बन्धी मेरी सारी बात, यदि बुरी नहीं तो, मूर्खतापूर्ण अवश्य रही है।' मैं इस प्रकार की आलोचना का कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकता। मैं आखिर तुच्छ जीव हूं। मुझे अपने अनुभव और ईमानदारी में विश्वास है। इसका समुचित उत्तर मेरी मृत्यु के बाद यही होगा–– 'उसने प्रयत्न किया, पर वह विफल रहा।'

––सेवाग्राम ७।४।'४०। ह० ज०। ह० से० १३।४।'४०]

७९. मेरी अहिंसा

....मेरी अहिंसा ब्रिटिश सरकार को बदलने की चेष्टा में ही खत्म नहीं हो जाती। ऐसी अहिंसा तो किसी काम की नहीं। उसे अहिंसा का नाम भी नहीं देना चाहिए। इसलिए यदि मैं उसकी कुछ सहायता कर सका तो किसी ठीक-ठीक साम्प्रदायिक समझौते के बगैर कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल बनेंगे ही नहीं। मेरा स्पष्ट मत है कि वास्तविक स्वतन्त्रता ऐसी अहिंसा के बगैर असम्भव है जिसमें कहीं किसी तरह का विरोध न हो। इसी तरह मेरा यह भी विश्वास है कि भारत तभी सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है जब कांग्रेस इस विषय पर समझौता करने से इन्कार कर दे और अपनी बात पर डट जाय और ऐसा करने में उसे कष्ट सहने पड़ें तो उसमें इसका भी साहस होना चाहिए।....

––सेवाग्राम ८।४।'४०। ह० से० १३।४।'४०]

८०. तार्किक चिन्तन और अहिंसा

मैं जानता हूं कि तार्किक चिन्तन की बड़ी से बड़ी मात्रा भी पृथिवी पर अहिंसा का राज्य स्थापित न कर सकेगी। केवल एक ही चीज इस काम को कर सकती है और वह है राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने में अहिंसा के सामर्थ्य को बिना किसी सन्देह के प्रदर्शित कर सकने की भारत की योग्यता।

—सेवाग्राम ८।६।'४०। ह० ज०। ह० से० १५।६।'४०]

८१. अहिंसा : नीति अथवा धर्म ?

*१८ तारीख के 'हरिजन' में मैंने यह आशा प्रकट की थी :—

"यदि मेरी दलील गले के नीचे उतर गई है, तो क्या समय नहीं आया कि हम वीरों की अहिंसा में अपनी अटल श्रद्धा की घोषणा कर दें और कह दें कि हम अपनी आजादी की रक्षा शस्त्रबल से नहीं करना चाहते, हम उसकी रक्षा अहिंसक बल से ही करेंगे।"

२१ तारीख को कार्य समिति§ ने प्रकट किया कि अवसर आने पर वह इस श्रद्धा का आचरण नहीं कर सकेगी। समिति को इससे पूर्व अपनी श्रद्धा को कसौटी पर कसने का अवसर नहीं मिला था। पिछली बैठक में उन्हें देश की भावी आन्तरिक अराजकता और बाह्य आक्रमण के संकट का सामना करने का मार्ग निश्चित करना था।

मैंने कमेटी को बहुत समझाया : "अगर आप लोग शूरवीरों की अहिंसा में विश्वास रखते हैं, तो आज इस पर आचरण करने का अवसर है। बहुत से दल किसी प्रकार की अहिंसा में विश्वास नहीं करते। यही तो और भी विशेष कारण है कि कांग्रेसवादी एकाएक आई परिस्थिति का सामना अहिंसा से करें। यदि सभी लोग अहिंसक रहते तो अराजकता हो ही नहीं सकती थी और बाह्य आक्रमण का सामना करने के लिए शस्त्र सजाने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। हिंसा-बल का उपयोग करनेवाले दलों के बीच कांग्रेस ही अहिंसावादी दल है। अतएव कांग्रेसवादियों के लिए यह आवश्यक हो जाता है, कि वे सिद्ध कर दें कि अपनी श्रद्धा पर अमल भी कर सकते हैं।"

लेकिन कार्य-समिति के सदस्यों को लगा कि कांग्रेस इस पर अमल नहीं कर

---

*१८।६।'४० के 'हरिजन' से अभिप्राय है। § कांग्रेस कार्य-समिति।—संपा०

सकेगी, इस तरह अमल करना उनके लिए एक नया ही अनुभव होगा। उनको पहले कभी ऐसी जोखमभरी परिस्थिति का सामना नहीं करना पड़ा है; साम्प्रदायिक दंगों आदि का निबटारा करने के लिए शान्ति-सेना तैयार करने की मेरी योजना सर्वथा निष्फल हुई है। इस दशा में समिति अब अहिंसक नीति से काम नहीं ले सकती।

मेरी स्थिति भिन्न थी। कांग्रेस के लिए अहिंसा एक नीतिमात्र थी। यदि वह निष्फल हुई तो कांग्रेस उसे छोड़ सकती थी। अहिंसा आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता नहीं ला सकती। कांग्रेस के लिए वह निष्क्रिय है। मेरे लिए तो अहिंसा धर्म है। मुझे उसपर अमल करना ही है। भले ही मैं अकेला रह जाऊं। अहिंसा का प्रचार मेरे जीवन का ध्येय है, अतएव मुझे प्रत्येक परिस्थिति में उसके पीछे लगा ही रहना है। मैंने देखा कि आज ईश्वर के और मनुष्य के सामने मेरी श्रद्धा की परीक्षा का अवसर है। इसलिए समिति के कार्य के दायित्व से मैंने मुक्ति मांगी। आज तक कांग्रेस की नीति के सञ्चालन का उत्तरदायित्व मुझपर रहा है। किन्तु अब जबकि कांग्रेस नेताओं और मुझमें मौलिक अन्तर पाया गया, मैं ऐसा नहीं कर सकता था। उन्होंने मान लिया कि मैं जो कहता हूं वह ठीक ही है और उन्होंने मुझे मुक्ति दे दी। उन्होंने एक बार फिर सिद्ध कर दिया कि जनता ने उनमें जो विश्वास रखा है, वह बिलकुल उचित है। उन्हें यह विश्वास नहीं था कि वे स्वयं या जिनके वे प्रतिनिधि हैं वे इस नई दशा में अहिंसक नीति चला सकते हैं।

समिति के समक्ष यह प्रश्न भी था कि अहिंसक को शुद्ध समझकर जगत् ने उसको प्रतिष्ठा दी है। उस प्रतिष्ठा का और उनको और मुझको बांधने वाली इस अदृष्ट चीज का उन्होंने बलिदान कर दिया। यह बड़ा बलिदान था। किन्तु यद्यपि एक ही आदर्श या नीति के आचरण में मतभेद उत्पन्न हुआ है, इससे हमारी बीस साल से भी पुरानी मित्रता में किसी प्रकार का अन्तर थोड़े ही पड़ सकता है? मैं इस परिणाम से प्रसन्न हूं और दुखी भी। प्रसन्न इसलिए कि मैं मतभेद को सहन कर सका, और ईश्वर ने मुझे एकाकी खड़े रहने की शक्ति दी। दुखी इसलिए कि जिनको मैं बीस साल तक—जो आज एक दिन के समान लगते हैं—साथ रख सका, आज उन्हें साथ रखने की शक्ति मेरे शब्दों में नहीं रही। उनका साथ निभा सका, यह मेरा सौभाग्य था और अभिमान भी। मैं जानता हूं कि यदि ईश्वर ने मुझे वास्तविक अहिंसा का प्रदर्शन करने का मार्ग सुझा दिया, तो यह तार टूटना थोड़े दिन की ही बात रहेगी। अगर कोई मार्ग न निकला तो यह सिद्ध हो जायगा कि उन्होंने बिलगाव का आघात सहन करके भी मुझे मेरे रास्ते जाने दिया, यह बुद्धिमानी थी। भाग्य में मेरी प्रभावहीनता का दुःखद ज्ञान ही लिखा है। तो

भी जिस श्रद्धा ने मुझे इतने वर्ष स्थिर रखा है उसे मैं नहीं छोड़ूंगा। मैं नम्रता से समझ लूंगा कि मैं अहिंसा की शक्ति को और आगे बढाने का पात्र नहीं था।

किन्तु तर्क और यह शंका इस मान्यता पर आधारित है कि कार्य समिति जनता के भावों का प्रतिबिम्ब है। मैं जानता हूं कि समिति इच्छा और आशा रखती है कि कांग्रेस की शक्ति का उनका माप कम निकले तो उनको अत्यन्त प्रसन्नता होगी। सम्भावना यह है कि बहुमत में नहीं पर एक विशेष योग्य छोटे से वर्ग में वीरों की अहिंसा है। यह स्मरण रखा जाय कि इस विषय में समिति से तर्क नहीं किया जा सकता। कार्य समिति के सदस्यों के समक्ष सब तर्क प्रस्तुत थे। किन्तु अहिंसा हृदय का गुण है। वह बुद्धि पर प्रहार करने से नहीं उत्पन्न हो सकता, इसलिए आवश्यकता यह है कि अहिंसा की नई शक्ति का शान्त किन्तु निश्चित प्रदर्शन किया जाय। ऐसा करने का अवसर तो प्रत्येक के समक्ष लगभग प्रतिदिन आता है। साम्प्रदायिक दंगे हैं; डाके हैं, वाक्‌युद्ध हैं। जो सच्चे अहिंसक हैं वे इन अवसरों पर अहिंसा का प्रयोग करेंगे। यदि काफी परिमाण में ऐसा किया जाय, तो उसका प्रभाव पासपड़ोस पर हुए बिना नहीं रहेगा। मुझे विश्वास है कि एक भी ऐसा कांग्रेसवादी नहीं है, जो केवल हठपूर्वक, अहिंसा की शक्ति में अविश्वास रखता है। जो कांग्रेसवादी मानते हैं कि कांग्रेस को आन्तरिक दंगे और बाह्य आक्रमण का सामना भी अहिंसा-द्वारा ही करना चाहिए अपने दैनिक व्यवहार में इस चीज का प्रदर्शन करके दिखायें। जिस व्यक्ति को कोई लगन लगी होती है उसके छोटे-से-छोटे काम में भी वह अपनी झलक दिखला जाती है। इसलिए जिस आदमी पर अहिंसा का आधिपत्य है, वह अपने घर-परिवार में, पड़ोसियों के साथ व्यवहार में, व्यापार में, कांग्रेस सभाओं में, आम सभाओं में और विरोधियों का सामना करने में, सब जगह अहिंसा का प्रयोग करेगा। चूंकि कांग्रेसवालों ने इस प्रकार अहिंसा का प्रयोग नहीं किया, इसलिए कार्य समिति इस निर्णय पर पहुंची। उनका यह कहना सही है, कि कांग्रेसवाले आन्तरिक झगड़े और बाह्य आक्रमण के लिए सबल अहिंसक उपचार करने की तैयारी नहीं रखते। सामान्य अहिंसक उपाय से जो परेशानी पैदा होती है वह स्थिर सत्ता को सार्वजनिक माँग के सामने झुकने पर विवश कर देती है। स्पष्ट है कि झगड़े के सामने ऐसी अहिंसा कुछ काम नहीं कर सकती। यहां तो हमें झगड़ा खड़ा करनेवालों के प्रति हृदय में किसी प्रकार का द्वेष अथवा क्रोध न रखते हुए उनके हाथों मर जाना है। अब तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिए, कि जिस अहिंसा का कांग्रेस ने आज तक प्रचार किया है उससे वर्तमान अहिंसा बिलकुल भिन्न प्रकार की है, किन्तु यही सच्ची अहिंसा है, और यही जगत् को विनाश से बचा सकती है। यदि हिन्दुस्तान जगत् को अहिंसा का सन्देश

न दे सका तो यह विनाश आज या कल आने ही वाला है, और कल की अपेक्षा आज इसके आने की आशंका अधिक है। संसार युद्ध के शाप से बचना चाहता है किन्तु कैसे बचे, इसका उसे पता नहीं चलता। यह कुञ्जी हिन्दुस्तान के हाथ में है।

जब ऊपरका लेख लिखा और टाइप किया जा चुका था, मैंने पण्डित जवाहरलाल जी का बयान देखा। उसके एक-एक वाक्य से मेरे प्रति उनका विश्वास और प्रेम टपकता है, पर इस कारण मेरे इस लेख में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं। उचित हो कि पाठक यह जान लें कि हम दोनों के मन पर समिति के निवेदन का स्वतन्त्र प्रभाव क्या हुआ। इस पृथकता का परिणाम भला ही होगा।

--सेवाग्राम २५।६।'४०। ह० ज०। ह० से० २९।६।'४०]

- **मेरे लिए तो अहिंसा धर्म है। मुझे उसपर अमल करना ही है।**
- **अहिंसा का प्रचार मेरे जीवन का ध्येय है।**
- **एक विशेष योग्य छोटे-से वर्ग में वीरों की अहिंसा है।**
- **अहिंसा हृदय का गुण है। वह बुद्धि पर प्रहार करने से नहीं उत्पन्न हो सकता।**
- **संसार युद्ध के शाप से बचना चाहता है किन्तु कैसे बचे इसका उसे पता नहीं चलता। यह कुञ्जी हिन्दुस्तान के हाथ में है।**

८२. गिरि-प्रवचन के प्रकाश में अहिंसा

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—आप अक्सर हज़रत ईसा के गिरि-प्रवचन का उल्लेख करते हैं। क्या आप उनके इस प्रवचन को मानते हैं कि जो तुम्हारा कुर्ता लेना चाहे उसे अपना जामा भी दे दो? क्या यह चीज़ अहिंसा के गर्भ में नहीं निहित है? अगर है तो क्या आप गांव के दीन-हीन काश्तकारों को यह सलाह देंगे कि वे अपनी आबाद जमीन पर अपने अधिकारों में जमींदार के हस्तक्षेप और ज्यादतियों को खुशी से बर्दाश्त करें?

उत्तर--हां, मैं बिना हिचकिचाहट के लगानदार काश्तकारों को सलाह दूंगा कि वे ज़ालिम की जमीन को खाली कर दें। यह तुम्हारा कुर्ता मांगने वाले को तुम्हारा जामा भी दे देने-जैसी बात होगी। जिस चीज की ज़रूरत है उसे लेना तो फायदेमन्द हो सकता है पर उससे ज्यादा मिल जाय तो यह सम्भव है कि वह एक बोझ हो जायगा। ज़रूरत से ज्यादा पेट में रहना मौत मोल लेना है। ज़मींदार को तो अपना लगान चाहिए, ज़मीन नहीं। इसलिए वह नहीं चाहता कि

उसकी ज़मीन खाली कर दी जाय। तब तो वह उसके सिर आ पड़ेगी। जब आप एक डाकू जितना मांगता है उससे ज्यादा उसके सामने रख देते हैं तो वह हैरान हो जाता है। उसे साधारण ही सही किन्तु एक धक्का-सा लगता है। उसके लिए यह एक नया अनुभव होता है। इतिहास में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं, जहां इस किस्म के अहिंसक बर्ताव से दुष्टों पर अच्छा असर हुआ है। मगर ऐसे काम यन्त्र-वत् नहीं किये जा सकते। यह तो तभी हो सकता है जब कि अहिंसा में हार्दिक श्रद्धा हो और सामने वाले के लिए हृदय में प्रेम और दया हो। मेरे उत्तर में बहुत गूढ़ अर्थ भी भरे पड़े हैं। लेकिन सामान्य व्यवहार के लिए उन सबको बारीकी से समझने की जरूरत नहीं है। अगर आप भीतर जाने की कोशिश करेंगे तो सम्भव है कि भुलावे में पड़ जायं। इतना कहना काफ़ी है कि जिस वचन का उल्लेख आपने किया है उसमें हज़रत ईसा ने अहिंसक असहयोग का एक सुन्दर और प्रभाव-कारी चित्र खड़ा किया है। जब आप ईंट का जवाब पत्थर से देते हैं तो आपका असहयोग हिंसक होता है और अन्त में निकम्मा साबित होता है। लेकिन जब आप जितना कोई मांगता है उतना देने के बदले सब-का-सब उसके आगे रख देते हैं तो आप उसके साथ अहिंसक असहयोग करते हैं। आपका यह जाहिरा सहयोग, जो दरअसल सम्पूर्ण असहयोग है, उसे एक दम निरस्त्र कर देता है। कोई आदमी किसी लड़की की आबरू पर हाथ डालना चाहता है। वह बजाय अपने जिन्दा शरीर के अपनी लाश उसके आगे धर देती है। वह आदमी इससे हक्का-बक्का हो जाता है और वह लड़की वीरांगनाओं की मृत्यु मरती है। वह नाजुक शरीर के अन्दर शेर के दिल का सबूत देती है।

—नई दिल्ली १।७।'४०। ह० ज०। ह० से० ६।७।'४०]

८३. मेरी कोई नहीं सुनता !

ऊर्ध्व बाहुर्विरोम्येष नैव कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च सधर्मः किं न सेव्यते ॥

मैं ऊंचा हाथ करके पुकारता हूं, पर मेरी कोई नहीं सुनता। धर्म में ही अर्थ और काम समाया हुआ है, ऐसे सरल धर्म का लोग क्यों सेवन नहीं करते ?

बापू जी अणे पिछले शनिवार को दिल्ली में कुछ मिनट के लिए मेरे पास आ गये थे। हम साथ-साथ काम कर रहे हों या देखने में विरोधी दिशा में जा रहे हों, बापू जी अणे मेरे प्रति हमेशा प्रेम-भाव रखते हैं, इसलिए जब कभी उन्हें समय मिलता है, राम-राम कर जाते हैं, विचारों का विनिमय कर जाते हैं और कभी-

कभी तो उनके पास श्लोकों का जो भण्डार भरा पड़ा है, उसमें से कुछ वानगी भी दे जाते हैं। दिल्ली में जब वे मुझसे मिलने आये, तब कांग्रेस से मेरे एकदम निकल जाने का उन्होंने कुछ विरोध-सा किया, लेकिन वास्तव में तो उन्होंने मुझे इस पर बधाई ही दी। कांग्रेस को या किसी को भी अब आपको नाराज नहीं करना चाहिए। आप तो अपने रास्ते जायं। आपने अंग्रेजों के प्रति जो लिखा है, वह मैंने देखा है। वे लोग सुनने वाले नहीं पर आपको इससे क्या पड़ी है? आपका काम तो जिसको आप धर्म मानते हैं, वह सबको सुनाने का ही है। देखिए न, नाजुक क्षणों में कांग्रेस ने आपकी न सुनी। स्वयं व्यास की किसी ने नहीं सुनी, तो किसी दूसरे की बात ही क्या? महाभारत-जैसा ग्रन्थ लिखकर अन्त में उन्होंने एक श्लोक लिखा है जो भारत-सावित्री के नाम से प्रख्यात है। यह कहकर ऊपर लिखा श्लोक मुझे सुनाया। यह श्लोक सुनाकर उन्होंने मेरी श्रद्धा को दृढ़ किया, और बताया कि जो मार्ग मैंने पसन्द किया है वह दुर्गम है।

मगर मुझे यह मार्ग ऐसा कठिन लगा ही नहीं है। भले ही आज सरदार और मैं अलग-अलग रास्ते पर जाते दिखाई देते हों, पर इससे हमारे दिल थोड़े ही अलग हुए हैं। उनको अलग रास्ते जाने से भी मैं रोक सकता था, पर ऐसा करना मुझे ठीक नहीं लगा। राजा जी की दृढ़ता के सामने इस तरह का आग्रह अधर्म गिना जाता। राजा जी को भी मैं रोक सकता था, पर ऐसा करने के बदले मैंने उन्हें उनके रास्ते जाने को प्रोत्साहन दिया। ऐसा करना मैंने अपना धर्म समझा। अगर मुझमें आज जो नया-सा मालूम पड़ता है उस क्षेत्र में अहिंसा के प्रयोग को सफल करके दिखाने की शक्ति होगी, तो मेरी श्रद्धा टिकी रहेगी। जनता के बारे में मेरा जो अभिप्राय है वह सच्चा होगा, तो सरदार और राजा जी पहिले की तरह मेरे साथ सहमति व्यक्त करेंगे।

अहिंसा के प्रयोग के लिए ऊपर से नवीन दिखने वाले ये क्षेत्र क्या हैं? कांग्रेस के प्रस्तावों और 'हरिजन' के लेखों का अध्ययन करने वाले इस तथ्य से परिचित हैं कि नहीं? स्थापित सत्ता के विरुद्ध अहिंसा के प्रयोग का एक क्षेत्र है। इसे मैंने सदैव निर्बल का शस्त्र कहा है। हिन्दुस्तान ने इसका उपयोग करके देख लिया है, और काफी हद तक यह प्रयोग सफल हुआ माना जा सकता है। हम यह कह सकते हैं कि इस प्रकार की अहिंसा भी कांग्रेस में स्थायी स्थान पा चुकी है।

दूसरा क्षेत्र है हमारे आपस के झगड़ों में—जैसे कि हिन्दू-मुस्लिम दंगा और अराजकता मचने पर जो उपद्रव होंगे उनमें—अहिंसा का उपयोग। ऐसे समय पर अहिंसा का ऐसा सफल प्रयोग हम अभी तक नहीं कर सके। इसलिए जब अराजकता का भय हमारी आँखों के सामने नाच रहा है, तब कांग्रेस वाले क्या करें? डण्डे का

जवाब डण्डे से दें या कि डण्डे वालों के आगे सिर झुकाकर, मार को सहन करके दें ? इस प्रश्न का उत्तर जितना हम समझते हैं उतना सरल नहीं है। इसकी गुत्थियों में न जाकर मैं इतना ही कहूंगा कि ऐसे समय पर कांग्रेस वाले स्वयं मर कर जितना बचा सकते हैं उतना बचायें, दूसरों को मार कर कभी नहीं। बिना मारे मर जाने वाले ने अपने दायित्व का शत प्रतिशत निर्वाह किया है। परिणाम तो ईश्वर के हाथ में है। यह अहिंसा दुर्बल की अहिंसा नहीं है, यह तो स्पष्ट है। इसमें जेल जाने का लाभ नहीं है। सरकार के प्रति हृदय में जहर भरा हो तो भी उसे छिपाकर जेल जाया जा सकता है, असहयोग किया जा सकता है। लेकिन जहां तलवार छुरी, लाठी, पत्थर इत्यादि का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा हो, वहां अकेला आदमी क्या करे ? मन में द्वेष रखने वाला क्या तलवार का वार झेलेगा ? स्पष्ट है कि ऐसा वार झेलने वाले का हृदय प्रेम और दया से सराबोर होना चाहिए। जो मनुष्य विरोधी को अपना अंग समझता है, वही उसका वार झेलेगा और उसे वह फूल के समान जानेगा। ऐसा एक आदमी भी अच्छे संयोगों में हजारों का काम कर सकता है। इसके लिए उच्चकोटि के हृदय-बल की आवश्यकता है।

जो स्त्री या पुरुष ऐसी शक्ति दिखा सकता है, वह बाहरी आक्रमण का सामना तो आसानी से कर सकता है। यह तीसरा क्षेत्र है। कांग्रेस की कार्य समिति ने मान लिया कि भीतरी आक्रमण के लिए तो अहिंसा का प्रयोग फिर भी चल सकता है, किन्तु बाहर से चढ़ आने वाले शत्रु के विरुद्ध अहिंसा-द्वारा लड़ने की शक्ति हिन्दुस्तान में नहीं है। मुझे उनके इस अविश्वास से दुःख होता है। मैं नहीं मानता कि हिन्दुस्तान के करोड़ों निःशस्त्र लोग इस व्यापक क्षेत्र में सफलतापूर्वक अहिंसा का प्रयोग नहीं कर सकेंगे। कांग्रेसियों का कर्तव्य है कि वे सरदार को, जिनकी निष्ठा कुछ समय के लिए बलवानों की अहिंसा से डगमगा गई है, दृढ़ विश्वास दिला दें कि अहिंसा ही एक ऐसा शस्त्र है जो कथित क्षेत्र में हिन्दुस्तान के उपयुक्त हो सकता है। कदाचित् कोई कांग्रेसी ऐसी शंका करे कि हिन्दुस्तान में जो इतने लड़ने वाले पड़े हैं उनका क्या होगा ? मेरी समझ में यह विशेष कारण है कि सब कांग्रेसी केवल अहिंसक सेना के द्वारा ही रक्षा करने की तालीम लें। यह प्रयोग नया ही है। बीस वर्ष से एक क्षेत्र में अहिंसा का सफल प्रयोग करने वाले कांग्रेसी यह नया प्रयोग न करें, तो फिर अन्य कौन करेगा ? मेरा यह अटल विश्वास है कि यदि हमारे पास आवश्यक संख्या में अहिंसक सेना हो, तो इस नये क्षेत्र में भी हमें विजय मिल सकती है, और जो करोड़ों रुपये आज व्यर्थ खर्च हो रहे हैं, वे बच सकते हैं।

इसलिए मैं यह आशा लगाये बैठा हूं कि प्रत्येक (गुजराती) स्त्री-पुरुष अहिंसा

को दृढ़ता से पकड़े रहेंगे और सरदार को विश्वास दिलायेंगे कि वे लोग कभी हिंसक बल का प्रयोग नहीं करेंगे। हिंसक बल के प्रयोग द्वारा निश्चित विजय पाने की आशा भी हो तो वे उसे अहिंसक बल के समक्ष तरजीह न देंगे। भूलें करके ही हम भूलें न करना सीखेंगे। हम जितनी बार गिरेंगे, उतनी बार फिर उठकर खड़े हो जायेंगे।

—दिल्ली से वर्धा जाने वाली गाड़ी में ७।७।'४०। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० से० १३।७।'४०]

- **मन में द्वेष रखने वाला क्या तलवार का वार झेलेगा? स्पष्ट है कि ऐसा वार झेलने वाले का हृदय प्रेम और दया से आप्लावित होना चाहिए।**
- **जो मनुष्य विरोधी को अपना अंग समझता है, वही उसका वार झेलेगा। और उसे वह फूल के समान मानेगा।**
- **मैं नहीं मानता हिन्दुस्तान के करोड़ों निःशस्त्र लोग इस व्यापक क्षेत्र में (बाह्य आक्रमण के विरुद्ध) सफलतापूर्वक अहिंसा का प्रयोग नहीं कर सकेंगे।**

८४. अहिंसा का प्रयोग

....मैं पचास वर्ष से निरन्तर एक वैज्ञानिक की बारीकी से अहिंसा के प्रयोग और उसकी छिपी हुई शक्तियों को शोधने का प्रयत्न कर रहा हूँ। मैंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग किया है। घर में, संस्थाओं में, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में, एक भी ऐसे अवसर का मुझे स्मरण नहीं है, जहां अहिंसा निष्फल हुई हो। जहां पर कभी निष्फलता देखने में आई उसका कारण मैंने अपनी अपूर्णता माना है। मैंने अपने लिए कभी सम्पूर्णता का दावा नहीं किया। लेकिन मैं यह दावा करता हूं कि मुझे सत्य, जिसका दूसरा नाम ईश्वर है, की शोध की लगन रही है। इस शोध के क्रम में अहिंसा मेरे हाथ आई। इसका प्रचार मेरे जीवन का उद्देश्य है। यदि मुझे जीवित रहने में कोई रस है तो वह केवल इस उद्देश्य को पूरा करने में है।

मैं दावा करता हूं कि मैं ब्रिटेन का आजीवन और निःस्वार्थ मित्र रहा हूं। एक समय ऐसा था कि मैं आपके साम्राज्य पर भी अनुरक्त था। मैं समझता था कि आपका राज्य हिन्दुस्तान को लाभ पहुँचा रहा है। मगर जब मैंने देखा कि वस्तुस्थिति तो दूसरी ही है, इस तरीके से हिन्दुस्तान का भला नहीं हो सकता, तब मैंने अहिंसक प्रणाली से साम्राज्यवाद का सामना करना आरम्भ किया और आज भी कर रहा हूं। मेरे देश के भाग्य में अन्ततः कुछ भी लिखा हो, आप लोगों के प्रति

मेरा प्रेम वैसा ही बना हुआ है और रहेगा। मेरी अहिंसा सारे जगत् के प्रति प्रेम माँगती है। और आप उस जगत् के कोई छोटे भाग नहीं हैं।

--नई दिल्ली ३।५।'४०। 'हर एक अंग्रेज़ के प्रति' लेख का अंश। ह० से० १३।७।'४०]

८५. अहिंसा कैसे सीखी जाय ?

[गांधी जी से पूछा गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न---आप अहिंसा-अहिंसा चिल्लाते रहते हैं। मगर इससे लोगों में अहिंसा आने वाली नहीं। अब जब कि आपने गुजराती में लिखना शुरू किया है तो आपको लोगों को बताना चाहिए कि बलवान की अहिंसा को या शुद्ध अहिंसा को वे किस तरह अपने जीवन में उतार सकते हैं?

उत्तर---प्रश्न आपका अच्छा है और ठीक मौके पर पूछा गया है। आपके पूछने से पहले ही मैं इस प्रश्न का जवाब अनेक बार टुकड़े-टुकड़े करके कई जगह दे चुका हूं। किन्तु मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि मुझे याद नहीं पड़ता कि इसी एक प्रश्न को लेकर अलग से मैंने कभी लिखा है। मैंने इस पर यथोचित बल नहीं दिया। मेरा समय सरकार के साथ लड़ने की तैयारी में बीता है। आजतक उचित भी यही था। मगर हमने देखा कि ऐसा करने में हमारी अहिंसा अपंग रही है। बलवानों की अहिंसा की तरफ़ तो हमने झांका भी नहीं। अब अगर हमें आगे बढ़ना है तो पूर्व की अहिंसा को थोड़े समय के लिए हमें भूल जाना होगा। हम लोगों में सच्ची अहिंसा प्रकट होगी तो पूर्व की अहिंसा को हम उसके उज्जवल स्वरूप में देख सकेंगे और अल्प प्रयास से ही शत प्रतिशत सफलता प्राप्त कर लेंगे। मैं कांग्रेस से निकल गया हूं इसीलिए कांग्रेस के नाम से मैं अकेला भी सविनय अवज्ञा नहीं करूंगा। किन्तु व्यक्तिगत रूप से तो जब करनी होगी तब कर सकता हूं। इसलिए जब शुद्ध अहिंसा का पाठ चल रहा होगा उस बीच सविनय अवज्ञा एकदम बन्द रहेगी, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं। मगर मेरी कल्पना के अहिंसक दल में भरती होने वाले को अपने लिए तात्कालिक सविनय अवज्ञा की आशा नहीं रखनी चाहिए। उनको समझ लेना चाहिए कि जहां तक उन्होंने शुद्ध अहिंसा का अनुभव नहीं किया वहां तक वे सविनय अवज्ञा कर ही नहीं सकते।

शुद्ध अहिंसा के नाम से ही हमें भड़क नहीं जाना चाहिए। इस अहिंसा को हम स्पष्टतया समझ लें और उसकी सर्वोपरि उपयोगिता को स्वीकार कर लें, तो उसका आचरण जितना कठिन माना जाता है, उतना कठिन नहीं है। भारत-

सावित्री की रट लगाना आवश्यक है। ऋषि कवि पुकार-पुकारकर कहता है:— 'जिस धर्म में सहज ही शुद्ध अर्थ और काम समाये हुए हैं उस धर्म का हम क्यों आचरण नहीं करते?'[१] यह धर्म तिलक लगाने या गंगा स्नान करने का नहीं किन्तु अहिंसा और सत्य आचरण का है। हमारे पास दो अमर वाक्य हैं—अहिंसा परमधर्म है, और सत्य के सिवाय दूसरा धर्म नहीं। इनमें वाञ्छनीय समस्त अर्थ और काम आ जाते हैं। फिर हम क्यों हिचकिचाते हैं? यह होते हुए भी स्वीकार करना पड़ता है कि जो सरल है वही लोगों को कठिन मालूम होता है। यह हमारी जड़ता का सूचक है। यहां जड़ता शब्द को निन्दात्मक नहीं समझना चाहिए। मैंने आंग्ल विद्वानों के शब्द का अनुवाद किया है। वस्तु मात्र में जड़ता नामक एक गुण है और वह अपनी जगह उपयोगी भी है। इसी गुण से हम टिके रहते हैं। यह न हो तो हम हमेशा लुढ़कते रहें। इस जड़ता के वश होकर हमारे अन्दर इस मान्यता ने घर कर लिया है कि सत्य और अहिंसा का पालन करना बहुत कठिन है। यह दूषित जड़ता है। यह दोष हमें निकाल ही देना चाहिए। पहले तो यह संकल्प कर लेना चाहिए कि असत्य और हिंसा-द्वारा कितना भी लाभ हो वह हमारे लिए त्याज्य है। वह लाभ लाभ नहीं किन्तु हानिरूप ही होगा। हम निश्चयपूर्वक इतना मान लें तो दोनों गुणों को अपने अन्दर आसानी से विकसित कर सकते हैं।

किन्तु यहां तो हम अहिंसा को ही लेंगे। आज तक हमने चर्खा वगैरह को अहिंसा का स्वतन्त्र रूप माना है और वह है भी। मैं मान लेता हूं कि अहिंसा पर पूरा-पूरा अमल करने वाले ने अपने माता-पिता पुत्रादि और पति-पत्नी नौकर-चाकरों के साथ का सम्बन्ध तो अवश्य ही अहिंसामय कर लिया होगा या कर लेगा। किन्तु देश में उपद्रव हों तो वह क्या करेगा? हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हो तो उसके पास इसका क्या इलाज है? चोर-डाकुओं के उपद्रव के समय वह क्या करेगा? जब यह उपद्रव हो तब मर मिटने का संकल्प मात्र काफ़ी नहीं है। इस तरह मर मिटने की योग्यता भी होनी चाहिए। मैं हिन्दू हूं तो मुझे मुसलमानों या अन्य धर्मावलम्बियों के साथ भाईचारे का सम्बन्ध जोड़ना चाहिए। अपनें आसपास रहने वाले विधर्मियों के साथ भी हमें वैसा ही बर्ताव करना चाहिए जैसा स्वधर्मियों के प्रति होता है या होना चाहिए। उनकी सेवा के अवसर ढूंढ़कर उनकी सेवा करनी चाहिए, कृत्रिमता नहीं होनी चाहिए। अहिंसा के शब्दकोष में तो डर का कोई

१. बापू जी का संकेत महर्षि वेदव्यास के इस श्लोक की ओर है—

ऊर्ध्वं बाहुर्विरोम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥

स्थान नहीं ही है। इस तरह भाईचारा पैदा करने वाला ही साम्प्रदायिक दंगों में अपने आपको खपा सकता है। यही बात चोर-डाकुओं के विषय में भी लागू होती है। आम तौर पर चोर-डाकुओं के सम्प्रदाय नहीं होते पर हम इतना तो जानते हैं कि सामान्यत: अमुक कौमों से से चोर-डाकू आते हैं। उनके साथ भी हमें सम्बन्ध जोड़ना है। उदाहरणार्थ रविशंकर महाराज इस कोटि के हैं। उन्होंने यह महान काम सहज तौर से किया है। ऐसा करने वाले बहुत थोड़े मिलेंगे। यह क्षेत्र बहुत विशाल है। इसमें शुद्ध प्रेम के अतिरिक्त दूसरी किसी योग्यता की जरूरत नहीं। रविशंकर महाराज को अंग्रेजी का कुछ भी ज्ञान नहीं। गुजराती भी काम चलाने लायक जानते हैं। ईश्वर ने उन्हें पड़ोसी के प्रति प्रेम करने का महान् गुण दिया है। और उनकी सादगी भी ऐसी है कि उस पर सबकी आँख जाती है।

इसलिए जहाँ-जहाँ अपने प्रत्येक काम में अहिंसा पर अमल करने वाले लोग रहते हों, वहां प्रत्येक को अपने-अपने लिए कार्यक्रम बना लेना चाहिए। उसमें इतनी जागृति होनी चाहिए कि वह अपने एक-एक क्षण का हिसाब दे सके।

--सेवाग्राम १०।६।'४०। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० से० २०।७।'४०]

- **हमारे पास दो अमर वाक्य हैं--अहिंसा परमधर्म है और सत्य के सिवा दूसरा धर्म नहीं। इनमें वाञ्छनीय समस्त अर्थ और काम आ जाते हैं।**
- **असत्य और हिंसा-द्वारा कितना भी लाभ हो हमारे लिए वह त्याज्य है। वह लाभ लाभ नहीं किन्तु हानिरूप ही होगा।**
- **अहिंसा के शब्दकोष में तो डर को कोई स्थान ही नहीं है।**

८६. अहिंसा का सर्वोत्तम क्षेत्र

पिछले हफ्ते मैंने अहिंसा के तीन क्षेत्रों के बारे में लिखा था। आज चौथे और सर्वोत्तम क्षेत्र के बारे में ध्यान खींचना चाहता हूं। यह है कौटुम्बिक क्षेत्र। यहां कौटुम्बिक शब्द को कुछ विस्तृत अर्थ में समझना चाहिए। हम जिस संस्था के सदस्य हों उसके सब सदस्यों को एक कुटुम्ब रूप ही समझना चाहिए। इस क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग सफल होना ही चाहिए। नहीं तो समझना चाहिए कि हममें शुद्ध अहिंसा का पालन करने की शक्ति नहीं है। क्योंकि जिस प्रेम का पालन हम अपने कुटुम्ब या अपनी संस्था में अपने सगे-सम्बन्धियों या साथियों के प्रति करते हैं उसी प्रेम का पालन हमें अपने शत्रु या चोर-डाकू के प्रति भी करना है। यदि हम पहिले में विफल हुए तो दूसरे में सफल होने की आशा रखना आकाश-कुसुम प्राप्त करने की आशा रखने-जैसा है।

आमतौर पर यह मान लिया जाता है कि कुटुम्ब या संस्था में हम अहिंसा का पालन न कर सकें तो भी राजनीति में उसका पालन कर सकेंगे। यह निरा भ्रम है। जिसका हम आज तक पालन करते आये हैं उसे अहिंसा का नाम देना अहिंसा को बदनाम करना है। ऐसी लूली-लँगड़ी अहिंसा हमें लड़ाई के समय काम दे ही नहीं सकती। अहिंसा की बारहखड़ी तो कुटुम्ब में ही सीखी जा सकती है। अगर हम यहां उत्तीर्ण हो गये तो फिर सब क्षेत्रों में उत्तीर्ण हो सकते हैं, यह मैं अनुभव से कह सकता हूँ। क्योंकि अहिंसक मनुष्य के लिए तो सारा जगत् अपना कुटुम्ब है। जो ऐसा मानता है वह किससे डरेगा और किसे डरायेगा? कहा जा सकता है कि इस शर्त के अनुसार तो अहिंसक बहुत ही कम रह जायँगे। ऐसा होना सम्भव है। लेकिन यह मेरी शर्त का जवाब नहीं।

जो अहिंसा के अनुयायी हैं, उन्हें अहिंसा-पालन की शर्त जान ही लेनी चाहिए। इससे भड़ककर अहिंसा का त्याग करना हो तो भले ही कर दिया जाय। जब कांग्रेस कार्य-समिति ने अपनी स्थिति साफ़ कर दी है तो अहिंसा-पालन का दावा करने वालों के लिए यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि अहिंसा उनसे क्या चाहती है। फिर भले ही ऐसा करने में अहिंसा की सेना एकदम छोटी रह जाय। छोटी भले ही हो पर यदि वह सच्ची होगी तो किसी रोज़ उसके बड़ी होने की आशा रखी जा सकती है। किन्तु झूठी अहिंसा से तो छोटी या बड़ी कुछ भी बनने की नहीं।

मेरे लिखने का कोई यह अर्थ न करे कि इन बातों का पूर्ण पालन करने वाले ही अहिंसक दल में रह सकते हैं। जो लोग इन शर्तों को स्वीकार करते हैं और इनका पालन करने का उत्तरोत्तर अधिक प्रयत्न करते हैं वे सब इस दल में भर्ती हो सकते हैं। यह दल पूर्ण अहिंसकों का ही नहीं वरं अहिंसा का पालन करने वालों का, शुद्ध प्रयत्न करने वालों का होगा।

पचास वर्ष से मेरा प्रयत्न मेरे जीवन को उत्तरोत्तर अहिंसामय बनाने और साथियों को ऐसी प्रेरणा देने का रहा है। मेरा मत है कि इस प्रयत्न में अच्छी मात्रा में सफलता मिली है। जैसे-जैसे बाहर का वातावरण निर्बल और निराशाजनक मालूम होता है वैसे-वैसे मेरा उत्साह और मेरी श्रद्धा बढ़ती जाती है और मैं अहिंसा की शर्तों को अधिक स्पष्टता से देखता हूं।

—सेवाग्राम १५।७।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० २०।७।'४०]

- **हम जिस संस्था के सदस्य हों उसके सब सदस्यों को एक कुटुम्ब रूप ही समझना चाहिए।**
- **अहिंसक मनुष्य के लिए तो सारा जगत् अपना कुटुम्ब है।**

८७. हिंसा की भावना

..मेरे मन में भी किसी के प्रति हिंसा करने का विचार आया तो समझ लो मेरी अहिंसा खत्म हो गई। शरीर से मैं नहीं मारता, इसका अर्थ यह हुआ कि मुझमें मारने की शक्ति नहीं है। जिसे लकवा मार गया हो वह किसी को नहीं मार सकता। --ह० से० २०1७1'४०]

८८. अहिंसा के आधार : प्रेम और उदारता

[२७ जून १९४० को गांधी जी वायसराय के निमन्त्रण पर अपने छोटे-से दल के साथ सेवाग्राम से शिमला जा रहे थे। मार्ग में श्री प्यारेलाल[1] ने एक साथी की आलोचना शुरू कर दी। उस साथी के पत्र पर लिखे 'निजी' शब्द पर कटाक्ष करते हुए श्रीप्यारेलाल ने कहा--"यह हमें अच्छा नहीं लगता। इस पत्र में ऐसा निजी कुछ नहीं है किन्तु इस भाई के स्वभाव में कुछ ऐसी रुखाई है, जो हम सब को चुभती है।"

बापू जी इस आलोचना को सुनते ही चौंक उठे। उन्होंने श्री प्यारेलाल से जो कुछ कहा और फिर प्यारेलाल जी तथा श्री महादेव देसाई के साथ इस सम्बन्ध में जो प्रश्नोत्तर हुए, वे यहां अंशतः दिये जाते हैं।--संपा०]

तुमने यथार्थ के आधार पर अपने साथी के स्वभाव का अनुमान लगाया। यह अनुचित है। तर्क की दृष्टि से तो यह अनुचित है ही, अहिंसा की दृष्टि से भी यह उचित नहीं।....

....एक प्रकार से तो तुम्हारी आलोचना सच्ची है, किन्तु सर्वथा सच्ची नहीं। इसमें अनुदारता की गन्ध आती है। किसी के विषय में अनुदार अनुमान लगाने से अहिंसा भंग होती है। जो लोग अहिंसा-मार्ग के पथिक हैं, उन्हें तो सदा फूंक-फूंककर क़दम रखना है। किन परिस्थितियों में एक व्यक्ति ने जन्म लिया, कैसे और कहां उसका पालन-पोषण हुआ, उसके स्वभाव की त्रुटियां देखते समय इन सब बातों का विचार करना चाहिए। जो लोग मेरे निकट एक ही आदर्श को लेकर एकत्र हुए हैं उनका धर्म है कि वे एक दूसरे के स्वभाव की त्रुटियों का विचार

१ उस समय श्री महादेव देसाई के सहयोगी के रूप में गांधी जी के एक निजी सचिव।

न करें। वे एक दूसरे के गुणों को ही देखें और सहनशीलता, उदारता, मूक सेवा तथा प्रेम से उनके पूर्वाग्रहों को तोड़ने, उन्हें जीतने का सतत् प्रयत्न करें।

प्यारेलाल––मैं यह सब मानता हूं, मगर प्रेम और सेवा के लिए अवकाश हो, तब न ? मैंने कभी उसे शिकायत का अवसर नहीं दिया। कई बार मित्र भाव और सेवाभाव से उसकी ओर झुका भी हूं। यह बात भी नहीं कि सफलता तनिक भी मिली ही न हो किन्तु उसके मन में मेरे प्रति कितना तिरस्कार भरा हुआ है, यह आप नहीं जानते क्या ?

गांधी जी––मैं वह सब जानता हूं। उसके स्वभाव में जो दोष हैं वे मुझसे छिपे नहीं हैं। मैंने वे सब उसे सुनाकर कई बार रुलाया भी है। मेरी शिकायत यह नहीं है कि तुम्हारे वर्ताव में कुछ अनुचित था, मगर क्या उस वर्ताव के पीछे प्रेम से छलकता हृदय था ? तुम्हारे उद्‌गार में एक प्रकार का सूक्ष्म अहंकार भरा है। तुम्हारे प्रति वह तिरस्कार रखता है, तो भी उसे पीकर तुम जीतने का प्रयत्न करते हो, तुम्हारी इस भावना में एक सूक्ष्म अभिमान है। तुम्हारे मन में तो सारे समय विचार रहा है तुम्हारे प्रति किये गये अन्याय का, विरोधी के प्रति दया और सहानुभूति का नहीं। वह बेचारा भी अपनी जगह अपनी परिस्थिति का शिकार है, अपने दोषों का उसे भास है। उन्हें जीतने का उसने प्रयत्न भी किया है, और कर रहा है। जो हमारा स्वभाव बन चुका है, उसे जीतना सरल नहीं। यह सब विचार तुमने नहीं किया, और जाने-अनजाने उसके साथ अन्याय किया है। वह क्या-क्या कठिनाइयां पार करके आज किस कोटि तक पहुंचा है, हमें इसका विचार करना चाहिए, इसका नहीं कि उसमें कितने दोष बाकी हैं। अंग्रेजी में प्रेम के लिए 'चैरिटी' शब्द कितना सुन्दर है। उसमें प्रेम-भाव के साथ दया-भाव भी आ जाता है, और हमारी अहिंसा में दया-भाव तो पूरा-पूरा होना ही चाहिए।

महादेव भाई––दया और चैरिटी इन दोनों शब्दों का धात्वर्थ एक जैसा ही है। दया में धातु 'दय्' है, जिसका अर्थ है प्रेम करना, प्रिय मानना, इससे दयिता (प्रिया) शब्द निकला है, और चैरिटी के मूल में भी लैटिन-केरस-प्रिय है। इसलिए जिसके प्रति हमारे मन में चैरिटी हो, दया हो, उसके लिए हमारा हृदय प्रेम से द्रवित होना ही चाहिए।

गांधी जी––इन दोनों शब्दों का धात्वर्थ एक जैसा है, इसका मुझे पता नहीं था। मगर इससे यह सिद्ध होता है कि विरोधी के स्वभाव की त्रुटियों को रजकण-जैसा मान कर उसके गुणों को ही देखना और परगुण परमाणु-जितना भी हो तो उसे पर्वत बनाकर कहने में ही दया और प्रेम की कला है।

और तिरस्कार की बात करते समय तो हमेशा ऐण्डरूज़ का दृष्टान्त सामने

आना चाहिए। कितने ही अधिकारियों के मन में ऐंण्डरूज के प्रति तिरस्कार भरा था, यह वह जानते थे। किन्तु फिर भी उन्हें अनेक बार उन लोगों के यहां जाने में भी कभी संकोच नहीं होता था। अधिकारियों के मन में उनके प्रति तिरस्कार था, यह समझने और उसे दूर करने का वह प्रयत्न करते थे। अतः उनका तिरस्कार करने वालों में से कुछ लोगों को पश्चात्ताप हुआ होगा, और उन्होंने स्वीकार किया होगा कि उन्होंने उनके प्रति कितना अन्याय किया। इस तरह का तिरस्कार तो प्रेम के लिए अवकाश पैदा करता है। जो हमें प्रेम करे उसको हम प्रेम करें, इसमें नई बात क्या हुई। हम तिरस्कार के उत्तर में प्रेम और दया से द्रवित हों, इसी में तो खूबी है।

प्यारेलाल—समझता हूं, सब समझता हूं। उसकी करुण स्थिति की भी कभी-कभी झांकी हुई है। ऐसे अवसरों पर मेरा दिल पिघल उठा है, और मैं प्रेम और मित्रभाव से प्रेरित होकर उसकी ओर झुका हूं और उसकी सेवा करने का प्रयत्न किया है। ऐसे अवसरों पर मुझे तिरस्कार का डर नहीं लगा। मेरा स्वाभाविक संकोच भी मेरे रास्ते में बाधक नहीं हुआ, और मुझे सफलता भी मिली है। अन्तिम पृथक्करण में इस सब चीज़ की जड़ में मेरी ही कमजोरी रही है। नहीं तो मेरे मन में क्यों डर रहे कि मेरे उसकी तरफ झुकने का भी वह अनर्थ तो नहीं करेगा ?

गांधी जी—तुम्हारे डर में भी तुम्हारा अभिमान है। इसमें हिंसा है। जहां प्रेम है, वहां डर को स्थान ही कहां है ? किन्तु यह सारा दोष मेरा ही है। यह मेरी अहिंसा की अपूर्णता है कि मेरे आस-पास जितनी अहिंसा चाहिए उतनी देखने में नहीं आती। सेवाग्राम की प्रयोग-शाला मेरे लिए अहिंसा की प्रयोग-शाला है। अगर मेरा प्रयोग यहां सफल हुआ, तो बड़े क्षेत्र में भी मुझे सफलता की कुन्जी मिल जायगी। मिल गई तो पूर्ण स्वराज्य की चाबी भी मिली ही समझो। इसलिए सेवाग्राम को छोड़कर मेरा कहीं जाने को मन नहीं होता। दूसरी ओर कभी-कभी यह विचार आता है कि सब छोड़-छाड़कर एकदम एकान्त में जाकर अपना प्रयोग चलाकर देखूं ? अपनी शान्ति और कल्याण साधने के लिए नहीं, किन्तु आत्म-निरीक्षण के लिए, आत्मा की आवाज को अधिक स्पष्टता से सुनने के लिए। जगत् के ही कल्याण का प्रतिक्षण विचार हो, और इस विचार को सहज सिद्धि प्राप्त हो सके। तभी मेरा अहिंसा का प्रयोग सफल होगा। पूर्ण अहिंसक मनुष्य गुफा में बैठा हुआ भी सारे जगत् को हिला सकता है, इसमें मुझे शंका नहीं। पर उस विचार के पीछे पूर्ण एकाग्रता और पूर्ण शुद्धि होनी चाहिए।

—दिल्ली १।७।'४०। श्रीप्यारेलाल का लेख। ह० ज०। ह० से० २७।७।'४०]

- किसी के विषय में अनुदार अनुमान लगाने से अहिंसा भंग होती है।
- जो लोग अहिंसा-मार्ग के पथिक हैं, उन्हें तो सदा फूंक-फूँककर क़दम रखना है।
- जो हमारा स्वभाव बन चुका है, उसे जीतना सरल नहीं।
- हमारी अहिंसा में दया-भाव तो पूरा-पूरा होना ही चाहिए।
- विरोधी के स्वभाव की त्रुटियों को रजकण-जैसा मान कर उसके गुणों को ही देखना चाहिए।
- परगुण परमाणु-जितना भी हो तो उसे पर्वत-सा बनाकर कहने में ही दया और प्रेम की कला है।
- जो हमें प्रेम करे उसको हम प्रेम करें, इसमें नई बात क्या हुई?
- हम तिरस्कार के उत्तर में प्रेम और दया से द्रवित हों, इसी में तो ख़ूबी है।
- जहां प्रेम है, वहां डर को स्थान ही कहां है?
- सेवाग्राम की प्रयोगशाला मेरे लिए अहिंसा की प्रयोगशाला है।
- पूर्ण अहिंसक मनुष्य गुफा में बैठा हुआ भी सारे जगत् को हिला सकता है, इसमें मुझे कोई शंका नहीं।

८९. अहिंसा पर श्रद्धा

[दिल्ली के चरखा क्लब के सदस्यों से वार्ता करते हुए अहिंसा के सम्बन्ध में गांधी जी ने ये उद्‌गार प्रकट किये थे।——संपा०]

आज हमारी अहिंसा कसौटी पर चढ़ रही है। आप लोग पूछते हैं कि क्या मैं कार्य-समिति के प्रस्ताव को गलत समझता हूं? मेरा जवाब है हां, मेरी दृष्टि से वह ग़लत है। किन्तु आखिर कार्य-समिति के प्रस्ताव के क्या अर्थ हैं? केवल इतना ही कि वह मानती है कि देश आज शुद्ध अहिंसा के लिए तैयार नहीं है। कार्य-समिति की इस मान्यता को मिथ्या सिद्ध कर दिखाना आपका काम है। यदि आप यह कह सकें कि देश शुद्ध सत्याग्रह के लिए तैयार है, तो वे इससे प्रसन्न होंगे और अपना प्रस्ताव भी बदल देंगे। किन्तु इसके लिए आप लोगों में अहिंसा-सम्बन्धी श्रद्धा होनी चाहिए, यह नहीं कि सदा आप इस ताक में रहें कि कब बहाना हाथ लगे और अहिंसा, खद्दर आदि बन्धनों से छूट जायं। यदि आप सब सच्चे हैं, यदि आप के अन्दर सच्ची अहिंसा निहित है तो शीघ्रं ही आपकी संख्या बावन से बावन

सौ हो जायगी। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह-युद्ध में ऐसा ही हुआ था। श्रद्धा-विहीन साधना निकम्मी है—उस नमक की तरह, जिसमें से स्वाद चला गया है।

मेरे मन में तनिक भी शंका नहीं कि चरखा-द्वारा हम शुद्ध अहिंसा की शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। यह वह शक्ति है जिसके सामने कोई कठिनाई नहीं, जो समस्त अवरोधों पर प्रभावशाली सिद्ध होती है; जो अजेय है। अपने देश की दीन-दुर्बल जनता के हाथ में शस्त्र देकर हम शत्रु के कुछ व्यक्तियों की हत्या करवा सकते हैं; उनके मुंह से दो-चार कौर छीन भी सकते हैं। किन्तु इससे हम अपने देश की गरीब जनता का भला नहीं कर सकते। जिस स्वराज्य के स्वप्न का मैं सेवन कर रहा हूं, उसमें अन्धे, पंगु और भिखारी को भी उतना ही स्थान है, जितना कि बलवान से बलवान को। वह अहिंसा-द्वारा ही मिल सकता है, शस्त्रबल-द्वारा नहीं।

निर्बल की अहिंसा निःसन्देह एक निस्तेज सी चीज़ है—किन्तु इससे भी अधिक निस्तेज अपितु दयाजनक नपुंसक का क्रोध है। इस प्रकार की कायरतापूर्ण हिंसा ने हमारे देश के वातावरण को कलुषित कर रखा है। देखादेखी चरखा चला-कर इस वातावरण को हम साफ नहीं कर सकते।

—ह० से० ३।८।'४०]

- **मेरे मन में तनिक भी शंका नहीं कि चरखा-द्वारा हम शुद्ध अहिंसा की शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं।**
- **अपने देश की दीन-दुर्बल जनता के हाथ में शस्त्र देकर हम शत्रु के कुछ व्यक्तियों की हत्या करवा सकते हैं, उनके मुंह से दो-चार कौर छीन भी सकते हैं। किन्तु इससे हम देश की ग़रीब जनता का भला नहीं कर सकते।**
- **जिस स्वराज्य के स्वप्न का मैं सेवन कर रहा हूं, उसमें अन्धे, पंगु और भिखारी को भी उतना ही स्थान है, जितना कि बलवान से बलवान को।**
- **निर्बल की अहिंसा निःसन्देह एक निस्तेज-सी चीज है किन्तु इससे भी अधिक निस्तेज—अपितु दयाजनक नपुंसक का क्रोध है।**

९०. इसमें हिंसा है

"दुखी इसलिए कि इतने वर्षों से जिनको मैं अपना कथन समझा सका, जिन्हें साथ लेकर चलने का गौरवपूर्ण लाभ मुझे प्राप्त हुआ, उन्हें समझा सकने की शक्ति आज मेरे शब्दों में नहीं रही, और इतने वर्षों का सम्बन्ध मानो कल की बात हो

गई है"--यह वाक्य आपके लेख में पढ़कर मुझे दुःख और आश्चर्य हुआ। आपके इस वाक्य में क्या हिंसा नहीं है? ऐसा श्री सुरेन्द्र जी बोरीयाद से लिखते हैं। मेरी कलम से ऐसा वाक्य निकल ही नहीं सकता, यह मैंने मान लिया और इस प्रकार का उत्तर भी दे दिया है, क्योंकि इस तरह का विचार तक रखने में हिंसा है।[1] सरदार के साथ तो क्या किसी के भी साथ मेरी प्रेम की गाँठ नहीं टूट सकती। शत्रु के प्रति भी प्रेम विकसित करने की शिक्षा देने वाला मैं सरदार-जैसे साथियों के साथ बँधी प्रेम-गाँठ को भला कैसे तोड़ सकता हूं? मालवीय जी, शास्त्री जी-जैसों के साथ मेरा मतभेद तो रहा ही है, लेकिन फिर भी उनके साथ मेरा प्रेम-सम्बन्ध टूट जाय तो यह असहिष्णुता की निशानी है।

इसलिए सुरेन्द्र जी का पत्र पढ़कर मैंने 'हरिजन-बन्धु' पढ़ा। मैंने देखा कि मेरे 'हरिजन' के लेख का यह अनुवाद है। असल लेख पढ़ा तो देखा कि मेरा वचन तो सर्वथा निर्दोष और अवसर के अनुसार है। यह सब वर्षों का प्रेम-सम्बन्ध मानो कल की बात हो गई, ऐसा अर्थ अंग्रेजी में है ही नहीं। अंग्रेजी का अर्थ तो इतना ही है कि यह सब वर्ष मानो कल के-से हो गये। उसके ऊपर ही कहा जा चुका है कि बीस वर्ष से भी ऊपर की हमारी मैत्री में कुछ अन्तर नहीं आया। इसलिए मुझे दुःख सम्बन्ध टूटने का नहीं, बल्कि मेरे शब्दों में जो शक्ति कल तक थी, वह एकाएक चली गई उसका था, और है। प्रेम है किन्तु साथियों को फिर से जीत सकने-जितनी शक्ति अपने शब्दों में प्राप्त करने के लिए मुझे तपश्चर्या करनी चाहिए। इस लेख की ध्वनि ही शुरू से लेकर अन्त तक मिठास बनाये रखने की है। दूसरा कुछ मुझसे हो ही नहीं सकता था।

परन्तु यह दोषमय अनुवाद का संयोग बताता है कि मैंने गुजराती में लिखने का जो निश्चय किया है, वह हर तरह से ठीक ही है। चाहे कितना ही सक्षम मनुष्य अनुवाद करे, उसमें दोषों का रह जाना सम्भव है। बाइबिल का अनुवाद चालीस-बयालीस विद्वानों ने बैठकर किया था, तब भी उसमें भूलें, चाहे थोड़ी ही सही, रह तो गई ही हैं। प्रेम-गाँठ तो जैसी है वैसी ही कायम रहेगी। बल्कि समय उसे ज्यादा मजबूत कर देगा। पर इससे क्या? इतना तो स्पष्ट है ही कि कितना भी समझाने पर बहुत महत्व की बात में हमारा मार्ग अलग जा पड़ा है। ज्यों-ज्यों मैं विचार करता हूं त्यों-त्यों देखता हूं कि कांग्रेस अपने मार्ग से नीचे उतर आई है। उसके पास जो मूलधन था, वह उसने खो दिया है। यह कहा जा सकता है कि वह मूलधन कांग्रेस के पास था ही नहीं इसलिए उसे खोना क्या था? कांग्रेस की अहिंसा

१. सरदार पटेल

तो स्थापित सरकार के साथ-साथ लड़ने तक ही सीमित थी। शेष क्षेत्रों के विषय में तो उसने कभी निर्णय किया ही नहीं था, करने का अवसर ही नहीं था। व्यक्तिगत बचाव करने की छूट तो कांग्रेस ने गया में ही दे दी थी। इन दलीलों के लिए स्थान तो है, लेकिन मैं देखता हूं कि काफी संख्या में कांग्रेसवादी यह मानते हैं कि अहिंसा के गर्भ में ऊपर के क्षेत्र आ ही जाते हैं। उसके बिना अहिंसा बिना सिर के धड़ की तरह निर्जीव मानी जायगी। लेकिन जहाँ हृदय की वीणा बज रही हो, वहाँ चाहे किसी भी पक्ष की दलीलों का शब्द-जाल हो, उससे क्या लाभ ?

ऐसी विषम स्थिति में सरदार इत्यादि ने जो मार्ग ग्रहण किया है वह उनके लिए शोभाप्रद है, क्योंकि उनका हृदय उन्हें प्रेरणा कर रहा है। सरदार भाषण-कर्त्ता नहीं, मननकर्त्ता हैं। उनमें जो कुशलता है उसके अनुसार वे बिना आगा-पीछा देखे अपने काम में मस्त रहते हैं और सदा रहेंगे।

मेरा मार्ग मेरे सामने स्पष्ट है। लेकिन जो लोग आज तक हम दोनों को एक समझकर काम करते आये हैं, वे क्या करें? उनकी स्थिति कठिन अवश्य है। उनकी अहिंसा उनकी आत्मा में ओतप्रोत न हुई हो, सिर्फ मेरी अहिंसा के आधार पर निभती हो तो उनका धर्म है कि वे सरदार के पीछे चलें। सरदार मार्ग भूले हैं, ऐसा मैं मानता हूँ या यों कहिए कि मेरे मार्ग पर चलना उनकी शक्ति से बाहर है। मेरी सम्मति से, मेरे प्रोत्साहन से उन्होंने अलग रास्ता अख्तियार किया है। इसलिए जिनके मन में शंका को स्थान है, उन्हें सरदार के पीछे ही चलना चाहिए। मैं मानता हूं कि सरदार अपनी भूल देखेंगे या जो शक्ति उनमें नहीं है ऐसा वह मान बैठे हैं, वह शक्ति जब उनमें आ जायगी तब वह फिर मेरा रास्ता ग्रहण करेंगे। जब यह सुअवसर आयेगा तब दूसरे भी सरदार के साथ मेरे मार्ग पर आयेंगे। ऐसा करने में उनकी सुरक्षा है।

जिनके मन में अपने मार्ग के विषय में शंका ही नहीं; जिन्होंने अहिंसा को अपना लिया है और जिन्हें सब संकटों में सिर्फ अहिंसा रूपी शस्त्र के द्वारा ही रक्षा करनी है उनको चुपचाप कांग्रेस से निकल जाना चाहिए। अगर वे सच्चे अहिंसक होंगे तो कांग्रेस में दो पक्ष नहीं होने देंगे। कांग्रेस से निकल गये तो दो पक्ष होने की बात ही कहाँ रही ? कांग्रेस से निकलकर भी वे प्रतिपक्षी नहीं बनेंगे। कांग्रेस के अनेक अहिंसक कार्यों में जहां सरदार मदद मांगेंगे, वहां मदद देंगे, और जहां हुल्लड़ वगैरह होता होगा, वहां वे यथाशक्ति मर मिटने का प्रयत्न करेंगे। मेरी कल्पना का एक छोटा सा भी सत्याग्रही मण्डल बने तो वह इष्ट है और बनना चाहिए। और मैं मानता हूं कि वे लोग अहिंसा का झण्डा अखण्ड फहराता हुआ रख सकेंगे। इतना ही नहीं बल्कि कांग्रेसवादियों के हृदय पर भी उसका असर

डाल सकेंगे। बहुत से कांग्रेसियों की इच्छा तो है ही कि सब क्षेत्रों में अहिंसा पर अमल हो, पर यह सम्भव है या नहीं, इस बारे में उन्हें शंका है। इस शंका का निवारण करना मेरा और मेरे सहधर्मियों का कर्त्तव्य है।

--ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ३।८।'४०]

● मतभेद होने पर सम्बन्ध टूट जाय तो यह असहिष्णुता की निशानी है।

९१. अहिंसक शासन और पुलिस की मर्यादा

एक अंग्रेज बहिन का निम्नलिखित कथन बिल्कुल सच है--

"पराया शासन अथवा बाह्य आक्रमण के समक्ष अहिंसा का प्रयोग करना, सदा के लिए और आज की परिस्थितियो में तो विशेष आवश्यक है, और यह भी सम्भव है कि इसका अधिक अच्छा परिणाम प्राप्त हो। किन्तु आन्तरिक दंगों के समक्ष अहिंसा का प्रयोग कठिन है। हमारे यहां मुख्य तीन प्रकार के दंगों की कल्पना की जा सकती है---साम्प्रदायिक दंगे, औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों के झगड़े, और चोर-डाकुओं की लूट-पाट या डाके के उपद्रव। इस प्रकार के दंगों में निहित मूल कारण--जैसे साम्प्रदायिक झगड़े, सामाजिक अन्याय तथा आर्थिक शोषण से उत्पन्न गरीबी और बेकारी, आदि कारण--जब तक दूर नहीं हो जाते तब तक इन दंगों को चाहे जितनी जोर-जबर्दस्ती से दबा दिया जाय, ये बार-बार होते रहेंगे। और यथेच्छ व्यवस्था होने पर भी लोगों को इनके कारण कष्ट-सहन करना पड़ेगा। मूल कारण तो रचनात्मक प्रवृत्ति से ही दूर किये जा सकेंगे। किन्तु ऐसा करने में समय लगेगा। इस बीच, ऐसे दंगों के अवसर पर अधिकांश मनुष्य हिंसाबल वालों का रक्षण ढूंढ़ने के लिए ही प्रेरित होंगे। ऐसे समय भी वे लोग जिन्हें अहिंसा पर श्रद्धा है, अपनी अहिंसा को जिस कोटि तक अधिक सक्रिय रूप दे सकेंगे उतनी ही सीमा तक वे इस प्रकार के दंगों को निर्मूल करने में अधिक योग देंगे। अतः दंगों का भी अन्तिम उपाय तो अहिंसा ही है।

"पर क्या हम ऐसी समाज-रचना की कल्पना कर सकते हैं जिसमें किसी भी प्रकार की हिंसा का तनिक भी आश्रय न लेना पड़े? हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि समाज में अधिकांश लोगों के पास इतनी सम्पत्ति न हो कि उसे छीन लेने के लिए दूसरों की नीयत बिगड़ जाय। इसी प्रकार प्रत्येक के पास इतना हो कि सब सुख-सन्तोष से रह सकें, ताकि दूसरों की सम्पत्ति छीनने का विचार ही न आये। फिर भी धरती या अन्य सम्पत्तियों के स्वामित्व और उपयोग के सम्बन्ध में तथा लेन-देन और अन्य व्यवहारों के इकरार के सम्बन्ध में झगड़े न खड़े होने पायें,

यह सम्भव नहीं दीखता; इसके लिए न्याय-व्यवस्था रखनी पड़ेगी, और उसे स्थिर रखने के लिए तथा पंच अथवा न्यायालय के निर्णयों पर अमल कराने के लिए पुलिस-बल की आवश्यकता तो रहेगी ही। पुलिस रखने के सम्बन्ध में आपने ढिलाई तो दी है। किन्तु उसकी मर्यादा कहां रखेंगे? आज हिंसाभक्तों के हाथ में राज्य का उत्तरदायित्व हो तो वे आन्तरिक दंगों के अवसर पर पुलिस-बल का उपयोग करें या नहीं? फिर, पुलिस-बल को आप तात्कालिक आवश्यकता के योग्य निभा लेने को तैयार हैं या स्थायी तौर पर? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि समाज में कल्पनातीत दीर्घ समय के लिए पुलिस-बल की आवश्यकता पड़ेगी। ऐसा प्रतीत होता है कि अहिंसा की इतनी मर्यादा स्वीकार करनी ही पड़ेगी। इस विषय में अधिक स्पष्टता होने की आवश्यकता है।"

इस लेख में आये हुए प्रश्न महत्व के हैं और प्रत्येक उत्तरदायी सत्याग्रही के लिए विचारणीय हैं।

यदि हम लोगों के अन्दर सच्ची अहिंसा उत्पन्न हुई होती; यदि हमारी अहिंसक मानी गई लड़ाइयां वस्तुतः अहिंसक होतीं, तो ऐसे प्रश्न उठ ही नहीं सकते थे, क्योंकि उनका समाधान स्वयं हो गया होता।

पृथिवी के सुदूर उत्तर ध्रुव के आगे के प्रदेश का हमें अनुभव न होने से हमको उसके कल्पना-चित्र ही मिल सकते हैं। किन्तु उससे यथेष्ट तृप्ति नहीं होती। यही बात अहिंसा-विषयक प्रश्नों की है।

यदि समस्त कांग्रेसवादी प्रामाणिक रहे होते, तो हमारी स्थिति आज त्रिशंकु-जैसी न होती। हम सर्वत्र अहिंसा के चिह्न देखते, हममें साम्प्रदायिक ऐक्य होता, हमारे लोगों के हृदय से छुआछूत का भूत निकल गया होता और समाज अधिकांशतः सुव्यवस्थित होता। परन्तु हम इनमें से कुछ नहीं देखते। इतना ही नहीं बल्कि हम देखते हैं कि कांग्रेस के प्रति जगह-जगह कटुता का प्रदर्शन किया जा रहा है। हमारे वचनों पर बहुत से लोग विश्वास नहीं करते। मुस्लिम लीग और बहुत से राजाओं को कांग्रेस का विश्वास नहीं, बल्कि उसके प्रति आज तो वैर-भाव ही है। हम लोगों के अन्दर शुद्ध अहिंसा का आचरण होता, तो आज किसी को कांग्रेस का भय न होता, बल्कि वह सबकी प्रेमभाजन बन गई होती।

इसलिए जिन्हें अहिंसा पर अटल विश्वास है, उनके लिए आज तो मुझे काल्पनिक चित्र ही खींचने पड़ेंगे।

हमारे अन्दर जिस सीमा तक शुद्ध अहिंसा प्रकट नहीं होती, उस सीमा तक हम अहिंसा-मार्ग से स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। हमारा बहुमत होगा तभी हमें सत्ता मिल सकती है, इसका अर्थ यह हुआ कि प्रजा का बहुत बड़ा भाग अहिंसा

के शासन के अन्तर्गत रहनेवाला होगा। जब ऐसी स्थिति आयगी तो हिंसावृत्ति का बड़ी मात्रा में नाश हो चुका होगा। और अहिंसक उपद्रव काबू में आ चुके होंगे।

ऐसा होते हुए भी मैंने यह तो स्वीकार किया ही है कि अहिंसक शासन में एक मर्यादित सीमा तक पुलिस-बल के लिए स्थान होगा। यह मान्यता मेरी अपूर्ण अहिंसा का चिह्न है। पुलिस के बिना मैं काम चला सकूंगा, ऐसा कहने का मेरा साहस नहीं, जिस प्रकार यह कहने का साहस है कि मैं बिना सेना के काम चला लूंगा। मैं ऐसी स्थिति की कल्पना अवश्य करता हूं, जब पुलिस की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। किन्तु इसका वास्तविक ज्ञान तो अनुभव से ही हो सकता है।

यह पुलिस आज की पुलिस से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार की होगी। उसमें अहिंसा में विश्वास रखनेवालों की भरती होगी। वे लोगों के सेवक होंगे, सरदार नहीं। लोग उनकी सहायता करेंगे और वे दिन प्रति दिन कम होते जाने वाले उपद्रवों का सरलता से समाधान कर सकेंगे। पुलिस के पास कुछ शस्त्र तो होंगे, पर उनका उपयोग शायद ही कभी होगा। वास्तव में देखा जाय, तो इस पुलिस को सुधारक के रूप में समझना चाहिए। ऐसी पुलिस का उपयोग मुख्यतया चोर-डाकुओं पर नियन्त्रण रखने के लिए ही होगा। अहिंसक शासन में मजदूर-मालिकों का झगड़ा क्वचित् ही होगा। हड़तालें शायद ही होंगी। क्योंकि अहिंसक बहुमत की प्रतिष्ठा स्वभावतः इतनी होगी कि समाज के आवश्यक अंग इस शासन का आदर करने वाले होंगे। साम्प्रदायिक झगड़े भी इस शासन में नहीं होने चाहिए। इतना स्मरण रखना चाहिए कि जब कांग्रेस का अधिकार होगा, तब अधिकतर इक्कीस वर्ष के और इससे ऊपर की अवस्था के स्त्री-पुरुष मताधिकारी होंगे। आज के संकुचित विधान को इस काल्पनिक चित्र में स्थान नहीं। आज अगर सरकार के साथ समझौता हो जाय, और फिर से कांग्रेस का शासन हो जाय, तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह सत्ता अहिंसक नहीं होगी। यह अधिकार भली प्रकार हिंसायुक्त होगा। इसलिए ऐसी सत्ता विवशता की स्थिति में ही लेने योग्य हो सकती है।

--सेवाग्राम १९।८।'४०। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० से० २४।८।'४०]

- **पृथिवी के सुदूर उत्तर ध्रुव से आगे के प्रदेश का हमें अनुभव न होने से हमको उसके कल्पना-चित्र ही मिल सकते हैं। किन्तु उससे यथेष्ट तृप्ति नहीं होती। यही बात अहिंसा-विषयक प्रश्नों की है।**
- **अहिंसक शासन में एक मर्यादित सीमा तक पुलिस-बल के लिए स्थान होगा।**
- **मैं ऐसी स्थिति की कल्पना अवश्य करता हूं; जब पुलिस की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।**

● अहिंसक शासन में मजदूर-मालिकों का झगड़ा क्वचित् ही होगा। हड़तालें शायद ही होंगी।

९२. एक ग़लत तुलना

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—आपने एक बार लिखा था कि पोल लोगों ने जर्मनी का जो प्रतिकार किया था उसे लगभग अहिंसक कहा जा सकता है। यदि ऐसा ही है तो कार्य समिति के वर्धा के प्रस्ताव[1] का आपने विरोध क्यों किया?

उत्तर—यह प्रश्न भी पूछने योग्य नहीं है। क्योंकि इन दो क़िस्सों में ज़रा भी समता नहीं है। एक मनुष्य अकेला तलवार लेकर सैकड़ों शस्त्र-सज्जित डाकुओं से जूझे तो मैं कहूंगा कि उसने प्रायः अहिंसा का पालन किया है। बहिनों को तो मैं कह ही चुका हूं कि वे अपने सतीत्व की रक्षा करने में नखों या दाँतों का उपयोग करें तो मैं उसे अहिंसा के नाम से ही अभिहित करूंगा क्योंकि वे हिंसा के लिए तैयार नहीं होतीं। वे तत्काल जो रास्ता सूझता है उससे अपने सतीत्व की रक्षा करती हैं।

मान लीजिए कोई चूहा बिल्ली के हमले के समक्ष अपने दाँत इस्तेमाल करे तो क्या हम उसे हिंसक कहेंगे? मैंने इसी अर्थ में पोल लोगों के लिए वह वाक्य इस्तेमाल किया था। अपने से अनेकगुनी संख्या वाले अनेकगुने शस्त्रों से सुसज्जित, दस्तों के दस्तों का सामना करने में पोल लोगों ने लगभग अहिंसा का उपयोग नहीं किया, तो क्या किया? मैं अपने उस वचन पर आज भी क़ायम हूं और आगे भी रहूंगा। आप लोगों को 'लगभग' का भाव पूरी तरह से समझना चाहिए।

किन्तु यहां तो हम चालीस करोड़ हैं। हम लोगों में थोड़ा-सा भी सहकार हो तो शत्रु के साथ बखूबी टक्कर ले सकते हैं। हम लोग एक बड़ी सेना सजायें और लड़ने की तैयारी करें, उसे लगभग अहिंसा कैसे कहा जा सकता है? पोल लोगों को तो पता भी नहीं था कि इस तरह ज़र्मन दस्ते उन पर टूट पड़ेंगे। जब हम शस्त्रास्त्र-सज्जित करते हैं तो हमारा हेतु यह रहता है कि चाहे कितना ही बलवान शत्रु क्यों न आ जाय उसे हम अधिक बलवान सेना से मात करेंगे। यदि हिन्दुस्तान ऐसी तैयारी करता है तो वह दुनिया के लिए एक आफत बन जायगा।

१ कांग्रेस कार्य-समिति का वर्धा का प्रस्ताव। सन्दर्भ के लिए परिशिष्ट खण्ड देखिए।

यह तो हिंसा की पराकाष्ठा होगी। और जिस तरह युरोप ने दूसरे देशों को चूसने की नीति ग्रहण की है उसी तरह हमें भी दूसरों को चूसने और संहार करने की नीति ग्रहण करनी होगी। इसीलिए मैं बार-बार दुःख से कहता हूं कि मैं सरदार[1] और और राजाजी[2] को क्यों न रोक सका?

ईश्वर ने मेरे शब्दों को उन्हें समझा सकने की शक्ति क्यों न दी? क्योंकि यह प्रस्ताव पास करके हमने संसार को बता दिया है कि हम आज तक जिस अहिंसा की बात करते थे वह हमारी जिह्वा तक ही सीमित थी। वह हमारे हृदय में नहीं उतरी।

--सेवाग्राम, २०।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ३१।८।'४०]

९३. अहिंसा और राज्यसञ्चालन

प्रश्न—अहिंसा-द्वारा राज्य-सञ्चालन कैसे किया जाय?

उत्तर—यह प्रश्न पूछते समय आप एक बात, अहिंसक स्वराज्य की प्राप्ति को स्वीकार कर लेते हैं। यह समझ में आता है क्या? यदि हमने सचमुच अहिंसक मार्ग से स्वराज्य प्राप्त किया होगा तो हममें से अधिकतर लोग अहिंसक बन चुके होंगे और हमारे देश का संगठन अहिंसक तरीके से हुआ होगा। अगर हमने स्वराज्य प्राप्त करने योग्य अहिंसक तैयारी की होगी तो उसे अहिंसक तरीके से सम्हालने में हमें कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अहिंसक स्वराज्य कुछ आकाश से तो उतरा नहीं होगा। उसे पाने के लिए हमें बहुमत से लोगों का साथ मिला होगा। ऐसे राज्य का तो यह अर्थ हुआ कि गुण्डे भी हमारे अंकुश में आये होंगे। उदाहरण के लिए सेवाग्राम की सात सौ की आबादी में पाँच-सात गुण्डे हों और बाकी सब लोगों को अहिंसक तालीम मिली हो तो इस स्थिति में गुण्डे बाकी लोगों का अंकुश स्वीकार करेंगे या गाँव छोड़कर भाग जायंगे।

किन्तु आप देखेंगे कि मैं इस प्रश्न की चर्चा सावधानी से कर रहा हूं। मेरी सत्य की भावना मुझसे कहलाती है कि शायद हम पुलिस के बिना शासन न चला सकें। इसका परिणाम यह होगा कि जब बाला[3] साहब के हाथ में कारबार वापस

१. सरदार पटेल।

२. चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य।

३. श्री बाला साहब खेर भेंटकर्ता दल के सदस्य, जो स्वतन्त्र भारत में बम्बई के मुख्यमन्त्री हुए।

आयेगा तब वे पुलिस का उपयोग करेंगे। किन्तु वे सेना का विचार तक नहीं करेंगे। और पुलिस भी वैसी नहीं जैसी ब्रिटिश सरकार रखती है बल्कि हमारे ढंग की होगी। इसलिए मैंने कहा है कि पूर्ण अहिंसक राज्य राजा के बिना व्यवस्थित होगा। अतएव वही राज्य उत्तम होगा जिसमें पुलिस आदि का प्रबन्ध कम से कम हो। लेकिन प्रश्न यह है कि राज्य की बागडोर मेरे हाथ में देता कौन है? दे तो मैं राज्य चलाकर दिखा दूं। यदि मैं पुलिस रखूंगा तो वह कांग्रेस से लिये गये समाज-सुधारकों की पुलिस होगी।

प्रश्न—लेकिन सत्ता[1] तो हमारे पास थी न?

उत्तर—हां, थी तो लेकिन वह क़ाग़ज़ की नाव थी। और आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि तब भी मैं कांग्रेस के मन्त्रियों की आलोचना तो करता ही था। मैंने मुंशी और पन्त जी पर अनेक बार प्रहार किया है। सच बात तो यह है कि हमने आशा की थी कि धीरे-धीरे अहिंसा को प्राप्त करेंगे। मैंने यह आशा की थी कि जैसे गन्दी नाली का पानी भी गंगा में मिलकर गंगाजल-सा पवित्र बन जाता है वैसे ही अहिंसक कांग्रेस के शासन-तन्त्र के नीचे आकर गुण्डे भी सज्जन बन जायँगे। लेकिन हमारे मन्त्रियों में गंगाजल का पवित्र करनेवाला पावन प्रभाव नहीं आया था।

प्रश्न—लेकिन कांग्रेस के मन्त्री अहिंसक सत्ता लेकर नहीं आये थे। पाँच सौ गुण्डे उपद्रव करने पर तुल जायं और उन्हें रोका न जाय तो वे चारों ओर हाहाकार मचा सकते हैं। मुझे डर है कि आप भी ऐसे लोगों के साथ दूसरा बर्ताव न करते।

उत्तर—लेकिन मैंने ऐसी परिस्थिति की कल्पना तो की थी और ऐसी हालत में आप लोगों को क्या करना चाहिए, इस विषय में भी कहा करता था। ऐसे प्रसंगों में मन्त्री अपने कार्यालय से निकल कर, गुण्डों के सामने खड़े होकर प्राण निछावर कर सकते थे। लेकिन सच बात तो यह है कि हममें ऐसी अहिंसा नहीं थी। हमने इसके अभाव में भी मन्त्री पद लिया। लिया तो अच्छा किया। जब हमें लगा कि सत्ता छोड़नी चाहिए तो उसे छोड़ने में हमको एक घड़ी भी नहीं लगी। हां, इतना कहूंगा कि अगर अपने मन्त्री पद के दो साल में हमने अखण्ड अहिंसा का पालन किया होता तो कांग्रेस स्वराज्य और अहिंसा की दिशा में बहुत आगे बढ़ गई होती।

प्रश्न—चार-पाँच साल पहिले जब ऐसा प्रसंग आया तब मैंने कांग्रेस के

---

१. प्रश्नकर्ता ने व्यंग्यपूर्वक १९३५ के लोकप्रिय कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों की ओर लक्ष्य किया है।

नेताओं से कहा था कि चलो निकलो और आग में कूद पड़ो। लेकिन कोई तैयार नहीं हुआ।

उत्तर—यह तुम मेरी ही दलील का समर्थन कर रहे हो। मैं यही कह रहा हूं कि हमारी अहिंसा हृदयंगम नहीं हुई थी। वह जिह्वा तक ही रही। लेकिन इससे यह अनुमान निकलता है कि यदि हम कच्ची अहिंसा से भी इतना आगे बढ़ सके तो हमारी अहिंसा वास्तविक होने की स्थिति में हम कितना आगे बढ़ जाते। सम्भवतः हम अपना ध्येय प्राप्त भी कर चुके होते।

--सेवाग्राम, २०।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ३१।८।'४०]

● **पूर्ण अहिंसक राज्य राजा के बिना व्यवस्थित होगा।**

९४. अहिंसक सेना

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—आप बाह्य आक्रमण का सामना अहिंसक रीति से किस प्रकार करेंगे, यह समझाइए?

उत्तर—मैं इसका चित्र पूरी तरह आपके सामने नहीं खींच सकूंगा क्योंकि हमारे सामने न तो इस चीज का अनुभव है, न यह खतरा। और फिर आज तो सिख, गुरखों की सरकारी सेना खड़ी ही है। मेरी कल्पना तो यह है कि मैं अपनी हजार या दो हजार की सेना दोनों लड़ती हुई फौजों के बीच खड़ी कर दूंगा। ऐसा करके मैं अन्य कोई परिणाम न भी प्राप्त कर सकूं फिर भी दुश्मन की हिंसा का ज़हर तो कम कर दूंगा।

कल्पना तो बहुत की जा सकती है किन्तु करें क्या? असल बात यह है कि अहिंसक सेना के सेनापति को ईश्वर प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए बुद्धियोग दे ही देता है। अहिंसक सेना के सेनापति को हिंसक सेनापति से अधिक समयसूचकता की आवश्यकता होती है। लेकिन ईश्वर उसे पहिले से ही समस्त चित्र खींच सकने की शक्ति दे दे, तो वह अभिमानी बन जाय। और ईश्वर ऐसा कंजूस है कि वह आवश्यकता से अधिक शक्ति किसी को नहीं देता।

प्रश्न—समस्त संसार हर्ष-शोक, सुख-दुःख, साहस-भय आदि द्वंद्व का ही बना है। भय होगा तो साहस भी आयेगा। भय भी निकम्मी चीज नहीं है। पहाड़ पर डरकर न चलें तो कहीं न कहीं खाई में जा पड़ेंगे। तो क्या आपकी अहिंसक सेना द्वन्द्वातीत, गुणातीत होगी?

उत्तर—नहीं कदापि नहीं, क्योंकि मेरी सेना ने अहिंसा और हिंसा के द्वन्द्वों

में से अहिंसा को अपनाया होगा। मैं या मेरी सेना द्वन्द्वों के परे नहीं है, त्रिगुणातीत नहीं हैं। गीता का त्रिगुणातीत तो हिंसा-अहिंसा दोनों से परे है। भय का उपयोग है, भयभीति का नहीं। भय के कारण मैं सांप के मुंह में उंगली न दूंगा किन्तु भयभीति के कारण उसे देखते ही डरकर कांपने न लगूंगा। बात यह है कि हम तो मृत्यु आने से पहिले ही अनेक बार मर जाते हैं। भय तो केवल ईश्वर का ही हो सकता है।

लेकिन मेरी सेना किस प्रकार की होगी, यह मैं समझाता हूं। सब सैनिकों में सेनापति की बुद्धि होगी, ऐसी कल्पना ही नहीं है। लेकिन उनमें सेनापति की प्रत्येक आज्ञा के पालन करने की निष्ठा और अनुशासन होगा। सेनापति में ऐसी चीज अवश्य होनी चाहिए जिसके कारण सब उसकी आज्ञा मानें। लाखों के दल की ओर से तो वह केवल आज्ञा पालन ही चाहेगा। दाँडी-कूच केवल मेरी आज्ञा ही थी। पहले तो मोतीलाल जी ने उसका मजाक उड़ाया था और जमनालाल जी ने कहा था कि इसकी अपेक्षा तो वायसराय के महल पर धावा करना ज्यादा अच्छा है। लेकिन मुझे तो नमक के सिवा दूसरी चीज सूझ ही नहीं सकती थी क्योंकि मुझे तो करोड़ों का विचार करके निर्णय करना था। यह कल्पना ईश्वरदत्त थी। पं० मोतीलाल जी ने थोड़ी दलील की लेकिन अन्त में कहा, आखिर सेनापति तो आप हैं। आप जो कल्पना करें वही सही है। उसमें फेर-बदल करने के लिए मैं आपको कैसे कह सकता हूं। हमें तो आप में विश्वास रखकर चलना है। इसके बाद जब वह जम्बूसर में मुझसे मिलने आये तब उनकी आंखें खुल गईं। जनता की जागृति देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ था और जागृति भी कैसी! हजारों स्त्रियों ने उस समय जो शान्त साहस प्रदर्शित किया था उसके जोड़ की मिसाल इतिहास में कहाँ मिलेगी?

और इतना होने पर भी जिन सहस्रों ने सत्याग्रह में भाग लिया था वे असाधारण स्त्री-पुरुष नहीं थे। उनमें से कई तो व्यसनी और भूलें करने वाले होंगे। लेकिन ईश्वर तो जो भी कच्चे-पक्के साधन मिलते हैं उनका उपयोग कर लेता है और स्वयं अलिप्त रहता है। कारण यह है कि वह गुणातीत है।

—सेवाग्राम, २०।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ३१।८।'४०]

- **अहिंसक सेना के सेनापति को हिंसक सेनापति से अधिक समय-सूचकता की आवश्यकता होती है।**
- **ईश्वर ऐसा कंजूस है कि वह आवश्यकता से अधिक शक्ति किसी को नहीं देता।**
- **भय का उपयोग है, भयभीति का नहीं। भय के कारण मैं सांप के मुंह में**

उंगली न दूंगा किन्तु भयभीति के कारण उसे देखते ही डरकर कांपने न लगूंगा।

९५. अहिंसा : एक महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

[गांधी जी ने अपने एक लेख में जर्मन सेनाओं के विरुद्ध पोलैण्ड-वासियों के प्रतिरोध को 'लगभग अहिंसक' कहा। उनके इस विचार ने अहिंसा के अनुयायियों को गम्भीर तर्क-वितर्क में डाल दिया। धनुष-तकली के शोधक श्री भारतानन्द जी को यह विचार उचित नहीं प्रतीत हुआ। उन्होंने इस विषय में गांधी जी से जो प्रश्न किये वे उत्तर-सहित संकलित किये जा रहे हैं।--संपा०]

श्री भारतानन्द—आप कहते हैं कि पोल लोगों का आचरण लगभग अहिंसक था। मुझे ऐसा नहीं लगता। उनके दिलों में तो निरा द्वेष ही भरा था। मैं नहीं मानता कि वे आपकी प्रशंसा के योग्य हैं।

गांधी जी—मैं जो कुछ कहूं उसका आपको केवल शाब्दिक अर्थ नहीं करना चाहिए। अगर दस सैनिक सिर से पाँव तक शस्त्रसज्जित दस सहस्र की सेना का सामना करते हैं तो उनका यह आचरण लगभग अहिंसक कहा जा सकता है। क्योंकि समक्ष खड़ी सेना का सामना करने में उनकी हिंसा-शक्ति नाममात्र की ही रह जायगी। किन्तु इससे अधिक उचित दृष्टान्त तो वह है जो मैंने एक निर्दोष बाला के सम्बन्ध में दिया था। अगर कोई बदमाश उस पर आक्रमण करे और वह नख-दाँत से उसका सामना करके अपनी रक्षा करे तो उसके आचरण को मैं लगभग अहिंसक अवश्य कहूंगा, क्योंकि वह योजनापूर्वक या इच्छापूर्वक अहिंसा भंग नहीं करती। बिल्ली के सामने चूहे की हिंसा जितनी, उतनी ही कही जा सकती है।

श्री भारतानन्द—मैं आपको ऐसी ही एक घटना सुनाऊं। एक जवान रूसी लड़की पर एक सिपाही ने हमला किया। उसने अपने दाँत और नाखून से ही सिपाही का इतना दृढ़ प्रतिरोध किया कि उसकी बोटियां उड़ा दीं। क्या आप इस आचरण को भी लगभग अहिंसक कहेंगे?

महादेव देसाई—यदि कोई पूर्व विचार की तैयारी बिना, उसी क्षण प्रकृति ने जैसा सुझाया उसके अनुसार आचरण करे तो, केवल इसलिए कि वह सफल हो अहिंसक न होकर हिंसक थोड़े ही हो जाता है?

गांधी जी—नहीं।

श्री भारतानन्द—तब तो मैं सचमुच उलझन में पड़ गया हूं। आपका कहना

है कि पहिले से विचार करके हिंसा न हो, और विरोधी के साथ तनिक भी समता योग्य हिंसा करने की शक्ति न हो तभी शरीर-बल-द्वारा अहिंसक सामना हो सकता है। किन्तु यहां तो इस लड़की की जीत ही यह बताती है कि उसमें पूर्ण संघर्ष करने-योग्य हिंसाशक्ति थी।

गांधी जी—मुझे अफसोस है कि महादेव से बात करते हुए भूल से मेरे मुंह से 'नहीं' निकल गया। उस लड़की का आचरण हिंसक ही था। उसमें दोनों प्रकार का बल बराबर परिमाण में था।

श्री भारतानन्द—तो क्या विचार अन्तिम कसौटी नहीं होता? एक शस्त्र-वैद्य अहिंसक रूप में शल्यक्रिया करता है। वैसे ही पुलिस का चौकीदार बदमाशों से समाज की रक्षा के लिए शक्ति का प्रयोग करता है किन्तु इसमें अहिंसा का भंग नहीं होता।

गांधी जी—हमारे विचारों को परखने का अन्तिम अधिकार किसका गिना जाय? हमारा अपना तो नहीं। इसलिए बहुत-सी बातों में हमारे निकट आचरण ही कसौटी हो सकता है। सामान्य रूप से हम व्यक्ति के कार्य को देखते हैं, विचार को नहीं। व्यक्ति के विचार का साक्षी तो अन्तर्यामी ईश्वर ही है।

श्री भारतानन्द—तो इसका यही अर्थ हुआ न, कि हिंसा क्या है और अहिंसा क्या है इसका ज्ञान केवल ईश्वर को ही है?

गांधी जी—हां, ईश्वर ही अन्तिम निर्णय करने वाला है, न्यायाधीश है। सम्भव है कि हम जिसे अहिंसा समझते हैं वह ईश्वर की दृष्टि में हिंसा हो। किन्तु हमारा रास्ता तो साफ़ है। और तुम्हें यह भी जानना चाहिए कि सच्ची अहिंसा का पालन करना हो तो उसके लिए अत्यन्त सूक्ष्म विवेक और सतत जागरूकता की आवश्यकता है। अहिंसा के साधक से भूल होना कठिन होगा। जब मैंने पोलैण्ड के विषय में वे शब्द कहे थे और बताया था कि एक लड़की अपनी रक्षा के लिए आक्रमणकारी पर नख-दाँत का प्रयोग करे तो उसमें हिंसा नहीं माननी चाहिए, तो मेरा भावार्थ क्या था, यह आपको समझना चाहिए। इसका अर्थ यह था, कि चाहे कितना ही बलवान विरोधी क्यों न हो, व्यक्ति उसके समक्ष घुटना न टेके, और यह जानते हुए कि सामना होगा तो मृत्यु ही होगी अन्तिम क्षण तक लड़ता रहे, तो यह जान की बाजी लगाना हिंसा में सम्मिलित न होगा। पोल लोग जानते थे कि वे जर्मन सेना का सामना करेंगे तो विनष्ट होना पड़ेगा। फिर भी उन्होंने प्रतिरोध किया। इसलिए मैंने कहा कि उनका आचार लगभग अहिंसक था।

श्री भारतानन्द—किन्तु बापू जी, न जाने क्यों मैं यह भूल ही नहीं सकता कि

सबको न्याय देने वाला तो स्वयं ईश्वर ही है, फिर भी वह हिंसा होने देता है। पुराण में एक कथा है। शिव पार्वती में संवाद चल रहा था, बीच में एकाएक महादेव अन्तर्धान हो गये। थोड़ी देर में फिर वापस आये। प्रश्न होने पर उन्होंने बताया कि एक भक्त पर आक्रमण हुआ था। उन्हें उसको छुड़ाने के लिए जाना पड़ा था। किन्तु वे वहां पहुँचते, उससे पूर्व ही भक्त ने आक्रमणकारी को पत्थर मार कर अपनी रक्षा कर ली थी। इसलिए शिव जी की वहां आवश्यकता न पड़ी।

गांधी जी—ठीक कहा। किन्तु बात यह है कि हम चाहे जितना तर्क करें इससे हमारे अन्दर अहिंसा थोड़े ही आ जायगी ? तुम्हें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि जब तक पतञ्जलि आदि योगियों ने आध्यात्मिक साधना का जो मार्ग बतलाया है उसपर हम अमल न कर लें तब तक हम अपने हेतुओं की शुद्धता के विषय में विश्वासपूर्वक कुछ कह नहीं सकते। सम्पूर्ण चित्त-शुद्धि दूसरे मार्ग से हो ही नहीं सकती।

श्री भारतानन्द—अहिंसा, ब्रह्मचर्य, चर्खा चलाना, यह सब साधनाएं हैं। और यह अवश्य सम्भव है कि जो साधना एक व्यक्ति को अनुकूल हो वह दूसरे को न भी हो। तो फिर आपने केवल अहिंसा को ही एक मात्र और सर्वव्यापी साधना की श्रेणी क्यों दे दी है ?

गांधी जी—जब कोई विज्ञान-शास्त्री किसी साधन का प्रयोग करके उसको अमोघ पाता है तो उसे वह सबके समक्ष रखता है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' वाला सूत्र तो तुम्हें मालूम ही है न ? इसका अर्थ है कि जैसे व्यक्ति वैसे समष्टि। जो चीज़ एक के विषय में सत्य है वही समस्त जगत् के सम्बन्ध में भी सत्य हो सकती है।

श्री भारतानन्द—परन्तु आप तो सन्त और डाकू दोनों के लिए एक ही नियम बनाना चाहते हैं।

गांधी जी—हां, नियम दोनों के लिए एक ही है। किन्तु सन्त को वह सुगम लगेगा, डाकू को कठिन। नियम आदर्श है, फिर चाहे उस पर पूर्ण रूप से आचरण करने में लोग कितना ही असफल क्यों न रहें ?

श्री भारतानन्द—इस प्रकार आदर्श को सम्मुख रखकर क्या आप वस्तु-स्थिति को भूल नहीं रहे हैं ?

गांधी जी—नहीं, वस्तुस्थिति तो सदा मेरी दृष्टि के समक्ष है ही। किन्तु यत्न तो सदैव आदर्श तक पहुँचने के लिए होना चाहिए न ? यूक्लिड की सीधी लकीर सम्पूर्णतया कल्पना-सृष्टि में ही शक्य है, तो भी हम सदा इसकी शक्यता को

मान कर ही चलते हैं। फिर भी सीधी लकीर खींचते समय हम यूक्लिड की सीधी लकीर के आदर्श तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं।

—सेवाग्राम, २।९।'४०। ह० ज०। ह० से० १४।९।'४०]

- अगर दस सैनिक सिर से पाँव तक शस्त्र-सज्जित दश सहस्त्र की सेना का सामना करते हैं तो उनका यह आचरण लगभग अहिंसक कहा जाता है।
- हमारे विचारों को परखने का अन्तिम अधिकार किसका गिना जाय? हमारा अपना तो नहीं। इसलिए बहुत-सी बातों में हमारे निकट आचरण ही कसौटी हो सकता है।
- ईश्वर ही अन्तिम निर्णय करनेवाला है, न्यायाधीश है।
- सम्भव है कि हम जिसे अहिंसा समझते हैं वह ईश्वर की दृष्टि में हिंसा हो।
- सच्ची अहिंसा का पालन करना हो तो उसके लिए अत्यन्त सूक्ष्म विवेक और सतत जागरूकता की आवश्यकता है।
- जो चीज एक के विषय में सत्य है वही समस्त जगत् के सम्बन्ध में भी सत्य हो सकती है।

९६. अहिंसावादी और धन-सम्पत्ति

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—अहिंसा के सिद्धान्त को माननेवाला क्या धन-दौलत रख सकता है? अगर हां, तो वह अहिंसा-द्वारा उसकी रक्षा कैसे करेगा?

उत्तर—अहिंसावादी अपनी दौलत का मालिक नहीं हो सकता। भले उसके पास लाखों रुपये हों लेकिन वह स्वयं को उस धन का वली (ट्रस्टी) ही समझेगा। यदि उसे चोरों और डाकुओं में जाकर रहना है तो उसको अपने पास कम से कम सामान रखना होगा। शायद उसे एक लंगोटी से ही सन्तोष करना पड़े। यदि वह ऐसा करेगा तो चोर-डाकू का हृदय अवश्य परिवर्तित कर सकेगा।

लेकिन इतने से हम कोई व्यापक सिद्धान्त नहीं बना सकते। अहिंसक राज्य में तो बहुत कम चोर-डाकू होंगे, ऐसा मान लेना चाहिए। व्यक्ति के लिए यही सहज नियम समझा जाय कि उसे पूर्ण अपरिग्रही बनकर रहना है। मान लीजिए कि मैंने जरायम पेशा कही जाने वाली कौम के बीच जाकर रहने का निश्चय किया है। इस स्थिति में मुझे चाहिए कि मैं अपने पास कुछ भी न रखूं, खाना भी उनसे मांग लूं और वे कुछ न दें तो भूखा रहूं। जब वे देखेंगे कि मैं उन लोगों के बीच

शुद्ध सेवाभाव से ही रहता हूं, तो वे मेरे मित्र बन जायँगे। इस मनोवृत्ति में ही सच्ची अहिंसा है।

--सेवाग्राम, २७।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० १४।९।'४०]

- **अहिंसावादी अपनी दौलत का मालिक नहीं हो सकता।**
- **अहिंसक राज्य में तो बहुत कम चोर-डाकू होंगे।**

९७. दंगे के समय अहिंसक आचरण

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—आपने बताया तो है कि फ़साद के समय कैसा बर्ताव करना चाहिए। हम जानना चाहते हैं कि १९२१ में प्रिंस आफ़ वेल्स के आगमन पर हुल्लड़ हुए थे तब आपने क्या किया था?

उत्तर—मुझे दो प्रसंग याद हैं। एक तो रौलट ऐक्ट के समय का हुल्लड़। मुझे दिल्ली जाते हुए पकड़ लिया गया था और बम्बई में लाकर मैरीन लाइंस स्टेशन के पास छोड़ दिया गया था। वहाँ मुझे पता चला कि पाईधुनी में फ़साद हो रहा है। मैं तुरन्त एक गाड़ी लेकर वहाँ पहुँच गया। और मुझे याद है कि लोगों को शान्त कर सका था। दूसरा प्रसंग प्रिंस आफ़ वेल्स के आगमन के समय का है जहां लोग मोटर और ट्रामगाड़ियों को जला रहे थे। मैं तुरन्त वहां पर पहुँच गया और मैंने उन्हें शान्त किया। इसके बाद भायखला और अन्य स्थानों पर भी फसाद शुरू हो गये। मैं वहां खुद न गया लेकिन मैंने कांग्रेस के नेताओं को भेजा। मैं जा तो सकता था किन्तु सबको यह डर था कि मेरे जाने से लोगों का पारा बढ़ जायगा और अगर मुझे कुछ चोट लगी तो तूफान शान्त होने के बजाय और भी बढ़ेगा।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं बहादुर आदमी हूं। मैं स्वभाव से तो डरपोक हूं किन्तु भगवान ने हमेशा मेरी मदद की है और प्रत्येक अवसर पर मुझे जितनी हिम्मत चाहिए उतनी दी है। मेरी हिम्मत की सबसे कठिन परीक्षा तो १८९७ की १३ जनवरी को हुई थी। मुसाफिरों के दो जहाज हिन्दुस्तान से अफ्रीका जा रहे थे। मैं उनमें से एक था। गोरे लोग मुझे उतरने नहीं देना चाहते थे। वहां के मन्त्री मिस्टर एस्कम्ब ने मुझे सलाह दी कि मुझे सबके उतर जाने के बाद और अंधेरा होने पर उतरना चाहिए। लेकिन मैंने उनकी सलाह नहीं मानी। मैं अन्य लोगों के साथ तो न उतरा लेकिन अंधेरा होने तक ठहरा भी नहीं। हजारों गोरों ने मुझे घेर लिया और मुझ पर पत्थर, लात, डंडे इत्यादि की वर्षा होने लगी।

मैं बेहोश हो गया। फिर मैं होश में आया और जहां पहुंचना था पहुंचा। रास्ते में पुलिस भी आई। उन्होंने मुझे अपनी चौकी पर ले जाने की बात की। मैं नहीं गया। उस वक्त मुझमें कैसे हिम्मत आई मैं नहीं जानता। ईश्वर ने दी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—सेवाग्राम, २७।८।'४०। ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० १४।९।'४०]

९८. क्या उपवास हिंसक नहीं?

[एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—अगर मेरा मित्र कोई बुरा काम करे या कहीं अन्याय होता हो और मैं उपवास करूं तो क्या मैं दबाव नहीं डालता? इसलिए उपवास में हिंसा नहीं आती?

उत्तर—जो उपवास नियमों के अनुसार किये जाते हैं वे शुद्ध अहिंसक होते हैं; उनमें दबाव डालने का प्रश्न उठता ही नहीं। मेरा मित्र अगर ग़लत मार्ग पर जाता हो और उसकी सद्बुद्धि जाग्रत करने के लिए मैं उपवास के द्वारा कष्ट सहन करूं तो उसमें केवल मेरा प्रेम ही होगा। यदि जिसके लिए मैं उपवास करता हूं उसमें मेरे प्रति प्रेम नहीं तो वह अपना बुरा काम नहीं छोड़ेगा। प्रेम होगा तो वह उसके वश होकर अवश्य अपना कुमार्ग छोड़ देगा, और यह एक उत्तम परिणाम होगा।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर हम पायेंगे कि यहां मेरे मित्र का मेरे प्रति प्रेम बुरे कामों की लगन से अधिक था। इसमें इतना खतरा अवश्य है कि उपवास का असर दूर होने पर वह फिर बुरे कामों के लालच में फँस जाय और मुझे फिर उपवास करना पड़े। अन्त में तो दो में से एक परिणाम होगा—या तो उसपर मेरे प्रेम का इतना प्रभाव होगा कि वह उस पाप को बिलकुल छोड़ देगा, या उसका हृदय इतना जड़ हो जायगा कि उसपर उपवास का प्रभाव ही न होगा। मेरा अनुभव और मेरी पूर्ण श्रद्धा मुझे बताती है कि शुद्ध भाव से किये हुए उपवास का कभी विपरीत परिणाम नहीं होता। किन्तु विपरीत परिणाम की सम्भावना होते हुए भी हमें नैतिक सुधार के इस पवित्र साधन को अपने जीवन से निकालना नहीं चाहिए। विपरीत परिणाम की सम्भावना से इतनी बात स्पष्ट होती है कि शुद्ध उपवास के लिए विशिष्ट योग्यता चाहिए, और गम्भीर विचार करके तथा विवेकपूर्वक ही उसे शुरू करना चाहिए।

—सेवाग्राम, ९।९।'४०। ह० ब०। ह० से २८।९।'४०]

९९. अहिंसा

अहिंसात्मक आचार में विरोधी के प्रति--चाहे वह पिता हो या और कोई--सहिष्णुता और उदारता की अपेक्षा होती है। इससे उल्टा व्यवहार एक प्रकार की हिंसा होगी।

--बीबी अमतुस्सलाम को लिखे गये पत्र से। २।४।'४१]

१००. अहिंसा : एक बड़ी कसौटी

[एक देशी राज्य में सत्याग्रह करने के इच्छुक कार्यकर्त्ताओं से बात करते हुए गांधी जी ने उन्हें यह उपदेश दिया।--संपा०]

....क्या आप अपने कुटुम्ब के लोगों के साथ अहिंसक व्यवहार करते हैं? अगर आप कहें कि आप अहिंसा के सिद्धान्त को तो स्वीकार करते हैं, तो यह किस काम का? यह तो वैसी ही बात हो गई कि आप कहें कि आप खादी के सिद्धान्त को तो मानने हैं लेकिन पहनते या खरीदते हैं विदेशी कपड़ा। आपके सिद्धान्त को मान लेना मेरे किस काम आयेगा? आप लोगों को यह समझना चाहिए कि ब्रिटिश भारत में तो अहिंसा को नीति के रूप में स्वीकार करने से मैं फिर भी काम चला लेता हूं, लेकिन आप लोगों को तो अहिंसा अपने धर्म के रूप में स्वीकार करनी होगी। बहुत-से देशी राज्यों में ब्रिटिश भारत की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में हिंसा भरी पड़ी है। उसका मुकाबला करने के लिए प्रह्लाद की नैष्ठिक पवित्रता और आत्म-बलिदान की शक्ति चाहिए। मेरे पास कोई प्रह्लाद लाओ और मैं उसको तुरंत ही आशीर्वाद दूंगा।

--ह० से० १८।१।'४२। श्री महादेव देसाई के लेख से]

१०१. अहिंसक स्वराज्य की विशेषता

यदि हम अहिंसा के आधार पर स्वराज्य चाहते हैं, तो कनिष्ठ से कनिष्ठ वर्ग की ओर से भी बेपरवाह नहीं हो सकते।

--ह० से० १८।१।'४२]

१०२. अहिंसक सैनिक

....अहिंसक सिपाही का रास्ता तलवार से लड़ने वाले सिपाही से उल्टा है। वह तो युद्ध और शान्ति दोनों में अपना समस्त समय एक ही तरह से शान्ति के साम्राज्य की स्थापना करने में ही लगायेगा। अमन के जमाने में वह अशान्ति के कारणों को दूर कर के अशान्ति को रोकने की कोशिश करेगा। उसकी इस प्रवृत्ति से अहिंसक युद्ध लड़ने की तैयारी और शक्ति भी आयेगी।...

—९।१।'४२ वर्धा जाते हुए गाड़ी में। ह० ज०। ह० से० १८।१।'४२]

१०३. अपने आपसे अहिंसा आरम्भ करो

[खान साहब अब्दुल गफ्फार खां को लिखे गये बापू जी के पत्र का अंश]

..हमारी अहिंसा का आरम्भ हमारे घर से, बच्चों के साथ, बड़ों के साथ, पड़ोसियों के साथ, मित्रों के साथ होना चाहिए। हमें अपने मित्रों और पड़ोसियों के दोषों को सहन करना चाहिए, किन्तु अपने दोषों को कभी नहीं। ऐसा करने से ही हम अपने को सुधार सकेंगे। ज्यों-ज्यों हम प्रगति करेंगे, त्यों-त्यों अपने राजनीतिक साथियों के लिए भी अहिंसा का उपयोग करेंगे। हमें मतभेद रखने वालों के दृष्टिकोण को समझने और स्वयं को उसके निकट लाने का प्रयत्न करना चाहिए। हमें उनके साथ धैर्य रखना चाहिए, उनको उनकी भूल समझानी चाहिए। इससे भी आगे बढ़कर हमें धैर्य और नम्रता के साथ उन राजनीतिक दलों के साथ व्यवहार करना चाहिए, जिनकी नीति और सिद्धान्त हमसे भिन्न है। हमें उनकी टीका उनकी दृष्टि से देखनी चाहिए और सदा यह याद रखना चाहिए कि हमारे और अन्य लोगों के बीच जितना अधिक अन्तर हो, उतना ही अधिक अवसर हमारी अहिंसा को सक्रिय करने के लिए मिलता है। इन सब क्षेत्रों में उत्तीर्ण होने पर ही हम इस योग्य होंगे कि हम उन लोगों से, जो हमसे लड़ रहे हैं और जिन्होंने हमारे प्रति दारुण अपराध किये हैं, सुलझ सकें। हमने जो बातें की थीं उनमें से एक बात तो यह रही; दूसरी बात जो मैंने आपसे कही थी यह थी कि जो आदमी अहिंसक है वह सारा दिन सेवा के काम में अपने को लगाये रखेगा, इसलिए उसके निकट रचनात्मक कार्यक्रम की वही हैसियत होगी जो शस्त्रों की हिंसा में विश्वास रखने वाले व्यक्ति के निकट होती है।

—ह० से० १८।१।'४२। श्री महादेव देसाई के लेख से]

१०४. अहिंसा और सम्पत्ति की रक्षा

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—जब तक धन-दौलत है, प्रत्येक दशा में, उसकी सुरक्षा भी होनी चाहिए। फिर क्या कारण है कि आप इस बात को समझ नहीं पाते? प्रत्येक स्थिति में हिंसा से बचे रहने का आपका आग्रह बिलकुल अव्यावहारिक और असंगत है; मेरे विचार में अहिंसा कुछ चुने हुए लोगों के ही उपयोग की वस्तु हो सकती है।

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर इन पृष्ठों पर और 'यंग इंडिया' में भी कई बार किसी-न-किसी रूप में दिया जा चुका है। किन्तु यह एक सनातन प्रश्न है। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि जितनी बार यह पूछा जाय, मैं इसका उत्तर दूं। और, जब प्रश्नकर्ता के समान सच्चे जिज्ञासु पूछते हैं, तब तो उत्तर देना ही पड़ता है। मेरा दावा यह है कि आज भी, जब हमारे समाज की रचना का आधार सोच-समझ कर अपनाई हुई अहिंसा नहीं है, सारे संसार में आदमी एक दूसरे की सदाशयता पर ही जी रहा है और अपनी सम्पत्ति को बचाये हुए है। यदि ऐसा न होता, तो संसार में बहुत ही थोड़े और बहुत ही क्रूर मनुष्य शेष होते। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। परिवार में लोग परस्पर स्नेह के बन्धन से बंधे रहते हैं, और परिवारों की तरह ही सभ्य माने जाने वाले मानव-समाज में राष्ट्रों के अलग-अलग दल भी परस्पर के इन बन्धनों से बंधे हुए हैं। अन्तर इतना ही है कि वे जीवन में अहिंसा के नियम को सर्वोपरि नहीं मानते। इसका अर्थ यह हुआ कि अभी उन्होंने इसकी असीम शक्तियों की थाह नहीं पाई है। मैं यह कहूंगा कि अब तक केवल अपनी जड़ता के कारण ही हम यह मानते रहे हैं कि अहिंसा का सम्पूर्ण पालन अपरिग्रह आदि संयम-सूचक व्रतों को धारण करने वाले कुछ इनेगिने लोग ही कर सकते हैं। बात यह है कि यदि हमें अहिंसा के क्षेत्रों में नित नई शोध करनी हो, और मानव जाति पर शासन करने वाले इस सनातन और महान नियम की नई-नई शक्तियों का समय-समय पर संसार को परिचय कराना हो, तो इसके लिए यम-नियमों का पालन आवश्यक है। यदि संसार का यही सर्वश्रेष्ठ नियम है, तो इसे सबके लिए कल्याणकारक होना चाहिए। जो अनेक असफलताएं हमारे देखने में आती हैं, वे इस नियम की नहीं, इसका पालन करने वालों की हैं, क्योंकि उनमें से अनेक को तो यह पता तक नहीं रहता कि वे जाने-अनजाने इस नियम के अधीन आचरण कर रहे हैं। जब मां अपने बच्चे के लिए स्वयं मरने को प्रस्तुत हो जाती है, तो वह अनजाने ही इस नियम का पालन करती है। मैं पिछले पचास वर्ष से लोगों को यह समझाता रहा हूं कि वे इस नियम को समझबूझकर अपनायें और

असफल होने पर भी इसके पालन में दत्तचित्त रहें। पचास वर्ष के इस प्रयोग का परिणाम आश्चर्यजनक हुआ है और अहिंसा में मेरी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। मैं दावे के साथ कहता हूं कि लगातार प्रयत्न करते रहने से एक समय वह आयेगा जब लोग सर्वत्र ईमानदारी से कमाये हुए धन का स्वेच्छा से लिहाज़ करेंगे और उसकी रक्षा में सहायक होंगे। इसमें असमानताओं का वह उद्धत प्रदर्शन भी न होगा, जिसमें आज हम घिरे हुए हैं। अहिंसा के व्रतधारी को अन्याय और अनीति से कमाये जानेवाले धन से आतंकित न होना चाहिए, क्योंकि उसके पास हिंसा का सफल प्रतिकार करने के लिए सत्याग्रह और असहयोग का अहिंसक शस्त्र मौजूद है। जहां कहीं इस शस्त्र का सच्चाई के साथ पर्याप्त उपयोग किया गया है, वहां हिंसक शस्त्रों की कोई आवश्यकता ही नहीं रह गई है। अहिंसा के सम्पूर्ण शस्त्र को जनता के सामने रखने का दावा तो मैंने कभी नहीं किया। उनके लिए ऐसा दावा कभी किया भी नहीं जा सकता। जहां तक मैं जानता हूं, किसी भी भौतिक शास्त्र के लिए, यहां तक कि गणित-जैसे निश्चित शास्त्र के लिए भी, इस तरह का दावा नहीं किया जा सकता। मैं तो एक सत्य-शोधक मात्र हूं, और प्रश्नकर्ता की तरह सत्य की इस शोध में मेरा अनुसरण करनेवाले मेरे कुछ साथी भी हैं। अपने इन साथियों को मैं आमन्त्रित करता हूं कि वे सत्य की इस अत्यन्त कठिन किन्तु अतिशय रसपूर्ण शोध में मेरा साथ दें।

—सेवाग्राम ९।२।'४२। अंग्रेजी से। ह० से० १५।२।'४२]

- **अहिंसा के व्रतधारी को अन्याय और अनीति से कमाये जाने वाले धन से आतंकित न होना चाहिए क्योंकि उसके पास हिंसा का सफल प्रतिकार करने के लिए सत्याग्रह और असहयोग का अहिंसक शस्त्र मौजूद है।**
- **मैं तो एक सत्य-शोधक मात्र हूं।**

१०५. दंगों में अहिंसा

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—दंगों के समय आततायियों के विरुद्ध शस्त्र उठाकर अपनी रक्षा करना उचित है या अनुचित ?

उत्तर—इसका उत्तर मैं दे चुका हूं और कांग्रेस भी दे चुकी है। हमें आततायी शब्द का उपयोग नहीं करना चाहिए। और उचित-अनुचित बात मुझसे न पूछिए। अगर मुझसे पूछते हैं, तो मैं कहूंगा कि आप जो करना चाहते हैं, सो

उचित नहीं है। यदि आप अहिंसक हैं, तो आपको शस्त्र न उठाना चाहिए। हां, आप वीरों की अहिंसा न दिखा सकें, तो जिस तरह बने अपनी रक्षा कर लें। कानून हर आदमी को अधिकार देता है कि वह डाकुओं से अपनी रक्षा करे। कांग्रेस इस क़ानूनी अधिकार को छीनना नहीं चाहती। लेकिन उपद्रवों में और साम्प्रदायिक दंगों में प्रत्येक कांग्रेसवादी को अहिंसा का पालन करना चाहिए। कांग्रेस का यही निर्णय है। यदि समय पर आपका साहस साथ न दे और आप पशुबल का उपयोग करें, तो कांग्रेस आपको बुरा-भला न कहेगी—क्योंकि कांग्रेस किसी भी दशा में कायरता को बढ़ावा नहीं देना चाहती।

—सेवाग्राम, १।२।'४२। ह० ज०। ह० से० २२।२।'४२ श्री महादेव ह० देसाई द्वारा प्रस्तुत]

१०६. बलात्कार और हिंसा-अहिंसा

['बलात्कार के समय क्या करें' शीर्षक लेख में गांधी जी ने स्त्रियों को बदमाशों के आक्रमण से स्वमान-रक्षा के अनेक उपाय बतलाये हैं। इसी क्रम में वे बलात्कार के समय दर्शक पुरुषों का कर्त्तव्य समझाते हुए लिखते हैं।—संपा०]

किन्तु दर्शक पुरुष क्या करें? सच पूछिए तो इसका उत्तर मैं ऊपर दे चुका हूं। वह दर्शक न रहकर रक्षक बनेगा। वह खड़ा-खड़ा देखेंगा नहीं। वह पुलिस को ढूंढ़ने नहीं जायगा। वह रेल की जंज़ीर खींचकर अपने आपको कृतार्थ नहीं मानेगा। यदि वह अहिंसा को जानता होगा, तो उसका उपयोग करते-करते मर मिटेगा और संकट में फंसी हुई बहिन को उबारेगा। अहिंसा से नहीं, तो हिंसा द्वारा बहिन की रक्षा करेगा। अहिंसा हो या हिंसा, आखिरी चीज तो मृत्यु है। मेरे समान बुढ़ापे के कारण अशक्त, और बिना दाँतोंवाला बूढ़ा यदि ऐसे समय यह कह कर छूटना चाहे कि मैं तो निर्बल हूं, यहां मैं क्या कर सकता हूं, मुझे तो अहिंसक ही रहना है तो उसी क्षण उसका महात्मापन नष्ट हो जायगा और वह निन्दनीय बन जायगा। क्योंकि यदि ऐसे समय वह मर मिटने का निश्चय कर ले, और दोनों के बीच जा खड़ा हो, तो बहिन की रक्षा तो हो ही जायगी। वह उसके सतीत्वभंग का साक्षी भी नहीं रहेगा।

—सेवाग्राम, २३।२।'४२। ह० ब०। गुजराती से। ह० से० १।३।'४२]

१०७. अत्याचार के प्रतिरोध में अहिंसक आचरण

मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी के समाज-सेवा-विभाग के अवैतनिक मन्त्री लिखते हैं—

"कलकत्ते की मारवाड़ी-रिलीफ सोसायटी की ओर से बर्मा और मलाया से भागकर आये हुए लोगों को, जात-पांत, धर्म या वर्ण के भेद का कोई ख़याल न रखते हुए, सहायता पहुंचाने का जो काम चल रहा है, उसका बहुत ही संक्षिप्त विवरण मुझे आपके सामने प्रस्तुत करना है और एक अतिशय गम्भीर प्रश्न के बारे में आपकी बहुमूल्य सलाह मांगनी है। रेल, सड़क या समुद्र के रास्ते जो सहस्रों निराश्रित लोग प्रतिदिन कलकत्ते आते हैं, उनके लिए भोजन, डाक्टरी सहायता और उन्हें उनके वतन तक पहुँचा देने की सुविधा कर देने का भार सोसायटी ने अपने सिर लिया है। कई बहिनों के लिए तात्कालिक प्रसव का भी प्रबन्ध किया गया है। आने वालों में जो बेकार होते हैं, उन्हें कलकत्ते की प्रतिष्ठित पेढ़ियों के सहयोग से उनके योग्य काम दिलाने का प्रयत्न भी सोसायटी कर रही है।

"इस सम्बन्ध में मुझे आपको एक बहुत ही दुःखद घटना का समाचार देना है। इस घटना के बारे में मेरा जो कर्त्तव्य है, उसे आप कृपापूर्वक मुझे बतायेंगे तो मैं आभारी होऊँगा।

"१४ मार्च की रात को चटगांव मेल के आने के कुछ ही समय बाद, जब मैं कुछ स्वयंसेवकों के साथ मेल से आये हुए लोगों की आवश्यकताओं का प्रबन्ध कर रहा था, एक गोरे सैनिक ने आये हुए लोगों में से एक ग़रीब के छोटे बालक को पकड़कर रेलगाड़ी के नीचे फेंक दिया। यद्यपि मैं आपकी अहिंसा के पुण्य-पथ का एक नम्र अनुयायी हूं, फिर भी उस समय मैं अपने को और अपने साथी स्वयं-सेवकों को बहुत ही कठिनता से रोक सका और वह गोरा सैनिक अपनी इस पाशवी करतूत के लिए मार खाते-खाते बच गया। मैंने तुरन्त ही इसकी सूचना स्टेशन के सैनिक अधिकारियों को दी, लेकिन उन्होंने तनिक भी सहानुभूति नहीं दिखाई। बाद में मैं इसी प्रश्न को लेकर श्री के० सी० सेन, आई० सी० एस० से मिला, और यद्यपि उन्होंने इस मामले की बाकायदा जांच करने का वादा किया था तो भी अभी तक परिस्थिति को सुधारने के लिए कुछ नहीं किया गया है। स्टेशन के प्लेटफार्म पर अब भी रात में बहुतेरे गोरे सैनिक बराबर चक्कर काटा करते हैं, और डर रहता है कि कहीं रिलीफ सोसायटी के स्वयंसेवकों और जनता के साथ इन गोरे सैनिकों की भिड़न्त न हो जाय। इस भय को तुरन्त ही मिटाने की जरूरत

है। मैंने बंगाल कांग्रेस-नागरिक-संरक्षण-समिति के सामने भी यह मामला पेश किया है।

"बड़ी कृपा होगी यदि आप नीचे लिखे प्रश्नों पर मुझे अपनी सलाह देंगे।

१. क्या मैं इस प्रश्न को लेकर समाचारपत्रों में अन्दोलन खड़ा करूं?

२. मान लीजिए कि कोई गोरा सैनिक किसी असहाय मुसाफिर स्त्री के साथ कोई बेहूदा बर्ताव करे, तो क्या हम उसे चुपचाप सह लें, या उसके साथ जोर-जबर्दस्ती का व्यवहार करें?

यदि आप इस सम्बन्ध में अपनी राय 'हरिजन' द्वारा व्यक्त करेंगे, तो उससे हमें बहुत मदद मिलेगी। ऊपर दी हुई घटना की सच्चाई के बारे में मैं सब प्रकार की जिम्मेदारी लेने को तैयार हूं।"

गोरे सैनिकों के दुर्व्यवहार के बारे में मेरे पास बहुतेरे पत्र, प्रमाण-सहित, आये हैं, लेकिन मैंने उन्हें दबाये रखा है। हां, जब-जब मैंने अनुभव किया कि उनको दबा रखना कायरता नहीं तो अनौचित्य अवश्य माना जायगा, तब-तब उन्हें प्रकाशित किया है। मेरी राय में इस पत्र का न केवल सामान्य जनता की सुरक्षा की दृष्टि से, बल्कि गोरे सैनिकों और सरकार की दृष्टि से भी अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए। मारवाड़ी रिलीफ-सोसायटी पिछले पचीस साल से काम करने वाली सारे देश में प्रसिद्ध एक पारमार्थिक संस्था है। उसके पास धन है और अच्छे अनुभवी कार्यकर्त्ता भी हैं। जनता में सोसायटी की इतनी साख तो है ही कि उसके कार्यकर्त्ताओं की उपस्थिति में कोई सैनिक किसी के साथ दुर्व्यवहार न कर सकेगा। उक्त सैनिक ने, इस पत्र के अनुसार जैसा व्यवहार किया है, उससे तो मालूम होता है कि या तो उसका सिर फिर गया था या वह शराब के नशे में चूर था। मुझे विश्वास है कि जब तक इस सवाल का पूरा-पक्का फैसला न हो जायगा, सोसायटी इसे छोड़ेगी नहीं, और मुझे यह भी विश्वास है कि सरकारी अधिकारी इस मामले को दबाने की कोशिश नहीं करेंगे, बल्कि जैसा मेरे पत्र-लेखक ने लिखा है, बात ठीक वैसी ही साबित हो, तो उसकी ठीक-ठीक क्षतिपूर्ति भी करेंगे।

यह तो इस घटना की चर्चा हुई। पत्र-लेखक चाहते हैं कि यदि भविष्य में फिर ऐसी ही घटनाएं हों, तो उन्हें क्या करना चाहिए। इस सम्बन्ध में मैं उन्हें अपनी सलाह दे रहा हूं। ऐसे अवसरों पर हिंसा और अहिंसा का व्यवहार एक-सा ही हो सकता है। स्वयंसेवकों को चाहिए था, कि यदि वे पकड़ सकते, तो उस गोरे सैनिक को पकड़ लेते और उसे उस बालक को हाथ लगाने से रोकते, या उसके पास से बालक को छीन लेते, फिर भले ही इस तरह रोकने या छीनने में उस सैनिक

को कोई चोट क्यों न आती। बालक को छुड़ा लेने के बाद या उसको छुड़ाने की कोशिश में--असफल होने के बाद के व्यवहार का आधार तो छुड़ाने वालों के हिंसक या अहिंसक हेतु पर निर्भर करेगा। यदि उनका हेतु अहिंसक होगा, तो वे अपराधी के प्रति उदारता और सज्जनता का व्यवहार करेंगे। लेकिन उन्हें अपनी उदारता और सज्जनता का प्रयोग विचारपूर्वक और बुद्धिपूर्वक करना होगा। सब परिस्थितियों के लिए आचरण का कोई सर्वसामान्य नियम पहिले से बनाकर रखना कठिन है। मैं तो केवल यही कह सकता हूं कि वास्तविक उदारता का व्यवहार तभी हो सकता है, जब अपराधी स्वयं हृदय से अपने अपराध को स्वीकार करता हो। मैंने दक्षिण अफ्रीका में ऐसे अनेक दृश्य देखे हैं, जिनमें रेलवे स्टेशनों पर गोरों-द्वारा अपमानित अफ्रीकन अपना अपमान करने वाले उन उद्दण्ड गोरों से कहते थे--'भैया, ईश्वर तुम्हें तुम्हारी इस असभ्यता के लिए क्षमा करे।' यह सुनकर वे गोरे उन्हें मारने के उपरान्त गाली न देते तो खिल-खिलाकर हंसते अवश्य। ऐसे अवसरों पर मैं स्वयं तो चुप रहा हूं और अपमान को पी गया हूं। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि अफ्रीकनों की यह तथाकथित उदारता निरी यांत्रिक चीज़ होती थी, और उसके लिए गोरों के मन में तिरस्कार का पैदा होना उचित ही था। मेरे व्यवहार में भीरुता थी। मैं अपने लिए अधिक अपमान न्यौतना नहीं चाहता था। और उसके लिए कोई क़ानूनी कार्रवाई तो मुझे करनी ही न थी। उन दिनों मैं अपने अहिंसक आचरण को मूर्त रूप देने का यत्न कर रहा था। यदि मुझमें सच्चा साहस होता, तो मैं सद्भावपूर्वक अपना अपमान करने वालों की भर्त्सना करता, और बुरे-से-बुरे परिणाम के लिए तैयार रहता।

थोड़ा विषयान्तर करके भी मैंने व्यक्तिगत अपमान या आघात के मौक़ों पर अहिंसक व्यवहार किस प्रकार का हो सकता है, इसकी यहां समीक्षा कर ली है। लेकिन जिस बालक को चोट पहुंचाई गई उसका क्या? और पत्र-लेखक ने जिस दुर्व्यवहार या आघात की कल्पना की है उसका क्या? मैं मानता हूं कि अहिंसक आचरण किसी दूसरे प्रकार का नहीं हो सकता, न होना चाहिए। अपने को पहुंचनेवाली और अपने आश्रितों को पहुंचनेवाली चोट के बीच जो भेद प्रायः किया जाता है वह अनुचित नहीं, तो अकारण अवश्य है। किसी से यह आशा नहीं रखी जाती कि वह अपने लिए जो करेगा, उससे अधिक अपने आश्रितों के लिए करे। निःसन्देह वह अपने आश्रितों की इज्ज़त बचाने के लिए अपना बलिदान करेगा, लेकिन साथ ही उससे यह भी आशा रखी जायगी कि वह अपने लिए भी वैसा ही करे। यदि वह इसके विरुद्ध कुछ करेगा तो कायर माना जायगा। और यदि वह अपनी इज्जत-आबरू की रक्षा नहीं कर सकेगा, तो अपने आश्रितों की इज्ज़त भी

नहीं बचा सकेगा। लेकिन मैं स्वीकार करता हूं कि सच्चा अहिंसक आचरण केवल बौद्धिक तर्कों से सिद्ध नहीं होता। आचरण में बुद्धि का उपयोग करना आवश्यक है। लेकिन आचरण की शुद्धता तो बार-बार के अभ्यास से और शायद बार-बार की असफलता के बाद ही प्राप्त हो सकेगी।

हिंसक व्यवहार किस प्रकार का होना चाहिए, उसकी पड़ताल करने की तो यहां सचमुच कोई जरूरत ही नहीं है।

—सेवाग्राम २३।३।'४२। ह० ज०। ह० से० २९।३।'४२]

- **सच्चा अहिंसक आचरण केवल बौद्धिक तर्कों से सिद्ध नहीं होता।**
- **आचरण से पूर्व बुद्धि का उपयोग करना आवश्यक है।**
- **आचरण की शुद्धता तो बार-बार के अभ्यास से और शायद बार-बार की असफलता के बाद ही प्राप्त हो सकेगी।**

१०८. मेरे मुट्ठी भर अनुयायी

....आज समस्त हिन्दुस्तान अहिंसक नहीं है। यदि हिन्दुस्तान पूर्णतया अहिंसक होता, तो न मुझे ब्रिटेन को मनाने की आवश्यकता होती, न जपान के आक्रमण का ही डर होता। परन्तु मेरी अहिंसा में विश्वास रखने वाले तो मुट्ठी भर ही हैं, अथवा वे करोड़ों मूक लोग हैं, जो स्वभाव से ही अहिंसक हैं। सम्भव है कि इन दोनों के विषय में यह प्रश्न पूछा जाय, कि आखिर इन्होंने क्या कर दिखाया? मैं स्वीकार करता हूं कि उन्होंने तो कुछ भी नहीं कर दिखाया, किन्तु सम्भव है कि जब कड़ी कसौटी का समय आये, तो ये कुछ कर दिखायें; शायद न भी दिखा सकें, इसलिए अंग्रेजों के सामने मैं करोड़ों की अहिंसक शक्ति को तो रख नहीं सकता। और जो कुछ कर दिखाया है, उसे तो अंग्रेजों ने निर्बलों की अहिंसा कहकर टाल दिया है।....

—सेवाग्राम, ७।६।'४२। ह० ज०। ह० से० १४।६।'४२]

१०९. नई समाज-व्यवस्था और अहिंसा

..आज समाज में जो असमानताएं वर्तमान हैं, वे विशेष रूप से जनता के अज्ञान के कारण हैं। जनता जैसे-जैसे अपनी सहज शक्तियों का अनुभव करती जायगी वैसे-वैसे समस्त असमानताएं नष्ट होती जायंगी। यदि यह क्रान्ति हिंसा-द्वारा हुई, तो स्थिति जैसी आज है, उसके विपरीत ही होगी। और वह परिवर्तन

आज की स्थिति से अच्छा तो नहीं होगा। आज लोग जिस नई व्यवस्था की आशा लगाये हुए हैं, वह तो अहिंसा-द्वारा अर्थात् हृदयपरिवर्तन द्वारा ही उत्पन्न हो सकेगी। मेरी अपील और कार्य-प्रणाली शुद्ध अहिंसा की है।

--'राजाओं से' लेख का अंश। सेवाग्राम, २७।७।'४२। ह०ज०। ह०से० २।८।'४२]

११०. अहिंसक संगठन

....जब हम पुलिस और फ़ौज में भरती होते हैं तो हमको क़वायद सिखाई जाती है। हथियार चलाने की शिक्षा देना फ़ौजी अनुशासन का आवश्यक अग समझा जाता है। इसका उद्देश्य शत्रु को मारने की योग्यता प्राप्त करना होता है। फ़ौजी क़वायद में आज्ञा के अनुसार कूच करना, सामूहिक तरीक़े से, ज़रा भी आवाज़ किये बिना, ताल के साथ हिलना-डुलना आदि बातें शामिल होती हैं। इसी तरह अहिंसक संगठन में सामूहिक रूप से एक हृदय और एक तार होकर रामधुन और ताल लगाना जरूरी होता है। यह सलाह तभी लाभदायक सिद्ध होगी, जब हम केवल बुद्धि से ही नहीं बल्कि हृदय से भी इसको मानेंगे। कोरी बुद्धि हमको बहुत दूर नहीं ले जायगी।

--पूना, २३।२।'४६। ह० ज०, ३।३।'४६। ह० से०, ३।३।'४६। रूँगटा भवन बम्बई की प्रार्थना सभा में दिये गये प्रवचन का अंश।]

१११. सही मार्ग

[एक अशान्त फ़ौजी जवान बापू जी से अपने कर्तव्य के विषय में सलाह लेने आया। बापू जी ने उसे निम्नलिखित सलाह दी।--संपा०]

मैंने अपने ७ अगस्त १९४२ के कांग्रेस महासमिति के भाषण में अहिंसक लड़ाई का एक कार्यक्रम बतलाया था। मैंने कहा था कि किस तरह देश अपनी शक्ति के अनुसार श्रेष्ठतम अहिंसा और बलिदान-भावना को जगाकर उन्हें संगठित कर सकता है। मैंने उस भाषण में बतलाया था कि अखबार वाले क्या करें, विद्यार्थी क्या करें, राजा क्या करें, सरकारी नौकर क्या करें और हिन्दुस्तानी सिपाही क्या करें? जैसा मैंने बताया था, अगर उसके अनुसार सब ने अपना काम किया होता, तो उसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा होता। उस कार्यक्रम पर आज भी अमल किया जा सकता है। सैनिक यह घोषणा कर दें कि वे सिपाही का पेशा अपने पेट के लिए नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान को आज़ाद करने और रखने के लिए

करेंगे। मैं नहीं चाहता कि जिस सरकार से उन्हें तनख्वाह मिलती है उसके प्रति वे निष्ठावान न हों, क्योंकि अगर वे आज वर्तमान सरकार के प्रति निष्ठावान नहीं रहते तो कल उसी मात्रा में राष्ट्रीय सरकार के प्रति भी निष्ठाहीन हो सकते हैं। लेकिन किसी भी सैनिक के लिए यह निष्ठाहीनता नहीं होगी, यदि वह अपने बड़ों से जाकर यह कहे कि वह उसी वक्त तक उनका आदमी रहेगा, जब तक कि वे देश की आज़ादी के पक्षपाती रहेंगे, और यह कि वह अपने देशवासियों की आज़ादी को कुचलने के लिए कभी शस्त्र नहीं उठायेगा। अगर ऐसा कहने पर सैनिकों को नौकरी से अलग कर दिया जाय, या बरख़ास्त कर दिया जाय या फ़ौजी अदालत में उन पर मुक़दमा भी चलाया जाय, तो उन्हें इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। इस तरह वे एक ऐसी चिनगारी जलायेंगे जिसे किसी भी शक्ति के समस्त शस्त्र भी नहीं बुझा सकेंगे और थोड़े ही अरसे में सारी हिन्दुस्तानी सेना में बिना खून बहाये देश-भक्ति की भावना भर जायगी। इसके विरुद्ध यदि उन्होंने अनुशासन तोड़ा और हिंसा व हुल्लड़ से काम लिया तो वे सारी हमदर्दी खो देंगे और अधिकारियों को बहाना दे देंगे कि वे उन्हें सबक सिखायें।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० १०।३।'४६]

११२. अहिंसा-कला का प्रथम पाठ

अब इसमें कोई शक नहीं मालूम होता कि कुछ ही समय में हिन्दुस्तान राजनीतिक आज़ादी पा जायगा। इस आज़ादी में हम प्रार्थना के साथ प्रवेश करें। प्रार्थना अवकाश के समय बुढ़िया के मनोरंजन की वस्तु नहीं। अगर उसके रहस्य को ठीक-ठीक समझ लिया जाय और उसका ठीक प्रयोग किया जाय, तो वह हमको काम करने की विचित्र शक्ति देती है।

तो अब हम प्रार्थना करें और यह जान लें कि अहिंसा का रहस्य क्या है और उसके द्वारा प्राप्त की गई स्वतन्त्रता को कैसे टिकाऊ बनाया जा सकता है। अगर हमारी अहिंसा निर्बलों की है, तो यह समझ लेना चाहिये कि ऐसी अहिंसा से आज़ादी स्थिर नहीं रखी जा सकेगी। इसी से यह भी सिद्ध होता है कि लम्बी अवधि तक हम शस्त्र के द्वारा अपनी सुरक्षा करने की ताक़त नहीं पा सकेंगे। हमारे पास न शस्त्र हैं, और न उनकी जानकारी है। हममें आवश्यक अनुशासन भी नहीं। परिणाम यह होगा कि हमको दूसरे राष्ट्र की सहायता पर निर्भर रहना पड़ेगा और सो भी बराबरी के नाते नहीं, बल्कि शिष्य और गुरु के नाते। मैंने इस विचार से कि हलके दरजे का शब्द कानों को कठोर लगेगा, उसका इस्तेमाल नहीं किया है।

इसलिए स्पष्ट रूप से यह अनुभव किया जाना चाहिए कि आज़ादी प्राप्त करने की तरह ही उसे स्थिर रखने के लिए भी अहिंसा का सहारा लिये बिना चारा नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि जो अपने को शत्रु समझते हैं, उन सबके लिए हमें अहिंसा का ही प्रयोग करना है। जिन्होंने ३० साल तक अहिंसा की शिक्षा पाई है उनके लिए यह चीज़ बहुत ज्यादा न होनी चाहिए। अहिंसा का मन्त्र है: अपनी इज्ज़त और आज़ादी के लिए मरो। यह नहीं कि ज़रूरत पड़ने पर मारो और मारते हुए मरो। बहादुर सिपाही क्या करता है? वह मौक़ा पड़ने पर ही मारता है और ऐसा करते हुए अपनी जान जोखिम में डालता है। अहिंसा इससे ज्यादा धीरज और त्याग की आशा रखती है। किसी की जान लेते हुए अपनी जान को जोखिम में डालना ज्यादा आसान क्यों मालूम होता है? और क्या कारण है कि बिना मारे मरना दिव्य माना जाय? यह सोचना कि मारने के धन्धे को सीखे बिना मरा नहीं जा सकता, निरा भ्रम है। हम इस भ्रम में न फंसें। बार-बार भ्रम की ही रट लगाये रहने से हम उसमें फंस जाते हैं, और उसी को सच समझने लगते हैं।

लेकिन टीका करने वाले या निन्दा करने वाले यह पूछेंगे कि जब यह चीज़ इतनी आसान है, तो प्रार्थना को किस लिए बीच में डालते हो? इसका जवाब यही है कि जीवन की अलग-अलग स्थितियों में और अन्तिम स्थिति में, राष्ट्र की स्वतन्त्रता और मर्यादा की रक्षा के लिए अपने आप को मिटा देने की जो भव्य और वीरतापूर्ण कला हमें सीखनी है, उसके लिए प्रार्थना प्रथम और अन्तिम पाठ है।

प्रार्थना के लिए ईश्वर में सजीव श्रद्धा की आवश्यकता है। बिना ऐसी श्रद्धा के सत्याग्रह के सफल होने की कल्पना नहीं की जा सकती। भगवान् को हम किसी भी नाम से क्यों न पहचानें, उसका रहस्य यह है कि वह और उसका कानून एक ही है।

——ह० ज०। ह० से० १४।४।'४६]

११३. विनाश नहीं, निर्माण में लगें

. . . .अखिर आदमी बेजान कल-पुरजा तो है नहीं। अगर वह लगातार लड़ता ही रहे, तो जानवर बन जाय। इसलिए हम यह उम्मीद करें कि मनुष्य-जाति के लिए ये लोग गहराई से सोचने लगेंगे। इस तरह सोचने से उन्हें पता चलेगा कि अपने ही भाइयों का गला काटने से कोई फ़ायदा नहीं होता। साथ ही, वे यह भी महसूस करेंगे कि शान्ति के फल युद्ध के फलों के मुक़ाबले कहीं ज्यादा मीठे और कल्याणकारी होते हैं। विनाश के साधनों को ढूंढ़ने में खर्च

की गई बुद्धि आदमी को गिराती है। इसलिए उसे अ-विनाश या निर्माण के साधनों की शोध करने में लगाना मनुष्य-जाति के लिए शोभा देनेवाला है।

—नई दिल्ली । ह० ज० । ह० से० १४।४।'४६]

११४. हिंसक विस्फोट के समय अहिंसक आचरण

[उरुली में कस्तूरबा ट्रस्ट के प्रतिनिधियों की एक सभा हुई थी। उसमें एक कार्यकर्त्ता-बहिन ने बापू जी से एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा था। उनका प्रश्न बापू जी के उत्तर-सहित संकलित किया जाता है।—संपा०]

प्रश्न—आप नहीं चाहते कि हम राजनीति में शरीक हों, लेकिन जब हिंसा फूट निकले, तो आप हमें क्या करने की सलाह देंगे?

उत्तर—अगर आपके सामने ऐसा कोई अवसर आये, तो आप में से किसी के लिए आग की उन लपटों से अलग रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह जानकर कि दंगा-फसाद को मिटाने की कोशिश में आप में से किसी एक ने या सबने अपने प्राणों की बलि दी है, मैं एक आँसू भी नहीं गिराऊंगा, बल्कि मुझे तो उससे खुशी होगी। प्राण देना, मगर प्राण लेना नहीं, इस नियम पर तो हमारा सारा जीवन टिका हुआ है, और इस क्षेत्र में बहिनें सचमुच, सबसे आगे हैं।

—मूल अंग्रेजी । ह० ज० । ह० से०, २८।४।'४६]

११५. अहिंसक सेवा दल

एक बार मेरे सुझाव पर ही शान्तिदल कायम करने की चेष्टा की गई थी। लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं निकला। उससे इतना सीखने को मिला कि शान्ति-दल बड़े पैमाने पर काम नहीं कर सकते। बड़े-बड़े दलों को चलाने के लिए सजा नहीं तो उसका डर होना चाहिए और आवश्यकता अनुभव होने पर सजा दी जानी चाहिए। वैसे हिंसक दल में आदमी की चाल-चलन को नहीं देखा जाता; उसके क़द और डीलडौल को देखा जाता है। अहिंसक दल में इसका ठीक उलटा होता है। उसमें शरीर की जगह गौण होती है। चरित्र ही सब कुछ है। ऐसे चरित्रवान आदमी को पहिचानना कठिन है। इसलिए बड़े-बड़े शान्तिदल कायम नहीं किये जा सकते। वे छोटे ही होंगे, जगह-जगह होंगे, हर गांव या हर मुहल्ले में होंगे। मतलब यह कि जो जाने-पहिचाने लोग हैं, उन्हीं की टुकड़ियां बनेंगी। वे मिलकर अपना एक मुखिया चुन लेंगे। सबका दरजा बराबर होगा। जहां एक से ज्यादा

आदमी एक ही तरह काम करते हैं वहाँ उनमें एकाध ऐसा होना चाहिए जिसकी आज्ञानुसार सब कोई चल सकें। ऐसा न होगा तो मेलजोल और सहयोग से काम न हो सकेगा। दो या दो से ज्यादा लोग अपनी-अपनी मर्जी से काम करें तो सम्भव है कि उनके काम की दिशा एक दूसरे से उलटी हो। इसलिए जहां दो या दो से ज्यादा दल हों वहां वे हिलमिलकर काम करें तभी काम चल सकता है और उन्हें सफलता प्राप्त हो सकती है।

इस तरह के शान्ति-दल जगह-जगह हों तो वे आराम से और आसानी से दंगा-फ़साद होने से रोक सकते हैं। ऐसे दलों को अखाड़े में दी जाने वाली सभी तरह की तालीम देना जरूरी नहीं। उसकी कुछ तालीम लेना जरूरी हो सकता है।

सब शान्ति-दलों के लिए एक चीज सामान्य होनी चाहिए। शान्तिदल के प्रत्येक सदस्य का ईश्वर में अटल विश्वास होना चाहिए। उसमें यह श्रद्धा होनी चाहिए कि ईश्वर ही एक सच्चा साथी है और वही सबका सिरजनहार है। इसके बिना जो शान्ति-सेनाएं बनेंगी मेरे ख्याल में वे बेजान होंगी। ईश्वर को आप अल्लाह के नाम से पहिचानें, अहुरमज्द कहें, यहोवा कहें, जीता-जागता कायदा कहें, राम कहें, रहमान कहें—किसी भी नाम से पुकारें लेकिन उसकी शक्ति का उपयोग तो आपको करना ही है। ऐसा आदमी किसी को मारेगा नहीं बल्कि खुद मरकर जीतेगा और जी जायगा।

जिस आदमी के लिए यह कानून एक जीती-जागती चीज बन जायगा उसको समयानुसार बुद्धि भी अपने आप आ जायगी। फिर भी अपने अनुभव से यहां कुछ नियम देता हूं:—

१. सेवक अपने साथ कोई भी हथियार न रखे।

२. वह अपने शरीर पर ऐसा कोई चिह्न धारण करे, जिससे फौरन पता चले कि वह शान्तिदल का सदस्य है।

३. सेवक के पास घायलों वगैरह की सार-सँभाल के लिए तुरत काम देने वाली चीजें जैसे पट्टी, कैंची, छोटा चाकू, सुई वगैरह रहनी चाहिए।

४. सेवक को ऐसी तालीम मिलनी चाहिए जिससे वह घायलों को आसानी से उठाकर ले जा सके।

५. जलती आग को बुझाने की, बिना जले-झुलसे आगवाली जगह में जाने की, ऊपर चढ़ने और उतरने की कला सेवक में होनी चाहिए।

६. अपने मुहल्ले के सब लोगों से उसकी अच्छी जान-पहिचान होनी चाहिए। यह खुद ही एक सेवा है।

७. उसे मन ही मन राम नाम का जप बराबर करते रहना चाहिए। और इसमें विश्वास रखने वाले दूसरों को भी ऐसा करने के लिए समझाना चाहिए।

कुछ लोग आलस्य के कारण या झूठी आदत की वजह से यह मान बैठते हैं कि ईश्वर तो है ही, वह बिना मांगे मदद करता है। फिर उसका नाम रटने से क्या फ़ायदा? हम ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करें या न करें इससे उसके अस्तित्व में कोई कमी-बेशी नहीं होती। यह सच है, फिर भी उस हस्ती का उपयोग तो अभ्यासी ही कर पाता है। हर एक भौतिक शस्त्र के लिए यह बात सौ फीसदी सच है तो फिर अध्यात्म के लिए तो यह उससे भी ज्यादा सच होनी चाहिए। फिर भी हम देखते हैं कि इस मामले में हम तोते की तरह राम रटते हैं और फल की आशा रखते हैं। सेवक में इस सचाई को अपने जीवन में सिद्ध करने की ताकत होनी चाहिए।

—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ५।५।'४६]

- **ईश्वर को आप अल्लाह के नाम से पहिचानें, अहुरमज्द कहें, यहोवा कहें, जीता-जागता कायदा कहें, राम कहें, रहमान कहें, किसी भी नाम से पुकारें लेकिन उसकी शक्ति का उपयोग तो आप को करना ही है।**
- **हम तोते की तरह राम नाम रटते हैं और फल की आशा रखते हैं।**

११६. अहिंसा का व्यवहार-पक्ष

[एक लन्दन-निवासी ने गांधी जी से अहिंसा के सम्बन्ध में सात प्रश्न पूछे। गांधी जी ने उन्हें जो समाधान दिया वह प्रश्नोत्तर रूप में संकलित है।—संपा०]

प्रश्न—क्या किसी वर्तमान शासन के लिए, जो लाज़िमी तौर पर हिंसा के बल चलता है, यह सम्भव है कि वह उपद्रवकारियों की आन्तरिक एवं बाह्य शक्तियों को रोकने के लिए अहिंसात्मक लड़ाई लड़ सके? या जो लोग अहिंसात्मक ढंग से उपद्रवों को रोकना चाहते हैं, उनके लिए क्या जरूरी है कि वे राज्याधिकार को छोड़कर बिल्कुल निजी तौर पर विरोधियों के सामने खड़े हो जायं?

उत्तर—हिंसा के बल पर चलने वाले शासन के लिए आन्तरिक या बाह्य किसी भी तरह के उपद्रवों को अहिंसात्मक ढंग से रोकना सम्भव नहीं है। आदमी ईश्वर और कुबेर की एक साथ पूजा नहीं कर सकता और न वह एक साथ शान्त और क्रुद्ध रह सकता है। दावा यह है कि राज्य अहिंसा के बल पर चल सकता है। यानी वह दुनिया की सारी शस्त्रसज्जित शक्तियों के विरुद्ध अहिंसात्मक लड़ाई लड़ सकता है। ऐसा राज्य अशोक का था। ऐसा राज्य फिर से कायम किया जा

सकता है। लेकिन अगर यह सिद्ध कर दिया जाय कि अशोक का राज्य अहिंसा के बल नहीं चलता था, तो भी इससे यह दावा कमजोर नहीं पड़ता। इसके गुण-दोष से ही इसकी जाँच होनी चाहिए।

प्रश्न—क्या आप समझते हैं कि कांग्रेसी सरकार बाह्य और आन्तरिक उपद्रवों को पूरे अहिंसात्मक ढंग से शान्त कर सकेगी?

उत्तर—बेशक, कांग्रेसी सरकार के लिए यह सम्भव है कि वह बाहरी हमलों और आन्तरिक विद्रोहों को अहिंसात्मक ढंग से शान्त कर सके। सम्भव है कि कांग्रेस को अहिंसा में इतनी निष्ठा न हो, जितनी मुझे है। यदि कांग्रेस अपना रास्ता बदलती है तो इससे यही साबित होगा कि हमारी अब तक की अहिंसा कमजोरों की अहिंसा थी और यह कि कांग्रेस को इस बात का विश्वास नहीं कि कोई राज्य भी अहिंसक हो सकता है।

प्रश्न—क्या यह जान लेने से झगड़ा करने वाले की हिम्मत बढ़ नहीं जाती कि उसका विरोधी अहिंसावादी है?

उत्तर—झगड़ा करनेवालों को लाभ तभी होता है जब उनका मुकाबला कमजोर की अहिंसा से हो। बहादुर की अहिंसा तो किसी भी हालत में पूरी तरह हथियारों से लैस एक बहादुर सिपाही से या समूची फौज से भी मजबूत ही होती है।

प्रश्न—अगर हिन्दुस्तान के लोगों का एक दल अपने स्वार्थ के लिए, जो न केवल दूसरों के विरुद्ध है बल्कि मूलतः अन्यायपूर्ण भी है, तलवार से काम ले तो आपकी क्या नीति होगी? एक गैर सरकारी संस्था के लिए तो ऐसे मौके पर सत्याग्रह करना सम्भव है किन्तु क्या ऐसी दशा में शासकों के लिए भी यह सम्भव हो सकता है?

उत्तर—प्रश्न में ऐसा उदाहरण दिया गया है, जो कभी घटित हो ही नहीं सकता। अहिंसात्मक राज्य अधिक से अधिक समझदार जनता की मरजी के अनुसार काम करने वाला होना चाहिए। ऐसे राज्य में जिस दल की कल्पना की गई है, वह नहीं के बराबर ही होगा। वह उस विशाल बहुमत की निश्चित इच्छा के विरुद्ध, जिसका कि राज्य प्रतिनिधित्व करता है, खड़ा ही नहीं हो सकता है। आज की सरकार जनता से बाहर की चीज नहीं है। वह बहुत बड़े बहुमत की इच्छा ही है। अगर उसे अहिंसात्मक ढंग से प्रकट करें तो वह एक का नहीं बल्कि एक के विरुद्ध, निन्यानबे का बहुमत होगा।

प्रश्न—क्या अधिक क्षमताशाली सैनिक शक्तिवाले का सत्याग्रह निर्बल सैन्य-शक्ति वाले से ज्यादा कारगर नहीं है?

उत्तर—ये दोनों विरोधी बातें है। जिसके पास सुदृढ़ फौजी ताकत है, वह सत्याग्रह कर ही नहीं सकता। उदाहरणार्थ, अगर रूस अहिंसा से काम लेना चाहे तो पहिले उसे अपनी समस्त हिंसक शक्ति को त्याग देना होगा। इसमें सचाई यह है कि जो एक बार फौज़ी ताक़त में बहुत बढ़े-चढ़े थे, वे अपने विचार बदल दें तो न सिर्फ दुनिया को बल्कि अपने विरोधियों को भी वे अपनी अहिंसा दिखला सकते हैं। जो लोग पक्के अहिंसक हैं वे इस बात की परवाह नहीं करेंगे कि उनके विरोधी प्रबल सैनिक शक्तिवाले हैं या कमजोर हैं।

प्रश्न—एक अहिंसक सेना के लिए किस प्रकार के अनुशासन और प्रशिक्षण की ज़रूरत है? क्या कुछ बातों में उसका प्रशिक्षण वर्तमान सैनिक प्रशिक्षण से मिलता-जुलता न होगा?

उत्तर—वर्तमान सैनिक प्रशिक्षण के आरम्भ का बहुत थोड़ा हिस्सा अहिंसक सेना के प्रशिक्षण में शामिल हो सकता है। जैसे अनुशासन, कवायद, कोरस, झंडा, सिग्नलिंग (संकेत-विधि) और इसी तरह की दूसरी चीज़ें। ये सब भी बिल्कुल सैनिक ढंग से नहीं सिखाये जायंगे, क्योंकि इनकी बुनियाद ही दूसरी है। एक अहिंसक सेना के लिए जिस प्रशिक्षण की ठीक-ठीक ज़रूरत है, वह है ईश्वर में अटल विश्वास, अहिंसक सेना के सेनापति के आदेश का स्वेच्छा से पूर्ण पालन, और सेना के विभागों में बाह्य तथा आन्तरिक दोनों तरह का पूरा-पूरा सहयोग।

प्रश्न—क्या आज की हालत में यह ज्यादा अच्छा नहीं होगा कि हिन्दुस्तान और इंगलैंड-जैसे देश कोई भी फौजी कदम उठाने से पहिले, सत्याग्रह की आजमाइश को पूरा मौका देने का इरादा रखते हुए भी, अपनी सैनिक योग्यता को पूर्ण बनाये रहें?

उत्तर—ऊपर दिये गये उत्तरों से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि जब तक हिन्दुस्तान और इंगलैण्ड अपनी पूरी सैनिक योग्यता को कायम रखते हैं, वे किसी भी दशा में सत्याग्रह के साथ न्याय नहीं कर सकते। साथ ही यह बिल्कुल सही है कि फौजी ताकतें अपने आपस के झगड़ों को शान्ति के साथ मिटाने के लिए बराबर समझौते की बात चलाती रहती हैं। लेकिन यहां हम लड़ाई की शरण लेने से पहिले होनेवाली शान्ति की प्रारम्भिक बातचीत की चर्चा नहीं कर रहे हैं। हम तो यह सोच रहे हैं कि लड़ाई के नाम से पहिचाने जाने वाले हथियारबन्द झगड़े की जगह, जिसे स्पष्ट शब्दों में कत्लेआम कहा जा सकता है, आखिर किस चीज को दी जाय?

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से० १२।५।'४६]

● आदमी ईश्वर और कुबेर की एक साथ पूजा नहीं कर सकता।

- जिसके पास सुदृढ़ फौजी ताक़त है, वह सत्याग्रह कर ही नहीं सकता।
- जो लोग पक्के अहिंसक हैं, वे इस बात की परवाह नहीं करेंगे कि उनके विरोधी प्रबल सैनिक शक्ति वाले हैं या कमजोर हैं।

११७. पहिले खुद कूदो!

अहमदाबाद के रक्तपात के बारे में एक भाई ने जो पत्र लिखा है, उसमें से आवश्यक भाग नीचे देता हूँ:—

"हुल्लड़ के अवसरों पर क्या उपाय किया जाय, इस बारे में लिखना चाहता हूं। आज से ठीक दो मास पहिले 'हरिजन' में आपने अहिंसक सेवादल पर एक लेख लिखा था। लेकिन आजकल की हालत को देखते हुए इतने से काम नहीं चल सकता। जिस तरह आपने सरकार से लड़ने का रास्ता हमें दिखा दिया है, उसी तरह ऐसे अवसरों पर आप किसी एक जगह पहुँचकर अहिंसक रीति से हुल्लड़ को शान्त करके हमारे सामने नमूना रख दें। अगर आप इस अवसर पर अहमदाबाद में हों और स्वयंसेवकों के साथ इस काम के लिए शहर में निकल पड़ें तो आपको अवश्य स्वयंसेवकों की कमी न रहे। यहां के दो कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्री वसन्तराव और रज्जबअली लोगों को समझाने के लिए गये और दोनों गुण्डों के छुरों की भेंट हुए। बाद में जाने की किसी की हिम्मत न हुई। उन दोनों ने अपने आदर्श के लिए जान दे दी और वे धन्य हैं। यह ठीक है कि दूसरे लोगों में इतना आत्म-विश्वास नहीं। अगर सब में हो तो हुल्लड़ ही क्यों हो? और अगर कभी हो भी तो वह आजकल के हुल्लड़ की शक्ल तो ले ही नहीं। लेकिन यह तो उस स्थिति की बात हुई जो सिर्फ़ कल्पना में ही है।

आपकी रहनुमाई मेरे-जैसे बहुत से लोगों में साहस पैदा कर सकती है। और आपके रास्ता दिखाने के बाद दूसरे स्थानीय नेता अवसर पड़ने पर अपनी-अपनी जगह उस रास्ते पर चल सकेंगे। मुझे अनुभव होता है कि प्रत्यक्ष रास्ता दिखाये बिना आपके लेख और बयान लोगों को—कांग्रेसियों को—पक्के सामाजिक रक्षण के ख्याल से उपयोगी साबित न होंगे।"

मुझे ऊपर की सूचना जँचती है। मैंने अंग्रेजी सल्तनत का सामना करने का जो रास्ता बतलाया वह चला, क्योंकि सब लोग उसका सामना करना चाहते थे। मैं स्वीकार करता हूँ कि वह अहिंसा लाचारी की थी इसलिए वह दुर्बलों का ही साधन बनी। इसी कारण आज हम नेता जी सुभाष बाबू की और आजाद हिन्द फौज़ की पूजा करते हैं। लेकिन यह बात हम भूल जाते हैं कि खुद सुभाष बाबू ने

ही अपने फौजियों से कहा और फ़ौजियों के सरदारों ने ही सुनाया कि हिन्दुस्तान के अन्दर तो उन फ़ौजियों को अहिंसा का रास्ता ही पकड़ना चाहिए। हम इस विवेक-बुद्धि का उपयोग नहीं करते।

वह तो तभी होगा जब आजाद हिन्द फौज के आदमी, जो हिन्दुस्तान आये हैं, अहिंसा का रास्ता ग्रहण करके नेता जी के आदेश को अपने जीवन में सफल करके दिखा दें। ऐसे हिंसा के वायुमण्डल में अहिंसा को मानने वालों का काम जरूर मुश्किल हो जाता है। लेकिन सच्ची अहिंसा का काम हमेशा ही मुश्किल रहेगा, क्योंकि उसमें ज्यादा बहादुरी की आवश्यकता पड़ती है। और हम ऐसी अहिंसा आज तक स्पष्ट रूप में नहीं दिखा सके। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि गणेशशंकर विद्यार्थी, बसन्त राव और रज्जबअली वग़ैरह की अहिंसा ऐसी थी। लेकिन सामूहिक या जातीय स्तर पर हम प्रत्यक्ष रूप में कुछ फल नहीं दिखा सकते। ऐसा फल दिखाने वाले के लिए अनेक विद्यार्थियों को बलिदान देना होगा। बसन्तराव और रज्जबअली ने जो उदाहरण पेश किया उसपर अहमदाबाद में दूसरे अमल नहीं कर सके। यह सिद्ध करता है कि हममें अब तक सचमुच प्राणों की बलि दे देने का तत्व नहीं आया है। ऐसी हालत में यह ठीक कहा गया है कि मुझे ही कुछ करके दिखाना होगा, फिर कोई मेरा साथ दे या न दे। मैं घर में बैठकर दूसरों को मरने के लिए भेजता रहूँ, यह मेरे लिए शर्म की बात होगी। मेरा यह काम कभी अहिंसा की निशानी नहीं बन सकता। मेरा ख्याल है कि ऐसा मौका मुझे कभी मिला नहीं। या ऐसा भी कहा जा सकता है कि अगर मौका नहीं मिला तो इसकी वजह मेरी कायरता होनी चाहिए। जो भी हो, ईश्वर की कृपा होगी तो वही मुझे ऐसा अवसर देगा, मुझे ऐसी किसी आग में झोंककर शुद्ध करेगा और अहिंसा का रास्ता बिलकुल स्वच्छ कर देगा। इसका मतलब यह न समझें कि ऐसे बलिदान से हिंसा रुक ही जायगी। आजकल जो घोर हिंसा चल रही है उसमें से अहिंसा के प्रकट होने के लिए मेरे-जैसे अनेक के बलिदान की आवश्यकता शेष रहेगी। इसी कारण प्रीतम ने गाया है :—

१ हरिनो मारग छे शूरानो नहि कायरनुं काम जोने।
और हरि का मार्ग ही अहिंसा का मार्ग है।

—ह० से० ४।८।'४६]

● **सच्ची अहिंसा का काम सदा ही मुश्किल रहेगा, क्योंकि उसमें ज्यादा बहादुरी की आवश्यकता पड़ती है।**

---

१. हरि का मार्ग शूरों का मार्ग है। इस पर कायरों का बस नहीं।

११८. क्या यह कायरता नहीं?

[गांधी जी से पूछा गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—आपकी राय में कायरता या बुज़दिली अहिंसा नहीं, बल्कि अन्याय का विरोध करना अहिंसा है। आप मान चुके हैं कि बेगुनाह आदमियों को—जैसे कि सविनय आज्ञा-भंग करने वाले होते हैं—गिरफ्तार करना और जेल भेजना अन्याय है। लेकिन अपने खुशी से गिरफ्तार होना और जेल जाना मंजूर किया है। क्या यह बेमेल और कायरतापूर्ण नहीं है?

उत्तर—आपके सवाल से साफ़ मालूम होता है कि आप नहीं जानते कि अहिंसा किस तरह काम करती है। अन्यायी कानून खुद एक किस्म की हिंसा है। अहिंसा का क़ानून कहता है कि हिंसा का मुक़ाबला हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से करना चाहिए। हर एक क़ानून को तोड़ने की सज़ा निश्चित है। मेरे किसी कानून को अन्यायपूर्ण कहने से ही तो वह वैसा नहीं बन जाता। 'फिर भी मेरी राय में वह अन्याय तो है। सरकार को अधिकार है कि जब तक वह क़ानून उसकी किताब में मौजूद है, तब तक वह उसकी तामील करावे। और मेरा धर्म यह है कि मैं उसका मुकाबला अहिंसा के द्वारा करूँ। ऐसा करने के लिए मैं उस क़ानून को तोड़ूंगा और शान्ति से गिरफ्तार होकर जेल जाऊंगा। इसे मैं उस हद तक बहादुरी का काम समझता हूँ, जिस हद तक बहादुरी इसके लिए ज़रूरी है। अगर यह भी मान लिया जाय कि एक मामूली क़ैदी का-सा सलूक मेरी दिमागी हालत में कोई फ़र्क पैदा नहीं कर सकता, तो भी यहां यह सवाल अनुचित है कि आज मेरे-जैसे आदमी के लिए जेल जाना कष्टकारी नहीं रहा है। इस तरह गिरफ्तारी का विरोध न करना अहिंसा की एक आवश्यक शर्त हो जाती है, कायरता की निशानी हर्गिज़ नहीं। इसके प्रतिकूल विरोध करना, यानी गिरफ्तार वग़ैरह होने से इन्कार करना सचमुच की शेख़ीबाजी और बेसमझ हिंसा कही जायगी। इसे बुजदिल का डींग मारना तक कहा जा सकता है।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, २२।९।'४६]

- **अन्यायी कानून स्वयं एक प्रकार की हिंसा है।**
- **हिंसा का मुकाबिला हिंसा से नहीं...अहिंसा से करना चाहिए।**

११९. अहिंसा की नैतिकता

....मैंने जो कहा है कि कांग्रेस के ध्येय से 'शान्तिमय और उचित' शब्द निकाल दिये जायं, उसका यह अर्थ नहीं कि कांग्रेसी सत्य और अहिंसा छोड़ दें। उसका अर्थ केवल पाखण्ड को निकालना है। वह मुझे चुभता है। अगर हम तलवारबाज़ हैं, तो खुलकर तलवार निकालें। मगर दिल में तलवार हो, मुंह से गाली-गलौज निकले, और नाम अहिंसा का लिया जाय तो उससे हम न केवल दगाबाज़ बल्कि कायर भी बनते हैं। इसका तो यही अर्थ हुआ कि अंग्रेज के सामने बन्दूक नहीं चला सकते थे, इसलिए हमने अहिंसा की आड़ ली। वर्ना आपस में इतने झगड़े क्यों होते? आज हमारे बीच अन्धाधुन्धी और गोलमाल चल रहा है, और हम इसका समर्थन इंगलैण्ड में धरना देने वालों का उदाहरण देकर करते हैं। हम यह नहीं समझते कि युरोप की नकल करने से हमारा भला नहीं हो सकता, हां, हमारी दशा उनसे बदतर हो सकती है। क्योंकि हम तो असमर्थ हैं, और साधु बनना चाहते हैं। इससे हम साधु बनकर और माला हाथ में लेकर ठग ही बनते हैं। अगर हममें सच्ची अहिंसा होती, तो हम एक दूसरे को सहन करते। तब जितनी रायें, उतनी पार्टियां हम में रह सकती थीं। मगर पार्टीबाज़ी के लिए हमारे बीच कोई गुंजाइश नहीं। जो ऐसा करते हैं, वे सच्चे सेवक नहीं हैं। जब तक वह चीज़ हट नहीं जायगी, सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की जा सकती।

—नई दिल्ली। ह० से०, १३।१०।'४६]

१२०. श्रद्धा को चुनौती

[एसोशियेटेड प्रेस के सम्वाददाता-द्वारा बापू जी से पूछे गये कुछ प्रश्न और उनके उत्तर]

प्रश्न—सन् १९४२ की अशान्ति, 'आजाद हिन्द फ़ौज' की कार्रवाई और उससे सम्बन्ध रखने वाली अशान्ति, हिन्दुस्तान के राजकीय नौकादल के खलासियों की बग़ावत, कलकत्ता और बम्बई के दंगे, कश्मीर-जैसी देशी रियासतों में होने वाली हलचलें और हाल के कौमी दंगे, हिन्दुस्तान के इतिहास में अभी-अभी ये जो घटनाएँ घट गईं, इससे पता चलता है कि भारतीय समाज में अहिंसा

ने अभी अपनी जड़ नहीं जमाई है। क्या इन सब बातों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आपका अहिंसा-धर्म असफल सिद्ध हुआ है?

उत्तर—ऐसे किसी सामान्य परिणाम पर पहुँचना बहुत खतरनाक है। आपने जिनका ज़िक्र किया है, वे सारे कार्य अवश्य ही हिंसा के कहे जा सकते हैं लेकिन इससे यह नहीं कहा जा सकता कि अहिंसा-धर्म असफल सिद्ध हुआ है। अधिक से अधिक आप यह कह सकते हैं कि जन साधारण की पुंजीभूत प्रज्ञा बदलने के लिए काम करने की जिस कार्य-प्रणाली की आवश्यकता है, वह मुझे अभी नहीं मिली है, या उसे मैं अभी तक खोज नहीं सका हूं। लेकिन मेरा दावा यह है कि हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों में रहने वाले करोड़ों लोग उस हिंसा में सम्मिलित नहीं हुए हैं, जिसका जिक्र आपने किया है। हिन्दुस्तानी समाज के जीवन में अहिंसा की भावना ने जड़ जमाई है या नहीं, यह सवाल अभी खड़ा ही है, और इसका ठीक-ठीक जवाब तो मेरी मौत के बाद ही दिया जा सकता है।

प्रश्न—अपनी प्रकृति में वीरों की अहिंसा सिद्ध करने के लिए आदमी अपने दैनिक जीवन में क्या करे? वह कम से कम किस तरह के कामों को, किस कार्यक्रम को अपनाये?

उत्तर—अपने जीवन में बहादुरों की अहिंसा का विकास करने की इच्छा रखने वाले आदमी को सबसे पहले अपने मन या विचारों से, कम से कम कायरता का मैल धो डालना चाहिए, और इस तरह साफ़ बने हुए विचार या दिमाग़ के पीछे चलकर अपना हर एक छोटा या बड़ा काम करना चाहिए। उदाहरण के लिए अहिंसा की साधना करने वाला अपने बड़े अफ़सर की धाक से दब नहीं जायगा, और न उसपर गुस्सा ही होगा। साथ ही, वह अपनी ज्यादा से ज्यादा आमदनी वाली जगह को छोड़ने के लिए भी तैयार रहेगा। अपना सब कुछ छोड़ देने पर अहिंसा के साधक के हृदय में अपने सेठ या नौकरी देने वाले के लिए चिढ़ या गुस्सा न हो, तो कहा जायगा कि उसमें बहादुरों की अहिंसा प्रकट हुई है। दूसरा उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि हमारे साथ यात्रा करने वाला कोई यात्री मेरे लड़के पर आक्रमण करने की धमकी देता है, और मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूँ तो वह मुझपर ही उलट पड़ता है। यदि मैं ऐसे समय उसका तमाचा अपनी शान और भलमनसाहत के साथ सहन कर लूं, और मन में इसके लिए कोई कुविचार न रखूँ तो कहा जायगा कि मैंने बहादुरों की अहिंसा से काम लिया। ये बातें हर आदमी की जिन्दगी में प्रतिदिन होती रहती हैं। और कई उदाहरण सरलता से दिये जा सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक अवसर पर मैं अपने मिजाज पर काबू रखने में सफल होऊं, और उलटकर घूंसा या तमाचा मारने की शक्ति होने पर भी चुप

रह जाऊं तो मुझसे बहादुरों की अहिंसा का विकास हो, वह मुझे कभी दग़ा न दे, और कट्टर-से-कट्टर विरोधियों को भी उस अहिंसा की प्रशंसा करनी पड़े।

--नई दिल्ली, ६।११।'४६। ह० ज०,१७।११।'४६। ह० से०, १७।११।'४६]

१२१. हिंसा या अहिंसा ?

कांग्रेस ने अंग्रेजों के साथ अहिंसा की लड़ाई लड़ी। अब क्या हम अपने भाइयों की हिंसा करने बैठ जायं ? ठीक है कि वे अत्याचार करते हैं, परन्तु क्या हम भी वैसा ही करें ? अंग्रेजों ने कौन सा अत्याचार नहीं किया था ?

—नई दिल्ली। १।४।'४७। प्रार्थना सभा के प्रवचन से।]

१२२. हिंसा का सामना कैसे किया जाय ?

[एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—लीग[1] के नेता और उसके अनुयायी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अहिंसा में विश्वास नहीं रखते। ऐसी अवस्था में यह किस प्रकार सम्भव है कि लीग वालों का हृदय जीता जाय या उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया जाय कि हिंसात्मक साधन बुरा है ?

उत्तर—हिंसा का यथार्थ प्रतिकार अहिंसा से ही हो सकता है, यह सनातन सत्य है। जिस भाई ने प्रश्न किया है उनका विश्वास सम्भव है, अहिंसा पर न हो। इस अहिंसा रूपी शस्त्र के आगे हिंसक शस्त्र, चाहे वह अणु-बम ही क्यों न हो, बेकार होता है। यह बिल्कुल दूसरी बात है कि ऐसे श्रेष्ठ शस्त्र का ज्ञान रखने-वाले बहुत कम होते हैं। उस (अहिंसक) शस्त्र के उपयोग में ज्ञान और हृदय-बल की बड़ी आवश्यकता होती है। उसमें सैनिक स्कूल-कालेजों में वर्षों शिक्षा ग्रहण करने की बात नहीं होती, किन्तु हृदय स्वच्छ रखने की ज़रूरत होती है। हिंसा का सामना करने में हमें जितनी मुसीबत उठानी पड़ती है, वह सब हमारे हृदय-दौर्बल्य का लक्षण है। फिर अब तो कायदेआज़म जिन्ना ने यह ऊँची बात कही है कि अपने अधिकारों अर्थात् पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए हिंसा का प्रयोग करना उचित नहीं है।

---

१. अभिप्राय है—मुस्लिम लीग, जिसने भारतीय मुसलमानों के लिए अलग स्वतन्त्र देश अर्थात् पाकिस्तान बनाने की माँग की थी।—संपा०।

प्रश्न—बहुत लोगों का ऐसा विचार होता जा रहा है कि पाकिस्तान-समर्थकों के साथ संघर्ष—शायद हिंसात्मक ढंग का—होना अनिवार्य है। यदि राष्ट्रवादी ऐसा समझें कि जबतक लीग पंजाब और बंगाल के बँटवारे के लिए सहमत नहीं हो जाती तवतक पाकिस्तान की माँग ठीक नहीं है तो कांग्रेसी किस साधन का अवलम्बन करें?

उत्तर—यदि पहिले प्रश्न का उत्तर ठीक समझ में आ गया है तो दूसरा सवाल उठ ही नहीं सकता।....यदि जिन्ना साहब का कहना सब मुसलमान या लीगी मुसलमान मान लें तब तो हिंसात्मक ढंग का झगड़ा हो ही नहीं सकता। और हिन्दू यदि बहुत बड़ी संख्या में अहिंसा का सहारा लें तो मुसलमान कितनी भी हिंसा करें, वह वेकार होगी।

....जो अहिंसा के पुजारी हैं उन्हें तो किसी अनुचित बात का विचार भी न करना चाहिए। वे तो अनुचित बात का चिन्तन भी न करें। यदि पाकिस्तान ठीक नहीं है तो बंगाल एवं पंजाब का विभाजन भी ठीक नहीं है।

प्रश्न—अधिकांश समाजवादियों का यह विश्वास है कि सामाजिक क्रान्ति होने से हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष अपने आप पीछे पड़ जायगा और आर्थिक प्रश्न सामने आजायंगे। क्या आपकी समझ से ऐसी क्रान्ति का होना अच्छा है? क्या इससे राम-राज्य की स्थापना में सहायता मिलेगी?

उत्तर—सामाजिक क्रान्ति से हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष कुछ सीमा तक तो ढीला पड़ेगा। इतना तो हमारे आगे स्पष्ट होना चाहिए कि झगड़ों के बहुत-से कारण होते हैं। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा मिट जाने से सब झगड़े मिट जाते हैं, ऐसा तो नहीं कह सकते। इतना ही कहा जाय कि हिन्दू-मुस्लिम झगड़े ने एक भयंकर रूप ले रखा है। हां, इसमें सन्देह नहीं कि छोटे-मोटे दूसरे झगड़े मिट जाने से इस भयंकरता का रूप कम हो जायगा।....जब गुलामी मिटकर आजादी आती है, तब समाज की सारी व्याधियां (बुराइयां) ऊपर आ जाती हैं। इससे भड़कने का मैं कोई कारण नहीं पाता। यदि ऐसे अवसर पर हमारा मन स्थिर रहे तो सब साफ हो जाता है। हर हालत में आर्थिक प्रश्न का हल तो होना ही है।

आज आर्थिक असमानता है। समाजवाद की जड़ में आर्थिक समानता है। थोड़ों को करोड़ और शेष को सूखी रोटी भी नहीं, ऐसी भयानक असमानता में रामराज्य का दर्शन पाने की आशा कभी न रखी जाय।

इसलिए मैंने दक्षिण अफ्रीका में ही समाजवाद को स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियों और दूसरों से यही विरोध रहा है कि सब सुधारों के लिए सत्य और अहिंसा ही सर्वोपरि साधन है।

—नई दिल्ली, २५।५।'४७। ह० से०, १।६।'४७]

- हिंसा का यथार्थ प्रतिकार अहिंसा से ही हो सकता है।
- हिन्दू यदि बहुत बड़ी संख्या में अहिंसा का सहारा लें तो मुसलमान कितनी भी हिंसा करें, वह बेकार होगी।
- जब गुलामी मिटकर आजादी आती है तब समाज की सारी व्याधियां ऊपर आ जाती हैं।

१२३. आज अहिंसा क्यों असफल हो रही है?

दुनिया के कई मुल्कों से मेरे पास चिट्ठियां आई हैं जिनमें मुझसे पूछा गया है—'आपके देश के राजनीतिक दल अपने राजनीतिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हिंसा का प्रयोग क्यों करते हैं? आपके यहां हिंसा दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है। क्या आप इसका कारण बता सकते हैं? तीस साल तक आपने अंग्रेजों के साथ अहिंसात्मक लड़ाई की, उसका यह नतीजा क्यों? क्या यह होते हुए भी आप जगत् को अहिंसा का सन्देश देंगे?'

इस सवाल का जवाब देते हुए मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि मैं तो दिवालिया हो गया हूं। किन्तु अहिंसा का दिवाला कभी नहीं निकल सकता। मैं पहिले भी कह चुका हूं कि जिस अहिंसा का हमने इस तीस साल में प्रयोग किया वह निर्बल की अहिंसा ही रही है।....आज की बदली हुई हालत में दुर्बलों की अहिंसा के लिए स्थान नहीं है। सच तो यह है कि हिन्दुस्तान को आजतक वीरों की अहिंसा के प्रयोग का अवसर ही नहीं मिला। यदि मैं बराबर कहता रहूं कि बहादुरों की अहिंसा के समान दुनिया में दूसरी कोई सच्ची शक्ति नहीं है तो उससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। इस सत्य को साबित करने के लिए तो बार-बार और विस्तार से जीवन में उसे प्रकट करने की आवश्यकता है।

....मैं सब परामर्शदाताओं से प्रार्थना करता हूं कि वे मेरे साथ धीरज रखें तथा मेरी इस श्रद्धा में भागीदार बनें कि इस दुखी जगत् की पीड़ा हटाने के लिए कठिन होने पर भी सिवा अहिंसा के और कोई सीधा-साफ रास्ता नहीं है। मेरे-जैसे लाखों आदमी चाहे इस सत्य को इस जीवन में सिद्ध न कर पायें तो यह उनकी दुर्बलता एवं असफलता होगी, न कि अहिंसा की।

—नई दिल्ली, १५।६।'४७। प्रार्थना सभा के प्रति अपने लिखित सन्देश में। ह० से० २९।६।४७]

- अहिंसा का दिवाला कभी नहीं निकल सकता।
- इस दुखी जगत् की पीड़ा हटाने के लिए कठिन होने पर भी सिवा अहिंसा के और कोई सीधा-साफ़ रास्ता नहीं है।

१२४. वीरों की अहिंसा

[कांग्रेस-अध्यक्ष ने कांग्रेस महासमिति के अपने अन्तिम भाषण में कहा कि गांधी जी ने जिस प्रकार ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ने का अहिंसक तरीका बताया था, उसी तरह वह साम्प्रदायिक संघर्ष का सामना करने के लिए कोई अहिंसक तरीका नहीं बता सके। गांधी जी ने कहा कि वह अँधेरे में भटक रहे हैं और उन्हें कोई रास्ता सूझ नहीं रहा है। यद्यपि वह यह भी कहते हैं कि नोआखोली और बिहार के अपने काम से वह सारे हिन्दुस्तान की हिन्दू-मुस्लिम-समस्या हल कर रहे हैं, फिर भी मैं यह नहीं समझ सका कि आम पैमाने पर अहिंसा का यह तरीका किस प्रकार काम में लाया जा सकता है। इसलिए मैं आज गांधी जी के साथ नहीं हूं और मैंने हिन्दुस्तान के विभाजन की बात मान ली है। इसी का उत्तर प्रार्थना-सभा में गांधी जी ने निम्नांकित रूप में दिया था।--संपा०]

मेरे अंधेरे में भटकने का यथार्थ अभिप्राय यह है कि मैं यह नहीं जानता कि लोगों को अपना दृष्टिकोण कैसे समझाऊं। मेरा यह विश्वास है कि साम्प्रदायिक संघर्षों को रोकने के लिए भी अहिंसा का हथियार उसी प्रकार कारगर सिद्ध हो सकता है जिस प्रकार वह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ी गई हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई में कारगर सिद्ध हुआ है। उस समय लोगों ने अहिंसा-द्वारा लड़ने में मेरा साथ दिया था, क्योंकि वे जानते थे कि ज़बर्दस्त ब्रिटिश हथियारों का मुकाबला और किसी तरह नहीं किया जा सकता। किन्तु वह दुर्बलों की अहिंसा थी। साम्प्रदायिक लड़ाई में उस अहिंसा से काम नहीं चल सकता। उसके लिए तो वीरों की सच्ची अहिंसा की आवश्यकता है।

....मैं दुर्बलों की अहिंसा से भिन्न वीरों की अहिंसा को जनता में फैलाने की अपनी अयोग्यता स्वीकार करता हूं। मैं लोगों में वीरों की अहिंसा नहीं पैदा कर सका, इससे कोई यह न समझे कि मैं इस अनमोल गुण को पैदा करने और बढ़ाने का तरीका नहीं जानता। वीरों की अहिंसा की साधना की सबसे पहिली शर्त यह है कि हम अपने दिल में राम के जीते-जागते अस्तित्व का अनुभव करें। इस चेतना को पाने के लिए मन्दिर जाने की आवश्यकता नहीं। नित्य ईश्वर का नाम जपना कुछ विशेष अर्थ रखता है। हम यह मान लें कि हिन्दुस्तान के

लाखों-करोड़ों आदमी नित्य, किसी विशेष समय पर, भगवान को राम, अल्ला, खुदा, अहुरमज्द या जिहोवा के नाम से याद करते हैं किन्तु यदि ईश्वर का नाम जपने वाले शराब पीते हैं, व्यभिचार करते हैं, बाज़ारों में सट्टा करते हैं, जुआ खेलते हैं और काला बाज़ार में भाग लेते हैं तो उनका रामधुन गाना बेकार है। उलटे यह उनके लिए शर्म की बात है। एक गन्दे एवं बेईमानी से भरे दिलवाला आदमी कभी ईश्वर की सबको पवित्र बनानेवाली सत्ता का अनुभव नहीं कर सकता। इसलिए यह कहने की अपेक्षा कि बहादुरी की अहिंसा सिखाने के लिए कोई कार्यक्रम नहीं बनाया गया, यह कहना अधिक यथार्थ होगा कि हिन्दुस्तान वीरों की अहिंसा सीखने के लिए तैयार नहीं है। यह कहना सर्वथा सत्य होगा कि अभी मैंने वीरों की अहिंसा का जो कार्यक्रम बताया, वह उतना लुभावना नहीं है जितना दुर्बलों की अहिंसा वाला कार्यक्रम सिद्ध हुआ है। मुझे आशा है कि जो लोग प्रार्थना-सभा में मेरा भाषण सुनने आते हैं, कम से कम वे तो अपने जीवन में वीरों की अहिंसा पर अमल करके दूसरों को रास्ता दिखायेंगे।

—नई दिल्ली, २२।६।'४७। ह० से० २९।६।'४७]

● **हिन्दुस्तान वीरों की अहिंसा सीखने के लिए तैयार नहीं है।**

१२५. अहिंसा

संसार के अनेक देशों से मेरे पास यह प्रश्न पूछा गया है :—

"आपके देश में राजनीतिक दल अपने राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति की ओर बढ़ने में दिन-दिन हिंसा का अधिकाधिक प्रयोग करने लगे हैं। क्या आप इसका कारण बतायेंगे? ब्रिटिश राज्य का अन्त करने के लिए पिछले तीस साल से अहिंसा का जो तरीका अपनाया गया कहीं उसी का परिणाम तो यह नहीं है? क्या अब भी दुनिया के लिए आपका अहिंसा का सन्देश काम आ सकता है?"

इसके उत्तर में मुझे अहिंसा का नहीं बल्कि अपना दिवालियापन स्वीकार करना चाहिए। इसके पूर्व मैं स्पष्ट कह चुका हूं कि पिछले तीस वर्षों में जिस अहिंसा का प्रयोग किया गया, वह दुर्बलों की अहिंसा थी। मेरा यह उत्तर उचित या पर्याप्त है या नहीं, यह तो दूसरे ही बता सकते हैं। इसके बाद दूसरी एक बात भी स्वीकार करनी होगी कि आज की परिवर्तित परिस्थिति में दुर्बलों की अहिंसा कुछ काम नहीं दे सकती। हिन्दुस्तान को वीरों की अहिंसा का अनुभव नहीं है। यदि मैं बारबार यह कहता रहूं कि वीरों की अहिंसा दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति है तो उससे मेरा

कोई मतलब हल नहीं होता। इस सत्य को निरन्तर बड़े प्रमाण में प्रत्यक्ष प्रयोग कर दिखाने की आवश्यकता है। मुझमें जितनी शक्ति है, उसका पूरा-पूरा प्रयोग करके मैं यही कर दिखाने के लिए यत्नशील हूं। यदि मेरी उत्तम योग्यता बहुत थोड़ी हो तो उससे क्या? कहीं मैं शेखचिल्ली के रास्ते तो नहीं जा रहा हूं? मैं ऐसी व्यर्थ की खोज में अपने पीछे चलने या अपना साथ देने के लिए दूसरों को क्यों कहूं? ये सब सवाल पूछने लायक हैं। इन सबका मेरा उत्तर बिल्कुल सरल है। मैं किसी को अपने पीछे चलने या अपना साथ देने के लिए नहीं कहता। प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपने अन्तर की आवाज़ माननी चाहिए। यदि कोई स्त्री-पुरुष अपने अन्तर की आवाज़ न सुन सकें तो उन्हें अपनी योग्यता के अनुसार जितना बन सके कर गुज़रना चाहिए। किन्तु कोई स्त्री या पुरुष भेड़ की तरह दूसरे के पीछे-पीछे न चले।

एक और सवाल भी पूछा गया है और प्रायः पूछा जाता है—'यदि आपको विश्वास है कि हिन्दुस्तान गलत रास्ते जा रहा है तो आप ग़लत काम करनेवालों से सम्बन्ध क्यों रखते हैं? आप अकेले ही अपने सही रास्ते क्यों नहीं जाते? और आप यह श्रद्धा क्यों नहीं रखते कि आपकी बात सच होगी तो आपका त्याग करनेवाले आपके मित्र एवं अनुयायी आपको फिर खींच लेंगे?' यह बिल्कुल उचित सवाल है। मैं इसके विरुद्ध कोई तर्क उपस्थित करने की चेष्टा नहीं करूंगा। मैं केवल यही कहूंगा कि मेरी श्रद्धा पहिले-जैसी आज भी दृढ़ है। हो सकता है कि मेरे कार्य का तरीका गलत हो। आज की अटपटी स्थिति में तो पहिले के परखे हुए और पुराने उदाहरण ही दिशा बताने के लिए हमारे सामने हैं। किन्तु एक बात का ध्यान रखना होगा। किसी को जड़ मशीन की तरह काम नहीं करना चाहिए। इसलिए मुझे सलाह देनेवाले सब लोगों से मैं यही कहूंगा कि मेरे साथ धीरज के साथ काम लीजिए और मेरी इस श्रद्धा में सम्मिलित भी हो जाइए कि आज की दुखी दुनिया के उद्धार के लिए खांड़े की धार-जैसी अहिंसा के दुर्गम मार्ग के अतिरिक्त दूसरी कोई आशा नहीं है। हो सकता है कि इस सत्य को सिद्ध करने में मेरे-समान कोटि-कोटि आदमी असफल रहें। किन्तु यह असफलता अहिंसा के सनातन नियम की नहीं, बल्कि इन करोड़ों की होगी।

—नई दिल्ली, १५।६।'४७ की प्रार्थना सभा में पढ़े गये सन्देश से। ह० से०, २९।६।'४७]

- **पिछले तीस वर्षों में जिस अहिंसा का प्रयोग किया गया, वह दुर्बलों की अहिंसा थी।**

- **कोई स्त्री या पुरुष भेड़ की तरह दूसरे के पीछे-पीछे न चले।**
- **आज की दुखी दुनिया के उद्धार के लिए खांड़े की धार-जैसी अहिंसा के दुर्गम मार्ग के अतिरिक्त दूसरी कोई आशा नहीं है।**

१२६. निष्क्रिय प्रतिरोध और विष को अमृत करनेवाली अहिंसा

मैंने यह कहकर देश की दर्दनाक हालत के लिए अपने को ज़िम्मेदार मान लिया है कि मेरे नेतृत्व में पिछले तीस साल से जो कुछ किया गया, वह निष्क्रिय प्रतिरोध के सिवा कुछ नहीं था। वह ब्रिटिश शासन से हिन्दुस्तान को मुक्त करने का कारण अवश्य बन सका। किन्तु निष्क्रिय प्रतिरोध में अहिंसा की तरह लोगों के हृदय बदलने की शक्ति नहीं होती। उसका परिणाम हम अच्छी तरह जानते हैं। हमारी कल्पना का स्वराज्य तो कोसों दूर है। किन्तु अब विष को अमृत में बदलने के लिए क्या किया जाय? क्या ऐसा करना सम्भव है? मैं जानता हूं कि सम्भव है, और मुझे इसकी रीति भी मालूम है। किन्तु जो हिन्दुस्तान निष्क्रिय प्रतिरोध को अपनाने के लिए तैयार था, वह अहिंसा के पाठ को दिल में बैठा लेने की शक्ति नहीं रखता। अहिंसा और शायद अकेली अहिंसा ही विष को अमृत में बदलने की शक्ति रखती है। बहुत से लोग यह स्वीकार करते हैं कि आज के चारों ओर फैले विष को अमृत में बदलने का एक मात्र मार्ग अहिंसा ही है किन्तु उनमें इस स्वर्णिम मार्ग को अपनाने का साहस नहीं है। मैं डंके की चोट से कह सकता हूं कि अहिंसा कभी असफल नहीं रही। लोग बेशक अहिंसा की ऊंचाई तक नहीं पहुँच सके। मुझे लोगों की इस टीका की पर्वा नहीं कि मैं अहिंसा के प्रचार की टेकनीक—कौशल नहीं जानता। मेरी टीका करनेवालों ने तो यहां तक भी कह डाला है कि स्वयं मुझमें ही अहिंसा का अभाव है। किन्तु केवल भगवान ही मनुष्य के हृदयों को जानता है। मैं पूर्ण विश्वास के साथ यह कह सकता हूं कि यदि दुनिया को शान्ति पानी है तो उसका एकमात्र साधन अहिंसा ही है।

——ह० से०। २०।७।'४७]

- **अहिंसा और शायद अकेली अहिंसा ही विष को अमृत में बदलने की शक्ति रखती है।**
- **मैं डंके की चोट से कह सकता हूं कि अहिंसा कभी असफल नहीं रही।**

१२७. सच्ची अहिंसा

....यदि कोई उसे बचाने की कोशिश में अपनी जान दे देता तो वह सच्चा बहादुर आदमी साबित हो जाता। इसी का नाम सच्ची अहिंसा है। सच्ची अहिंसा यह नहीं है कि बलवान के सामने तो हम अहिंसा का उपयोग करें किन्तु दुर्बल पर हिंसा करें।

अंग्रेजों के लिए हमने अहिंसा का प्रयोग किया किन्तु आज हम हिंसा अपना रहे हैं। किनके साथ? अपने भाइयों के साथ। तो अंग्रेजों के साथ हमने जिस अहिंसा को अपनाया वह बहादुरों की अहिंसा नहीं थी। उसका फल आज हिन्दुस्तान पा रहा है, मैं भी पा रहा हूं, आप भी पा रहे हैं। मैं स्वीकार करता हूं कि आपको सच्ची अहिंसा नहीं सिखा सका। मैं तो आपको वीर की अहिंसा बतलाता हूं।

--नई दिल्ली, ८।१०।'४७ प्रा० प्र०, भाग १ पृष्ठ ३९३-९४]

१२८. अहिंसा में पक्का विश्वास

एक और पत्र में मुझे इसलिए फटकारा गया है कि मैंने श्री चर्चिल, हिटलर, मुसोलिनी और जपानियों को ऐसे समय अपना अहिंसक उपाय अपनाने की सलाह दी, जब उनके सामने जीवन-मरण की समस्या खड़ी थी। पत्रलेखक भाई ने आगे कहा है कि उन लोगों को तो आपने अहिंसा की सीख देने की हिम्मत की किन्तु जब कांग्रेस सरकार में आपके दोस्त अहिंसा को छोड़ते और कश्मीर को सशस्त्र सेना की मदद भेजते हैं तब आपकी अहिंसा कहाँ चली जाती है? उन्हें भी आप अहिंसा का उपदेश क्यों नहीं देते? अपने पत्र के अन्त में उन भाई ने मुझसे इस बात का निश्चित उत्तर माँगा है कि कश्मीरी लोग आक्रमणकारियों का सामना अहिंसा से कैसे कर सकते हैं? इन भाई ने अपने पत्र में जो अज्ञान प्रकट किया है उसपर मुझे अफसोस होता है।... मैंने बार-बार यह बात कही है कि इस मामले में यूनियन कैबिनेट (मन्त्रिमण्डल) के अपने दोस्तों पर मेरा कोई प्रभाव नहीं है। मैं स्वयं तो अहिंसा के अपने विचारों पर सदा की तरह आज भी डटा हुआ हूं किन्तु मैं कैबिनेट (मन्त्रिमण्डल) के अपने बड़े-से-बड़े दोस्तों पर भी अपने ये विचार लाद नहीं सकता। मैं उनसे आशा नहीं कर सकता कि वे अपने विश्वासों के विरुद्ध काम करें। जब मैं यह स्वीकार करता हूं कि अपने दोस्तों पर मेरा पहिले-जैसा

काबू नहीं रहा, तो प्रत्येक को सन्तोष हो जाना चाहिए। फिर भी पत्र लिखने वाले भाई का प्रश्न बहुत सादा है।

मेरी अहिंसा मुझे योग्य मनुष्य की प्रशंसा करने से नहीं रोकती, भले वह हिंसा में विश्वास रखनेवाला ही क्यों न हो। मैंने सुभाष बोस की हिंसा को कभी पसन्द नहीं किया, फिर भी मैं उनकी देशभक्ति, सूझबूझ और वीरता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा। इसी तरह यद्यपि मैं इस बात को पसन्द नहीं करता कि यूनियन सरकार कश्मीरियों की मदद करने में अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग करे और यद्यपि मैं शेख अब्दुला के हथियारों का सहारा लेने की बात को ठीक नहीं मान सकता, फिर भी दोनों की सूझ-बूझ और प्रशंसायोग्य कार्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। विशेषत: यदि सहायक टुकड़ियों और कश्मीर की रक्षा-सेना का एक-एक आदमी वीरतापूर्वक मर मिटे तो मैं उनकी प्रशंसा ही करूंगा। मैं जानता हूं कि यदि वे ऐसा कर सके तो कदाचित् हिन्दुस्तान की आज की शक्ल बदल देंगे। किन्तु यदि कश्मीर का बचाव इच्छा और आचरण में बिलकुल अहिंसक हो तो मैं कदाचित् शब्द का प्रयोग न करूंगा क्योंकि मुझे विश्वास होगा कि कश्मीर के अहिंसक रक्षक हिन्दुस्तान की शक्ल यहां तक बदल देंगे कि यदि पाकिस्तान कैबिनेट (मन्त्रि-मण्डल) को नहीं तो कम-से-कम यूनियन कैबिनेट को तो वे अपनी राय की बना ही लेंगे।

मैं तो यह कहूंगा कि यदि कश्मीर के मुट्ठी भर लोग मासूम बच्चों एवं औरतों की रक्षा के लिए हथियार लेकर आक्रमणकारियों से लड़ते हैं, और लड़ते-लड़ते मर जाते हैं, तो उनकी हथियारबन्द लड़ाई भी अहिंसक लड़ाई बन जाती है। मेरा अहिंसक तरीका अपनाया जाय तो कश्मीर के रक्षकों को हथियारबन्द सेना की मदद न भेजी जाय। यूनियन से अहिंसक सहायता बिना किसी संकोच के भेजी जा सकती है। किन्तु उन रक्षकों को ऐसी मदद मिले या न मिले, वे आक्रमणकारियों की या बहुसंख्यक व्यवस्थित सेना की शक्ति का भी सामना करेंगे। और यदि रक्षा करने वाले लोग आक्रमणकारियों के विरुद्ध अपने दिलों में कोई वैर या क्रोध न रखें, किसी तरह के हथियारों—यहां तक कि घूंसों का भी उपयोग न करें और बेगुनाहों की रक्षा करते-करते मर जायं, तो उनकी इस वीरता का उदाहरण आज तक के इतिहास में कहीं न मिलेगा। तब कश्मीर ऐसा पवित्र स्थान बन जायगा, जिसकी सुगन्ध सारे भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण संसार में फैल जायगी। अहिंसक बचाव के सम्बन्ध में चर्चा करने के बाद मुझे यह स्वीकार करना पड़ता है कि मेरे शब्दों में वह शक्ति नहीं है जो गीता के दूसरे अध्याय की अन्तिम पंक्तियों में बताये गये पूर्ण आत्म-संयम से आती है। इसके लिए जिस तपश्चर्या की आवश्यकता

है, उसकी मुझ में कमी है। मैं तो भगवान से प्रार्थना ही कर सकता हूं। आप सब भी मेरे साथ भगवान से प्रार्थना कीजिए कि यदि वह चाहे तो मेरे शब्दों में ऐसी शक्ति दे जिसका प्रभाव सब पर पड़ सके।

—नई दिल्ली, ४।११।'४७। ह० से० १६।११।'४७]

१२९ हिंसा से अधिकार-रक्षा

हिंसा वस्तुतः न तो किसी आदमी को बचाती है न उसके अधिकार को।

—ह० से०, ३०।११।'४७]



[३]

— अहिंसा —

जीवदया एवं खाद्याखाद्य

१. अहिंसा का मर्म

●

एक सज्जन नीचे-लिखे सवाल करते हैं—

१. क्या यह बात सच है कि विदेशी चीनी में हड्डियां तथा खून आदि अपवित्र चीजें डाली जाती हैं ?

२. अहिंसा-व्रत का पालन करनेवाला मनुष्य विदेशी शक्कर खा सकता है ?

३. जो लोग हिंसा-(निवारण) की दृष्टि से खादी पहिनते हैं वे स्वराज मिलने के बाद भी खादी पहिनेंगे ?

४. खादी पहिनना अहिंसा का सवाल है या राजनीतिक सवाल है ? हिंसा की दृष्टि से देखें तो मिल के कपड़े में अधिक हिंसा है या विलायती कपड़े में, यद्यपि दोनों के यन्त्र एक से होते हैं ?

५. अहिंसा व्रत का पालन करनेवाला चाय पी सकता है ? यदि न पीना चाहिए तो उसमें हिंसा किस तरह होती है ?

ऐसे सवालों का जवाब देते हुए मुझे संकोच होता है क्योंकि वे अज्ञान-सूचक हैं। कितने ही पाठक ऐसे सवाल किया करते हैं इसलिए उसका निर्णय कर डालना उचित मालूम पड़ता है।....

विदेशी चीनी के अन्दर हड्डियां आदि नहीं रहतीं, पर ऐसा सुना है कि उनका उपयोग चीनी साफ़ करने में किया जाता है। यह मानने का कोई कारण नहीं कि ऐसा प्रयोग देशी चीनी के लिए नहीं होता।

इस कारण अहिंसा की दृष्टि से शायद दोनों प्रकार की शक्कर त्याज्य है अथवा यदि लेना ही हो तो शक्कर का निर्माण कैसे होता है, इसकी जाँच करना उचित है। किन्तु शक्कर मात्र के त्याग के लिए अहिंसा की एक सूक्ष्म दृष्टि है। प्रत्येक प्रक्रिया में हिंसा है अतएव प्रत्येक खाद्य पदार्थ पर जितनी कम प्रक्रिया हो उतना ही अच्छा है। गन्ना चूसना सबसे उत्तम है, गुड़ उससे कम, चीनी उससे भी कम। परन्तु सर्वसाधारण के लिए इस सूक्ष्मता के अन्दर पड़ने की मैं बिल्कुल जरूरत नहीं समझता।

खादी पहिननेवाला अहिंसा और स्वराज्य दोनों दृष्टि से, स्वराज्य मिलने

के बाद भी खादी ही पहिनेगा। स्वराज्य जिन साधनों के बल पर मिलेगा, उन्हीं साधनों के बल पर वह क़ायम रह सकेगा। जो राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं के लिए विदेशों की ओर देखता है वह परतन्त्र हो जाता है अथवा दूसरों को गुलाम बनाता है।

खादी पहिनने में अहिंसा, राजकार्य और अर्थशास्त्र तीनों का समावेश हो जाता है। पूर्वोक्त नियम के अनुसार खादी पर क्रियाएं कम होती हैं इसलिए उसमें हिंसा कम है।

इसके अतिरिक्त विदेशी या स्वदेशी मिल के कपड़े की तुलना करते हुए, दोनों में से एक ही प्रकार के यन्त्रों के रहते हुए भी, स्वदेशी मिल के कपड़े पहिनने में कम हिंसा है। क्योंकि ऐसा करते हुए हमारे हृदय में अपने पड़ोसी भाइयों के प्रति प्रेम-भाव रहता है किन्तु विदेशी कपड़े का प्रयोग करने में प्रेम का अभाव रहता है। यही नहीं बल्कि बिल्कुल स्वच्छन्दता, स्वार्थ या अपनी ही सुविधा का सवाल रहता है और परमार्थ का, प्रेम का अर्थात् अहिंसा का अभाव रहता है।

अहिंसा व्रत को पालनेवाला चाय पी भी सकता है और नहीं भी पी सकता। चाय में भी प्राण है। वह निरुपयोगी वस्तु है। इसलिए उसके लेने से होनेवाली हिंसा अनिवार्य नहीं है। अतएव उसका त्याग इष्ट है। जहाँ-जहाँ चाय के बगीचे हैं, वहां-वहां गिरमिटिया लोगों से मजूरी कराई जाती है। गिरमिटिया लोगों के दुखों से हिन्दुस्तान परिचित है। जिस पदार्थ की रचना मज़दूरों के लिए कष्टदायी होती हो वह भी अहिंसा की दृष्टि से त्याज्य है। व्यवहार में हम इतनी बारीक बातों का ख्याल नहीं करते। इस कारण जिस प्रकार दूसरी चीज़ों को अहिंसा की दृष्टि से निर्दोष समझते हैं उसी तरह चाय को भी मान सकते हैं। वैद्यक की दृष्टि से चाय में गुण की अपेक्षा दोष अधिक है, विशेषतः तब जब वह उबाली जाती है।

इन प्रश्नों से पता लगता है कि अहिंसा की बातें करने वाले अहिंसा को कितना कम पहिचानते हैं। अहिंसा एक मानसिक स्थिति है। जिसने इस स्थिति को नहीं समझा है वह चाहे कितनी ही चीजों को त्याग दे तो भी उसे उसका फल शायद ही मिले। रोगी रोग के लिए बहुतेरी चीजों से परहेज़ करता है। इससे रोग दूर करने के अतिरिक्त उसके इस त्याग का और कोई फल नहीं मिलता। दुष्काल-पीड़ित को यदि भोजन न मिले तो इससे उसे उपवास का फल नहीं मिलता। जिसका मन संयमी नहीं है, उसकी कृति में चाहे भले ही संयम दिखाई दे, पर वह संयम है नहीं। खाद्य-अखाद्य के विषय में अहिंसा का समावेश नहीं होता। अहिंसा क्षत्रिय का गुण है। कायर उसका पालन नहीं कर सकता। दया तो शूर-वीर

ही दिखा सकते हैं। कार्य में जिस अंश तक दया है उस कार्य में उसी अंश तक अहिंसा हो सकती है। इसलिए दया में ज्ञान की आवश्यकता है। अन्ध प्रेम को अहिंसा नहीं कहते। अन्ध प्रेम के अधीन होकर जो माता अपने बालक को तरह-तरह से दुलराती है वह अहिंसा नहीं, बल्कि अज्ञानजात हिंसा है। मैं चाहता हूं कि खाने-पीने की मर्यादाओं को महत्व न देकर लोग इसका पालन करते हुए भी अहिंसा के विराट रूप को, उसकी सूक्ष्मता को, उसके मर्म को समझें। रूढ़ि के वशवर्ती होकर गोमांस खानेवाला पश्चिम का कोई साधु पुरुष रूढ़ि के अधीन होकर गोमांस का त्याग करनेवाले पाखण्डी क्रूर मनुष्य से कोटिगुना अधिक अहिंसक है। मेरे प्रश्नकर्त्ता स्वयं अपने हृदय से पूछें—मैं विदेशी शक्कर, विदेशी कपड़े और चाय को छोड़ता तो हूं, परन्तु यदि मैं अपने पड़ोसी पर दया न करता होऊं, दूसरों के बच्चों को अपने बच्चों-जैसा न मानता होऊं, अपने व्यवसाय में सचाई का पाबन्द न रहता होऊं, अपने नौकर-चाकरों को अपना कुटुम्बी न मानकर उनके साथ प्रेमभाव न रखता होऊं तो मेरी खाने-पीने-सम्बन्धी मर्यादा का कुछ मूल्य नहीं। मेरी यह मर्यादा केवल आडम्बर है। नरसी मेहता की पवित्र वाणी है—**'ज्यां लगी आत्मा तत्व चीन्यों नहीं त्यां लगी साधना सर्व झूठी।'** आत्मतत्व को पहिचानने का अर्थ ही है—अहिंसामय होना। अहिंसामय होने का अर्थ है—विरोधी के प्रति भी प्रेम भाव रखना, अपकारी का भी उपकार करना, अवगुणों का बदला गुण के द्वारा देना और ऐसा करते हुए यह मानना कि यह तो मेरा कर्त्तव्य है, कोई बड़ी बात नहीं कर रहा हूं।

—न० जी०। हि० न० जी १९।३।'२५]

- अहिंसा एक मानसिक स्थिति है।
- अहिंसा क्षत्रिय का गुण है, कायर उसका पालन कर ही नहीं सकता।
- दया तो शूर-वीर ही दिखा सकते हैं।
- दया में ज्ञान की आवश्यकता है, अन्ध प्रेम को अहिंसा नहीं कहते।
- आत्मतत्व को पहिचानने का अर्थ ही है—अहिंसामय होना—अहिंसामय होने का अर्थ है विरोधी के प्रति प्रेम-भाव रखना।

२. क्या कृषि-कर्म में हिंसा है?

[गुजराती 'नवजीवन' के एक नियमित पाठक ने 'नवजीवन' में यह पढ़कर कि खेती शुद्ध यज्ञ है, सच्चा परोपकार है प्रश्न किया था कि खेती में किसान के द्वारा

अगणित जीव मरते हैं तो क्या इसमें हिंसा नहीं है, उससे अच्छा तो भिक्षाटन-द्वारा पेट भरना है। उसी का उत्तर इस लेख में गांधी जी ने दिया है।—संपा०]

यह बात सत्य है कि खेती में सूक्ष्म जीवों की अपार हिंसा है किन्तु....यह भी इतना ही सत्य है कि शरीर-निर्वाह में, श्वास लेने में भी असीम सूक्ष्म जन्तुओं की हिंसा है। परन्तु जिस प्रकार आत्मघात करने से शरीर रूपी पिंजर का सर्वथा नाश नहीं होता उसी प्रकार खेती के त्याग से खेती का भी नाश नहीं होता। मनुष्य मिट्टी का पुतला है....और मिट्टी के पर्यायों पर उसका जीवन निर्भर है। खेती से होनेवाले दोषों से दूर रहने के लिए जो भिक्षान्न खाता है वह दोहरा दोष-भागी होता है, क्योंकि भिक्षा में मिला अन्न किसी न किसी किसान के श्रम से ही उत्पन्न हुआ है। उस किसान की खेती की हिंसा में भिक्षान्न भोजन करनेवाले का भाग अवश्य आ जाता है। फिर दूसरा दोष है भिक्षान्न खाने वाले का अज्ञान और उससे उत्पन्न होने वाला आलस्य।

यदि एक मनुष्य के लिए खेती का त्याग उचित है तो अनेक के लिए भी है। अनेक लोग यदि भीख माँगकर खायँ तो थोड़े से किसान बेचारे भिखारियों के लिए मजूरी करने के बोझ से ही कुचल जायँ, और उसका पाप भिखारी के नहीं तो फिर किसके सिर होगा?

खेती इत्यादि आवश्यक कर्म शरीर-व्यापार की तरह अनिवार्य हिंसा है।... मनुष्य ज्ञान, भक्ति आदि के द्वारा अन्त को इन अनिवार्य दोषों से मोक्ष प्राप्त करके इस हिंसा से भी मुक्त हो जाता है। इसलिए शरीर जिस प्रकार मनुष्य के लिए बन्धन का द्वार है उसी प्रकार वह मोक्ष का भी द्वार है। उसी तरह जो करोड़-पति होने के लिए खेती करता है उसके लिए खेती भी बन्धन का द्वार है। जो केवल आजीविका के लिए करता है उसके लिए खेती मुक्ति का द्वार हो सकती है।

कार्य-मात्र, प्रवृत्ति-मात्र, उद्योग-मात्र सदोष है। आवश्यक उद्यम-मात्र में एक-सा दोष है। मोती के रोजगार में, रेशम के धन्धे में, सुनार के पेशे में खेती से बहुत अधिक दोष है क्योंकि ये धन्धे आवश्यक नहीं हैं। उनमें खूब हिंसा तो है ही। मोती हिंसा बिना मिल नहीं सकते; सीप का कीड़ा उबाला जाता है। सुनार जो आसमानी आग पैदा करता है उसमें जलनेवाले जन्तुओं से यदि पूछें और वे उत्तर दे सकें तो हमें इस धन्धे की हिंसा का कुछ ख्याल हो सकता है।

चारों ओर हिंसा से घिरे और जलते हुए इस जगत् में विचरनेवाले जिस महापुरुष ने अहिंसा रूपी धर्म उत्पन्न किया उसको मेरा साष्टांग प्रणाम है।

चींटी को भी बचाकर चलना, यह हमारा सहज धर्म है। जो मनुष्य ऊँचा सिर करके बिना बिचारे, बिना देखे, अपने घमण्ड में मस्त चला जाता है और

अपने पैरों के नीचे कुचले जानेवाले असंख्य जीवों का विचार तक नहीं करता वह तो जानबूझकर अनावश्यक पाप-कर्म करता है और अपने हाथों अपने लिए नरक का द्वार खोलता है। उसकी तुलना किसान से, जो उसके सामने निर्दोष माना जाना चाहिए, हो ही नहीं सकती। खेती करनेवाले असंख्य किसान चलते हुए बारीक नजर से चींटी आदि प्राणियों को बचाते हैं; उनमें गर्व नहीं होता, वे नम्र हैं। वे जगत् के पालनेवाले हैं। दुनिया का नवदशमांश भाग खेती करता है। उसी में श्रेय है। खेती आवश्यक शुद्ध यज्ञ है। श्रेष्ठ धर्मवान उस धन्धे को कर सकता है और दूसरे अनावश्यक धन्धों को छोड़कर खेती करें तो पुण्य है।

--मूल गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, २४।९।'२५]

- **शरीर जिस प्रकार मनुष्य के लिए बन्धन का द्वार है, उसी प्रकार मोक्ष का भी द्वार है।**
- **कार्यमात्र, प्रवृत्तिमात्र, उद्योगमात्र सदोष है।**

३. जीव की जीव के प्रति हिंसा

[एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न--छोटे-छोटे जीवों को एक-दूसरे का आहार करते हुए हम बहुधा देखते हैं। छिपकली को मैं अपने घर में रोज़ शिकार करते देखता हूं; बिल्ली पक्षियों का शिकार करती हुई दिखाई पड़ती है। क्या मुझे यह देखते रहना चाहिए अथवा उसे रोकने के लिए उस प्राणी की हिंसा करनी चाहिए। ऐसी अनेक हिंसाएं हुआ करती हैं। ऐसे समय हमें क्या करना चाहिए?

उत्तर--क्या मैंने ऐसी हिंसा होते नहीं देखी है? ....परन्तु इस 'जीवो जीवस्य जीवनम्' के प्राणिजगत् के कानून को रोकना मुझे कभी कर्त्तव्य नहीं मालूम हुआ। ईश्वर के इस अगम्य रहस्य को खोलने का मैं दावा नहीं करता परन्तु ऐसी हिंसा को देखकर मुझे यह प्रतीत होता है कि पशु और दूसरे निम्नकोटि के प्राणियों का नियम मानवयोनि का नियम नहीं हो सकता। मनुष्य को तो निश्चयपूर्वक प्रयत्न करके अपने अन्दर के पशु को जीत लेने का और उसे पारकर आत्मा को जीवित रहने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने चारों ओर व्याप्त हिंसा के दावानल से ही हिंसा का महामन्त्र सीखना चाहिए। अर्थात् मनुष्य यदि अपनी प्रतिष्ठा को समझने लगे और अपना जीवनकार्य समझ ले तो उसे स्वयं हिंसा करने से रुक जाना चाहिए और अपने से निम्न कोटि के अथवा अपने वश में रहनेवाले जीवों को कोई कष्ट न पहुँचाना चाहिए। वह अपने लिए यह आदर्श रख सकता है और कुछ नहीं

तो अपने से कमज़ोर अपने भाइयों को तकलीफ़ देने से भी रुक जा सकता है। यह भी एक आदर्श है; उसका सम्पूर्णतया पालन करने के लिए उसे रात-दिन सतत प्रयत्न करना चाहिए। तभी वह किसी न किसी दिन उस आदर्श तक पहुँच सकेगा। मनुष्य इसमें सम्पूर्ण सफलता तभी प्राप्त कर सकता है जबकि वह मोक्ष प्राप्त करके देह के तमाम बन्धनों से मुक्त हो जाय।

—न० जी०। हि० न० जी० २२।४।'२६]

४. अहिंसा की गुत्थी

[एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—बड़ा ख्याल रखने पर भी खटिया में खटमल हो गये हैं। उठाकर रखने में कितने मर जाते हैं। घड़े के पानी में भी जीव पड़ जाते हैं और उसका पानी फेंक देने पर भी छोटे-छोटे जीवों की हिंसा होती है। घर में मकड़ी ने जाले बनाये हैं उन्हें साफ़ करने में भी हिंसा होती है। मान लीजिए, मैं एक व्यापारी हूं। माल की पेटी में जीव पड़ गये हैं, उन्हें दूर न करूं तो माल का नुकसान होता है। बाहर घूमने जाता हूं तो भी पैरों के नीचे थोड़े-बहुत जीव आ जाते हैं। बत्ती जलाता हूं तो वहां भी यही मुश्किल होती है।....ऐसे अनेक दृष्टान्त मैं दे सकता हूं। क्या आप उनका स्पष्टीकरण कर सकेंगे? ऐसी स्थिति में अहिंसा-धर्म का पालन कैसे किया जाय?

उत्तर—इस प्रकार के प्रश्न बार-बार उठते हैं। ऐसे प्रश्नों को तुच्छ समझकर छोड़ देने से भी काम नहीं चल सकता। पूर्व एवं पश्चिम के गूढ़ रहस्ययुक्त ग्रन्थों में भी ऐसे प्रश्नों की चर्चा की गई है। मेरी अल्पमति के अनुसार तो इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है क्योंकि सभी का मूल एक में ही समाया हुआ है। ऊपर कही सभी क्रियाओं में हिंसा अवश्य है क्योंकि क्रियामात्र हिंसामय अतः सदोष है। अन्तर केवल कम-ज्यादा मात्रा का है। देह और आत्मा का सम्बन्ध ही हिंसा के आधार पर निर्मित है। पाप-मात्र हिंसा है और पाप का सर्वथा क्षय होना ही देह-मुक्ति प्राप्त करना है। इसलिए देहधारी मनुष्य अहिंसा के आदर्श को दृष्टि में रखकर जितनी दूर जा सकना सम्भव हो, उतनी दूर जाय। किन्तु अधिक से अधिक जाने पर भी कुछ न कुछ हिंसा तो अनिवार्यतः होती ही रहेगी जैसे श्वासोच्छ्वास लेने या भोजन इत्यादि में। अनाज के प्रत्येक कण में जीव है इसलिए यदि हम मांसाहार के बदले अन्नाहार करते हैं तो उससे हम हिंसा से मुक्त नहीं गिने जा सकते

परन्तु अन्नाहार में होने वाली हिंसा को अनिवार्य समझकर हम वह आहार करते हैं। इसी कारण भोग के लिए आहार सर्वथा त्याज्य है; केवल जीवित रहने के लिए खाना चाहिए और आत्मा को पहिचानने के लिए जीवित रहना चाहिए। इस पुरुषार्थ की साधना के लिए जो हिंसा अनिवार्य हो वह हमें लाचार की भाँति करनी चाहिए।

अब हम समझ सकते हैं कि पूरी तरह ख्याल रखने पर भी पानी में पड़े जीव या खटमल इत्यादि के सम्बन्ध में जो बात हमें अपरिहार्य मालूम होती है वह करनी होगी। मेरी समझ से ऐसा कार्य दिव्य नियम नहीं हो सकता कि अमुक स्थिति में प्रत्येक मनुष्य एक ही प्रकार की चाल चले, दूसरी नहीं। अहिंसा हृदय का गुण है। हिंसा अहिंसा का निर्णय मानव की भावना के आधार पर ही हो सकता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य, जो अहिंसा-धर्म को अपना कर्त्तव्य मानता हो उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार अपने कार्य की व्यवस्था कर ले। मैं यह जानता हूँ कि इस उत्तर में एक दोष है। इसके कारण मनुष्य अपनी इच्छा से चाहे जितनी हिंसा करके अपने मन को प्रवञ्चित करेगा, संसार को ठगेगा और अनिवार्यता का बहाना लेकर हिंसा का बचाव करेगा। परन्तु यह लेख ऐसे लोगों के लिए नहीं है। यह उनके लिए है जो अहिंसा का आदर करते हैं किन्तु जिनके सामने समय-समय पर धर्म-संकट उपस्थित हुआ करता है। ऐसे मनुष्य अनिवार्य हिंसा भी बड़े संकोच के साथ करेंगे, अपनी प्रवृत्ति-मात्र को कम करेंगे। बढ़ायेंगे नहीं, यहाँ तक कि वे अपनी शक्ति का स्वार्थ-दृष्टि से कभी उपयोग न करेंगे, वे समाज-सेवा भाव से ही ईश्वरार्पण करके अपनी समस्त शक्ति का उपयोग करेंगे। सन्त अर्थात् अहिंसक अर्थात् दयालु मनुष्य की सब विभूतियाँ परोपकार के लिए ही होती हैं: जहाँ अहंकार वहाँ हिंसा अवश्य है। प्रत्येक कार्य करते समय मन में यह प्रश्न कर लेना चाहिए कि यहाँ मैं (अहंकार) है या नहीं। जहाँ मैं (अहंकार) नहीं है वहाँ हिंसा नहीं है।

—न० जी०। हि० न० जी०, १०।६।'२६]

- **क्रियामात्र हिंसामय अतः सदोष है।**
- **देह और आत्मा का सम्बन्ध ही हिंसा के आधार पर निर्मित है।**
- **पापमात्र हिंसा है, पाप का सर्वथा क्षय ही देह-मुक्ति है।**
- **भोग के लिए आहार सर्वथा त्याज्य है।**
- **अहिंसा हृदय का गुण है।**
- **जहां अहंकार है, वहां हिंसा अवश्य है।**
- **जहां मैं (अहंकार) नहीं है वहां हिंसा नहीं है।**

५. जीव-हिंसा : अहिंसा की दृष्टि में

[अहमदाबाद की एक मिल में किसी पागल कुत्ते ने स्वस्थ कुत्ते को काट खाया इस पर मिलमालिक ने मनुष्यों की सुरक्षा-हेतु आठ कुत्तों को गोली मरवा दी। इस कृत्य से चारों ओर असन्तोष की लहर दौड़ गई । स्वयं मिल-मालिक को अपने कृत्य पर पश्चात्ताप था। उन्होंने गांधी जी के पास जाकर अपनी व्यथा प्रस्तुत की। गांधी जी ने उनके कृत्य को एक सहज किन्तु ऐसा अप्रिय, अनिवार्य दायित्व बताया, जिसका पालन आवश्यक था।

अहमदाबाद की जीवदया-प्रचारिणी महासभा ने गांधी जी के इस उत्तर पर असन्तोष व्यक्त करते हुए उनको एक पत्र लिखा जिसमें इसे हिंसामूलक अवाञ्छनीय समाधान कहा गया था। गांधी जी ने इस पत्र के उत्तर में हिंसा-अहिंसा की जो व्याख्या की, उसके आवश्यक अंश संकलित हैं।—संपा०]

पगले कुत्ते को मार डालने के अतिरिक्त हम अपूर्ण मनुष्यों के पास कोई समाधान ही नहीं है। हत्या करने को कटिबद्ध मनुष्य को मारने का धर्म-संकट कितनी बार अनिवार्य हो जाता है।

यदि हम शहर में भटकने वाले कुत्तों को रखने का हठ करें, तो हमें उनको खस्सी करना अथवा मार डालना पड़ेगा। विशिष्ट कुत्तों के लिए पिंजरापोल रखना भी तीसरा उपाय है। किन्तु यह उपाय उपाय की संज्ञा से अभिहित किये जाने योग्य नहीं है। योंही भटकती सभी गायों-भैंसों के लिए उसे खोलने का विचार तो मुझे भयंकर लगता है।

हिन्दू धर्म में इस विषय पर दो मत सुनने में नहीं आते कि किसी भी जीव को मारने से पाप लगता है। मेरा अभिप्राय तो यह है कि सभी धर्मों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है। सिद्धान्त के अन्वेषण में कोई कठिनता नहीं होती; केवल उसका व्यवहार करने में ही समस्त कठिनाइयाँ आती हैं। अपूर्ण-द्वारा पूर्ण का व्यवहार अशक्य होने के कारण प्रतिक्षण सिद्धान्त के उल्लंघन की नई मर्यादा स्थिर करनी पड़ती है। इसीलिए हिन्दूशास्त्र में कहा गया है कि यज्ञार्थ की हुई हिंसा हिंसा नहीं होती। यह अपूर्ण सत्य है। हिंसा तो सब समय हिंसा ही रहेगी और हिंसामात्र पाप है। किन्तु जो हिंसा अनिवार्य हो जाय उसे व्यवहार-शास्त्र पाप नहीं मानता। इसलिए यज्ञार्थ की हुई हिंसा का व्यवहार-शास्त्र अनुमोदन करता है और उसे शुद्ध पुण्यकर्म मानता है।

किन्तु अनिवार्य हिंसा की व्याख्या नहीं की जा सकती क्योंकि वह तो देश, काल और पात्र के अनुसार सतत परिवर्तित होती रहती है। एक काल में जो क्षन्तव्य

म.नी जाती है, अन्य काल में वही अक्षन्तव्य है। शीत ऋतु में शरीर-रक्षा-हेतु लकड़ी अथवा कोयला जलाने में जो हिंसा होती है वह दुर्वलशरीर व्यक्ति के लिए भले ही अनिवार्य हो किन्तु समस्त ग्रीष्म ऋतु तक अनावश्यक जलाई गई आग स्पष्ट हिंसा है।

हमने जन्तुनाशक औषधियों का उपयोग करके विषैले कीटाणुओं का नाश करने का धर्म स्वीकार किया है। जन्तुनाशक औषधि का प्रश्न जाने दीजिए। बन्द कोठरी में विषैली वायु होती है। उसमें विषैले कीटाणु होते हैं। उस कोठरी को खोलकर उसमें वायु एवं प्रकाश का प्रवेश कराके हम विषैले कीटाणुओं का नाश करते हैं। शुद्ध वायु उत्तम श्रेणी की कीटाणुनाशक औषधि है।

ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जो नियम उपर्युक्त उदाहरणों पर लागू है वही पागल कुत्तों को मारने अथवा खस्सी करने में लागू होता है।

पागल कुत्तों का नाश करना तो क्षुद्र से क्षुद्र हिंसा है। वन में रहनेवाले दयासागर मुनि पागल कुत्तों का नाश नहीं करते। उनके पास दूसरी रामबाण औषधि है। वे अपने कृपाकटाक्ष से कुत्तों का उन्माद नष्ट कर देंगे। किन्तु वे गृहस्थाश्रमी नागरिक सज्जन क्या करें जिनके ऊपर नगर और बालकों की रक्षा का दायित्व है, जिनमें मुनि के आदर्श गुण तो नहीं हैं किन्तु कुत्तों को मारते हैं तो पाप करते हैं, नहीं मारते तो महापाप करते हैं। वे कुत्तों को मरवाने का अल्प पाप करके उसकी अपेक्षा महत् पाप से बचते हैं।

मैं अपने को अहिंसामय मानता हूँ। अहिंसा एवं सत्य मेरे दो प्राण हैं। मैं मानता हूँ कि इनके बिना मैं कभी जी नहीं सकता। किन्तु अहिंसा की महती शक्ति और मनुष्य की पामरता को मैं क्षण-क्षण अधिकाधिक स्पष्टता से देखता हूँ। दयानिधि वनवासी मुनिगण भी सम्पूर्णतः अहिंसायुक्त नहीं हो सकते। उनका प्रत्येक श्वास उनसे हिंसा कराता है। यह देह तो हिंसा का स्थान है। अतएव सर्वथा देहमुक्ति में ही मोक्ष और परमानन्द है। इसीलिए मोक्ष के आनन्द के अतिरिक्त अन्य सभी आनन्द अस्थिर हैं, सदोष हैं।

इसी कारण हमें हिंसा के कितने ही कड़वे घूंट पीने पड़ते हैं। किन्तु आश्चर्य और खेद का विषय तो यह है कि इस अहिंसा-प्रधान भूमि में कुत्तों का प्रश्न भयंकर रूप धारण कर सकता है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अज्ञान के वश होकर आज हम अहिंसा के नाम पर हिंसा कर रहे हैं। पागल अथवा उन कुत्तों को मारने में पाप भले ही हो जिनके विषय में भय है कि वे पागल कुत्तों के संसर्ग में आ सकते हैं, किन्तु उनके अस्तित्व के वास्तविक उत्तरदायी तो हम और हमारे महाजन हैं। महाजन लोगों को योंही भटकते कुत्तों को न रहने देना चाहिए। ऐसे लावारिस

कुत्तों को भोजन देना पाप है और इसे पाप मानना चाहिए। यदि हम इन लावारिस कुत्तों को मारने का कानून बनायेंगे तो सहस्रों की प्राण-रक्षा कर सकेंगे।

जीवदया आत्मा का एक महान गुण है; थोड़ी-सी चींटियों, मछलियों अथवा थोड़े से कुत्तों को बचाने में उसकी समाप्ति नहीं हो जाती। उसमें पाप भी होता है। मेरे यहाँ चीटियों का उपद्रव होता है। उन चीटियों को सत्तू छींटने वाले दानी पाप करेंगे। चींटी को तो ईश्वर कण देंगे। किन्तु सम्भव है कि वह सत्तू छींटनेवाला मेरा और मेरे कुटुम्ब का नाश कर दे। कोई जैन संघ कुत्ते को पिंजड़े में बन्द करके मेरे खेत के निकट छोड़कर स्वयं भले ही सुरक्षित बन सकता है किन्तु कुत्ते को बचाने का अर्थ होता है मेरे प्राण को संकट में डालकर उसे मारने की अपेक्षा बहुत बड़ा पाप मोल लेना।

जीव-दया में विचार, विवेक, उदारता, अभय, नम्रता और शुद्ध ज्ञान की आवश्यकता है।

इस हिंसामय जगत् में अहिंसारूपी तीक्ष्ण खड्ग की धार पर चलना सरल कार्य नहीं है। यह धन से नहीं बनता। क्रोध तो अहिंसा का वैरी है। अभिमान उसे खा जानेवाला राक्षस है। इस धर्म के पालन में कितनी बार हिंसा को अहिंसा के नाम से पहिचानना पड़ता है।

इस जगत् में जो वस्तु जैसी दीख पड़ती है उसका स्वरूप वैसा ही नहीं होता और जिसका जैसा स्वरूप होता है वह वस्तु वैसी ही दीख नहीं पड़ती। कोई करोड़ों वर्ष की तपश्चर्या के पश्चात् अन्त में जगत् का वास्तविक स्वरूप देख सकता है; अनुभव कर सकता है। कह तो कोई न सका, कह सकता भी नहीं।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

––न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, १४।१०।'२६]

- **सिद्धान्त तो पूर्ण हैं; उनका व्यवहार करने वाले हम मनुष्य अपूर्ण हैं।**
- **हिंसा तो सब समय हिंसा ही रहेगी। हिंसा मात्र पाप है। किन्तु जो हिंसा अनिवार्य हो जाय, उसे व्यवहारशास्त्र पाप नहीं मानता।**
- **अनिवार्य हिंसा की व्याख्या नहीं की जा सकती। वह तो देश, काल और पात्र के अनुसार सतत परिवर्तित होती रहती है।**
- **शुद्ध वायु उत्तम श्रेणी की कीटाणुनाशक औषधि है।**
- **मैं स्वयं को अहिंसामय मानता हूं। अहिंसा और सत्य मेरे दो प्राण हैं।**
- **क्रोध तो अहिंसा का वैरी है; अभिमान उसे खा जानेवाला राक्षस है।**

- यह देह तो हिंसा का स्थान है। अतएव सर्वथा देह-मुक्ति में ही मोक्ष और परमानन्द है।
- अज्ञान के वश होकर आज हम अहिंसा के नाम पर हिंसा कर रहे हैं।
- जीव-दया आत्मा का एक महान् गुण है।
- मोक्ष के आनन्द के अतिरिक्त सभी आनन्द अस्थिर हैं, सदोष हैं।

६. जीव-दया के प्रसंग में अहिंसा

[अहमदाबाद के एक मिल-मालिक-द्वारा कुत्तों को गोली से मरवाना असन्तोष का विषय बना ही था कि गांधी जी ने इस कृत्य का समर्थन करते हुए जो लेख लिखा उससे व्यग्रता और भी बढ़ गई। लोगों ने उन्हें रोष-भरे पत्र लिखे। वे समय-कुसमय आकर गांधी जी से अहिंसा पर तर्क-वितर्क करने लगे। इन तर्कों का गांधी जी ने जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश संकलित हैं।--संपा०]

विभिन्न जीवों की रक्षा करना अहिंसा का एक आवश्यक अंश जरूर है, किन्तु उसी में इस धर्म की समाप्ति नहीं होती। उससे तो यह धर्म प्रारम्भ ही होता है। किन्तु रक्षा का अर्थ केवल वध न करना ही नहीं है। जीवों को कष्ट देना और जिन्हें अवश्य मरना है, उनकी उत्पत्ति में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष भाग लेना भी हिंसा ही है।

कुत्तों की वृद्धि अनावश्यक है। भटकते हुए कुत्ते समाज के लिए हानिप्रद हैं और उनकी संख्या बढ़ना समाज के अस्तित्व के लिए संकट है।

कुत्ते को यदि सुख से रखना है तो नगर हो या ग्राम एक भी स्वामिहीन कुत्ता दिखलाई न पड़ना चाहिए। जिस प्रकार गाय-भैंस केवल पालतू ही देखने में आती हैं, उसी प्रकार केवल पालतू कुत्ते ही दिखने चाहिए।

क्या स्वामिहीन कुत्तों को पाला जा सकता है? यदि पाला जा सके तो क्या पिंजरापोल बनायें? यदि दोनों में से एक भी उपाय सम्भव न हो तो उन्हें मार डालने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं दीखता।

हम आँख मूंदकर देखते हुए भी अनदेखी करें तो इसमें अहिंसा-विचार अथवा विवेक नहीं। जब कुत्तों का उपद्रव हो तब-तब उन्हें मनुष्य के हाथों मरना ही है। गृहस्थ धर्म में मैं इसे अनिवार्य समझता हूँ। कुत्ते जबतक पागल न हो जायँ तबतक इसके लिए राह देखने में उनपर कोई दया नहीं होती।

यदि कुत्तों की सभा की जाती तो वे क्या विचार करते, इसकी कल्पना हम अपने साथ की गई तुलना में देख सकते हैं। येन-केन प्रकारेण जीना हम कभी पसन्द न

करेंगे। हममें से अनेक व्यक्ति ऐसा कार्य करते हैं जिसे सद्‌गुण नहीं कहा जा सकता। चतुर मनुष्यों की सभा यह स्थिर नहीं करेगी कि हम मनुष्य एक दूसरे के साथ पागल अथवा स्वामिहीन कुत्ते के समान व्यवहार करें।

जिस प्रकार हम कुत्तों के स्वामी बने फिरते हैं उसी प्रकार यदि कोई प्राणी हमारे ऊपर भी सवारी करता हो तो उससे हम क्या आशा रखेंगे? हम क्या यह न चाहेंगे कि हमें कुत्तों की भाँति रखने के स्थान पर यदि वह मार ही डाले तो अच्छा है। भटकते हुए कुत्ते को रोटी का एक टुकड़ा या जूठन देकर हम कुत्ते की जाति से द्रोह और अपने पड़ोसी से हिंसा करते हैं।

स्वयं दुःख सहन करके भी कुत्तों को जीने देना धर्म है। किन्तु वह धर्म उस गृहस्थ के लिए नहीं है जिसे जीने की इच्छा है, जो वंशवृद्धि करता है और जिसके ऊपर संसार चलाने का भार है। गृहस्थाश्रमी तो थोड़े कुत्तों को ही जिलाने का मध्यम मार्ग पकड़ सकता है।

जिन प्राणियों का हम पालन करते हैं, वे वन्य प्राणी थे। भैंस तो केवल इसी देश में पाली जाती है। वन्य पशुओं का पालन पाप है क्योंकि उनसे मनुष्य स्वार्थ-साधन करता है। हम जो गाय-भैंस का पालन करते हैं उससे उनपर कुछ दया नहीं करते। स्वार्थ के लिए ही हम उन्हें पालते हैं अतः एक भी गाय-भैंस को आवारा नहीं घूमने देते। यही धर्म कुत्तों के लिए भी लागू है। इससे मेरा विशेष अभिप्राय यह है कि यदि हम शुद्ध जीव दया-धर्म का पालन करना चाहते हों तो ऐसा कानून बनना चाहिए कि जो कुत्ता जिसका हो वह उसे अपने अधिकार में रखे। जो कुत्ता निर्धारित अवधि के बाद लावारिस पाया जायगा उसे मार डाला जायगा।

महाजन लोग वस्तुतः कुत्तों के ऊपर तरस खाते हों तो उन्हें उनपर अधिकार कर लेना चाहिए और पालनेवालों में उन्हें वितरित कर देना चाहिए। गायों की भाँति कुत्तों का भी सञ्चय करना मुझे तो अशक्य प्रतीत होता है।

किन्तु कुत्तों के सम्बन्ध में एक शास्त्र ही है। यह शास्त्र पश्चिम के लोगों-द्वारा निर्मित है। उन्होंने कुत्ता-पालन-विद्या का अन्वेषण किया है। उनके पास से वह शास्त्र सीखकर इसका यदि कोई उपाय प्राप्त हो तो करना चाहिए। यह कार्य धीरज, विवेक और उद्यम के अभाव में नहीं हो सकता।

—न० जी०। मूल गुजराती से। हि० न० जी०, २१।१०।'२६]

- **विभिन्न जीवों की रक्षा करना अहिंसा का एक आवश्यक अंग जरूर है किन्तु उसी में इस धर्म की समाप्ति नहीं हो जाती।**
- **रक्षा का अर्थ केवल वध न करना ही नहीं है।**

- भटकते हुए कुत्ते समाज के लिए हानिकर हैं।
- वन्य पशुओं का पालन पाप है क्योंकि उनसे हम स्वार्थ-साधन करते हैं।

७. जीव-हिंसा और अहिंसा--१

(दया-धर्म की अहिंसात्मक दृष्टि)

[अहमदाबाद के मिलमालिक सेठ अम्बालाल द्वारा कराई गई कुत्तों की हत्या के सम्बन्ध में गांधी जी का समर्थन पर्याप्त आलोचना एवं निन्दा का विषय बन गया था। यह प्रसंग इतना गम्भीर हो उठा था कि गांधी जी को अपने अहिंसा के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में और भी विस्तृत व्याख्या करनी पड़ी। इस व्याख्या के आवश्यक अंश संकलित हैं।--संपा०]

सम्प्रति मैं अपने पास पड़े हुए पत्रों और प्रश्नों पर विचार करके ही सन्तोष मानूंगा।

एक भाई लिखते हैं:—

"आप कुत्तों को भोजन देने का निषेध करते हैं किन्तु मैं उनको बुलाने तो नहीं जाता। वे तो स्वयं ही आकर खड़े हो जाते हैं। उनको कैसे मार भगायें! जब बहुत से कुत्ते आ जायँगे तब देखा जयगा। कुत्ते को भोजन देने में दयाभाव की शिक्षा मिलती है और न देने से मनुष्य निष्ठुर बनता है। पाप में तो हम डूबे पड़े हैं। फिर इतना धर्म हम क्यों न कर लें?"

इस प्रकार दयामय दिखने वाले विचारों के कारण ही हम लोग दयाधर्म के नाम पर अज्ञान में हिंसा को प्रोत्साहन देते रहते हैं। किन्तु जिस प्रकार लौकिक राजा के कानून में अज्ञान के कारण अपराधी दण्ड से बचता नहीं, कुछ वैसी ही दशा लोकातीत राजा के नियमों की भी है।

हम जरा उक्त शंका करने वाले के विचार का निरीक्षण करें। घर पर भिक्षुक के आने पर हम उसे रोटी देते हैं और समझते हैं कि हमने पुण्य किया। इस प्रकार बहुत अंश में हम भिखारियों के सम्प्रदाय को बढ़ाते हैं, आलस्य को उत्तेजना देते हैं अतएव अधर्म की वृद्धि करते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि वास्तविक भिक्षुकों को मरने दिया जाय। जो अपंग अथवा अपाहिज हैं उनका पोषण करना समाज का धर्म है। किन्तु यह कार्य प्रत्येक व्यक्ति अपने दायित्व पर न करे; यह कार्य समाज के अधिकारी महाजन लोग अथवा स्वराज्य की स्थिति में राजा ही करते हैं। दयालु सज्जन ऐसी संस्थाओं को दान देते हैं। महाजन पवित्र तथा ज्ञानी होगा तो प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक

व्यापारी भिक्षुक के विषय में पूछताछ करके यदि वह पात्र होगा तो उसे आश्रय देगा। इसके अभाव में भिक्षुक के बहाने चोर और लम्पट पुरुष पैसा कमाते हैं और देश में भुखमरी घटने के बजाय बढ़ती है।

जिस प्रकार भिक्षुक मनुष्य को भोजन देना पाप है उसी प्रकार भटकते कुत्ते को टुकड़ा डालना भी पाप है। इसमें कुत्ते के प्रति झूठी दया है। क्षुधापीड़ित कुत्ते को रोटी का टुकड़ा देना उसका अपमान है। गृह-विहीन कुत्ता समाज की सभ्यता अथवा दया का नहीं, अपितु उसके अज्ञान तथा आलस्य का चिह्न है।

पशु लोग अपने भाई-बन्द हैं। इनमें मैं सिंह-बाघ आदि को भी गिनता हूं। हम लोगों को सिंह-सर्प आदि के साथ रहना नहीं आता; ऐसा हमारी शिक्षा की त्रुटि के कारण है। जब मनुष्य उनको और भली प्रकार पहिचानेगा, तब प्राणघातक जीवों तक का पालन करना सीखेगा। आज तो विदेशी अथवा विधर्मी मनुष्य तक को अपनाना मनुष्य ने नहीं सीखा है।

कुत्ता तो स्वामिभक्त साथी है। कुत्ते और घोड़े की स्वामिभक्ति के दृष्टान्त यथावाञ्छित मिल सकते हैं। अतएव हम जिस तरह अपने साथी को इधर-उधर भटकने नहीं देते अपितु उसे आदर-सहित रखते हैं वही बात कुत्ते के सम्बन्ध में होनी चाहिए। भटकने वाले कुत्तों के सम्प्रदाय को बढ़ाकर हम उनके प्रति अपना ऋण अदा नहीं करते।

किन्तु यदि दर-दर मारे फिरते कुत्तों के अस्तित्व को हम पाप समझते हैं और इसलिए उनको भोजन नहीं देते तो हम उनकी सेवा करते हैं और उन्हें सुखी बनाते हैं।

तब वे व्यक्ति, जो कुत्तों के प्रति भी दयाधर्म पालन करना चाहते हैं, क्या करें? उन्हें अपनी आय में से कुत्तों आदि का भाग निकाल कर उसका उपयोग करने के लिए पशुओं की संस्थाओं को देना चाहिए। यदि ऐसी संस्था शक्य न हो और मेरा विचार तो यह है कि ऐसी संस्था शक्य होते हुए भी बहुत कठिन है, तो उन्हें एक या अधिक कुत्तों के पालन का यत्न करना चाहिए। यदि यह भी न कर सकें तो उन्हें कुत्तों का प्रश्न छोड़ कर जीवदया-भाव का व्यवहार अन्य प्राणियों के विषय में करना चाहिए।

'किन्तु आपने तो उन्हें मारने की बात कही है'—इस प्रकार के प्रश्न अन्य पत्रलेखक आवेश अथवा प्रीतिवश पूछते हैं। मैंने कुत्तों को मारने का कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं, आपद्धर्म ही बतलाया है। मैंने शर्तवाला धर्म सुझाया है।

यदि राजा कुत्तों की रक्षा न करे, महाजन भी न करे, यदि वे स्वयं पालें भी नहीं और कुत्तों से दुःख पाने तथा उनकी भेंट चढ़ने को तैयार न हों तो उन्हें मार

कर उनको तथा स्वयं को पीड़ा और भय से मुक्त कर लेना चाहिए। औषधि की यह पुड़िया कड़वी है किन्तु मेरी अन्तरात्मा कहती है कि उसमें शुद्ध प्रेम और दया है।

कुत्तों की वर्तमान स्थिति भारत के दुर्वल पशुओं और मनुष्यों जैसी है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह शोचनीय परिणाम हमारी अहिंसा-धर्म की अनभिज्ञता और अहिंसा के अभाव के कारण हुआ है। धर्म का फल पामरता, दारिद्र्य, दुष्काल आदि कदापि नहीं। यदि यह देश पुण्यभूमि हो तो आज हम जो दारिद्र्य-पीड़ित लोगों को अपने चारों ओर पाते हैं वह नहीं हो सकता। उसमें से कई उतावले और अधीर लोगों ने इस आशय का सार निकाला है कि अहिंसा-धर्म ही असत्य है। मैं जानता हूं कि अहिंसा-धर्म असत्य नहीं, अपितु उसके पुजारी झूठे हैं।

अहिंसा क्षत्रिय का धर्म है। महावीर क्षत्रिय थे। बुद्ध क्षत्रिय थे। राम-कृष्ण आदि क्षत्रिय थे। वे सब न्यूनाधिक अहिंसा के उपासक थे। हम इनके नाम पर भी अहिंसा का प्रवर्तन चाहते हैं। किन्तु इस समय तो अहिंसा का ठीका भी वैश्यवर्ग ने ले रखा है। इसलिए यह धर्म निस्तेज हो गया है। अहिंसा की दूसरी संज्ञा क्षमा की परिसीमा है। किन्तु क्षमा तो वीर पुरुष का भूषण है। अभय के बिना अहिंसा नहीं हो सकती। हम लोग तो जीव-दया तक नहीं जानते।

हम गाय को बचा नहीं सकते, कुत्ते को लात मारते और उस पर लाठी बरसाते हैं। उनकी पसलियां तक दिखाई देती हैं। इसकी हमें लज्जा नहीं है। किन्तु कुत्ता मरे तो हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

पांच-सहस्र कुत्ते क्षुधा-व्यथित घूमते रहें, जूठन और विष्ठा खायँ और मरने के बजाय जीवित रहें, यह स्थिति अच्छी है अथवा यह कि उनमें से पचास मरें और शेष सुरक्षित रहें। डण्डा मारकर कुत्तों को बाहर कर देना तो पातक है ही। किन्तु यह दुःख न देख सकने वाला एक अथवा अधिक कुत्तों को मारकर पुण्य ही करता है। यह बात सम्भव हो सकती है।

जीव लेना सदा हिंसा नहीं है अथवा यों कह लीजिए कि अनेक अवसरों पर जीव न लेने में ही अधिक हिंसा है।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, २८।१०।'२६]

- **जो अपंग अथवा अपाहिज हैं उनका पोषण करना समाज का धर्म है।**
- **धर्म का फल पामरता, दारिद्र्य, दुष्काल कदापि नहीं।**
- **मैं जानता हूं कि अहिंसा-धर्म असत्य नहीं अपितु उसके पुजारी झूठे हैं।**
- **अहिंसा क्षत्रिय का धर्म है।**
- **अहिंसा की दूसरी संज्ञा क्षमा की परिसीमा है।**

- अभय के बिना अहिंसा नहीं हो सकती।
- जीव लेना सदा हिंसा नहीं है।
- अनेक अवसरों पर जीव न लेने में ही हिंसा है।

८. जीव-हिंसा और अहिंसा--२

[दया-धर्म की अहिंसात्मक दृष्टि]

आइए विचारपूर्वक इसका पता लगायें कि जीवहत्या धर्म हो सकता है या नहीं।

यदि किसी प्रकार इस देह को खड़ा भी रखें तब भी हमें जीव-हत्या तो करनी ही पड़ेगी जैसे भोजन के लिए अन्न, फल, वनस्पति आदि एवं कीटाणुनाशक औषधियों-द्वारा मच्छरों आदि की समाप्ति। और हम यह भी मानते हैं कि ऐसा करने में अधर्म भी नहीं है।

यह तो अपने व्यक्तित्व के स्वार्थ-हेतु हुआ। परमार्थ के लिए हम हिंसक प्राणियों का नाश करते हैं अथवा दूसरों-द्वारा उनका नाश कराते हैं। सिंह आदि जब गांवों को त्रस्त करते हैं तब समाज उनका नाश करना अपना धर्म समझता है।

ऐसा भी होता है कि मानव-वध तक को धर्म समझा जाय। उन्मत्तावस्था में अथवा मद्यपान कर एक व्यक्ति नंगी तलवार लिये दृष्टि में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को काटता चला जाता है। उसे जीवित पकड़ लेने की शक्ति किसी में नहीं। उसे जो व्यक्ति मार सकेगा वह परोपकारी गिना जायगा। अहिंसा की दृष्टि में उसे मारने का धर्म सब किसी को प्राप्त है। हाँ, एक प्रसंग हम इसमें से निकाल सकते हैं। जो मुनि उसके मद को उतार सकें वे उसे न मारें किन्तु हम तो इस सीमा तक पूर्णता को प्राप्त मुनियों के धर्म का प्रश्न नहीं उठाते। हमें समाज के धर्म और समाज में रहनेवाले रागद्वेषादियुक्त व्यक्तियों के धर्म का विचार करना है।

उपर्युक्त दृष्टान्त के विषय में मतभेद सम्भव है। यदि यह अपूर्ण प्रतीत हो तो हम अन्य पूर्ण दृष्टान्त की कल्पना कर सकते हैं। किन्तु किसी भी अवस्था में जीवहत्या न करने का एकांगी धर्म सिद्ध नहीं हो सकता।

सत्य बात तो यह है कि अहिंसा का अर्थ 'केवल जीव न मारो' नहीं है। क्रोध अथवा स्वार्थ के वश होकर किसी व्यक्ति का अनिष्ट करने के संकल्प से उसे दुःख देने अथवा उसकी देह का नाश करने का नाम हिंसा है। ऐसा न करना ही अहिंसा है।

वैद्य कड़वी औषधि देता है। वह दुःख देता है किन्तु हिंसा नहीं करता।

कटु औषधि देनी ही चाहिए और यदि वह न दे तभी अहिंसाधर्म-पालन से च्युत होता है। शस्त्रवैद्य (जर्राह) यदि दुःख देने के भय से सड़ा हाथ नहीं काटता तो वह हिंसा करता है। अपनी रक्षा में रहनेवाले बालक के ऊपर, जो हमसे रक्षा की आशा रखता है, चढ़ आये हत्यारे को, यदि अन्य उपाय से उसका उपद्रव न रोका जा सके, जो नहीं मारता वह पुण्य नहीं, पाप करता है। वह अहिंसा-धर्म का पालन नहीं करता किन्तु मोहवश उसके नाम पर हिंसा करता है। सामाजिक अहिंसा-धर्म ऐसा होता है।

अब हम अहिंसा के मूल का अन्वेषण करें। इसके मूल में निःस्वार्थता है। निःस्वार्थता का अर्थ है देहाभिमान का सर्वथा अभाव। देहाभिमान अर्थात् देहाध्यास को लेकर मनुष्य को अनेक छुद्र देहों का नाश करते किसी ऋषिमुनि ने देखा। मनुष्य के गूढ़ अज्ञान को देखकर ऋषि का हृदय कांप उठा। उन्होंने देखा कि देह के आवरणवश मानव अपने में ही रहनेवाले अमर आत्मा को भूल जाता है और वह आत्मा के मंगल-साधन के स्थान पर अपनी क्षणिक देह का कार्य सिद्ध करता है। इस प्रकार ऋषि ने सर्वस्व के सम्पूर्ण त्याग की आवश्यकता का अनुभव किया। उन्होंने देखा कि मनुष्य यदि आत्मा अर्थात् सत्य का दर्शन करना चाहता है तो उसके लिए एकमात्र समुचित मार्ग है देह का त्याग कर देना। इसका अर्थ हुआ अन्य जीवों को अभय-दान देना। यह अहिंसा का मार्ग है।

ऐसा विचार करने से दूसरे जीवों का नाश करने में पाप नहीं प्रतीत होता। किन्तु पाप है अपनी देह पर मुग्ध होने में, क्षणिक देह के लिए अन्य जीवों का नाश करने में। अतएव आहारादि के हेतु जो जीवनाश करता है उसमें देहाध्यास है, अतएव हिंसा है। परन्तु उसे अनिवार्य समझकर मनुष्य उसका निर्वाह करता है। किन्तु दुःखपीड़ित प्राणी का नाश, उसकी शान्ति-हेतु किया जाय तो वह हिंसा-दोष में नहीं गिना जायगा।

इस विचार श्रेणी का बहुत कुछ दुरुपयोग होना सम्भव है। स्वयं को धोखा देने के लिए जो भी बहाना प्राप्त हो उसका तुरन्त उपयोग कर लेने का हमारा स्वभाव ही इसका कारण है। किन्तु इस दुरुपयोग के भय से, यथार्थ तथ्य को छिपाने से अहिंसा-मार्ग को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

इस चित्र से अहिंसा का जो सार निकलता है, वह यह है :—

१. इस जगत् में कोई भी देहधारी कुछ अंश में हिंसा किये बिना अपनी देह का अस्तित्व नहीं रख सकता।

२. सभी लोग (क) अपनी देह-रक्षा-हेतु, (ख) रक्षणीय की रक्षाहेतु (ग) कभी-कभी उन्हीं जीवों की शान्तिहेतु अनेक प्राणियों का वध करते हैं।

३. अहिंसा की व्याख्यानुसार क और ख में यत्किञ्चित् हिंसा तो है ही। ग में हिंसादोष तनिक भी नहीं है अतएव ऐसा वध सर्वांशतः अहिंसक है। इसी प्रकार क और ख का हिंसक होना अनिवार्य है।

४. अतएव ऊर्ध्वगामी अहिंसावादी मानव क और ख में निहित हिंसा उसी कथमपि मुक्ति न प्राप्त होने पर ही और पर्याप्त सोचविचार तथा अन्य उपाय के अभाव में ही करेगा।

मेरा बतलाया हुआ कुत्तों का वध चतुर्थ प्रकार की हिंसा है। अतएव वह जब अनिवार्य हो, उसके बिना निष्कृति ही न हो, तब दृढ़ विचार के पश्चात् ही किया जा सकता है। किन्तु मुझे इस विषय में शंका नहीं है कि वह जब अनिवार्य हो जाय तब उसे न करने में ही दोष है। अतएव कुत्तों आदि का वध व्यापक धर्म तो नहीं हो सकता किन्तु विशेष परिस्थिति में विशिष्ट समय विशिष्ट व्यक्ति के लिए यह आवश्यक हो सकता है।

इतना विचार करने के पश्चात् जो पत्र आये हैं उनका क्रमवार उत्तर देने का प्रयत्न करता हूं।

एक भाई लिखते हैं कि 'सत्तावन वर्ष की अवस्था में आपको कुत्ते मरवाने का धर्म कहां से सूझा। यदि पहिले ही सूझा था तो अब तक मुंह में दही क्यों जमाये हुए थे?'

मनुष्य को जब सत्य की अनुभूति होती है वह तभी उसे प्रकट करता है। वृद्धावस्था में सूझे तो क्या? प्रसंग उपस्थित होने पर उसे प्रकट तो करना ही पड़ता है।

मर्यादित रूप से प्राणियों के वध का धर्म तो मैं अनेक वर्षों से स्वीकार किये हूं। प्रसंग पड़ने पर मैंने उसका व्यवहार भी किया है। गांवों में भटकता हुआ कुत्ता यदि नहीं भागे तो उसे मारने का धर्म स्वीकृत ही है। कारण यह है कि गांवों में लोगों ने अपने कुत्ते पाल रखे हैं। वे कुत्ते अन्य कुत्तों को भगाते हैं और वे यदि न भागें तो उन्हें मार डालते हैं। ऐसे रखवाली के कुत्ते तो ग्रामीण जानबूझ कर पालते हैं। ये गाँव के कुत्ते अन्य कुत्तों को मारते ही नहीं हैं किन्तु वे चोरों आदि पर भी आक्रमण करते हैं। कुत्तों का उपद्रव तो केवल नगरों में होता है। स्वामिहीन कुत्ते न रहने देना ही इसका एकमात्र उपाय है। इसमें उनका कम से कम नाश होता है और नगर वालों की रक्षा होती है।

एक अन्य पत्रलेखक लिखते हैं कि 'अहिंसा जैसी वस्तु की चर्चा तर्क से करके आप कौन-सा धर्म सिखलाना चाहते हैं?'

इस उलाहने में भी कुछ रहस्य है। मुझे तो किसी को कुछ शिक्षा नहीं देनी

थी। किन्तु अहिंसा-धर्म का पालक होने के कारण प्रसंग आने पर मुझे अपने विचार प्रकट करने ही पड़े। मैंने अनेक बार ऐसा अनुभव किया है कि चर्चा में न्याय-शास्त्र और तर्क का स्थान है। किन्तु यह स्थान अत्यन्त न्यून है।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ४।११।'२६]

- **अहिंसा का अर्थ केवल 'जीव न मारो' नहीं है।**
- **आहारादि के हेतु जो जीवनाश करता है उसमें देहाध्यास है अतएव हिंसा है।**

९. जीव-हिंसा और अहिंसा--३

एक भाई लम्बा-सा पत्र लिखते हैं। इसमें उन्होंने अपनी कठिनाइयां प्रकट की हैं। इसके पश्चात् उन्होंने श्रावक होकर जो जैनधर्म सिखलाया है, वह लिखा है। इस पत्र से एक प्रश्न नीचे दिया जाता है।

"आपने लिखा है कि भटकते-फिरते कुत्ते को पाला जा सकता है। यदि न पाला जा सके तो उनका पिंजरापोल बनवाना चाहिए। यदि इन दोनों में से एक भी न हो सके तो उपर्युक्त दोनों उपायों के सम्भव न होने पर भटकते हुए कुत्तों-मात्र को मार डालना चाहिए। आपके उस लेख का यही आशय है न?

"उत्तर में यदि आप हां कहते हैं तो अनेक हानिकारक पशुओं-पक्षियों एवं जन्तुओं को, जहां तक वे मानव जीवन में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालते, कोई नहीं मारता। जो कुत्ते हमारी कोई हानि नहीं करते उन्हें भी भावी हानि की आशंका से मार डालने का क्या अर्थ है? इस प्रकार दयाधर्म कैसे प्रदर्शित किया जा सकता है? प्राणिमात्र का कल्याण चाहने वाले से भला कहीं ऐसा सम्भव है?"

यह प्रश्न इस कारण उठता है कि मेरा आशय समझा नहीं गया। पागल कुत्तों तक को केवल मारने के लिए मार डालने की बात तो मैंने लिखी नहीं है। फिर भटकते कुत्ते की तो बात ही क्या? मैंने यह नहीं लिखा कि भटकते हुए कुत्ते को देखते ही मार डालना चाहिए। मैंने तो इस प्रकार का नियम बनाने की बात लिखी थी। यदि ऐसा नियम बना लिया जाय तो दयालु लोग सहज ही जाग्रत हो जायंगे और गृहविहीन कुत्तों की रक्षा-हेतु कोई न कोई उपाय ढूंढ़ निकालेंगे। उन कुत्तों में से अधिकांश तो पाल लिये जायंगे। इस प्रकार का उपाय एक ही समय में करना पड़ेगा। भटकते कुत्ते कहीं आकाश से नहीं गिरते। वे समाज के आलस्य, शैथिल्य तथा अज्ञान के चिह्न हैं। यदि इधर-उधर भटकते कुत्तों को कोई रोटी न दे तो वे समाप्त हो जायंगे। मेरे-द्वारा सुझाये उपाय में भी यद्यपि समाज

का स्वार्थ अवश्य विद्यमान है, कुत्तों के कल्याण का विचार भी है। कोई भी प्राणी निराश्रित न रहने पाये, इसकी इच्छा रखना तथा प्रयत्न करना दयाशील का धर्म है। इसके पालन-हेतु किसी अवसर पर कुत्तों का वध भी आवश्यक हो जाता है।

"जब-जब कुत्तों का उपद्रव हो तब-तब उसी मनुष्य के हाथों कुत्तों का मारा जाना तो ठीक है किन्तु वे जब तक पागल नहीं हो जाते तब तक प्रतीक्षा करने में दया नहीं है। इसका अर्थ तो यह हो सकता है कि कुत्ते मात्र को भविष्य में पागल तो होना ही है, इसलिए उनकी स्वस्थ दशा में भी उन्हें मार कर सचेत होने का काम करें।

"इस विषय में सत्याग्रह आश्रम-वासी मेरे एक मित्र की मुझसे वार्ता हुई थी। उन्होंने आपसे उस सम्बन्ध में प्रश्न किया था। और सुना जाता है कि आपने उनसे यह कहा था कि कुत्तों को देखते ही खोज-खोज कर उन्हें मारने की बात तो मैं कहता नहीं और वे संकट में डाल दें तब इस प्रकार संकटापन्न होने पर अन्ततः उन्हें मार डालना अनिवार्य है।

"आपके लेखों से यह आशय नहीं प्रकट होता। तोड़-मरोड़कर भी ऐसा आशय नहीं निकलता। आप और अधिक स्पष्टीकरण कर दीजिए न।"

मेरे पिछले लेखों तथा उपर्युक्त उत्तर के पश्चात् इस प्रश्न का अधिक स्पष्टीकरण शेष नहीं रह जाता। हां, इतना अवश्य स्पष्ट कर देना उचित है कि कुत्ते के हीन दशा में पहुँचने की प्रतीक्षा न करनी चाहिए। भूखों मरते कुत्ते मात्र हानिकारक हैं। यह उपद्रव नगरों में ही होता है और इसे बन्द करना चाहिए। सर्प-द्वारा काटे जाने की राह हम लोग नहीं देखते। कुत्ता काटे तभी वह पागल होता है, यह इसमें निहित है।

एक मित्र ने मेरे पास श्वान-दंश से पीड़ित लोगों के अंक भेजे हैं। ये अंक प्रत्येक समाज-हितेच्छु, विशेषकर दया-धर्म-शीलों के लिए विशेष चौंकाने वाले हैं। मैं जानता हूं जितने लोगों को कुत्ते काटते हैं वे सब पागल नहीं हो जाते और बहुत से लोग पागल होने के भय से ही अस्पताल दौड़े जाते हैं।

इस भय से उन्हें मुक्त करने का केवल एक उपाय है। वह यह कि भटकते हुए कुत्तों का अस्तित्व न रहे। चालीस वर्ष पूर्व जब इँगलैंड में भटकते कुत्तों के संघ के सम्बन्ध में सरगर्मी प्रारम्भ हुई थी, तब मैं वहीं था। वहां भटकते हुए कुत्ते कहां से आयें? किन्तु पाले हुए कुत्तों के हेतु वहां कानून बना हुआ है कि जिस

१. उपद्रवग्रस्त मनुष्य.

कुत्ते के गले में उसके स्वामी के नाम-पते-सहित पट्टा और मुँह में जालीदार मुमती (थूथन की पट्टी) न बँधी होगी वह मार डाला जायगा।

यह कानून मात्र दयाभाव से बनाया गया था। इसके परिणामस्वरूप दूसरे दिन से ही लन्दन में कुत्ते पट्टे आदि के साथ दिखाई देने लगे।

यदि किसी का यह विचार हो कि पश्चिम के लोग जीवदया नहीं जानते तो वे अज्ञान-कूप में पड़े हुए हैं। जीवदया का आदर्श वहां निम्न है। किन्तु जो आदर्श है उसका व्यवहार वे लोग हमारी अपेक्षा अधिक करते हैं। हम लोग तो आदर्श की उच्चता से ही सन्तोष प्राप्त कर लेते हैं और उसके व्यवहार के समय शिथिल अथवा आलसी हो जाते हैं। हम लोग तामसी वृत्ति-लीन दिखते हैं। हमारे अनाथ मनुष्यों, ढोरों तथा अन्य प्राणियों को देखिए। यह धर्म नहीं अधर्म का चिह्न है। तीसरा प्रश्न है:—

"आप व्यक्तिगत एवं सामुदायिक धर्म की व्याख्या पृथक् करते हैं तब तो मैं समझता हूं। किन्तु व्यक्तिगत धर्म की ही भाँति सामुदायिक धर्म की व्याख्या करने में क्या हानि है? आदर्श तो सबके लिए सर्वश्रेष्ठ ही होना चाहिए न? सम्भव न हो अथवा सम्भव होना अशक्य हो, तो बात और है। और यह तो व्यक्तिगत धर्म के लिए भी उसी प्रकार लागू है।

"आपने ही कहा है कि आपकी भावना पशु को भी अपने प्राण को संकट में डालकर बचाने की है। किन्तु जब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होगी उस समय आप क्या करेंगे, कह नहीं सकते। यही दृष्टान्त सामुदायिक धर्म के अनुरूप दिया जाय तो फिर दोनों धर्मों की व्याख्या पृथक्-पृथक् करने की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है?"

व्यक्तिगत एवं सामुदायिक धर्म की व्याख्या को मैंने पृथक् माना ही नहीं है। धर्म के सिद्धान्त की व्याख्या एक ही होती है। किन्तु मैंने उस पर चलने की मर्यादा व्यक्ति और उसी प्रकार समाज के लिए अलग ही मानी है। वास्तविक रीति में तो व्यवहार की मर्यादा प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न होती है। जब अहिंसा धर्म-सम्बन्धी उसकी व्याख्या एक ही होती है, सामुदायिक व्यवहार की मर्यादा सबका औसत मिलाकर होती है। जहां समाज का एक भाग दुग्धाहारी हो और दूसरा फलाहारी वहां सामदायिक मर्यादा दुग्ध-फलाहारी की मानी जानी चाहिए ताकि दोनों अपनी मर्यादा में रहकर चलें।

इतने प्रश्नों के अनन्तर लेखक दो जैन सिद्धान्तों का निरूपण इस प्रकार करते हैं:—

"जैन सिद्धान्त की रचना स्याद्वाद है अर्थात् दूसरे शब्दों में उसे अनेकान्त भी कहते हैं। इसके समर्थन में एक जैन गीतार्थ निम्नलिखित है—

वचन सापेक्ष व्यवहार साचो कह्यो,
वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठो।

"ये वचन स्वयं बता रहे हैं कि संयोग के अधीन कोई करनी अमुक स्थान पर हिंसा होती है और अन्य अवसर पर अहिंसा। मनुष्य को विवेकपूर्वक देख-भालकर निर्णय करना चाहिए। जैन शासन की दो शाखाएं साधु और श्रावक हैं। इनके धर्म की व्याख्या निम्नलिखित मानी गई है।

"साधु सर्वथा अहिंसक। अपनी रक्षा-हेतु भोजन न करने और भोजन-हेतु न पकाने वाला। सड़क पर पग न रखने वाला और रखे भी तो परोपकार के हेतु से यथासम्भव जितने दोषों से बच सके उनसे मुक्त होकर। इन दोषों की संख्या बयालीस मानी गई है। साधु को जैन दर्शन में 'निर्ग्रन्थ' कहा है। उसे त्यागी और सर्वथा-त्यागी बतलाया है।

"मेरा विचार है कि आज इस व्याख्या और कल्पना के अनुसार एक भी साधु नहीं है। यदि हो तो मैं अपनी अल्पशक्ति के कारण उसे जानता नहीं।

"श्रावक निरपराधी है। वह ऐसे किसी भी जीव के प्राण नहीं लेता जिसकी उसे आवश्यकता न हो और जिसमें उसका स्वार्थ न हो।

"श्रावक संसारी है। शास्त्रकारों का मत है कि इस हेतु वह अधिक दया-धर्म का पालन कर ही नहीं सकता। उसकी दया की मात्रा सोलह आने में (साधु की सोलह तो उसकी) आना भर निर्धारित की गई है। यदि श्रावक इससे अधिक पा ले तो उसे साधुवृत्ति में उन्नति करता हुआ मानना चाहिए किन्तु श्रावक दशा में इससे अधिक पालन अशक्य ही है।"

इस निरूपण से मैं अपरिचित न था। मैंने तो यह लिखा ही है कि यहां उल्लिखित जैन सिद्धान्तों का मैं विरोधी नहीं हूं। यदि उपर्युक्त निरूपण जैनों को मान्य हो तो मेरा मन्तव्य उसी में से निकाला जा सकता है। किन्तु यह सिद्धान्त जैनों को मान्य हो अथवा न हो, मेरी अल्पमति कहती है कि मेरे बतलाये हुए आशय का प्रतिपालन स्वतन्त्र रीति से हो सकता हैं और हुआ भी है।

——न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ११।११।'२६]

- धर्म के सिद्धान्त की व्याख्या एक ही होती है।
- व्यक्तिगत एवं सामुदायिक धर्म की व्याख्या को मैंने पृथक् माना ही नहीं है।

१०. जीव-हिंसा और अहिंसा--४

एक मित्र ने कई प्रश्न उठाये हैं और उन्होंने विस्तृत लेख लिखकर अनेक शंकाएं प्रकट की हैं। उन्होंने शुभ भाव से शंकएं उपस्थित की हैं और 'नवजीवन' की यह लेखमाला जिन अंकों में प्रकाशित हुई है उनको भी साथ भेजा है। मेरा विचार है कि अब तक उन के अनेक प्रश्नों का स्पष्टीकरण हो ही गया होगा। फिर भी आवश्यकतानुसार उनके प्रश्नों का उत्तर यहां देता हूँ।

मुझे अनुभव होता है कि इस विषय में मैं तटस्थता से विचार कर रहा हूं। हिंसा और अपने मत का पक्षपात मुझे हो ही नहीं सकता। मुझे सत्य का ही पक्षपात है और मैं अहिंसा-मार्ग से उसका शोध करता हूं। मैंने अनुभव किया है कि अन्य मार्ग से सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता।

सत्य है अथवा नहीं, अहिंसा परमधर्म है या नहीं,—मेरे निकट ये विषय विवादग्रस्त नहीं हैं। इस विषय पर अपने मन में किसी प्रकार की शंका उठने को मैं सम्भव नहीं मानता। किन्तु इनका पालन किस प्रकार हो, यह प्रश्न मेरे समक्ष सदा उपस्थित रहता है। प्रतिक्षण नवीनताएं दृष्टिगत होती हैं। उसके पालन में भूलें होना भी मैं सम्भव मानता हूं। उन भूलों से बचने के लिए मैं सदा जाग्रत रहता हूं। फिर भी धक्के खा जाना सम्भव है। अतएव यदि मुझे मित्रों का विरुद्ध अभिप्राय मान्य न हो तो वे मुझे एकपक्षीय न समझें अपितु अज्ञ जानकर क्षमा करें तथा धैर्य रखें।

१. पागलपन का रोग निमित्त मात्र है।

२. उस रोग का निवारण सरकार करे अथवा म्युनिसिपैलिटी किन्तु यह प्रश्न एक ही दृष्टि से सुलझ सकेगा। यदि महाजनों में वास्तविक अहिंसा हो तो वे भी इसका इलाज ढूंढें। कुत्तों को न मारने का धर्म सरकार नहीं स्वीकार करेगी। म्युनिसिपैलिटी में भी अनेक सम्प्रदाय के सदस्य होते हैं अतएव वह भी अहिंसक उपाय की खोज न करेगी।

३. अहिंसक उपाय खोज निकालने का भार महाजन के ऊपर होगा। उसको निर्दोष-निरुपाय मानना भूल है।

४. इस चर्चा के सम्बन्ध में मैं रोगी कुत्ते और हत्यारे मनुष्य में कोई भेद नहीं देखता। हत्या की भावना भी एक रोग ही है। हत्यारा पहिले अपने को भूल जाता है तब हत्या करता है। दोनों ही दया के पात्र हैं। किन्तु दोनों ही यदि अन्य को कष्ट दें और उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिए देहमुक्त भी करना पड़े तो ऐसा करके उन्हें रोकना धर्म हो जाता है। यह धर्म अहिंसक के लिए भी ठीक है।

५. मेरे कथन का यह आशय नहीं है कि घर-घर कुत्ता पाला ही जाय। कुत्ता रहे तो पालतू रहे। पालतू कुत्ते को रोग न होता हो, ऐसी कोई बात नहीं है। किन्तु उसके लिए उसका पालने वाला उत्तरदायी होगा।

६. नगर के कुत्ते कोई दीन या निर्दोष तो नहीं हैं। कभी थे भी नहीं। पालतू कुत्ते सामान्यत: ऐसे होते हैं। उनको ऐसा बनाने के लिए ही तो चर्चा चल रही है।

७. मैंने यह नहीं कहा कि जहां भी किसी भटकते कुत्ते को देखा जाय उसे मार डाला जाय। मैंने तो ऐसा कानून बनाने का सुझाव दिया है। इस कानून में कुत्ते की रक्षा तो निहित है ही। इसके बन जाने पर दयालु मनुष्य या तो कुत्तों को पालेंगे या अन्य कोई उपाय ढूंढ़ निकालेंगे। और इस कानून से कुत्तों का भटकना भी समाप्त हो जायगा। भिक्षुक को भिक्षा न देने में उसे मार डालने का लेश भी नहीं है। यह तो उसे स्वाश्रयी और मनुष्य बनाना है।

कुत्तों को मारने का धर्म तो मेरे पिछले लेखों में उल्लिखित मर्यादा के अन्तर्गत ही उत्पन्न हो सकता है। यह कहने से मेरे कथन का तनिक भी खण्डन नहीं होता कि कुत्ते मारने में पाप लगता है। मैंने इसके विरुद्ध अभिप्राय दिया ही नहीं है।

८. यह चर्चा निरर्थक है कि अम्बालाल[1] सेठ ने क्या किया और जो किया वह उचित था या नहीं अथवा मैंने कहा वह उचित है या नहीं। हमारे पास उस कहानी की हकीकत है भी नहीं। उससे उत्पन्न हुई अहिंसा की गम्भीर पहेली ही चर्चा करने योग्य है। उसे सुलझाने में अम्बालाल भाई का प्रश्न उठाने को मैं बाधा समझता हूं।

९. प्रश्न तो इतना ही है कि अमुक संयोगों में यदि और कोई मार्ग न हो तब अहिंसा की दृष्टि से कुत्तों को मारना धर्म हो सकता है या नहीं। मैं मानता हूं कि हो सकता है। और मैं अब भी मानता हूं कि इसमें दो मत नहीं हो सकते। किन्तु सन्तोष का विषय है कि ऐसे प्रसंग सदा उपस्थित नहीं होते।

१०. किन्तु मैं एक मत-भिन्नता देख रहा हूं। जिनकी शंकाओं के लिए मैं यह लेख लिख रहा हूं उनके और दूसरों के लेखों में प्रत्येक प्रसंग में देह के आत्यन्तिक नाश के प्रति संकोच भरा हुआ है। जैसे कि पागल कुत्ते को बन्द करके उसे भूखों मारने का सुझाव है। मेरा दयाधर्म मेरे लिए यह बात अशक्य बना डालता है।

मैं कुत्ते अथवा मनुष्य को तड़पता नहीं देख सकता। दुःख से तड़पते को मैं

१. अहमदाबाद के एक प्रसिद्ध उद्योगपति, जिन्होंने कुत्तों को गोली से मरवाया था।

नहीं मारता क्योंकि मेरे पास इसकी आशाजनक चिकित्सा है। तड़पते हुए कुत्ते को मैं मारूंगा क्योंकि उसके लिए मेरे पास आशाजनक चिकित्सा नहीं है।

मेरा लड़का पागल हो जाय, इस रोग के लिए मेरे पास आशाजनक चिकित्सा न हो और दुःख से वह तड़पता हो तो उसकी देह का अन्त करना मैं धर्म समझता हूं। जिस धर्म में दैव पर आधार रखा जाता है, उसकी मर्यादा है। उपाय कर चुकने के पश्चात हम दैवाधीन होते हैं; तड़पते बालक की अनेक चिकित्साओं में अन्तिम चिकित्सा उसकी देह का अन्त करना भी है।

किन्तु इस चर्चा को मैं अब बढ़ाना नहीं चाहता। अपनी दृष्टि में जिसे मैं स्वयं की अथवा अहिंसाधर्मी की पामरता मानता हूं वह इस चर्चा में बाधारूप है। अतएव मैं मतभेद को सहन करने की विनती करता हूं।

इतना तो एक विवेकी मित्र के प्रश्न के विषय में हुआ। अब एक क्रोधी मित्र के प्रश्न देखिए––

"हमें तो लगता है कि आप पाश्चात्य देश की वायु में बहुत दिन रहे हैं, उसके साहित्य का आपने अध्ययन किया है और उसके संस्कार आप के हृदय पर पड़े हैं। इसलिए आप मानव-दया की चिन्ता करके अन्य जीवों की हत्या अधिक इष्ट मानते हैं। अत्यन्त शान्ति से विचार करके अपनी भूल स्वीकार कीजिए और संसार के समक्ष क्षमाप्रार्थना कीजिए। संसार में महापुरुष गिने जाने वाले व्यक्ति का यही कर्तव्य है। उचित तो यह है कि आप हजार चलनी से चालकर तब अपनी जो दृष्टि हो उसे प्रकट करें किन्तु आपने तो इस चर्चा पर बल देकर अपना नाम नीचा किया है।"

इसी प्रकार के पत्रों से मैंने यह सामान्य-सा वाक्य उद्धृत किया है। मैंने अविचार या उतावली नहीं की है। जो मनुष्य अपना मत निश्चित करने में अपनी श्रेष्ठता का विचार करता है वह सत्य का निर्णय नहीं करता। उसके समक्ष तो उसकी श्रेष्ठता ही उपस्थित रहती है और सत्य के दर्शन में वह विघ्न-रूप होती है।

किन्तु मैं यह नहीं मानता कि कुत्तों के सम्बन्ध में मेरा मत पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव-द्वारा बना है। यदि हम कई सम्प्रदायों को छोड़ दें तो पश्चिम यह सिखलाता है कि मानव-कल्याण हेतु मानवेतर प्राणियों की हत्या में दोष नहीं है। अतएव पश्चिम में जीवित प्राणियों की चीर-फाड़ को भी प्रोत्साहित किया जाता है। वहां स्वाद-हेतु अनेक जीवों की हत्या को पाप नहीं माना जाता। मेरे मन में पग-पग पर मर्यादा बँधी हुई है। शाकाहार को मैं हिंसा मानता हूं। यह शिक्षा तो पश्चिम की नहीं कही जा सकती।

सिद्धान्तों अथवा उसके व्यवहार का विचार करते समय हमारे लिए असफल

तर्कों या मिथ्यारोपों को स्थान देना सम्भव नहीं। मेरे अभिप्राय की तुलना स्वतन्त्र रीति से होनी चाहिए। इसका क्या प्रयोजन कि वह पश्चिम से आया है अथवा पूर्व से? विचारणीय विषय तो यह है कि इसका मूल सत्य पर आधारित है या असत्य पर? इसके मूल में हिंसा है कि अहिंसा?

मेरा पूर्ण विश्वास है कि उसका मूल्य सत्य और अहिंसा है।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, १८।११।'२६]

- **हत्या की भावना भी एक रोग ही है।**
- **जो मनुष्य अपना मत निश्चित करने में अपनी श्रेष्ठता का विचार करता है वह सत्य का निर्णय नहीं करता।**
- **शाकाहार को मैं हिंसा मानता हूं।**

११. जीव-हिंसा और अहिंसा--५

एक भाई के पत्र का उद्धरण संक्षेप में देने के लिए उसे अपनी भाषा में लिखता हूं। उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर नीचे दे रहा हूं।

प्रश्न--जीव-मात्र तड़प-तड़प कर मरते हैं। जो नरक में पड़ा हुआ है वह भी जीने की इच्छा करता है। कुत्ते को भी मरना रुचिकर नहीं। अतएव जो व्यक्ति उसे मारता है उसकी दुर्गति में सहायक होता है।

उत्तर--एक मनुष्य दूसरे को मारकर उसकी दुर्गति कैसे करता है, यह बात मेरी समझ के बाहर है। मनुष्य अपने ही बन्धन और मोक्ष का कारण होता है, अन्य का नहीं। अहिंसा का पालन अपने ही मोक्ष के लिए होता है।

प्रश्न--जो मनुष्य अपने सुख-हेतु हिंसा करता है वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता है।

उत्तर--यह निर्विवाद है। मैंने जहां कुत्तों का वध बतलाया है वहां उनका श्रेय प्रधान हेतु है। उसमें मनुष्य का सुख निहित है किन्तु वह गौण है। जो मात्र अपने सुख के लिए वध करता है वह तो केवल हिंसा ही करता है।

प्रश्न--शायद आप ऐसा मानें कि जीव का नाश तो होता नहीं, देह का होता है तो फिर आज ही अथवा दो दिन पश्चात् उसका नाश हो जाय, तो इसमें हानि ही क्या है? यह ठीक है किन्तु इससे दूसरे का प्राण लेने का अधिकार तो नहीं मिल जाता?

उत्तर--इस विषय में मुझे कोई शंका नहीं है कि जिस प्रकार हम आहारादि के लिए अनिवार्य मानकर हिंसा करते हैं उसी प्रकार उक्त हिंसा भी हम अनिवार्य

समझ कर करते हैं। देह के नाशमान होने के कारण मनुष्य को दूसरे का प्राण लेने का अधिकार नहीं मिल जाता किन्तु आवश्यक प्रसंग आ पड़ने पर इससे विरत रहना भी उस देह के क्षण-क्षण घटित नाश को विस्मृत कर देने के तुल्य हैं। सड़े हाथ को काटने में देह का नाश है किन्तु हम उसे काट फेंकते ही हैं।

प्रश्न--किन्तु यदि उस प्राणी के सुख का विचार करके उसे मारा जाय तो यह भी मोह है। सुख-दुःख जैसी कोई वस्तु जगत् में है ही नहीं। आप दूसरे को पीड़ा-व्यथित नहीं देख सकते तो इससे आपका अज्ञान प्रकट होता है। जिस पर दूसरे के सुख-दुःख का प्रभाव नहीं होता वह भव्य आत्मा है और इसलिए वह किसी के प्रति हिंसा भी नहीं करता।

उत्तर--इस प्रश्न के मूल में जो तर्क है उसमें अनजाने में मिथ्यात्व निहित देखता हूं। जहां दूसरे के सुख-दुःख का प्रभाव नहीं, वहां दया नहीं। जहां दया नहीं, वहां धर्म नहीं, अहिंसा नहीं। दूसरे के सुखान्वेषण में ही तो अहिंसा का शोध हुआ है।

मनुष्य ने जब निज को पर में और पर को निज में देखा तभी उसने दूसरे के सुख से सुखी और दुख से दुखी होना सीखा। इसके कारण उसने अपने ऐहिक सुख के त्याग में आत्मिक सुख का अनुभव किया और अपने प्रति उदासीन (बेखबर) जगत् की हिंसा करने से विरत हुआ।

प्रश्न--सांसारिक के दुःख-निवारण का प्रयत्न सांसारिक दृष्टि है। उस दृष्टि में ही हिंसा है। अतएव बाद में इससे अहिंसा का प्रतिपादन कैसे हो सकता है?

उत्तर--यह वाक्य इसके लेखक अथवा किसी के लिए शोभनीय नहीं प्रतीत होता। हम सब संसार के दुःख-निवारण का सतत प्रयत्न करते हैं। भूख-प्यास, शीत-उष्ण के निवारण में बहुत समय लगाते हैं। किन्तु जो केवल अपनी ही भूख शान्त कर रुक जाता है, आगे नहीं बढ़ता वह स्वेच्छाचारी गिना जाता है; जो दूसरों को मिटाकर तब अपनी मिटाने का थोड़ा प्रयत्न करता है, वह वीतराग [illegible]ना जाता है।

एक अन्य भाई लिखते हैं:--

"लगता है आप रायचन्द्र भाई का लिखा भूल गये। आपने उनसे पूछा कि आपको यदि सांप काटने आये तो आप क्या करें। उन्होंने आपसे कहा था कि आप अपने प्राण दे दीजिए किन्तु सांप को मारिए नहीं। प्रतीत होता है अब कुत्तों के विषय में आपने दूसरा ही न्याय निकाला है।"

मैंने अन्य न्याय नहीं निकाला। अपने लिए किसी को भी मारने का समर्थन मैंने नहीं किया है। मेरा ऐसा प्रयत्न है कि यदि साँप मुझे काटने आये अथवा कोई

अन्य प्राणी मारने आये तो मैं उसे मार कर जीने की इच्छा न करूं और ईश्वर मुझे देहनाश की शक्ति प्रदान करे।

हमारी चर्चा में समाजदृष्टि है और दुःख से तड़पते प्राणियों के प्रति अपनी दृष्टि है। यदि मैंने रायचन्द्रभाई से पूछा होता कि दुःख से तड़पते सांप के लिए मैं क्या करूं अथवा मेरे संरक्षण में रहनेवाले किसी व्यक्ति को सांप काटने आता और उसे रोकने की शक्ति मुझमें न होती तो रक्षित के रक्षार्थ मुझे उसे मारना चाहिए या नहीं तो इन प्रश्नों का रायचन्द्र भाई क्या उत्तर देते, यह हममें से कोई ठीक-ठीक नहीं कह सकता। अपने अभिप्राय के विषय में मुझे कुछ शंका नहीं है।

एक तीसरे भाई लिखते हैं:—

"आपके लिखे पर मुझे अति श्रद्धा है किन्तु आप के वर्तमान लेखों से शंका उत्पन्न होती है। आप का मत श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य के मत के विरुद्ध दृष्टिगत होता है। आज तक आपके सब मत आचार्य के मतानुरूप होते थे: वह कहते हैं:—

रक्षाभवति बहूनामेकस्यैवास्य जीवहरणेन।
इति मत्वा कर्त्तव्यं न हिंसनं हिंस्र सत्वानाम्॥

"इस एक ही जीव के मारने से अनेक जीवों की रक्षा होती है, ऐसा मानकर हिंसक जीवों की भी हिंसा न करनी चाहिए।"

बहुसत्वघातिनोऽमी जीवन्त उपार्जयन्ति गुरुपापम्।
इत्यनुकम्पां कृत्वा न हिंसनीयाः शरीरिणो हिंस्राः॥

"अनेक जीवों के घाती ये जीव जीवित रहेंगे तो अधिक पाप उपार्जित करेंगे, इस प्रकार की दया से प्रेरित होकर भी हिंसक जीवों का वध न करना चाहिए।"

बहुदुःखासंज्ञापिता प्रयान्ति त्वचिरेण दुःखविच्छित्तम्।
इति वासनाकृपाणीमादाय न दुःखिनोऽपि हन्तव्याः॥

"अनेक दुःखों से पीड़ित जीवों की पीड़ाओं का शीघ्र ही नाश हो जायगा, इस प्रकार के वासना-विचार-रूप खड्ग को लेकर दुखी जीव को भी नहीं मारना चाहिए।"

"इनमें और आपके वर्तमान विचारों में भेद दृष्टिगत होता है। इसका अधिक स्पष्टीकरण पुरुषार्थ सिध्युपाय नामक ग्रन्थ में है। उसे देख लेने के पश्चात् आप अपना अभिप्राय बतलायें।"

मुझे श्री रेवाशंकर भाई ने दक्षिण अफ्रीका में पुरुषार्थ सिध्युपाय भेजा था। तभी मैं उसे पढ़ गया। मेरे विचार अब किसी पर आधारित नहीं हैं। जो जहां से अच्छा लगा वहां से वह विचार प्रारम्भ में लिया था। किन्तु अब तो वे मेरे जीवन के अंश हो गये हैं। उन्हें बतलाने में ही मुझे स्वयं को बतलाना पड़ता है।

मैं नहीं मानता कि अहिंसा-धर्म की ऐसी सूक्ष्म चर्चा से कोई तात्कालिक लाभ होगा। किन्तु मेरे विचार में इस समय उसके विषय में इतना अज्ञान फैला हुआ है कि यदि किसी भय अथवा मोह-वश अपने विचार नहीं प्रकट करूँगा तो दोष में पड़ूँगा, ऐसा मेरा विचार है। उसी कारण विवश होकर यह लेखमाला लिख रहा हूं।

ऊपर जो श्लोक दिये गये हैं उनमें और मेरे विचार में, मेरी मति के अनुसार कोई निन्दा नहीं है। किन्तु कदाचित् यह सिद्ध हो जाय तो भी मुझे अपना अभिप्राय ही अहिंसा-धर्म के अधिक अनुकूल प्रतीत होता है।

मैं उपर्युक्त श्लोकों का आशय यह समझता हूं कि उनमें वर्णित भावना का विचार करके मानव-वध नहीं करना चाहिए। कारण स्पष्ट है। ऐसा वध अनिवार्य अत: स्वाभाविक होना चाहिए।

भावना का विचार करने में प्रयोजन और आरम्भ आते हैं और अन्य आरम्भ हिंसात्मक हैं। मुमुक्षु के लिए सहजप्राप्त धर्म, गीता में जिसे निष्काम कहा गया है, उसका पालन कर्तव्य है। उसे जगत् के मोक्ष का विचार नहीं करना है किन्तु अपने मोक्षमार्ग में आनेवाली सेवा करते जाना है।

मुझे मलिन जल का गड्ढा भर देना चाहिए किन्तु इसे मैं अपने लिए स्वाभाविक होने के कारण भरता हूं। भरते समय यह अभिमान नहीं रखता कि ऐसा करने से मैं संसार की सेवा करता हूं।

मुझे यह भी ज्ञात नहीं होता कि आचार्य का यह मत रहा हो कि मुझे इसका ज्ञान ही न हो कि ऐसा करने से, गढ़ा भरने से कीड़े मरेंगे और समाज-सेवा होगी। आचार्य के इन वचनों में निरभिमान, नम्रता, अल्पारम्भ आदि का आग्रह रहा है। ज्ञात होता है ये श्लोक यह बतलाने के लिए ही रचे गये हैं कि अनिवार्य वध का प्रसंग उपस्थित होने पर मानसिक स्थिति कैसी होनी चाहिए।

---न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, २५।११।'२६]

- **मनुष्य अपने ही बन्धन और मोक्ष का कारण होता है, अन्य का नहीं।**
- **अहिंसा का पालन अपने ही मोक्ष के लिए होता है।**
- **जो मात्र अपने सुख के लिए वध करता है वह तो केवल हिंसा करता है।**

१२. जीव-हिंसा और अहिंसा--६

[अहिंसा के सम्बन्ध में गांधी जी के दृष्टिकोण ने सुधी लोगों एवं विचारकों में पर्याप्त चेतना उत्पन्न की। आवेश-भरे पत्रों में लोग गांधीजी से उन्हीं प्रश्नों का उत्तर मांगने लगे जिनका समाधान वे पिछले लेखों में कर चुके थे। गांधी जी ने इन पत्र-लेखकों से अपनी पिछली रचनाएं पढ़ जाने का अनुरोध करते हुए उपयुक्त प्रश्नों का समाधान किया। इसके आवश्यक अंश उद्धृत हैं।--संपा०]

एक भाई कहते हैं--आप तो श्वान जाति की जड़ खोदना चाहते हैं।

मैंने तो ऐसा कहा नहीं। मैं तो इस जाति की रक्षा हेतु ही कहता हूं। मैंने तो इतना ही कहा है कि अमुक प्रसंग उपस्थित होने पर ऐसे कुत्ते को मारा जा सकता है। इतने ही कथन में दोष हो तो बात और है। किन्तु समस्त तर्क इस मर्यादित वध के कथन के ऊपर ही किये जाने चाहिए।

अनेक भाई पहिले के मेरे उन कथनों को उद्धृत करके जो उन्हें तब पसन्द आते थे मेरे नये विचारों से उनका विरोध बतलाते हैं। मैं ऐसा विरोध नहीं देखता। मैं अहिंसा का जैसे पहिले पक्षपाती था वैसा आज भी हूं।

पुष्प-पाँखडी जिससे दूखे
जिनवर की है वहां मनाही।

मैं इसे अब भी पहिले-जैसी भक्ति से गा सकता हूं। पहिले जिस प्रकार वनस्पतियों, फलों और फूलों का उपयोग किया करता था वैसे ही अब भी करता हूं। किन्तु उस उपयोग के पीछे यह भाव छिपा है कि वैसा उपयोग जितना कम हो सके उतना ही कम करूं और देहाध्यास को क्षीण करता रहूं।

किन्तु कोई कहते हैं कि फूल और कुत्ते में साम्य ही क्या ? मैं यह आक्षेप सहन कर रहा हूं। ऐसी तुलना का प्रसंग उपस्थित हो सकता है। यह तुलना स्वच्छन्द विहार के लिए की हो तो यह अधोगति को पहुंचायगी और धर्म समझने अथवा समझाने के लिए की हो तो यह शोभा दे सकती है। मेरी तुलना का हेतु निर्मल है अतएव मैं सुरक्षित हूं।

अहिंसा-धर्मियों की पामरता मेरे लिए दुःखदायी हो गई है। अहिंसा अयोग्यता नहीं है। अहिंसा में शक्ति का अभाव नहीं। वह प्रचण्ड शक्ति है। हम उसका पूरा तेज न देख सकते हैं न पा सकते हैं। हममें से किसी-किसी को ही उसकी झांकी मिल पाती है।

अहिंसा जाग्रत आत्मा का गुण विशेष है। वह दूसरे गुणों के मूल में रही है। अतएव विचार, विवेक, वैराग्य, तपश्चर्या, समता, ज्ञान के अभाव में उसका पालन

सम्भव नहीं। कायरता उसमें नहीं चलती। जिन्हें अहिंसा समझनी है उन्हें हिंसा में निहित अहिंसा को समझना ही होगा।

उपर्युक्त वाक्य का अनर्थ भले ही हो। ईश्वर के नाम का अनर्थ कहां नहीं हुआ? उसके नाम से क्या राक्षस को नहीं पूजते? उसके नाम पर क्या कम पाप, कम हत्याएं हुई हैं? इससे क्या ईश्वर के नाम पर बट्टा लगेगा? इससे क्या हम ईश्वर के नाम को रक्त की ओट छिपा लेंगे?

कर्ममात्र सदोष हैं क्योंकि उसमें हिंसा निहित है। फिर भी कर्म के क्षयहेतु कर्म ही किया जाता है। देहमात्र पाप है फिर भी देह को तीर्थक्षेत्र बनाकर देह-मुक्ति का प्रबन्ध किया जाता है। इसी प्रकार हिंसा को समझना चाहिए।

किन्तु यह हिंसा हो कैसी? यह स्वाभाविक हो, न्यून से न्यून हो। इसके पीछे केवल करुणा हो और विवेक तथा मर्यादा हो। इसके विषय में तटस्थता हो। यह सहज-प्राप्त धर्म हो।

इस विचारसरणि से आचरण करने पर हिंसा दिनानुदिन कम होती जायगी। अतएव जिस हिंसा का उद्देश्य अहिंसा का क्षेत्र बढ़ाना हो, जो हिंसा अनिवार्य हो जाय, जो ऐसी हो कि उसके लिए परिणाम का विचार किये बिना प्रयत्न किया जा सके वह हिंसा क्षन्तव्य है। वह कर्तव्य भी हो सकती है। अतएव यह कहना नितान्त अनुचित नहीं है कि हिंसा में अहिंसा सम्भव है। इतना कहने के पश्चात् आश्रम में इस प्रश्न का किस प्रकार समाधान होता आ रहा है, यह समझाकर प्रस्तुत लेख-माला को समाप्त करता हूं।

आश्रम में कुत्तों का प्रश्न उनके जन्म से ही उपस्थित रहा है। महाजन की प्रवृत्ति से उनका उपद्रव बढ़ गया है। यह उपद्रव अत्यन्त कष्ट से सहन किया जाता है। आश्रम में पागल कुत्तों का वध होता है। ऐसा अवसर दस वर्ष में दो या तीन बार आया होगा। अन्य कोई कुत्ता नहीं मारा गया। उनको यत्र-तत्र भोजन देना बन्द कर दिया गया है।

इस नियम का पालन हो तो मेरे विचार से कुत्ते और वैसे ही हम सब भी सुखी होंगे। किन्तु उसका पूर्ण रूप से पालन नहीं हो सकता। प्रत्येक आश्रमवासी उसे समझ नहीं सका है और समझने के पश्चात् भी सभी लोग नियम के पालन में पूर्ण सचेत नहीं हैं। अस्तु, आश्रम-निवासी श्रमिक भला इस नियम का पालन क्यों करें?

विवश होकर अनेक कुत्तों को पालना पड़ता है। ऐसी दो कुतियों और उनके पिल्लों का पालन इस समय हो रहा है। पिल्लों के लिए ऐसी टोकरी रखनी पड़ती है जिसमें पर्याप्त गर्मी प्राप्त हो। उनको दूध दिया जाता है। मां के लिए विशेष भोजन बनता है।

दूसरी ओर महाजन से भटकते हुए कुत्तों को ले जाने की प्रार्थना की गई है। प्रार्थना उन्होंने स्वीकार भी की है। किन्तु उनकी गाड़ी अभी नहीं आई है।

यत्किञ्चित् कुत्तों के प्रति धर्म भी समझाया गया। किन्तु इस विषय में सबको थोड़ा-बहुत अपनी आन्तरिक प्रेरणा के अनुसार चलने की छूट है। हत्या का धर्म कोई मुझसे ग्रहण न करे, उसकी आज्ञा ले सकते हैं। इसे मैंने मर्यादा से सम्बद्ध करके समझाया है। सभी अपनी आवश्यकता के अनुसार उसे समझकर उसका पालन करते हैं और करेंगे। मेरा अभिप्राय स्पष्ट समझ में न आता हो तो उसे समझने के लिए आश्रम के आचार का उल्लेख किया गया है, जो इसके अनुरूप है।

स्वयं देहान्त तक दुःख भोगकर दूसरे को सुख देने का नाम अहिंसा-धर्म है। अमुक व्यक्ति यह कष्ट सहन करने को कहां तक प्रस्तुत है, इसका अनुमान दूसरा कोई नहीं कर सकता। धर्म एक है और अनेक है क्योंकि आत्मा भी एकानेक है।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, २।१२।'२६]

- **अहिंसा में शक्ति का अभाव नहीं; वह प्रचण्ड शक्ति है।**
- **अहिंसा जाग्रत आत्मा का गुण विशेष है।**
- **जिन्हें अहिंसा समझनी है उन्हें हिंसा में निहित अहिंसा को समझना ही होगा।**
- **ईश्वर के नाम का अनर्थ कहां नहीं हुआ ? उसके नाम पर क्या हम राक्षस को नहीं पूजते ?**
- **कर्ममात्र सदोष है क्योंकि उसमें हिंसा निहित है।**
- **कर्म के क्षय-हेतु कर्म ही किया जाता है।**
- **स्वयं देहान्त तक दुःख भोगकर दूसरे को सुख देने का नाम अहिंसा है।**
- **धर्म एक है और अनेक है क्योंकि आत्मा भी एकानेक है।**

१३. दुःख-निवारण हेतु हिंसा और अहिंसा

[अहिंसा की व्याख्या-हेतु गांधी जी ने जो लेख-माला लिखी थी उससे प्रभावित होकर 'यंगइण्डिया' के एक नियमित पाठक ने 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' दैनिक की एक कतरन उनके पास भेजी। पाठक की राय में इस कतरन में प्रकाशित समाचार से गांधी जी के विशेष परिस्थितियों में हत्या को विहित मानने के विचार का समर्थन होता था।]

उक्त समाचार के अनुसार लिटलटन (कोलेरेडो, अमरीका) के हेरल्ड ब्लेजर नामक एक डाक्टर ने अपनी अशक्त, अपंग, मूक बालिका को क्लोरोफार्म देकर मार

डाला था। इस बालिका को डाक्टर ब्लेजर बत्तीस वर्षों से यत्नपूर्वक पाल रहे थे। इसमें सोचने-समझने की शक्ति न थी और इसे भोजन भी पचा-पचाया देना पड़ता था। ब्लेजर के वकील मिस्टर होरी के अनुसार इस लड़की के आत्मा नहीं थी।

डाक्टर ब्लेजर ने अपना अन्त निकट देख इस आशंका से उस लड़की को मार डाला कि अपनी मृत्यु के पश्चात् उन्हें समाज के अन्य दयालुओं से आशा न थी कि वे उसे पाल लेंगे।

मुकदमा चलने पर डाक्टर ब्लेजर निर्दोष छोड़ दिये गये क्योंकि चौदह घण्टे के परामर्श के पश्चात् भी जूरी उसके सम्बन्ध में एक मत न हो सके।

'यंग इण्डिया' के उक्त पाठक ने इसी प्रकार की दूसरी घटना उद्धृत करते हुए लिखा कि एक अभिनेत्री ने अपने प्रेमी के अनुरोध पर उसे गोली मार दी थी। उसका प्रेमी किसी असाध्य रोग की असह्य पीड़ा से दुखी था। मुकदमा चलने पर वह अभिनेत्री बेदाग़ छोड़ दी गई।

उक्त पाठक ने आगे लिखा था कि डेनमार्क में ऐसा कानून बन गया है, जिसके अनुसार कुछ अधिकार-प्राप्त लोग चरम पीड़ा-ग्रस्त दशा में मनुष्य को सुख की मौत मार सकते हैं और ऐसा करना कोई अपराध नहीं माना जाता।

गांधी जी ने उक्त पाठक के तथाकथित समर्थन को अविहित सिद्ध करते हुए उसे जो उत्तर दिया, उसके आवश्यक अंश उद्धृत किये जाते हैं।--संपा०]

उक्त पत्र-लेखक को मैं जानता हूं। वह 'यंग इण्डिया' के अत्यन्त सावधान पाठक हैं। यदि वह मेरी बातों को इतना ग़लत समझ रहे हैं तो कौन जाने 'यंग इण्डिया' के कितने पाठक ऐसी ही भूल करते होंगे।

अपने हृदय की कठोरता के कारण हम बल-प्रयोग का एक भी अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहते। अन्य कई पाठकों ने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि इस कारण भ्रामक धारणा उत्पन्न होने का भय है।

मेरा मत है कि डाक्टर ब्लेजर छूट भले ही गये हों किन्तु मेरी जांच के अनुसार उन्होंने लड़की के प्राण लेने में भूल की। इससे पड़ोसियों के दयाभाव के प्रति उनके विश्वास की कमी प्रकट होती है। यह मान लेने का कोई कारण न था कि अन्य लोग उस लड़की की देखभाल न करते। मेरी कल्पित परिस्थितियों में कुत्तों का प्रसंग उस परिस्थिति से नितान्त भिन्न है जिसमें डाक्टर ब्लेज़र ने अपने को पाया। मैं यह भी मानने को प्रस्तुत नहीं हूं कि जड़ मूर्खों को आत्मा होती ही नहीं। मेरा विश्वास है कि निम्न श्रेणी के प्राणियों में भी आत्मा होती है।

इससे भी अधिक तथ्यपूर्ण दूसरी कठिनाई है जिसे एक अन्य पाठक प्रस्तुत करते हैं। उसे संक्षेप में यों समझा जा सकता है:—

"आपने जो स्थिति पसन्द की है, मैं समझता हूं, वही एकमात्र सही स्थिति है। किन्तु आपका तर्क क्या उपयोगितावाद-सम्बन्धी अधिकांश लोगों के अधिक लाभ के सिद्धान्त का रूप नहीं ग्रहण कर लेता ? यदि आपकी यही स्थिति हो तो आपके अहिंसा-सिद्धान्त और उस उपयोगितावाद में क्या अन्तर रह जाता है, जो अधिकांश के अधिक सुख के लिए प्राण लेने में नहीं हिचकता और जो अहिंसा का दम नहीं भरता ?"

प्रथम तो दोनों बाह्य कर्म एक हो सकते हैं। किन्तु जिस अन्तःप्रेरणा से वे किये गये हैं उसके अनुसार उनके और दूसरे गूढ़ार्थों में अन्तर होगा। उदाहरणार्थ, पश्चिम में अहिंसा मनुष्य तक ही सीमित है और वह भी जहां तक सम्भव हो सकती है, वहां मनुष्य जाति के माने गये लाभ-हेतु पशुओं को जीवित ही चीरने-फाड़ने में अथवा उपयोगितावाद के उस सिद्धान्त के नाम पर युद्ध-सामग्री एकत्र करने में कोई हिचक नहीं होती। दूसरे, अहिंसावादी उपयोगितावादी की भांति कभी एक हत्या तो कर सकता है किन्तु वह जीवित प्राणियों को चीरने-फाड़ने में अथवा युद्ध की अनन्त व्यवस्थाओं में सहायता देने के बदले मर जाना अधिक पसन्द करेगा।

बात तो यह है कि अहिंसावादी उपयोगितावाद का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो सर्वभूतहिताय अर्थात् सब के अधिकतम लाभ हेतु ही यत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायगा। अतः वह इसलिए मरना चाहेगा कि दूसरे जी सकें।

वह मर कर दूसरों के साथ-साथ स्वयं भी सेवा करेगा। सबके अधिकतम सुख के अन्दर अधिकांश का सुख भी निहित है। अतएव अहिंसावादी और उपयोगितावादी अपने मार्ग पर कई बार मिलेंगे। किन्तु अन्त में ऐसा अवसर भी आयगा जब उन्हें भिन्न-भिन्न मार्ग पकड़ने होंगे और किन्हीं परिस्थितियों में एक दूसरे का विरोध भी करना पड़ेगा। अयुक्तियुक्त न बनने के लिए उपयोगितावादी कभी अपना बलिदान नहीं कर सकता। अहिंसावादी सदा मिट जाने को प्रस्तुत रहेगा।

सर्वभूतहितवादी कभी यदि कुत्ते को मारता है तो अपनी निर्बलता के कारण अथवा कभी स्वयं कुत्ते के ही लिए। कुत्ते का लाभ किसमें है, यह निश्चय करना बहुत ही खतरनाक है। इस कारण ऐसा करने वाला भयंकर भूलें कर सकता है।

सर्वभूतहितवादी की हिंसा का क्षेत्र बहुत ही संकुचित होगा। उपयोगितावादी के लिए कोई सीमा नहीं है। अहिंसा-सिद्धान्त के अनुसार विचार करने पर यूरोपीय महासमर नितान्त अनुचित प्रतीत होता है। उपयोगितावाद के अनुसार प्रत्येक पक्ष ने उपयोगिता के अपने विचारानुसार अपना पक्ष न्याय्य सिद्ध कर

दिया है। उपयोगितावाद के बल पर जलियानावाला बाग-काण्ड को भी उसके कर्ताओं ने न्याय्य सिद्ध कर दिखाया। ठीक इसी तर्क से अराजक भी अपनी हत्याओं का समर्थन करते हैं। किन्तु सर्वभूतहितवाद के सिद्धान्त की कसौटी पर इनमें से किसी भी कार्य को समुचित नहीं सिद्ध किया जा सकता।

--यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०, ९।१२।'२६]

- **मेरा विश्वास है कि निम्न श्रेणी के प्राणियों में भी आत्मा होती है।**
- **अहिंसावादी सदा मिट जाने को प्रस्तुत रहेगा।**
- **सर्वभूतहितवादी की हिंसा का क्षेत्र बहुत ही संकुचित होगा।**

१४. सर्वभूतहितवाद की पीठिका : अहिंसा

[कुत्तों के वध के प्रश्न को लेकर गांधी जी ने जो लेखमाला प्रकाशित करवाई उसके सम्बन्ध में 'यंग इण्डिया' के पाठक माँडले के एक डाक्टर ने कुछ प्रश्न किये। अहिंसा से सम्बन्ध में उनकी शंकाएं, गांधी जी के समाधान सहित, उद्धृत हैं।--संपा०]

प्रश्न--९ दिम्बर के 'हिन्दी नवजीवन' में छपा है कि एक डाक्टर हैरोल्ड ब्लेजर ने अपनी लड़की को क्लोरोफार्म देकर मार डाला था क्योंकि उन्हें लग रहा था कि उनका अपना अन्त भी निकट ही है और उनके बाद उनकी लड़की की देख-भाल करने वाला कोई न रह जायगा। उन्हें अदालत ने निर्दोष छोड़ दिया था।

डाक्टर ब्लेजर के वकील मि० होरी ने कहा कि डाक्टर ब्लेजर ने समाज के ऊपर बेचारी उस अपंग लड़की का भार न डाल कर उचित और नैतिक ही कार्य किया था।

इस पर आपने अपना विचार प्रकट किया था कि डाक्टर ब्लेजर ने अपनी लड़की की हत्या करके भूल की क्योंकि इससे झलकता है कि उन्हें अपने पड़ोसी लोगों की दयावृत्ति में सन्देह था। यह मान लेने का कोई कारण न था कि अन्य लोग उस लड़की की कोई खोज-खबर न लेते।

मैं कहूंगा कि अपना मत प्रकट करने में आपने वकीलाना बहस नहीं की है। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि उस पर आप बार-बार विचार करें क्योंकि मेरे मत से यह कोई सामान्य विषय नहीं।

स्पष्ट है कि आप को समाज के ऊपर एक कर्म का बोझ लादने में कोई आपत्ति नहीं है। इसलिए कि आप को विश्वास है कि समाज उस भार को वहन कर लेगा।

भगवान के लिए आप हमें इस व्यर्थ बल्कि अत्यन्त हानिकर सिद्धान्त पर विश्वास रखने से मुक्त करें। मैं सच्चे हृदय से विश्वास रखता हूं कि भारत के लिए आपका यह विश्वास अत्यन्त हानिप्रद है।

तनिक डाक्टर ब्लेजर के वकील की बहस पर भी तो ध्यान दीजिए। उसने कहा कि डाक्टर ब्लेजर ने उस असमर्थ लड़की को समाज पर बोझ न बनाकर ठीक ही किया। यह तो प्रस्तुत प्रश्न से बिलकुल भिन्न है कि समाज उसकी देखभाल करता या नहीं।

मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूं। मान लीजिए कि कुछ वर्ष पश्चात् आप सर्वथा अन्ध-बधिर और मूक हो जायं, दूसरे शब्दों में समाज के लिए आप तनिक भी उपयोगी न रह जायं। क्या उस दशा में भी आप चाहेंगे कि समाज आप को खिलाये-पिलाये क्योंकि आप में अभी प्राण शेष है या आपने समाज की पर्याप्त सेवा की थी?

मुझे ज्ञात नहीं कि अहिंसा के विषय में आपके क्या विचित्र विचार हैं किन्तु मेरा उत्तर स्पष्ट है। कई वर्षों की सेवा के पश्चात् यदि मैं व्यर्थ हो जाऊं तो अपने प्रिय समाज पर बोझ बनने के स्थान पर मार डाला जाना पसन्द करूंगा क्योंकि मेरा विश्वास है कि इस प्रकार मारे जाने से मैं समाज के सिर से भार उतार कर उस पर उपकार करूंगा। यह बात तो बिल्कुल भिन्न है कि सभी उपयोगी मनुष्यों और पशुओं का पालन समाज का कर्त्तव्य है।

उत्तर--मेरा दृढ़ विश्वास है कि यद्यपि जूरी ने डाक्टर ब्लेजर को मुक्त कर उचित किया तथापि कठोर नैतिक बिन्दु से देखने पर उसने भूल की थी। मेरे पत्र-लेखक ने उपयोगितावाद के उत्साह में अपने बतलाये सिद्धान्त के रहस्यों और भयंकर फलों का तनिक भी विचार नहीं किया। सच पूछिए तो उनका सिद्धान्त उन्हीं के व्यवसाय में मिथ्या सिद्ध होगा। वे उस नये डाक्टर के विषय में क्या कहेंगे जो किसी रोगी को समाज पर भार समझ कर उसे क्लोरोफार्म देकर मार डाले जब कि उसी रोगी को दूसरा अनुभवी पुराना डाक्टर देखे तो सहजसाध्य समझे। क्या यह चिकित्सा-विज्ञान का गर्व नहीं है कि किसी रोग को नितान्त असाध्य कभी नहीं समझना चाहिए?

अपने विषय में तो मैं आशा करता हूं कि मेरे पूर्ण असमर्थ होकर समाज पर बोझ बन जाने के पश्चात् भी देशवासी मेरा भरण-पोषण करेंगे। शर्त केवल यह है कि मैं इस स्थिति में भी जीना चाहूं। इतना ही नहीं अपितु मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि यदि ऐसा अवसर आये तो मेरे देशवासी मेरा पालन करेंगे।

मुझे तो आश्चर्य है कि कदाचित् मुझे पत्र लिखने वाले सज्जन चाहेंगे कि एक रात शुभ मुहूर्त में सभी कोढ़ियों, अन्धों, बहरों और अपंगों को मीठी महानिद्रा में

सुला दिया जाय। और तब भी डामियन कोढ़ी था तथा मिल्टन अन्ध कवि। मानव मात्र-शरीर नहीं है। वह तो उससे अत्यन्त उच्च वस्तु है।

प्रश्न––आप उसी 'सर्वभूतहिताय' शीर्षक लेख में लिखते हैं कि अहिंसावादी व्यक्ति कभी उपयोगितावाद के सिद्धान्त का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो सर्वोदय का प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में प्राण त्याग देगा। वह इसलिए प्राण त्याग देगा कि अन्य लोग-जी सकें। तब क्या मैं मान लूं कि आप सर्प-दंश-द्वारा मर जाना पसन्द करेंगे किन्तु सर्प को मारकर बचना नहीं चाहेंगे?

यदि मेरा कथन ठीक है तो मैं कहूंगा कि आप सर्प को न मारकर और स्वयं मरकर ऐसा बड़ा से बड़ा पाप करेंगे जिसकी मैं कल्पना कर सकता हूं। इस प्रकार आप एक हानिप्रद जीव को बचाने का प्रयत्न करके और अपने नामधारी सर्वोदय की आदर्श-प्राप्ति में प्रसन्नता से स्वयं मर कर भारत का बड़ा से बड़ा अपकार करेंगे। क्या अब भी आपको यह स्पष्ट नहीं हुआ? क्या अब आप सर्वभूत-हित अथवा सर्वोदय के अपने मत को परिवर्तित न करेंगे?

मुझ भय है कि समस्त संसार का हित करते हुए आप कहीं भारत का अहित न कर बैठें। आप स्वीकार करते हैं कि आप अपूर्ण मनुष्य हैं और इसलिए समस्त संसार का हित करना आप के लिए असम्भव है। सभी प्रकार से तो भारत का भी हित करना आपके लिए असम्भव है। अतएव बिना किसी विवेक के भले-बुरे और अनुपयोगी तथा पशु सबके हित का बहाना करने से अधिक लोगों के अधिकतम हित का प्रयत्न कहीं अच्छा है।

उत्तर––यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर देने से मैं बचना चाहूंगा। इसलिए नहीं कि मुझमें श्रद्धा की कमी है अपितु साहस का अभाव है। किन्तु मुझे अपने विश्वास को छिपाकर नहीं रखना है, चाहे उसकी परीक्षा का अवसर आने पर मुझमें भले उसके अनुसार चलने का साहस न हो। मेरा उत्तर यह है:––

मैं एक सर्प के भी प्राण लेकर स्वयं जीना नहीं चाहता। उसे मारने के बदले मैं उसको अवसर दूंगा कि वह मुझे डँसकर मार डाले। किन्तु यह भी सम्भव है कि ईश्वर जब मेरी ऐसी निष्करुण परीक्षा ले उस समय मुझमें मर जाने का साहस न हो। मेरी पाशविक वृत्ति सजग हो जाय और मैं इस नश्वर शरीर की रक्षा-हेतु सर्प को मारना चाहूं।

मैं स्वीकार करता हूं कि अहिंसा का भाव मेरी नस-नस में इतना नहीं व्याप्त हुआ है कि मैं बल देकर कह सकूं कि सर्पों से मेरा भय बिल्कुल निर्मूल हो गया है अतः मैंने उनसे उस प्रकार की मित्रता कर ली जिसे करने योग्य मैं होना चाहूंगा।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि सर्प, शेर, बाघ आदि पशु हमारे कुविचारों के उत्तर-हेतु

बनाये गये हैं। उस किंग्सफोर्ड ने तो पेरिस की गलियों में मनुष्यों को बाघ की आकृति धारण करते हुए देखा था।

मेरा विश्वास है कि सभी जीव एक ही हैं। विचारों की निश्चित आकृति होती है। बाघ और सर्पों का भी हमसे रिश्ता है। वे तो हमारे लिए चेतावनी हैं कि हम बुरे, दुष्ट, विकारी विचार अपने हृदय में न रखें। यदि मैं संसार के सभी विषैले जीवों को मार भगाने लगूँ तो मुझे ही अपने सब बुरे विचारों को दूर करना होगा।

यदि मैं इस अधीर, अज्ञान और शरीर को बनाये रखने की उत्कट इच्छा के कारण सभी विषधर पशुओं को मारने लगूं तो मेरे कुविचार दूर न होंगे। यदि मैं इन पशुओं का विरोध न करते हुए मर जाऊंगा तो मैं पुनः पहिले से अच्छा और अधिक पूर्ण मनुष्य बनकर उत्पन्न होऊंगा। ऐसा विश्वास रखते हुए मैं सर्प के शरीर में अपने समान किसी अन्य जीव को किस प्रकार मारना चाहूंगा?

किन्तु यह तो कोरा दर्शन है। आइए, मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं और मेरे पाठक भी सम्मिलित हो जायं कि वह मुझे अपने दर्शन के पालन की शक्ति प्रदान करे। किन्तु दर्शन को यदि जीवन में न उतारा गया तो वह कोरा दर्शन प्राणहीन देह के समान है।

मैं जानता हूं कि हमारे इस देश में दर्शन बहुत है किन्तु जीवन का अभाव है। किन्तु मैं यह भी जानता हूं कि मनुष्य के कार्य-कलाप का नियन्त्रण करने वाले विषय अभी ढूंढ़ने को हैं और उन्हें खोजने की शर्तें अनिवार्य तथा अपरिवर्तनीय हैं। उनका पता हम मरकर ही लगा सकते हैं, मारकर कभी नहीं। हमें सत्य और प्रेम का जीवन्त अवतार बन जाना पड़ेगा क्योंकि परमात्मा सत्य एवं प्रेम का ही अवतार है।

--यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०, १४।४।'२७]

- **मैं एक सर्प के भी प्राण लेकर स्वयं जीना नहीं चाहता।**
- **मेरा विश्वास है कि सभी जीव एक ही हैं।**
- **विचारों की निश्चित आकृति होती है।**
- **हमारे इस देश में दर्शन बहुत है किन्तु जीवन का अभाव है।**
- **दर्शन को जीवन में न उतारा गया तो वह कोरा दर्शन प्राणहीन देह के समान है।**

१५. सनातन प्रश्न

[अहिंसा की व्याख्या-हेतु गांधी जी ने जो लेखमाला लिखी वह पाठकों में पर्याप्त जिज्ञासा का कारण बनी। अलमोड़ा के एक संन्यासी ने इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित पत्र गांधी जी के पास भेजा:--

"गत १५ अप्रैल के 'यंग इण्डिया' में किसी पत्र-प्रेषक को उत्तर देते हुए आपने लिखा है कि यदि सर्प भी आप पर आक्रमण करे तो आप उसे मारने की इच्छा न करेंगे। मेरे विचार से यह अनुचित होगा। क्योंकि एक तो इस प्रकार आप स्वयं मानों आत्मघात करेंगे, दूसरे उस विषैले जन्तु को वैसे ही छोड़कर आप अन्य लोगों को हानि पहुंचाने में कारण बनेंगे।

दूसरा उदाहरण लीजिए। किसी गृहस्थ के घर में सांप निकलता है। वह उसे मारता नहीं बल्कि अपने घर से बाहर छोड़ देता है। फलतः वह सर्प निश्चय ही अन्य किसी के घर में घुसकर उसे हानि पहुंचायगा। उसका उत्तरदायित्व निश्चय ही उसी व्यक्ति पर होगा जिसने दया की मिथ्या कल्पनावश ऐसे भयंकर जन्तु को जीवित छोड़ दिया। और भी कितने ही सरपट चलने वाले सरीसृप हानि पहुँचाते अथवा रोग फैलाते हैं। यदि वास्तव में ऐसे प्राणियों के नाश को हिंसा कहा जाय तो यह उस हिंसा से कहीं कम होगी जो इनके जीवित रहने से होती है।

अस्तु, मान भी लिया जाय कि यदि मनुष्य अपनी प्राणरक्षा के विचार से ऐसे भयंकर पशुओं को मारे तो वह हिंसा कही जाय, किन्तु यदि अनेक मूल्यवान प्राणों की रक्षा के निमित्त उसे मारा जाय तो उसे कदापि हिंसा न कहा जाना चाहिए। अन्ततः प्रत्येक कार्य की भलाई-बुराई का निर्णय हेतु को देखकर किया जाता है। और जब वही हेतु उच्च तथा शुद्ध हो तब वह नाश अथवा वध हिंसा नहीं कर्तव्य का रूप धारण कर लेता है। मैं चाहता हूं कि आप इस प्रश्न का उत्तर 'यंग इण्डिया' में दें तो बड़ा अच्छा हो।"

उपर्युक्त प्रश्न का गांधी जी ने जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश उद्धृत हैं।--संपा०]

संन्यासी का प्रश्न सनातन है। निःसन्देह वह अत्यन्त सशक्त भी है। यदि उसमें यह शक्ति न होती तो प्राचीन काल से जो हत्याएं चली आ रही हैं वे प्रचलित नहीं रहतीं। दुष्टतापूर्वक निष्ठुरता का कार्य बहुत कम लोग करते हैं।

इतिहास में वर्णित घोर से घोर एवं घृण्य अपराध या तो धर्म अथवा इसी प्रकार के अन्य उदात्त ध्येय की ओट में किये गये हैं। किन्तु मेरे विचार से उस हत्या

से तो हमारी दशा तनिक भी नहीं सुधरी है। फिर भले ही वह हत्या धर्म-जैसे सर्वोच्च आदर्श के नाम पर की गई हो। निःसन्देह किसी न किसी प्राणी की किसी रूप में हिंसा तो अनिवार्य है। जीव जीवों पर जीते हैं। इसीलिए और केवल इसीलिए महान द्रष्टाओं ने उस स्थिति को मोक्ष कहा है जिसमें जीवन शरीर से मुक्त हो—उस शरीर से जिसका पालन-संवर्धन करने के लिए हत्या अथवा हिंसा अनिवार्य होती है।

और मनुष्य के लिए इसी शरीर में रहते हुए उस पद की आशा करना असम्भव भी नहीं यदि वह हिंसा की मात्रा घटाकर न्यून कर दे जैसा कि वह निरामिषभोजी होकर कर सकता है। वह जानबूझ कर और बुद्धिपूर्वक जितना ही स्वयं को ऐसी हिंसा से दूर रखेगा, जिसमें अपने निर्वाह-हेतु अन्य प्राणियों की हत्या होती है, उतना ही वह सत्य तथा परमात्मा के अधिक निकट होगा। सम्भव है, मानवजाति ऐसा जीवन पसन्द न करे जिसमें कुछ भी आकर्षण न दिखाई पड़े। किन्तु इससे मेरे कथन के सत्य को बाधा नहीं पहुंचती।

परन्तु वे लोग, जो पूर्णतया ऐसा निःस्वार्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं और प्राणिमात्र के प्रति करुणामय व्यवहार करते हैं, हमें परमात्मा का माहात्म्य समझने में सहायता देते हैं। वे मनुष्य जाति को ऊंचा उठाते हैं और उसके आदर्श-पथ को आलोकित करते हैं।

हमें उस जीवन को नष्ट करने का कोई अधिकार नहीं जिसके निर्माण की हममें शक्ति न हो। मुझे यह तर्क नास्तिकता से पूर्ण प्रतीत होता है कि परमात्मा ने कुछ प्राणियों का निर्माण मानव-द्वारा वध-हेतु किया है और उन्हें मनुष्य केवल आनन्द अथवा उस शरीर के पोषण-हेतु मारे जो किसी भी क्षण नष्ट हो सकता है। हमें पता नहीं कि प्रकृति के दरबार में उन भयंकर समझे जाने वाले प्राणियों का स्थान कहाँ है। किन्तु हिंसा-द्वारा हम प्रकृति के नियमों को कभी न समझ पायेंगे। हमारे पास ऐसे पुरुषों के वर्णन मौजूद हैं जिनकी दया मानव को व्याप्त कर उसे लाँघ गई थी और जो भयंकर हिंस्र पशुओं के बीच रहते थे। समस्त जीवन-सृष्टि में कोई ऐसा आन्तरिक सम्बन्ध अवश्य है जिसके कारण शेर, सिंह और साँपों ने उन मनुष्यों को कोई हानि नहीं पहुंचाई जो निर्भय होकर उन पशुओं के पास गये थे।

यह तर्क दोषपूर्ण है कि यदि मैं किसी विषैले सर्प को नहीं मारूंगा तो वह अवश्य ही अनेक स्त्री-पुरुषों की जान का ग्राहक बनेगा। यह मेरे कर्त्तव्य का अंग नहीं है कि मैं अनेक विषैले जन्तुओं को ढूंढ़-ढूँढ़कर मारता फिरूं। मुझे यह मान लेने की भी आवश्यकता नहीं है कि मुझे दिखने वाले सर्प को यदि मैं न मारूंगा तो

वह किसी पथिक को अवश्य ही डँस लेगा। उस सर्प और अपने पड़ोसी के मध्य मुझे न्यायकर्ता नहीं बन जाना चाहिए।

यदि मैं अपने पड़ोसियों के साथ वैसा ही व्यवहार करूं जैसा कि मैं उनसे चाहता हूं, मैं उन्हें किसी ऐसे बड़े संकट में नहीं डालता जिसमें कि मैं हूं और यदि मैं उन्हें हानि पहुंचाकर अपना भला नहीं कर रहा हूं तो मैं समझूंगा कि मैंने इनके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा किया है।

अतएव, जैसा कि बहुधा किया जाता है, मैं उस सर्प को अपने पड़ोसी के अहाते में नहीं छोड़ूंगा। अधिक से अधिक मैं यह कर सकता हूं कि सर्प को जितने एकान्त में छोड़ा जा सके छोड़कर मैं पड़ोसियों को उसके विषय में सूचित कर दूंगा। मैं जानता हूं कि इससे मेरे पड़ोसियों को न तो कोई सुविधा मिलेगी, न रक्षा ही। किन्तु हम तो मृत्यु-मुख में स्थित होकर सत्य का मार्ग ढूंढ़ रहे हैं। कदाचित् हमारे जीवन में पग-पग पर मृत्यु का संकट है। क्योंकि इस संकट का ज्ञान होने पर तथा अपने जीवन की अनित्यता का विचार करते हुए भी समस्त जीवमात्र के स्रोत उस भूतभावन के प्रति हमारी उदासीनता आश्चर्यजनक है। हमारे अहंकार से वह तनिक ही न्यून है।

प्राणिमात्र के प्रति हिंसा किसी भी रूप में देखकर मेरी बुद्धि तो विद्रोह कर देती है। किन्तु मेरा हृदय अभी इतना सशक्त नहीं हो पाया जिससे मैं उन प्राणियों को अपना मित्र बना लूं जिन्हें अनुभव ने हिंस्र सिद्ध किया है। इसीलिए प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न होने वाले विश्वास की निर्भ्रान्त भाषा मेरे पास नहीं है। यह स्थिति तब तक सतत बनी रहेगी जब तक मैं सर्प, बाघ आदि प्राणियों से डरने वाला कायर बना रहूंगा।

मैं इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त संकोच के साथ दे रहा हूं। किन्तु मुझे ज्ञात हुआ कि जाति खोने के भय से यदि मैं अपना विश्वास प्रकट न करूंगा तो यह अनुचित होगा। क्योंकि दक्षिण अफ्रीका में मेरे मित्र एक बार मुझे ऐसा ही समझने लगे थे। एक दिन हम भोजन कर रहे थे और इसी विषय पर वार्ता छिड़ गई। उन्होंने मेरे पुनर्जन्म, गोरक्षा, निरामिषाहार-विषयक विचारों की चिन्ता नहीं की यद्यपि वे उन्हें बड़े विचित्र लगे, किन्तु उन्हें यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यदि परमात्मा मुझे शक्ति दें तो मैं सांप को भी नहीं मारना चाहूंगा, भले ही मुझे निश्चय हो जाय कि उसके न मारने से मेरे प्राणों को पूरा-पूरा संकट है।

——यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०, २३।६।'२७]

● **दुष्टतापूर्वक निष्ठुरता का कार्य बहुत कम लोग करते हैं।**

- हमें उस जीवन को नष्ट करने का कोई भी अधिकार नहीं है जिसके निर्माण की हममें शक्ति न हो।

१६. कन्दमूल और अहिंसा

[एक प्रश्नकर्ता ने गांधी जी से पूछा कि जैन साधु कन्दमूल यानी आलू, प्याज आदि खाने का निषेध करते हैं। क्या अहिंसक के लिए वास्तव में कन्दमूल खाने का निषेध है? गांधी जी ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया उसे अंशतः नीचे दिया जाता है।--संपा०]

यह बात समझ में आने योग्य है कि कन्दमूल में अधिक जीव हैं। किन्तु इस तरह के सूक्ष्म भेद में मैं अहिंसा नहीं देखता। जिसने आलू वगैरह कभी नहीं खाये, वह श्रावक यदि रोज चोरी करता है तो वह रोज आलू खानेवाले सत्यशील व्यापारी की अपेक्षा बड़ी हिंसा करता है। आलू खानेवाले की हिंसा बुद्धि का प्रयोग है। वह उसके हृदय को नहीं स्पर्श कर सकती। चोरी करनेवाला अपनी आत्मा का हनन करता है।....हिंसा में डूबा हुआ मनुष्य-समाज अपने भोजन के सम्बन्ध में भी कम हिंसा करे, तो यह स्तुत्य है। यह उचित है कि हम वनस्पति जीव के सम्बन्ध में भी ज्ञानपूर्वक दयाभाव उत्पन्न करें। आलू आदि के त्याग में कोई महत् धर्म देखने से मेरा मन स्पष्ट इन्कार करता है। इस त्याग का चरित्र के साथ कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता।....

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ६।९।'२८]

१७. अहिंसा किसे कहें?

[एक बार गुजरात विद्यापीठ में गांधी जी से अहिंसा के सम्बन्ध में निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न किया गया:--

अहिंसा की चर्चा शुरू हुई नहीं कि कितने लोग बाघ, भेड़िया, सांप, बिच्छू, मच्छर, खटमल, जूं, कुत्ता आदि के मारने अथवा आलू-बैंगन आदि को खाने न खाने की ही बात छेड़ते हैं। दूसरे फौज रखी जा सकती है कि नहीं, सरकार के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया जा सकता है कि नहीं, आदि शास्त्रार्थ में उतरते हैं। यह तो कोई विचारता ही नहीं, सोचता ही नहीं कि शिक्षा में अहिंसा के कारण कैसी दृष्टि उत्पन्न करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में कुछ विस्तारपूर्वक कहिए।

इस प्रश्न का गांधी जी ने जो उत्तर दिया उसे आंशिक रूप में यहां संकलित किया जा रहा है।--संपा०]

यह प्रश्न नया नहीं है। किन्तु मैं देखता हूँ कि अब तक यह सवाल हल नहीं हुआ है। इसे हल करना मेरी शक्ति के बाहर है। इसके हल में यत्किञ्चित हिस्सा ले सकूं तो मैं इतने से ही अपने को कृतार्थ मानूँगा।

प्रश्न का पहिला भाग हमारी संकुचित दृष्टि का सूचक है। जान पड़ता है कि मनुष्येतर प्राणियों को मारना चाहिए या नहीं, इस फेर में पड़कर हम अपने सामने उपस्थित दैनिक धर्म को भूल गये-से लगते हैं। सर्पादि को मारने के प्रसंग सबको नहीं पड़ते। उन्हें न मारने योग्य दया या साहस हमने नहीं पैदा किया है। अपने में रहनेवाले क्रोधादि सर्पों को हमने दया से, प्रेम से नहीं जीता है। किन्तु फिर भी हम सर्पादि की हिंसा की बात छेड़कर उभयभ्रष्ट होते हैं। हम क्रोधादि को तो जीतते नहीं और सर्पादि को न मारने की शक्ति से वञ्चित रह कर आत्म-वञ्चना करते हैं।

अहिंसा-धर्म का पालन करने के इच्छुकों को साँप आदि को भूल जाने की जरूरत है। उन्हें मारने से तत्काल न छूट सकें तो इसका दुःख न मानते हुए सार्वभौम प्रेम पैदा करने की पहिली सीढ़ी के रूप में मनुष्यों के क्रोधद्वेषादि को सहनकर उन्हें जीतने का प्रयत्न करें।

आलू बैगन जिसे न खाना हो, वह न खाय। किन्तु हम यह कहते हुए भी लज्जित हों कि उसे न खाने में महापुण्य है या उसमें अहिंसा का पालन है। अहिंसा खाद्याखाद्य के विषय से परे है। संयम की आवश्यकता सदा है। खाद्य पदार्थों में जितना त्याग करना हो उतना सब कोई करे। वह त्याग भला है, आवश्यक है, लेकिन उसमें अहिंसा तो नाममात्र की ही है। परपीड़ा देखकर दया से पीड़ित होनेवाला, रागद्वेषादि से दूर नित्य कन्दमूलादि खानेवाला व्यक्ति अहिंसा की मूर्ति-रूप और वन्दनीय है। परपीड़ा के सम्बन्ध में उदासीन, स्वार्थ का वशवर्ती दूसरे को पीड़ा देनेवाला, रागद्वेषादि से भरा हुआ, कन्दमूलादि का सदा के लिए त्याग करने वाला मनुष्य तुच्छ प्राणी है; अहिंसा देवी उससे भागती फिरती है।

राष्ट्र में फौज का स्थान हो सकता है या नहीं, सरकार के विरुद्ध शरीरबल लगाया जा सकता है या नहीं—ये अवश्य महाप्रश्न हैं और हमें किसी दिन इनको हल करना ही होगा।... ये प्रश्न जनसाधारण के लिए आवश्यक नहीं हैं। इसलिए शिक्षा के प्रेमी और विद्यार्थी के लिए अहिंसा की जो दृष्टि है वह मेरी राय में ऊपर के दोनों प्रश्नों से भिन्न अथवा परे है। शिक्षा में जो दृष्टि पैदा करनी है वह परस्पर के नित्य-सम्बन्ध की है। जहाँ वातावरण अहिंसा रूपी प्राणवायु-द्वारा स्वच्छ

और सुगन्धित हो चुका है वहाँ छात्र और छात्राएँ सगे भाई-बहिन के समान विचरती होंगी; वहाँ विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच पितापुत्र का सम्बन्ध होगा; एक दूसरे के प्रति आदर होगा, । ऐसी स्वच्छ वायु ही अहिंसा का नित्य सतत पदार्थ-पाठ है।

ऐसे अहिंसामय वातावरण में पले हुए विद्यार्थी निरन्तर सबके प्रति उदार होंगे; सहज ही समाज सेवा-हेतु लालायित होंगे। उनके लिए सामाजिक बुराइयों-दोषों का अलग प्रश्न नहीं होगा। वह अहिंसा रूपी अग्नि में भस्म हो गया होगा। क्या अहिंसा के वातावरण में पला हुआ विद्यार्थी बाल-विवाह करेगा? वह कन्या के माँ-बाप को दण्ड देगा? विवाह के बाद अपनी पत्नी को दासी गिनेगा? उसे अपने विषय का भाजन बनायेगा? अपने को अहिंसक मनवाता फिरेगा अथवा ऐसे वातावरण में शिक्षित युवक सहधर्मी या परधर्मी के साथ लड़ाई लड़ेगा?

अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरु से दूर भागती है। वह वीर पुरुष की शोभा है, उसका सर्वस्व है। वह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। वह चेतनामय है; वह आत्मा का विशेष गुण है। इसीलिए उसका वर्णन परमधर्म के रूप में किया गया है। इसीलिए शिक्षा में अहिंसा की दृष्टि है। शिक्षण के प्रत्येक अंग में नित्य नया लगता हुआ, उछलता, उभरता, शुद्धतम प्रेम। इस प्रेम के सामने वैरभाव टिक ही नहीं सकता। अहिंसा रूपी प्रेम सूर्य है, वैरभाव घोर अन्धकार है। यदि सूर्य टोकरे के नीचे छिपाया जा सके तो शिक्षा में वर्तमान अहिंसा-दृष्टि भी छिपाई जा सकती है। यदि ऐसी अहिंसा विद्यापीठ में प्रकट होगी तो फिर वहां किसी के लिए उसकी परिभाषा पूछना आवश्यक ही नहीं होगा।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, १३।९।'२८]

- **अहिंसा खाद्याखाद्य विषय से परे है।**
- **अहिंसा प्रचण्ड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है।**
- **अहिंसा रूपी प्रेम सूर्य है। वैरभाव घोर अन्धकार है।**

१८. अहिंसा का अर्थ

[अहमदाबाद के सत्याग्रहाश्रम में टाल्सटाय जन्मशती के अवसर पर दिये गये गांधी जी के भाषण का अंश।--संपा०]

हमारी अहिंसा की निन्दा ही उचित है। खटमल, मच्छर, बिच्छू, पक्षी और पशुओं को हर प्रकार निभाने में ही मानों हमारी अहिंसा पूर्ण हो जाती है। ये प्राणी कष्ट में तड़पते हों, तो हम उसकी परवाह नहीं करते। उन्हें दुःखी करने में

यदि स्वयं भाग लेते हों तो हमें इसकी भी चिन्ता नहीं। परन्तु कोई दुखी प्राणी को प्राणमुक्त करे अथवा हम इसमें शरीक हों तो इसमें हम घोर पाप मानते हैं। मैं लिख चुका हूँ कि यह अहिंसा नहीं है।...अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र, वैरभाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरुता न हो; डरकर भागना भी न हो। अहिंसा में दृढ़ता, वीरता, निश्छलता होनी चाहिए।

यह अहिंसा हिन्दुस्तान में शिक्षित समाज में नहीं दिखाई देती।

इस जगत् में कौन ऐसा पुरुष है जो अपने सिद्धान्तों पर पूरा-पूरा अमल कर सका हो? मेरा मत है कि देहधारी के लिए सम्पूर्ण अहिंसा का पालन अशक्य है। जबतक शरीर है, तबतक कुछ न कुछ अहंभाव रहता ही है। जबतक अहंभाव है शरीर को भी तभी तक धारण करना है। इसलिए शरीर के साथ हिंसा भी रहती है।....

निश्चय कर लो कि तुम सत्य की आराधना छोड़ने वाले नहीं। सत्य के लिए दुनिया में सच्ची अहिंसा ही धर्म है। अहिंसा प्रेम का सागर है। उसका नाम संसार में कोई ले ही नहीं सका। इस प्रेम-सागर से हम सराबोर हो जायँ तो हममें ऐसी उदारता आ सकती है कि उसमें समस्त संसार को विलीन कर सकते हैं। यह बात कठिन है किन्तु साध्य है। ...यह अहिंसा लूले-लँगड़े प्राणियों को न मारने में ही समाप्त नहीं होती। इसमें धर्म हो सकता है किन्तु प्रेम तो इससे भी अनन्तगुना आगे बढ़ा हुआ है।...फरहाद ने जिस तरह शीरीं के लिए पत्थर तोड़े उस तरह हम भी पत्थर तोड़ें। हमारी यह शीरीं अहिंसा है। इसमें हमारा छोटा सा स्वराज्य तो शामिल है ही बल्कि इसमें तो सभी कुछ समाया है।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, २०।९।'२८]

- **अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र, वैरभाव का सर्वथा त्याग।**
- **अहिंसा में दृढ़ता, वीरता, निश्छलता होनी चाहिए।**
- **देहधारी के लिए सम्पूर्ण अहिंसा का पालन अशक्य है।**
- **अहिंसा प्रेम का सागर है।**

१९. पावक की ज्वाला--१

[अहिंसक प्राणहरण]

गो-सेवा संघ की ओर से सत्याग्रहाश्रम आदर्श दुग्धालय चलाने के प्रयोग कर रहा है। उसके सम्बन्ध में क्षण-क्षण में धर्म-संकट आ खड़े होते हैं। यदि आश्रम का आदर्श केवल अहिंसा के ही मार्ग से सत्य की शोध करने का न होता तो ऐसे

संकट न उत्पन्न होते। बहुत दिन हुए, आश्रम का एक अपंग हुआ बछड़ा कष्ट से छटपटा रहा था। उसकी दवा की ; पशु-डाक्टर की सलाह ली। उन्होंने जीने की आशा छोड़ दी। हम भी देख सके कि वह कष्ट से छटपटाता है। उसे करवट बदलवाने में भी कष्ट होता था।

मुझे लगा कि ऐसी स्थिति में इस बछड़े का प्राण लेना ही धर्म है, अहिंसा है। मैंने साथियों से विचार-विमर्श किया। उनमें से अनेक ने मेरी राय का समर्थन किया। फिर मैंने सारे आश्रम के लोगों से बातें कीं। उनमें से एक भाई ने खूब दलील दी और कड़ा विरोध किया। बछड़े की सेवा का भार स्वयं अपने सिर लिया और जब तक उसका प्राण-हरण नहीं किया गया तब तक उसकी सेवा करने का भार उठाया। उन्होंने तथा कई बहिनों ने बछड़े के ऊपर से मक्खियां उड़ाने का काम किया।

इन भाई की दलील थी कि जिसमें प्राण देने की शक्ति न हो, उसे प्राण लेना भी नहीं चाहिए। मुझे यह दलील इस प्रसंग में अवाञ्छित लगी ; जहाँ कोई स्वार्थ-भावना से दूसरे का प्राण हरण करे, वहाँ ऐसी दलील को स्थान हो सकता है। अन्त में दीन भाव से किन्तु दृढ़तापूर्वक बछड़े के पास खड़े होकर मैंने डाक्टर से उसको जहर की सुई लगवाई और उसका प्राण हरण कराया। प्राण निकलने में दो मिनट से कम समय लगा होगा।

मैं जानता था कि यह काम वर्तमान लोकमत को पसन्द नहीं आयेगा। वह इसमें हिंसा ही देखेगा। किन्तु धर्म लोकमत का विचार नहीं करता। मैंने तो यह सीखा है और अनुभव के द्वारा अपने लिए सिद्ध किया है कि जिसमें धर्म देखता हूँ, वही उचित है; मुझे उसी का आचरण करना चाहिए, भले ही उसमें कोई दूसरा अधर्म देखे।

वास्तविक रीति से मेरा माना हुआ धर्म अधर्म भी हो सकता है किन्तु कितनी ही बार अनभिज्ञता से, भूल किये बिना भी धर्म का पता नहीं चलता। अगर मैं लोकमत या किसी दूसरे भय के वश होकर जिसे धर्म मानूं, उसका आचरण न करूँ तो मैं धर्माधर्म का कभी निर्णय न कर सकूंगा और अन्त में धर्महीन हो जाऊँगा। ऐसे ही कारणों से प्रीतम गाया है—

प्रेम-पन्थ पावकनी ज्वाला माळी पाछा भागे जोने

अर्थात् प्रेम-पन्थ आग की लपट है, उसे देखकर ही लोग भागते हैं।

अहिंसा-धर्म का पन्थ प्रेम-पन्थ है। इस पन्थ में आदमी को अनेक बार अकेले ही विचरण करना पड़ता है।

मैंने ये प्रश्न अपने मन में विचारे और मित्रों से इनकी चर्चा की कि जैसी बात

मैं बछड़े के बारे में करना चाहता हूँ वैसी ही अपने बारे में चाहूँगा? मनुष्य के सम्बन्ध में ऐसा करने को तैयार होऊँगा? मुझे लगा कि दोनों पर एक ही न्याय लागू पड़ता है। मुझे यह स्पष्ट जान पड़ा कि यहाँ 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का नियम लागू न पड़े तो बछड़ा मारा नहीं जा सकता। ऐसे दृष्टान्तों की कल्पना की जा सकती है जब कि मारने में ही अहिंसा हो और न मारने में हिंसा। मान लो कि मेरी लड़की कोई राय देने योग्य न हो। उस पर कोई आक्रमण करने आ जाय। मेरे पास उसे जीतने का कोई दूसरा मार्ग मिले ही नहीं। अतः मैं लड़की का प्राण लूं और आक्रमणकारी की तलवार के वश होऊँ तो इसमें मैं शुद्ध अहिंसा देखता हूँ। बीमारी से दुखी प्रियजनों को हम इसलिए नहीं मारते कि हमारे पास उनकी सेवा करने के साधन होते हैं, और उनको समझ भी होती है। किन्तु सेवा शक्य न हो, जीने की आशा ही न हो, रोगी बेसुध हो, और महादुःख भोगता हो तो उसके प्राणहरण में मैं लेशमात्र दोष नहीं देखता।

जिस तरह रोगी के भले के लिए डाक्टर उसके शरीर में चीरफाड़ करके हिंसा नहीं करता बल्कि शुद्ध अहिंसा का ही पालन करता है उसी प्रकार मारने में भी अहिंसा का पालन हो सकता है। यह दलील दी जा सकती है कि चीरफाड़ में तो रोगी के अच्छे होने की सम्भावना है, जब कि प्राणहरण में वह मरेगा ही। किन्तु विचार करने पर ज्ञात होगा कि दोनों में साध्य वस्तु एक ही है। प्राण लेकर और चीरफाड़ करके शरीर में रहनेवाली आत्मा को दुःखमुक्त करने की सामान्य धारणा है। शरीर में चीरफाड़ करके सुख शरीर को नहीं किन्तु आत्मा को पहुँचाना है। आत्मारहित शरीर में सुखदुःख भोगने की शक्ति ही नहीं है।

मृत्युदण्ड का जो भय आजकल समाज में दिखलाई पड़ता है, वह अहिंसा-धर्म के प्रचार में ही बहुत बड़ी बाधा है। किसी को गाली देना, उसका बुरा चाहना, उसको ताड़न करना, उसे कष्ट पहुँचाना सभी कुछ हिंसा है। जो मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरे को कष्ट पहुँचाता है, उसके नाक-कान काटता है, उसे भरपेट खाने को नहीं देता और अन्य उपाय से उसका अपमान करता है, वह मृत्युदण्ड देने वाले की अपेक्षा कहीं अधिक निर्दयता दिखलाता है। जिसने अमृतसर की गली में लोगों को चींटी के समान पेट के बल चलाया उसने उन्हें यदि मार डाला होता तो कम घातक गिना जाता। यदि कोई यह माने कि पेट के बल चलनेवाले आज भी जिन्दा हैं, इसलिए पेट के बल रेंगवाना मृत्युदण्ड से हलकी सजा है तो मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं कि वह आदमी अहिंसा को नहीं जानता। ऐसे अनेक अवसर हैं जब मनुष्य के लिए मृत्यु का स्वागत करना ही अधिक उचित होता है। जो इस धर्म को नहीं समझते, वे अहिंसा के मूल तत्व को नहीं जानते।

हरिनो मारग छे शूरानो नहिं कायरनुं काम जोने।

अर्थात् 'धर्म का मार्ग शूरों के लिए है, यहां पर कायरों का काम नहीं है।' हमें प्रतिदिन ईश्वर से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे नाथ, असत्य आचरण करके जीने की अपेक्षा मुझे मौत ही देना है।

अहिंसा-धर्म का पालन करनेवाला अपने शत्रु से ऐसी प्रार्थना करेगा--'हे शत्रु! मेरा अपमान करने, मुझसे अमानुषी कर्म कराने के बदले तू मार ही डाल तो मैं तेरा गुण गाऊँ।'

ये दृष्टान्त देने का अर्थ यह बतलाना है कि मृत्युदण्ड सदा हिंसा ही नहीं है। बछड़े की स्थिति में पड़े हुए पशु के प्राण लेने का मेल इन दृष्टान्तों से बैठेगा या नहीं, यह भले ही भिन्न विषय समझा जाय, इस विषय में भले ही मतभेद हो। यहाँ तो मुझ केवल अहिंसा के विषय में प्रचलित कितने ही भ्रम दिखलाने हैं।

केवल मरण से आदमी या पशु को थोड़े समय के लिए बचा लेने में अहिंसा अवश्य है—यह मान्यता वहम है और इससे मैं आज देश में घोर हिंसा होती हुई देखता हूँ। एक दुखी, महापीड़ित पशु के प्राण लेने से जो आघात पहुँचता है इसके साथ जब मैं असंख्य प्रकार की प्रचलित निर्दयता के सम्बन्ध में उदासीनता का मिलान करता हूँ तब सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम अहिंसाधर्मी हैं अथवा अहिंसा के नाम पर जानबूझकर या अनजाने अधर्म का आचरण करनेवाले हैं।

हमारे अविचार और हमारी भीरुता के कारण मैं तो पग-पग पर हिंसा होती देख रहा हूँ। हमारे पिंजरापोल और गोशालाएँ हिंसा का स्थान हो गई हैं। स्वार्थ से अन्धे होकर हम रोज ही अपने पशुओं पर अत्याचार करते हैं, उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं। यदि उनके जबान हो तो वे अवश्य कहेंगे कि हमें इस तरह जो कष्ट देते हो उसके बदले हमें मार ही डालो तो हम तुम्हारा यश गायें। उनकी आंखों में ऐसी प्रार्थना तो मैंने अनेक बार देखी है।

इसपर यह कहा जा सकता है कि स्वार्थ के वश होकर या क्रोध में किसी भी जीव को जो कष्ट दिया जाय या उसके अनिष्ट अथवा प्राणहरण की इच्छा भी की जाय तो वह हिंसा है। निःस्वार्थ वुद्धि से, शान्तचित्त से किसी भी जीव की भौतिक या आध्यात्मिक भलाई के लिए उसे जो कष्ट दिया जाय अथवा उसका प्राणहरण किया जाय वह शुद्ध अहिंसा हो सकती है। प्रत्येक दृष्टान्त का विचार करके ही यह कहा जा सकता है कि ऐसे दुःख या प्राणहरण कब अहिंसक कहे जायँगे। अन्त में अहिंसा की परीक्षा का आधार भावना पर रहता है।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ४।१०।'२८]

- धर्म लोकमत का विचार नहीं करता।
- अहिंसा-धर्म का पन्थ प्रेम-पन्थ है।
- मृत्युदण्ड सदा हिंसा ही नहीं है।
- अन्त में अहिंसा की परीक्षा का आधार भावना पर रहता है।

२०. पावक की ज्वाला--२

[हिंसक प्राणहरण]

प्रस्तुत दृष्टान्त[1] से उल्टा एक अन्य संकट आश्रम पर है। पहिले का निवारण हो सका है, दूसरे का अभी नहीं मिला है। आश्रम में बन्दरों का उपद्रव दिनों-दिन बढ़ता ही जाता है। वे फल, झाड़ और शाक-भाजी का नाश कर रहे हैं। मैं इस उपद्रव से बचने का उपाय खोज रहा हूँ। जो इस सम्बन्ध में रास्ता बता सकते हैं, ऐसे लोगों की सलाह ले रहा हूँ। मुझे अब तक कोई निर्दोष उपाय नहीं मिला है। किन्तु मैं अनेक आदमियों के साथ चर्चा करता हूं। इसलिए शहर में अनेक प्रकार की अफवाहें फैल रही हैं और मेरे पास कई तीखे पत्र आये हैं। एक पत्र-लेखक मानते हैं कि आश्रम में बन्दरों को तीरों से घायल किया जाता है और अनेक बन्दर मर भी गये हैं। यह खबर झूठी है। बन्दरों को हाँक निकालने का प्रयत्न अवश्य चलता है। तीर भी काम में लाये गये हैं। किन्तु न कोई बन्दर घायल किया गया हैं, और न मरा ही है।

घायल करने का काम खुद मेरे लिए असह्य है। अनिवार्य हो पड़े तो उन्हें मार डालने की चर्चा मैं कर रहा हूं। किन्तु यह प्रश्न बछड़े के प्रश्न की तरह सहज नहीं।

बन्दर को मार भगाने में मैं शुद्ध हिंसा ही देखता हूं। यह भी स्पष्ट है कि यदि उन्हें मारना पड़े तो इसमें शुद्ध हिंसा ही होगी। यह हिंसा तीनों काल में हिंसा ही गिनी जायगी। इसमें बन्दर के हित का विचार नहीं, आश्रम के ही हित का विचार है।

देहधारी जीव मात्र हिंसा से ही जीते हैं। उसके परम धर्म का दर्शक शब्द नकारवाचक निकला। जगत् यानी देहमात्र हिंसामय है और इस कारण अहिंसा-प्राप्ति के लिए देह के आत्यन्तिक मोक्ष की तीव्र इच्छा पैदा हुई।

हिंसा के बिना कोई देहधारी प्राणी जी ही नहीं सकता। जीने की इच्छा

१. 'अहिंसक प्राणहरण' शीर्षक लेख में बछड़े का प्राणहरण।

छूटती ही नहीं, अनशन करके हटने या छोड़ने की इच्छा मन को नहीं है। देह अनशन करे और मन अशन करे तो यह अनशन दम्भ में खपेगा। यह आत्मा को अधिक बन्धन में डालेगा। ऐसी दयनीय स्थिति में रह कर जीने की इच्छा रखता हुआ जीव भला क्या करे? कैसी और कितनी हिंसा अनिवार्य गिने? समाज ने कितनी एक हिंसाओं को अनिवार्य गिनकर व्यक्ति को विचार करने के भार से मुक्त किया। फिर भी प्रत्येक जिज्ञासु के लिए अपना क्षेत्र जानकर उसे नित्य छोटा करने का प्रयत्न करना तो बाकी ही रह गया है।

इस दृष्टि से सर्वव्यापी खेती के धन्धे में निहित हिंसा की मर्यादा का निश्चय अहिंसा-धर्म का पालन करने के इच्छुक किसान को करना शेष है। मैं अपने को किसान मानता हूं। मेरे सामने कोई सीधी लीक नहीं पिटी हुई है। प्रत्येक किसान विना विचारे किसी न किसी तरह अपना गुजर चला ही लेता है। क्योंकि शिष्टवर्ग ने उसकी अवगणना की है, उनके जीवन में भाग नहीं लिया है और दिलचस्पी नहीं ली है। इसलिए वे अपने जीवन में उत्तरोत्तर उन्नति नहीं कर सके।

इसलिए मेरे-जैसे किसान को तो अपना मार्ग ढूंढ़कर, सम्भव हो तो, दूसरे किसान भाइयों के लिए मार्गदर्शक बनना है।

इस तरह खेती पर लागू होनेवाले जो अनेक प्रश्न नित्य उत्पन्न होते हैं उनमें से बन्दरों का अटपटा प्रश्न भी एक है।

किन्तु उसे मृत्युदण्ड देने में हिंसा तो है ही इसलिए यह अन्तिम कार्रवाई करने के पहिले जितने लोगों की सलाह ली जा सके उतनों की मैं लेना चाहता हूं। 'नवजीवन' के पाठकों में से अगर कोई अनुभवी आश्रम को रास्ता बतला सकेंगे तो उपकार करेंगे।

मैंने सुना है कि गुजरात के किसान ऐसे उपाय करते हैं कि उन्हें देखते ही बन्दर डर के मारे भाग जाते हैं। यों किसान मानते हैं कि वे अन्तिम हिंसा से बच गये। यह सम्भावित है किन्तु इसके बाद तो मरणदण्ड है ही। क्योंकि मैं जानता हूं कि बन्दर इतने विचक्षण होते हैं कि यह समझ लेने पर कि उन्हें कोई मारने वाला नहीं है वे गोली की बाढ़ से भी नहीं डरते और उल्टे किलकारी मारते हैं। इसलिए कोई सलाहकार ऐसा न समझे कि इस उपद्रव से खेती को बचाने का आश्रम ने एक भी मार्ग नहीं जाना, नहीं विचारा है। जितना ज्ञात है उन सबमें हिंसा तो है ही। यदि बिना हिंसा के इस उपद्रव से खेती को न बचाया जा सके तो यह विचार करना शेष रहा कि कम से कम कितनी हिंसा से उसे बचाया जा सकता है। मैं इसमें अनुभवी की मदद चाहता हूं।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ४।१०।'२८]

- देहधारी जीवमात्र हिंसा से ही जीते हैं।
- जगत्--यानी देहमात्र--हिंसामय है।
- हिंसा के बिना कोई देहधारी प्राणी जी ही नहीं सकता।

२१. अहिंसा की समस्याएं

बछड़े और बन्दरों के विषय में लेख लिखकर मैंने टीकाकारों का रोष खूब बटोर लिया है। कोई गालियां देकर अपनी अहिंसा की परीक्षा करा रहा है और कोई सख्त टीका करके मेरी अहिंसा की परीक्षा ले रहा है। सभी पत्र-लेखकों को जवाब देने योग्य समय मेरे पास नहीं है। ठेठ गालियों वाले लेखों से मेरी सहनशक्ति का माप होने के सिवा और कुछ लाभ होने का नहीं। दूसरे दो प्रकार के पत्रों में से अनेक दलीलें उद्धृत कर उनपर विचार करना चाहता हूं।

लेखकों की मुख्य दलीलें और शिक्षाएँ ये हैं—

"१. अब आप अहिंसा के क्षेत्र से त्यागपत्र दे दीजिए।

२. आप क्या अहिंसा-सम्बन्धी अपने विचार पश्चिम से नहीं लाये हैं?

३. आपके विचार सच्चे हों तब भी जहां अनर्थ होने का भय हो वहां आप को उन्हें प्रकट नहीं करना चाहिए।

४. आप कर्मवाद को मानते हैं तो बछड़े का प्राण लेकर कर्म के नियम का विरोध करना व्यर्थ है।

५. आपको यह मान लेने का क्या अधिकार था कि बछड़ा अब चंगा होगा ही नहीं, जियेगा ही नहीं? आप क्या नहीं जानते कि जिनके बारे में डाक्टर-वैद्यों ने कहा कि अब वे मिनटों के मेहमान हैं, अनेक बार वे भी जी गये?"

अहिंसा के या अन्य किसी क्षेत्र से त्यागपत्र देने न देने की बात तो स्वयं मुझको ही विचारना है। आदमी अधिकार से त्यागपत्र दे सकता है। जो कर्त्तव्य से त्याग-पत्र दे वह कर्तव्यभ्रष्ट गिना जायगा। सच्ची कहने और करने वाले के भाग्य में अनेक बार लोकनिन्दा तो होती ही है।

जब तक मुझे ऐसा लगे कि अहिंसा के विषय में मैंने जो कल्पना की है वह सही है तब तक मैं उसे जाहिर न करूं तो कर्तव्यभ्रष्ट होऊंगा।

यदि बछड़े के विषय में मेरे विचार पश्चिम की शिक्षा के आभारी हों तो मेरे लिए शर्म की बात नहीं है।....पश्चिम से मैंने बहुत-कुछ सीखा है। अहिंसा का बहुत-कुछ स्वरूप मैंने वहां से सीखा हो तो इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

अपनी राय को सच मानने के कारण ही मैं उसे प्रकट करता हूं, ऐसी कोई

वात नहीं है। किन्तु बछड़े के बारे में मेरे विचारों के मूल में अहिंसा रही है, अतएव वे कल्याणकारी हैं, यह मानकर मैंने उन्हें प्रकट किया है। बन्दरों के बारे में मैं अपना धर्म नहीं जानता। इस कारण ज्ञान प्राप्त करने के लिए मैंने उनकी चर्चा की है।....बन्दरों के बारे में इतना कह दूं कि जब मेरा कोई वश नहीं चलेगा तभी प्राणहरण तक जाऊंगा। मैं जानता हूं कि इससे बच जाना ही मेरा धर्म है। इसीलिए यह चर्चा की है।

कर्म को मैं अवश्य मानता हूं किन्तु पुरुषार्थ को भी मानता हूं। कर्म का सर्वथा क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना परम-पुरुषार्थ है। बीमार की सेवा में भी कर्म की गति रोकने के मूढ़ प्रयत्न की गन्ध आयेगी। किन्तु फिर भी हम मानते हैं कि जो रोगी की सेवा नहीं करता, उसे दवा नहीं देता, वह घोर हिंसा करता है। दैव और पुरुषार्थ के द्वन्द्वयुद्ध में शामिल हुए बिना जो सेवाकार्य हो सके उसे कर लेने का धर्म मैं जानता हूं और पालने का प्रयत्न करता हूं।

मुझे यह निश्चयात्मक ज्ञान तो नहीं था कि बछड़ा अब चंगा हो ही नहीं सकता। मैंने ऐसे रोगियों को चंगा होते हुए देखा है जिनसे डाक्टरों ने हाथ धो डाले थे। महा अज्ञान में पड़ा हुआ मनुष्य जहाँ तक भविष्य के बारे में अनुमान कर सके वहां तक करे और तदनुसार बर्ताव करे। असंख्य कर्मों के सम्बन्ध में हम ऐसा ही करते हैं। किन्तु हिन्दू संसार को न जाने क्या हो गया है कि वह मौत के नाम से ही भड़क उठता है। तथापि मौत का कम से कम डर हिन्दू को ही होना चाहिए क्योंकि हिन्दू-धर्म में बचपन से ही आत्मा के अमरत्व और शरीर की क्षणभंगुरता की शिक्षा दी जाती है।

बछड़े को मारने में भूल हुई हो तो भी मैं जानता हूं कि उसकी आत्मा की तो कुशल ही है। उसके कष्ट में डूबे हुए शरीर का दो घड़ी पहिले नाश करने में शामिल होने में यदि भूल रही होगी, तो मुझे उस भूल की सजा भोगने की भी तैयारी रखनी चाहिए। किन्तु बछड़े को जो दो घड़ी कम समय तक श्वास लेने को मिला, मुझे उसका अपार दुःख नहीं होता। जो बात मैं बछड़े के सम्बन्ध में कहता हूं वही प्रियजन के सम्बन्ध में कह सकता हूं। कौन जानता है कि हम अपने लालन-पालन से, मोह से, गलत इलाज से कितने सगों के प्राण समय से पहिले जाने देने में मददगार हुए होंगे? प्राणहरण के बाद अश्रुपात करके हम दयाधर्म का पन्थ छोड़ देते हैं और अहिंसा को लजाते हैं। मुझे जो पत्र मिले हैं वे मेरी यह राय दृढ़ करते हैं। मरण का भय अहिंसा को पहिचानने में महा-विघ्नरूप है।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० ११।१०।'२८]

- आदमी अधिकार से त्यागपत्र दे सकता है। जो कर्तव्य से त्यागपत्र दे वह कर्तव्यभ्रष्ट गिना जायगा।
- सच्ची कहने और करने वाले के भाग्य में अनेक बार लोकनिन्दा तो होती ही है।
- कर्म को मैं अवश्य मानता हूँ किन्तु पुरुषार्थ को भी मानता हूं।
- हिन्दू संसार को न जाने क्या हो गया है कि वह मौत के नाम से ही भड़क उठता है, यद्यपि मौत का कम से कम डर हिन्दू को ही होना चाहिए।
- कर्म सर्वथा क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है।
- मरण का भय अहिंसा को पहिचानने में महाविघ्न-रूप है।

२२. एक समस्या

बछड़ा-प्रकरण तुरन्त समाप्त होने वाला नहीं है। अहिंसा के नाम पर हिंसा करने वाले भाई अभी डाकखाने को पैसा दे रहे हैं। कितने मानते हैं कि मेरा साठवाँ वर्ष आया और इसलिए मेरी बुद्धि का नाश हुआ है। सासून अस्पताल में मेरा रोग असाध्य मानकर मेरे डाक्टरों या मित्रों ने मुझे ज़हर की सुई लगा दी होती तो गरीब बछड़ा उससे बच जाता; मैं जो बन्दर के ऊपर मृत्यु-दण्ड की तलवार लटकाये हुए हूं उसका भय हनुमान के वंशजों को न रहता। इनके अलावा दूसरे भी ऐसे ही अहिंसक उद्गारों वाले पत्र आया करते हैं। और जैसे-जैसे ये पत्र आते हैं मुझे लगता है कि 'नवजीवन' में इस विषय की चर्चा करना ठीक ही था। लेखक समझते नहीं कि अहिंसा-धर्म को जानने और मानने का दावा करते हुए भी वे ऐसे पत्र लिखकर हिंसा कर रहे हैं। किन्तु ऐसे पत्रों में दो-चार अपवाद-रूप दूसरे प्रकार के भी हैं। उनमें से एक यहां चुनकर देता हूं। इस पत्र के लेखक कहते हैं—

"बछड़ा-प्रकरण से कितने संशय दूर हुए। अहिंसा की मर्यादा के ऊपर आपने खूब प्रकाश डाला है। किन्तु इसके साथ ही आपने एक नई उलझन भी पैदा कर दी है। वह यह है—कोई मनुष्य या मनुष्य-समुदाय लोगों के बड़े भाग को कष्ट पहुँचा रहा है। दूसरी तरह से उसका निवारण न होता हो तब उसका नाश करें तो यह अहिंसा में खपेगा या नहीं? बछड़ा-प्रकरण में आपने भावना को प्रधानता दी है। इस स्थल में भी पापी-पीड़क का वध करने में भावना ऊँची होने के कारण यह वध क्या अहिंसक नहीं गिना जायगा? फसल का नाश करने वाले जीवों के नाश को आपने हिंसा नहीं गिना है, उसी तरह मानव-समाज का नाश करने वाले आदमी के नाश को क्या आप अहिंसा न मानेंगे?"

विवेकी पाठक तो यह समझ ही गये होंगे कि इस पत्र में मेरे लेख का अनर्थ हुआ है। अहिंसा की जो व्याख्या मैंने दी है, उसमें ऊपर के तरीके से मनुष्य-वध का समावेश हो ही नहीं सकता। जो अनिवार्य जीवनाश करता है उसे मैंने कभी अहिंसा में गिनाया ही नहीं है। वह वध अनिवार्य होकर क्षम्य भले ही गिना जाय किन्तु अहिंसा तो निश्चय ही नहीं है। किसान की हिंसा अथवा लेखक-द्वारा प्रस्तुत हिंसा में समाज का स्वार्थ छिपा है। अहिंसा में स्वार्थ को स्थान नहीं है।

बछड़े के प्राणहरण में केवल बछड़े के ही भले का विचार था। उसमें खेती की या किसी की रक्षा का सवाल नहीं था, उसमें मेरी या किसी दूसरे की सुविधा का प्रश्न नहीं था। दुःख से पीड़ित और जिसकी अन्य सब सेवा हो गई थी, ऐसे बछड़े के प्रति जो कर्तव्य था उसी का सवाल था।

प्रस्तुत लेख के प्रश्न की तुलना बन्दरों के प्रश्न से अवश्य की जा सकती है। लेकिन फिर भी दोनों में बहुत भेद है। बन्दर के हृदय-परिवर्तन का कोई सामाजिक उपाय हमारे पास नहीं है। इसलिए उसका प्राणहरण शायद क्षम्य गिना जाय। किन्तु पापी से पापी कष्टकर मनुष्य का हृदय-परिवर्तन सदा शक्य है। समाज ने ऐसे परिवर्तन के लिए इलाज की योजना भी की है। इसलिए अहिंसक प्रकरण में स्वार्थी मनुष्य-वध को कभी स्थान नहीं मिल सकता। मुझे ऐसा नहीं सूझ सकता कि मनुष्य-वध अनिवार्य हो जाय। याद रखने की ज़रूरत है कि मैंने बछड़े की स्थिति में पड़े हुए मनुष्य के बारे में कल्पना की है, उसका यहां कोई सम्बन्ध नहीं है।

अब रही भावना की बात। यह यथार्थ है कि मैंने भावना को प्राधान्य दिया है। किन्तु केवल भावना से अहिंसा नहीं सिद्ध हो सकती। यह सच है कि अहिंसा की रक्षा अन्त में भावना से होती है। किन्तु यह भी उतना ही सच है कि कोरी भावना से ही अहिंसा न मानी जायगी। भावना की माप भी कार्य से ही निकालनी पड़ती है। जहां स्वार्थ के वश होकर हिंसा की गई है वहां भावना चाहे कितनी ही ऊँची क्यों न हो, फिर भी स्वार्थमय हिंसा तो हिंसा ही रहेगी। इसके विपरीत जो आदमी मन में वैरभाव रखता है किन्तु लाचारी-वश उसे काम में नहीं ला सकता, उसे वैरी के प्रति अहिंसक नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसकी भावना में वैर छिपा हुआ है। इसलिए अहिंसा की माप निकालने में भावना और कार्य दोनों की परीक्षा करनी पड़ती है।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०। १८।१०।'२८]

- **पापी से पापी कष्टकर मनुष्य का हृदय-परिवर्तन सदा शक्य है।**

- केवल भावना से अहिंसा नहीं सिद्ध हो सकती।
- अहिंसा की माप निकालने में भावना और कार्य दोनों की परीक्षा करनी पड़ती है।

२३. जैनी अहिंसा ?

एक जैन मित्र, जिन्होंने जैन दर्शन तथा दूसरे दर्शनों का अभ्यास किया है, वर्तमान चर्चा के विषय में लम्बा पत्र लिखते हैं। यह पत्र विचारने-योग्य है और बड़े विनय तथा शान्ति से दलील देने वाले पत्रों में एक है। इसका सारांश नीचे दे रहा हूं। यह मित्र लिखते हैं—

"आपका अहिंसा का अर्थ लोगों को किंकर्तव्यविमूढ़ बना देता है। हिंसा का सामान्य अर्थ किसी भी प्राणी को देह से मुक्त करना है। और ऐसा न करना अहिंसा है। किसी भी जीव को पीड़ित न करना अहिंसा शब्द का अर्थी विकास है। अहिंसा शब्द के अर्थ में किसी भी तरह के प्राणहरण का समावेश हो, यह बात मेरे दिल में नहीं बैठती। इसका अर्थ यह न कीजिएगा कि कैसी भी परिस्थिति में कैसा भी प्राणहरण उचित न गिना जायगा, ऐसा मैं मानता हूं। वस्तुतः नीति का कोई भी नियम बिलकुल निरपवाद है, ऐसा मुझे प्रतीत नहीं होता। 'अहिंसा परमोधर्मः' यह दिशा-सूचक महान धर्म है किन्तु अहिंसा ही परम धर्म है, ऐसा नहीं कह सकते। इसीलिए आप जिसे अहिंसक प्राणहरण समझते हैं वह धर्म हो सकता है। परन्तु वह अहिंसक नहीं गिना जा सकता।"

मेरा तो ऐसा अभिप्राय है कि ज्यों-ज्यों जीवन का विकास होता है त्यों-त्यों शब्दों के अर्थ का भी विकास होता है। उसे हम अनेक दृष्टान्तों से प्रत्येक धर्म में सिद्ध कर सकते हैं। हिन्दू धर्म में ऐसा एक शब्द यज्ञ है। श्री जगदीश बोस के प्रयोग शब्दों के अर्थ में क्रान्ति पैदा कर रहे हैं। उसी प्रकार यदि हम अहिंसा की साधना करना चाहते हों तो हमें अहिंसा शब्द के अर्थ-समुद्र में कूद पड़ना ही पड़ेगा। अपने पूर्वजों की जमा की हुई पूंजी में वृद्धि करना ही हमारा धर्म है। 'अहिंसा परमोधर्मः' नामक सूत्र को हम नहीं सुधार सकते परन्तु यदि हमें उस पूँजी के वारिस बने रहना है तो हमें उसमें वर्तमान अमित शक्ति की खोज करते रहना चाहिए। किन्तु मैं शब्द के झगड़े में नहीं पड़ना चाहता। वर्णन की हुई परिस्थिति में किया हुआ प्राणहरण अहिंसक न गिना जाय और धर्म माना जाय तो मैं उसका विरोध करना नहीं चाहता। इन मित्र की दूसरी शंका यह है।

"और जिस प्रसंग में आप पुत्री के प्राणहरण को अहिंसक मानते हैं वह प्रयत्न

करने पर भी समझ में नहीं आता। ऐसे मौके पर आक्रमण करने वाले का प्राण लेना उचित हो सकता है परन्तु पुत्री का क्या दोष है? ऐसा आक्रमण होने से लड़की क्या ऐसी अपवित्र हो जाती है कि फिर उसे जीवित रहने का अधिकार ही नहीं रहता? ऐसे संयोग में पुत्री लोकापवाद के डर से प्राणहरण चाहे तो भी उसे ऐसे काम से रोकना हमारा धर्म है। क्या आप यह नहीं मानते? जिस पर बलात् अत्याचार हुआ है ऐसी पुत्री और आक्रमण से जिसके हाथ-पैर कट गये हैं इन दोनों में मुझे ज़रा सा भी फ़र्क़ नहीं दीखता।"

पुत्री अपवित्र हो जायगी, इस भय से मैं उसका प्राणहरण नहीं कर सकता। परन्तु यदि वह अपनी राय बतला सकती हो तो वह यही चाहेगी, ऐसा मानने के कारण ही मैं उसका प्राणहरण करूंगा। लोकापवाद से डर कर यदि वह ऐसी याचना करे तो मैं उसे अवश्य रोकूं। परन्तु स्वयं किसी व्यभिचारी की जबर्दस्ती के वश होने के बदले स्वतन्त्र रीति से मृत्यु से भेंट करना चाहेगी, यह मान कर ही मैं उसका प्राणहरण करूंगा। सती ऐसी याचना स्वतन्त्र रूप से कर सकती है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। अमुक परिस्थिति में वीर पुरुष मृत्यु को विशेष पसन्द करता है, हम जानते हैं और यह उचित ही है। मैं असत्य भाषण करूं, व्यभिचार करने लगूँ, उसकी अपेक्षा मृत्यु को ही अधिक पसन्द करूंगा। मेरा मत है कि शास्त्रों की भी यही आज्ञा है। ऐसी मृत्यु हजारों अथवा लाखों चाहते हैं, ऐसा मेरा अनुभव है। और इस विचार का विस्तृत प्रचार करना मैं आवश्यक समझता हूँ। शील-भंग और दूसरे अंग-भंग के बीच कोई भेद नहीं है, इस बात को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु दूसरे अंग-भंग के विषय में ऐसी वस्तुस्थिति की कल्पना की जा सकती है कि जब मनुष्य उस अंग-भंग की अपेक्षा मृत्यु को अधिक प्रिय मानेगा।

तीसरी शंका यह है—

"अमुक परिस्थिति में बन्दरों को मार डालने का अन्तिम इलाज विचारने के बदले साधारण तौर से दो-चार को जख़्मी करने का उपाय या उसका विचार आप असह्य क्यों गिनते हैं? आप क्या यह नहीं मानते कि अनेक अन्धे, लूले एवं आसाधारण दर्द से पीड़ित प्राणियों में भी जीवित रहने की वृत्ति सबसे अधिक प्रबल होती है? क्या आप यह नहीं मानते कि हम किसी का दुःख न देख सकें इसलिए उसे मार डालने का विचार करें तो उसमें हमारी एकान्त स्वार्थ-बुद्धि समाई है?"

दो-चार बन्दरों को जख़्मी करने का विचार मुझे असह्य लगता है क्योंकि दूसरे प्राणियों के अनुभव से मैं जानता हूं कि उन बन्दरों को आखिर पीड़ित होकर

मरना ही होगा। और यदि मैं किसी को भी मारना उचित मान लूं तो मैं उसे दुखी करके मारने की अपेक्षा तत्क्षण मार डालना ही अधिक पसन्द करूंगा। शायद मैं जख्मी बन्दरों के लिए अस्पताल खोलने को तैयार न होऊं फिर भी उन्हें जख्मी करने में दया-धर्म कहाँ निहित है, यह मेरी समझ के बाहर है। जो अन्धे-लूले इत्यादि जीवित रहने की वृत्ति रखते हैं उन्हें यह ज्ञान है कि कोई न कोई उन्हें सहायता देगा ही। परन्तु किसी अन्धे को हम निर्जन जंगल में छोड़ आवें और उसके विषय में मान लें कि किसी की भी मदद नहीं मिलेगी तो ऐसी परिस्थिति में मैं नहीं मानता कि वह जीवित रहना चाहेगा। प्रत्येक परिस्थिति में प्राणी की जीवित रहने की इच्छा को पुष्ट करना ही चाहिए, इस प्रकार का धर्म मैं नहीं स्वीकार करता हूं।

चौथी शंका यह है—

"जैन धर्म की अहिंसा का विचार तीन सिद्धान्तों पर आधारित है। ऐसी कोई परिस्थिति हो ही नहीं सकती कि जिसमें चाहे जैसी पीड़ा होने पर भी कोई प्राणी विचार-सहित जीवित रहने की आशा का त्याग करके दूसरों के हाथ से मृत्यु चाहे। इसलिए कभी इस प्रकार के प्राणहरण को धर्म न गिनना चाहिए।

"हिंसा से भरी हुई अनेक प्रवृत्तियों से व्याप्त इस संसार-व्यवहार में मुमुक्षु प्राणी को चाहिए कि जहां तक बन सके, बहुत कम प्रवृत्तियों का सूत्रधार बनकर अहिंसा का आचरण करे।

"अनेक हिंसाएं प्रत्यक्ष होती हैं और दूसरी कितनी ही अप्रत्यक्ष। उदाहरण-स्वरूप खेती करने में प्रत्यक्ष हिंसा वर्तमान है। अन्न खाने में खेती से सम्बन्ध रखने वाली अप्रत्यक्ष हिंसा निहित है। जहां इन दो तरह की हिंसा में एक भी हिंसा से बच सकने का उपाय ही नहीं, वहां प्रत्यक्ष हिंसा से यथाशक्ति दूर रह-कर विज्ञ मनुष्य को चाहिए कि अहिंसा-धर्म का पालन करे।

"इन तीन सिद्धान्तों की आप अवश्य चर्चा करें। क्योंकि जैनियों की अहिंसा-दृष्टि और आपकी अहिंसा-दृष्टि में एक महत्व का भेद यह दिखाई पड़ता है कि जैनियों की अहिंसा-दृष्टि निवृत्तिपरक है, जब आपकी अहिंसा-दृष्टि प्रवृत्तिपरक है। यदि अहिंसा देश और काल से अबाधित धर्म हो तो अभी तक अहिंसा का विचार निवृत्ति की ओर झुकने की दृष्टि से ही हुआ है। वर्तमान कालधर्म कर्म-परायण है इसलिए इस कर्मप्रधान वर्तमान युग में अहिंसा का क्या स्वरूप हो सकता है और उसको व्यवहार में कैसे बरता जा सकता है, इस विषय पर लोगों में विचार जागरित करने की परम आवश्यकता प्रतीत होती है।"

ऐसी सिद्धान्त-चर्चा में उतरना मुझे प्रिय नहीं है। ऐसी चर्चा करने में हानि

भी हो सकती हैं, यह मैं जानता हूं। परन्तु कुछ अंशों में यह चर्चा मैंने स्वयं स्वीकार की है इसलिए इन मित्र की इच्छित सिद्धान्त-चर्चा से मैं पूरी तरह इन्कार नहीं कर सकता हूं। पहिले सिद्धान्तों के विषय में मैं अपनी नम्र मान्यता इसी लेख में प्रकट कर चुका हूं। और मेरी ऐसी भी मान्यता है कि चाहे जैसी दशा में हो प्राणी जीने की इच्छा छोड़ ही नहीं सकता, इस स्वीकृत सिद्धान्त में हमारी भीरुता निहित है और इसी के कारण बहुत-सी हिंसा हो रही है। ऐसे ही सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता रहा तो हिंसा घटेगी नहीं, बढ़ेगी। मुझे प्रतीत होता है कि जिस प्रकार यहां पहिला सिद्धान्त रखा गया है वह यदि सचमुच सिद्धान्त ही हो तब तो वह मोक्ष का विरोधी है। जो मनुष्य निरन्तर मोक्ष की याचना किया करते हैं, सदा दूसरों की मृत्यु से अपनी देह धारण करना नहीं चाहेंगे। मुमुक्षु तो इस जगत् में ठीक संख्या में हैं ही। वे जीवित रहने की आकांक्षा को छोड़े हुए हैं, ऐसा हमें मानना ही पड़ेगा। मित्र के दिये गये सिद्धान्त का ये मुमुक्षु भंग तो नहीं करते हैं। अथवा इस सिद्धान्त को शायद मित्र ने इस तरह का रखना चाहा हो। जिन्होंने मोक्ष को बुद्धि से भी नहीं जाना है, ऐसे मूर्छावस्था में पड़े हुए प्राणी-मात्र जीवित रहने की आकांक्षा नहीं छोड़ सकते। ऐसों की आकांक्षा के मध्य जिसने आकांक्षा का त्याग किया है ऐसा मुमुक्षु अपना स्वार्थ साधने अथवा अपनी देह-रक्षा हेतु क्यों आयेगा? यदि मैं इस मोक्ष-प्रकरण को छोड़ कर स्वदेश-प्रेम या कौटुम्बिक प्रेम के क्षेत्र का विचार करूं तब भी मालूम पड़ता है कि जीवित रहने की आकांक्षा छोड़े हुए अनेक देशप्रेमी, कुटुम्ब-प्रेमी, जगत्-प्रेमी बड़े कर्तव्यपरायण होते हैं। आज इस दुनिया में जीवितव्य की आकांक्षा छोड़ने की शिक्षा दी जा रही है। हर एक अवसर पर जीवित रहने की आकांक्षा को साथ लिये फिरना मैं तो स्वार्थ की पराकाष्ठा मानता हूं। मेरे इस कथन का कोई अनर्थ न कर बैठे। उस आकांक्षा का त्याग किसी से भी जबर्दस्ती नहीं कराया जा सकता। यहाँ तो मैं सिर्फ़ जीवितव्य की आकांक्षा के सिद्धान्त के विरुद्ध दृष्टान्त दे रहा हूं। और उस सिद्धान्त के अन्तर्गत निहित अनर्थ बतला रहा हूं।

दूसरे सिद्धान्त को, यदि वह सिद्धान्त कहे जाने योग्य है अथवा उसे चाहे जिस नाम से पहिचाना जाय, मैं स्वीकार करता हूं।

तीसरे सिद्धान्त को मित्र ने जिस प्रकार रखा है उसमें मैं बहुत दोष देख रहा हूं। उस सिद्धान्त का भयंकर नतीजा तो यह निकलता है कि जिस खेती के बिना मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता, वह खेती अहिंसा-धर्म पालन करने वालों को उसी पर जीवित रहते हुए भी त्याग ही देनी चाहिए। मुझे ऐसी परिस्थिति अतिशय पराधीनता की और करुणाजनक प्रतीत होती है। खेती करने वाले असंख्य मनुष्य

अहिंसा धर्म से विमुख रहें और खेती नहीं करने वाले मुट्ठी भर मनुष्य ही अहिंसा सिद्ध कर सकें, ऐसी स्थिति मुझे परम धर्म को शोभा देने वाली अथवा उसे सिद्ध करने वाली नहीं मालूम होती। इसके विपरीत मुझे तो यह प्रतीत होता है कि विज्ञ मनुष्य जब तक खेती का सर्वव्यापक उद्योग न करें तब तक वे नाम मात्र के ही विज्ञ हैं। वे अहिंसा शक्ति को मापने में असमर्थ हैं; उनकी अहिंसा खेती-जैसे व्यापक उद्योग में लगे असंख्य मनुष्यों को धर्म की राह पर लगाने योग्य नहीं हैं। यदि यह सचमुच सिद्धान्त में गिनी जाने वाली वस्तु हो तो इस विषय में अहिंसा के उपासक का कर्तव्य है कि बार-बार विचार करे। खेती के दृष्टान्त का विस्तार करें तो हास्यजनक परिणाम निकलता है। सांप को मारे बिना यदि चल ही नहीं सकता तो मुझे उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार उसे दूसरे से मरवाना चाहिए; चोर को सजा देकर भगाना अनिवार्य हो तो उस हालत में मुझे दूसरों से उसे दण्ड दिलाना चाहिए; मेरे संरक्षण में रहने वाले बालकों और बालाओं का रक्षण जुल्मी मनुष्यों से करना अनिवार्य हो तो मुझे उसे दूसरों से करवाना चाहिए और अहिंसा-धर्म का पालन करना चाहिए। मेरी दृष्टि में यह धर्म नहीं, अधर्म है; यह अहिंसा नहीं, हिंसा है; ज्ञान नहीं, मोह है। जब तक मैं सांप, चोर अथवा आततायी से प्रत्यक्ष भेंट नहीं करूं तब तक भयभीत होने का नहीं। और जब तक मैं भयभीत न होऊं तब तक अहिंसा-धर्म का पालन मेरे लिए वंध्यापुत्र के अस्तित्व-जैसा ही रहेगा। और अहिंसा-धर्म का जो एक परिणाम निकलना चाहिए वह तो कभी प्राप्त हो ही नहीं सकता। अहिंसा के विषय में शास्त्रों की शिक्षा तो यह है कि उसके सान्निध्य में चोर चोरी छोड़ेगा। इस शिक्षा के सत्य का मैं यत्किञ्चित् पालन करके भी अनुभव कर सका हूं। इसीलिए मुझे मालूम होता है कि तीसरा सिद्धान्त जिस प्रकार रखा गया है उसमें कुछ भूल हुई है। परन्तु यदि भूल न भी हुई हो और वास्तव में अहिंसा का यह सिद्धान्त ऐसा ही हो तो भी मेरी बुद्धि या मेरा हृदय उसका स्वीकार कर ही नहीं सकते।

अब रहा प्रवृत्ति का झगड़ा। मैं निवृत्ति-धर्म को मानता हूं परन्तु यह प्रवृत्ति में निहित होनी चाहिए। देहमात्र प्रवृत्ति के बिना एक क्षण भी नहीं टिक सकती, यह स्वयंसिद्ध बात है। प्रत्येक साँस जो हम लेते हैं प्रवृत्तिसूचक है। यहां निवृत्ति का अर्थ यही हो सकता है कि शरीर निरन्तर प्रवृत्त रहने पर भी आत्मा निवृत्त रहे अर्थात् उसके विषय में अनासक्त व्यवहार करे। इसलिए निवृत्तिपरायण मनुष्य सिर्फ परमार्थ के लिए ही अपनी प्रवृत्ति जारी रखे। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि अनासक्त रहकर परमार्थ के लिए की गई प्रवृत्ति ही निवृत्ति है। इसलिए फिर चाहे वह खेती हो या सूत कातना हो या अन्य कोई प्रवृत्ति हो।

इस प्रकार के निवृत्ति-धर्म के अनुयायी मुझ-जैसे को यह जानना और खोजना आवश्यक है कि देहधारी से अहिंसा का पालन किस तरह और किस अंश तक हो सकता है। इस विचार को सादी भाषा में ही रख दूं। खेती इत्यादि मनुष्य जीवन के लिए अनिवार्य हैं। ऐसे उद्योग का कर्ता अहिंसा धर्म को कैसे जाने, उसका पालन किस भांति करे, मुझे यही तो मालूम करना है। धर्म में सर्वव्यापक होने की शक्ति होनी चाहिए। वह जगत् के सौवें हिस्से का इजारा नहीं हो सकता और उसे होना भी नहीं चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि सत्य और अहिंसा जगद्व्यापी धर्म है। इसी से तो उसके अर्थ की खोज में जीवन खपा देते हुए भी मैं रस लूट रहा हूं और उस रस को लूटने को दूसरों को भी आमन्त्रण दे रहा हूं।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी० २५।१०।'२८]

- जो मनुष्य निरन्तर मोक्ष की याचना किया करते हैं वे सदा दूसरों की मृत्यु से अपनी देह धारण नहीं करना चाहेंगे।
- मैं निवृत्ति-धर्म को मानता हूं परन्तु यह प्रवृत्ति में निहित होना चाहिए।
- अनासक्त रहकर परमार्थ के लिए की गई प्रवृत्ति ही निवृत्ति है।
- धर्म में सर्वव्यापक होने की शक्ति होनी चाहिए।
- मेरा दृढ़ विश्वास है कि सत्य और अहिंसा जगद्व्यापी धर्म है।

२४. अहिंसा-प्रकरण

एक सम्पादक लिखते हैं—

"मैंने आपका 'पावक की ज्वाला' नामक लेख पढ़ा। बार-बार पढ़ा। बहुत सन्तोष हुआ। परन्तु बन्दरों के विषय में पढ़कर मैं आश्चर्यचकित हो गया। मेरे दिल में तो यह था कि शायद सूर्य-चन्द्र अपनी गति को रोक सकें परन्तु जिसकी प्रत्येक रग में अहिंसा भरी हुई है, ऐसे आप-जैसे पुरुष यह कभी नहीं कहेंगे कि मैं ऐसा करके आश्रम की रक्षा करूँगा। यह स्थिति मैंने नहीं सोची थी किन्तु मैं अपनी मान्यता के सम्बन्ध में भूल रहा हूँ, ऐसा प्रतीत होता है। बन्दरों के सम्बन्ध का लेख पढ़कर मुझे गहरा आघात पहुँचा। मन में कुछ कुढ़ा भी। मेरी घबराहट दूर करेंगे।"

ऐसे ही दूसरे पत्र भी आये हैं। मैं देखता हूं कि मेरे विषय में बहुत से भले मनुष्यों ने बहुत बड़ी आशा बाँध रखी है। मुझे प्रतीत होता है कि सिद्धान्तों की जो व्याख्याएँ मैंने दी हैं, तदनुसार सम्पूर्णतया आचरण भी रख सकता हूँ, ऐसा ये सज्जन मानते हैं। बछड़े और बन्दरों के विषय में अपनी मनोवृत्ति मैंने जनता

पर प्रकट की, इसी से उपर्युक्त भ्रम दूर हो जाता हैं। यह मेरे लिए बड़े सन्तोष की बात है। मुझे महात्मा के पद की अपेक्षा सत्य अनन्तगुना प्रिय है। जानता हूं कि मैं महात्मा नहीं अल्पात्मा हूं। इसका मुझे बराबर ख्याल हैं। और इसी से महात्मा पद ने मुझे धोखा नहीं दिया। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं प्रति-क्षण हिंसा करके अपना शरीर चलाता हूं और इसी से उस ओर का मोह क्षीण होता जाता है। मैं आश्रम की रक्षा करने में भी हिंसा कर रहा हूं। प्रत्येक साँस लेने में बारीक जन्तुओं की हिंसा करता हूं, ऐसा जानते हुए भी साँस को मैं रोक नहीं सकता। वनस्पति के आहार में भी हिंसा करता हूं, फिर भी आहार का त्याग नहीं करता। मच्छड़ आदि के क्लेश से बचने के लिए मिट्टी का तेल वगैरह चीजों को काम में लेने से उनका नाश होता है, यह जानने पर भी मैं इन नाशक द्रव्यों का उपयोग करना नहीं छोड़ता। साँप के उपद्रव से आश्रमवासियों को बचाने के लिए जब वे उन्हें बिना मारे दूर नहीं रह सकते, मारने भी देता हूं। बैलों को चलाने में आश्रम के मनुष्य उन्हें पैनी आर चुभोते हैं। वह भी सहन कर लेता हूं। इस तरह मेरी हिंसा का अन्त नहीं है। अब मुझे बन्दरों का उपद्रव घबड़ाहट में डाल रहा है। बन्दरों को मार ही डालने का निश्चय मैं कभी कर सकूंगा या नहीं, इसकी मुझे कुछ खबर नहीं हैं। ऐसे निश्चय से मैं दूर भागता हूं। अभी तो अनेक उपयोगी सूचनाओं से मित्र लोग मदद कर रहे हैं। परन्तु आश्रम की खेती रहे या न रहे, मैं बन्दरों का कभी नाश करूंगा ही नहीं, ऐसी प्रतिज्ञा लेने की हिम्मत मुझ में आज तो नहीं हैं। मेरी इस विनम्र स्वीकृति से मित्र लोग मेरा त्याग कर दें तो मैं लाचार हूं। मैं उस त्याग को सहन करूँगा। परन्तु अहिंसा-सम्बन्धी अपनी कमजोरी अथवा अपूर्णता को छिपाकर किसी से मैत्री रखने की मुझे इच्छा नहीं है। अपने विषय में मैं सिर्फ़ इतना ही जोर देकर कह सकता हूँ कि अहिंसादि महा-व्रतों को पहचानने तथा मन, वचन और शरीर से उनका सम्पूर्ण पालन करने का मैं सतत प्रयत्न कर रहा हूं। उस प्रयत्न में मुझे न्यूनाधिक सफलता भी मिली है। फिर भी मैं समझता हूं कि उस दिशा में मुझे बड़ी लम्बी मंजिलें तय करना बाक़ी हैं। अतः यह सम्पादक महाशय यदि मेरी अपूर्णता को क्षम्य न गिनते हों तो उनको सन्तोष देने के लिए मेरे पास कोई अन्य उपाय नहीं है।

दूसरे सम्पादक पूछते हैं—

"मान लो कि मेरे बड़े भाई भयंकर असह्य रोग से कष्ट पा रहे हैं। डाक्टर लोग उनके जीवन की आशा छोड़ देते हैं। मैं भी मानता हूं कि वे बचने वाले नहीं हैं। क्या मुझे उनका प्राणहरण करना चाहिए?"

प्राण-हरण नहीं करना चाहिए, यही मेरा जवाब है। इस विषय में जो प्रश्न

आये हैं उनके आधार पर मैं यह देखता हूं कि पढ़नेवालों ने मेरे लेखों को समझने का कष्ट नहीं उठाया। जो दशा बछड़े की थी उसी स्थिति में पहुँचे हुए मनुष्य के प्राणहरण का भी मैंने समर्थन किया है। पत्रकार अपनी कठिनाई पेश करते समय यह भूल जाते हैं कि वस्तुतः बछड़े-सी स्थिति में मनुष्य शायद ही आता है। इसे इधर-उधर घुमाना कोई मुश्किल नहीं; दूसरे वह बछड़े की भाँति मूक प्राणी नहीं है। इसलिए कई बार वह अपनी इच्छा भी प्रदर्शित कर सकता है। और किसी की इच्छा विना उसका प्राणहरण करने में अहिंसा है, ऐसा मैंने बछड़े के प्रकरण में कहीं नहीं लिखा। बेहोशी की दशा में भी कोई अपने जीने की आशा जल्दी नहीं छोड़ देता। फिर भी आशा टूट जाने पर सेवा करने की आशा और अनुकूलता तो असंख्य प्रसंगों में होती ही है। इसलिए बछड़े की स्थिति को पहुँचा हुआ शायद ही कोई मनुष्य मिले। मनुष्य का उदाहरण तो मैंने इसलिए दिया कि उसके और बछड़े के वीच अहिंसा की दृष्टि से भेद हो ही नहीं सकता। जो न्याय बछड़े का, वही मनुष्य का। परन्तु मुझे आशा थी कि सभी पाठक मेरी मनुष्य तथा बछड़े की तुलना में उन दोनों का भेद समझ ही जायँगे। प्राणहरण की शर्तें मैं फिर से गिना देता हूं।

१. रोग असाध्य हो।
२. सभी ने रोगी के जीने की आशा छोड़ दी हो।
३. उसकी सेवा करना अशक्य हो।
४. उसकी इच्छा जानना भी अशक्य हो।

इन चार प्रकार की स्थितियों में से किसी एक के भी अभाव में प्राणहरण नहीं किया जा सकता।

तीसरे पत्रकार लिखते हैं—

"बछड़े का तो ठीक परन्तु आपके इस उदाहरण से देवी-देवताओं को चढ़ाने के लिए निरीह बकरों आदि का जो वध किया जाता है, उस प्रथा को प्रोत्साहन मिलेगा। क्या इस पर आपने विचार किया है कि बकरों की बलि देने वाले बकरों के कल्याणेच्छुक होने का दावा करते हैं? क्या आप यह नहीं मानते?"

मेरे कार्य का ऐसा दुरुपयोग सम्भव है। वह होगा, यह भी मैं जानता था। परन्तु जव तक पाखण्ड और मूर्खता जगत् में हैं तब तक ऐसे दुरुपयोग होते ही रहेंगे। किस धर्म के वहाने आज तक पाखण्ड और अधर्म नहीं फैला? इसलिए दुरुपयोग के डर से जो उचित हो, उसे करने में मनुष्य को डरना न चाहिए। ऐसा सामान्य नियम है। बलिदान के नाम से बकरों का वध करने वालों के लिए मेरे दृष्टान्त की कोई जरूरत नहीं है। वे अपना कार्य शास्त्र के नाम पर करते हैं। वास्तविक

डर तो यह है कि मेरे कार्यों का दृष्टान्त देकर अपने माने हुए दुश्मनों का वध करने को भी कई एक तैयार होंगे।

वे कहेंगे—‘हम दुश्मन को मारने में अपना और उसका दोनों का कल्याण करते हैं।’ ऐसी दलीलें हमने कई बार सुनी हैं। मेरे लिए तो इतना ही काफी है कि मेरे दृष्टान्त में और उल्लिखित कामों में कोई साम्य नहीं है। बकरे या दुश्मन के वध में उनकी सहमति की तो बात ही नहीं है। यदि बकरे का तथा दुश्मन का कल्याण माना गया है तो वध करने में उतना ही स्वार्थ वध करने वालों का है। परन्तु जिनको आँख खोलकर देखना ही नहीं है वे तो ऐसा स्पष्ट भेद भी नहीं देख सकेंगे। परस्पर तुलना करने वाले तुलना के नियमों का ही लोप कर दें तो इसका इलाज कौन कर सकता है?

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, १।११।'२८]

● मुझे महात्मा-पद की अपेक्षा सत्य अनन्त-गुना प्रिय है।

२५. ‘एक युवक-हृदय’ की शंका

[‘एक युवक-हृदय’ नाम से किसी ने गांधी जी को पत्र लिखकर उनके रुग्ण बछड़े को मरवा डालने की निन्दा की थी। ‘एक युवक-हृदय’ ने अपने लम्बे पत्र में साम्प्रदायिक समस्या एवं अन्य प्रश्नों को भी उठाया था। गांधी जी ने इस गुमनाम पत्र-लेखक को उत्तर देते हुए लिखा कि विचारों का प्रकट करने में दृढ़ता और साहस से काम लेना चाहिए। ‘एक युवक-हृदय’ ने अपना नाम छिपाकर भीरुता का परिचय दिया है, जो अवाञ्छनीय है।

आश्रम की खेती को नुकसान पहुँचाने वाले बन्दरों के विषय में गांधी जी-द्वारा प्रकट किये विचारों की आलोचना करते हुए गुमनाम पत्र-लेखक ने कई दलीलें दी थीं। यह कि थोड़ी-सी खेती के लिए बन्दरों को मारना हिन्दुओं की दृष्टि में हिंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, यह कि बन्दरों को भगाने के लिए गांधी जी को पत्थर फिकवाने, शोर करवाने आदि के उपाय ही काम में लाने चाहिए। बापू जी ने इसका उत्तर निम्न रूप से दिया था।—संपा०]

बन्दर के बारे में

दूसरा प्रश्न बन्दर के सम्बन्ध में है। वह लिखते हैं—

“बन्दर की बाबत मैं इतना ही लिखना चाहता हूं कि स्वप्न में भी उन्हें मरवा

डालने के विचार को स्थान न दीजिएगा। जैसा कि दूसरे किसान बन्दर को डराने के उपाय करते हैं वैसे उपाय पत्थर फिंकवाकर, शोर मचाकर फसल का नुकसान रुकवाइएगा, मगर जरा-सी निर्जीव फसल के लिए प्राणहरण का दण्ड कभी मत दीजिएगा, कभी मत दिलवाइएगा। यह तो 'अल्पस्य हेतोर्बहुहातुमिच्छन्' के समान जान पड़ता है। इसमें दो मत हो ही नहीं सकते कि यह हिंसा ही गिनी जायगी। हिन्दू हृदय कल्पान्त में भी उसे दूसरा नाम नहीं दे सकता। ऐसे ही प्रसंगों में अहिंसा की कसौटी होती है। जरा सी फसल के लिए मृत्यु-दण्ड देना भला कहां का न्याय है, कैसी अहिंसा है? आप-जैसे पुरुषों के मुँह से तो ऐसे बचन भी नहीं निकलने चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप अपने पशुबल के द्वारा उन्हें मरवा डालेंगे तो वे तो जरूर मरेंगे मगर साथ ही उसका फल आपको भी भोगना पड़ेगा। उस महान न्यायाध्यक्ष के समक्ष आपकी दलीलें काम नहीं आयेंगी। इसलिए दया की खातिर आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप ऐसे कार्यों से अपना हाथ और अधिक गन्दा मत कीजिएगा और हिंसा को हिंसा ही मानिएगा। आपके समान सत्यनिष्ठ को विशेष क्या लिखूं?"

आश्चर्य है कि यह प्रश्न अब इस रूप में उठा है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि बन्दरों को मार डालने में हिंसा तो है ही, उनपर पत्थर फेंकने, उन्हें कष्ट पहुँचाने में भी हिंसा है। हिंसा शब्द का अर्थ प्राणहरण में खपा देने के कारण हम लोग इस देश में निर्दय हिंसा कर रहे हैं। यदि हमारी यह दयावनी स्थिति बनी ही रही तो हमें जो अहिंसा-प्रधान देश का निवासी होने का गौरव है, उससे हमारा पतन होने वाला है।

मुझे बन्दर को मारने और उस पर पत्थर फेंकने दोनों ही से बच जाना है। इसके लिए मैंने अहिंसक पाठकों की सहायता माँगी है। वैसी सहायता देने के बजाय अनेक व्यक्ति मेरे लेखों को पढ़ने का कष्ट उठाये बिना, केवल टीका की वर्षा कर रहे हैं। 'एक युवक-हृदय' भी इस दोष से मुक्त नहीं है। मैं यह मान सकता हूं कि मेरे साथ किसी का मतभेद हो, लेकिन मैंने जो लिखा ही नहीं वह भी लिखा होगा, ऐसी धारणा से जो शिक्षा दी जाय उसे मैं भला कैसे ग्रहण कर सकता हूँ?

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ६।१२।'२८]

२६. कुछ टीकाएं, जीवदया और अहिंसा

'एक युवक-हृदय' उपनाम से किसी सज्जन ने मुझे एक पत्र लिखा है। ऐसे पत्र में भी यह युवक अपना नाम देने में डरता है अथवा संकोच करता है। इसका

कारण मेरी समझ में नहीं आता। इस तरह की भीरुता अथवा संकोच हमारे अन्दर सामान्य हो गया है। यह स्थिति स्वतन्त्रता की इच्छा करने वाली प्रजा के लिए शोभनीय नहीं है।

अखबारों का नियम गुमनाम पत्रों को न पढ़ने और फेंक देने का है। मैं अगर इस नियम का पालन करता होता तो 'एक युवक-हृदय' का भ्रान्तिपूर्ण होते हुए भी अच्छी दलीलों वाला विनयी पत्र मैं नहीं पढ़ पाता। इसलिए ऐसे युवकों और दूसरों को मेरी सलाह है कि उन्हें अपना हृदय-दौर्बल्य छोड़ना चाहिए। विनय-अविनय का विवेक न आवे तो जो भाषा कलम या जीभ पर चढ़े उसमें भी प्रस्तुत करने से चूकना नहीं चाहिए और प्रस्तुत जो कुछ हो उसे डर के मारे कहने से हिचकिचाना नहीं चाहिए। जो बोलेगा ही नहीं, वह न तो विनय सीखेगा और न यही जानेगा कि प्रस्तुत क्या है।

बछड़े के बारे में

अब 'एक युवक-हृदय' के विषय पर आ जाना चाहिए।

उनका एक विषय जो अब तक पूरा नहीं हुआ है, बछड़ा-प्रकरण है। यह कहकर कि बछड़े के प्राण-हरण में मैंने महादोष किया है लेखक दलील में उतरते हैं। दलीलों का जवाब तो इस पत्र में आ गया है, इसीलिए उन्हें नहीं लिखता हूं। अन्त में उपसंहार करते हुए लेखक लिखते हैं—

"विशेष कहना यह है कि अगर वह बछड़ा अनबोलता प्राणी न होता तो जरूर ही आपको वैसी पिचकारी देने से मना करता और धीरे-धीरे समय आने पर प्राकृतिक मृत्यु से मरने की इच्छा करता। सचमुच ही आपने दया-भावना की अतिशयता से इस कार्य में गम्भीर भूल की है और पवित्र हाथ को अपवित्र किया है। मुझे विश्वास है कि अगर आप फिर से विचार करेंगे तो आपको इस कथन का सत्य जान पड़ेगा और वह भूल दिये के समान स्पष्ट दिखलाई पड़ेगी।

"आपके समान सत्य का साक्षात् अनुभव करने वाले महात्मा को विशेष लिखना अवश्य अनुचित है। लेकिन फिर भी एक विनती करने की इच्छा होती है। अगर ऊपर की लिखी हुई घटना भूल-रूप जान पड़े तो और आप उसे अपने स्वभाव के अनुसार प्रदर्शित करें तो संसार अवश्य आपका आभारी होगा और विशेष अनर्थ होने से रुकेगा। आपके कृत्य से अनर्थ होने का भय निःसंशय है और उसका पाप आपके सिर होगा। इसलिए आप जितनी जल्दी भूल स्वीकार करेंगे उसमें आपका और जगत् का लाभ है; कल्याण है। अस्तु, प्रभु सबको सम्मति दें।"

इस लेखक को और ऐसे ही दूसरों को मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मेरी स्थिति ऐसी नहीं है कि उनके कहने से मैं भूल मान लूं। मैं इतनी प्रतिज्ञा अवश्य कर सकता हूं कि इस विषय में मुझे जिस क्षण अपनी भूल मालूम होगी, उसी क्षण मैं उसे नम्रतापूर्वक कबूल कर लूंगा और की हुई भूल का प्रायश्चित्त भी करूंगा। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि अगर मैंने भूल ही की होगी तो वह छोटी नहीं गिनी जायगी क्योंकि मैंने भले ही धर्म के नाम पर अज्ञान-अधर्म का आचरण किया हो परन्तु ऐसा करना किसी के लिए शोभनीय नहीं हो सकता। मेरे आचरण का अनुकरण बहुत लोग करते हैं इसलिए मुझे तो वह कभी शोभा नहीं दे सकता। मुझे अपनी इस जिम्मेदारी का पूरा भान है। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि निर्दोष बुद्धि से किसी से भूल हो जाय तो उसके लिए दूसरे को या संसार को कष्ट नहीं भोगना पड़ता। ईश्वर निर्दोष आदमियों की भूल से जगत् को बचा लेता है। मेरे भूल-भरे आचरण का अनुकरण करने वाले तो उसके बिना भी भूल करने वाले थे। मनुष्य अन्त में अपने हृदय का ही अनुकरण करता है। दूसरे का आचरण उसके लिए निमित्त मात्र होता है। बात ऐसी हो या न हो लेकिन मैं इतना जानता हूं कि मेरी भूलों से आज तक संसार को पश्चात्ताप नहीं करना पड़ा है क्योंकि मेरी भूलों के मूल में केवल मेरा अज्ञान ही था। मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि मैं इच्छापूर्वक भूल नहीं करता इसलिए मुझे उससे अनिष्ट होने का भय नहीं है।

अगर मेरी भूल ही होगी तो दैव जाने मैं उसे कब देख सकूंगा। तुलसीदास जी ने गाया है—

रजत सीप महँ भास जिमि, यथा भानुकर वारि।
जदपि मृषा तिहुंकाल सोइ, भ्रम न सकै कोउ टारि ।।

मेरी ऐसी दशा है और ऐसी दशा सभी सत्य-शोधकों की नित्य रहती है और रहनी चाहिए।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न

अब बात रही हुए और होने वाले हुल्लड़ों के बारे में सम्मति दर्शाने की। जब कि मैंने इस प्रश्न को अपने क्षेत्र के बाहर गिना तब मुझे उसके बारे में सम्मति देने की जरूरत भी नहीं रह जाती है और जब तक मैं दोनों पक्षों को जो कुछ कहना हो उसकी जांच न कर लूं तब तक मेरा राय देने बैठना, अयोग्य-अविनयी गिना जायगा। इसमें अन्याय भी हो सकता है। जिस प्रश्न को मैं सुलझा न सकूं, उसके बारे में अपने आप ही पूछ-ताछ करने भी क्यों जाऊं?

किन्तु इसके ऊपर से कोई यह न माने कि मैंने इस प्रश्न के सम्बन्ध में हमेशा के लिए अपने हाथ धो लिये हैं। मैं तो एक कुशल वैद्य के समान, जिसे अपनी दवा पर श्रद्धा है, अपने समय की राह देख रहा हूं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि इस असाध्य जैसे जान पड़ने वाले रोग के लिए मेरी ही दवा रामबाण है और उसका प्रयोग एक या दोनों पक्षों को करना ही पड़ेगा।

इस बीच जिन्हें लड़ना होगा वे मेरे बिना कहे भी लड़ लेंगे। उसमें किसी के प्रोत्साहन की आवश्यकता नहीं रहती है। मैं यह तो चाहता ही नहीं कि कोई अपनी निर्बलता से न लड़े, और नामर्दी दिखलावे। नामर्दी में अहिंसा की वीरता नहीं हो सकती। हिंसा अहिंसा दोनों में बहादुरी की आवश्यकता तो है ही। अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है।

--हि० न० जी, ६।१२।'२८]

● **अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है।**

२७. किं धर्म ?

श्री बाल जी देसाई को एक मित्र ने नीचे लिखा पत्र लिखा है--

"आप जैन सिद्धान्तों और आचार-निरूपण वगैरह के अभ्यासी हैं, अतएव यह पत्र गांधी जी को न लिखकर आप ही को लिखता हूं।

१. क्या आप मानते हैं कि बगैर राँधा हुआ--कच्चा-अन्न सजीव है और उसमें क्रिया-विक्रिया होती रहती है ?

२. चौबीस घंटों तक भिगोया हुआ और बाद में बारह घंटों तक गीला रखा हुआ अंकुरित अन्न हरी वनस्पति के समान ही सजीव माना जाता है। जैन मतानुसार तो वह बासी भी कहा जा सकता है। ऐसी हालत में अहिंसा की दृष्टि से वह वर्ज्य नहीं ठहरता ?

४. कच्चे अन्न से ब्रह्मचर्य अधिक सुरक्षित रहता है, पके या रँधे हुए से कम। इस बारे में आजकल के शरीर-विज्ञान के जानकारों का क्या मत है ?

५. क्या शरीर से नीरोग होने पर शहद त्याज्य नहीं है, शहद के प्रचार में अपार हिंसा नहीं है ?

६. कहा जाता है कि प्रभु ऋषभदेव स्वामी ने अग्नि से अन्न पकाने की महान खोज करके जगत् का उपकार किया है, यह क्या बात है ?

"गांधी जी के 'वनपक्व बनाम अग्निपक्व' लेख को पढ़कर कई तरह के विचार

उठते हैं। गांधी जी उसमें अहिंसा, ब्रह्मचर्य और संयम को भी शामिल कर लेते हैं। मेरे विचार में गांधी जी को चाहिए था कि वह आजकल के स्वराज्य-सैनिक के लिए योग्य आहार पसन्द करने में केवल शरीर-रक्षा के सवाल को ही ध्यान में रखते। लेकिन उन्होंने तो उलटे उसमें धार्मिक आचार-विचार को भी शामिल कर लिया है। आशा है, आप इस सम्बन्ध में अहिंसा की दृष्टि से विचार करेंगे तथा मौका पाकर गांधी जी से भी शान्तिपूर्वक विचार-विमर्श कर लेंगे और तब 'नवजीवन' द्वारा या ऐसा न हो सके तो पत्र द्वारा मुझे लिखेंगे। बड़ी कृपा होगी।"

गीता जी का एक श्लोक है जिसका भावार्थ है, कर्म क्या है, ज्ञानी भी इस पर विचार करते-करते थक गये हैं। यहां कर्म का अर्थ धर्म करें तो भी चलेगा। मैं अपने विचार से धर्म को ही नीति समझता हूं; नीति के विरोधी या उससे परे धर्म को मैं नहीं जानता। धर्म, नीति-पालन की पराकाष्ठा है और नीति के अर्थ हैं सत्य एवं अहिंसा। सत्य साध्य है, अहिंसा साधन। लेकिन प्रस्तुत मामले में और ऐसे ही अन्य अवसरों पर साध्य और साधन एक ही है। इसलिए मैं लिख चुका हूं कि सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

लेकिन सदा-सर्वदा निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि क्या हिंसा है, और क्या अहिंसा है। यह कहना सरल होता तो अहिंसा की कोई कीमत भी न रहती। अहिंसा के क्षेत्र रमणीय हैं क्योंकि वह (अहिंसा) अनन्त है। उसकी शोध करते-करते असंख्य जीव थक चुके हैं और दूसरे असंख्य जीवों ने अपने प्राणों की आहुति दी है। इसी से अहिंसा की सदा जय है।

लेकिन इस क्षेत्र के इतना विशाल होने के कारण इसमें पचने वाले भूल-भुलइया में भी पड़ते हैं। इससे निराश न होना चाहिए; उलटे खूब मेहनत करनी चाहिए।

जैन भाई अहिंसा को अपना एकाधिकार समझते हैं। इसी से जब-जब मैं उनकी मानी हुई अहिंसा की मर्यादा से बाहर जाता हुआ मालूम पड़ता हूं और फिर भी अपने कार्य में अहिंसा का आरोप करता हूं तब कोई सिटपिटाता है, कोई खीझता है और कोई मुझ पर तरस खाता है। इन तीनों तरह के सज्जनों से मेरा यही कहना है कि अगर वे धीरज रखेंगे तो अहिंसा का उलझन-भरा सवाल कुछ-कुछ सुलझ सकेगा। मैं शोधक हूं, साधक हूं; सिद्ध नहीं। अतएव भूल और क्षमा का पात्र हूं। शोध-खोज और विचार-विनिमय के इस युग में अगर मैं अपने विचार-मात्र प्रकट करता हूं तो इससे किसी को कोई हानि नहीं पहुंचती। मैं भूलता होऊंगा तो अपने को सुधारूंगा। मेरी मान्यता में कुछ तथ्य होगा तो जिज्ञासु उससे लाभ उठायेंगे।

अब मैं पत्र के विषय पर आता हूं।

मेरी नम्र सम्मति में भोजन के सम्बन्ध में जैनों में जो विश्वास फैला हुआ है उसमें भूल होना सम्भव है। वनस्पति को पकाकर खाने में मुझे तो अहिंसा की दृष्टि से दोष मालूम होता है। खाद्य वस्तु पेड़ पर से उतारकर तत्काल ही खाने योग्य हो, तो उसे वैसे ही खाने में कम से कम हिंसा है। संग्रह मात्र हिंसापूर्ण है। अग्नि-स्पर्श से घोर हिंसा होती है। आग सुलगाना भी घोर हिंसा है। ऐसी दशा में उस अग्नि में हरी या सूखी वस्तु का होम करना, पकाना और भी ज्यादा हिंसा है। मुझे तो यह बात स्वयंसिद्ध प्रतीत होती है। बगैर अग्नि से छुलाये अथवा सुखाये वनस्पति खाने में उतनी क्रिया कम होती है। हर एक अनावश्यक क्रिया हिंसा-दोष से भरी रहती है। जो आदमी वनस्पति को सुखा-पकाकर खाता है, वह पूर्व-दोष से मुक्त नहीं होता; वनस्पति को अपने शरीर से बाहर रखकर पकाने और फिर उसे खाने से जीव मारने के दोष से मुक्ति नहीं मिलती। अंकुर फूट आने से अनाज बासी नहीं होता; न अंकुर फूटने से पहिले का अनाज निर्जीव ही होता है। अतएव अन्न को अंकुरित करने में मैं कोई बुराई नहीं देखता।

यह एक भिन्न और विचारने-योग्य प्रश्न है कि आग पर पकाई हुई वनस्पति का असर शरीर पर क्या होता है? मेरा अपना और जिन्होंने प्रयोग किये हैं उनका अनुभव यह बतलाता है कि वन-पक्व ताजी, वनस्पति से शरीर को जितनी शान्ति मिलती है, उतनी आग पर पकाई वस्तु से कदापि नहीं मिलती। अग्निपक्व वस्तु में मादकता पैदा होती है, जिससे वह शीघ्र ही विकार उत्पन्न करती हैं। गत चार वर्षों का मेरा अनुभव तो यह है कि जो शारीरिक विकार-शून्यता मुझमें वनपक्व वनस्पति खाने से पैदा हुई थी, पकाया हुआ आहार करके मैं उसे खो बैठा। वही निर्विकारता इस समय मैं फिर से प्राप्त कर रहा हूं। डाक्टरों के भी इसी तरह के अनुभव मेरे पास मौजूद हैं। लेकिन उन्हें यहां देकर लेख के कलेवर को बढ़ाना नहीं चाहता। अगर किसी को तत्सम्बन्धी साहित्य पढ़ना होगा तो सम्बन्धित ग्रन्थों के नाम मैं उसे बतला दूंगा।

शहद के लिए मेरे पास कोई बचाव नहीं है। मैं मानता हूं कि शहद न खाया जाय तो अच्छा है। मैं नीरोग शरीर वालों को शहद लेने की सिफारिश नहीं करता। मैंने शहद का त्याग नहीं किया था इसलिए जब यरवदा जेल में डाक्टर ने मुझे खास तौर पर शहद लेने की सलाह दी तब मैंने खाना शुरू किया था। सो, अब भी खाता हूं। लेकिन मैं इस प्रयोग के अन्त में तो शहद छोड़ देने की आशा लगाये बैठा हूं। शहद का परिमाण तो कम कर ही दिया है। चीनी या खाँड़ के मुकाबले शहद को मैं निर्दोष मानता हूं। डाक्टरों और वैद्यों का भी यही मत है कि शारीरिक दृष्टि से

भी चीनी के मुकाबले शहद अधिक अच्छा है। लेकिन यदि प्रस्तुत प्रयोग सफल हुआ तो शहद से जो कुछ मिलता है प्रयोग में भी ली जाने वाली वस्तु में से वह सहज ही में मिल जाता है। सुधरे हुए तरीकों से शहद चुआने में एक भी मधुमक्खी को कष्ट नहीं पहुंचता। मगर शहद खाने के पक्ष में यह कोई दलील नहीं है।

आरोग्य, अहिंसा और अर्थ के बीच मैं कोई भेद नहीं मानता। जो आरोग्यवर्धक हैं, उसे अहिंसा का पोषक और अर्थ का अविरोधी होना चाहिए। यहां आरोग्य से मतलब शुद्ध और सच्चे आरोग्य से है। इस कंगाल देश में जहां समाज अस्तव्यस्त हो गया है, करोड़ों स्त्री-पुरुष भूखों मर रहे हैं अर्थ का प्रश्न विकट ही है। इस प्रयोग की सफलता का रहस्य ही यह है कि यह कंगालों के लिए साध्य और सुलभ हो जाय। फिर भी यह तो दूर की बात है। मैं स्वयं केवल शरीर को ध्यान में रख कर वह प्रयोग नहीं कर सकता जिसे मैं धर्म-विरुद्ध मानता हूं। उसका आचरण करके मैं जीना नहीं चाहता और न स्वराज्य ही पाना चाहता हूं। मैं तो धर्म और अर्थ, सत्य और स्वराज्य, स्वराज्य और सर्वराज्य, देशहित और सर्वहित का मेल मिलाने में ही पुरुषार्थ मानता हूं। यही मोक्ष का मार्ग है। इसी में मैं दिलचस्पी लेता हूं; रसपान करता हूं। जो चाहे वह इस रस को भले ही लूटे। इससे भिन्न किसी दृष्टि से मेरा एक भी काम नहीं होता।

ऋषभदेव स्वामी की शोध के बारे में मैं कुछ नहीं जानता।

--न० ज०। मूल गुजराती। हि०, न० जी०, २५।७।'२९]

- **मैं अपने विचार से धर्म को ही नीति मानता हूं। नीति के विरोधी या उससे परे धर्म को मैं नहीं जानता।**
- **धर्म, नीति-पालन की पराकाष्ठा है।**
- **नीति के अर्थ हैं सत्य एवं अहिंसा।**
- **सत्य साध्य है, अहिंसा साधन।**
- **सत्य और अहिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।**
- **अहिंसा के क्षेत्र रमणीय हैं क्योंकि वे अनन्त हैं।**
- **मैं शोधक हूं, साधक हूं; सिद्ध नहीं।**
- **वनस्पति को पकाकर खाने में मुझे तो अहिंसा की दृष्टि से दोष मालूम होता है।**
- **संग्रहमात्र हिंसापूर्ण है।**
- **अग्निस्पर्श से घोर हिंसा होती है। आग सुलगाना भी घोर हिंसा है।**
- **वनपक्व ताजी वनस्पति से शरीर को जितनी शान्ति मिलती है, उतनी आग पर पकाई वस्तु से कदापि नहीं मिलती।**

- मैं मानता हूं कि शहद न खाया जाय तो अच्छा है।
- आरोग्य, अहिंसा और अर्थ के बीच मैं कोई भेद नहीं मानता। जो आरोग्यवर्द्धक है उसे अहिंसा का पोषक और अहिंसा का अविरोधी होना चाहिए।
- जिसे मैं धर्म-विरुद्ध मानता हूं, उसका आचरण करके मैं जीना नहीं चाहता और न स्वराज्य ही पाना चाहता हूं।
- मैं तो धर्म और अर्थ, सत्य और स्वराज्य, स्वराज्य और सर्वराज्य, देशहित और सर्वहित का मेल मिलाने में ही पुरुषार्थ मानता हूं। यही मोक्ष का मार्ग है।

२८. मेरी अपूर्णता

एक पाठक लिखते हैं—

"शहद की गणना विकृति-जनक पदार्थों—घृत, दधि, मधु, मद्य, मांस आदि—में की गई है। मधु की उत्पत्ति में महती हिंसा होती है। उसकी प्राप्ति के लिए मधुमक्खियों के घर उजाड़ने पड़ते हैं। उनकी स्वाभाविक और परिश्रम से पैदा की हुई खुराक को छीनने का हमें कोई हक़ नहीं है। जहां तक मैं जान पाया हूं, अहिंसा के ख़्याल से आपने गाय और बकरी तक का दूध छोड़ रखा है। फिर आप शहद किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं? जिस प्रकार अहिंसा की दृष्टि से रेशमी वस्त्र त्याज्य हैं उसी प्रकार मधु भी त्याज्य होना चाहिए। आशा है, आप इन शंकाओं का निवारण अवश्य करेंगे।"

इन पाठक ने जो कुछ लिखा है, उचित ही है। मैं शहद लेता हूं क्योंकि मैंने उसका सर्वथा त्याग अब तक नहीं किया है। मेरी अपूर्णता को जितना मैं जानता हूं दूसरे शायद ही जान सकते हैं। बात यह है कि ऐसी कई वस्तुएं हैं जिनका त्याग मुझे इष्ट लगता है परन्तु मैं उनका त्याग कर नहीं सका हूं। मेरे स्वास्थ्य के लिए शहद अच्छा माना गया है। मैं कई खाद्य पदार्थों का त्याग कर चुका हूं। इसलिए यह जानते हुए भी कि शहद में हिंसा है मैं उसका त्याग करने का साहस नहीं कर सका हूं। बुद्धि से किसी वस्तु को त्याज्य समझना एक बात है; हृदय से उसे छोड़ना दूसरी बात। इतना लिख चुकने पर मैं कह सकता हूं कि शहद छोड़ने का मेरा प्रयत्न चालू है। परन्तु शहद छोड़ने पर चीनी, गुड़ इत्यादि का छोड़ना भी आवश्यक हो जाता है। विकृति की दृष्टि से चीनी सबसे बुरी चीज है। उसे बनाने में हिंसा भी काफी होती है। शहद से मुझे कोई हानि नहीं हुई है। डाक्टरों का अभिप्राय है कि आरोग्य के लिए मधु अच्छी वस्तु है। एक बात और। मधु चुआने की आधु-

निक पद्धति में मक्खी का नाश तो किया ही नहीं जाता। परन्तु इससे शहद खाने का समर्थन नहीं हो सकता। व्यवसाय-मात्र सदोष है। वह जितना कम किया जाय अच्छा ही है।

अब थोड़ा विषयान्तर करता हूं। पाठक समझ लें कि खाद्याखाद्य में ही अहिंसा की परिसमाप्ति नहीं होती। सूक्ष्म दृष्टि से इन वस्तुओं का ख्याल रखना स्तुत्य है। परन्तु जो अहिंसा परमधर्म हैं, वह इस अहिंसा से कहीं बढ़कर है। अहिंसा हृदय की उच्चतम भावना है। जबतक हमारा आपस का व्यवहार शुद्ध नहीं है, जबतक हम किसी को अपना दुश्मन समझते हैं तबतक यह कहना चाहिए कि हमने अहिंसा-भाव का स्पर्श तक नहीं किया है।

एक मनुष्य खाने-पीने में अहिंसा का सूक्ष्म पालन करता है। परन्तु वह यदि व्यापार में अनीति से काम लेता है, दगा देने से नहीं हिचकिचाता, अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को दुःख देता है तो निःसन्देह वह अहिंसा-धर्म का पालन नहीं कर रहा है। एक दूसरा मनुष्य मांसाहारी है या आहार के नियमों का सूक्ष्मता से पालन नहीं करता परन्तु उसका हृदय दूसरों को दुखी देख कर पिघल जाता है और वह उनकी मदद करने की चेष्टा में अपने आप को खपा देता है तो कहना पड़ेगा कि यह परोपकाररत साधु अहिंसा धर्म को जानता है और उसका भली-भांति पालन करता है।

इस मध्य विन्दु को छोड़ कर आजकल हम धर्म को भुला रहे हैं। इसलिए मैं तो यह चाहता हूं कि हम आपसी वैर के बढ़ने से जो घोर हिंसा हो रही है उसे देखें और उसे मिटाने में ही पुरुषार्थ समझें। अंग्रेजों, मुसलमानों और विजातीयों के साथ हमारा व्यवहार कैसा है, इस धर्म का परिशोधन अहिंसा का सच्चा क्षेत्र है।

शुद्ध आहार की शोध का काम दैवी सम्पद वाले वैद्यों का है। साधारण जनता इस चीज को समझ भी नहीं सकती। इसके लिए विज्ञान की जानकारी आवश्यक है। शहद को मैं निर्दोष कह दूं तो क्या और सदोष कह दूं तो क्या? जो मधु की उत्पत्ति के शास्त्र को जानता है, जिसने उसके प्रभाव का अनुभव किया है वह इस सम्बन्ध में जो कहे, उसे ही हम सहज भाव से करते रहें। आरम्भमात्र में दोष है। खाद्य पदार्थ मात्र लेने में कुछ न कुछ हिंसा तो है ही। यह सब जान लेने पर हमारे सामने एक ही धर्म रहता है। जिसका त्याग कर सकते हैं, उसका त्याग करें, केवल स्वाद के लिए कभी कुछ न खायें, इस शरीर को ईश्वर के रहने का एक मन्दिर मानकर हम अपने को इसका रक्षक समझें और इसे यथासम्भव और यथाशक्ति शुद्ध रखने की कोशिश करें; इसे भोग का भाजन कदापि न समझें;

नित्य संयम का क्षेत्र मानकर उसे बढ़ाते रहें। बस इतना निश्चय करके हम खाद्या-खाद्य के झगड़े से विरत हो जायं।

--हि० न० जी०, २५।७।'२९]

- बुद्धि से किसी वस्तु को त्याज्य समझना एक बात है, हृदय से उसे छोड़ना दूसरी बात।
- विकृति की दृष्टि से चीनी सबसे बुरी चीज है। उसे बनाने में हिंसा भी काफी होती है।
- खाद्याखाद्य में ही अहिंसा की परिसमाप्ति नहीं होती। जो अहिंसा परम-धर्म है वह इस अहिंसा से कहीं बढ़कर है।
- अहिंसा हृदय की उच्चतम भावना है।
- हम आपसी वैर को बढ़ने से जो हिंसा हो रही है उसे देखें।
- अंग्रेजों, मुसलमानों और विजातीयों के साथ हमारा व्यवहार कैसा हो, इस धर्म का परिशोधन अहिंसा का सच्चा क्षेत्र है।
- आरम्भ मात्र में दोष है।
- खाद्य पदार्थ मात्र लेने में कुछ न कुछ हिंसा तो है ही।

२९. अहिंसा और मांसाहार

....तेरा शरीर तांबे-जैसा होना चाहिए। अगर मछली का प्रतिबन्ध न मानती हो और ऐसा लगता हो कि उसी से तेरा शरीर अच्छा रह सकता है तो बाहर जाकर खा सकती है। इमाम साहब ऐसा ही करते थे। इस विषय पर ज्यादा चर्चा करनी हो तो करना। ....

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। १२।६।'३२]

....तू मरना स्वीकार करे लेकिन मछली न खाये, यह मुझे तो अच्छा लगेगा। इसका अर्थ क्या यह भी है कि तू काड लिवर आइल भी नहीं लेगी? मैं क्या चाहता हूं, इसका विचार नहीं करना है। मैंने तो तेरी मानसिक स्थिति जानने के लिए यह प्रश्न पूछा है।....

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ६।७।'३२]

३०. पशु-बलि और अहिंसा

....बंगाल में रोज दिन-दहाड़े सैकड़ों भेंड़-बकरे कटते और कलकत्ते की कालीमाता को चढ़ाये जाते हैं। उसे रोकने की योग्यता प्रदान करने की याचना मैं ईश्वर से कर रहा हूं।....

--कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ३०।६।'३२]

३१. पशु-बलि और अहिंसा

कई बार ऐसा जी में आता है कि स्वराज्य के बाद कालीघाट पर जाकर सत्याग्रह प्रारम्भ किया जाय और धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा को रोका जाय। इन बकरों की दशा तो अछूतों से भी दयाजनक है। ये सींग भी नहीं मार सकते। इनमें कोई अम्बेदकर भी पैदा नहीं हो सकता। इस हिंसा के विरुद्ध आत्मा कम नहीं जल उठती। बकरे भोग चढ़ाये जाने के बजाय शेर का भोग क्यों नहीं चढ़ाते?

--यरवदा जेल, १८।८।'३२ महादेव भाई की डायरी भाग १. पृष्ठ. ३६२-६३]

३२. वैयक्तिक गोपालन में हिंसा क्यों?

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न--आपने लिखा है कि वैयक्तिक गोपालन में हिंसा है और सामुदायिक में अहिंसा--इसे तनिक और स्पष्ट रूप से समझाइये।

उत्तर--यह तो एक स्वयंसिद्ध-सी बात है कि वैयक्तिक गोपालन में हिंसा है, क्योंकि व्यक्तिगत गोपालन की प्रथा के कारण ही आज गाय बोझ-रूप बन गई है। मैं यह कह चुका हूं कि वैयक्तिक गोपालन में गाय की अच्छी देख-भाल हो ही नहीं सकती। हर आदमी न तो अपना सांड़ रख सकता है, और न किफ़ायत से दूध-घी बेच सकता है। यदि हर एक आदमी अपनी चिट्ठी अपने ही खर्च और प्रबन्ध से भेजना चाहे, तो करोड़ों के लिए यह एक असम्भव बात हो जायगी। यही दशा गोपालन की है। सार्वजनिक डाकघर के द्वारा क्या अमीर और क्या ग़रीब सभी समान रूप से चिट्ठियां भेज सकते हैं। इसी प्रकार यदि गोपालन को सफल होना है, तो वह सहयोग के सहारे ही सफल हो सकेगा। प्रत्येक व्यवित अपने आप में गाय का मालिक बनकर अकेला गो-सेवा या गोपूजा नहीं कर सकता। यह कार्य

तो सब मिलकर ही कर सकते हैं। मालिक तो मेरा एक ही हो सकता है किन्तु मेरी सेवा तो हज़ारों कर सकते हैं। यदि एक ही आदमी मेरी सेवा का अधिकार लेकर बैठ जाय, तो सोचिए, मेरी क्या दशा होगी? ठीक वही दशा आज गाय की हो रही है।

--सेवाग्राम, २४।२।'४२। ह० से० १।३।'४२]

३३. मत्स्य भोज में हिंसा-अहिंसा

प्रश्न--आप तो मछली खानेवालों को उसे खिलाने की बात लिखते हैं। क्या खाने वाला हिंसा नहीं करता? खिलानेवाला उसमें भागीदार नहीं बनता?

उत्तर--दोनों में हिंसा भरी है। भाजी खानेवाला भी हिंसा करता है। देह धारण करने का मतलब है हिंसा में शरीक होना। ऐसी हालत में अहिंसा-धर्म का पालन करना है। वह किस तरह किया जाय, सो मैं कई बार बतला चुका हूं। मछली खानेवाले को ज़बर्दस्ती उसे खाने से रोकने में बहुत ज़्यादा हिंसा है। मछली मारने, खाने और खिलाने वाले जानते भी नहीं कि वे हिंसा करते हैं। और खिलाने वाले जानते भी हैं तो उसे आवश्यक समझकर उसमें भाग लेते हैं। लेकिन जबर्दस्ती करने वाला घोर हिंसा करता है। बलात्कार अमानुषी कर्म है। जो लोग आपस में लड़ते हैं, धन कमाते समय आगा-पीछा नहीं सोचते, दूसरों से बेगार लेते हैं, ढोरों और मवेशियों पर हद से ज्यादा बोझ लादते हैं, उन्हें लोहे के या दूसरे किसी औजार से गोदते हैं वे जानते हुए भी ऐसी हिंसा करते हैं, जो आसानी से रोकी जा सकती है। मछली अथवा मांस खाने वालों को इन चीजों को खाने देने में जो हिंसा है उसे मैं हिंसा नहीं मानता। मैं उसे अपना धर्म समझता हूं। अहिंसा परम धर्म है ही। हम उसके स्वरूप को समझकर हिंसा से जितना बच सकें, बचें।

--ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से०, २४।३।'४६]

३४. बन्दरों की शरारत

बन्दरों की शरारत से लोग थक जाते हैं। दिल में तो खुद भी उनको मारते हैं और कोई मारे तो खुश होते हैं। लेकिन फिर भी जब कोई उनको मारता है, तो वे ही लोग उनका विरोध करते हैं। एक भाई, जो शास्त्रादि के अभ्यासी हैं, लिखते हैं कि बन्दर रसोई बिगाड़ते हैं, चीजें उठा ले जाते हैं, फल मात्र खा और बिगाड़ जाते हैं। यहां तक कि बच्चों को वे उठा ले जाते हैं। दिन-दिन उनकी

संख्या बढ़ती जाती है। वह मुझसे पूछते हैं कि उनके लिए अहिंसा क्या कहती है?

मेरी अहिंसा मेरी ही है। जीव-दया का जो अर्थ किया जाता है उसे मैं पचा नहीं सकता। जो जीव मनुष्य को खा जाय या उसका नुकसान करे, उसे बचाने की दया मुझमें नहीं है। उनकी वृद्धि में भाग लेना मैं पाप समझता हूं। इसलिए मैं चींटियों, बन्दरों और कुत्तों को खाना नहीं खिलाऊंगा। इन जीवों को बचाने के लिए किसी मनुष्य को मैं कभी नहीं मारूंगा।

इस तरह विचार करते हुए मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि बन्दर जिस जगह उपद्रव-रूप हो गये हैं उस जगह उनको मारने में जो हिंसा होती है, वह क्षम्य है। ऐसी हिंसा धर्म्य होती है।

यह सवाल उठ सकता है कि मनुष्य के लिए भी यही नियम क्यों न लागू किया जाय? मनुष्य के लिए यह नहीं लागू किया जा सकता, क्योंकि वह हमारे जैसा ही है। ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि दी है; यह बुद्धि उसने मनुष्येतर प्राणी को नहीं दी।

—ह० से०, ५।५।'४६]

३५. अहिंसा, जीव-दया और धर्माधर्म-विवेक

एक भाई लिखते हैं:—

"५ मई के 'हरिजन बन्धु' में आपने लिखा है कि आपकी अहिंसा में भयानक प्राणियों जैसे शेर, भेड़िया, सांप, बिच्छू इत्यादि को मार डालने की गुंजाइश है।

"आप कुत्तों इत्यादि को खाना नहीं देते। गुजराती समाज के अलावा और भी बहुत से लोग हैं, जो जानवरों को खिलाना पुण्य समझते हैं। आजकल जबकि खुराक की इतनी तंगी है ऐसी भावना अनुचित हो सकती है। लेकिन इतनी बात तो है कि ये जानवर कुत्ते इत्यादि आदमी की बहुत सेवा करते हैं। इन्हें खिलाकर इनसे काम लिया जा सकता है।

"आपने डरबन से स्व० श्री रायचन्द भाई से सत्ताईस सवाल पूछे थे। उनमें एक सवाल यह भी था कि जब सांप काटने आये तो क्या किया जाय। उन्होंने जवाब दिया था कि आत्मार्थी सांप को नहीं मारेगा। सांप काटे तो उसे काटने देगा। किन्तु अब तो आप दूसरी ही बात कह रहे हैं। ऐसा क्यों?"

मैं इस बारे में काफी लिख चुका हूं। उन दिनों सवाल पागल कुत्तों को मारने का था। काफी चर्चा हुई थी, किन्तु मालूम होता है कि वे सब बातें भुला दी गई हैं।

मैं जिस अहिंसा का पुजारी हूं वह निरी जीव-दया नहीं है। जैन धर्म में जीव-दया पर बहुत ज़ोर दिया गया है। वह समझ में आता है। मगर उसका यह मतलब कदापि नहीं कि मनुष्य को छोड़कर जानवरों पर दया की जाय। मैं मानता हूं कि जहां जानवरों पर दया करने की बात लिखी है वहां मनुष्य पर दया करने की बात तो मान ही ली गई है। ऐसा करने में सीमा तोड़ दी गई है और अमल में तो जीव-दया ने टेढ़ा रूप ही लिया है। जीव-दया के नाम पर अनर्थ हो रहा है। बहुत से लोग चीटियों को आटा डालकर सन्तोष मानते हैं। ऐसा मालूम होता है मानों आजकल की जीव-दया में जान ही नहीं रही। धर्म के नाम पर अधर्म चल रहा है, पाखण्ड फैल रहा है।

अहिंसा सबसे ऊंचा धर्म है। वह बहादुरों का धर्म है; कायरों का कभी नहीं। दूसरे लोग मारें, हिंसा करें और हम उससे फायदा उठायें फिर भी हम मानें कि हमने धर्म का पालन किया है, तो यह स्वयं को धोखा देना नहीं हुआ तो और क्या हुआ ?

जिस गांव में रोज बाघ आता है वहां नाम का अहिंसावादी नहीं रहेगा। वह तो वहां से भाग जायगा। और जब कोई दूसरा आदमी उस बाघ को मार डालेगा तब वह वापस आकर अपने घर-बार पर कब्जा करेगा। यह अहिंसा नहीं है। यह तो कायर की हिंसा है। बाघ को मारने वाले ने कुछ बहादुरी तो दिखाई। लेकिन जो दूसरे की हिंसा से लाभ उठाता है वह कायर है। वह अहिंसा को कभी पहिचान नहीं सकता।

देहधारी को थोड़ी-बहुत हिंसा तो करनी ही पड़ती है। वास्तविक धर्म एक होते हुए भी उसके बारे में हर एक की समझ अलग-अलग होती है। इसलिए अपनी शक्ति और समझ के अनुसार उस पर चलते हैं। एक का धर्म दूसरे के लिए अधर्म हो सकता है। मांस खाना मेरे लिए अधर्म है। मगर जो मांस पर ही पला है, जिसने मांस खाने में कभी बुराई नहीं मानी, वह मुझे देखकर मांस छोड़ दे तो उसके लिए वह अधर्म होगा।

मुझे खेती करना हो, जंगल में रहना हो तो उसके लिए अनिवार्य हिंसा मुझको करनी ही पड़ेगी। बन्दरों, परिन्दों और ऐसे जन्तुओं को, जो फ़सल खा जाते हैं, खुद मारना होगा या कोई ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। दोनों एक ही चीज है। जब अकाल सामने हो तब अहिंसा के नाम पर फ़सल को उजड़ने देना

मैं तो पाप ही समझता हूं। पाप और पुण्य स्वतन्त्र चीजें नहीं हैं। एक ही वस्तु एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।

आदमी को शास्त्ररूपी कुएं में डूब नहीं जाना है बल्कि गोताखोर बनकर शास्त्ररूपी समुद्र से मोती निकालने हैं।

इसलिए आदमी को क़दम-क़दम पर हिंसा और अहिंसा का विवेक करना पड़ता है। इसमें न शर्म की गुंजाइश है, न डर की।

हरिनो मारग छे शूरानो नहि कायरनुं काम जोने

हरि का रास्ता वीरों का रास्ता है; उसमें डरपोक का कोई काम नहीं है।

आखिर श्री रायचन्द भाई ने तो यह लिखा था कि अगर मुझमें शक्ति हो और मैं आत्मा को पहचानना चाहूं, तो जब साँप काटने के लिए आये, तब मुझे चाहिए कि मैं उसे काटने दूं। मैंने तो उनका खत मिलने से पहिले या बाद में आज तक कभी साँप को मारा ही नहीं। इसे मैं अपनी बहादुरी नहीं समझता। मेरा आदर्श तो यह है कि मैं साँप और बिच्छू से बेधड़क खेल सकूं। मगर आज तो यह मेरा एक मनोरथ ही है। मैं नहीं जानता कि यह मनोरथ कभी फलेगा या नहीं, और अगर फलेगा तो कब? मैंने अपने आदमियों को सब जगह साँप और बिच्छू मारने दिये हैं। मैं चाहता तो उन्हें रोक सकता था। लेकिन रोकता कैसे? इन जानवरों को अपने हाथ में पकड़कर दूसरों को निडर बनाने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। मुझे यह साहस न होने की शर्म थी। लेकिन वह मेरे या उनके किस काम की? राम नाम की कृपा होगी तो मुझे आशा करनी चाहिए कि किसी दिन ऐसा करने की भी हिम्मत आजायगी। किन्तु तबतक मैं तो ऊपर बताया हुआ धर्म ही जानता हूं। धर्म भी अनुभव से सीखा जाता है, कोरी पंडिताई से नहीं।

—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० ९।६।'४६]

- **मैं जिस अहिंसा का पुजारी हूं वह निरी जीवदया नहीं है।**
- **जो दूसरे की हिंसा से लाभ उठाता है वह कायर है। वह अहिंसा को कभी पहिचान नहीं सकता।**
- **देहधारी को थोड़ी-बहुत हिंसा तो करनी ही पड़ती है।**
- **पाप और पुण्य स्वतन्त्र चीजें नहीं हैं। एक ही वस्तु एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।**
- **आदमी को शास्त्र रूपी कुएं में डूब नहीं जाना है, बल्कि गोताखोर बनकर शास्त्ररूपी समुद्र से मोती निकालने हैं।**
- **धर्म भी अनुभव से सीखा जाता है, कोरी पंडिताई से नहीं।**

३६. अहिंसा के नाम पर हिंसा

[एक भाई ने अलीगढ़ से गांधी जी को लिखा कि, अगर फसल को खा जाने वाले जानवरों को मारे बिना ही उसकी रक्षा आसानी से हो सकती हो तो उन्हें मारना जरूरी नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए उन्होंने सूचना दी कि उनके चाचा ने रात को बैटरी की रोशनी बन्दरों की ओर फेंक-फेंक कर उन्हें अपने खेत छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। उन्होंने गांधी जी को भी यह उपाय स्वीकार करने का सुझाव दिया। गांधी जी ने इस सुझाव के उत्तर में निम्नलिखित पंक्तियां लिखी थीं—संपा०]

यह सूचना पहिले विचार से तो अच्छी लगती है। लेकिन दूर तक विचार करने से लगता है कि बैटरी से काम नहीं चल सकेगा, उससे मेरे खेत की कुछ रक्षा हो सकेगी, आसपास की नहीं। स्वार्थी बनकर दूसरों का नुकसान करना तो मेरे लिए ठीक नहीं होगा। वह भी हिंसा होगी। अहिंसा के नाम पर ऐसी हिंसा करने से हम नहीं झिझकते। हम अपने आँगन से दूसरों के आँगन में साँप फेंकते हैं, कचरा डालते हैं। शुद्ध अहिंसा बताती है कि अगर बन्दर आदि से बचना और समाज को बचाना आवश्यक है तो उनको मार डालना आवश्यक हो जाता है। सामान्य नियम तो यही है कि जितनी हिंसा से हम बच सकें उतनी से बचना हमारा धर्म है। सामाजिक अहिंसा ही समाज के लिए हो सकती है। व्यक्ति को, जहां तक वह जा सकता है, जाना होगा। हर समय, हर क़दम पर ध्यान से विचार करना सबका परम कर्तव्य है। बिना विचारे रूढ़ धर्म पर चलने से हमारी गति रुक जाती है।

—ह० से०, ७।७।'४६]

३७. मूक पशुओं के साथ निर्दयता

मैसूर के एक भाई एक छोटी-सी बात की तरफ मेरा ध्यान आकर्षित करते हैं, लेकिन वह छोटी-सी बात बंगलौर शहर के बाड़ों में बन्द किये जानेवाले अभागे पशुओं और कुत्तों के लिए सचमुच जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। उन बाड़ों की दशा बहुत बुरी है और वहाँ जो जानवर बिना किसी अपराध के बन्द किये जाते हैं, उन्हें न अच्छी तरह खाना दिया जाता है, न पानी। कुत्तों को मारने की मशीन भी कुछ दिनों से बिगड़ी पड़ी है, और ऐसा मालूम होता है कि उसे ठीक करने की कोई कोशिश नहीं की गई।

दुर्भाग्य से मुझे पहिले भी आवारा कुत्तों को मार डालने की सलाह देनी पड़ी थी। अगर लोग इतने निर्दय बन जाते हैं कि झूठी दया दिखाकर आवारा कुत्तों को खाना खिलाते हैं, और पड़ोसियों के लिए मुसीबत खड़ी कर देते हैं, तो ऐसा करना ही पड़ेगा। लेकिन पत्र लिखने वाले भाई ने जिन कुत्तों का वर्णन किया है, उनकी तरह कुत्तों को बाड़ों में बन्द करने और सताने की सलाह मैं नहीं दे सकता। दया की यह अपेक्षा है कि इन पशुओं को किसी ऐसे ढंग से मारा जाय जिसमें वे बिना कष्ट पाये जल्दी-से-जल्दी मर सकें। मैं इस आशा से प्रसन्न होऊंगा कि पत्र लिखने वाले भाई ने अपनी बात को बढ़ा-चढ़ाकर लिखा है। जो भी हो, बंगलौर की म्युनिसिपैलिटी को और ऐसी अन्य संस्थाओं को चाहिए कि वे जानवरों के प्रति किये जाने वाले बर्ताव के तरीके को सुधारें यदि वे तरीके मानवता की कसौटी पर खरे नहीं उतरते।

--अंग्रेजी। कलकत्ता जाते हुए रेलगाड़ी में। ह० से०, १०।११।'४६]



[४]

अहिंसा
विश्व शान्ति एवं युद्ध निवारण

१. अहिंसा का क्षेत्र

[१९२४ ई० में हिन्दू मुस्लिम दंगों से व्यथित होकर गांधी जी ने दिल्ली में २१ दिन का उपवास किया था। समय पर इस व्रत का उद्यापन हुआ और अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण कई सप्ताह तक उन्हें विश्राम लेना पड़ा। इस विश्राम-काल में देश-विदेश से अनेक हितैषी, मित्र एवं साधक उनसे मिलने आते थे और विविध समस्याओं पर चर्चा होती रहती थी। इन्हीं आगन्तुकों में एक अमरीकी थे मि० बोर्ड। अहिंसा के प्रति उनकी निष्ठा थी और बम्बई में अहिंसा एवं अहिं-सात्मक नीति पर उनका भाषण भी हुआ था। इन्होंने गांधी जी से मिलने के लिए समय मांगा किन्तु भेंट के समय के पहिले ही बीमार हो गये और इन्हें अस्पताल जाना पड़ा। श्रीमती बोर्ड ने गांधी जी से आकर क्षमा माँगी। गांधी जी अस्पताल में ही श्री बोर्ड को देखने चले गये। उस समय दोनों में अहिंसा तथा अहिंसात्मक आन्दोलन के सम्बन्ध में जो बातचीत हुई थी उसका विवरण श्री महादेव भाई देसाई ने 'नवजीवन' में दिया था। उसी बातचीत से आवश्यक अंश यहां ले लिये गये हैं। ---संपा०]

श्री बोर्ड०---हमारे देश पर अहिंसा की शिक्षा की बड़ी गहरी छाप पड़ी है। मैं स्वयं इस सिद्धान्त को मानता हूं। हाँ, मुझे और मेरे मित्रों को कुछ कठिनाइयां हैं जिन्हें आपकी हलचल को ज्यादा अच्छी तरह समझकर हम दूर कर सकेंगे। इसलिए आपसे मिलने को मैं बड़ा उत्सुक था।....आपका अहिंसात्मक आन्दो-लन राजनीतिक साधन है या नहीं?

गांधीजी---राजनीतिक क्षेत्र में उसका उपयोग हो रहा है, क्योंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि राजकार्य भी शुद्ध धार्मिक साधनों के द्वारा हो सकता है। केवल राजनीतिक साधन के रूप में इसकी कल्पना नहीं की गई है। इसका मूल तो आत्मशुद्धि में ही है।

श्री बोर्ड०---जब आप अहिंसा की शिक्षा देना चाहते हैं और उसका प्रचार करना चाहते हैं तो क्या आपको सर्वसाधारण जन को अच्छी शिक्षा देने की आव-श्यकता प्रतीत नहीं होती? वे बिना शिक्षा पाये अहिंसा का अर्थ क्या समझेंगे? सत्य को क्या समझेंगे?

गांधी जी—आप जिसे शिक्षा कहते हैं उस अक्षरज्ञान की इस कार्य को सिद्ध करने के लिए कुछ भी आवश्यकता नहीं हैं। साधारण व्यवहार-ज्ञान, सामान्य संस्कार और शिक्षा हम लोगों में खूब है।. . . .

श्री बोर्ड०—क्या आप यह नहीं मानते कि आपकी हलचल कुछ दिनों तक अहिंसात्मक रहकर फिर हिंसात्मक हो जायगी?

गांधी जी—ऐसा तो हुआ ही है और इसीलिए जिस रूप में यह शुरू की गई थी उस रूप में उसे बन्द कर देना पड़ा है। किन्तु आज जो रचनात्मक कार्य मैं कर रहा हूं (चर्खा-खादी, अस्पृश्यता-निवारण और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य) उसको यदि शिक्षित वर्ग उठा ले तो हम लोग अहिंसात्मक मार्ग से ही स्वराज्य प्राप्त करेंगे, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं।

श्री बोर्ड०—किन्तु क्या असंख्य मनुष्य ऐसा मार्ग ग्रहण कर सकेंगे?

गांधी जी—हां, मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह हो सकता है। यह कार्य यन्त्र के रूप में नहीं हो सकता। इसमें लोगों के हृदय पर असर डालना है। वह भी केवल हिन्दुस्तानियों पर ही नहीं, अंग्रेजों पर भी। सामान्य नियम के अनुसार इस शक्ति का माप नहीं किया जा सकता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह कहां और किस समय फैलेगी।. . . .मेरा दृढ़ विश्वास है कि इसमें असंख्य मनुष्यों की जरूरत नहीं है। अनन्य श्रद्धा वाले थोड़े ही आदमी मिल जायं तो बस है। करोड़ों उनके पीछे चले जायँगे। जहां-जहां मैंने सत्याग्रह का प्रयोग किया है वहां-वहां मुझे यही अनुभव हुआ है। यह प्रयोग बड़ा प्रबल और कठिन तो है किन्तु अशक्य नहीं है। सच बात तो यह है कि स्वयं मेरी अहिंसा इतनी शुद्ध और गहन है, इसका दावा मैं नहीं कर सकता; नहीं तो वही बस है। अपने प्रयोग में मैं साथी ढूंढ़ रहा हूं। इसका एक कारण है मेरी अपूर्णता। इस शस्त्र की सिद्धि के सम्बन्ध में मुझे कभी जरा भी अश्रद्धा नहीं हुई।

श्री बोर्ड०—आपकी बात मैं समझ सकता हूं किन्तु ऐसे कार्यों के लिए ईश्वर पर बड़ी श्रद्धा होनी चाहिए। आप लोगों की अपेक्षा हमें बहुत ज्यादा कठिनाई है। हमें तो अपने ही लोगों के विरुद्ध, और सो भी वहां जहां उनका निजी स्वार्थ है, लड़ना होगा।

गांधी जी—मेरी भूल हो सकती है किन्तु मुझे तो मालूम पड़ता है कि हमको ही ज्यादा कठिनाई है। निजी स्वार्थ के साथ तो लड़ना है ही, साथ ही बड़ी संगठित सत्ता के साथ भी लड़ना है. . . .मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि आप लोगों को भी अहिंसा के शस्त्र से ही विजय प्राप्त करनी होगी।

श्री बोर्ड०—हां, यह तो हम कभी के समझ गये हैं। इसके सिवा हमारे पास

दूसरा शस्त्र नहीं है। यदि हम हिंसा-मार्ग ग्रहण करेंगे तो हमारा अर्थात् पश्चिमी राष्ट्रों का नाश ही सम्भवनीय है।

--न० जी०। हि० न० जी०, ९।११।'२४]

● अहिंसा का मूल तो आत्मशुद्धि ही है।

२. युद्ध के प्रति मेरे भाव

[गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के बोअर युद्ध और प्रथम युरोपीय महायुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार को सहायता दी थी। इसके औचित्य पर विचार करते हुए एक युरोपीय श्री रेवरेंड बी० द०' लित ने एक फरासीसी पत्र में लेख लिखा और गांधी जी से कुछ प्रश्न पूछे। गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' में इसका जो उत्तर दिया इसके आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।—संपा०]

सिर्फ अहिंसा की ही कसौटी पर कसने से मेरे आचरण का बचाव नहीं किया जा सकता। अहिंसा की दृष्टि से शस्त्रधारण कर मारनेवालों में और निःशस्त्र रहकर घायलों की सेवा करने वालों में मैं कोई फर्क नहीं देखता। दोनों ही लड़ाई में शामिल होते और उसी का काम करते हैं। दोनों ही युद्ध-दोष के दोषी हैं। लेकिन इतने वर्षों तक आत्मनिरीक्षण करने के बाद भी मुझे यही लगता है कि जिस परिस्थिति में मैं था मेरे लिए वही करना लाजिमी था जो मैंने बोअर युद्ध, युरोपीय महासमर और जुलू बलवे के समय भी सन् १९०६ में किया।

मैं स्वयं युद्ध का पक्का विरोधी हूं। इसलिए मैंने अवसर मिलने पर भी मारक अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग कभी नहीं सीखा।....किन्तु जब तक मैं पशुबल पर स्थापित सरकार के अधीन रहता था और स्वेच्छा से उसकी बनाई सुविधाओं का उपभोग करता था तब तक तो यदि वह कोई लड़ाई लड़े तो उसमें उसकी मदद करना मेरे लिए लाजिमी था। लेकिन जब उससे असहयोग कर लूं और जहां तक अपना वश चले उसकी दी हुई सुविधाओं का त्याग करने लगूं, तब उसकी मदद करना मेरे लिए लाजिमी नहीं रहता।

एक उदाहरण लीजिए। मैं एक संस्था का सभ्य हूं। उस संस्था के पास कुछ खेती है। आशंका है कि उस खेती को बन्दर नुकसान पहुंचायेंगे। मैं मानता हूं कि सभी प्राणियों में आत्मा है और इसलिए बन्दरों को मारना हिंसा समझता हूं। किन्तु फस्ल को बचाने के लिए मैं बन्दरों पर हमला करने को कहने या करने से नहीं झिझकता। मैं इस बुराई से बचना चाहूंगा। उस संस्था को छोड़कर या तोड़कर मैं इस बुराई से बच सकता हूं। लेकिन मैं यह नहीं करता क्योंकि मुझे आशा

नहीं है कि यहां से हटने पर मुझे कोई ऐसा समाज मिल सकेगा जहां खेती न होती हो, और कभी किसी प्रकार के प्राणी का नाश न होता हो अतः यद्यपि यह करते हुए मुझे दर्द होता है फिर भी इस आशा में कि किसी दिन मुझे इस बुराई से बचने का रास्ता मिल जायगा, मैं दीनता के साथ, डरते-काँपते दिल से बन्दरों को चोट पहुँचाने में शामिल होता हूं।

इसी तरह मैं तीनों युद्धों में शामिल हुआ था।....इन तीनों अवसरों पर ब्रिटिश सरकार से असहयोग करने का मेरा कोई विचार नहीं था। अब उस सरकार के सम्बन्ध में मेरी स्थिति बिल्कुल बदल गई है। इसलिए मैं उसके युद्धों में भरसक अपनी खुशी से शामिल नहीं होऊंगा।

लेकिन सभी प्रश्न इससे हल नहीं होते। अगर यहां राष्ट्रीय सरकार हो तो मैं भले ही उसके किसी भी युद्ध में शामिल न होऊँ फिर भी मैं ऐसे अवसर की कल्पना तो कर ही सकता हूं जब सैनिक-शिक्षण प्राप्त करने के इच्छुकों को वह शिक्षा देने के पक्ष में मत देना मेरा कर्तव्य हो। क्योंकि मैं जानता हूं कि अहिंसा में जिस सीमा तक मेरा विश्वास है उस सीमा तक इस राष्ट्र के सभी व्यक्तियों का नहीं है। किसी समाज या व्यक्ति को बलात् अहिंसक नहीं बनाया जा सकता।

अहिंसा का रहस्य अत्यन्त गूढ़ है। कभी-कभी तो अहिंसा की दृष्टि से किसी आदमी के काम की परीक्षा करना कठिन हो जाता है। उसी तरह कभी-कभी उसके काम हिंसा-जैसे लग सकते हैं जबकि वे व्यापक अर्थ में अहिंसा ही हों और बाद में अहिंसक ही सिद्ध भी हों। इसलिए उपर्युक्त अवसरों पर अपने व्यवहार के बारे में मैं सिर्फ इतना ही दावा कर सकता हूं कि उनके मूल में अहिंसा की ही दृष्टि थी।

मेरे लिए अहिंसा महज दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है। यह तो मेरे जीवन का नियम है। इसके बिन मैं जी ही नहीं सकता।....मुझे अपने कर्तव्य का स्पष्ट भान है। अहिंसा और सत्य को छोड़कर हमारे उद्धार का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। मैं जानता हूं कि युद्ध एक तरह की बुराई है और शुद्ध बुराई है। मैं यह भी जानता हूं कि एक दिन इसे बन्द होना ही है। मेरा पक्का विश्वास है कि खून-खराबी या धोखेबाजी से ली गई स्वाधीनता स्वाधीनता ही नहीं है। मेरे किसी काम से अहिंसा का सिद्धान्त ही गलत समझा जाय या मैं किसी भी रूप में असत्य और हिंसा का समर्थक समझा जाऊं, इसकी अपेक्षा यही हजार गुना अच्छा है कि मेरे विरुद्ध लगाये गये सभी इल्जाम बेबचाव समझे जायं। संसार हिंसा पर, असत्य पर नहीं टिका है। उसका आधार अहिंसा है, सत्य है।

—यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हिं० न० जी०, २०।९।'२८]

- अहिंसा का रहस्य अत्यन्त गूढ़ है।
- मेरे लिए अहिंसा महज दार्शनिक सिद्धान्त नहीं है, यह तो मेरे जीवन का नियम है।
- अहिंसा और सत्य को छोड़कर हमारे उद्धार का दूसरा कोई रास्ता नहीं है।
- खून-खराबी या धोखेबाजी से ली गई स्वाधीनता स्वाधीनता नहीं है।
- संसार हिंसा पर, असत्य पर नहीं टिका है। उसका आधार अहिंसा है, सत्य है।

३. कौन-सा मार्ग श्रेष्ठ है ?

....आजकल की युद्धकला केवल घातक शस्त्रों को बनानेवाली कला मात्र रह गई है। उसमें वीरता, शौर्य या सहनशीलता को बहुत ही थोड़ा स्थान प्राप्त है। हजारों स्त्री, पुरुष और बालकों को बटन दबाकर या ऊपर से जहर बरसा कर निमिषमात्र में नामशेष कर देना--मार डालना ही वर्तमान युद्धकला की पराकाष्ठा है।

क्या हम भी अपने संरक्षण के लिए इसी पद्धति का अनुकरण करना चाहते हैं? हमें इसपर विचार करना होगा कि क्या हमारे पास इस संरक्षण के लिए काफी आर्थिक साधन या शक्ति है।....

आलोचक शायद यह पूछेंगे कि अगर किसी चीज़ के लिए यह सुरक्षा आवश्यक ही हो तो उतना भार उठाकर उसकी रक्षा क्यों न की जाय? लेकिन बात तो यह है कि दुनिया आज इस गम्भीर सवाल का जवाब खोजने लगी है कि वह सुरक्षा कर्तव्य है अथवा नहीं। उक्त लेखक[1] जोरदार शब्दों में जवाब देते हुए कहते हैं--किसी भी राज्य के लिए यह कर्त्तव्य नहीं। अगर यह नियम सही-सच्चा हो तो हमें भी सेना की झंझट में नहीं फंसना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं होता कि कोई हमसे बलात् शस्त्र छीन ले। यह सम्भव नहीं कि कोई परदेशी सरकार अपनी शासित जनता से बलात् अहिंसा का पालन करा सके।....

हमें यहां इस बात पर विचार करना है कि क्या हम पाश्चात्य देशों की नकल

१. श्री जान नेविन ने अमेरिका के एक प्रसिद्ध मासिक पत्र 'वर्ल्ड टु-मारो' में 'तलवार-त्याग और सुरक्षा' शीर्षक लेख लिखा था। अपनी टिप्पणी में गांधी जी ने उन्हीं की ओर संकेत किया है।--संपा०]

मात्र करना चाहते हैं? वे आज जिस नरक से गुजर रहे हैं क्या हम भी उसी रास्ते से गुजरना चाहते हैं? और फिर भी हम आशा रखते हैं कि भविष्य में किसी समय दूसरे पथ के पथिक बन जायंगे। या हम अपने सनातन शान्ति के पथ पर दृढ़ रहकर ही स्वराज्य पाना और दुनिया के लिए एक नया मार्ग खोजना चाहते हैं?

तलवार-त्याग की इस नीति में भीरुता को कहीं कोई स्थान नहीं है। यदि हम अपनी सुरक्षा के लिए अपना शस्त्र-बल बढ़ाते हैं और संहार-शक्ति में वृद्धि करते हैं किन्तु यदि हम दुःख सहने की शक्ति नहीं बढ़ाते तो निश्चय है कि हम अपनी रक्षा कदापि न कर सकेंगे।

दूसरा मार्ग यह है कि हम दुःख-सहन की क्षमता बढ़ाकर विदेशी शासन के चंगुल से छूटने का प्रयत्न करें। दूसरे शब्दों में हम शान्तिमय तपश्चर्या का बल प्राप्त करें। इन दोनों तरीकों में वीरता की समान आवश्यकता है। इतना ही नहीं, दूसरे में व्यक्तिगत वीरता के लिए जितनी गुंजाइश है, पहिले में उतनी नहीं है। दूसरे पथ का पथिक बनने में भी थोड़ी-बहुत हिंसा का डर तो रहता ही है। किन्तु यह हिंसा मर्यादित होगी और धीरे-धीरे उसका परिमाण घटता ही जायगा।

आजकल हमारा राष्ट्रीय ध्येय अहिंसा का ध्येय है। किन्तु मन और वचन से तो हम मानों हिंसा की ही तैयारी करते हैं। सारे देश में अधीरता का वातावरण फैला हुआ है। ऐसे समय हमारे हिंसा में प्रवृत्त न होने का एकमात्र कारण हमारी अपनी कमजोरी ही है। ज्ञान और शक्ति का भान होते हुए भी तलवार-त्याग करने में ही सच्ची अहिंसा है। लेकिन इसके लिए कल्पना-शक्ति और जगत् की प्रगति के रूप को पहचानने की शक्ति होनी चाहिए।

आज हम पाश्चात्य देशों की बाहरी तड़क-भड़क से चौंधिया गये हैं और उनकी उन्मुक्त प्रवृत्तियों को भी प्रगति का लक्षण मान बैठे हैं। फलस्वरूप हम यह नहीं देख पाते कि उनकी यह प्रगति ही उन्हें विनाश की ओर ले जा रही है। हमें समझ लेना चाहिए कि पाश्चात्य लोगों के साधनों-द्वारा पश्चिमी देशों की स्पर्धा में उतरना अपने हाथों अपना सर्वनाश करना है। इसके विपरीत अगर हम यह समझ सकें कि इस युग में भी जगत् नैतिक बल पर ही टिका हुआ है तो हम अहिंसा की असीम शक्ति में अडिग श्रद्धा रख सकेंगे और उसे पाने का प्रयत्न करेंगे।. . . .यदि हम अहिंसाबल पाने की इच्छा रखते हैं तो हमें धैर्य से काम लेना होगा और समय की प्रतीक्षा करनी होगी। यदि हम वस्तुतः अपना रक्षण करना चाहते हैं और संसार की प्रगति में स्वयं भी हाथ बटाने की इच्छा रखते हैं तो उसके लिए तलवार-त्याग, पशुबल-त्याग के सिवा दूसरा कोई मार्ग ही नहीं है।

—न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ५।९।'२९]

- ज्ञान और शक्ति का भान होते हुए भी तलवार-त्याग करने में ही सच्ची अहिंसा है।
- यदि हम अहिंसाबल पाने की इच्छा रखते हैं तो हमें धैर्य से काम लेना होगा।

४. अहिंसा और विश्व-जनमत

[किसी व्यक्ति ने निःशस्त्र अहिंसक युद्ध लड़ने वालों की तुलना स्त्री से करते हुए कहा था कि यह अबला सशस्त्र क्रूरों-द्वारा सताई जा रही है, फिर भी इसे विश्व-जनमत की सहानुभूति नहीं प्राप्त है। मानवता के अभाव की इस स्थिति में अहिंसा की विजय किस प्रकार सम्भव है? गांधी जी ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश संकलित हैं।——संपा०]

निःशस्त्र लड़ने वाले राष्ट्र की शक्ति की तुलना स्त्री से करके लेखक ने अहिंसा और स्त्री दोनों की अवगणना की है।

जिसके हाथ में अहिंसा रूपी शस्त्र है वह कभी निःशस्त्र नहीं। उसके पास पाशविक शस्त्र भले न हों किन्तु दिव्य शस्त्र होते हैं। अहिंसा ब्रह्मास्त्र है और उसका प्रतिकार करने वाला शस्त्र विधाता ने न तो आज तक बनाया है, न कभी बना सकेगा।

किन्तु मैं इतना स्वीकार करूंगा कि भारत ने अहिंसा शस्त्र को पूर्ण रूप से नहीं पहिचाना है। उसने युक्ति रूप में ही उसका उपयोग किया है। और यही कारण है कि वह निर्बल का शस्त्र प्रतीत होता है। इसी कारण उक्त प्रश्न उत्पन्न हो गया है और इसीलिए संसार का खून नहीं खौल उठा।

संसार ने हमें नितान्त निर्दोष नहीं माना। उसने हमें कुशल युक्ति-प्रयोक्ता के रूप में पहिचाना है। और इस प्रकार के लोगों पर लाठी-प्रहार होने से जितनी उत्तेजना उत्पन्न हो सकती थी, हुई है। मैं तो इस विषय में त्रैराशिक हिसाब करूंगा। यदि युक्ति रूप में प्रयुक्त अहिंसा से संसार में इतना कोलाहल मचा है तो भारत के शुद्ध अहिंसा के पहिचान लेने पर कितना मचेगा? इसके उत्तर में संसार का खून खौल उठेगा।

——न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ७।५।'३१]

- **जिसके हाथ में अहिंसा रूपी शस्त्र है वह कभी निःशस्त्र नहीं।**
- **अहिंसा ब्रह्मास्त्र है।**

५. शान्तिवाद और विदेशी आक्रमण

[एक अध्यापक ने गांधी जी से पूछा कि क्या कारण है कि बहुत से शान्तिवादी अंग्रेज सैनिक रक्षा और उसकी विस्तृत योजना-सम्बन्धी बातें कर रहे हैं। क्या शान्तिवाद को बहुत दूर तक ले जाना सम्भव नहीं? मान लीजिए कि अबीसीनिया-निवासियों ने इटली का सामना न कर उससे केवल यह कहा होता कि वे शक्ति भर जितना चाहें अत्याचार कर लें तो क्या इटालियन लज्जित होकर उन पर आक्रमण बन्द कर देते? लांसबरी ने कहा था कि वे ऐसा करते।

गांधी जी ने उपर्युक्त प्रश्न का जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश संकलित हैं।—संपा०]

पहिले मैं अबीसीनिया[1] का प्रकरण उठाता हूं। मैं उसका उत्तर केवल सक्रिय प्रतिरोधात्मक अहिंसा के रूप में दे सकता हूं। अहिंसा तो संसार की सबसे अधिक व्यावहारिक शक्ति है और मेरा विश्वास है कि वह कभी असफल नहीं हो सकती।

अबीसीनिया-वासियों ने यदि बलवानों की अर्थात् उस अहिंसा का रुख ग्रहण किया होता जो खण्ड-खण्ड होकर भी झुकना नहीं जानती तो मुसोलिनी को अबीसिनिया में कोई रुचि नहीं रह जाती। इस प्रकार उन्होंने यदि केवल यह कहा होता कि तुम चाहो तो हमें नष्ट कर सकते हो किन्तु तुम्हें एक भी अबीसीनियाई ऐसा नहीं मिलेगा जो तुम्हारे साथ सहयोग करने को प्रस्तुत हो तो मुसोलिनी भला क्या कर सकता था? वह रेगिस्तान तो चाहता नहीं था। मुसोलिनी तो प्रतिरोध नहीं, आत्मसमर्पण चाहता था। यदि उसे ऐसे शान्त, गम्भीर और अहिंसक प्रतिरोध का सामना करना पड़ता जिसका मैंने जिक्र किया है, तो वह अवश्य लौट जाता। यह बात तो निश्चित ही कोई भी कह सकता है कि साधारण रूप से मानव-स्वभाव को इतना ऊंचा उठते हुए नहीं देखा गया। किन्तु यदि हमने शारीरिक बलप्रयोग के विज्ञान में आशातीत प्रगति की है तो आत्म-बल के विज्ञान में हमें उससे पीछे क्यों रहना चाहिए।

अब अंग्रेज शान्तिवादियों की बात लीजिए। मैं जानता हूं कि उनमें कुछ अत्यन्त महान और सच्चे हैं। किन्तु वे शान्तिवाद के विषय में इस प्रकार सोचते

१. द्वितीय महायुद्ध में फासिस्त इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण कर उसे अधिकृत कर लिया था। आजकल अबीसीनिया का नाम इथोपिया हो गया है।—संपा०]

हैं मानों वह शुद्ध अहिंसा से पृथक् चीज है। मैं तो मूलतः अहिंसक हूं। और ऐसे युद्ध में विश्वास करता हूं जिसमें किसी भी प्रकार की हिंसा का नाम न हो।

मूलतः अहिंसक व्यक्ति परिणामों की गणना नहीं करता किन्तु जिन अंग्रेज शान्तिवादियों के विषय में आप कह रहे हैं वे उसकी गणना करते हैं। और जब वे शान्तिवाद की बात करते हैं तो इस मानसिक बचाव के साथ कि वह सफल न हुआ तो शस्त्रों का उपयोग किया जा सकेगा।

उनका अन्तिम आश्रय अहिंसा नहीं, शस्त्र है। यही दशा उडरो विलसन के चौदह सिद्धान्तों की थी। इंग्लैण्ड में किसी ऐसे व्यक्ति को आगे आना ही पड़ेगा जो जीवन्त विश्वास के साथ कह सके कि किसी भी स्थिति में इंग्लैण्ड शस्त्रों का सहारा नहीं लेगा। उनका राष्ट्र शस्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित है अतः यदि वे शक्ति होते हुए भी जानबूझ कर शस्त्रों का उपयोग करने से इन्कार कर दें तो वे सामूहिक रूप से ईसाइयत के क्रियात्मक आचरण का पहिला उदाहरण प्रस्तुत करेंगे और यह एक वास्तविक चमत्कार होगा।

--ह० ज०। अंग्रेजी। ह० से०, १४।५।'३८]

- **अहिंसा तो संसार की सबसे अधिक व्यावहारिक शक्ति है।**
- **मैं तो मूलतः अहिंसक हूं और ऐसे युद्ध में विश्वास करता हूँ जिसमें किसी भी प्रकार की हिंसा का नाम न हो।**
- **मूलतः अहिंसक व्यक्ति परिणामों की गणना नहीं करता।**

६. अहिंसा-द्वारा स्थायी शान्ति

[विश्वशान्ति के सम्बन्ध में न्यूयार्क के 'कास्मोपालिटन' पत्र को गांधी जी ने एक अत्यन्त आशापूर्ण, सारगर्भ उत्तर दिया था। इसका आवश्यक अंश प्रस्तुत है।--संपा०]

स्थायी शान्ति की सम्भावना में विश्वास न करना मानव-स्वभाव की अच्छाई में अविश्वास करना है। अब तक के उपाय इसलिए असफल रहे कि उन्हें अपनाने वाले व्यक्तियों के अन्तस्तल में सत्य का अभाव था। उन्होंने अपने इस अभाव का अनुभव किया न हो, यह बात नहीं हैं। किन्तु जिस प्रकार कोई रासायनिक सम्मिश्रण तबतक असम्भव है, जब तक उसे पूरी प्रक्रिया के साथ न किया जाय, उसी प्रकार शान्ति भी उसकी शर्तों की आंशिक पूर्त्ति से प्राप्त नहीं हो सकती। यदि विनाश के साधनों पर नियन्त्रण रखने के परिणाम का पूरा ज्ञान प्राप्त कर, उनका उपयोग सर्वथा त्याग दें, तो स्थायी शान्ति प्राप्त हो सकती है।

स्पष्टत: यह तभी सम्भव है, जब संसार के बड़े-बड़े राष्ट्र अपने साम्राज्यवादी मनसूबों को छोड़ दें। जबतक बड़े राष्ट्र आत्मा का हनन करने वाली प्रतियोगिता और आवश्यकता का और उनके कारण अपनी भौतिक सम्पत्ति बढ़ाने की इच्छा का त्याग नहीं कर देते, तब तक यह शान्ति असम्भव ही प्रतीत होती है।

मेरा विश्वास है कि समस्त बुराइयों का मूल सर्वव्यापक परमात्मा में जीवन्त श्रद्धा का अभाव है। यह प्रथम श्रेणी का मानवीय दुःख है कि संसार के जो लोग ईसा को शान्तिदूत कहते और उसके सन्देश में विश्वास रखने का साहस करते हैं, वे उस विश्वास का व्यवहार बहुत कम करते हैं। यह एक खेदपूर्ण दृश्य है कि मसीह के सन्देश के क्षेत्र को धर्मात्मा ईसाई कुछ चुने हुए व्यक्तियों तक ही मर्यादित रखते हैं।

मुझे तो बचपन से ही यह सिखाया गया है और मैंने अनुभव-द्वारा इस सत्य की परीक्षा की है कि छोटे-से-छोटे व्यक्ति के लिए भी मानवजाति के प्रारम्भिक गुण प्राप्त करना सम्भव है। इसी असन्दिग्ध विश्वव्यापी सम्भावना के कारण ईश्वर की सृष्टि में शेष जीवों से मनुष्य की पृथकता का ज्ञान होता है। यदि एक भी राष्ट्र विना किसी शर्त के त्याग का यह सर्वोच्च कार्य कर डाले, तो हममें से अनेक अपने जीवन-काल में ही संसार में शान्ति-स्थापना का स्वर्गीय दृश्य देख लेंगे।

—ह० ज०। ह० से०, १८।६।'३८]

- **स्थायी शान्ति की सम्भावना में विश्वास न करना, मानव स्वभाव की अच्छाई में अविश्वास करना है।**
- **मेरा विश्वास है कि समस्त बुराइयों का मूल सर्वव्यापक परमात्मामें जीवन्त विश्वास का अभाव है।**

७. चेकोस्लोवाकिया और अहिंसा का मार्ग

यह जानकर प्रसन्नता होनी ही चाहिए कि सम्प्रति युद्ध का खतरा टल गया। इसके लिए जो मूल्य चुकाना पड़ा क्या वह बहुत अधिक है? क्या इसके लिए अपनी प्रतिष्ठा से हाथ नहीं धोना पड़ा? क्या यह संगठित हिंसा की विजय है? क्या हर हिटलर ने हिंसा को संगठित करने का ऐसा नया तरीका ढूंढ़ निकाला है, जिससे रक्तपात किये बिना ही उसका अर्थ सिद्ध हो जाता है? मैं दावा नहीं करता

कि मुझे युरोप की राजनीति की जानकारी है। किन्तु मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि वहां छोटे राष्ट्र अपना सिर ऊंचा उठा कर कायम नहीं रह सकते। उन्हें तो उनके बड़े बड़े पड़ोसी हज़म कर ही लेंगे। उन्हें बड़े राष्ट्रों का जागीरदार बन कर ही रहना पड़ेगा।

युरोप ने चार दिन के सांसारिक जीवन-हेतु अपनी आत्मा को बेच दिया है। म्यूनिख में युरोप को जो शान्ति प्राप्त हुई है, वह तो हिंसा की विजय है। साथ ही वह उसकी पराजय भी है। इंग्लैण्ड और फ्रांस को यदि अपनी विजय का निश्चय होता तो वे चेकोस्लोवाकिया की रक्षा करने अथवा उसके लिए मर मिटने के अपने कर्त्तव्य का अवश्य पालन करते। किन्तु जर्मनी और इटली की संयुक्त हिंसा के समक्ष वे हिम्मत हार गये। इससे जर्मनी और इटली को क्या लाभ हुआ? क्या इससे उन्होंने मानव-जाति की नैतिक सम्पत्ति में कोई वृद्धि की है?

इन पंक्तियों को लिखने में मेरा उन बड़ी सत्ताओं से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं तो उनकी पाशविक शक्ति से चौंधिया जाता हूं। चेकोस्लोवाकिया की इस घटना में मेरे और भारत के लिए एक सबक मौजूद है। अपने दो बलवान साथियों के अलग हो जाने पर चेक लोग और कुछ कर ही नहीं सकते थे। इतना होते हुए भी मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यदि उन्हें राष्ट्रीय सम्मान-रक्षा के लिए अहिंसा-शस्त्र का उपयोग करना आता होता, तो वे जर्मनी और इटली की समस्त शक्ति का सामना कर सकते थे। उस दशा में वे इंग्लैण्ड और फ्रांस को ऐसी शान्ति-हेतु आरज़ू-मिन्नत करने के अपमान से बचा सकते थे। यह वस्तुतः शान्ति नहीं है। वे अपनी सम्मान-रक्षा-हेतु अपने लूटनेवालों का खून बहाये बिना मर्दों की तरह स्वयं मर जा सकते थे।

मैं यह नहीं मानता कि ऐसी वीरता, अथवा यों कहिए कि निग्रह, मानव-स्वभाव से कोई परे की चीज है। मानव-स्वभाव अपने वास्तविक रूप में तो तभी आयगा, जब इस बात को पूर्ण रूप से समझ लिया जाय कि मानव-रूप धारण करने के लिए उसे अपनी पाशविकता पर रोक लगानी पड़ेगी। इस समय हमें मानव-रूप तो प्राप्त है, किन्तु अहिंसा के गुणों के अभाव में अब भी हमारे अन्दर प्राचीनतम पूर्वज, डार्विन के बन्दर, के संस्कार विद्यमान हैं।

यह सब मैं यों ही नहीं लिख रहा हूं। चेकों को यह ज्ञात होना चाहिए कि जब उनके भाग्य का फैसला हो रहा था, तब कार्य समिति[1] को बहुत कष्ट हो रहा

१. कांग्रेस कार्यसमिति।

था। एक प्रकार से तो यह कष्ट नितान्त स्वार्थ का था। किन्तु इसी कारण यह अधिक वास्तविक था। संख्या की दृष्टि से तो हमारा राष्ट्र बड़ा है; किन्तु संगठित वैज्ञानिक हिंसा में वह चेकोस्लोवाकिया से भी छोटा है। हमारी स्वतन्त्रता केवल संकट में ही नहीं है, बल्कि हम उसकी पुनर्प्राप्ति के लिए लड़ रहे हैं।

चेक लोग पूर्णतया शस्त्रास्त्र-सज्जित हैं, जबकि हम बिल्कुल निःशस्त्र हैं। अतएव कार्यसमिति ने इस बात पर विचार किया कि चेकों के प्रति उसका क्या कर्तव्य है? यदि युद्ध छिड़े तो कांग्रेस को क्या करना चाहिए? क्या हम चेकोस्लोवाकिया के प्रति मैत्री व्यक्त करके इंग्लैण्ड से अपनी स्वतन्त्रता के लिए सौदा करें? अथवा समय पड़ने पर अहिंसा-ध्येय पर स्थिर रहते हुए पीड़ित जनता से कहें कि हम युद्ध में सम्मिलित नहीं हो सकते, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में उस चेकोस्लोवाकिया की रक्षा-हेतु ही क्यों न हो, जिसका एकमात्र अपराध यह है कि बहुत छोटा होने के कारण वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता। सोच-विचार के बाद कार्य-समिति लगभग इस निर्णय पर पहुंची कि वह इंग्लैण्ड से सौदा करने के इस अनुकूल अवसर को तो छोड़ देगी। किन्तु वह विश्वशान्ति, चेकोस्लोवाकिया की रक्षा और भारत की स्वतन्त्रता की दिशा में विश्व के समक्ष यह घोषित करके अपना योग अवश्य देगी कि सम्मानपूर्ण शान्ति का मार्ग निर्दोषों की पारस्परिक हत्या नहीं है। इसका एकमात्र सच्चा उपाय प्राणों तक की बाजी लगाकर संगठित अहिंसा का व्यवहार करना है।

अपने ध्येय के प्रति निष्ठा रखते हुए कार्य-समिति यही तर्क-सम्मत और स्वाभाविक मार्ग ग्रहण कर सकती थी। क्योंकि, कांग्रेसजनों के विश्वास के अनुरूप, यदि भारत अहिंसा से स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकता है, तो इसी उपाय से वह उसकी रक्षा भी कर सकता है। अतएव इसी उदाहरण पर चेकोस्लोवाकिया-जैसे छोटे राष्ट्र भी ऐसा ही कर सकते हैं।

युद्ध छिड़ जाता तो कार्य-समिति क्या करती, यह मैं नहीं जानता। किन्तु अभी तो युद्ध केवल टला है। यह समय सांस लेने के लिए मिला है, अतएव मैं चेकों के समक्ष अहिंसा का मार्ग प्रस्तुत करता हूं। वे यह नहीं जानते कि उनके भाग्य में क्या लिखा है। किन्तु अहिंसा-मार्ग पर चल कर वे कुछ खो नहीं सकते। आज प्रजातन्त्रीय स्पेन का भाग्य अधर में लटक रहा है। यही दशा चीन की भी है। यदि ये सब अन्त में पराजित हो जायंगे तो इसलिए हारेंगे कि विनाश अथवा जनसंहार के विज्ञान में ये अपने विपक्षियों से कम कुशल हैं, या इनका सैन्य-बल अपने विनाशकों की अपेक्षा कम है।

यदि प्रजातन्त्रीय स्पेन के पास जनरल[1] फ्रैंको जैसे साधन हों, चीन के पास जपान-जैसी युद्धकला हो अथवा चेकों के पास हर हिटलर की कुशलता हो तो इन्हें क्या लाभ होगा? मैं तो कहता हूँ कि यदि अपने विरोधियों से लड़ते हुए मरना वीरता है, और यह वास्तव में वीरता है, तो उनसे युद्धहेतु इन्कार करके उनके समक्ष न झुकना और भी श्रेष्ठ वीरता है। जब दोनों ही दशाओं में मृत्यु निश्चित है, तब शत्रु के प्रति मन में कोई द्वेष-भाव रखे बिना छाती खोलकर मरना क्या अधिक श्रेष्ठ नहीं है?

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, ८।१०।'३८]

- **मानव-स्वभाव अपने वास्तविक रूप में तभी आयगा, जब इस बात को पूर्णरूप से समझ लिया जाय कि मानव-रूप धारण करने के लिए उसे अपनी पाशविकता पर रोक लगानी पड़ेगी।**
- **यदि अपने विरोधियों से लड़ते हुए मरने में वीरता है, और यह वास्तव में वीरता है, तो उनसे युद्ध-हेतु इन्कार करके, उनके समक्ष न झुकना और भी श्रेष्ठ वीरता है।**
- **शत्रु के प्रति मन में कोई द्वेष-भाव रखे बिना छाती खोलकर मरना क्या अधिक श्रेष्ठ नहीं है?**

८. यदि मैं चेक[2] होता!

हर हिटलर के साथ जो समझौता हुआ है, उसे मैंने असम्मानपूर्ण शान्ति कहा है। किन्तु ऐसा कहने में मेरा इरादा फ्रांसीसी अथवा अंग्रेज राजनीतिज्ञों की निन्दा करने का तनिक भी नहीं था।....

इससे अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता था, क्योंकि प्रजातन्त्र खूनखराबी से डरता है। जिस तत्वज्ञान को इन दोनों[3] अधिनायकों ने अपनाया है, वह खूनखराबी से बचने को कायरता समझता है। वे तो संगठित हत्या की प्रशंसा में सारी कवि-कला खर्च कर डालते हैं। उनके शब्द या कार्य में कोई धोखा नहीं। वे सदा युद्ध

१. स्पेन में इन दिनों गृहयुद्ध चल रहा था। एक ओर जर्मनी-जैसे तानाशाह राष्ट्र-द्वारा समर्थित जनरल फ्रैंको की सेना थी, दूसरी ओर स्पेनी प्रजातन्त्र की शक्ति।

२. विशिष्ट सन्दर्भ के लिए देखें 'चेकोस्लोवाकिया और अहिंसा का मार्ग' पृष्ठ ३९२-९३।

३. हर हिटलर और सिन्योर मुसोलिनी।

के लिए प्रस्तुत रहते हैं। जर्मनी अथवा इटली में उनके आड़े आने वाला कोई नहीं।....

....युद्ध का विज्ञान शुद्ध और स्पष्ट अधिनायकत्व की ओर ले जाता है। एकमात्र अहिंसा का विज्ञान ही शुद्ध प्रजातन्त्र की ओर ले जाने वाला है।....

रूस का अभी इन बातों से कोई सम्बन्ध नहीं। वहां तो एक ऐसा अधिनायक है, जो खून की नदियां बहाकर शान्ति-स्थापना के स्वप्न देखता है।....

मैं चेकों और उनके द्वारा छोटे एवं निर्बल माने जाने वाले राष्ट्रों से जो कहना चाहता हूं, उसकी भूमिका-स्वरूप यह सब कहना आवश्यक था। ....यह तो स्पष्ट है कि छोटे राष्ट्र या तो अधिनायकों के अधीन हो जायँ अथवा उनके संरक्षण में आने के लिए तैयार रहें। अन्यथा युरोप की शान्ति निरन्तर खतरे में रहेगी। इंग्लैण्ड और फ्रांस यथासम्भव पूरी सद्भावना रखते हुए भी इन राष्ट्रों की रक्षा नहीं कर सकते।....

....अतएव, यदि मैं चेक होता तो इन दोनों राष्ट्रों को देश की रक्षा के दायित्व से मुक्त कर देता। इतना होते हुए भी मुझे जीवित तो रहना ही चाहिए। मैं किसी राष्ट्र अथवा व्यक्ति का आश्रित नहीं बनूंगा। मुझे तो पूर्ण स्वतन्त्रता चाहिए, अन्यथा मैं मर जाऊंगा। शस्त्रों की लड़ाई में जीतने की इच्छा करना तो कोरी शेखी होगी। किन्तु जो मुझे स्वतन्त्रता से वञ्चित करे, उसकी इच्छा के पालन से इन्कार करके, उसकी शक्ति की अवज्ञा कर मैं इस प्रयत्न में निरस्त्र मर जाऊं, तो वह कोरी शेखी नहीं होगी। ऐसा करने में मेरा शरीर तो नष्ट हो जायगा किन्तु मेरी आत्मा अर्थात् मान-मर्यादा की रक्षा हो जायगी।

....परन्तु एक हमदर्द कहता है, 'हिटलर दया-ममता कुछ नहीं समझता। आपका आध्यात्मिक प्रयत्न उसे किसी बात से नहीं रोक सकेगा।'

मेरा उत्तर यह है—'आपका कथन ठीक होगा। इतिहास में ऐसे किसी राष्ट्र का उल्लेख नहीं, जिसने अहिंसात्मक प्रतिरोध को अपनाया हो। अतएव यदि हिटलर पर मेरे कष्ट-सहन का कोई प्रभाव न पड़े, तो कोई बात नहीं। इससे मेरी कोई विशेष हानि न होगी। मेरे लिए तो मेरी मान-मर्यादा ही सब कुछ है और उसका हिटलर की दया-भावना से कोई सम्बन्ध नहीं। मैं अहिंसा में विश्वास रखने के कारण, उसकी सम्भावनाओं को मर्यादित नहीं कर सकता। हिटलर एवं उन जैसे दूसरों का अभी तक यही अनुभव है कि मनुष्य पशुबल के समक्ष झुक जाते हैं। उनके लिए निःशस्त्र स्त्रियों, पुरुषों एवं बच्चों का अपने अन्दर कोई कटुता रखे बिना अहिंसात्मक प्रतिरोध करना एक अद्भुत अनुभव होता। यह कोई नहीं

कह सकता कि उच्च और श्रेष्ठ शक्तियों का आदर करना इनके स्वभाव ही के विपरीत है। उनके भी मेरे ही समान आत्मा है।'

दूसरा हमदर्द कहता है,—'आपका कथन आपके लिए तो बिलकुल ठीक है। किन्तु आप जनता से इस श्रेष्ठ आचरण के आदर की आशा कैसे करते हैं? चेक तो लड़ने के आदी हैं। वे व्यक्तिगत वीरता में संसार में किसी से कम नहीं। अब उन्हें शस्त्र छोड़कर अहिंसात्मक प्रतिरोध की शिक्षा लेने के लिए कहने का आपका प्रयत्न मुझे तो व्यर्थ ही प्रतीत होता है।'

आपका कथन ठीक होगा। किन्तु मुझे अन्तरात्मा का जो आदेश प्राप्त हुआ है, उसका पालन करना ही चाहिए। अपने लोग अर्थात् जनता तक मुझे अपना सन्देश अवश्य पहुंचाना चाहिए।....यही वह तरीका है जिस पर मेरे विचार से, यदि मैं चेक होता, तो मुझे चलना चाहिए था।

डा० बेनेस[1] को मैं यही अस्त्र पेश करता हूं। यह वास्तव में निर्बलों का नहीं, वीरों का अस्त्र है। मन में किसी के प्रति कटुता न रखकर, पूर्णरूप से यह विश्वास रखते हुए कि आत्मा के सिवा किसी का अस्तित्व नहीं रहता, बड़ी से बड़ी सांसारिक शक्ति के समक्ष, घुटने टेकने से दृढ़तापूर्वक इन्कार करने से बढ़कर कोई वीरता नहीं है।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १५।१०।'३८]

- **युद्ध का विज्ञान और स्पष्ट अधिनायकवाद की ओर ले जाता है।**
- **एकमात्र अहिंसा का विज्ञान ही शुद्ध प्रजातन्त्र की ओर ले जाने वाला है।**
- **मुझे तो स्वतन्त्रता चाहिए, अन्यथा मैं मर जाऊंगा।**

९. यहूदी और अहिंसा

कुछ मित्रों ने मेरे पास अखबारों की कतरनें भेजी हैं, जिनमें यहूदियों के प्रति मेरी अपील की आलोचना की गई है। आलोचकों का कहना है कि यहूदियों के साथ जो अन्याय हो रहा है, उसके प्रतिकार-हेतु अहिंसा का उपाय सुझाकर मैंने उनके सामने कोई नई बात नहीं रखी, क्योंकि वे पिछले दो हजार वर्ष से स्पष्टतः अहिंसा का पालन ही तो कर रहे हैं। जहां तक मैं जानता हूं, यहूदियों ने अहिंसा को अपना ध्येय या मुक्ति की नीति भी बनाकर उसका पालन कभी नहीं किया। अपने ऊपर अत्याचार करने वालों के प्रति क्या उनके हृदय में हिंसा का भाव नहीं

१. चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति।

है? क्या वे यह नहीं चाहते कि उनपर होने वाले अत्याचार के लिए तथाकथित लोकतन्त्रात्मक राष्ट्र जर्मनी को दण्ड दें और उन्हें उसके अत्याचारों से मुक्त कर दें? यदि वे ऐसा चाहते हैं, तो उनके हृदय में अहिंसा नहीं है। उनके अन्दर तथाकथित अहिंसा हो भी, तो वह कमजोरों की अहिंसा है।

मैंने जिस बात पर जोर दिया है, वह तो यह है कि दिल से भी हिंसा निकाल दी जाय और इस महान त्याग से उद्भूत शक्ति को काम में लाया जाय। एक आलोचक का कहना है कि अहिंसात्मक रूप में काम करने के लिए उसके पक्ष में लोकमत का होना ज़रूरी है। स्पष्टतः ऐसा लिखते समय उनके ध्यान में निष्क्रिय प्रतिरोध ही है, जिसे कमज़ोरों का शस्त्र समझा जाता है। लेकिन मैंने कमज़ोरों के निष्क्रिय प्रतिरोध और बलवानों के अहिंसात्मक प्रतिरोध में फ़र्क रखा है। इनमें से पिछला भयंकर से भयंकर विरोध में काम कर सकता है और करता है। लेकिन इसका अन्त अधिक से अधिक सार्वजनिक सहानुभूति के साथ होता है। हम यह जानते हैं कि अहिंसात्मक रूप में कष्ट-सहन करने से संगदिल भी पसीज जाते हैं।

मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यहूदी यदि उस आत्मशक्ति की मदद पा सकें, जो केवल अहिंसा से प्राप्त होती है, तो हर हिटलर उनके ऐसे साहस के सामने, जैसा उसने किसी के साथ पेश आने में बड़े पैमाने पर कभी नहीं देखा, सिर झुका देगा। वह इस बात को स्वीकार करेगा कि यह उसके सर्वोत्तम तूफ़ानी सैनिकों की वीरता से भी बढ़कर है। लेकिन ऐसा साहस वही दिखा सकते हैं, जिनका सत्य और अहिंसा अर्थात् प्रेम के देवता में जीता-जागता विश्वास हो।

निःसन्देह आलोचक यह दलील दे सकते हैं कि मैंने जिस अहिंसा का चित्रण किया है, वह सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए नहीं बल्कि केवल बहुत थोड़े से, बहुत ऊंचे, पहुंचे हुए मनुष्यों के लिए ही सम्भव है। लेकिन मैंने इस विचार के विरुद्ध हमेशा कहा है कि उपयुक्त शिक्षण और नेतृत्व मिलने पर सर्वसाधारण से भी अहिंसा का पालन हो सकता है।

....इस सम्बन्ध में जो सबसे ज्यादा उचित आलोचना मुझे मिली है, वह यह है—

'जब मैं जानता हूं कि हिन्दुस्तान में ही, जहां मैं खुद काम कर रहा हूं, जहां मैं अपने आप ही स्वयं को सेनापति मानता हूं, इसे ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया गया है, तो फिर यहूदियों से इसे स्वीकार कराने की आशा कैसे की जा सकती है?'

मेरा जवाब है कि, वे लोग धन्य हैं जो किसी बात की आशा नहीं करते। कम से कम इस मामले में मैं उन्हीं की श्रेणी में हूं। अहिंसा का नुस्खा पा जाने, इसके बारे में निश्चय हो जाने पर मुझे ऐसा लगा कि ऐसी सूरत देखते हुए, जिसमें

इस पर प्रभावशाली रूप से अमल हो सकता है, मैं इस तरफ ध्यान न खींचूं, तो वह मेरी गलती होगी।

—ह० ज०। ह० से०, १७।१२।'३८]

१०. हिंसा की प्यास बलिदान से बुझेगी

....इस समय हिंसा अपने पूरे ज़ोर पर है और जगत् में एक प्रकार का अन्धकार-सा छा गया है। हिन्दुस्तान में भी ज़हर फैलाया जा रहा है।....सरकार हमारे आदमियों को ही हमारे सामने करके स्वयं तमाशा देखना चाहती है। इसे मैं कैसे सहन कर सकता हूं? इसलिए मुझे लगता है कि अब बलिदान दिये बिना यह ज्वाला शान्त नहीं होगी।....

—'बापू की छाया में।' १९३८ ई०]

११. अहिंसा और अन्तर्राष्ट्रीय मामले—१

[मद्रास के पास तम्बरम में होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय पादरी सम्मेलन में भाग लेने वाले कई प्रसिद्ध व्यक्ति गांधी जी के पास भी गये। इनमें रेवरेण्ड विलियम पैटन, रेवरेण्ड लेसली मास और डा० स्मिथ आदि उल्लेखनीय हैं। ईसाई धर्म के इन अग्रणी व्यक्तियों ने तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी पर चिन्ता व्यक्त की। सभ्यता की आड़ में होने वाले पशुबल के नग्न प्रदर्शन की चर्चा करते हुए, उन्होंने गांधी जी से मुक्ति का उपाय पूछा। गांधी जी और उनके बीच हुए प्रश्नोत्तर से अहिंसा-विषयक सामग्री संकलित की जाती है।—संपा०]

अहिंसा सार्वभौम नियम है

प्रश्न—युरोप के शान्तिवादियों की वृत्ति, जिसे हम युरोप वाले अभी बहुत सफलतापूर्वक नहीं ग्रहण कर सके, आपको अपने अहिंसावाद की दृष्टि से कैसी लगती है?

उत्तर—मेरी धारणा के अनुसार तो अहिंसा किसी भी रूप या अर्थ में निष्क्रिय वृत्ति है ही नहीं। अहिंसा को जिस तरह मैं समझता हूं, उसके अनुसार तो यह दुनिया की सबसे बड़ी सक्रिय शक्ति है। इसलिए भौतिकवाद हो या दूसरा कोई भी वाद, यदि अहिंसा उसे नष्ट न कर सकती हो, तो मैं यही कहूंगा कि वह अहिंसा ही नहीं है। अथवा दूसरे शब्दों में कहूं कि अगर आप मेरे सामने कुछ ऐसी समस्याएं लायें,

जिनका मैं हल न बता सकूं तो यही कहूंगा कि मेरी अहिंसा अपूर्ण है। अहिंसा एक सार्वभौम नियम है। अपने आधी शताब्दी के अनुभव में मुझे एक भी ऐसा संयोग, या स्थिति याद नहीं आती, जिसमें मुझे यह कहना पड़ा हो कि मैं लाचार हूं, मेरे पास अहिंसा के अनुसार कुछ उपाय नहीं रहा।

यहूदी और अहिंसा

यहूदियों का सवाल लीजिए।....मेरी दृष्टि से यदि वे अहिंसा का मार्ग स्वीकार कर लें, तो किसी भी यहूदी को विवशता अनुभव करने की ज़रूरत नहीं। यह सही है कि यहूदियों ने अपने बरताव में सक्रिय हिंसा नहीं की है। किन्तु उन्होंने अपने जर्मन विरोधियों के खिलाफ़ सारी दुनिया को उभाड़ने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अमरीका तथा इंग्लैण्ड को लड़ाई में कूद पड़ने की सिफारिश की है।

अगर मैं अपने विरोधी पर प्रहार करता हूं, तब तो मैं हिंसा करता ही हूं। किन्तु अगर मैं सच्चा अहिंसक हूं, तो जब वह मेरे ऊपर प्रहार कर रहा हो, तब भी मुझे उससे प्रेम करना है; उसका कल्याण चाहना है और उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करनी है। यहूदी सक्रिय अहिंसक नहीं बने हैं। अन्यथा वे अपने विरोधी अधिनायकों के कुकृत्यों को क्षमा करते हुए कहते, 'हम उनका प्रहार सहन करेंगे, पर जिस तरह वे अपना प्रहार सहन कराना चाहते हैं, उस तरह हम कभी सहन नहीं करेंगे।'

अगर एक यहूदी भी ऐसा करनेवाला निकल आये तो वह तमाम अत्याचारों को सहन करते हुए भी अपना स्वाभिमान अखण्ड रख सकता है। और वह अपने पीछे ऐसा उदाहरण छोड़ जायगा, जिससे दुनिया के तमाम यहूदियों का उद्धार हो सकता है। वह सारी मानवजाति के लिए भी एक बहुमूल्य विरासत दे जायगा।

चीन की अग्निपरीक्षा

आप पूछेंगे, और चीन के बारे में आप क्या कहते हैं?....आज जो उसका शान्तिवाद-जैसा दिखाई देता है वह शायद निरा प्रमाद ही हो। चाहे जो हो, चीन की वृत्ति सक्रिय अहिंसा की तो है ही नहीं। फिर, वह जापान के आक्रमण से जो अपना वीरतापूर्वक बचाव कर रहा है, वह भी इस चीज़ का प्रमाण है कि चीन की वृत्ति सोद्देश्य अहिंसक नहीं है। उसपर आक्रमण हुआ है और वह बचाव कर रहा है। यह अहिंसा की दृष्टि से कोई जवाब नहीं है। इसलिए सक्रिय अहिंसा की परीक्षा का समय आने पर वह दीन ही ठहरा।....जब हम अहिंसा की दृष्टि से देखेंगे, तब तो मैं यही कहूंगा कि चालीस करोड़ की प्रजा--जपान-जितनी ही

सभ्य और संस्कारी प्रजा जापानी आक्रमण का सामना करने के लिए इस प्रकार निकले, यह अशोभनीय बात है।

चीनियों में यदि मेरी धारणा के अनुसार अहिंसा हो, तो जपानियों के पास जो आधुनिक से आधुनिक प्रकार की हिंसक शस्त्र-सामग्री है, उसका कुछ भी उपयोग उनके लिए शेष न रहे। चीनी तब जपानियों से कहें: अपनी सारी शस्त्र-सामग्री ले आओ; अपनी आधी जनसंख्या हम उसकी भेंट चढ़ाते हैं। पर जो बीस करोड़ बाक़ी बचेंगे, वे किसी भी बात में तुम्हारे सामने घुटने नहीं टेकेंगे।

अगर चीनी यह कह सकें, तो जपान को उसका बन्दी बनकर रहना पड़े।

. . . .यह आपत्ति भी उठाई गई है कि यहूदियों के बारे में तो अहिंसा की हिमायत ठीक है। उनके उदाहरण में तो अत्याचार सहने वाले और अत्याचारी के बीच व्यक्तिगत व्यवहार का सम्बन्ध है। लेकिन चीन में तो जपान दूर से गोला-बारी करने वाली तोपों और हवाई जहाजों से हमला कर रहा है। विध्वंसक विमानारूढ़ अन्तरिक्ष से शायद ही यह देख या जान पाते हैं कि खुद उन्हें किसने मारा और उन्होंने कितनों को मारा। अहिंसा ऐसे हवाई जहाजी युद्ध का सामना किस तरह कर सकती है?

इसका जवाब यह है कि हवाई जहाजों से जो संहारक बम बरसाये जाते हैं, उन्हें बरसाने वाले हाथ मनुष्य के ही हैं। उन हाथों को जो हुक्म देता है वह भी मानव-हृदय है। फिर, इस सारे संहारक बमवर्षा के पीछे मनुष्य का हिसाब भी है कि पर्याप्त मात्रा में ऐसे संहारक बम बरसाने से आवश्यक परिणाम निकलेगा। मतलब यह कि शत्रु आत्म-समर्पण कर देगा और हम उससे जो चाहते हैं, करा लेंगे।

लेकिन मान लीजिए कि सारी प्रजा ने निश्चय कर लिया है कि वह किसी भी तरह अत्याचारी के अधीन नहीं होगी, तथा उसकी पद्धति से उसका सामना भी नहीं करेगी, तो ऐसी स्थिति में अत्याचारी को उस प्रजा पर संहारक बम बरसाना अनुकूल नहीं हो सकता। अगर अत्याचारी के आगे ढेर-सा भोजन रख दिया जाय, तो एक समय ऐसा आयगा, जब उसका पेट और ज्यादा भोजन ठूंसने से इन्कार कर देगा।

अगर दुनिया के सारे चूहे कान्फ्रेंस करके यह निश्चय कर लें कि बिल्ली से डरेंगे नहीं, बल्कि सबके सब सामने जाकर उसके मुंह में समा जायंगे, तो सचमुच मूषक जाति का उद्धार हो जाय। . . . .

मैंने अहिंसा का सबक़ अपनी पत्नी से सीखा था। मैं हमेशा उसे अपनी इच्छा के आगे झुकाने की कोशिश करता था। वह एक तरफ तो निश्चयपूर्वक दृढ़ता के

साथ मेरी इच्छा का मुकाबला करती और दूसरी ओर मैं अपनी जड़तावश उसे जो यातना देता, उसे शान्तिपूर्वक सहन करती।

अन्त में उसके इस शान्तिमय विरोध से मुझे ज्ञानोदय हुआ। मुझे अपनी शर्म का भान हुआ और मेरा यह मूर्खतापूर्ण मनोरोग दूर हो गया कि मैं उसपर स्वामित्व जताने के लिए जन्मा हूं। इस तरह अन्त में वह मुझे अहिंसा सिखानेवाली मेरी गुरु बनी। मैंने दक्षिण अफ्रीका में जो कुछ किया, वह उसका विस्तार मात्र था, जो कुछ कि कस्तूर बा ने अनिच्छापूर्वक भी अपने व्यक्तिगत बर्ताव में आचरण करके बतलाया था।

--ह० से०, ७।१।'३९]

- **मेरी धारणा के अनुसार तो अहिंसा किसी भी रूप या अर्थ में निष्क्रिय वृत्ति है ही नहीं।**
- **जिस तरह मैं समझता हूँ, उसके अनुसार तो यह दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति है।**
- **अहिंसा एक सार्वभौम नियम है।**
- **मैंने अहिंसा का सबक़ अपनी पत्नी से सीखा था।**

१२. अमरीकियों को अहिंसा का उपदेश

[इलाहाबाद के ईविंग क्रिश्चियन कालेज और एग्रीकल्चरल इंस्टिट्यूट के नवयुवक अमेरिकन अध्यापक अमरीका लौटते हुए गांधी जी से मिले। एक अमरीकी अध्यापक ने गांधी जी से कहा कि वे एक पुराने, अनुभवी नेता हैं। नौजवानों को अपना जीवन मानव-सेवा में उत्सर्ग करने के लिए वे क्या सलाह देते हैं? गांधी जी ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश यहां दिये जा रहे हैं।—संपा०]

सवाल ठीक तरह नहीं किया गया है। सत्याग्रह का शस्त्र ग्रहण करते समय आपको अपना उत्सर्ग नहीं करना पड़ता। लेकिन आप भारी से भारी खतरे और उत्तेजना का सामना करने के लिए भी, बदले की भावना बिना, अपने को तैयार करते हैं। इससे आपको समय आने पर अपने उद्देश्यों के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करने का अवसर मिलता है। अहिंसक रूप में ऐसा कर सकने के लिए पहिले उसके अभ्यास की आवश्यकता है।

अगर आप पुराने ढंग में विश्वास रखते हैं, तो आप जाकर सैनिक बनने की तैयारी करते हैं यानी उसकी शिक्षा पाते हैं। अहिंसा के बारे में भी यही बात है।

इसके लिए आपको अपना सारा जीवन-क्रम बदलना और युद्धकाल की ही तरह शान्तिकाल में भी काम करना पड़ेगा।....इसमें आपको अपनी सारी आत्मा उँड़ेलनी पड़ेगी। और अगर आप सच्चे हैं, तो आपके उदाहरण का प्रभाव पास-वाले अन्य लोगों के जीवन पर भी पड़ेगा।

आज आपका देश दूसरे बलवान राष्ट्रों के साथ दुनिया के तथाकथित कमज़ोर राष्ट्रों का शोषण कर रहा है। वह संसार में सबसे मालदार देश बन गया है। लेकिन वह जिन साधनों से मालदार बना है, उनका ख्याल करें तो यह कोई गौरव की बात नहीं है। फिर, इस दौलत की रक्षा के लिए आपको हिंसा की मदद लेनी पड़ती है। आपका इस दौलत को त्यागने के लिए तैयार होना आवश्यक है। इसलिए अगर आप सचमुच हिंसा का परित्याग करना चाहते हैं, तो आपको यह कहना पड़ेगा कि हिंसा से जो कुछ मिला है उससे हमें कोई सरोकार नहीं। इसके फलस्वरूप अमरीका मालदार न रहे, तो भी हमें कोई परवाह नहीं। तब आप विशुद्ध बलिदान करने योग्य हो जायंगे। तैयारी का यही मतलब है। अगर आप राष्ट्र के रूप में शान्तिपूर्वक रहने की पूरी शिक्षा पा लेंगे, तो फिर अत्यधिक बलिदान का शायद अवसर ही न आये। यह याद रखिए कि अहिंसा के लिए मरने की अपेक्षा उसके लिए जिन्दा रहना कहीं ज्यादा मुश्किल है।

[अमरीकियों ने जानना चाहा कि गांधी जी, जिस अहिंसा का प्रतिपादन करते हैं, उसमें कोई प्रेरणात्मक गुण भी है या नहीं? इसका उत्तर गांधी जी ने निम्नलिखित रूप से दिया।]

अगर मैंने प्रेम शब्द का प्रयोग किया होता, जो कि वस्तुतः अहिंसा ही है, तो आप यह सवाल न करते। लेकिन प्रेम शब्द से शायद मेरा आशय पूरी तरह व्यक्त नहीं होता। उसके लिए निकटतम शब्द उदारता (चैरिटी) है। हम अपने मित्रों और बराबर वालों से प्रेम करते हैं। लेकिन किसी नृशंस अधिनायक के कारनामे से हमारे अन्दर जो प्रतिक्रिया होती है वह या तो हिंसात्मक होती है या अहिंसात्मक, भय या दया।

अहिंसा में भय की गुंजाइश नहीं है। अगर मैं सचमुच अहिंसक हूं, तो मैं अधिनायक पर तरस खाऊंगा और अपने मन में कहूंगा यह बेचारा नहीं जानता कि मनुष्य को कैसा होना चाहिए। यह उसे उस दिन मालूम पड़ेगा, जब उसका ऐसे लोगों से वास्ता पड़ेगा, जो उससे डरेंगे नहीं; जो न तो कभी उससे डरेंगे, न उसकी चापलूसी करेंगे और न वह जो कुछ करे उसके लिए ईर्ष्या रखेंगे। जर्मन आज जो कुछ कर रहे हैं, वह इसलिए कि दूसरे सब राष्ट्र उनसे भयभीत हैं। उनमें से ऐसा कोई भी नहीं, जो निःशंक, निःशस्त्र हिटलर के पास जा सके।

[अमरीकियों ने गांधी जी से प्रश्न किया कि संसार को भारत का सच्चा सन्देश क्या है? इसका उत्तर गांधी जी ने यों दिया।]

अहिंसा! भारत इस भावना से ओतप्रोत है। लेकिन उसने इस हद तक इसका प्रदर्शन नहीं किया है कि आप उस भावना के प्रत्यक्षदर्शी होकर अमरीका जा सकें। लेकिन आप वहां सचाई के साथ इतना कह सकते हैं कि इस महान आदर्श पर पहुंचने के लिए भारत यथासम्भव पूरी कोशिश कर रहा है। अगर यह सन्देश नहीं है, तो फिर भारत विश्व को और कोई सन्देश नहीं दे सकता।

आप चाहे जो कहें, यह निश्चित है कि इस सारे महादेश ने अपने तईं निश्चय कर लिया है कि वह अहिंसा के द्वारा ही स्वतन्त्रता प्राप्त करेगा। और किसी देश ने तो यह प्रयत्न भी नहीं किया है।....अगर आप सचमुच महसूस करते हों, तो आप इस बात के साक्षी हो सकते हैं कि हम अहिंसा के आदर्श तक पहुंचने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न कर रहे हैं। हम जो कुछ कह रहे हैं, उसमें कोई धोखेबाजी नहीं है।...

—ह० ज०। ह० से०, ७।१।'३९]

- **अहिंसा के लिए मरने की अपेक्षा उसके लिए जिन्दा रहना कहीं ज्यादा मुश्किल है।**
- **अहिंसा में भय की गुंजाइश नहीं है।**
- **भारत अहिंसा की भावना से ओतप्रोत है।**

१३. अहिंसा और अन्तर्राष्ट्रीय मामले—२

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—आप हिटलर और मुसोलिनी को नहीं जानते। उन पर किसी भी तरह का नैतिक असर पड़ ही नहीं सकता। उनके पास अन्तःकरण नाम की चीज ही नहीं। दुनिया के लोकमत की उन्हें जरा भी परवाह नहीं। आपकी सलाह के अनुसार चेक-जैसी प्रजा अहिंसा-द्वारा उनका सामना करे, तो उसे उन अधिनायकों का सीधा शिकार ही बनना पड़े। मूलतः अधिनायकत्व की व्याख्या से ही नीति की कक्षा बाहर है। फिर नैतिक हृदय-परिवर्तन का नियम लागू ही कैसे हो सकता है?

उत्तर—अपनी इस दलील में आप यह मान लेते हैं कि हिटलर या मुसोलिनी-जैसे आदमियों का उद्धार हो ही नहीं सकता। लेकिन अहिंसा में विश्वास रखनेवालों की आस्था ही इस आधार पर है कि मानव स्वभाव मूलतः एक ही है और

उसपर प्रेम के व्यवहार का प्रभाव अवश्य पड़ता है। मनुष्य इतने काल से हिंसा का ही प्रयोग करता आया है और उसका प्रतिघोष हमेशा उठा है। यह कह सकते हैं कि संगठित अहिंसात्मक मुकाबले का प्रयोग मनुष्य ने अभी कहीं भी योग्य पैमाने पर नहीं देखा। इसलिए आवश्यक है कि जब वह यह प्रयोग देखेगा, तब इसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर लेगा। फिर मैंने जिस अहिंसात्मक प्रयोग का प्रस्ताव चेक प्रजा के सामने रखा था, उसकी सफलता अधिनायकों के सद्भाव पर निर्भर नहीं करती। सत्याग्रही तो केवल ईश्वर के बल पर लड़ता है। वह पहाड़-जैसी दीख पड़नेवाली कठिनाइयों के बीच ईश्वर-श्रद्धा के बल पर टिका रहता है।

प्रश्न––लेकिन युरोप के ये अधिनायक प्रत्यक्ष रीति से बल-प्रयोग तो करते नहीं। वे तो जो चाहते हैं उस पर सीधा ही कब्जा कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में अहिंसात्मक लड़ाई लड़नेवाले को क्या करना चाहिए?

उत्तर––मान लीजिए कि ये लोग आकर चेक प्रजा की खदानों, कारखानों और अन्य प्राकृतिक सम्पत्ति के साधनों पर कब्जा कर लें, तो इतने परिणाम होंगे––

(१) चेक प्रजा को सविनय अवज्ञा करने के अपराध में मार डाला जाय। यदि ऐसा हुआ, तो यह चेक राष्ट्र की महान विजय और जर्मनी के पतन का प्रारम्भ समझा जायगा।

(२) अपार पशुबल के सामने चेक प्रजा हिम्मत हार जाय। ऐसा सभी युद्धों में होता है। किन्तु यदि प्रजा में ऐसी भीरुता आ जाय, तो यह अहिंसा के कारण नहीं, बल्कि उसके अभाव से, अथवा पर्याप्त मात्रा में सक्रिय अहिंसा न होने के कारण होगा।

(३) जर्मनी जीते हुए देश में अपनी अतिरिक्त जनसंख्या ले जाकर बसाये। इसे भी हिंसात्मक सामना करके रोका नहीं जा सकता। क्योंकि हमने यह मान लिया है कि ऐसा मुकाबला अशक्य है। इसलिए अहिंसात्मक मुकाबला ही सब प्रकार की परिस्थितियों में प्रतिकार का एकमात्र अचूक तरीका है।...

प्रश्न––एक ईसाई के रूप में मैं अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के काम में किस तरह योग दे सकता हूँ? अहिंसा किस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय अन्धाधुन्धी को नष्ट कर शान्ति-स्थापना के लिए प्रभावकारी साबित हो सकती है? पराधीन राष्ट्रों को एक तरफ कर दें, तो भी बड़े-बड़े राष्ट्रों की अग्रसर प्रजा से किस तरह निःशस्त्रीकरण कराया जा सकता है?

उत्तर––एक ईसाई के रूप में आप अपना योग अहिंसात्मक सामना करके दे सकते हैं, भले ही ऐसा मुकाबला करते हुए आपको अपना सर्वस्व होम देना पड़े। जब तक बड़े-बड़े राष्ट्र अपना निःशस्त्रीकरण करने का साहसपूर्ण निर्णय नहीं लेंगे,

तब तक शान्ति नहीं स्थापित होगी। . . . मेरे हृदय में तो आधी सदी के निरन्तर अनुभव और प्रयोग के बाद, ऐसा विश्वास कभी नहीं हुआ था, जैसा आज है कि केवल अहिंसा में मानवजाति का उद्धार निहित है। बाइबिल की शिक्षा भी, जैसा कि मैं उसे समझता हूं, मुख्यतः यही है।

प्रश्न--आपने कहा है कि हिन्दुस्तान के बारे में तो आपको विश्वास है कि वह अहिंसा से ही चिपटा रहेगा। ऐसी आशा के चिह्न आपने कहाँ देखे हैं?

उत्तर--अगर आप बाह्य चिह्न पूछते हैं, तो मैं नहीं बतला सकता लेकिन मेरा दिल मुझसे कहता है कि इस देश को किसी और चीज़ से वास्ता नहीं। . . .
--ह० ज०। ह० से०, १४।१।'३९]

- **मानव स्वभाव मूलतः एक ही है। उसपर प्रेम का प्रभाव अवश्य पड़ता है।**
- **मनुष्य इतने काल से हिंसा का ही प्रयोग करता आया है और उसका प्रति-घोष हमेशा उठा है। संगठित अहिंसात्मक मुकाबले का प्रयोग मनुष्य ने अभी नहीं देखा है।**
- **सत्याग्रही तो केवल ईश्वर के बल पर लड़ता है।**
- **जबतक बड़े-बड़े राष्ट्र अपना निःशस्त्रीकरण करने का साहस-पूर्ण निर्णय नहीं लेंगे, तबतक शान्ति नहीं स्थापित होगी।**
- **केवल अहिंसा में मानवजाति का उद्धार निहित है।**

१४. क्या अहिंसा बेकार गई?

[गांधी जी ने अपने लेख में यहूदियों को अहिंसा का मार्ग सुझाया। इसकी आलोचना में कहा गया कि यहूदी तो पिछले दो हजार वर्ष से अहिंसा के ही मार्ग पर चल रहे हैं। इस पर गांधी जी ने मत व्यक्त किया कि वे पूर्ण और सक्रिय अहिंसा के मार्ग पर कभी नहीं चले। इस मत के विरोध में 'स्टेट्समैन' पत्र ने अपने सम्पाद-कीय में लिखा कि अनेक पादरियों और साधारण ईसाइयों ने हिंसा और धमकी के कष्टों को वीरता के साथ सहन किया। वे बदले की भावना से रहित हो सत्य पर कायम रहे। किन्तु जर्मनों के हृदय इससे नहीं पिघले। बाइबिल-शोधक-संघ (बाइबिल सर्चर्स लीग) के जिन सदस्यों ने जर्मन-नाजी-सैनिकवाद को ईसा के शान्ति-स देशों के प्रतिकूल मानकर, उसका विरोध किया वे पिछले पांच वर्ष से नजरबन्दी-कैम्पों में सड़ रहे हैं।

अहिंसा चाहे कमजोरों का शस्त्र हो अथवा बलवानों का, किन्हीं अत्यन्त विशिष्ट

परिस्थितियों के अतिरिक्त वह समाज की नहीं, बल्कि व्यक्तिगत उपयोग की वस्तु मालूम पड़ती है। हर हिटलर-जैसे उत्पीड़क अहिंसा के प्रयोग से नहीं सुधारे जा सकते। ईसामसीह अहिंसा के अनन्य उपासक थे किन्तु उनकी दुःखद मृत्यु सिद्ध करती है कि सांसारिक और भौतिक रूप में अहिंसा बुरी तरह असफल होती है।

गांधी जी ने इस सम्पादकीय का जो उत्तर दिया, उसके आवश्यक अंश नीचे दिये जाते हैं।——संपा०]

मैं तो यह नहीं समझता कि पास्तर नीमोलर और दूसरे व्यक्तियों का कष्ट-सहन बेकार साबित हुआ है। ..... हर हिटलर का दिल पिघलाने के लिए वे काफी साबित नहीं हो सके, इससे केवल यही प्रकट होता है कि उसका दिल पत्थर से भी कठोर धातु का बना हुआ है। लेकिन, सख्त से सख्त दिल भी अहिंसा की गर्मी से पिघल जायगा। इस हिसाब से अहिंसा की ताक़त की तो कोई सीमा ही नहीं

...चूंकि अहिंसा दुनिया की सबसे बड़ी ताक़त है और वह काम भी बहुत छिपे ढंग से करती है, इसलिए इसमें बहुत भारी श्रद्धा रखने की ज़रूरत है। जिस तरह हम ईश्वर में श्रद्धा रखना अपना धर्म समझते हैं, उसी तरह अहिंसा में श्रद्धा रखने को भी धर्म समझना चाहिए।

हर हिटलर आख़िर एक आदमी ही तो है। उसकी जिन्दगी एक औसत आदमी की नाचीज़ जिन्दगी से बड़ी नहीं। अगर जनता ने उसका साथ देना छोड़ दिया, तो उसकी ताकत एक समाप्त ताकत होगी। मानव-समाज के कष्ट-सहन का उसकी तरफ से कोई जवाब न मिलने पर मैं निराश नहीं हुआ हूं।...

सशस्त्र संघर्ष से जर्मन हथियार नष्ट किये जा सकते हैं, पर जर्मनी के दिल को नहीं बदला जा सकता। पिछले महायुद्ध की पराजय यह नहीं कर सकी। उसने एक हिटलर पैदा किया, जो विजयी राष्ट्रों से बदला लेने पर तुला हुआ है।...

...मैं इस बात से निराश नहीं हुआ हूं कि हर हिटलर या जर्मनी का दिल अभी तक नहीं पिघला है। इसके विरुद्ध, मैं यही कहूंगा कि मुसीबतों पर मुसीबतें सहते चले जाओ, जबतक अन्धे को भी नजर न आने लगे कि दिल पिघल गया है।...अगर एक यहूदी भी बहादुरी के साथ उठकर खड़ा हो जाय और हिटलर की आज्ञा के समक्ष सिर झुकाने से इन्कार कर दे, तो उसकी भी शान बढ़ जायगी और वह अपने भाई यहूदियों के लिए मुक्ति का रास्ता भी साफ कर देगा।

मेरा विश्वास है कि अहिंसा सिर्फ़ व्यक्तिगत गुण नहीं, बल्कि एक सामाजिक गुण भी है। इसे दूसरे गुणों की तरह विकसित करना चाहिए। इसमें कोई शक

नहीं कि समाज अपने आपस के कारोबार में अहिंसा का प्रयोग करने से ही व्यवस्थित होता है। मैं जो कहना चाहता हूं, वह यह है, कि इसे एक बड़े राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर काम में लाया जाय।...

...ईसा ने अपनी कुर्बानी से जो उदाहरण कायम किया है, उससे मेरी अहिंसा में अखण्ड श्रद्धा और भी बढ़ गई है। अहिंसा के इसी सिद्धान्त के अनुसार मेरे तमाम धार्मिक और सांसारिक काम होते हैं।

——ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १४।१।'३९]

- **सख्त से सख्त दिल भी अहिंसा से पिघल जायगा।**
- **अहिंसा की ताकत की तो कोई सीमा ही नहीं।**
- **समाज आपस के कारोबार में अहिंसा का प्रयोग करने से ही व्यवस्थित होता है।**

१५. तीव्र हिंसा के प्रतिरोध में अहिंसा

[अपने यहूदी मित्रों और पत्र-लेखकों के अनुरोध पर गांधी जी ने जर्मनी और फिलिस्तीन की यहूदी समस्या पर एक लेख लिखा था। उन दिनों जर्मनी में यहूदियों का उत्पीड़न चरम सीमा पर पहुंच गया था। वे वहां से भागकर दूसरे देशों में आश्रय ग्रहण कर रहे थे और फिलिस्तीन में यहूदी राष्ट्र-निर्माण के प्रश्न को लेकर वे अरबों से झगड़ रहे थे।

न्यूयार्क से प्रकाशित 'ज्यूइश फ्रान्टियर' ने गांधी जी के लेख का उत्तर दिया और उनसे अनुरोध किया कि उसका प्रत्युत्तर दें। उस लेख के प्रत्युत्तर में गांधी जी ने जो टिप्पणी प्रकाशित की वह अंशतः प्रस्तुत है।——संपा०]

...अपने लेख के उत्तर को एकाधिक बार पढ़ने के बाद मैं यह अवश्य कहूंगा, मैंने उसमें जो मत प्रकट किया था, उसे बदलने का मैं कोई कारण नहीं देखता। उत्तर देने वाले की यह बात बहुत सम्भव है कि यदि जर्मनी में कोई यहूदी गांधी पैदा हो जाय, तो वह लगभग पांच मिनट ही काम कर सकेगा, और उसका सिर तत्काल उड़ा दिया जायगा। किन्तु इससे मेरी मान्यता निरर्थक नहीं हो जाती, और न उससे अहिंसा की शक्ति के प्रति मेरी आस्था को कोई धक्का लगता है।

मैं यह कल्पना कर सकता हूं कि जिन अधिनायकों का अहिंसा में तनिक भी विश्वास नहीं उनकी क्षुधा शान्त करने के लिए सहस्रों नहीं तो सैकड़ों बलिदान की आवश्यकता पड़ेगी। अहिंसा की व्याख्या का सच्चा सूत्र यह है कि तीव्र से

तीव्र हिंसा के समक्ष वह अपनी अमोघ शक्ति दिखलाती है। ऐसे ही कष्ट-सहन करने वालों को अपने जीवन-काल में परिणाम देखने की आवश्यकता नहीं। उन्हें यह श्रद्धा रखनी चाहिए कि उनकी मृत्यु के बाद भी उनका सिद्धान्त जीवित रह गया, तो परिणाम निश्चित रूप से प्राप्त होगा।
—ह० ज०। ह० से०, २७।५।'३९]

- तीव्र से तीव्र हिंसा के समक्ष वह (अहिंसा) अपनी अमोघ शक्ति दिखलाती है।

१६. हिंसा और अहिंसा का मार्ग

हिंसा का मार्ग अहिंसा के मार्ग की अपेक्षा कोई बहुत बड़ा आश्वासन नहीं दिलाता। वह तो इतना कम आश्वासन दिलाता है जिसकी कोई सीमा नहीं। कारण यह है कि उसमें अहिंसा के पुजारी की श्रद्धा का अभाव होता है।
—ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से०, २७।५।'३९]

- हिंसा का मार्ग अहिंसा के मार्ग की अपेक्षा कोई बहुत बड़ा आश्वासन नहीं दिलाता।

१७. महायुद्ध और अहिंसा का दृष्टिकोण

[एक प्रसिद्ध कांग्रेसी ने पत्र लिखकर गांधी जी से पूछा कि वर्तमान द्वितीय महासमर के परिप्रेक्ष्य में अहिंसा से मेल खाने वाला उनका व्यक्तिगत दृष्टिकोण क्या है? वह पिछले महासमर-जैसा ही है या उससे कुछ भिन्न और एक अहिंसा-धर्मी होने के नाते वह उस कांग्रेस से कैसे सहयोग करेंगे, जिसकी नीति इस संकट में हिंसा पर आधारित है? उन कांग्रेसी महोदय ने वर्तमान युद्ध की समाप्ति अथवा उसके विरोध-हेतु अहिंसा पर आधारित कोई प्रभावशाली उपाय भी पूछा था। गांधी जी ने 'पहेलियां' शीर्षक लेख में इन प्रश्नों का जो उत्तर दिया, उसके आवश्यक अंश उद्धृत हैं।—संपा०]

मेरी अहिंसा कठोर वस्तु से निर्मित है। वैज्ञानिकों को सबसे दृढ़ जिस धातु का ज्ञान होगा वह उससे भी अधिक सुदृढ़ है। इतने पर भी मुझे दुःखपूर्वक ज्ञात है कि इसे अभी तक वास्तविक शक्ति प्राप्त नहीं हुई। यदि वह प्राप्त हो गई

होती, तो संसार में हिंसा की जिन अनेक घटनाओं को मैं असहाय रूप में प्रतिदिन देखा करता हूं, उनसे निबटने का मार्ग भगवान मुझे सुझा देता। मैं यह धृष्टता-पूर्वक नहीं, बल्कि पूर्ण अहिंसा की शक्ति का सम्यक् ज्ञान होने के कारण कह रहा हूं। अपनी सीमा अथवा निर्बलता छिपाने के लिए मैं अहिंसा की शक्ति को न्यून नहीं आँकने दूंगा।

...आज मैं वैसा स्वेच्छापूर्ण भर्ती करने वाला सार्जेण्ट नहीं बनूंगा, जैसा महायुद्ध के समय बन गया था। इतने पर भी यह विचित्र-सा प्रतीत होगा कि मेरी सहानुभूति मित्रराष्ट्रों के ही साथ है। जो भी हो, यह युद्ध पश्चिम में विकसित प्रजातन्त्र और उस निरंकुशता के बीच होने वाले संग्राम का रूप धारण कर रहा है, जिसके प्रतीक हर हिटलर हैं।

...मैं चाहे वर्किंग[1] कमेटी के विनम्र मार्गदर्शक का कार्य करूं, अथवा, इसी बात को बिना किसी आपत्ति के कह सकूं तो, सरकार का, मेरा मार्ग-दर्शन उनमें से एक अथवा दोनों को अहिंसा के मार्ग पर ले जाना होगा; यह प्रगति चाहे सदा अगोचर ही क्यों न रहे।

अहिंसा की ही भाँति हिंसा की भी श्रेणियां होती हैं। वर्किंग कमेटी इच्छा-पूर्वक अहिंसा की नीति से नहीं हटी है। सच तो यह है कि वह नैतिकतापूर्वक अहिंसा के वास्तविक फलितार्थों को स्वीकार नहीं कर सकती। उसे लगा कि बहुसंख्यक कांग्रेसजनों ने इस बात को स्पष्टरूप से कभी नहीं समझा कि बाह्य आक्रमण होने पर वे अहिंसात्मक साधनों से देश की रक्षा करेंगे। सच्चे अर्थों में तो उन्होंने केवल यही समझा है कि वे अहिंसा के द्वारा अधिक से अधिक ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सफल युद्ध कर सकते हैं। अन्य क्षेत्रों में कांग्रेसजनों को अहिंसा के उपयोग की ऐसी शिक्षा प्राप्त भी नहीं हुई।...यदि इस आधार पर मैं अपने सर्वोत्तम साथियों का सम्पर्क छोड़ दूं तो मैं अहिंसा का उद्देश्य सिद्ध नहीं करूंगा।

मेरे पास कोई ठोस योजना[2] नहीं है, क्योंकि मेरे लिए भी यह क्षेत्र नया ही है। अन्तर केवल इतना है कि मुझे साधनों का निर्वाचन नहीं करना है। मैं वर्किंग कमेटी के सदस्यों से मन्त्रणा करूं अथवा वायसराय के साथ, उसका साधन सदा शुद्ध अहिंसात्मक ही होना चाहिए।

...कल्पना कीजिए कि ईश्वर ने मुझे पूरी शक्ति प्रदान की है (जैसा वह कभी नहीं करता) तो मैं तत्काल अंग्रेज़ों से कहूंगा कि वे शस्त्र रख दें, अपने अधीन

१. कांग्रेस कार्यसमिति।
२. युद्ध के विरोध अथवा उसकी समाप्ति की अहिंसात्मक योजना।

सब देशों को स्वतन्त्र कर दें, छोटे इंग्लैण्ड-वासी कहलाने में ही गर्वानुभव करें और संसार के समस्त निरंकुशतावादियों के भयंकरतम अतिचारों के सम्मुख भी सिर न झुकायें। तब अंग्रेज बिना प्रतिरोध के मरकर इतिहास में अहिंसात्मक वीरों के रूप में अमर हो जायंगे।

इसके अतिरिक्त भारतीयों को भी मैं इस दैवी उत्सर्ग में सहयोग करने के लिए आमन्त्रित करूंगा। यह कभी न टूटनेवाली ऐसी साझेदारी होगी, जो तथाकथित शत्रुओं के नहीं अपितु उनके शरीर के रक्त से लिखे अक्षरों में अंकित हो जायगी। किन्तु मेरे पास ऐसी सामान्य सत्ता नहीं है।

अहिंसा तो मन्थर प्रगति का पौधा है। वह अदृश्य किन्तु निश्चित रूप में बढ़ता है। मुझे भ्रामक धारणा की आशंका है। अतः मुझे 'उस और भी क्षीण' आवाज़ के अनुसार कार्य करना चाहिए।

--ह० ज०। ह० से०, ३०।९।'३९]

- **मेरी अहिंसा कठोर वस्तु से निर्मित है; वैज्ञानिकों को सबसे दृढ़ जिस धातु का ज्ञान होगा वह उससे भी अधिक सुदृढ़ है।**
- **अपनी सीमा अथवा निर्बलता को छिपाने के लिए मैं अहिंसा की शक्ति को न्यून नहीं आँकने दूंगा।**
- **अहिंसा की ही भांति हिंसा की भी श्रेणियां होती हैं।**
- **अहिंसा तो मन्थर प्रगति का पौधा है।**

१८. भारत की सांस्कृतिक परम्परा : अहिंसा

[भारतीय सेना के अंग्रेज जंगीलाट (प्रधान सेनापति) ने ५ सितम्बर ३९ को एक प्रसारण में भारत को एक सैनिक देश कहा। गांधी जी ने उनके प्रसारण का उत्तर देते हुए 'क्या हिन्दुस्तान फौजी मुल्क है?' शीर्षक लेख में बतलाया कि भारत की सांस्कृतिक परम्पराएं अतीत काल से हिंसा नहीं अहिंसा के आधार पर आश्रित हैं। उक्त लेख के आवश्यक अंश यहां उद्धृत हैं।--संपा०]

मैं इस विचार से सम्मानपूर्वक अपना पूर्ण मतभेद प्रकट करता हूं कि भारत एक सैनिक देश है। मैं इसके लिए ईश्वर को धन्यवाद देता हूं कि ऐसा नहीं है। मैं और मेरे साथ अन्य लाखों व्यक्ति सैनिक भावना से नितान्त अछूते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में एक सैनिक जाति वर्तमान है, जिसकी संख्या अत्यन्त नगण्य है। लाखों जनसाधारण से उस जाति का बहुत कम सम्बन्ध है।

...मैं तो अपनी पूरी शक्ति के साथ केवल यही कहना चाहता हूं कि भारत

को सैनिक देश बतलाना एकदम मिथ्या है। संसार के समस्त देशों में भारत सबसे कम सैनिक देश है। यद्यपि वर्किंग[1] कमेटी को इस बात के लिए प्रेरित करने में मैं सफल नहीं हुआ कि नाजुक अवसर[2] पर वह घोषित कर दे कि मानव-जाति को सर्वनाश से बचाने का एकमात्र, सर्वोत्तम उपाय अहिंसा ही है, फिर भी मैंने यह आशा नहीं छोड़ी है कि सर्वसाधारण युद्धासुर के सम्मुख झुकने से इन्कार कर देंगे और देश की प्रतिष्ठा-रक्षा हेतु अपने कष्ट-सहन की क्षमता पर अवलम्बित रहेंगे।

वर्तमान भय[3] से जागरित होने पर भारत यदि संसार को रक्तस्नान से मुक्ति का मार्ग न बतलाये, तो इसका अहिंसात्मक प्रयोग व्यर्थ होगा। यदि भारत यह प्रदर्शित करके कि मनुष्य का महत्व सर्वनाश के साधनों को बढ़ाने की क्षमता में नहीं, अपितु प्रतिशोध लेने से इन्कार करने में है, अपना प्रकृत अंश-दान नहीं करता, तो आज धन-जन का जो अक्षम्य विनाश हो रहा है, वह अन्तिम नहीं होगा। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि पशुओं के नियम—हिंसा की काली कला में व्यक्तियों को दक्ष किया जा सकता है, तो धर्म-संस्कार-सम्पन्न मनुष्य के नियम अहिंसा की शुभ्र कला में उन्हें दक्ष करने की उससे भी अधिक सम्भावना है।

—ह० ज०। ह० से०, ३०।९।'३९]

- **भारत को सैनिक देश बतलाना मिथ्या है। संसार के समस्त देशों में भारत सबसे कम सैनिक देश है।**

१९. अधिनायकवाद का प्रतिरोध और अहिंसा

[अधिनायकवाद के प्रतिरोध पर विचार करते हुए गांधी जी के एक परिचित ने पूछा था कि उस दशा में क्या किया जाय, जब अन्यायी शक्ति प्रत्यक्ष रूप से बलप्रयोग तो न करे किन्तु प्रबल आतंक-द्वारा अभीष्ट वस्तु पर अधिकार जमा ले। गांधी जी ने इसका निम्नलिखित उत्तर दिया था। वस्तुतः यह उत्तर वह पूर्व 'अहिंसा एवं अन्तर्राष्ट्रीय मामले–२' लेख में पहिले ही दे चुके थे।—संपा०]

मान लीजिए कि ये[4] लोग आकर चेक प्रजा की खदानों, उनके अन्य प्राकृतिक साधनों और कारखानों पर अधिकार कर लें तो इतने परिणाम सम्भव हैं:—

१. कांग्रेस कार्य-समिति।
२. द्वितीय महासमर के प्रारम्भ के अवसर पर।
३. महायुद्ध।
४. अधिनायक शक्तियां।

(१) चेक प्रजा को सविनय अवज्ञा करने के अपराध में मार डाला जाय। यदि ऐसा हुआ तो वह चेक राष्ट्र की महान विजय और जर्मनी के पतन का आरम्भ समझा जायगा।

(२) अपार पशुबल के समक्ष चेक प्रजा हिम्मत हार जाय। ऐसा सभी युद्धों में होता है। किन्तु यदि प्रजा में ऐसी भीरुता आ जाय, तो अहिंसा के कारण नहीं होगी। यह अहिंसा के अभाव अथवा पर्याप्त मात्रा में सक्रिय अहिंसा न होने के कारण होगी।

(३) यह कि जर्मनी विजित प्रदेश में अपनी अतिरिक्त जनसंख्या ले जाकर बसा दे। इसे भी हिंसात्मक प्रतिरोध द्वारा नहीं रोका जा सकता, क्योंकि हमने यह मान लिया है कि ऐसा प्रतिरोध अशक्य है।

अतएव अहिंसात्मक प्रतिरोध ही प्रत्येक परिस्थिति में प्रतिकार का सर्वोत्तम उपाय है।

मैं यह भी नहीं मानता कि हिटलर तथा मुसोलिनी लोकमत की इतनी उपेक्षा कर सकते हैं। आज वे निःसन्देह लोकमत की उपेक्षा में सन्तोष मानते हैं। इसका कारण यह है कि तथाकथित बड़े-बड़े राष्ट्रों में से कोई भी स्वच्छ हाथों नहीं आता। बड़े-बड़े राष्ट्रों ने इनके साथ पहिले जो अन्याय किया है, वह इन्हें खटक रहा है। थोड़े ही दिनों पूर्व एक अंग्रेज मित्र ने मेरे समक्ष स्वीकार किया था कि नाजी जर्मनी इंग्लैण्ड के पाप का फल है और वार्साई की सन्धि ने ही हिटलर पैदा किया है।

—ह० से०, १४।१०।'३९]

- **अहिंसात्मक प्रतिरोध प्रत्येक स्थिति में प्रतिकार का सर्वोत्तम उपाय है।**

२०. विश्वयुद्ध में अहिंसात्मक सहयोग

मित्रराष्ट्रों की घोषणाएं कितनी ही अपूर्ण और सन्दिग्धार्थ क्यों न हों, संसार ने उनका अर्थ यह किया है कि वे लोकतन्त्र की रक्षा के लिए लड़ रहे हैं, जबकि हर हिटलर जर्मन-सीमा के विस्तार-हेतु लड़ रहा है। यद्यपि उनसे कहा गया था कि वे अपने दावे को एक निष्पक्ष न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें किन्तु शान्ति अथवा समझौते के मार्ग को उन्होंने उपेक्षा के साथ ठुकरा दिया और तलवार का ही रास्ता चुना। इसीलिए मित्र-राष्ट्रों के साथ मेरी सहानुभूति है।

परन्तु मेरी सहानुभूति का अर्थ यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि मैं तलवार के सिद्धान्त का किसी भी रूप में समर्थन करता हूं, चाहे वह निश्चित रूप से न्यायपूर्ण उद्देश्य से ही क्यों न उठाई गई हो। उचित बात में ऐसी क्षमता होनी

चाहिए कि बर्बर एवं रक्तरञ्जित उपायों के बजाय उचित साधनों से उसकी रक्षा की जा सके। मनुष्य जिसे अपना अधिकार समझता है, उसे बनाये रखने के लिए उसको अपना खून बहाना चाहिए। अपने अधिकार पर आपत्ति करने वाले विरोधी का खून उसे कदापि नहीं बहाना चाहिए।

...संसार को भारत से यह आशा करने का अधिकार है कि सभी देशों की प्रजा-द्वारा अनचाहे इस युद्ध में वह इस आग्रह के साथ निश्चय ही भाग ले। वह इस बात का ध्यान रखे कि विजेता युद्ध में प्राप्त धन का आपस में बटवारा करके विजितों को अपमानित न करने पायें और इस तरह वे शान्ति को हास्यास्पद न बना दें।

...मुझे पूर्ण आशा है कि कांग्रेस संसार को बतला सकेगी कि न्यायोचित बात की रक्षा-हेतु शस्त्रास्त्र से जो शक्ति प्राप्त होती है वह इसी उद्देश्य के लिए। और वह शक्ति भी तर्क के इससे अच्छे प्रदर्शन के साथ, अहिंसा से प्राप्त शक्ति की तुलना में, कुछ भी नहीं है। शस्त्रास्त्र कोई तर्क नहीं दे सकते, वे तो मात्र उसका दिखावा ही कर सकते हैं।

—ह० ज०। ह० से०, १४।१०।'३९]

- **उचित बात में ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि बर्बर एवं रक्तरंजित उपायों के बजाय उचित साधनों से उसकी रक्षा की जा सके।**
- **मनुष्य जिसे अपना अधिकार समझता है, उसे बनाये रखने के लिए, उसको अपना खून बहाना चाहिए।**
- **शस्त्रास्त्र कोई तर्क नहीं दे सकते, वे तो मात्र उसका दिखावा ही कर सकते हैं।**

२१. ईसाइयों के लिए अहिंसा

[एक परिचित ईसाई सज्जन ने गांधी जी से प्रश्न किया था कि वे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति के कार्य में किस प्रकार योग दे सकते हैं। गांधी जी ने उन्हें निम्नलिखित उत्तर दिया।— संपा०]

एक ईसाई के रूप में आप अपना योग अहिंसात्मक प्रतिरोध-द्वारा दे सकते हैं, भले ही ऐसा प्रतिरोध करने में आपको अपना सर्वस्व होम देना पड़े। जबतक बड़े-बड़े राष्ट्र अपने यहां निःशस्त्रीकरण करने का साहसपूर्ण निर्णय नहीं लेंगे, तबतक शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। मेरे विचार से हाल के अनुभव के पश्चात् यह तथ्य बड़े राष्ट्रों के सम्मुख स्पष्ट हो गया होगा।

आधी सदी के निरन्तर अनुभव और प्रयोग के बाद मेरे हृदय में आज के जैसा निःशंक विश्वास कभी उत्पन्न नहीं हुआ था कि अहिंसा में ही मानवजाति का उद्धार निहित है। मैंने जैसा समझा है, बाइबिल की शिक्षा भी मुख्यतः वही है।
--ह० से०, १४।१०।'३९]

- **मेरे हृदय में आज के जैसा निःशंक विश्वास कभी उत्पन्न नहीं हुआ था कि अहिंसा में ही मानव-जाति का उद्धार निहित है।**

२२. युद्ध में नैतिक सहयोग और अहिंसा

[एक अंग्रेज सज्जन ने दीनबन्धु एण्डरूज़ को एक पत्र लिखकर पूछा था कि अहिंसा में विश्वास रखने वाले गांधी जी किस तरह युद्ध में ब्रिटेन को भारत का सहयोग देने के लिए युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण की माँग कर सकते हैं? गांधी जी ने इस पत्र का जो उत्तर दिया वह अंशतः उद्धृत है।--संपा०]

...मैंने अहिंसा में पूर्ण श्रद्धा रखने के कारण ब्रिटेन के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। हिंसा तो सभी प्रकार की बुरी है और उसकी तीव्र निन्दा की जानी चाहिए, यह मानते हुए भी अहिंसा में विश्वास रखने वाले का कर्तव्य है कि वह आक्रामक और आक्रान्त के बीच भेद को समझे। जब वह यह भेद समझ लेगा, तब वह आक्रान्त के साथ अहिंसात्मक रहते हुए भी सहयोग करेगा। आत्म-रक्षक की जान बचाने के लिए वह अपने प्राण भी दे देगा।

अहिंसक शक्ति का हस्तक्षेप आपस के द्वन्द्व को सम्भवतः शीघ्र समाप्त कर देगा और युद्धरत दोनों पक्षों में सन्धि करा देगा। इसी तर्क को वर्तमान युद्ध पर लागू किया जा सकता है। यदि कांग्रेस अहिंसात्मक रीति से मित्र-राष्ट्रों को पूरा सहयोग देती है, तो निश्चय ही उसकी सहायता से मित्र-राष्ट्रों के उद्देश्य को उच्च नैतिक बल प्राप्त हो जायगा। उस समय कांग्रेस की सारी शक्ति शान्ति-स्थापना के लिए बहुत प्रभावकारी होगी।

इसके अतिरिक्त यह देखना भी कांग्रेस का मुख्य कर्तव्य होगा कि यदि युद्ध अन्त तक लड़ा ही जाय, तो पराजित पक्ष को अपमानजनक शर्तें स्वीकार करने के लिए तनिक भी विवश न किया जाय।
--ह० ज०। ह० से०, २१।११।'३९]

- **हिंसा तो सभी प्रकार की बुरी है और उसकी निन्दा की जानी चाहिए।**
- **अहिंसा में विश्वास रखने वाले का कर्तव्य है कि वह आक्रामक और आक्रान्त का भेद समझे।**

२३. अहिंसा फिर किस काम की ?

एक हिन्दुस्तानी मित्र के पत्र का सार नीचे दे रहा हूं:—

'दिल दुखता है नार्वे की दर्द-भरी कहानी सुनकर। वे लोग हिम्मत से लड़े तो, लेकिन अधिक बलवान दुश्मन के मुकाबले में हार बैठे। इससे हिंसा की निरर्थकता साबित होती है। लेकिन क्या हम दुनिया की समस्या को हल करने के लिए उसे कुछ अहिंसा सिखा रहे हैं? ब्रिटेन को परेशान करके क्या हम जर्मनी को उत्साहित नहीं कर रहे हैं। नार्वे और डेनमार्क हमारे रुख को ठीक कैसे समझ सकते हैं? उनके लिए हमारी अहिंसा किस काम की? चीन और स्पेन को हमने जो सहायता दी उसके बारे में भी वह ग़लत धारणा बना सकते हैं। आपने जो फ़र्क किया है वह केवल इसलिए कि आप एक साम्राज्यवादी ताक़त को मदद नहीं देना चाहते हालांकि वह एक अच्छे काम के लिए लड़ रही है। पिछली लड़ाई में आपने भर्ती करवाई लेकिन आज आपका ख्याल बिलकुल दूसरा है, फिर भी आप कहेंगे कि यह सब ठीक है, यह कैसे? मैं तो नहीं समझता हूं।'

डेनमार्क और नार्वे के अत्यन्त सुसंस्कृत और निर्दोष लोगों के भाग्य पर शोक करने वालों में लेखक अकेले ही नहीं हैं। यह लड़ाई हिंसा की निरर्थकता दिखला रही है। कल्पना कीजिए कि हिटलर मित्र-राज्यों पर विजय प्राप्त कर लेता है तो भी वह ब्रिटेन और फ्रांस को हर्गिज गुलाम नहीं बना सकेगा। उसका अर्थ है दूसरी लड़ाई, और अगर मित्र-राष्ट्र जीत जायं तो भी संसार का लाभ नहीं होगा। लड़ाई में अहिंसा का सबक सीखे बिना और हिंसा के द्वारा जो फ़ायदा उठाया है उसे छोड़े बगैर वह अधिक शिष्ट भले ही हों पर कुछ कम बेरहम नहीं होंगे। जिन्दगी के हर पहलू में चारों ओर न्याय हो, यह अहिंसा की पहिली शर्त है। मनुष्य से इतनी अपेक्षा करना शायद अधिक समझा जाय, किन्तु मैं ऐसा नहीं समझता। मनुष्य कहां तक ऊंचा उठ सकता है और कहाँ तक गिर सकता है इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। पश्चिम के इन देशों को हिन्दुस्तान की अहिंसा ने कोई सहायता नहीं पहुंचाई है। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तान की अहिंसा अभी स्वयं बहुत निर्बल है। उसकी अपूर्णता देखने के लिए हम इतनी दूर क्यों जायं? कांग्रेस की अहिंसा की नीति के बावजूद हम अपने देश में एक दूसरे के साथ लड़ रहे हैं। खुद कांग्रेस पर भी अविश्वास किया जा रहा है। जबतक कांग्रेस या उसके जैसा कोई और गिरोह सबल लोगों की अहिंसा पेश न करे दुनिया में इसका सञ्चार नहीं हो सकता। स्पेन और चीन को भारत ने जो सहायता दी वह केवल नैतिक थी। आर्थिक सहायता तो उसका एक छोटा-सा रूप था। इन दोनों मुल्कों के लिए

जो रातोंरात अपनी आजादी खो बैठे, शायद ही कोई हिन्दुस्तानी हो जिसे उतनी ही हमदर्दी न हो। यद्यपि स्पेन और चीन से उनका (डेनमार्क और नार्वे का) मुकाबला जुदा है। उनका नाश चीन और स्पेन के मुकाबले में शायद अधिक विशाल है। वास्तव में चीन और स्पेन के मामले में भी वहुत अन्तर है। लेकिन जहां तक सहानुभूति का प्रश्न हैं उसमें कोई अन्तर नहीं आता। बेचारे हिन्दुस्तान के पास इन देशों को भेजने के लिए सिवा अहिंसा के और कुछ नहीं है। लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हूं यह अभी तक भेजने के लायक नहीं हुई है। वह ऐसी तब होगी जबकि हिन्दुस्तान अहिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेगा।

रहा ब्रिटेन का मामला। कांग्रेस ने उसे किसी परेशानी में नहीं डाला है। मैं यह घोषित कर चुका हूं कि मैं कोई ऐसा काम नहीं करूंगा जिससे कि उसे कोई परेशानी हो। अंग्रेज परेशान होंगे, यदि हिन्दुस्तान में अराजकता होगी। कांग्रेस जबतक मेरी बात मानेगी तबतक इसका समर्थन नहीं करेगी।

कांग्रेस जो नहीं कर सकती, वह यह है कि अपना नैतिक प्रभाव ब्रिटेन के पक्ष में नहीं डाल सकती। नैतिक प्रभाव मशीन की तरह कभी नहीं दिया जा सकता। उसे लेना न लेना ब्रिटेन के ऊपर निर्भर करता है। शायद ब्रिटेन के राजनेता सोचते हैं कि ऐसा कौन नैतिक बल है जिसे कांग्रेस दे सकती है।

उनको नैतिक बल की आवश्यकता ही नहीं। शायद वे यह भी सोचते हैं कि विश्वयुद्ध में फँसी हुई इस दुनिया में उन्हें किसी चीज़ की ज़रूरत है तो वह आर्थिक सहायता है। अगर वे ऐसा सोचते हैं तो ज्यादा गलती भी नहीं करते। यह ठीक ही हैं क्योंकि लड़ाई में नीति नाजायज़ होती है। यह कहकर कि ब्रिटेन का हृदयपरिवर्तन करने में सफलता की सम्भावना नहीं है, लेखक ने ब्रिटेन के पक्ष में सारा मामला हार दिया। मैं ब्रिटेन की बुराई नहीं चाहता। मुझे दुःख होगा, अगर उसकी हार हो। लेकिन जबतक वह हिन्दुस्तान का कब्जा न छोड़े कांग्रेस का नैतिक बल ब्रिटेन के काम नहीं आ सकता। नैतिक प्रभाव तो अपनी अपरिवर्तित शर्त पर ही काम करता है। जब मैंने खेड़ा में भर्ती की थी तब की और आज की मेरी वृत्ति में मेरे मित्र को कोई अन्तर नहीं दीखता। पिछली लड़ाई में नैतिक प्रश्न नहीं उठाया गया था। कांग्रेस ने उस समय अहिंसा की प्रतिज्ञा नहीं ली थी। उसका जो नैतिक प्रभाव आम जनता पर है वह तब नहीं था। मैं जो करता था निजी तौर से करता था। मैं लड़ाई की कान्फ्रेंस में भी शरीक हुआ था और वादा पूरा करने के लिए अपने स्वास्थ्य को भी खतरे में डालकर भर्ती करता रहा। मैंने लोगों से कहा कि अगर उन्हें हथियारों की जरूरत हो तो फौजी नौकरी के द्वारा वे उन्हें जरूर प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन अगर वे मेरी भाँति

अहिंसक हों तो मेरी ही तरह भर्ती की अपील उनके लिए नहीं थी। जहां तक मैं जानता था मेरे दर्शकों में एक भी आदमी अहिंसा को मानने वाला नहीं था। उनकी भर्ती होने की अनिच्छा का कारण यह था कि उनके दिलों में ब्रिटेन के लिए वैरभाव था। लेकिन ब्रिटेन की हुकूमत को खत्म करने का एक जाग्रत निश्चय धीरे-धीरे इस वैरभाव का स्थान ले रहा है।

स्थितियां तब से बदल चुकी हैं। पिछली लड़ाई में हिन्दुस्तान की ओर से सार्वजनिक सहायता मिलने के बावजूद ब्रिटेन की वृत्ति रौलट ऐक्ट और ऐसे ही रूपों में प्रकट हुई। अंग्रेज रूपी खतरे का मुकाबला करने के लिए कांग्रेस ने असहयोग को स्वीकार कर लिया। जलियांवाला बाग़, साइमन कमीशन, गोलमेज कान्फ्रेंस और थोड़े से लोगों की शरारत के लिए सारे बंगाल को कुचलना, ये सब बातें उसकी यादगार हैं।

जबकि कांग्रेस ने अहिंसा की नीति को स्वीकार कर लिया है मेरे लिए आवश्यक नहीं कि मैं भर्ती के लिए लोगों के पास जाऊं। कांग्रेस के द्वारा मैं थोड़े से रंगरूटों की अपेक्षा बहुत सहायता दे सकता हूं। लेकिन यह स्पष्ट है कि ब्रिटेन को उसकी ज़रूरत नहीं। मैं तो चाहता हूं, पर लाचार हूं।

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, ४।५।'४०]

- **जिन्दगी के हर पहलू में चारों ओर न्याय हो, यह अहिंसा की पहली शर्त है।**

२४. अहिंसा ही एक साधन है !

[आन्तरिक अशान्ति अथवा बाह्य आक्रमण के प्रतिरोध का उपाय समझाते हुए गांधी जी ने ये उद्‌गार व्यक्त किये थे।--संपा०]

हमारे पास दोनों के लिए अहिंसा के सिवा कोई अन्य साधन नहीं है। वर्षों से हम स्वयंसेवकों से अहिंसा की प्रतिज्ञा करवाते आये हैं। क्या वह व्यर्थ ही थी? बीस वर्ष से हम देश के समक्ष अहिंसा का आदर्श रखते आये हैं। क्या वह व्यर्थ ही था? हमारे हाथ में शासनतन्त्र आये, तो अब हमें यह निश्चय करके ही पद ग्रहण करने चाहिए कि हम सशस्त्र पुलिस और सेना का उपयोग न आन्तरिक शत्रुओं के विरुद्ध करेंगे न बाह्य शत्रुओं के विरुद्ध। जब फ्रांसीसी सेना की, जिसकी गिनती युरोप की श्रेष्ठतम सेनाओं में होती थी, कुछ न चली, तो हमारी, जिन्हें डेढ़-सौ वर्ष से शस्त्र पकड़ने की भी शिक्षा नहीं मिली, क्या चलेगी? हमने छोटे-से-छोटे क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग कर दिखाया है। भले ही हमारी अहिंसा दुर्बलों

की अहिंसा थी, पर दुर्बलों की अहिंसक सेना के सामने भी हिटलर को विचार करना पड़ेगा।

--ह० से०, २०।७।'४०]

२५. नाजीवाद का नग्न स्वरूप

एक हालैण्ड-निवासी लिखते हैं--

"आपको शायद याद होगा कि सन् १९३१ में जब आप स्वितजरलैण्ड में रोम्यां रोलां महोदय के मेहमान थे तब मैंने आपकी एक तस्वीर खींची थी। इससे पहिले भी हिन्दुस्तान में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जो आन्दोलन चल रहा था उसका मैं रसपूर्वक अध्ययन करता था। खास कर आपके नेतृत्व और युद्ध-पद्धति का। आपको मालूम है कि मैं हालैण्ड की प्रजा हूं। कई साल तक जर्मनी के लिए कलाकार का धन्धा करता था। जब सात साल पहिले नाजी-शाही ने जर्मनी पर अपनी सत्ता जमा ली, तो मेरी अन्तरात्मा में कई शंकाएं पैदा होने लगीं, खास तौर पर अपने तीन बच्चों की शिक्षा के बारे में। कई बार मुझे इच्छा हुई कि आप से परामर्श करूं। लेकिन पुनर्विचार करने पर मैंने यह ख्याल छोड़ दिया। अपना मामला खुद ही सन्तोषजनक रूप से सुलझा लिया।

"एक साल से मैं म्यूनिख़ का अपना घर छोड़कर हालैण्ड में कुछ समय के लिए आ गया था। जब लड़ाई शुरू हुई तो जर्मनी लौटने के बजाय मैं हालैण्ड में ही रह गया क्योंकि अपने बच्चों को मैं जर्मनी के युद्धोन्मादक प्रभाव से बचाना चाहता था। दसवीं मई को हर प्रकार की कुटिल और सूक्ष्म युक्ति की मदद से आखिर हालैण्ड पराजित किया गया। चार दिन की अविचारपूर्ण बमबाजी के बाद हम इंग्लैण्ड भाग गये और अब जावा जा रहे हैं। जावा मेरा जन्मस्थान है। इस नौ-आबादी में मैं अपने लिए आजीविका का कोई साधन ढूंढ़ने की कोशिश करूंगा, शोषण के हेतु से नहीं किन्तु एक अतिथि के तौर पर।

"युरोप ने अस्त्र-शस्त्र और हिंसा को अपना आधार बना लिया है। पिछले जमाने में तो फिर भी संग्राम में धर्मयुद्ध के नियमों का कुछ पालन होता था। मगर नाजीवाद ने इन सब चीजों की उपेक्षा कर दी है। मैं सच्चे दिल से कह सकता हूं कि वर्तमान जर्मनी ने जिस तरह गन्दी दग़ाबाजी, धूर्तता और कायरता का उपयोग अपना हेतु सिद्ध करने के लिए किया है उस तरह किसी और देश ने नहीं किया। छोटे बच्चों से पालन-पोषण के साथ ही हिंसा करवाई जाती है और उन्हें बड़ा किया जाता है। नाजी जर्मनी में बच्चों को अपने मां-बाप के प्रति फरेब और दग़ा-

बाजी करना बाक़ायदा सिखाया जाता है। उसी प्रकार उन्हें तरह-तरह की और भी अनीतियां सिखाई जाती हैं।

"हरमेन रौशनिंग ने 'हिटलर के उद्गार' और विध्वंसकारी क्रान्ति' के नाम से दो पुस्तकें लिखी हैं। श्री रौशनिंग हिटलर के एक पुराने निकट के साथी हैं। इन पुस्तकों में वर्तमान जर्मनी का एक जीता-जागता चित्र मिलता है और लोगों को उसे पढ़ना चाहिए। हर हिटलर का हेतु ही नैतिक मर्यादाओं का विध्वंस करना है। और जर्मन नवयुवक वर्ग में अधिकांश इसका शिकार बन चुके हैं।

"'हरिजन' में आपका 'जर्मनी में यहूदी प्रश्न' शीर्षक लेख मैंने खास दिलचस्पी से पढ़ा था क्योंकि वहां मेरे बहुत से यहूदी मित्र हैं। आपने उस लेख में कहा है कि युद्ध के लिए अगर कभी कोई उचित कारण हो सकता है तो जर्मनी के खिलाफ युद्ध के लिए आज वह है। लेकिन उसी लेख में आपने यह भी लिखा है कि अगर आप यहूदी होते तो अहिंसा-द्वारा नाजियों का दिल पिघलाने की कोशिश करते। हाल ही में आपने ब्रिटेन को सलाह भी दी है कि वह शस्त्र से सामना किये बिना अपने रमणीय द्वीप को जर्मन हमलावरों के हवाले कर दे और बाद में अहिंसा-द्वारा विजेताओं को जीत ले। संसार के इतिहास में शायद ऐसा कोई दूसरा व्यक्ति न होगा जो अहिंसा के अमल के बारे में आपसे अधिक जानता हो। इस बारे में आपके विचारों के प्रभाव ने न सिर्फ हिन्दुस्तान में बल्कि दुनिया के करोड़ों दिलों में आपके प्रति पूज्य भाव और प्रेम पैदा कर दिया है। लेकिन वर्तमान नाजी जर्मनी में नवयुवक वर्ग अपने दिल-दिमाग दोनों का व्यक्तित्व खो बैठा है और इंसान मिटकर मानो यन्त्र बन गये हैं। जर्मनी के युद्धतन्त्र में भी पूरी-पूरी यन्त्र की निष्ठुरता है। मशीनों को चलाने वाले आदमी भी मानो भावनाशून्य और हृदयविहीन मशीन ही हैं। बेकस औरतों और बच्चों की शरीर-शय्या के ऊपर अपने खुश्की के फौलादी जहाज चलाकर उन्हें कुचलने में नाजियों को हिचकिचाहट नहीं होती, न असैनिक शहरों पर बम के गोले बरसाकर सैकड़ों और हजारों की तादाद में, बच्चों, औरतों को कत्ल करने में ही। इन्हीं बच्चों और औरतों को धावा बोलते वक्त अपने आगे रखकर ढाल के तौर पर उपयोग किया जाता है। जहर मिली खुराक बाँटकर हलाक करने के किस्से भी बन चुके हैं। मैं खुद कई ऐसी घटनाओं के बारे में गवाही दे सकता हूं। आपके कई अनुयायियों के साथ जर्मनी के खिलाफ सफलता से अहिंसा का प्रयोग करने के बारे में मेरी बातचीत हुई है। मेरा एक मित्र विलायत में युद्ध के जर्मन कैदियों पर जिरह करने के कार्य में नियुक्त था। उसपर इन जर्मन नवयुवकों की आध्यात्मिक संकुचितता और अधःपात का ऐसा कठोर आघात हुआ कि उसे कबूल करना पड़ा कि ऐसे यन्त्ररूपी नौजवानों के

सामने अहिंसा का प्रयोग चल नहीं सकता। सबसे भयंकर बात तो यह है कि इस सात साल के अर्से में हिटलर बड़ी दूर तक इनका सैनिक पतन करने में कामयाब हुआ है। दुनिया के इतिहास में मुझे दूसरी ऐसी कोई मिसाल दिखाई नहीं देती कि किसी प्रजा की यहां तक आध्यात्मिक अधोगति हुई हो।"

इस मित्र ने अपना नाम व पता-ठिकाना मुझे भेजे हैं। मुझे नाज़ी क्रूरता और निष्ठुरता की इतनी चिन्ता नहीं है। मुझे चिन्ता में डालने वाली तो इस मित्र की यह मान्यता लगती है कि हिटलर या उसकी जर्मन प्रजा इतनी यन्त्रवत् और जड़वत् बन चुकी है कि उसपर अब अहिंसा का प्रयोग असर डाल ही नहीं सकता। लेकिन अहिंसा यदि बड़े पैमाने पर बरती जाय तो उसका असर हर हिटलर पर अवश्य और उनके धोखे के जाल में फँसी हुई प्रजा पर तो और भी निश्चित रूप से पड़ेगा। कोई आदमी हमेशा के लिए यन्त्रवत् नहीं बनाया जा सकता। जहां उसके सिर पर से सत्ता का भारी वजन उठा कि वह अपनी यथार्थ प्रकृति के अनुसार फिर चलने लगता है। अपने परिमित अनुभव के आधार पर जो सिद्धान्त इस मित्र ने गढ़ लिया है वह बताता है कि अहिंसा की गति को उसने समझा ही नहीं। बेशक ब्रिटिश सरकार ऐसे प्रयोगों में नहीं पड़ सकती, जिनमें उसे कामचलाऊ श्रद्धा भी नहीं और इस तरह अपने-आप को वह जोखिम में नहीं डाल सकती। लेकिन यदि मुझे मौका दिया जाय तो मेरी शारीरिक शक्ति दुर्बल होते हुए भी असम्भव-जैसी दिखाई देनेवाली बात के लिए भी मैं बेधड़क प्रयास कर सकता हूं। क्योंकि अहिंसा का साधक अपने बल पर मैदान में नहीं उतरता। वह तो ईश्वरीय बल पर आधार रखता है। इसलिए यदि मेरे लिए रास्ता खोल दिया जाय तो मुझे यकीन है कि ईश्वर मुझे शारीरिक बल भी देगा और मेरी वाणी में वह अमोघ प्रभाव भी पैदा कर देगा। कुछ भी हो मेरी तो सारी जिन्दगी इस तरह श्रद्धा के प्रयोगों में गई है। मुझमें अपनी कोई स्वतन्त्र शक्ति है, यह मैंने कभी माना ही नहीं। निरीश्वरवादी लोगों को इसमें शायद लाचारी और बेकसी की बू आयेगी। स्वयं शून्य बनकर ईश्वर पर समस्त आधार रखने को यदि न्यूनता माना जाय तो मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि अहिंसा के मूल में यही न्यूनता निहित है।

—सेवाग्राम ४।७।'४०। ह० ज०। ह० से०, १७।८।'४०]

- **अहिंसा का साधक अपने बल पर मैदान में नहीं उतरता। वह तो ईश्वरीय बल पर आधार रखता है।**
- **स्वयं को शून्य बनाकर ईश्वर पर समस्त आधार रखने को यदि न्यूनता माना जाय, तो मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि अहिंसा के मूल में यही न्यूनता निहित है।**

२६. हिंसा का दावानल कैसे बुझेगा ?

'एक जिज्ञासु' को उत्तर

['एक जिज्ञासु' ने 'दावानल कैसे बुझेगा' ? शीर्षक से गांधी जी को युद्ध की विभीषिका के सम्बन्ध में निम्नलिखित पत्र लिखा था। उसे 'हरिजनबन्धु' एवं 'हरिजन सेवक' के ७।९।'४० के अंक में प्रकाशित किया गया था। इस पत्र में वह लिखते हैं---

"इंगलैण्ड और जर्मनी के बीच कुछ सप्ताह से जिस प्रकार से वायुयान-युद्ध चल रहा है, आप पढ़ते ही होंगे। किस तरह विभिन्न प्रकार के हजारों बम गिराने वाले वायुयान एक दूसरे के देश पर आक्रमण करते हैं, शत्रु के कितने अड्डे, इमारत, और मनुष्यों का संहार करते हैं। इन सब बातों का वर्णन असुरोचित गर्व से अखबार और रेडियो-द्वारा किया जाता है; और प्रत्येक देश अपनी जनता को इस बात का आश्वासन देता है कि शत्रु ने हमको जो हानि पहुँचाई है उसकी तुलना में हमने शत्रुओं को कहीं अधिक हानि पहुँचाई है। हर एक पक्ष यह भी दावे से कहता है कि हम कभी शत्रु के असैनिक केन्द्र पर आक्रमण नहीं करते, केवल सैनिक अड्डों का ही नाश करते हैं। लेकिन अगर अखबारों में आनेवाले बयान सही हों तो ऐसा कहा जा सकता है कि असैनिक और सैनिक अड्डों के बीच अन्तर करना हमलावरों के लिए अशक्य-सा है, क्योंकि जो वायुयान बम गिराते हैं उनकी रफ्तार चार सौ मील प्रति घण्टे होती है और जो बम गिराये जाते हैं वे भी जमीन से दस से बीस हजार फुट की ऊंचाई से और धुएँ के कृत्रिम घने बादल की आड़ से। इसलिए वे निश्चित स्थान पर गिर नहीं सकते हैं।

"इसके अतिरिक्त दोनों पक्ष यह भी अभिमान से कहते हैं कि उन्होंने शत्रु के देश पर इतना प्रबल घेरा जमाया है कि वहां अकाल की पूरी आशंका है। और इस अकाल की मार सबसे पहिले तो जनसाधारण पर ही पड़ेगी, क्योंकि सैनिकों को तो चाहे जितना खर्च हो खिलाना ही चाहिए।

"इस भयंकर ताण्डवनृत्य में एक के बाद एक संसार के समस्त गोरे और पीले लोग सम्मिलित हो रहे हैं।

"क्या हम इन लोगों को यह संहार रोकने का विचार नहीं दे सकते ? क्या युद्ध में पड़े हुए देशों के और उनसे सहानुभूति रखने वाले देशों के नेताओं को हम यह नहीं समझा सकते कि वे अपने राष्ट्रीय अभिमान और महेच्छाओं को घटाकर मानव-जाति के हित का विचार करें ? क्या अब यह समय नहीं आ गया है जबकि हम हर एक प्रकार के युद्ध के विरोध की घोषणा कर दें---चाहे वह नाज़ीवाद या साम्यवाद या लोकशासन या सर्वाधिकारवाद के पक्ष में हो या विरुद्ध, चाहे

वह आक्रमण के लिए हो या आत्मरक्षा के लिए हो। युद्धमात्र आततायी धर्म है। उससे क्या कभी सर्वोदय हो सकता है?

"मैं अवश्य मानता हूं कि युद्ध करने वाले देशों में अनेक ईश्वर के सेवक होंगे जो इस काण्ड से अति दुःखित होते होंगे, पर उसके विरुद्ध अपनी आवाज उठाने का बल उनमें न होगा। क्या ईश्वर के नाम से हम ऐसा कुछ न कुछ नहीं कर सकते जिससे उनको हम हिम्मत दे सकें, और दूसरे विचारवान लोगों के सुषुप्त अन्तः-करण को जागृत कर सकें?"

जिज्ञासु के प्रश्न पर गांधी जी ने जो विचार प्रकट किये वे नीचे दिये जाते हैं।—संपा०]

यह प्रश्न तो सबके मन में उठा होगा। उसकी विशिष्टता तो उसे रखने के ढंग में है। लेखक ने अपने प्रश्न रखते हुए वर्तमान दावानल के भीषण रूप का ऐसा चित्र खींचा है कि हम सब के हृदय में हिंसा के प्रति घृणा उत्पन्न होनी चाहिए। उसे पढ़कर पाठक के मन में सहज ही यह उद्‌गार उठेगा : 'ऐसी हिंसा से समस्त संसार का राज्य प्राप्त हो सकता हो तब भी वह मुझे नहीं चाहिए।'

परन्तु ऐसे उद्‌गार से यह दावानल नहीं शान्त होगा। स्वयं तो वह किसी दिन शान्त होगा ही। परन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि उसके शान्त होने के पहिले यादव-संहार-सा विनाश होगा। यादव लोग एक दूसरे से लड़ मरे और पृथ्वी का भार हल्का हुआ। दावानल धधकता ही रहे, इससे श्रेष्ठ तो यह है कि वह यादव-संहार के द्वारा शान्त हो जाय। परन्तु ऐसी इच्छा कोई नहीं करेगा। इच्छा तो ऐसी करनी चाहिए कि सर्वनाश होने के पूर्व इस दावानल को किसी न किसी प्रबल अहिंसा-प्रयोग-द्वारा शान्त किया जाय। हां, यह देखना है कि वह प्रयोग कब और किस रूप में किया जा सकता है। जब हम इसकी खोज कर सकेंगे, तब एक जिज्ञासु को सन्तोष होगा।

मेरे विचार से यह खोज हो चुकी है। अगर हिन्दुस्तान इस दावानल में ही अहिंसक मार्ग से स्वराज्य प्राप्त कर ले, तो वह शान्त हो सकता है। चूंकि मेरा यह दृढ़ विश्वास था, मैंने कार्यकारिणी समिति के वर्धा प्रस्ताव का घोर विरोध किया और कांग्रेस से अपनी मुक्ति प्राप्त कर ली। मैंने आत्माभिमान को पुष्ट करने के लिए कदापि मुक्ति नहीं प्राप्त की, परन्तु उसे अपने प्रयोग की सफलता के लिए प्राप्त की। सम्भव है, यह मुक्ति मुझसे वापस ले ली जाय। अगर ऐसा हुआ तो वह भी प्रयोग की सफलता के लिए ही होगा।

अपने धर्म-ग्रन्थों में हम पढ़ते हैं कि प्राचीन काल में जब कोई विपत्ति या उपद्रव से बचने के लिए सामान्य उपाय व्यर्थ हो जाते थे तब लोग तपश्चर्या करते थे,

अर्थात् वस्तुतः जलते थे। इन बातों को मैं दन्त-कथा नहीं मानता। तपश्चर्या के अनेक प्रकार होते हैं। मूढ़ मनुष्य भी तपश्चर्या कर सकता है। आज भी ऐसे लोग पाये जाते हैं। ज्ञानी भी तपश्चर्या करते हैं। तपश्चर्या का अर्थ समझ लेना चाहिए। पाश्चात्य शास्त्रज्ञों ने तपश्चर्या करके ही तो आविष्कार किये। तपश्चर्या केवल वन में चले जाने, अपने आस-पास धूनी लगाकर बैठने से नहीं होती, ऐसी तपश्चर्या में तो निरी मूढ़ता भी सम्भव है। इसलिए तपश्चर्या का विस्तृत व ठीक अर्थ करना चाहिए।

'एक जिज्ञासु' ने जो प्रश्न उठाया है वह निराशा-जनित नहीं है। उनका हेतु तो अहिंसा-भक्तों को जगाने का है। मैंने तो मार्ग दिखा दिया है। वह मार्ग है तेरह-विधि रचनात्मक कार्यक्रम का। उसका जो श्रद्धा-पूर्वक और मूक-भाव से पालन करेंगे, वे वर्तमान दावानल को बुझानेवाली तपश्चर्या में भाग लेने वाले माने जायंगे। ऐसे कार्यक्रम में ज्ञान-पूर्वक हिस्सा लेनेवाले एक पन्थ दो काज कर लेंगे। वे हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करेंगे और दावानल को शान्त। यह सम्भव है कि ऐसे व्यक्ति बहुत कम हों—इतने कम कि उनके कार्य का कोई परिणाम न निकले। मैं तो कह चुका हूं कि यदि एक ही व्यक्ति प्रायः सम्पूर्णतया अहिंसक हो तो वह दावानल बुझाने का सामर्थ्य रखेगा। परन्तु मैंने तो ऐसी तपश्चर्या बताई है जो सामान्य व्यक्ति भी सरलता से कर सके। प्रजा-बल के इस युग में यह इष्ट है कि जो शुभ कार्य हो, जन-समूह के यत्न से ही हो। किसी महान व्यक्ति के पराक्रम से हितकर हो उससे समाज को अपने बल का ज्ञान नहीं हो सकता, और उतने परिमाण में यद्यपि एक व्यक्ति से प्राप्त किया हुआ हित त्याज्य नहीं है, फिर भी उससे समाज की तेजोवृद्धि नहीं हो सकती है। वह तो मानो कोई धनाढ्य दानी पुरुष लाखों भूखों को अन्न बाँटता हो, ऐसी बात हुई! इसलिए हमारा प्रयत्न तो तेरह-विधि कार्यक्रम के पालन हेतु ही होना चाहिए। चाहे उससे सफलता न भी प्राप्त हो, आत्म-सन्तोष तो होगा ही।

'एक जिज्ञासु' ने अपने पत्र में जो एक चाबुक चलाया है, उसकी ओर मैं पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। उनके कहने का भावार्थ है—यह बड़े दुःख की बात है कि दोनों पक्ष के संहारक पराक्रमों की बात लोग रातदिन चाव से पढ़ते हैं; वे उकता नहीं जाते। जिनको शान्ति-प्रचार कार्य में भाग लेना है, उनका धर्म है कि वे इन चीजों में रस लेने से अपने आपको बचायें। अगर वे ऐसा नहीं करेंगे, तो उनको अपना अहिंसा का दावा छोड़ देना चाहिए। वे तेरह प्रकार के रचनात्मक कार्यक्रम में भाग नहीं ले सकेंगे, क्योंकि उनकी उसमें श्रद्धा न जमेगी।

जो हो, इतना तो हस्तामलकवत् है कि यदि अहिंसक पुरुषार्थ से दावानल शान्त होगा, तो वह केवल हिन्दुस्तान में ही होगा।

--सेवाग्राम २१९।'४०। ह० ब०। ह० से०, ७।९।'४०]

- तपश्चर्या के अनेक प्रकार होते हैं। मूढ़ मनुष्य भी तपश्चर्या कर सकता है।
- ज्ञानी भी तपश्चर्या करते हैं। तपश्चर्या का अर्थ समझ लेना चाहिए।
- तपश्चर्या केवल वन में जाकर अपने आस-पास धूनी लगाकर बैठने से नहीं होती। ऐसी तपश्चर्या में तो निरी मूढ़ता भी सम्भव है।
- यदि एक ही व्यक्ति प्रायः सम्पूर्णतया अहिंसक हो तो वह दावानल बुझाने का सामर्थ्य रखेगा।

२७. जगत् की सुरक्षा और अहिंसा

[अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक समाप्त होने पर गांधी जी ने इंग्लैण्ड और अमेरिका के पत्रकारों को कई महत्वपूर्ण साक्षात्कार दिये जिनमें अनेक प्रश्नों पर अपना मत प्रकट किया था। इस साक्षात्कार से आवश्यक अंश संकलित किये जा रहे हैं।--संपा०]

प्रश्न--हिटलरशाही से जगत् की सुरक्षा करने में हिन्दुस्तान का क्या अंशदान होगा?

उत्तर--यदि हम अहिंसा-द्वारा ब्रिटिश शासन से निपट सकें तो केवल हिटलरशाही ही क्या स्वेच्छाचारी शासन मात्र का संसार से अन्त कर सकेंगे।

प्रश्न--जर्मनी ने बेलजियम और दूसरे देशों की जो दशा की है वह हमने देख ली है। क्या आप अब भी अहिंसा की दोहाई देंगे? आज आप कांग्रेस को सलाह तो यह दे रहे हैं कि वह सत्याग्रह आन्दोलन शुरू कर दे, क्योंकि ऐसा न करे तो उसका अस्तित्व मिट जाने का ख़तरा है। इसी तरह आप यह क्यों नहीं देख सकते कि इंग्लैण्ड का अस्तित्व भी खतरे में है। और इसीलिए वह लड़ रहा है।

उत्तर--किन्तु इन दोनों में स्पष्ट अन्तर है। हिटलर को हराने के लिए इंग्लैण्ड को उससे भी अधिक हिटलरशाही चलानी पड़ेगी। परन्तु अपने युद्ध में तो हम विरोधी के शस्त्र का प्रयोग नहीं करना चाहते। मैं तो भारत पर आक्रमण करने वाले से कहूंगा, आप चाहें तो हमारे गिरजाघर, हमारी भव्य ऐतिहासिक इमारतें, हमारे घरबार को निःसन्देह ध्वस्त कर सकते हैं। परन्तु हमारी आत्मा पर अधिकार नहीं पा सकते। हम आपके आक्रमण के प्रत्युत्तर में आपके गिरजा-

घर, ऐतिहासिक स्थल घर-बार का विध्वंस करने नहीं निकलेंगे। आपके शस्त्रों से हम अपने देश की रक्षा नहीं करेंगे। किन्तु हम आपको सहयोग देने से बिलकुल इन्कार करेंगे। हम आपकी अधीनता कभी स्वीकार नहीं करेंगे। दूसरे शब्दों में एक 'ना' से हम आपकी सब बात का उत्तर देंगे । हिटलर आकर हमारे देश पर अधिकार कर सकता है, किन्तु वह एक भी हिन्दुस्तानी को अपनी नौकरी में भरती नहीं कर सकेगा।

इन दो दृष्टान्तों में एक और भेद है। अगर हमें ब्रिटिश सरकार का सामना उसके शस्त्रों से करना होता तो हम सरकार की आपदाओं को अपना सौभाग्य समझकर उस पर आज जबकि उसकी तैयारी नहीं है, अचानक आक्रमण करने का अवसर हाथ से न जाने देते। किन्तु हम तो यहां एक वर्ष से, शत्रु को परेशान न करने की नीति पर बल दे रहे हैं। तो क्या ब्रिटेन के लिए यह शोभास्पद बात है कि वह हमारी उदारता का प्रयोग हमारे ही समक्ष हमारे नाश के लिए करे? ख़ैर, हमने तो निश्चय ही किया है कि ब्रिटेन के शस्त्र से उसका सामना नहीं करेंगे, और इस प्रकार अहिंसा मार्ग पर दृढ़ रहकर हम ब्रिटेन की इच्छा के विरुद्ध भी उसकी सेवा करते रहेंगे। मैं यह बात समझ सकता हूं कि ऐसे समय जबकि ब्रिटिश सरकार जर्मनी से युद्ध कर रही है, वह शासन की बागडोर अपने हाथों से नहीं हटा सकती, किन्तु इस अवसर का उपयोग वह हमारी अहिंसक शक्ति को कुचलने के लिए करना चाहेगी, यह तो मैं नहीं समझ सकता।

प्रश्न--परन्तु यह तो फिर ईसामसीह की भाषा हुई, और पाश्चात्य ईसाई जगत् आज यह भाषा नहीं समझ सकता।

उत्तर--यह सम्भव है; फिर भी मेरी यही नीति रहेगी। चाहे इसके कारण मेरा प्राण भी चला जाय। मेरे निकट अहिंसा एक व्यक्तिगत धर्म ही नहीं, समग्र समाज के लिए एक राजनीतिक और आध्यात्मिक साधना है।

--सेवाग्राम, २३।९।'४०। ह० ज०। ह० से० ५।१०।'४०]

- **यदि हम अहिंसा-द्वारा ब्रिटिश शासन से निबट सकें तो केवल हिटलरशाही क्या, स्वेच्छाचारी शासनमात्र का संसार से अन्त कर सकेंगे।**
- **मेरे निकट अहिंसा एक व्यक्तिगत धर्म ही नहीं, समग्र समाज के लिए एक राजनीतिक और आध्यात्मिक साधना है।**

२८. संगठित अहिंसा की शक्ति

. . . .हमारे और दुनिया की अन्य गैर-युरोपीय जातियों के लिए ब्रिटिश प्रभुत्व का क्या अर्थ होता है सो हम जानते हैं, किन्तु हम ब्रिटिश शासन का अन्त जर्मनी की सहायता से कभी नहीं करना चाहेंगे।. . . .

. . . .हमें अहिंसा के रूप में जो शक्ति प्राप्त हुई है यदि उसे संगठित कर दिया जाय तो वह दुनिया की हिंसक-से-हिंसक शक्तियों के संयुक्त बल से मोर्चा ले सकती है। जैसा कि मैं कह चुका हूं, अहिंसा-प्रणाली में पराजय के लिए कोई स्थान नहीं है। उसका मन्त्र तो करो या मरो है, और वह दूसरों को मारने या चोट पहुंचाने में विश्वास नहीं रखती है। उसके उपयोग में न धन की दरकार है, न उस विनाशकारी विज्ञान की जिसके विकास को आपने इतनी चरम सीमा तक पहुंचा दिया है।. . . .

मुझे तो यही आश्चर्य है कि आप यह क्यों नहीं समझते कि आपकी प्रणाली पर किसी का इजारा नहीं है। यदि अंग्रेज़ न सही तो निश्चय ही कोई और शक्ति आपकी प्रणाली में सुधार करके आपके ही हथियार से आपको पराजित कर देगी। आप अपनी जाति के लिए कोई ऐसी विरासत नहीं छोड़ रहे हैं, जिस पर वह गर्व कर सके। निर्दयतापूर्ण कृत्यों का पाठ करने में उसे गर्व का बोध कदापि नहीं होगा, फिर उनकी रचना में चाहे कितना ही बुद्धि-कौशल क्यों न खर्च किया गया हो ? . .

--एडोल्फ हिटलर को लिखे गये पत्र से। २४।१२।'४१]

२९. अहिंसा की कसौटी

[विलायत की सुप्रसिद्ध शान्तिवादिनी नेता डा० मॉड रायडन पश्चिमी जगत् में अपने शान्ति-प्रयत्नों के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी मान्यता है कि युद्धनीति ईसा के उपदेशों के विरुद्ध है। यह लन्दन-स्थित अपने गिरजाघर गिल्डहाउस में शान्ति का उपदेश दिया करती थीं। १९३१ के चीन-जपान युद्ध में जब जपान ने मंचूरिया को अधिकृत कर लिया, डा० रायडन ने सुझाव दिया था कि एक शान्ति-सेना का गठन किया जाय और उसे युद्धरत दोनों पक्ष की सेनाओं के बीच खड़ा कर दिया जाय। उनकी धारणा थी कि शान्ति-सेना के बलिदान से युद्ध की अग्नि शान्त हो जायगी।

किन्तु इस शान्ति-सेना के लिए आह्वान करने पर केवल एक हजार या उससे

कम सत्याग्रहियों के नाम प्राप्त हुए। डा० रायडन को इससे बड़ी निराशा हुई और द्वितीय महासमर प्रारम्भ हुआ तो उन्होंने अपना शान्तिवादी सिद्धान्त परिवर्तित कर दिया।

दिसम्बर १९४१ के 'सर्वे ग्राफ़िक' मासिक पत्र में डा० रायडन ने एक मर्मस्पर्शी और वेदनापूर्ण लेख लिखा, जिसका अन्तिम भाग इस प्रकार था––

'....एक अर्थ में मैं आज भी शान्तिवादिनी हूं, यानी मैं मानती हूं कि ईसाइयों में आत्मबल-द्वारा पशुबल का सामना करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। उन्नीस सौ वर्षों के बाद भी आज हम कुछ व्यक्तिगत मामलों में और छोटे पैमाने पर ही ऐसा कर सकते हैं, यह विचार मन को व्यथा से भर देता है। लेकिन जो शक्ति सचमुच हमारे अन्दर नहीं है, जिसके लिए भूतकाल में हमने कोई शिक्षा भी नहीं ली, और न जिसके आवश्यक नियमों का पालन ही किया, उसके बारे में यह मान लेना कि वह हमारे अन्दर है, और फिर वैसा ही व्यवहार करना, इसमें मुझे तो निरा शेखचिल्लीपन ही मालूम होता है। जिन्होंने आवश्यक नियमों का पालन नहीं किया है, उनमें आख़िरी वक्त, ऐन संकट के समय, वह शक्ति नहीं आती। हममें वह आई नहीं। अतएव एक ओर खड़े रहकर कुछ न करने की अपेक्षा तो मैं जिन सिद्धान्तों को सहज ही उचित और मानव जाति के भविष्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण मानती हूं, उन सिद्धान्तों की रक्षा के लिए जो कुछ मुझसे हो सकता है, उसे करना पसन्द करूंगी। निष्क्रिय होकर बैठे रहना बुरी से बुरी चीज़ है।

"इसलिए जब मेरे शान्तिवादी मित्र मुझसे पूछते हैं कि क्या आप ईसा मसीह के बम बरसाने या बन्दूक दागने की कल्पना कर सकती हैं, तो मुझे यह उत्तर देने का अधिकार है कि नहीं, मैं वैसी कल्पना नहीं कर सकती, लेकिन मैं यह भी तो नहीं सोच सकती कि वे एक किनारे खड़े रहेंगे और कुछ भी न करेंगे।

मेरे एक निकट सम्बन्धी ने पिछले युद्ध के आरम्भ में मुझसे कहा था, यदि आप आत्मबल द्वारा युद्ध को रोक सकती हैं, तो रोकें। न रोक सकती हों, तो मैं जो कुछ कर रहा हूँ, मुझे करने दें। और यदि आपका यह विचार सच हो कि यह युद्ध अपने आप में इतनी घृणित चीज है कि इसमें सम्मिलित होने वाला भी घृणापात्र बन जाता है, तो इन सब चीजों को बराबर यों ही होने देने की अपेक्षा अपनी जान को जोखिम में डालकर भी इन्हें रोकने का यथाशक्ति प्रयत्न करना, और ऐसा करते हुए घृणापात्र बनना पड़े, तो बनना मैं पसन्द करता हूं। मेरे ये रिश्तेदार पिछले युद्ध में काम आये थे और वे युद्ध से उतनी ही घृणा करते थे, जितनी कोई भी शान्तिवादी कर सकता है।

प्रभु ईसामसीह ने कहा था, जो अपने जीवन की आहुति देता है, वही अमर

जीवन पाता है। क्या इसमें और ऊपर वाले कथन में अर्थ की बहुत ही समानता नहीं ?"

डा० रायडन के इस उद्‌गार का बापू जी के द्वारा दिया गया उत्तर संकलित किया जाता है।--संपा०]

डा० रायडन के इस लेख का बहुत विचारपूर्ण उत्तर देने की आवश्यकता है। मैं बराबर पश्चिम के शान्तिवादियों के सम्पर्क में रहता आया हूं। मेरी राय में डा० रायडन ने अपने इस लेख में अहिंसा-सम्बन्धी अपने पहिले के विचारों को तिलाञ्जलि दे दी है। यदि कुछ लोगों ने व्यक्तिशः छोटे पैमाने पर ईसामसीह के अहिंसा-सम्बन्धी उपदेशों पर अमल किया है, तो यह माना जा सकता है कि सतत आचरण व अभ्यास-द्वारा अधिकांश लोगों के लिए बड़े पैमाने पर भी उस तरह का जीवन शक्य हो सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि जो शक्ति वस्तुतः व्यक्ति में नहीं है, उसके होने की कल्पना करके वैसा व्यवहार करना अनुचित और मूर्खता-पूर्ण है। लेकिन विदुषी लेखिका कहती हैं कि जिन्होंने आवश्यक नियमों का पालन नहीं किया है, उनमें अन्तिम समय, ऐन संकट के समय, वह शक्ति नहीं आती।

मैं यह सुझाना चाहता हूं कि इस त्रुटि का पता चलने के बाद इसे मिटाने में थोड़ा भी समय न गंवाना चाहिए। इसी प्रकार हम कुछ करते हैं; यही नहीं बल्कि सच्चा काम करते हैं। इसके विपरीत आचरण करके अपने धर्म को भूल जाना सचमुच बुरे-से-बुरा काम है।

और मैं यह नहीं मानता कि निष्क्रिय होकर बैठे रहना बुरी-से-बुरी चीज़ है। उदाहरण के लिए, जिस चिकित्सा में विष को अपने आप निकल जाने देना आवश्यक है, उसमें कुछ न करना हितकर ही नहीं. कर्त्तव्य रूप भी होता है।

इस समय निराशा का कोई कारण नहीं। आनबान के इस अवसर पर अपने अंगीकृत धर्म को छोड़ने का तो और भी कम कारण है। शान्तिवादी अंग्रेज एक ओर क्यों न हट जायं और अपने समूचे जीवन का नये सिरे से निर्माण करें। शायद वे सम्पूर्ण शान्ति स्थापित न कर सकेंगे, लेकिन वे उसकी पक्की नींव डाल देंगे और धर्म-विषयक अपनी श्रद्धा का दृढ़तम परिचय देंगे। आज के इस उथल-पुथल के समय में, जब अविचल श्रद्धावाले लोग मुट्ठी भर ही हैं, उनका कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपनी धार्मिक श्रद्धा के अनुसार आचरण करके दिखायें. फिर चाहे उसका कोई प्रकट प्रभाव संसार के घटनाचक्र पर पड़ता न दिखाई पड़। उन्हें यह मान-कर चलना चाहिए कि उनके कार्य का प्रत्यक्ष परिणाम भी यथावसर प्रकट होकर रहेगा। उनकी यह दृढ़ता संशयात्माओं को आकर्षित किये बिना न रहेगी। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि डा० माड रायडन-जैसे लोग निरे अनुयायी नहीं,

वे अगुआ हैं। उन्हें अपने मसीहा के गिरि-प्रवचन का गहन अनुशीलन करके तदनुसार अपना जीवन बिताना चाहिए। जब वे ऐसा करेंगे, तो तुरन्त ही उन्हें पता चलेगा कि उन्हें बहुत कुछ छोड़ना है और बहुत कुछ नये रूप में बनाना है। जिस बड़ी-से-बड़ी चीज़ का त्याग उन्हें करना है, वह तो साम्राज्यवाद के फल का त्याग है। लन्दन वालों का वर्तमान अटपटा जीवन और उनकी मंहगी रहन-सहन एशिया, अफ्रीका और संसार के अन्य भागों से खिंचकर आने वाले अकूट धन के कारण ही सम्भव हो सकी है। यद्यपि हर अंग्रेज के नाम लिखे गये मेरे पत्र की चारों ओर से कड़ी आलोचना हुई है, तो भी मैं उसके एक-एक शब्द पर दृढ़ हूं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि उस पत्र में कैसी भी संगठित और भीषण हिंसा के विरुद्ध जो उपाय मैंने सुझाया है, उसे आगामी युग की प्रजा स्वीकार करेगी। और अब जब कि शत्रु हिन्दुस्तान के दरवाज़े पर आकर खड़ा है, आचरण का जो तरीका मैंने पहले ब्रिटिश जनता के सामने प्रस्तुत किया था, उसी को अपने देशभाइयों के सामने भी रख रहा हूं। शायद मेरे देशभाई मेरी सलाह मानें, शायद न भी मानें। तो भी मैं अपने पथ से विचलित नहीं होऊंगा। उनके उसे अस्वीकार करने से अहिंसा असफल सिद्ध नहीं हो सकती। हां, अपनी अपूर्णता के आरोप को मैं मान लूंगा। लेकिन सत्याग्रही अपने प्रयोग में दूसरों को सम्मिलित होने का निमन्त्रण देने के पूर्व सम्पूर्णता प्राप्त करने की राह नहीं देखता, शर्त सिर्फ यह है कि उसकी श्रद्धा पहाड़ की तरह अचल होनी चाहिए। डा० रायडन के रिश्तेदार ने जो सलाह उन्हें दी थी, और जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी सहमति के साथ ऊपर किया है, वह ग़लत है। यदि युद्ध घृणास्पद है, तो उसमें सम्मिलित होकर कोई उसकी बुराइयों को कैसे दूर कर सकता है? फिर चाहे आप आत्मरक्षा के लिए लड़नेवालों के दल में ही क्यों न सम्मिलित हों और उसके लिए अपने प्राणों को ही संकट में क्यों न डाल दें? क्योंकि आत्मरक्षा करनेवालों को भी वे ही सब घृणित कार्य करने पड़ते हैं जिन्हें शत्रु करता है, और यदि शत्रु पर विजय पाना है, तो ये सब काम दूनी शक्ति से करने पड़ते हैं। इस प्रकार प्राण गंवाने से प्राण बचते तो नहीं, बल्कि व्यर्थ नष्ट होते हैं।

डा० रायडन के गिरजाघर में, जहां प्रार्थना की शक्ति के सम्बन्ध में जाग्रत श्रद्धा का खूब प्रचार होता है, मैं गया हूं और उनके प्रार्थना-प्रवचन में उपस्थित रहा हूं। जब चारों ओर से घोर अन्धकार ने उन्हें घेर लिया था, तब उन्होंने आन्तरिक प्रार्थना-द्वारा बल, आश्वासन और सच्चे कर्म की प्रेरणा क्यों नहीं प्राप्त की? आज भी स्थिति ऐसी नहीं है कि बिगड़ी सुधर न सके। उन्हें और उनके शान्तिवादी साथियों को, जिनमें अनेक से परिचित होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त

है, साहस से काम लेना चाहिए और कुछ समय के लिए जो श्रद्धा शिथिल हो गई थी, उसके लिए पीटर की तरह पश्चात्ताप करके अपनी अहिंसा-विषयक पुरानी श्रद्धा को नये उत्साह के साथ जाग्रत करना चाहिए। उनके इस जागरण से युद्ध-प्रयत्न की कोई विशेष हानि न होगी, किन्तु युद्ध-विरोधी प्रयत्न को बहुत गति प्राप्त होगी। यदि मनुष्य को मनुष्य की तरह जीना है और दो पैरोंवाला पशु नहीं बन जाना है, तो यह प्रयत्न देर से नहीं, अपितु शीघ्र ही सफल हुए बिना न रहेगा।
--सेवाग्राम, २।३।'४२। ह० ज०। ह० से० ५।४।'४२]

३०. अहिंसक प्रतिकार

जपान हमारा दरवाज़ा खटखटा रहा है। अहिंसात्मक तरीके से हम इसका क्या उत्तर देंगे? यदि हिन्दुस्तान आज़ाद होता तो जपान को देश में घुसने से रोकने के लिए अहिंसक उपायों से काम लिया जा सकता था, परन्तु आज की स्थिति में तो हमारी भूमि पर पैर रखने के साथ ही सत्याग्रह-द्वारा उसका सामना किया जा सकता है। उदाहरण के लिए सत्याग्रही उसे हर तरह की मदद देने से इन्कार करेंगे, पानी तक न देंगे, क्योंकि अपने देश को हड़पने में किसी की सहायता करना उनका कोई कर्तव्य नहीं होता। हां, यदि कोई जपानी रास्ता भूल गया हो और प्यास से मर रहा हो, और एक इंसान के नाते सहायता मांगता हो, तो वे उस प्यासे जपानी को पानी देंगे, क्योंकि सत्याग्रही किसी को अपना शत्रु नहीं मान सकता। मान लीजिए कि जपानी सत्याग्रहियों को पानी देने के लिए विवश करें, तो उस दशा में उन्हें उनका विरोध करते-करते मर मिटना होगा। यह सोचा जा सकता है कि वे तमाम सत्याग्रहियों को मौत के घाट उतार देंगे। हमारे इस अहिंसात्मक प्रतिकार का आधार यह आस्था है कि आखिर आक्रमणकारी अहिंसक सत्याग्रहियों को क़त्ल करते-करते मन से और शरीर से भी थक जायगा, वह सोच में पड़ जायगा कि आखिर यह कौन-सी नई (उसके नजदीक) शक्ति है जो चोट पहुंचाने की कोशिश तक नहीं करती और सहयोग देने से इन्कार करती है। परिणाम यह होगा कि शायद वह और अधिक क़त्ल न करेगा। लेकिन सम्भव है कि सत्याग्रही जपानियों को अत्यन्त हृदयहीन पायें और देखें कि उन्हें इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं है कि वे कितनों को क़त्ल करते हैं। उस दशा में जीत अहिंसक प्रतिकार करने वालों की ही होगी, क्योंकि उन्होंने झुकने के बजाय मर मिटना पसन्द किया है।

लेकिन जिस प्रकार मैंने लिखा है उस प्रकार बिलकुल सरलता से यह सब

हो नहीं जायगा। आज देश में कम-से-कम चार दल हैं। पहला दल अंग्रेजों का और उनके द्वारा खड़ी की गई फौजों का है। जपानियों ने एलान किया है कि हिन्दुस्तान पर उनकी कोई नज़र नहीं, उनका झगड़ा सिर्फ अंग्रेजों के साथ है। इसमें उन्हें कई हिन्दुस्तानियों की, जो इस समय जपान में हैं, सहायता मिल रही है। उनकी संख्या का अनुमान करना कठिन है; ऐसे लोगों की पर्याप्त संख्या अवश्य है जो जपानी ऐलान पर भरोसा करते हैं और मानते हैं कि जपानी उन्हें अंग्रेजी हुकूमत के जुए से आज़ाद करके अपने घर लौट जायंगे। अंग्रेजी हुकूमत का बोझ ढोते-ढोते वे इतने थक चुके हैं, कि परिवर्तन की दृष्टि से, फिर वह कितना ही बुरा क्यों न हो, वे जपानी जुए का स्वागत करने को भी तैयार हो सकते हैं। यह दूसरा दल है। तीसरा दल तटस्थ लोगों का है। वे अहिंसक तो नहीं हैं। फिर भी ब्रिटेन या जपान दोनों में से किसी की भी मदद करना नहीं चाहते।

चौथा और आखिरी दल अहिंसक प्रतिकार करने वालों का है। अगर वे मुट्ठी भर ही रहें, तो उनका अहिंसक विरोध भविष्य के लिए एक उदाहरण रूप ही रहेगा; इससे अधिक और कोई प्रभाव वह पैदा न कर सकेगा। वे शान्ति के साथ अपनी जगह पर अटल रहकर मर मिटेंगे किन्तु आक्रमणकारी के आगे घुटने न टेकेंगे। वे वायदों के धोखे में न फंसेंगे। वे किसी तीसरे दल की सहायता से अंग्रेजी हुकूमत से छुटकारा नहीं चाहेंगे। वे पूरी तरह अहिंसक युद्ध के अपने तरीके में ही विश्वास रक्खेंगे, अन्य किसी में नहीं। उनकी लड़ाई उन करोड़ों मूक हिन्दुस्तानियों के लिए है, जो जानते तक नहीं कि मुक्ति या आज़ादी किसे कहते हैं ? उनके हृदय में न अंग्रेजों के प्रति कोई द्वेष है, न जपानियों के लिए कोई विशेष प्रेम। वे उन दोनों का उसी तरह भला चाहते हैं, जिस तरह और सब का। वे तो यही चाहते हैं कि अंग्रेज व जपानी दोनों धर्म के मार्ग पर चलें। वे मानते हैं कि केवल अहिंसा ही सब दशाओं में संसार को उचित मार्ग पर चला सकती है। इसलिए यदि पर्याप्त साथियों के अभाव में अहिंसावादियों का ध्येय सिद्ध न हो, तो भी वे अपना मार्ग छोड़ें नहीं, बल्कि मरते दम तक उसपर डटे रहें।

अहिंसा के साधकों के सामने आज एक कठिन साधना उपस्थित है। लेकिन जिन्हें अपने ध्येय में श्रद्धा है, उन्हें कोई भी कठिनाई परास्त नहीं कर सकती।

एक विषम और लम्बी यातना का समय हमारे सामने है। सत्याग्रहियों को चाहिए कि वे असम्भव काम करने के प्रयत्न में न पड़ें। उनकी बाह्य शक्तियां सीमित हैं। उदाहरणार्थ आज आसाम बहुत खतरे में है, लेकिन केरल के सत्याग्रही सैनिक की यह ज़िम्मेदारी नहीं कि वह उसकी रक्षा के लिए वहां दौड़ा जाय। यदि उसमें वह चीज़ नहीं है, तो केरल के अहिंसक सत्याग्रहियों का कोई भी जत्था

उसकी या किसी दूसरे प्रान्त की सहायता नहीं कर सकेगा। केरल वाले केरल में ही अपनी अहिंसा का परिचय देकर आसाम आदि की सहायता कर सकते हैं। यदि जपानी सेना के पांव हिन्दुस्तान में जम गये, तो वह केवल आसाम में ही नहीं अटकी रहेगी। अंग्रेजों को हराने के लिए उसे सारे देश में छा जाना होगा। अंग्रेज चप्पा-चप्पा जमीन के लिए लड़ेंगे। यदि हिन्दुस्तान उनके हाथ से निकल गया, तो शायद यह कहा जा सकेगा कि उन्होंने अपनी पूरी-पूरी पराजय स्वीकार कर ली है। लेकिन ऐसा हो, चाहे न हो, इतनी बात तो बिलकुल स्पष्ट है कि जपान तब-तक दम न लेगा, जब तक सारा हिन्दुस्तान उसके हाथ में न आ जाय। इसलिए अहिंसात्मक प्रतिकार करनेवालों को अपनी-अपनी जगह पर ही रहना चाहिए।

यहां एक बात स्पष्ट कर देना आवश्यक है। जहां अंग्रेजी सेना की वास्तविक भिड़न्त शत्रु के साथ हो रही हो, वहां सत्याग्रहियों का सीधी तरह अहिंसक प्रतिकार करना शायद अनुचित होगा। यदि अहिंसक और हिंसक प्रतिकार का मिश्रण हो जाय या वे एक दूसरे के अंग बन जायँ तो वह प्रतिकार अहिंसक न रहेगा।

इसलिए जो बात मैं बार-बार कहता रहा हूं, उसी को यहां फिर दोहराता हूं : दृढ़ निश्चय के साथ रचनात्मक कार्यक्रम को चलाना ही अहिंसात्मक कार्रवाई की सबसे अच्छी तैयारी और उसका तरीका है। जो कोई भी यह मान बैठेगा कि रचनात्मक कार्यक्रम के आधार के बिना भी वह अहिंसक बल दिखा सकेगा, परीक्षा के समय वह बुरी तरह असफल होगा। यह तो वैसी ही बात होगी, कि कोई बिलकुल निहत्था और भूख का मारा आदमी किसी खा-पीकर टंच और हथियारों से लैस सैनिक का सामना करने का प्रयत्न करे। उसकी हार तो निश्चित ही है। मेरी राय में, जिसे रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास नहीं, उसमें भूख से पीड़ित करोड़ों देशवासियों के प्रति कोई मूर्तिमन्त भावना नहीं। और जिसमें यह भावना नहीं, वह अहिंसक लड़ाई लड़ नहीं सकता। अपने जीवन में मैंने यह पाया है कि ज्यों-ज्यों मैं देश के दरिद्रनारायणों के साथ तद्रूप होता गया, त्यों-त्यों मेरी अहिंसा का विस्तार होता गया। अपनी कल्पना की अहिंसा से अब भी मैं बहुत दूर हूं। क्योंकि मूक मानवता के साथ तन्मय होने की अपनी कल्पना से मैं अभी बहुत दूर नहीं हूं क्या?

—वर्धा लौटते हुए, रेल में, ५।४।'४२। ह० ज०। ह० से० १२।४।'४२]

- **केवल अहिंसा ही सब दशाओं में संसार को उचित मार्ग पर चला सकती है।**
- **जिन्हें अपने ध्येय में श्रद्धा है उन्हें कोई कठिनाई परास्त नहीं कर सकती।**
- **जिसमें भावना नहीं वह अहिंसक लड़ाई नहीं लड़ सकता।**

३१. युद्ध का अहिंसक प्रतिरोध

[तीन प्रसिद्ध विदेशी पत्र-संवाददाता दिल्ली में गांधी जी से मिले। ये थे 'न्यूयार्क हेरालड ट्रिब्यून' की मिस ईव क्यूरी, 'डेली एक्सप्रेस' के श्री मूरहेड और 'शिकागो टाइम्स' के श्री बसवाइन।

इन पत्रकारों ने गांधी जी से द्वितीय महासमर और भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न पूछे। इस प्रसिद्ध भेंटवार्ता के आवश्यक अंश संकलित किये गये हैं।--संपा०]

प्रश्न--यदि धुरी राष्ट्रों की जीत हो गई, तो हिन्दुस्तान की भी पोलैण्ड और फ्रांस-जैसी दशा होगी। और यही कारण है कि परास्त राष्ट्रों का सामान्य नागरिक इसी आशा और श्रद्धा का सेवन करता है कि मित्रराष्ट्रों की जीत हो।

उत्तर--कुछ भी हो, किन्तु हिन्दुस्तान तो अहिंसा-द्वारा ही जगत् में कीर्तिमान हो सकता है। पिछले बीस वर्षों में हम जो कुछ कर पाये हैं, वह बताता है कि यदि अहिंसा का सिद्धान्त हमारी जनता में आम तौर पर चल जाय, तो उसमें से कितना महत्वपूर्ण परिणाम निकल सकता है।

प्रश्न--आज आप अंग्रेज शासन के बन्द भले ही ढीले कर दें, परन्तु यदि कभी आपको जर्मन और जपानी फौजों से पाला पड़ा तो आपको पता लग जायगा कि अहिंसा के द्वारा सामना करना एक टेढ़ी खीर है।

उत्तर--यह बिलकुल सम्भव है। परन्तु आज ही तो अपनी श्रद्धा पर चलने का वक्त है। यदि जपानियों ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की, तो मैं अपने देशवासियों को शस्त्रों से लड़ने का प्रोत्साहन नहीं दूंगा, और न मैं उन्हें चढ़ाई करने वालों के साथ गुटबन्दी करने दूंगा। हमारी लड़ाई विषम अवश्य होगी, परन्तु वह हमारे सर्वोत्तम गुणों के विकास का कारण बनेगी।

प्रश्न--तो क्या आप यह मानते हैं कि हिन्दुस्तान न तो खुद लड़ेगा और न दूसरों से अपनी रक्षा करवायेगा?

उत्तर--हिन्दुस्तान को एकाएक सशस्त्र राष्ट्र बनाना व्यावहारिक कारणों से असम्भव है। हमारे देशवासियों को बलवान् बनाने के दो भिन्न-भिन्न तरीके हैं। एक तो उनको शस्त्र देना और दूसरा उन्हें अहिंसा सिखाना। दोनों के लिए समय चाहिए। मैं तो केवल इतना मानता हूं कि मेरा, यानी अहिंसा का तरीका अधिक अचूक है; वह ज्यादा सही और अन्त में अधिक सफल होनेवाला है। यदि हमें जपानी और जर्मन सेनाओं को अपने शारीरिक बल से हराना है, तो उसके लिए यह आवश्यक है कि हम उनकी अपेक्षा अधिक बलवान् बनें। दूसरे शब्दों

में, उनसे अधिक निष्ठुर अर्थात् निकृष्ट बनें। तो आखिर हमें जीत से मिला क्या? कुछ भी नहीं। इसके विपरीत अहिंसा-द्वारा लड़ने वाले राष्ट्र अजेय हैं, क्योंकि उनकी शक्ति उनकी बन्दूकों और मशीनगनों पर निर्भर नहीं। और जब तरीका अच्छा है, तो तात्कालिक परिणाम की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। सफलता तो अन्ततः आयेगी ही। अहिंसक लड़ाई के दो ही परिणाम हो सकते हैं: या तो शत्रु आपसे सन्धि कर ले। इस अवस्था में बिना रक्तपात के ही आपकी जीत होगी, या फिर वह आपको नष्ट कर दे; यह अन्तिम स्थिति भी महाभारत युद्ध के परिणाम से कुछ बुरी नहीं। फ्रांस को आज़ाद करने की आपकी उत्सुकता के लिए मैं आपको दोष नहीं देता, क्योंकि मैं स्वयं हिन्दुस्तान को आज़ाद देखने के लिए उत्सुक हूं। परन्तु यह मानना कि शस्त्रबल से कोई भी देश स्वतन्त्र हो सकता है, वस्तुतः अत्यन्त अधैर्य का सूचक है।

[अमरीकी और अंग्रेज संवाददाताओं ने इस प्रश्न पर अधिक तटस्थ दृष्टि से चर्चा करने की कोशिश की। इसीलिए वे गांधी जी को काफी विस्तृत चर्चा में खींच सके। उन्होंने गांधी जी से वर्तमान परिस्थिति पर सामान्य रूप से कुछ कहने को कहा।]

गांधी जी—मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता। मैं तो सिर्फ अपने विशिष्ट विषय की ही चर्चा कर सकता हूं, अर्थात् वर्तमान विषम परिस्थिति में अहिंसा कैसे चल सकती है, इसके बारे में कुछ कह सकता हूं। लेकिन वह आपके किस काम आयेगा? क्या यह प्रस्तुत भी है? युद्ध-संवाददाता की हैसियत से आपको उसमें कुछ भी दिलचस्पी नहीं होगी।

श्री मूरहेड—जी नहीं, आप जो कुछ भी कहें, वह महत्व का ही होगा।

गांधी जी—अच्छी बात है, किन्तु मुझे आश्चर्य इस बात का होता है कि जब अच्छे-अच्छे आदमियों को भी साफ़-साफ़ यह समझाया जाता है कि यद्यपि हिंसा और अहिंसा दोनों में मृत्यु का सामना करना पड़ता है, तथापि अहिंसा में अधिक वीरता की आवश्यकता पड़ती है, तो वे अहिंसा की खिल्ली उड़ाते हैं। एक मृत्यु और विनाश लाता है; दूसरी में किसी को मारने का प्रश्न ही नहीं। अपने ध्येय को प्राप्त करने के लिए यदि किसी को मारना ही पड़े तो हम स्वयं अपनी जान देकर उसे प्राप्त करेंगे। चीन का उदाहरण लीजिए। यदि उस प्रबल राष्ट्र ने जपानी टिड्डी दल से कहा होता—जो चाहो सो करो हम तुम्हें सहयोग न देंगे तो कैसा होता?

मूर०—कुछ सीमा तक ऐसा हुआ था पर, वह सफल न हुआ।

गांधी जी—नहीं, इसे पूर्णरूप से करना आवश्यक था। मलेरिया के रोगी

को कुनैन की पूरी मात्रा लेनी ही चाहिए, जैसे निश्चित समय तक रोज ३० ग्रेन। बीच ही में रुक जाने से काम न चलेगा।

प्रश्न—परन्तु जपानी सारे चीन पर कब्जा कर लें तो?

उत्तर—वे ऐसा नहीं कर सकते। इससे पूर्व उन्हें प्रत्येक स्त्री-पुरुष के टुकड़े-टुकड़े करने होंगे। हिंसक युद्ध में पहिले अत्यन्त प्रबल शिक्षण की आवश्यकता होती है, परन्तु अहिंसक युद्ध में नहीं। वहां हमें शस्त्र-विशारद नहीं, अपितु भाव-विशारद बनना होगा। इसका अर्थ यह होगा कि असंख्य स्त्री-पुरुष मैदान में उतरें और एक जीवन्त दीवार खड़ी कर दें। यदि राष्ट्र को अहिंसक युद्ध की शिक्षा दी गई है, तो वह जपान को किसी प्रकार कभी सहयोग नहीं देगा और परिणाम-स्वरूप जपान के सामने केवल दो मार्ग रह जायँगे या तो यह कि समस्त चीनी जनता खेत रहे (यदि मान लिया जाय कि सारी जनता सत्याग्रह युद्ध में सम्मिलित होती है) या यह कि वे उल्टे कदम वापस जायं और देश को स्वतन्त्र रहने दें।

प्रश्न—मगर जपानी ऐसा कुछ करने के नहीं। वे तो इतमीनान से देश पर क़ब्जा कर लेंगे और अनाज आदि समस्त फस्लें हड़प कर जायँगे। पर क्या आप यह कहना चाहते हैं कि चीनी अपनी फस्लों को नष्ट कर देंगे?

उत्तर—चीनी किसी चीज़ को भी नष्ट नहीं करेंगे। धीरज और श्रम के साथ उगाई हुई अपनी एक भी फस्ल को वे बरबाद नहीं करेंगे। पर जपानी इन फसलों का उपयोग नहीं कर सकेंगे। क्योंकि यदि चीनवासी अहिंसक वीरता दिखा सकें, तो फस्लों और जपानियों के बीच एक जीवित दीवार खड़ी हो जायगी।

प्रश्न—परन्तु यदि कोई क़ौम जपानियों की तरह बिलकुल ही हृदयहीन हो तो?

उत्तर—तो चीन की विजयिनी मृत्यु होगी।

प्रश्न—यदि सारा हिन्दुस्तान अहिंसा के सिद्धान्त को स्वीकार कर ले, तब तो जपानी हिन्दुस्तान में प्रवेश कर जायेंगे?

उत्तर—यदि हम यह मान लें, तो आप देख सकेंगे कि जपानी ३५ करोड़ भारतीयों को क़त्ल किये बिना हिन्दुस्तान पर कब्जा नहीं कर सकेंगे।

प्रश्न—किन्तु फिर भी वे हिन्दुस्तान की ज़मीन पर उतर तो सकेंगे न?

उत्तर—अच्छा मान लिया, इसके बाद?

प्रश्न—तो आपको यह भी मानना होगा कि चूंकि जपानी दुराचारी लोग हैं, इसलिए वे हिन्दुस्तान में अगणित बुराइयां फैलायेंगे। उस दशा में आपकी अहिंसा का परिणाम यह होगा कि जो चीज आप कभी नहीं चाहते थे, उसे आप स्वयं मोल लेंगे।

[शायद ये संवाददाता जपानियों और नाजियों-द्वारा चीन और पोलैण्ड में

की गई पाशविक बर्बरता की कहानियों का विचार कर रहे थे, जो उन्होंने सुनी थीं। अर्थात् बेबस स्त्री-पुरुषों में तरह-तरह के जहर फैलाना और बलात्कार आदि करना]

उत्तर––किन्तु मान लें कि बुरी-से-बुरी घटना घटित हो और जपानियों ने एक-एक स्त्री और पुरुष को कत्ल कर दिया, तो इससे हमारा कुछ बिड़ेगा नहीं, बनेगा ही।

प्रश्न––तो क्या मुक्ति की एक मात्र आशा अहिंसा-द्वारा ही है?

उत्तर––हां, आज जो हो रहा है वह तो पारस्परिक वध ही है।

प्रश्न––तो क्या आपका अर्थ यह है कि अन्तिम परिणाम में हिंसा के फलस्वरूप पहिले से भी अधिक बुराइयां आयँगी?

उत्तर––यदि इससे आपका यह अर्थ है कि तात्कालिक परिणामस्वरूप अहिंसा से लाभ के बजाय हानि होगी, तो मैं यह मानने को तैयार नहीं। तात्कालिक परिणाम-स्वरूप कहें या अन्तिम, हिंसा से भयंकर बुराइयां भी पैदा हो सकती हैं। इसके विरुद्ध अहिंसा का केवल एक ही दुष्परिणाम, यदि उसे ऐसा कहा जा सके तो, है:––स्वैच्छिक मृत्यु। पर मेरी मान्यता तो यह है कि यदि अहिंसा पर्याप्त मात्रा में हुई तो वह पाषाणहृदयों को भी पिघला देगी।

[युद्ध-संवाददाताओं की दिलचस्पी और भी गहरी हुई। उन्होंने अपने प्रश्नों की बौछार जारी रक्खी।]

प्रश्न––घेरा डालकर लोग अपने खाद्य-पदार्थों की रक्षा कैसे करेंगे?

उत्तर––यदि मेरे द्वारा सूचित तरकीब पर अमल किया जाय, तो जब तक एक भी चीनी जीवित है, जपानी फसल पर हाथ नहीं डाल सकेंगे। उन्हें सब को क़त्ल करना होगा।

[अब तक सारे तर्क का आधार यह था कि हम एक निःशस्त्र कौम हैं, यदि हमारे पास अस्त्र-शस्त्र हों, तो क्या फिर भी हम अहिंसा की बातें करेंगे? यह उनका दूसरा प्रश्न था।]

गांधी जी––उस हालत में मैं कहूंगा कि आप अपनी पसन्द का चुनाव कर लें। जपानियों के हमारी तरह ही चमड़ी है, हमारी तरह ही आंख, कान, और मन है। तो उनका खून क्यों बहाया जाय? दूसरे की जान लेने से तो शस्त्र-त्याग करना अधिक सरल है। फिर क्यों न हम शस्त्रों को फेंक दें और स्वयं मृत्यु-मुख में प्रवेश करें?

प्रश्न––यह तो उस दशा में होगा न, जब आपका शस्त्रबल उनसे कम हो? परन्तु यदि आपका शस्त्रबल उनसे अधिक हो तो?

उत्तर––तो भी मेरा उत्तर वही होगा। क्योंकि अपने से निर्बल को कुचलना मनुष्य की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है।

संवाददाता––हम समझ गये। तीन प्रकार की भिन्न-भिन्न परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। परन्तु उन सबका आपके पास भिन्न-भिन्न कारणों से एक ही उत्तर है। यदि आप निर्बल हैं, तो न लड़ें, यदि आप समान हैं, तो पारस्परिक वध व्यर्थ है; और यदि आप बलवान हैं, तो दुर्बल का वध मानव की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। अतः अंग्रेज नीति और आपके बीच कहीं भी मेल के लिए स्थान नहीं। इसलिए समझौते की आशा भी नहीं रहती।

गांधी जी––आप मुझे फँसाने की कोशिश कर रहे हैं। (फिर कुछ रुक कर) नहीं नहीं, आपने जिस शीघ्रता के साथ मेरी बात को ग्रहण कर लिया है, उसपर मैं मुग्ध हूं। मैं यह कभी नहीं कहूंगा कि समझौता हो ही नहीं सकता। अहिंसा के आधार पर समझौते की सम्भावना सदा है। मैं जानता हूं कि यह एक बहुत ही नाजुक प्रश्न है।

प्रश्न––मुझे आशा है कि आप पराधीनता स्वीकार करने की बात तो नहीं कर रहे हैं?

उत्तर––पराधीनता स्वीकार करने की मैं कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। यही बात मैंने चेक लोगों और प्रत्येक ब्रिटेनवासी के नाम खुली चिट्ठी में भी कही थी। मुझे खेद है कि मेरे शब्दों को उनके सन्दर्भ से निकाल लिया गया है और इंग्लैण्ड व अमेरिका दोनों में मेरी अपील को विकृत रूप दिया गया है।

संवाद०––तो हमारे बीच भेद सिद्धान्त का नहीं, केवल मात्रा का है। क्योंकि हम दोनों युद्ध से बचना चाहते हैं और हम दोनों चाहते हैं कि यदि सम्भव हो तो हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए ही रहे।

गांधी जी––आप चाहें तो ऐसा कह सकते हैं। परन्तु हमारे साधन भिन्न-भिन्न हैं। मुझे यह कहने में आपत्ति नहीं कि भेद हमारे बीच केवल मात्रा का ही है, किन्तु कोई उसे मानेगा नहीं।

––महादेव ह० देसाई द्वारा प्रस्तुत विवरण से। ह० ज०। ह० से०, १९।४।'४२]

- **हिन्दुस्तान तो अहिंसा-द्वारा ही जगत में कीर्तिमान हो सकता है।**
- **अहिंसा से लड़ने वाले राष्ट्र अजेय हैं, क्योंकि उनकी शक्ति बन्दूकों और मशीनगनों पर निर्भर नहीं।**
- **यह मानना कि शस्त्रबल से कोई भी देश स्वतन्त्र हो सकता है वस्तुतः अत्यन्त अधैर्य का सूचक है।**

- यद्यपि हिंसा और अहिंसा दोनों में मृत्यु का सामना करना पड़ता है, तथापि अहिंसा में अधिक वीरता की आवश्यकता पड़ती है।
- हिंसक युद्ध में पहिले अत्यन्त प्रबल शिक्षण की आवश्यकता होती है, परन्तु अहिंसक युद्ध में नहीं।
- अपने से निर्बल को कुचलना मनुष्य की प्रतिष्ठा के विरुद्ध है।

३२. कावेबाज़ी की लड़ाई

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न---आपने अभी उस रोज़ वर्धा में कहा था कि जवाहरलाल आपके क़ानूनी वारिस हैं। आपके क़ानूनी वारिस ने जपानियों के खिलाफ़ कावेबाजी की लड़ाई लड़ने की जो हिमायत की है, उसकी कल्पना आपको कैसी लगती है? जब जवाहरलाल खुल्लमखुल्ला हिंसा का प्रचार कर रहे हैं और राजाजी सारे देश को शस्त्र और शस्त्रों की तालीम देना चाहते हैं तो आपकी अहिंसा का क्या होगा?

उत्तर--जिस तरह आपने लिखा है, उसे देखते हुए तो परिस्थिति भयंकर मालूम होती है। मगर आपको जितनी भयंकर वह लगती है, दरअसल उतनी है नहीं। पहिली बात तो यह है कि मैंने क़ानूनी वारिस शब्द अपने मुंह से कहा ही नहीं। मेरा भाषण हिन्दुस्तानी में था। मैंने तो कहा था कि वे मेरे क़ानूनी वारिस नहीं बल्कि असली वारिस हैं। मेरा मतलब यह था कि जब मैं नहीं रहूंगा तो वह मेरी जगह लेंगे। उन्होंने मेरे तरीके को पूरे तौर पर कभी अंगीकार नहीं किया। उन्होंने तो उसकी साफ़-साफ़ आलोचना की है। परन्तु बावजूद इसके कांग्रेस की नीति का उन्होंने वफ़ादारी के साथ पालन भी किया है। वह नीति या तो मेरी ही निर्धारित थी, या अधिकांश में मुझसे प्रभावित थी। सरदार वल्लभभाई-जैसे नेता, जिन्होंने हमेशा बगैर किसी किस्म की शंका या सवाल के मेरा अनुसरण किया है, मेरे वारिस नहीं कहे जा सकते। यह तो हर कोई स्वीकार करता है कि और किसी में जवाहरलाल जी-सी क्रियात्मक शक्ति नहीं है। और क्या मैं यह नहीं कह चुका हूं कि मेरे चले जाने के बाद वे उस तमाम मतभेद को, जिसका जिक्र वे अक्सर किया करते हैं, भूल जायंगे।

मुझे इस बात का खेद है कि कावेबाजी की युद्ध-प्रणाली ने उनके दिल में घर कर लिया है। मगर मुझे जरा भी शक नहीं कि वह चार दिन की चाँदनी ही साबित होगी। देश पर उसका कुछ असर न होगा। यहां की भूमि उसके अनुकूल नहीं। २२

वर्ष तक जिस अहिंसा का लगातार आचार और प्रचार हुआ है--चाहे वह कितनी ही अपूर्ण क्यों न रही हो--उसका असर जवाहर लाल जी या राजा जी की इच्छा से--फिर वे कितने ही प्रभावशाली क्यों न हों--एक क्षण में नहीं मिट सकता। इसलिए मैं जवाहरलाल जी या राजा जी के अहिंसा-मार्ग से च्युत होने से विचलित नहीं होता। अपने प्रयत्न के निष्फल होने पर वे नई शक्ति और नये उल्लास के साथ अहिंसा-मार्ग पर लौटेंगे। उनमें से कोई भी हिंसा को इसलिए ग्रहण नहीं करना चाहता कि वह उन्हें पसन्द है। अगर आज वे हिंसा की शरण लेते भी हैं तो सम्भवत: इसलिए कि उनको लगता है कि अहिंसा पर आने से पहिले हिन्दुस्तान को हिंसा के दावानल में से गुज़रना ही चाहिए। कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि भावी घटनाओं की रूपरेखा क्या होगी। हो सकता है कि उनकी स्वाभाविक प्रेरणा ठीक साबित हो, और मेरी अनुभव के आधार के बावजूद भी ग़लत। मैं तो यह जानता हूं, कि मेरे लिए अपना रास्ता निर्धारित है। अगर मैं अकेला भी हूं, तो भी अपनी श्रद्धा में अटल रहकर उस पर चलूंगा। और विश्वास रखूंगा कि हिन्दुस्तान की जनता हिंसा के रास्ते को कभी नहीं अपनायेगी, वह या तो निष्क्रिय रहेगी या अहिंसक साधनों को अंगीकार करेगी। कावेबाज़ी की युद्ध-प्रणाली से हमारे पल्ले कुछ भी न पड़ेगा। अगर बड़े पैमाने पर इस पर अमल हुआ तो उससे देश में संकट जरूर पैदा होगा। अहिंसक असहयोग हर तरह के हिंसक युद्ध का स्थान सफलता के साथ ले सकता है। अगर समूचा देश सत्याग्रह का रास्ता ग्रहण करे तो पूरी सफलता मिल सकती है। अंग्रेज सल्तनत के सामने वह इस हद तक सफल न हो सका, क्योंकि उसकी जड़ें इस मुल्क में बहुत गहरी जम चुकी थीं। जपानियों का तो यहां अभी पैर भी नहीं पड़ा। मुझे आशा है कि अखिल भारतीय-कांग्रेस कमेटी अपने अगले अधिवेशन में फिर अहिंसा के तरीक़े पर आयेगी और अहिंसात्मक असहयोग के बारे में देश को साफ़-साफ़ निर्देश देगी। समझौते की बातचीत के टूट जाने के बाद सरकार के साथ किसी किस्म का बाज़ाप्ता सम्बन्ध न होने पर भी उसके हिंसात्मक युद्ध-प्रयत्न में शरीक होना खामखा देश की आबरू को मिट्टी में मिलाना है।

--ह० से०, २६।४।'४२]

- **अहिंसक असहयोग हर तरह के हिंसक युद्ध का स्थान सफलता के साथ ले सकता है।**

३३. भारत की हिंसक और अहिंसक रक्षा तथा ब्रिटेन

[एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न

१. यदि सशस्त्र हिंसा अपने क्षेत्र में अहिंसक हलचलों को प्रभावहीन वना देती है और अगर हिंसा के साथ अहिंसा एक ही क्षेत्र में काम नहीं कर सकती तो जब हम विदेशी फ़ौजों को हिन्दुस्तान में रहने और यहां रहकर काम करने देंगे, तो क्या बाहरी आक्रमण का अहिंसा-द्वारा प्रतिकार करने की कोई गुंजाइश रह जायगी ?

२. यदि हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता को बनाये रखने का काम सशस्त्र सेना पर ही छोड़ दिया जाय तो आज की स्थिति में उस सेना का नेतृत्व और नियमन ब्रिटेन और अमेरिका के हाथों में ही रहेगा। ऐसी दशा में क्या, कम-से-कम इस लड़ाई के दौरान, हिन्दुस्तान की जनता सच्ची स्वतन्त्रता का अनुभव कर सकेगी ?

३. सन्धि की शर्तें कुछ भी क्यों न हों, यदि ब्रिटिश और अमरीकी सेनाओं को हिन्दुस्तान की रक्षा का कार्य करने दिया गया, तो देश की रक्षा के कार्य में हिन्दुस्तानियों का अंश तो मामूली और मातहतों-जैसा ही रहेगा ?

४. मान लीजिए कि अंग्रेज किसी नैतिक दृष्टि से नहीं बल्कि कुछ समय के लिए राजनीतिक और युद्ध-सम्बन्धी व्यूह से लाभ उठाने के लिए एक ऐसी सन्धि करने पर सहमत हो जायं, जिसके अनुसार वे हिन्दुस्तान में अपनी फौजें रख सकें और सैनिक शक्ति बढ़ा सकें, तो बाद में यदि वे हिन्दुस्तान को अपने कब्जे में रखना ही पसन्द करें, तो उन्हें किस प्रकार हिन्दुस्तान से हटाया जा सकेगा ?

५. एक उदाहरण यह है कि यदि सुभाषबाबू जर्मनी और जपान के साथ एक सन्धि कर लें, जिसके अनुसार हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र घोषित कर दिया जाय, और अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से निकालने के लिए धुरी राष्ट्रों की फौजें यहां आयें तो क्या ऊपर के प्रश्न में जिस स्थिति की कल्पना की गई है, यह स्थिति उसी के जैसी न होगी ?

६. जैसा कि मौलाना साहब ने हाल ही में कहा है यदि कांग्रेस की दृष्टि में रक्षा का अर्थ सशस्त्र रक्षा ही है, तो इस बात को ध्यान में रखते हुए कि हिन्दुस्तान के पास बाहर के भीषण आक्रमणकारियों का स्वतन्त्र रीति से सशस्त्र और प्रभावशाली विरोध करने के लिए आवश्यक साधन-सामग्री नहीं है, क्या हिन्दुस्तान के लिए सच्ची स्वतन्त्रता की कोई सम्भावना रह जाती है? यदि हमें सशस्त्र रक्षा की ही दृष्टि से सोचना हो, तो उदाहरणार्थ क्या ४००० मील के समुद्रतटवाला हिन्दु-

स्तान विना अपने जहाजी बेड़ों के और जहाज बनाने के बड़े-बड़े कारखानों के कभी स्वतन्त्र रहने की आशा रख सकता है?

७. यदि ब्रिटेन हिन्दुस्तान की आज़ादी का ऐलान कर भी दे, तो भी आज की स्थिति में हिन्दुस्तान किस प्रकार की साधन-सामग्री भेजकर चीन की सहायता कर सकता है?

उत्तर

१. पहिले प्रश्न में सूचित दोष से इन्कार नहीं किया जा सकता। उसे मैं इससे पूर्व ही स्वीकार कर चुका हूं। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्र-राष्ट्रों की फ़ौजों को देश में रहने देकर अपनी राष्ट्रीय मर्यादा को ही स्वीकार करता है। समूचे राष्ट्र के रूप में हिन्दुस्तान कभी अहिंसक न था, और न कभी उसके लिए इस बात का दावा ही किया गया। उसका कितना भाग अहिंसक है, यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अभी तक हिन्दुस्तान ने बलवानों की उस अहिंसा का परिचय नहीं दिया है, जिसके द्वारा प्रबल फौजी हमलों का मुकाबला किया जा सके। यदि यह शक्ति हमने अपने अन्दर उत्पन्न की होती तो हम बहुत पहिले अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके होते, और उस दशा में हिन्दुस्तान के अन्दर बाहरी फौज़ों को रखने का कोई प्रश्न ही न उठता। स्मरण रहे कि जो माँग आज हम कर रहे हैं, वह एक अनोखी माँग है। इसके द्वारा हम ब्रिटेन से यह नहीं चाह रहे हैं कि वह स्वतन्त्र हिन्दुस्तान को देश का शासन सौंप दे। क्योंकि आज देश में ऐसा एक भी पक्ष नहीं जिसे ब्रिटेन इस प्रकार अपनी सत्ता सौंप सके। हमें सबल बनाने वाली एकता का हमारे पास अभाव है। इसलिए हमारी माँग के पीछे वह शक्ति नहीं है, जिसका हम प्रत्यक्ष परिचय दे सकें। इस माँग के अनुसार तो हम ब्रिटेन से यही आशा रखते हैं कि अब तक जिसके साथ उसने अन्याय किया है, उसके साथ वह इस बात का विचार किये बिना न्याय करे कि उसमें उस न्याय को पचा सकने की शक्ति है या नहीं। क्या ब्रिटेन उस लूटी हुई सम्पत्ति को वापस उसके मालिक के सुपुर्द केवल इसी विचार से कर सकेगा कि इस तरह किसी की सम्पत्ति को लूटना उसके लिए अन्यायपूर्ण था? उसे यह सोचने की कोई आवश्यकता न होनी चाहिए कि लौटाई हुई सम्पत्ति का स्वामी योग्य है भी कि वह उसे अपने पास सुरक्षित रख सके! यही कारण है कि इस सम्बन्ध में मुझे अराजकता शब्द का उपयोग करना पड़ा है। इस महान नैतिक कार्य से ब्रिटेन का नैतिक महत्व इतना बढ़ जायगा, कि फिर उसकी विजय में कोई सन्देह न रहेगा। हिन्दुस्तान को खोने के बाद भी ब्रिटेन को लड़ने की कोई ज़रूरत

रहेगी या नहीं, यहां इसकी चर्चा में पड़ना मेरे लिए आवश्यक नहीं। इससे हमें पता चल जायगा कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान पर अपना अधिकार क़ायम रखने के लिए लड़ रहा है, या अपनी प्रतिष्ठा के लिए। उस दशा में मेरी मांग चाहे कमजोर हो जाय, लेकिन उसका औचित्य तो बना ही रहेगा।

ऐसी परिस्थिति में मेरी प्रामाणिकता और शुभनिष्ठा का यह तक़ाज़ा है कि मैं अपनी मांग में निहित इस दोष का कोई उपाय करूं। यदि मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं को हिन्दुस्तान से हटाने की मांग का यह अर्थ होता हो कि वे निश्चित रूप से हार जायँगे, तो मेरी मांग अप्रामाणिक समझकर रद की जानी चाहिए। परिस्थितियों ने ही इस मांग को और इसकी मर्यादाओं को भी जन्म दिया है। अतएव यह तो मान ही लेना चाहिए कि जिस तरह आज बाहरी आक्रमण का अहिंसक प्रतिकार करने की कोई विशेष सम्भावना नहीं है, उसी प्रकार मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं के देश में रहते और लड़ते हुए सशस्त्र आक्रमण करने की थोड़ी-बहुत सम्भावना रहेगी। क्योंकि फौज़ें आज देश में मौजूद हैं। वे हम पर अपना पूरा प्रभुत्व जमाये हुए हैं। किन्तु मेरी मांग के अनुसार ये फौज़ें राष्ट्र की शर्तों के अधीन रहकर लड़ेंगी।

२. यदि ब्रिटेन की घोषणा प्रामाणिक हुई, तो मुझे कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि विदेशी फौजों की उपस्थिति से हमारी सच्ची स्वतन्त्रता की भावना पर किसी तरह का कोई प्रभाव क्यों पड़ेगा। पिछले महायुद्ध में जब अंग्रेजी फौजें फ्रांस में रहकर लड़ रही थीं, तो क्या फ्रांसवालों ने उनके कारण परतन्त्रता का अनुभव किया था? जब कल का मेरा स्वामी आज बराबरी का मेरा साथी बनकर मेरी शर्त पर मेरे घर में रहता है, तो निश्चय ही उसकी उपस्थिति से मेरी स्वतन्त्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता, बल्कि सम्भव है कि उसकी वैसी उपस्थिति से मुझे लाभ हो।

३. मेरी योजना के मूल में विचार तो यह रहा है कि हमें अपनी रक्षा या बचाव के लिए इन फौजों की आवश्यकता नहीं है। यदि वे यहां से चली जायं तो हम अपना प्रबन्ध किसी तरह कर ही लेंगे। सम्भव है कि हम अहिंसक तरीके से अपनी रक्षा करें। यदि भाग्य हमारा साथ दे, तो मित्रराष्ट्रों के हिन्दुस्तान से हट जाने के बाद और यह मालूम हो जाने के बाद कि हम उन्हें नहीं चाहते हैं, सम्भव है जपानी हिन्दुस्तान पर अधिकार करने की कोई आवश्यकता न अनुभव करें। लेकिन मित्र-राष्ट्रों के अपनी इच्छा से और व्यवस्थित रीति से या अनिच्छापूर्वक हिन्दुस्तान छोड़ देने पर क्या-क्या हो सकेगा, उसकी यह सब कल्पना ही कल्पना है।

४. हम यह मानकर चलते हैं कि मित्रराष्ट्र और खासकर ब्रिटेन प्रामाणिकता

का परिचय देगा। उस दशा में प्रश्न उनको यहां से हटाने का नहीं, बल्कि दिये हुए वचन को पूरा करने का रह जायगा। यदि वे अपने वादे से मुकर जायं यानी विश्वासघात करें, तो हममें इतनी अहिंसक या हिंसक शक्ति होनी चाहिए कि जिससे हम वादा पूरा करवा सकें।

५. निश्चय ही आपकी इन कल्पित परिस्थितियों में उतना ही अन्तर है जितना उत्तर और दक्षिण ध्रुवों के बीच है। मेरी माँग का सम्बन्ध हमारे शासकों से है। सुभाष बाबू उन्हें खदेड़ने के लिए जर्मन फौजें लायँगे। किन्तु जर्मनी पर हिन्दुस्तान को गुलामी से छुड़ाने का कोई दायित्व नहीं है। अतएव सुभाष बाबू की कार्रवाई से हिन्दुस्तान की हालत कढ़ाई से निकलकर चूल्हे में गिरने-जैसी ही हो सकती है। आशा है, लोग इस भेद को स्पष्ट समझ सकेंगे।

६. यह तो जानी हुई बात है कि मौलाना[१] साहब मेरी इस राय से सहमत नहीं कि कोई देश अपनी रक्षा बिना शस्त्रबल के भी कर सकता है, किन्तु मैं मानता हूं कि अहिंसक रीति से अपने देश की रक्षा की जा सकती है। मेरी मांग का आधार भी मेरी यह मान्यता ही है।

७. आज तो हिन्दुस्तान केवल उतनी ही सहायता दे सकता है जितनी मित्र-राष्ट्र देना उचित समझते हैं। यह सहायता भी बहुत ही अधूरी और बेढंगी होती है। स्वतन्त्र हिन्दुस्तान तो चीन को उसकी आवश्यकता के अनुसार जन-धन और साधन-सामग्री की भी सहायता भेज सकता है। एशिया का एक अंग होने से हिन्दुस्तान के मन में चीन के प्रति जो बन्धुभाव है, वह मित्रराष्ट्रों के मन में न कभी हो सकता है, न वे उससे लाभ उठा सकते हैं। और, क्या पता कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान जपान को चीन के साथ न्याय करने के लिए समझाने में सफल न होगा?

—सेवाग्राम, १२।७।'४२। ह० ज०। ह० से०, १९।७।'४२]

- **अभी तक हिन्दुस्तान ने बलवानों की उस अहिंसा का परिचय नहीं दिया है, जिसके द्वारा प्रबल फौजी हमलों का मुकाबला किया जा सके।**

३४. जपान और भारत : युद्ध और अहिंसा
(जपानियों के नाम अपील)

प्रारम्भ में मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि यद्यपि आपके लिए मेरे मन में कोई दुर्भाव नहीं है, फिर भी चीन पर किये गये आपके आक्रमणों को मैं

१. स्व० मौलाना अबुलकलाम 'आजाद', तात्कालिक कांग्रेस-अध्यक्ष।

बहुत ही नापसन्द करता हूं। अपनी महानता के ऊंचे शिखर से आप साम्राज्यशाही आकांक्षा के गहरे गर्त में उतर पड़े हैं। आप अपनी इस महात्वाकांक्षा को तो सफल न कर सकेंगे, किन्तु सम्भव है आप एशिया के अंगभंग के जनक बन जायँ। इस प्रकार अनजाने ही आप उस विश्वसंघ और विश्वबन्धुत्व की स्थापना में बाधक होंगे, जिसके बिना मानवता के लिए कोई आशा नहीं रह जाती।

आपके राष्ट्र के अनेक उत्तम गुणों का मैं पिछले पचास-पचपन वर्षों से प्रशंसक रहा हूं। जब मैं अठारह साल का लड़का ही था और लन्दन में पढ़ता था, मैंने स्वर्गीय सर एडविन अर्नाल्ड की रचनाओं-द्वारा आपके इन गुणों की सराहना सीखी थी। जब दक्षिण अफ्रीका में मैंने सुना कि आपने रूसी सेनाओं पर विजय प्राप्त की है, तो मैं हर्ष-गद्‌गद् हो उठा था। सन् १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान लौटने के बाद मैं उन जपानी साधुओं के निकट सम्पर्क में आया था, जो समय-समय पर हमारे आश्रम में आकर आश्रमवासी की तरह रहे थे। उनमें से एक तो सेवाग्राम आश्रम के अपने बहुमान्य सदस्य ही बन गये थे, और अपनी कर्त्तव्य-परायणता, अपने उन्नत आचरण, अपनी अटूट और नियमित उपासना, सुजनता, विभिन्न परिस्थितियों में शान्त रहने की शक्ति, और मुंह पर सदा खेलने वाली सहज मुसकान के कारण, जो उनकी आन्तरिक शान्ति का अचूक प्रमाण थी, वे हममें से हरएक के आत्मीय बन गये थे—हम सब उन्हें प्यार करने लगे थे। और अब, जबकि ग्रेटब्रिटेन के साथ आपकी लड़ाई की घोषणा के कारण वह हमसे दूर ले जाये गये हैं, हम उन्हें अपने एक प्रिय सहकारी के नाते निरन्तर स्मरण किया करते हैं। अपनी स्मृति के रूप में वह हमारे साथ अपनी दैनिक प्रार्थना और अपना छोटा ढोल छोड़ गये हैं। और अब ये दोनों हमारी सुबह-शाम की प्रार्थना के अंग बन गये हैं।

इन सुखद स्मृतियों की इस पार्श्वभूमिका के साथ जब प्राप्त समाचारों के आधार पर, यदि वे सच हों—मैं चीन पर किये गये आपके अकारण आक्रमण का विचार करता हूं, और उस महान् व प्राचीन देश को जिस निष्ठुरता के साथ आप ध्वस्त कर रहे हैं उसकी कल्पना करता हूं, तो मुझे अत्यन्त खेद होता है।

संसार की दूसरी महान शक्तियों की बराबरी में बैठने की आपकी महत्वाकांक्षा उचित ही थी। लेकिन चीन पर आक्रमण करके और धुरी राष्ट्रों के गुट में शामिल होकर निश्चय ही आपने अपनी उस महत्वाकांक्षा के अनावश्यक अतिरेक का परिचय दिया है।

मैं तो यह सोचता था कि चीन-जैसे महान और प्राचीन राष्ट्र को, जिसके प्राचीन पौराणिक साहित्य को आपने अपना साहित्य माना है, अपने पड़ोसी के

रूप में पाकर आप गर्व का अनुभव करेंगे; परस्पर एक दूसरे के इतिहास, परम्परा और साहित्य को समझने के कारण होना तो यह चाहिए था कि आप दोनों एक दूसरे के शत्रु न बनकर—जैसा कि आज है—मित्र बने होते।

यदि मैं अपने देश में स्वतन्त्र होता और यदि आप मुझे अपने देश आने देते तो दुर्बल होने पर भी, मैं अपने स्वास्थ्य की और शायद प्राणों की भी परवा न करके आपके देश पहुंचता और आपको उस अन्याय से विमुख होने के लिए समझाता, जो आप चीन के साथ, संसार के साथ और फलतः अपने साथ कर रहे हैं।

किन्तु आज मैं उतना स्वतन्त्र नहीं हूं। और आज हमारी दशा यह है कि हमें एक ऐसे साम्राज्यवाद का विरोध करना पड़ रहा है, जिसे हम आपके साम्राज्यवाद और नाज़ीवाद से किसी भी प्रकार कम नापसन्द नहीं करते। ब्रिटेन की इस सत्ता का विरोध करके हम ब्रिटिश जनता को कोई हानि नहीं पहुंचाना चाहते। हमतो उनका हृदय-परिवर्तन करना चाहते हैं। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध हमारा विद्रोह एक निःशस्त्र और खुली बग़ावत है। हिन्दुस्तान का एक महत्वपूर्ण दल अपने विदेशी शासकों के साथ एक भीषण किन्तु मित्रतापूर्ण युद्ध में रत है।

अपने इस कार्य में उसे किसी विदेशी सत्ता की सहायता की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। यदि आपका यह विचार हो कि ऐसे समय जबकि हिन्दुस्तान पर आपके आक्रमण की सम्भावना अत्यधिक बढ़ गई है मित्र-राष्ट्रों को परेशान करने के लिए ही हमने यह विशेष अवसर चुना है, तो मैं कहूंगा कि आपका वह विचार ग़लत है। क्योंकि मैं जानता हूं कि आपको बिल्कुल असत्य समाचार दिया गया है। यदि हम ब्रिटेन के संकट से लाभ उठाना चाहते, तो लगभग तीन वर्ष पूर्व जब युद्ध छिड़ा ही था हम वैसा कर सकते थे।

ब्रिटिश शासन को हिन्दुस्तान से हटाने के लिए जो आन्दोलन हमने प्रारम्भ किया है, उसका कोई ग़लत अर्थ न लगाया जाना चाहिए। सच तो यह है कि हिन्दुस्तान की आजादी के बारे में आपकी चिन्ता के जो समाचार हमें मिलते हैं, वे यदि विश्वसनीय हों, तो कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि ब्रिटेन के हिन्दुस्तान की आज़ादी को मान लेने के बाद आप उस पर कोई आक्रमण करें। साथ ही, चीन पर किये गये आपके क्रूर आक्रमणों के साथ आपकी इस तथाकथित चिन्ता का कोई मेल भी तो नहीं बैठता।

मैं आपसे यह कह देना चाहता हूं कि यदि आप यह मानते हों कि लोग हिन्दुस्तान में आपका प्रसन्नता से स्वागत करेंगे, तो वह बिल्कुल ग़लत होगा। ऐसा कोई भ्रम आप अपने हृदय में मत रखिए अन्यथा आपको बुरी तरह पछताना पड़ेगा। अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से हटाने के आन्दोलन का लक्ष्य और हेतु तो यह

है कि उसे स्वतन्त्र करके इस योग्य बनाया जाय कि वह सब प्रकार की सैनिक और साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं का डटकर प्रतिरोध कर सके, फिर चाहे वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद हो, चाहे जर्मन नाज़ीवाद अथवा आपके साँचे में ढला हुआ कोई वाद। यदि हम ऐसा नहीं करते, तो अपनी इस श्रद्धा के बावजूद कि अहिंसा के रसायन-द्वारा ही संसार की सैनिक वृत्ति और सैनिक महत्वाकांक्षाओं को बदला जा सकता है, हम संसार के बढ़ते हुए सैनिकवाद के असहाय और हीन दर्शक ही रह जाते हैं।

स्वयं मुझे तो इस बात का भय है कि हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की घोषणा किये बिना मित्रराष्ट्र धुरीराष्ट्रों के उस गुट को हराने में कभी समर्थ न हो सकेंगे, जिसने हिंसा को धर्म-जैसा उच्च स्वरूप दे दिया है। मित्र-राष्ट्र आपको और आपके साथियों को तबतक हरा नहीं सकते, जबतक आपकी क्रूरता और युद्ध-कौशल में भी वे आपको परास्त न कर दें। यदि वे आपके इन तरीकों का अनुकरण करेंगे तो निश्चय ही उनकी इस घोषणा का कोई अर्थ न रह जायगा कि वे संसार को प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। मैं अनुभव करता हूं कि उनके लिए आपकी इस क्रूरता का अनुकरण करने से बचने की शक्ति प्राप्त करने का एक ही उपाय है, और वह यह है कि वे इसी क्षण हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की घोषणा करें और उसे व्यावहारिक रूप दें, जिससे असन्तुष्ट हिन्दुस्तान का बलात् प्राप्त किया जानेवाला सहयोग स्वतन्त्र हिन्दुस्तान के स्वेच्छापूर्ण सहयोग में बदल सके।

हमने ब्रिटेन के और मित्र-राष्ट्रों के सामने न्याय के नाम पर, उनके अब तक के अपने दावों के प्रमाणस्वरूप और उनके व्यक्तिगत हित की सिद्धि के लिए अपनी यह मांग पेश की है। मैं आपसे मानवता के नाम पर अपील करता हूं। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि आप यह नहीं समझ पा रहे हैं कि क्रूरतापूर्ण युद्ध किसी एक की बपौती नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि मित्रराष्ट्र आपको पराजित न कर सके तो दूसरी कोई शक्ति आपके तरीक़ों की अपेक्षा श्रेष्ठ तरीक़े आविष्कृत कर आप ही के शस्त्र से आपको हरा देगी। यदि आप जीत भी गये, तो अपने देशवासियों के लिए आप ऐसी कोई विरासत न छोड़ जायँगे, जिस पर वे गर्व कर सकें। इन क्रूर कर्मों का स्तुतिगान करने में उन्हें किसी प्रकार के गर्व का अनुभव न होगा, फिर भले ही आपके क्रूर कर्म कितनी ही चतुराई और निपुणता के साथ क्यों न किये गये हों।

यदि आपकी जीत भी हुई, तो उससे यह सिद्ध न होगा कि आपका पक्ष सच्चा था। उससे तो केवल यही सिद्ध होगा कि आपकी संहारक शक्ति उत्कृष्ट थी। स्पष्ट ही यह बात मित्रराष्ट्रों पर भी लागू होती है—यदि वे एशिया और अफ्रीका

के दूसरे सभी पराधीन देशों को स्वतन्त्र करने की प्रतिज्ञा और प्रमाण के रूप में हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करने का न्याय और पुण्यकार्य इसी क्षण नहीं करते।

ब्रिटेन से जो अपील हमने की है, उसमें हमने यह भी कहा है कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्रराष्ट्रों को अपनी फौजें हिन्दुस्तान में रखने देगा। हमारा यह प्रस्ताव इस बात का प्रमाण है कि हम मित्रराष्ट्रों को उनके कार्य में किसी प्रकार की हानि पहुंचाना नहीं चाहते। अपने इस प्रस्ताव के द्वारा हम आपको भी यह जताना चाहते हैं कि कहीं भूल से आप यह न समझ लें कि ब्रिटेन के हटते ही आप सरलता से हिन्दुस्तान में अपना आसन जमा सकेंगे। यहां यह दोहराने की तो आवश्यकता ही नहीं कि यदि आपने ऐसा कोई विचार अपने हृदय में रक्खा और उस पर अमल किया, तो हमारा देश जितनी भी शक्ति एकत्र कर सकेगा उतनी समस्त शक्ति-सहित आपका सामना करने में कदापि न चूकेगा। मैं इस आशा के साथ आपसे यह अपील कर रहा हूं कि सम्भव है, हमारे इस आन्दोलन का आप पर और आपके साथियों पर भी सही प्रभाव पड़े—वह आपको सच्चे मार्ग पर ले जाय, और आपको तथा आपके साथियों को उस मार्ग से लौटने के लिए विवश करे, जो नैतिक दृष्टि से सचमुच आपके सर्वनाश का कारण बनेगा और जिससे मनुष्य मनुष्य नहीं रह जायँगे अपितु हृदयहीन जड़ यन्त्र बन जायंगे।

मेरी अपील का ब्रिटेन की ओर से मुझे जो भी उत्तर मिल सकता है, उसकी तुलना में आपकी ओर से अपनी इस अपील का उत्तर मिलने की मुझे बहुत ही कम आशा है। मैं जानता हूं कि अंग्रेजों में न्याय-बुद्धि का नितान्त अभाव नहीं है और वे मुझे पहचानते भी हैं। किन्तु मैं आपको इतना नहीं जानता कि आपके सम्बन्ध में कोई निर्णय दे सकूं। आपके विषय में जितना कुछ मैंने पढ़ा है, उससे तो मुझे यही ज्ञात हुआ है कि आप तलवार को छोड़ और किसी की नहीं सुनते। काश, यह सब मिथ्या हो, अर्थात् ये सारी बातें आपको बुरी तरह कलंकित करने के लिए ही लिखी गई हों, और मैं आपके हृदय के किसी सच्चे तार को छू सकूँ। अस्तु, कुछ भी क्यों न हो, मनुष्य-स्वभाव की संवेदनशीलता में, उचित उत्तर देने की उसकी क्षमता में, मुझे अमर विश्वास है। अपने इसी विश्वास के बल पर मैंने हिन्दुस्तान में शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाले नये आन्दोलन की कल्पना की है, और इसी विश्वास ने मुझे आपके नाम यह अपील लिखने को प्रेरित किया है।

—सेवाग्राम, १८।७।'४२। ह० ज०। ह० से० २६।७।'४२]

३५. हिंसा का परिणाम

[महासमर के विनाश से द्रवित होकर गांधी जी ने एक मित्र से निम्नलिखित उद्गार प्रकट किये थे।--संपा०]

इटली की ओर देखो। गैरीवाल्डी बड़ा आदमी था। उसने इटली को आज़ादी दिलवाई। और मुसोलिनी ने भी इटली को बड़ा बना हुआ-सा दिखाया। मगर आज इटली कहाँ है? जपान की तरफ़ देखो, जर्मनी की तरफ़ देखो, जिस हिंसा की बदौलत वे सत्ता के शिखर पर चढ़े, उसी ने उनको धरती पर गिरा दिया है। क्या परमाणु बम ने सभी प्रकार की हिंसा की व्यर्थता सिद्ध नहीं कर दी है? फिर भी हम कितने मूढ़बुद्धि हैं, जो यह सोचते हैं कि कुछ लोगों की खोपड़ियों को तोड़-कर और उस जायदाद को बरबाद करके, जो सब कुछ कहने और कर लेने के बाद भी हमारी अपनी है, हम स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। मुझे विश्वास है कि हिंसा के इस ताण्डव से लोग अहिंसा का पाठ पढ़ेंगे।

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १०।३।'४६]

३६. हिंसा कैसे रोकें?

[एक भाई पूना में किसी अंग्रेज सैनिक अधिकारी से मिले। सैनिक अधिकारी ने उनसे कहा कि वे स्वयं हिंसा को मानने वालों में हैं, मनुष्य का जीवन हिंसा से लिप्त है। अनेक परतन्त्र देशों ने हिंसा-द्वारा स्वाधीनता प्राप्त की है और आज उनका अस्तित्व सुख-समृद्धिपूर्ण है। संसार में लोगों ने अणु बम का आविष्कार करके हिंसा की गति रोक दी है और रक्तरञ्जित महायुद्ध को उसके द्वारा समाप्त कर दिया है। गांधी जी को भी अणुबम-जैसे किसी अचूक अस्त्र का आविष्कार करना चाहिए जिससे देश में जहां हिंसा बढ़ रही है, तत्काल शान्ति स्थापित हो सके और देश अहिंसा के मार्ग पर चलने लगे।

सैनिक अधिकारी की इन शंकाओं को गांधी जी के समक्ष रखते हुए उन भाई ने समाधान की प्रार्थना की। गांधी जी इन शंकाओं का उत्तर निम्न लेखांश में देते हैं।--संपा०]

मैं इस सवाल में काफी विचार-दोष पाता हूं। अणुगोले ने हिंसा को नहीं रोका है। लोगों के मन में तो हिंसा भरी है ही और तीसरी लड़ाई की तैयारियां होती दिखाई पड़ती हैं। यह कहना व्यर्थ है कि हिंसा से किसी को सुख-चैन मिला है, फिर भी कोई यह नहीं कहता कि हिंसा से कुछ हो ही नहीं सकता।

मैं हिंसा को रोक न सकूं तो मुझे पछताना पड़ेगा, ऐसी कोई बात अहिंसा में हो ही नहीं सकती। कोई भी आदमी हिंसा को रोक नहीं सकता। ईश्वर ही हिंसा को रोक सकता है। मनुष्य को तो वह निमित्त-मात्र बनाता है। हिंसा किसी बाहरी प्रयोग से रोकी नहीं जा सकती। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि कोई बाहरी प्रयोग हो नहीं सकता या होता नहीं। बाहरी उपायों के होते हुए भी वह रुकेगी तो ईश्वर की कृपा से ही। हां, इतना कहूंगा कि ईश्वर की कृपा रूढ़ प्रयोग है। ईश्वर अपने कानून के मुताबिक ही चलता है। इसलिए हिंसा उस कानून के मुताबिक ही रुकेगी। हम ईश्वर के सब कानूनों को नहीं जानते, न कभी पूर्णरूप से जान पायेंगे। इसलिए जो हमसे बन सके हम उसे करते रहें। इतना और भी कह दूं कि मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में अहिंसा का प्रयोग काफ़ी हद तक सफल हुआ है। मैं मानता हूं कि प्रस्तुत प्रश्न में जो निराशा जाहिर की गई है उसकी कोई गुंजाइश नहीं है। आखिर अहिंसा जगत् का एक महान सिद्धान्त है। उसे कोई मिटा नहीं सकता। मेरे-जैसे हजारों के उस पर अमल करते हुए मर जाने से भी वह सिद्धान्त मिट नहीं सकता। अहिंसा का प्रचार मरकर ही बढ़ेगा।
—ह० से०, १९।५।'४६]

- **अहिंसा जगत् का एक महान सिद्धान्त है।**

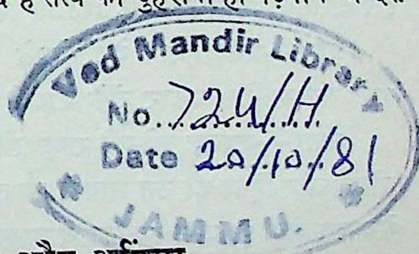
३७. अणुबम और अहिंसा

कुछ अमेरिकन दोस्त कहते हैं कि अणुबम से ही अहिंसा उत्पन्न होगी। शायद वे यह कहना चाहते हैं कि जिस तरह ठूंस-ठूंस कर मिठाइयां खाने से आदमी का मन उससे ऊब जाता है, उसे मतली होने लगती है, उसी तरह अणुबम की तबाही को देखकर दुनिया के दिल में हिंसा के लिए घृणा पैदा हो जायगी। लेकिन वह थोड़े दिनों के लिए होगी। जैसे ऊब मिटते ही आदमी फिर मिठाइयां खाने बैठ जाता है, उसी तरह अणु बम के दृश्य का असर दूर होते ही दुनिया दूने वेग से हिंसा की तरफ़ दौड़ती है।....

...अणुबम की इस बेहद दर्दनाक कहानी से हमें सबक तो यह सीखना है कि, जिस तरह हिंसा से हिंसा को नहीं मिटाया जा सकता उसी तरह एक बम को दूसरे बम से नहीं मिटाया जा सकता। इंसान सिर्फ अहिंसा के द्वारा ही हिंसा के गढ़े से निकल सकता है। घृणा दिखाने से वह और भी फैलती है और गहरी होती है। मैं जानता

हूं कि मैंने भरसक कोशिश की है और उसी को मैं आज दोहरा रहा हूं। असल में तो पहिले भी मैंने कोई नई बात नहीं कही थी। मैंने जो कहा था वह तो सनातन सत्य है। हाँ, इतनी बात जरूर है कि मैंने कोई किताबी बात नहीं कही थी। मैं मानता हूं कि जो चीज़ मेरी रग-रग में भरी है उसी को मैंने ज़ोरदार शब्दों में कहा है। साठ साल तक इस चीज को जीवन के हर एक क्षेत्र में आजमा कर मेरी श्रद्धा और भी दृढ़ हुई है और दोस्तों के अनुभव से भी उसे शक्ति मिली है। यह एक ऐसा बुनियादी सत्य है कि अगर आदमी अकेला हो तो भी बिना किसी झिझक के इसपर डटकर खड़ा रह सकता है। मैक्समूलर ने बरसों पहिले कहा था कि जब-तक सत्य पर अविश्वास रखने वाले मौजूद हैं सत्य को दुहराना ही पड़ेगा। मैं इस बात को मानता हूं।

—ह० से०, ७।७।'४६]



३८. अणुबम और अहिंसा

[एक अंग्रेज पत्रकार और गांधी जी के बीच हुए प्रश्नोत्तर का अंश]

अंग्रेज पत्रकार—अणुबम के बारे में आपका क्या खयाल है?

गांधी जी—ओह, इस मामले में तो आप सारी दुनिया के सामने डंके की चोट एलान कर सकते हैं कि मेरे विचारों में अन्तर आना असम्भव है। आदमियों, औरतों और बच्चों का आम खून करने के लिए अणुबम के प्रयोग को मैं विज्ञान का बहुत बड़ा राक्षसी प्रयोग समझता हूं।

अंग्रेज पत्रकार—तो फिर इसका इलाज क्या है? क्या इसने अहिंसा को ख़त्म नहीं कर दिया है?

गांधी जी—नहीं, उल्टे अब तो यह हुआ है कि यही एक ऐसी चीज है जिसे अणुबम ख़त्म नहीं कर सकता। हिरोशिमा पर अणुबम गिरने और उसके बरबाद होने की खबर पाकर मैं जरा भी विचलित नहीं हुआ। उल्टे मैंने अपने मन में यही कहा कि यदि दुनिया अब भी अहिंसा को नहीं अपनाती तो मानव जाति आत्म-हत्या से नहीं बचेगी।

—ह० से० ६।१०।'४६]

● **अणुबम के प्रयोग को मैं विज्ञान का बहुत बड़ा राक्षसी प्रयोग समझता हूं।**

● यदि दुनिया अब भी अहिंसा को नहीं अपनाती तो मानव जाति आत्म-हत्या से नहीं बचेगी।

३९. युद्ध कैसे समाप्त हो?

[एक प्रतिष्ठित एवं प्रभावशाली ब्रिटिश दैनिक के डायरेक्टर नई दिल्ली में गांधी जी से मिलने आये। उन्होंने गांधी जी से विभिन्न विषयों पर वार्ता की। इस वार्ता के आवश्यक अंश संकलित किये जा रहे हैं।--संपा०]

प्रश्न--अभी हमारे देखते-देखते युद्ध लड़ा गया। ऐसे बार-बार छिड़ने-वाले संग्राम किस प्रकार रोके जायं?

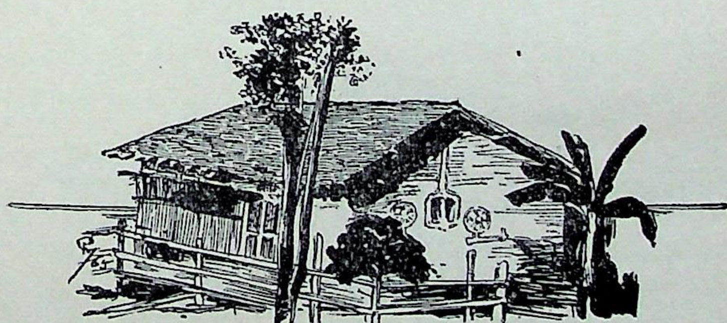
उत्तर--जबतक बड़े-बड़े राष्ट्र छोटे देशों का शोषण करने का विचार नहीं छोड़ते और हिंसा की उस भावना का त्याग नहीं करते, जो सहज ही युद्ध के रूप में व्यक्त होती है, और जिसका आवश्यक परिणाम अणुबम है, तबतक संसार में शान्ति स्थापित होने की आशा रखना व्यर्थ है। मुझे इसमें तनिक सन्देह नहीं। पिछले युद्ध के दौरान मैंने संसार के सामने अपनी बात रखने का प्रयत्न किया था, और ब्रिटिश प्रजा, हिटलर तथा जपानियों के नाम पत्र लिखे थे। लेकिन मेरे उस परिश्रम के बदले मुझे पंचमांगी कहा गया था।

प्रश्न--किन्तु अहिंसा के प्रभावशील होने में देर लगती है। अगर पश्चिम में दूसरा मोर्चा न खोला जाता, तो आज रूस का अस्तित्व भी न रहता।

उत्तर--ये सब तो दिमाग़ी तर्क हैं। मैं इस प्रकार नहीं सोच सकता। अन्यथा मुझे अपनी श्रद्धा से इन्कार करना होगा। मुझे कई अनुभव हुए हैं और इतने पर भी मेरी यह श्रद्धा पहिले से कहीं अधिक प्रखर हुई है। इतिहास के पन्नों में ऐसे कई चमत्कार भरे पड़े हैं, जब सामान्य जनता ने अपने पुराने विचारों का त्याग करके बात-की-बात में नये विचार अपना लिये हैं। दक्षिण अफ्रीका के बोअरों की लड़ाई को ही लीजिए। इस लड़ाई ने अंग्रेजी भाषा को 'मैफकिंग' शब्द दिया है। मैफकिंग दिवस मनाने के अवसर पर इंग्लैण्ड के लोग अफ्रीका के बोअर लोगों से बदला लेने के लिए पागल हो उठे थे, किन्तु दो वर्ष के अन्दर ही सारी ब्रिटिश प्रजा का मन बिल्कुल बदल गया। श्री हेनरी-कैम्पबेल-बैनरमैन प्रधान मन्त्री बने, और लड़ाई में जीती हुई लगभग सारी चीजें बोअर लोगों को वापस कर दी गईं। हाल ही में इंग्लैण्ड के चुनाव में मजदूर दल की जीत इसका दूसरा उदा-हरण है। कल तक ब्रिटिश लोग जिसकी एक बात भी नहीं टालते थे, और जिसकी

बातों को बड़े आदर से सुनते थे, वह चर्चिल अपनी इतनी लच्छेदार बातों और इतनी प्रबल शक्ति के बावजूद आज ब्रिटिश प्रजा का पूज्य व प्यारा नहीं रह गया। मेरे लिए यह काफ़ी बड़ा चमत्कार है कि सारे उदाहरण मेरे-जैसे श्रद्धालु व्यक्ति की श्रद्धा को टिकाये रखने के लिए काफी हैं। वह श्रद्धा यह है कि जब दूसरी सारी शक्तियां मिट जायंगी, तब भी एक शक्ति क़ायम रहेगी। उस शक्ति को चाहे ईश्वर कहिए, प्रकृति कह लीजिए या जो चाहे नाम दे दीजिए।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १७।११।'४६]



[५]

• अहिंसा •

हिंसा एवं हिंसक क्रान्ति

— के परिप्रेक्ष्य में —

१. राजनीतिक हत्याएँ

[कलकत्ता के कालेज स्क्वायर स्थित 'स्टूडेंट्स हाल' में माननीय श्री लायन के सभापतित्व में एक सभा हुई। गांधी जी ने इस सभा में विद्यार्थियों के लिए भाषण किया। इस भाषण का एक अंश यों है।--संपा०]

...जो युवक डकैतियां और हत्याएं करते हैं, वे उचित मार्ग पर नहीं चल रहे हैं, अत: आप लोगों को उनके साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखना चाहिए। ...किन्तु इससे मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि आप उनसे घृणा करें।...

...मेरे व्यक्तिगत विचार चाहे जो कुछ हों, किन्तु मैं यह बतला देना आवश्यक समझता हूं कि जो भ्रमपूर्ण उत्साह लोगों को डकैतियों और हत्याओं में प्रवृत्त करता है, उसका फल कुछ अच्छा नहीं होता। ये डकैतियां और हत्याएं भारत में विदेशों से ही आई हैं। ये यहां जड़ नहीं जमा सकतीं और न स्थायी हो सकती हैं। इससे सिद्ध होता है कि हत्याओं से सभी को कोई लाभ नहीं होता। इस देश का धर्म, हिन्दू धर्म यही कहता है कि हिंसा मत करो, किसी प्राणी के प्राण न लो। और मेरा विश्वास है कि सब धर्मों का मुख्य सिद्धान्त यही है। हिन्दू धर्म कहता है कि पापियों से भी घृणा मत करो। उसका कहना है कि पापी की भी हत्या करने का अधिकार किसी को नहीं है। हत्याओं की यह प्रथा हमारे यहां पश्चिम से आई है और मैं आपको इन पाश्चात्य उपायों एवं दोषों के प्रति सचेत कर देना चाहता हूं। इन सब बातों से पाश्चात्य संसार में क्या हुआ है? यदि युवक इन्हीं का अनुकरण करें और विश्वास करें कि इस प्रकार वे देश का थोड़ा-सा भी हित कर सकेंगे, तो मैं कहता हूं कि यह उनकी बड़ी भूल है।

--मार्च १९१५। 'महात्मा गांधी' खण्ड २, पृष्ठ ६५।]

२. अहिंसा : हमारी विरासत

[मद्रास में माननीय श्री वी० सी० श्रीनिवास शास्त्री के सभापतित्व में एक सभा हुई थी। इस सभा में गांधी जी ने विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण उपदेश दिये थे। उनके भाषण से अहिंसा-सम्बन्धी अंश संकलित किये जा रहे हैं।--संपा०]

मैं यह विश्वास नहीं करता कि भारत के लिए यह बात असम्भव है कि सुयोग्य

सभापति ने जिन ऋषियों का उल्लेख किया है, उनके आदर्श पर चलते हुए वह इस विशाल जाति-द्वारा संसार को शारीरिक बल का नहीं बल्कि प्रेम-बल का सन्देश पहुँचाये। और इस स्थिति में आप लोगों के लिए इस बात की सुविधा हो जायगी कि खून बहाकर नहीं, बल्कि शुद्ध आध्यात्मिक महत्व के कारण आप लोग अपने जेताओं पर भी विजय प्राप्त कर सकें। जब मैं सोचता हूं कि भारत में क्या हो रहा है, तब मेरे ध्यान में इस बात का पता लगाने की आवश्यकता आती है कि राजनीतिक हत्याओं और डकैतियों के सम्बन्ध में हमारी क्या सम्मति है? मैं समझता हूं कि यह सब केवल विदेशों से आई हुई बातें हैं और इस देश में जड़ नहीं पकड़ सकतीं। किन्तु आप विद्यार्थियों को सावधान रहना चाहिए, नहीं तो मानसिक अथवा नैतिक दृष्टि से आप इस प्रकार की भीषण बातों का औचित्य एक प्रकार से स्वीकार कर लेंगे। . . .एक सत्याग्रही की हैसियत से मैं इसके बदले आपको दूसरी बहुत उपयोगी बात बतलाऊंगा। स्वयं को भयभीत न कीजिए; अपने अन्दर अन्वेषण कीजिए; जहां-जहां अत्याचार दिखें वहां-वहां समस्त उपायों से उसका विरोध और सामना कीजिए; जहां आपकी स्वतन्त्रता में बाधा पड़ती हो वहां समस्त उपायों से प्रतिरोध कीजिए। किन्तु ये सब कार्य अत्याचारी का खून बहाकर मत कीजिए। हमारा धर्म हमें रक्तपात की शिक्षा नहीं देता। हमारे धर्म का आधार अहिंसा है। यह कार्य रूप में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं। केवल अपने पड़ोसियों से ही प्रेम मत कीजिए; केवल अपने मित्रों से ही प्रेम मत कीजिए, बल्कि उन लोगों से भी प्रेम कीजिए, जो आपके शत्रु हैं।

इसी सम्बन्ध में एक बात और कहूंगा। मैं समझता हूं कि यदि हम लोग सत्पथ में लगें, हिंसा न करें, तो तत्काल भयमुक्त हो जायंगे।

—२७।४।'१५, महात्मा गांधी, खण्ड २, पृष्ठ ३३]

- **हमारे धर्म का आधार अहिंसा है।**

३. हिंसा का दमन

. . .हिंसा की वृत्ति का दमन करके कोई शक्ति अथवा राष्ट्र जिस शक्ति का उपार्जन करता है, वह अजेय है। किन्तु आज मैं हिंसा का विरोध इसलिए कर रहा हूं कि वह एकदम निरर्थक है। . . . .

—यं० इं०, १९।३।'१९]

४. सशस्त्र आन्दोलन और अहिंसा

...मैं सशस्त्र आन्दोलन में विश्वास नहीं करता। जिस रोग को दूर करने के लिए इस उपचार का प्रयोग किया जाता है, उसके परिणाम से, इसका परिणाम कहीं अधिक भीषण होता है। ये प्रतिशोध, अधीरता तथा क्रोध के रूप हैं। हिंसा का अन्तिम परिणाम कभी सुखद नहीं हो सकता। जर्मनी के मुकाबले मित्रराष्ट्रों ने शस्त्र का प्रयोग किया। उसका क्या परिणाम निकला? क्या उनकी दशा ठीक जर्मनी-जैसी नहीं हो गई है? जर्मनी का जैसा चित्र उन लोगों ने हमारे सामने खींचा उनकी अवस्था उसी प्रकार की हो रही है।

हम लोग इससे उत्तम अस्त्र का प्रयोग कर सकते हैं। हिंसा के अस्त्र के सर्वथा प्रतिकूल इस शस्त्र के प्रयोग में धैर्य तथा आत्मबल की नितान्त आवश्यकता है, साथ ही दृढ़ता की भी आवश्यकता होती है।....

—यं० इं०, ९।६।'२०]

५. हिंसाबल और भारत

...यदि लोहे से भारत के भाग्य का निर्णय होने वाला है तो यह सिखों या गोरखों का नहीं अपितु समस्त भारत का होना चाहिए। यह एक ऐसी महत्वपूर्ण शिक्षा है जो युरोप से मिलती है। यदि पाशविक बल का ही राज्य रहे तो भारत-वासियों को या तो समर-कौशल सीखना चाहिए या सदा के लिए उसके चरणों में झुक जाना चाहिए जो तलवार भाँज रहा है—चाहे वह परदेशी हो या स्वदेशी। तब ऐसी अवस्था में सैकड़ों मनुष्य मूक पशु बने रहेंगे।....

—यं० इं०, १।१२।'२०]

६. हमारे लिए तलवार का रास्ता नहीं है!

...मैं विश्वास और दृढ़ता के साथ यह कहने का साहस करता हूं कि तल-वार का रास्ता भारत के लिए खुला नहीं है। मैं साहस के साथ यह भविष्यवाणी करता हूं कि यदि भारत उस राह को पसन्द करेगा तो उसे दो में से एक बात के लिए तैयार रहना होगा—

१. या तो भावी सैकड़ों पीढ़ियों तक विदेशी शासन को कबूल करना,

२. या प्रायः सदा के लिए बिल्कुल हिन्दू या बिल्कुल मुसलमान राज्य को मंजूर करना।

—न० जी०। हिं० न० जी, २५।५।'२४]

७. शुद्ध हेतु से हिंसा

हर हालत में आतंक-नीति को बुरा कहना ही होगा। दूसरे शब्दों में, शुद्ध हेतु के कारण कोई अशुद्ध, बुरा या हिंसात्मक कार्य उचित नहीं कहा जा सकता। . . .किसी अनीति या बुरे काम का समर्थन अपना बलिदान करने से भी नहीं हो सकता।

—यं० इं० । हि० न० जी०, २१।१२।'२४, 'पागल देश-प्रेम' अग्रलेख से]

८. पागल देशप्रेम

[एक क्रान्तिकारी ने गांधी जी के विचारों पर आपत्ति की थी। वैसे ही विचार निम्नलिखित लेख में भी प्रकारान्तर से व्यक्त किये गये हैं। इसलिए विषय के स्पष्टीकरण हेतु यह लेख उद्धृत किया जा रहा है।—संपा०]

यदि यह समाचार सत्य है कि मुलशीपेठा के कुछ सत्याग्रहियों ने ताता के कारखाने में काम करने वाले कुलियों को ले जानेवाली एक रेलगाड़ी तोड़ डाली है, इंजिन के ड्राइवर को चोट पहुंचाई है और गरीब कुलियों को, जिनमें औरतें भी शामिल थीं, बेधड़क मारा-पीटा है, तो उनके इस अपराध की जितनी भी निन्दा की जाय, थोड़ी है। कहते हैं कि कानून, व्यवस्था और शिष्टता का भंग करनेवाले इन अपराधियों ने ताता के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की है और वे आशा करते हैं कि कुलियों पर हाथ चलाकर वे ताता के कारखाने का निर्माण-कार्य रोक सकेंगे। एक अच्छे समझे जानेवाले काम के लिए यह अत्याचार किया गया है। चाहे अच्छे काम के लिए हो या बुरे काम के लिए, सभी प्रकार की आतंक-नीति बुरी है। सच्ची बात तो यह है कि उसके हामी को सभी काम अच्छे ही मालूम होते हैं। जनरल डायर ने (और उनके समान हृदय से विश्वास करनेवाले सचमुच हज़ारों अंग्रेज पुरुष और स्त्रियां थीं) जलियांवाला बाग काण्ड एक ऐसे ही हेतु के लिए किया जिसे वह निःसन्देह अच्छा समझता था। वह सोचता था कि केवल एक उस काम को करके उसने ब्रिटिश साम्राज्य और अंग्रेजों के प्राणों की रक्षा की है। यह सब केवल कल्पना का ही खेल था, यह कहने से तो उनकी समझ में अपने विश्वास की गहराई कम नहीं हो जाती। लार्ड लिटन और लार्ड रीडिंग हृदय से विश्वास करते हैं कि बंगाल का स्वराज्य-दल हिंसा में ही डूबा हुआ है। परन्तु उनकी आतंक-नीति का समर्थन इससे नहीं होता कि उनका हेतु अच्छा था। जिस कार्य को मुलशी-पेठा के ये पागल सत्याग्रही अच्छा और न्याययुक्त मानते हैं उसी को तातावाले

और उनके समर्थक सचमुच ही बुरा मानते हैं। वे हृदय से विश्वास करते हैं कि उनकी योजना से चारों ओर के गांवों को लाभ पहुँचेगा। जो लोग हटाये गये हैं, उन्हें पूरा मुआविज़ा दे दिया गया है और उन्होंने खुशी से अपनी ज़मीन छोड़ी है। उनकी योजना बम्बई के लिए एक वरदान होगी। इसलिए जो उसे विफल कर देना चाहते हैं वे उन्नति के विरोधी हैं। उनको अपना यह मत रखने का उतना ही अधिकार है जितना मुझे यह विश्वास रखने का अधिकार है कि इस योजना से पड़ोस के लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचेगा; यह वहां की प्राकृतिक शोभा का नाश कर देगी। गरीब गांववालों का कोई निश्चित मत ही नहीं था इसलिए यह कहना कि उन्होंने अपनी खुशी से गांव छोड़ा है, अनुचित है; कोई भी मुआविज़ा उस स्थान के लिए पूरा नहीं कहा जा सकता जिसे वे बाप-दादों के ज़माने से अपना वतन मानकर पवित्र समझते आये हैं। यह कहना कि वह बम्बई प्रान्त के लिए एक वरदान होगा, विवादास्पद बात है। परन्तु जहां मैंने अपने सही होने का दावा किया कि मैंने ईश्वर का पद ले लेने की धृष्टता कर ली। हमारे पास कोई ऐसा अचूक और त्रिकालबाधित माप नहीं है जिससे हम किसी काम को जाँच सकें कि वह सही है या नहीं। इसलिए हर हालत में आतंक-नीति को बुरा कहना ही होगा। दूसरे शब्दों में, शुद्ध हेतु के कारण कोई अशुद्ध, बुरा या हिंसात्मक कार्य उचित नहीं कहा जा सकता। इसलिए मैं अपराधियों को अपनी खुशी से आत्मसमर्पण कर देने पर भी उनकी प्रशंसा नहीं कर सकता। इससे दोष का निवारण नहीं हो सकता। यह सहज में ही बहादुरी की शेखी भी हो सकती है। उस दिन. . .एक महिला का हत्याकारी आत्मसमर्पण करके अपने को नहीं बचा सका। उन निर्दोष स्त्रियों पर, जो ईमानदारी से अपनी रोजी पैदा करती थीं चोट करना अक्षम्य पाप है। मुलशी के देहातियों के बन बैठे इन दोस्तों को इसका पूरा अधिकार था कि वे यदि चाहते तो मज़दूरों के पास जाते और उन्हें समझा-बुझाकर ताता का काम करने से हटा लेते। परन्तु अपने ही हाथ में कानून लेने का उन्हें कोई अधिकार न था। उन्होंने आतंक-नीति का सहारा लेकर एक अच्छे काम को हानि पहुंचाई है और जो कुछ जनता की सहानुभूति उनके साथ थी, उससे हाथ धो लिया है। सुधारकों की ओर से तो आतंक-नीति का उपयोग वैसा ही अनुचित है जैसा कि सरकार की ओर से, बल्कि कहीं-कहीं तो उससे भी बढ़कर, क्योंकि इसके साथ तो झूठी सहानुभूति भी पैदा हो जाती है। मैंने एक महिला को अराजकों के आत्म-बलिदान की चिनगारियां उड़ाकर भाषण देते और श्रोताओं के हृदय को उभाड़ते हुए देखा है। थोड़ा विचार करने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि किसी अपराध को, स्वार्थ-त्याग के कारण, जायज नहीं मान सकते। किसी अनीति का

या बुरे काम का समर्थन अपना बलिदान करने से भी नहीं हो सकता। यदि आग से खेलने के लिए लड़का खाना-पीना छोड़ दे तो उसे उस समय आग से खेलने देनेवाला पिता दुर्बल-हृदय कहा जायगा। कलकत्ता के पास एक निर्दोष मोटर-ड्राइवर को करीब-करीब मार डालनेवाले युवक केवल इसलिए सहानुभूति के अधिकारी नहीं हैं कि वे देश-हित में धन-व्यय करने के लिए डाका डाल रहे थे और इस प्रयत्न में वे अपनी जान भी खतरे में डाल रहे थे। इस तरह के भूले-भटके युवकों के प्रति सहानुभूति दिखलाने के लिए जो लोग प्रेरित होते हैं वे देश को हानि पहुँचा रहे हैं और इन युवकों का ज़रा भी हित-साधन नहीं करते।

--यं० इं०। हि० न० जी०, ३१।१२।'२४]

- **चाहे अच्छे काम के लिए हो या बुरे काम के लिए, सभी प्रकार की आतंक-नीति बुरी है।**
- **शुद्ध हेतु के कारण कोई अशुद्ध, बुरा या हिंसात्मक कार्य उचित नहीं कहा जा सकता।**
- **किसी अनीति या बुरे काम का समर्थन अपना बलिदान करने से भी नहीं हो सकता।**

९. क्रान्तिकारी से

[क्रान्तिकारी महाशय ने गांधी जी से अनुरोध किया था कि वे सार्वजनिक जीवन से हट जायं। अपने दल के सम्बन्ध में उनके और भी दावे थे। उनके इस अनुरोध के सम्बन्ध में गांधी जी का वक्तव्य नीचे दिया जाता है।--संपा०]

मुझे अन्देशा है कि आपकी इस सलाह का पालन करना कि मैं सार्वजनिक जीवन से हट जाऊं, उतना आसान नहीं है जितना उस (सलाह) का देना आसान है। मेरा दावा है कि मैं भारत का और उसके द्वारा मानव-जाति का सेवक हूं। मैं सदा वह सेवा अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता। यदि मैंने अपनी बढ़ती का ज़माना देखा है तो मुझे घटती के ज़माने का भी मुकाबला करना चाहिए। जबतक मुझे यह प्रतीत होता है कि मेरी ज़रूरत है तबतक मुझे अपना समर-क्षेत्र छोड़ना न होगा। जब मेरा काम समाप्त हो जायगा और मैं एक असमर्थ या जीर्ण सिपाही रह जाऊंगा तब लोग स्वयं ही उठाकर मुझे ताक पर रख देंगे। तबतक मैं क्रान्तिकारी हलचलों के विष को मारने का प्रत्येक उपाय अपनी शक्ति भर करने के लिए बाध्य हूं। ऐसे समय जबकि रोगी को अंगूर का ताज़ा रस पिलाने की ज़रूरत है यदि कोई डाक्टर संखिया का भस्म उसे खिलाता हो तो, फिर उसका उद्देश्य चाहे

कितना ही अच्छा हो और वह कितना ही आत्मत्यागी हो, उसे नमस्कार ही करना चाहिए। मैं क्रान्तिकारियों से कहता हूं कि आप अपने हाथों अपना घात न करो और अपने साथ अनिच्छुक लोगों को अपना शिकार न बनाओ—उन्हें उसमें न खींचो। हिन्दुस्तान की मुक्ति का रास्ता युरोप का स्वीकृत रास्ता नहीं है। हिन्दुस्तान कलकत्ता या बम्बई नहीं है। हिन्दुस्तान का निवास तो अपने सात लाख देहातों में है। यदि क्रान्तिकारियों की संख्या वहुतेरी है तो आप अपने को देहात में फैला लें और अपने लाखों देशबन्धुओं की अँधेरी काल-कोठरियों में प्रकाश की किरणें पहुँचावें। अंग्रेज अधिकारियों के तथा उनके अन्य सहायक लोगों के खून की उत्तेजक एवं अतृप्त पिपासा की अपेक्षा यह काम आपकी महत्वाकांक्षा और देश-प्रेम के अधिक योग्य होगा। उनके प्राण हनन करने की अपेक्षा उनके मनोभाव को वदलना कहीं उच्च, कहीं उदात्त है।

—यं० इं०। हि० न० जी०, १२।३।'२५]

१०. क्रान्तिकारी और अहिंसा

[गांधी जी भारतीय क्रान्तिकारियों के कष्टसहन एवं आत्मोत्सर्ग की प्रशंसा करते हुए भी सदा उन्हें गुमराह बताते और लिखते रहे। इस पर एक क्रान्तिकारी ने इन क्रान्तिकारियों के आत्मोत्सर्ग, निर्भयता इत्यादि की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए उनसे चार प्रश्न किये:—१. क्या आप सचमुच मानते हैं कि भारत के क्रान्तिकारी स्वराजी उदार तथा राष्ट्रीय दलवालों से कम स्वार्थत्यागी, कम उच्चहृदय और कम देशभक्त हैं? क्या आप किसी स्वराजी, उदार आदि दलवालों में से कुछ नाम ऐसे पेश करेंगे जो अपनी मातृभूमि के लिए शहीद हो चुके हों? आप और दलों के साथ तो समझौता करने को सदा तैयार रहते हैं किन्तु हमारे दल से दूर भागते हैं और उनके भावों को जहर बताते हैं। उन्हें गुमराह देशभक्त और जहरीले साँप ही क्यों नहीं कह देते? २. जब आप यह कहते हैं कि भारत का मार्ग युरोप-द्वारा अंगीकृत मार्ग नहीं है तो इससे क्या आप का यह अभिप्राय है कि भारत में पहिले युद्ध का कायदा और सैन्य-संघटन था ही नहीं? सत्कार्य के लिए युद्ध क्या भारतीय भावना के विरुद्ध है? 'विनाशाय च दुष्कृताम्' क्या युरोप से आया वचन है? क्या युरोप की अच्छी चीज भी आप लेंगे? ३. क्रान्तिकारी इस भौगोलिक बात को जानते हैं कि भारतवर्ष कलकत्ता और बम्बई नहीं है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि मुट्ठीभर सूतकारों के मिलने से भारत राष्ट्र नहीं बनता। हम देहात में जा रहे हैं और सफलता प्राप्त कर रहे

हैं। क्या आप यह ख्याल नहीं करते कि किसी शैतानियत या नीचता के प्रतिकार के लिए आपके हिंसा-प्रचार के ग़लत अर्थ से उत्पन्न क्रियाशून्यता या सैद्धान्तिक भीरुता की अपेक्षा गुप्त षड्यन्त्र कहीं अच्छा है? हिंसा दुर्बल एवं असहाय का सिद्धान्त नहीं, बलवान का है। हम देश में ऐसे लोग पैदा करना चाहते हैं जो किसी भी अवसर पर मृत्यु से न डरें, जो नेक काम करें और मरें। क्या मैज़िनी की तरह आप मानते हैं कि शहीदों के खून का भोजन मिलने से कल्पना और भाव शीघ्र परिपक्व होते हैं? आपकी एक आपत्ति यह है कि क्रान्तिकारी दल से जनता को बहुत कम लाभ होगा। तो क्या हम निष्काम कर्म की भावना से भरे क्रान्तिकारी इस क्षुद्र जीवन के लाभ के लिए अपनी मातृभूमि के साथ विश्वासघात करेंगे? हम अभी नहीं पर तैयार हो जाने के बाद जनता को अवश्य अपने साथ खींचेंगे। हम जानते हैं कि वह अपने को शिवाजी, रणजीत, प्रताप और गोविन्दसिंह का वंशज सिद्ध करेगी। ४. अन्त में मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि गुरु गोविन्दसिंह सत्कार्य के लिए युद्ध करना ठीक समझते थे इसलिए क्या वह गुमराह देशभक्त थे? वाशिंगटन, गेरीबाल्डी और लेनिन के बारे में आप क्या कहेंगे? कमाल पाशा और डी वेलेरा के विषय में आप क्या ख्याल रखते हैं? क्या आप शिवाजी और प्रताप को सदुद्देश्य रखनेवाले और आत्मत्यागी ऐसा वैद्य कहेंगे जिन्होंने अंगूर का रस देने की जगह संखिया दिया? क्या आप कृष्ण को युरोपीय बना हुआ कहेंगे केवल इसलिए कि वे दुष्कृतों के विनाश के क़ायल थे?

इन प्रश्नों का गांधी जी ने जो उत्तर दिया था उसके महत्वपूर्ण अंश यहां दिये जाते हैं।--संपा०]

१. मैं भारत के क्रान्तिकारियों को और लोगों की अपेक्षा कम स्वार्थत्यागी, कम उच्चहृदय या कम देशभक्त नहीं मानता। परन्तु बड़े आदर के साथ यह बात मैं अवश्य कहूंगा कि उनका यह त्याग, उच्चहृदयता और प्रेम केवल व्यर्थ प्रयास ही नहीं है बल्कि अज्ञानमूलक और विपथगामी भी हैं और उसके कारण दूसरी सम्पूर्ण हलचलों की अपेक्षा अधिक हानि देश को पहुंची है। क्योंकि क्रान्तिकारियों ने देश की प्रगति का पग रोक दिया है। प्रतिपक्षी के प्राणों की उच्छृंखल अवहेलना ने ऐसे दमन का आवाहन किया है जिससे उनकी युद्धप्रणाली में न सम्मिलित होनेवाले लोग पहिले से अधिक भीरु हो गये हैं। दमन केवल उन्हीं लोगों को लाभ पहुँचाता है जो उसके लिए अपने को तैयार कर लेते हैं किन्तु क्रान्तिकारियों की हलचलों के कारण होने वाले दमन के लिए जनता तैयार नहीं है। उनकी हलचलें जिस सरकार को मटियामेट कर देना चाहती हैं उसी के हाथ दमन के लिए मज़बूत बना देती हैं। मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यदि चौरीचौरा में वह हत्याकाण्ड

न हुआ होता तो बारडोली में जो प्रयोग किया जा रहा था उसके कारण स्वराज्य की स्थापना हो गई होती। ऐसी दशा में क्या यह कोई आश्चर्य की बात है जो मैं क्रान्तिकारियों को गुमराह और इसीलिए खतरनाक देशभक्त कहता हूं? मैं अपने उस लड़के को ज़रूर गुमराह और खतरनाक परिचारक कहूंगा जो अपने अज्ञान अथवा अन्धप्रेम के कारण उन वैद्यों से प्राण की बाज़ी लगाकर लड़ा हो जिनकी चिकित्सा-प्रणाली से निस्सन्देह मुझे हानि पहुंची है परन्तु जिससे मैं अपनी इच्छा या योग्यता के अभाव में बच नहीं सकता था। इसका फल यह होगा कि मैं अपने शरीफ़ लड़के को गवाँ दूंगा और वैद्यों की नाराज़गी अपने सिर लूंगा। यही नहीं बल्कि वैद्य इस बात के सन्देह पर कि मेरा भी हाथ अपने बेटे की कार्रवाइयों में होगा, मुझे दण्ड देना चाहेंगे, और उनकी यह हानिकर चिकित्सा जारी रहेगी सो अलग। यदि उस पुत्र ने उन वैद्यों को उनकी गलती या मुझे अपनी कमज़ोरी (यह कि उनकी दवा लेता हूं) के लिए कायल करने की चेष्टा की होती तो सम्भव है कि वैद्यों ने अपने तरीके में सुधार किया होता या मैंने उनका इलाज छोड़ दिया होता या कम से कम उनके रोष से तो ज़रूर बच गया होता। हां, मैं अवश्य दूसरे दलवालों से समझौते करता हूं क्योंकि यद्यपि मैं उनसे सहमत नहीं होता तथापि मैं उनकी हलचलों को निश्चयात्मक रूप से उतनी हानिकर नहीं समझता जैसी कि क्रान्तिकारियों की हलचल को समझता हूं। मैंने क्रान्तिकारियों को कभी ज़हरीला साँप नहीं कहा परन्तु जिस तरह पूर्वोक्त उदाहरण में अपने गुमराह पुत्र के बलिदान की मैं प्रशंसा नहीं करूंगा उसी तरह मैं क्रान्तिकारियों के आत्मत्याग पर भी चिल्लपों नहीं मचाऊंगा। मुझे इस बात का निश्चय है कि जो लोग बिना अच्छी तरह विचारे या मिथ्या भावुकता से दबे-छिपे अथवा प्रकटतः क्रान्तिकारियों की या उनके आत्म-त्याग की प्रशंसा करते हैं वे उनकी और अपने प्रिय कार्यों की हानि ही करते हैं। पत्र-लेखक चाहते हैं कि मैं अक्रान्तिकारी दलवालों में से ऐसे देशभक्तों का नामोल्लेख करूं जिन्होंने देश के लिए प्राण-त्याग किया है। ये पंक्तियां लिखते समय मुझे दो उदाहरण याद पड़ते हैं। गोखले और तिलक ने अपने देश के लिए प्राण दिये। उन्होंने अपने स्वास्थ्य का कुछ भी ख्याल न करते हुए देश-सेवा की जिसके कारण वे समय से बहुत पहिले सुरलोक को चले गये। फाँसी के तख्ते पर ही मरने में कोई खास बहार नहीं है। रोगोत्पादक स्थानों में कठोर श्रम करने वाले एक आदमी के जीवन से ऐसी दस मौतें कहीं आसान हैं। मुझे इस बात पर पूर्ण सन्तोष है कि स्वराजियों तथा दूसरे दलवालों में ऐसे लोग भी हैं जिन्हें यदि विश्वास हो जाय कि हमारी मृत्यु से देश का उद्धार हो जायगा तो वे उसी क्षण अपने-अपने प्राण दे देंगे। मैं अपने इन क्रान्तिकारी मित्र से कहता हूं कि फांसी पर चढ़कर मरने

से देश की सेवा तभी होती है जब चढ़नेवाला निर्दोष, निष्कलंक हो। २. मैं यह नहीं कहता कि युरोप के सम्पर्क में आने के पहिले भारत में सेना या युद्धप्रणाली आदि नहीं थी। किन्तु मैं यह ज़रूर कहता हूं कि वह भारतीय जीवन की सामान्य अवस्था कदापि न थी। युरोप के प्रतिकूल यहां जनता युद्धवृत्ति से अछूती थी। मैं इन पत्रों में पहिले ही कह चुका हूं कि मैं गीता का मामूली प्रचलित अर्थ से बिल्कुल भिन्न अर्थ करता हूं जिससे कि लेखक ने वह प्रसिद्ध वचन उद्धृत किया है। मैं उसे शारीरिक युद्धों का वर्णन या प्रतिपादन नहीं मानता। और हर हालत में पूर्वोक्त श्लोक के अनुसार तो वह सर्वज्ञ ईश्वर ही दुष्टों के विनाश के लिए पृथिवी पर अवतार लेता है। और मैं यदि प्रत्येक क्रान्तिकारी को सर्वज्ञ ईश्वर या अवतार न मानूं तो मुझे इसकी माफ़ी मिलनी चाहिए। मैं युरोप की हर चीज़ को हर समय बुरा नहीं कहता। पर हां, मैं अच्छे काम के लिए भी की गई गुप्त हत्याओं को तथा अन्याय-पूर्ण साधनों को सदा-सर्वदा के लिए अवश्य बुरा कहता हूं। ३. कलकत्ता और बाहर के गांवों की भौगोलिक भिन्नता का ही ज्ञान पर्याप्त नहीं है। यदि क्रान्ति-कारी इन दोनों की रचना का भेद जानते होते तो मेरी तरह सूतकार हो जाते। मैं यह स्वीकार कर लेता हूं कि थोड़े सूतकारों से, जो हमारे पास हैं, भारत राष्ट्र नहीं बनता परन्तु मेरा दावा है कि पहिले की तरह सारे हिन्दुस्तान-का सूत कातने लगना सम्भवनीय है और जहां तक सहानुभूति से सम्बन्ध है, लाखों आदमियों की सहानुभूति इस हलचल के साथ है, यद्यपि क्रान्तिकारियों के साथ वे कभी न रहेंगे। मुझे क्रान्तिकारियों के इस दावे पर सन्देह है कि देहात में उन्हें सफलता मिल सकेगी किन्तु यदि यथार्थ में यह बात सच है तो मुझे इस पर खेद है। उनकी कोशिशों को तोड़ने में मैं कोई बात उठा न रखूंगा। किसी शैतानियत के मुकाबले में सशस्त्र षड्यंत्र रचना मानो शैतान को शैतान से भिड़ा देना है। किन्तु चूंकि एक ही शैतान मेरे लिए बहुतेरे शैतानों के बराबर है इसलिए मैं उसकी संख्या बढ़ने न दूंगा। मेरी हलचल क्रियाशून्य है या पूर्ण क्रियामय है, यह मालूम होना तो कदाचित् अभी शेष है।. . . भीरुता चाहे वह सैद्धान्तिक हो या और तरह की हो, मैं उससे घृणा करता हूं। यदि कोई मुझे यह समझा दे कि क्रान्तिकारियों की हलचल से भीरुता दूर हो गई है तो इससे मेरी घृणा गुप्त साधनों के प्रति बहुत कम हो सकेगी—फिर चाहे सिद्धान्त की दृष्टि से मैं उनका विरोध ही क्यों न करता रहूं। किन्तु यह बात तो कोई सरसरी दृष्टि से देखनेवाला भी जान सकता है कि अहिंसात्मक हलचल के कारण देहात के लोगों में वह साहस और हिम्मत आ गई है जो कुछ ही साल पहिले उनमें न थी। हां, मैं मानता हूं कि अहिंसा सबल का शस्त्र है। मैं यह भी मानता हूं कि प्रायः लोग भीरुता को भी गलती से अहिंसा मान लेते हैं।

यह क्रान्तिकारी महाशय जब यह कहते हैं कि क्रान्तिकारी वह है जो कि नेक काम करता और उसके लिए मरता है तब वह उसी बात को पकड़ लेते हैं जो उन्हें सिद्ध करनी है। इसी बात पर तो मेरी आपत्ति है। मेरी राय में तो क्रान्तिकारी बुरा करता है और बुरा करते हुए मरता है। मैं वध, हत्या या भय-प्रदर्शन को किसी भी हालत में अच्छा नहीं मानता। हां, मैं यह बात मानता हूं कि शहीदों के खून के भोजन से कल्पना और भाव बहुत जल्द परिपक्व हो जाते हैं। परन्तु जो व्यक्ति सेवा करते हुए जंगल के ज्वर से धीरे-धीरे मरता है उसका भी खून उसी तरह निश्चयपूर्वक बहता है जिस तरह कि फाँसी पर चढ़नेवाले का। और यदि फाँसी चढ़कर मरनेवाला दूसरे के खून से बरी न हो तो समझना चाहिए कि उसमें वे भाव ही न थे जो परिपक्व होने योग्य हों।....४. यह एक कठिन बल्कि कुछ विषम प्रश्न है। पर मैं इसका भी जवाब देता हूं। पहिली बात तो यह कि गुरु गोविन्दसिंह तथा दूसरे उल्लिखित व्यक्ति गुप्त हत्याकाण्ड के क़ायल न थे। दूसरे, वे लोग अपने काम और अपने आदमियों को खूब जानते थे। पक्षान्तर में आधुनिक क्रान्तिकारी नहीं जानता कि मेरा काम क्या है? उसके पास न आदमी हैं, न वातावरण है जो पूर्वोक्त देशभक्तों के पास थे। यद्यपि मेरे विचार जीवन-विषयक मेरे सिद्धान्तों से निकले हैं फिर भी मैंने उन्हें इसके सहारे देश के सामने नहीं रक्खा है। मैं तो सिर्फ समयोपयोगिता के विचार से ही क्रान्तिकारियों का विरोध कर रहा हूं, इसलिए उनकी कार्रवाइयों की तुलना गुरुगोविन्दसिंह या वाशिंगटन या गेरीबाल्डी या लेनिन से करना बड़ा भ्रमोत्पादक और भयावह होगा। परन्तु अहिंसा-सिद्धान्त की कसौटी के अनुसार तो यह कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं कि यदि मैं उनका समकालीन होता और उन-उन व्यक्तियों के देशों में होता तो बहुत सम्भव था कि मैं उन सबको गुमराह देशभक्त कहता, यद्यपि वे वीर एवं विजयी योद्धा थे। परन्तु वर्तमान परिस्थिति में मुझे उनके विषय में कोई फैसला न करना चाहिए। जहां तक कि इतिहास का सम्बन्ध वीर पुरुषों की हकीकतों के ब्यौरे से है, मैं इतिहास की स्थूल और व्यापक बातों को मानता हूं और उनमें से अपने आचरण के लिए अपने तौर पर सबक लेता हूं। इतिहास की वे व्यापक बातें जहां तक जीवन के उच्च नियमों के विरुद्ध हैं, तहां तक मैं उनको अपने आचरण में दोहराना नहीं चाहता। परन्तु इतिहास के द्वारा उपलब्ध अल्प सामग्री के आधार पर मैं किसी व्यक्ति के विषय में निर्णय नहीं करता। मृतात्मा के तो गुणों का ही गान करना चाहिए। कमाल पाशा और डी वेलेरा के सम्बन्ध में भी मैं निर्णय नहीं कर सकता, पर वे, जहां तक युद्ध-सम्बन्धी उनके विश्वास का सम्बन्ध है, मुझ-जैसे एक दृढ़ अहिंसा-धर्मी के जीवन में पथदर्शक नहीं हो सकते। कृष्ण को मैं शायद

इन लेखक से भी ज्यादा मानता हूं। परन्तु मेरा कृष्ण है जगन्नायक, अखिल विश्व का उत्पादक, संरक्षक और विनाशक। वह संहार भी कर सकता है क्योंकि वह उत्पत्ति करता है। परन्तु यहां मैं कोई दार्शनिक या धार्मिक युक्ति नहीं पेश करना चाहता। मैं इस योग्य नहीं हूं कि अपने जीवन-तत्व की शिक्षा दे सकूं। मैं शायद ही अपने अंगीकृत सिद्धान्त का पालन करने के योग्य हूं। मैं तो एक ऐसा प्रयत्नशील व्यक्ति हूं जो मन, वचन और कर्म में पूर्णतः शुभ, पूर्णतः सत्य और अहिंसा-परायण होने के लिए लालायित है, पर जो अपने आदर्श तक पहुंचने में सदा असफल होता रहता है। मैं मानता हूं और अपने क्रान्तिकारी मित्र को यकीन दिलाता हूं कि यह चढ़ाई बड़ी कष्टमय है पर यह कष्ट मेरे लिए निश्चयात्मक आनन्द हो गया है। एक-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ते हुए मैं अपने को अधिकाधिक सशक्त और अगली सीढ़ी पर पग रखने योग्य पाता हूं। किन्तु यह सब कष्ट और आनन्द मेरे अपने लिए है। क्रान्तिकारी लोग चाहें तो मेरे सारे सिद्धान्त को शौक से अस्वीकार कर दें। मैं उन्हें एक साथी के रूप में अपने अनुभव पेश करता हूं, जैसा कि मैंने अली भाइयों को तथा दूसरे कितने ही मित्रों को किया है और उसमें सफलता भी पाई है। वे मुस्तफ़ाकमाल पाशा और शायद डी वेलेरा एवं लेनिन के कार्यों पर उनका अभिनन्दन कर सकते हैं परन्तु वे मेरी तरह जानते हैं कि भारतवर्ष तुर्किस्तान, आयरलैण्ड या रूस की तरह नहीं है और कम से कम देश के जीवन की वर्तमान अवस्था में क्रान्तिकारी आन्दोलन आत्मघात के समान है, क्योंकि हमारा देश इतना विशाल है, इतना मतभेदों से भरा हुआ है और यहां की जनता दरिद्रता से ऐसी भरी-पुरी एवं भयभीत है कि जिसकी सीमा नहीं।

— यं० इं०। हि० न० जी०, ९।४।'२५]

- **मुझे इस बात का निश्चय है कि जो लोग बिना अच्छी तरह विचारे या मिथ्या भावुकता से दबे-छिपे अथवा प्रकटतः क्रान्तिकारियों का या उनके आत्म-त्याग की प्रशंसा करते हैं वे उनकी तथा अपने प्रिय कार्यों की हानि ही करते हैं।**
- **फांसी के तख्ते पर ही मरने में कोई खास बहार नहीं है। रोगोत्पादक स्थानों में कठोर श्रम करनेवाले एक आदमी के जीवन से ऐसी दस मौतें कहीं आसान हैं।**
- **किसी शैतान के मुकाबले सशस्त्र षड्यन्त्र रचना मानो शैतान को शैतान से भिड़ा देना है।**
- **मैं मानता हूँ कि अहिंसा सबल का शस्त्र है। मैं यह भी मानता हूँ कि प्रायः लोग भीरुता को भी गलती से अहिंसा मान लेते हैं।**

११. 'क्रान्तिकारी बनने के उम्मीदवार' से

[जान पड़ता है कि गांधी जी की टिप्पणियां पढ़कर 'क्रान्तिकारी बनने के उम्मीदवार' ने उन्हें प्रकाशनार्थ कोई पत्र भेजा था जिसमें क्रान्तिकारियों की हिंसा की उपमा उस डाक्टरी चीरफाड़ से दी गई थी जो रोगी के हित के लिए की जाती है। गांधी जी ने उनका पत्र नहीं छापा, परन्तु उनके पत्र के विषय में अपने कुछ विचार यं० इं० में प्रकट किये। पूर्ववर्ती चर्चा से सम्बद्ध होने के कारण उन्हें यहां दिया जा रहा है।—संपा०]

क्षमा कीजिए, मैं आपका पत्र न छाप सका। यदि वह छापने योग्य होता तो मैं उसे अवश्य छापता। यह बात नहीं कि आपका पत्र कुरुचिपूर्ण या हिंसाभाव से युक्त था। इसके विपरीत आपने अपने पक्ष को शान्ति के साथ ठीक-ठीक उपस्थित करने का प्रयत्न किया है, परन्तु दलीलें आपने इस तरह पेश की हैं कि वे लचर मालूम पड़ती हैं और क़ायल नहीं कर सकतीं। आपके कहने का आशय यह है कि क्रान्तिकारी जब किसी का खून करता है तो वह हिंसा नहीं करता, क्योंकि वह तो अपने प्रतिपक्षी के अर्थात् उसकी आत्मा के हित के लिए ही ऐसा करता है, जैसे कि एक सर्जन रोगी के हित के लिए उसके शरीर में नश्तर लगाता और चीरफाड़ करता है। आपका कहना है कि प्रतिपक्षी का शरीर सदोष होता है जो उसकी आत्मा को बिगाड़ता है, इसलिए वह जितनी भी जल्दी नष्ट हो जाय, अच्छा है।

परन्तु आपकी यह सर्जनवाली उपमा फबती नहीं। क्योंकि सर्जन तो सिर्फ़ शरीर से काम रखता है। वह शरीर के लाभ के लिए शरीर पर नश्तर लगाता है। उसके विज्ञान में आत्मा के लिए जगह नहीं है। कौन कह सकता है कि सर्जनों ने आत्मा को हानि पहुंचाकर कितने शरीर की रक्षा की है? परन्तु क्रान्तिकारी तो शरीर का नाश इसलिए करता है कि वह उसके द्वारा प्रतिपक्षी की आत्मा का हित मानता है। एक तो मैं अबतक किसी ऐसे क्रान्तिकारी को नहीं जानता जिसने कभी अपने प्रतिपक्षी की आत्मा का विचार किया हो। उनका एक मात्र उद्देश्य यह रहता है कि हमारे देश का लाभ हो—फिर प्रतिपक्षी का शरीर और आत्मा दोनों नष्ट हो जायं तो पर्वा नहीं; दूसरे आप कर्म-सिद्धान्त के क़ायल हैं। सो ज़बरदस्ती प्राणघात का फल होगा उसी प्रकार के दूसरे शरीर का निर्माण क्योंकि जो व्यक्ति इस तरह मरता है वह अपनी लालसा के अनुसार ही शरीर ग्रहण करता है। मेरी समझ में किसी बुराई या अपराध के मौजूद रहने का यही कारण है। जितना ही अधिक हम दण्ड देते हैं उतना ही अधिक वे बढ़ते हैं। उनका रूप-रंग भले ही बदल जाय परन्तु भीतरी वस्तु वही होगी। प्रतिपक्षी की आत्मा की

सेवा करने का उपाय है उसकी आत्मा को जाग्रत करना। उसका नाश तो नहीं परन्तु उसे जाग्रत करने के योग्य उपायों का उस पर असर होता है। आत्मा आत्मा पर असर किये बिना नहीं रहती। और अहिंसा आत्मा का ही एक गुण है। इसलिए आत्मा को जाग्रत करने का फलप्रद साधन अकेली अहिंसा ही है। और क्या अपने प्रतिपक्षी को दण्ड देने की बात करना मानो स्वयं अपने को अस्खलनशील--कभी भूल न करनेवाला--मानने की अहन्ता को अपनाना नहीं है? हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि वे भी हमें समाज के लिए उतना ही हानिकर समझते हैं जितना कि हम उन्हें समझते हैं। श्रीकृष्ण के नाम को बीच में घसीटना फिजूल है। या तो हम उन्हें साक्षात् ईश्वर मानें या न मानें। यदि मानते हैं तो वे हमारे लिए सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान--कर्त्तुम् अकर्त्तुम् अन्यथाकर्त्तुम्--हैं। ऐसा व्यक्ति अवश्य संहार कर सकता है। पर हम तो ठहरे न-कुछ मर्त्य लोग; सदा भूलें करते रहते हैं और अपने विचार और राय बदलते रहते हैं। हम यदि कृष्ण की, गीता के प्रेरक की, नकल करने लगें तो दुःख हमारे भाग में आये बिना न रहेगा। आपको यह भी याद रखना चाहिए कि मध्ययुग के ईसाई कहलानेवाले लोग भी ठीक वैसे ही विचार रखते थे जैसे कि आपकी समझ में क्रान्तिकारी लोग रखते हैं। उन्होंने हैरेटिक लोगों को उनकी आत्मा के हित के ख्याल से भस्म कर डाला। आज हम उन अज्ञान ईसाइयों की मूर्खता और ज्यादतियों पर हँसते हैं। अब हम जानते हैं कि वे अपराधी लोग सही थे और उनके धार्मिक न्यायदाता ग़लती पर थे।

खुशी की बात है कि आप चरखा कात रहे हैं। उसकी मौन गति से आपके चित्त को शान्ति मिलेगी और स्वाधीनता, जिसे कि आप इतना चाहते हैं, आपके अनुमान से भी अधिक निकट आजायगी। उन ओछे मित्रों का कुछ ख्याल न कीजिए जो आपके लिए खराब पूनियां छोड़कर चले गये हैं। यदि आपकी जगह मैं होता तो उन पूनियों को फिर तैयार करता।....आप इस बात से न घबराइए कि अहिंसा की रीति बड़ी धीमी और देर से सफल होनेवाली क्रिया है। यह तो इतनी वेगवती है कि दुनिया ने आजतक न देखी होगी। यह अचूक है, निश्चय फलदायिनी है। आप देखेंगे कि यह उन क्रान्तिकारियों पर अपना रंग जमा देगी, जिनके विषय में आप समझते हैं कि मैं उन्हें ठीक नहीं समझ पाया हूं। किसी की गलती बताना उसे ठीक ख्याल नहीं करना नहीं है। मैं इतना स्थान क्रान्तिकारियों के लिए इसी हेतु से दे रहा हूं कि मैं उनकी अथक कार्यशक्ति को सीधे और सही रास्ते में लगाना चाहता हूं।

--यं० इं०। हि० न० जी०, ३०।४।'२५]

- जितना ही अधिक हम दण्ड देते हैं उतना ही अधिक वे (अपराध) बढ़ते हैं।
- प्रतिपक्षी की आत्मा की सेवा करने का उपाय है––उसकी आत्मा को जाग्रत करना। आत्मा आत्मा पर असर किये बिना नहीं रहती।
- अहिंसा आत्मा का ही एक गुण है इसलिए आत्मा को जाग्रत करने का फलप्रद साधन केवल अहिंसा ही है।

१२. कुछ और

उन क्रान्तिकारी महाशय ने फिर पत्र लिखा है। किन्तु मुझे कहना होगा कि इसे लिखने में उन्होंने पहिले की तरह धीरज से काम नहीं लिया। इसमें उन्होंने वहुत सी असम्बद्ध बातें लिख डाली हैं और अपनी दलीलों में अकारण विस्तार से काम लिया है। मैं देखता हूं कि उनकी दलीलों का खजाना रिक्त हो गया है और कोई नई बात कहने को नहीं रह गई है। यदि वह फिर लिखना चाहें तो अच्छा हो कि अपने पत्र को और भी सावधानी के साथ लिखें और विचारों को छान डालें। इस बार उनका यह काम मैंने किया है। किन्तु वह तो प्रकाश पाने को उत्सुक हैं। इसीलिए उन्हें चाहिए कि वह मेरे लेखों को ध्यानपूर्वक पढ़ें, फिर शान्त चित्त से उनपर विचार करें और तब स्पष्ट और संक्षेप में लिखें। यदि वह केवल प्रश्न पूछना चाहते हैं तो केवल प्रश्न ही लिखकर भेज दें, दलीलें देने या मुझे उनका कायल करने की कोशिश न करें। क्रान्तिकारी-आन्दोलन के सम्बन्ध में मैं सब कुछ जानने की डींग नहीं हाँकता, किन्तु उसके सम्बन्ध में मुझे बहुत-कुछ विचार और निरीक्षण करना तथा लिखना पड़ा है। अतः मेरे लिए पत्र-लेखक के पास नई बातें बहुत ही कम हो सकती हैं। अतएव जहाँ मैं उनकी बातों पर खुले हृदय से विचार करूंगा तहां मैं उनसे यह भी अनुरोध करूंगा कि कृपया राष्ट्र के एक कार्यव्यस्त सेवक को और क्रान्तिकारियों के एक सच्चे मित्र को उन सब बातों के पढ़ने के परिश्रम से बचाइए, जिनके पढ़ने की ज़रूरत उसके लिए नहीं है। हां, मैं क्रान्तिकारियों की बातों से जानकारी रखने के लिए अवश्य उत्सुक हूँ और यह मैं इन्हीं सूत्रों के द्वारा ही कर सकता हूं। उनके लिए मेरे हृदय के एक मुलायम कोने में जगह है क्योंकि उनके और मेरे बीच एक बात सामान्य है और वह है कष्ट-सहन की क्षमता। परन्तु चूंकि मैं उन्हें बड़ी नम्रता के साथ गलती पर तथा गुमराह मान रहा हूं, मेरी अभिलाषा है कि मैं उन्हें उनकी गलती से छुड़ाऊं या ऐसा करते हुए स्वयं अपनी गलती ठीक करूं।

मेरे क्रान्तिकारी मित्र का पहिला प्रश्न है—

१. "आपने स्वयं ही बंग-भंग के सिलसिले में लिखा था—'बंग-भंग के बाद लोगों ने देखा कि हमारी प्रार्थना के पीछे बल भी होना चाहिए और हमें कष्ट-सहन की क्षमता होनी चाहिए। इसी भाव को बंग-भंग का मुख्य फल समझना चाहिए।.. जिस बात को लोग काँपते हुए और चुपके-चुपके कहते थे उसी को वे खुले आम लिखने लगे।...अंग्रेजों को देखते ही लोग भागते थे, सो वह भय लोगों को न रह गया। जेल जाने का डर भी उनका छूट गया। देश के कुछ सर्वोत्तम पुत्र आज देश के बाहर निकले हुए हैं।' वह आन्दोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन ही था और वे सर्वोत्तम पुत्र अधिकांश में क्रान्तिकारी या अर्ध-क्रान्तिकारी थे। तब कैसे ये अज्ञान और गुमराह लोग देश की भीरुता कम कर पाये? क्या इसीलिए कि क्रान्तिकारी आपके विचित्र अहिंसा-सिद्धान्त को नहीं समझ पाते, आप उन्हें अज्ञान कहेंगे?

'हिन्द[1] स्वराज्य' में प्रदर्शित विचारों में, जिन्हें कि लेखक ने उद्धृत किया है तथा मेरे अब प्रकाशित इन विचारों में कोई भेद नहीं है। जिन लोगों ने बंग-भंग का आन्दोलन उठाया था, वे कोई और कैसे भी हों निस्सन्देह उन्होंने अंग्रेजों के डर को भगा दिया था। यह देश की स्पष्ट सेवा थी। परन्तु वीरता और आत्म-त्याग को किसी का संहार करने की आवश्यकता नहीं हुआ करती। क्रान्तिकारी महाशय याद रखें कि 'हिन्द स्वराज्य' एक क्रान्तिकारी की ही दलीलों और साधनों के जवाब में लिखा गया था। यह पुस्तक इस अभिप्राय से लिखी गई थी कि क्रान्ति-कारियों को उस चीज़ से जो उनके पास है अगणित गुनी श्रेष्ठ वस्तु दी जाय, जिसमें उनकी सम्पूर्ण वीरता एवं आत्मत्याग के भाव भी रहें। मैं क्रान्तिकारियों को केवल इसलिए अज्ञान नहीं कहता कि वे मेरे साधनों को नहीं समझते या उनकी क़द्र नहीं करते, वरं इसलिए कहता हूं कि वे तो मुझे युद्ध-कला के ज्ञाता भी नहीं मालूम होते। जिन-जिन वीरों का उल्लेख उन्होंने किया है वे युद्ध-कला का ज्ञान रखते थे और उनके पास अपने आदमी भी थे।

१. गांधी जी ने अपने प्रारम्भिक मूल सिद्धान्तों एवं समाज-विषयक धारणाओं का विश्लेषण करते हुए भारतीय परिस्थिति को ध्यान में रख १९०९ ई० में इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रीका लौटते समय 'हिन्द-स्वराज्य' नाम की पुस्तक मूलतः गुजराती में लिखी थी। बाद में इसका अंग्रेजी संस्करण 'इंडियन होम रूल' के नाम से निकला। गांधी जी के सिद्धान्तों को समझने के लिए यह बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तक है।

दूसरा प्रश्न यह है—

२. "जबकि टेरेंस मैकस्विनी ने ७१ उपवास करके प्राण त्याग दिये तब क्या वह निर्दोष और पाक-साफ था। वह अन्त तक गुप्त षड्यन्त्रों, हत्याओं और भय-प्रदर्शन का समर्थक रहा और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'स्वतन्त्रता के सिद्धान्त' में लिखित विचारों का प्रतिपादन करता रहा। यदि आप मैकस्विनी को निर्दोष और पाक-साफ़ कह सकते हैं तो क्या गोपीमोहन साहा के लिए भी उन शब्दों का प्रयोग करने को तैयार होंगे?"

खेद है कि मैं मैकस्विनी का जीवनचरित इतना नहीं जानता कि कोई राय दे सकूं। परन्तु यदि उसने गुप्त षड्यन्त्र, हत्या और भय-प्रदर्शन की हिमायत की है तो उसके सम्पूर्ण साधनों पर भी वही आक्षेप किये जा सकते हैं जो कि इन पृष्ठों में किये गये हैं। मैंने उन्हें कभी निर्दोष और पाक-साफ़ नहीं माना है। जब उसके उपवास की बात प्रकाशित हुई थी तभी मैंने उस पर अपनी यह राय दी थी कि मेरी दृष्टि से उसकी यह गलती थी। मैं हर तरह के उपवास का समर्थन नहीं करता।

तीसरा प्रश्न यों है—

३. आप वर्ण-व्यवस्था को मानते हैं। इसलिए यह स्वयंसिद्ध है कि आप क्षत्रियों को भी अन्य वर्णों की ही तरह उपयोगी मानते हैं। इस निःक्षत्रिय युग में, भारत में, क्रान्तिकारी अपने को क्षत्रिय कहलाने का दावा करते हैं। 'क्षतात् त्रायते इति क्षत्रियः' मैं भारत को आज बड़े से बड़े क्षत की अवस्था में देखता हूं और इसलिए आज देश को क्षत्रियों की अत्यन्त आवश्यकता है। मनु ने क्षत्रियों के लिए चार साधनों की व्यवस्था की है—साम, दाम, दण्ड, भेद। इस सिलसिलेमें मैं स्वामी विवेकानन्द के ग्रन्थ से कुछ वचन उद्धृत करता हूं—'सब महान् आचार्यों ने कहा है—न पापे प्रति पापः स्यात्। शिक्षा दी है कि अप्रतिकार सर्वोच्च नैतिक आदर्श है। हम सब जानते हैं कि यदि संसार की वर्तमान अवस्था में लोग इस सिद्धान्त का पालन करने लगें तो समाज का विनाश हो जायगा, हिंस्र और दुरात्मालोग हमारे धन-जन और प्राण का हरण कर लेंगे, देश तहस-नहस हो जायगा।'—आप में से कुछ ने तो गीता को पढ़ा होगा और (पश्चिम के) बहुतों को प्रथम अध्याय में यह देखकर आश्चर्य हुआ होगा कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को, जब कि वह प्रतिपक्षियों में अपने आप्तों और सम्बन्धियों को देखता है और अप्रतिकार को प्रेम का एक सर्वोच्च आदर्श बताकर मोह को प्राप्त हो जाता है और युद्ध से इन्कार कर देता है तब उसे पाखण्डी और भीरु कहा है। इससे हम एक बड़ी शिक्षा ले सकते हैं। तमाम बातों में दोनों सिरे एक से होते हैं। आत्यन्तिक भाव और आत्यन्तिक अभाव दोनों सदैव एक से होते हैं। जब प्रकाश की लहरें बड़ी मन्द होती हैं तब हम उन्हें नहीं देख सकते और

जब वे बड़ी तेज़ होती हैं तब भी हम नहीं देख सकते। यही बात शब्द पर घटती है। जब वह बहुत धीमा होता है तब भी हम उसे नहीं सुन सकते और जब बहुत ऊँचा होता है तब भी नहीं सुन सकते। इसी तरह प्रकृत प्रतिकार और अप्रतिकार का शेषफल है।...सब से पहिले हमें इस बात की चिन्ता करनी चाहिए कि हमारे पास प्रतिकार की शक्ति है भी या नहीं? जब वह हमारे पास हो, फिर भी हम उसका प्रयोग न करें तो वह हमारा काम प्रेम का काम होगा किन्तु यदि हम मुकाबला कर ही नहीं सकते फिर भी दिखायें या अपने आप मान लें कि हम उच्च प्रेम-भाव से प्रेरित होते हैं तो हम नीति की दृष्टि से जो बात श्रेष्ठ है उसके ठीक विपरीत आचरण करेंगे। अर्जुन अपने सामने सबल सेना को देखकर डर गया; उसके प्रेम ने उसके देश और राजा के प्रति उसके कर्तव्य को भुला दिया। इसीलिए श्रीकृष्ण ने उसे पाखण्डी कहा--'अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। इसीलिए उठो और युद्ध करो।' अब सिवा कुछ प्रश्नों के मैं और कुछ कहना नहीं चाहता। क्या आप समझते हैं कि आपके ये पूरे पक्के शान्तिमय कहलानेवाले शिष्य, इस विदेशी नौकरशाही का मुकाबला शरीर-बल के द्वारा कर सकते हैं? यदि हां, तो किस तरह? यदि नहीं तो फिर आपकी यह अहिंसा सबल का शस्त्र किस तरह है? इन प्रश्नों का असन्दिग्ध उत्तर दीजिए जिससे कोई उसका भिन्न अर्थ न लगा पावे। इसके साथ ही मैं आपसे इतना और पूछ लेना चाहता हूं कि क्या आपके स्वराज्य में सेना का स्थान है? क्या आपकी स्वराज्य-सरकार फौज रखेगी? यदि हां, तो क्या वह लड़ेगी, या वह अपने प्रतिपक्षी के मुकाबले सत्याग्रह करेगी?"

हां, मेरे जीवन-सिद्धान्तों में क्षत्रियों के लिए स्थान अवश्य है परन्तु मैंने उनका लक्षण गीता से प्राप्त किया है। जो समर से अर्थात् खतरे से पलायन नहीं करता वह क्षत्रिय है। ज्यों-ज्यों संसार प्रगति करता जाता है त्यों-त्यों पुराने शब्द नया मूल्य ग्रहण करते जाते हैं। मनु तथा अन्य स्मृतिकारों ने आचार के शाश्वत-सर्वकालीन सिद्धान्त नहीं निर्धारित किये हैं। उन्होंने जीवन के कुछ शाश्वत सिद्धान्तों का निरूपण किया और बहुत-कुछ उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार अपने समय के लिए आचार-नियमों की सृष्टि की। मैं तो स्वर्ग में प्रवेश पाने के लिए भी घूस और छल-कपट के साधनों को अपनाने में असमर्थ हूं फिर भारत की स्वतन्त्रता की तो बात ही दूर है। यदि ऐसे साधनों से स्वतन्त्रता या स्वर्ग मिला तो न तो वह स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता होगी, न वह स्वर्ग स्वर्ग होगा।

स्वामी विवेकानन्द के जो वचन उद्धृत किये गये हैं उनकी यथार्थता की जाँच मैंने नहीं की है। उनमें न वह नवीनता है, न वह संक्षिप्तता है जो उस महापुरुष

के अधिकांश ग्रन्थों में पाई जाती है। परन्तु वे चाहे उनके ग्रन्थों से लिये गये हों या न लिये गये हों, उनसे मुझे सन्तोष नहीं हो रहा है। यदि बहुसंख्यक लोग अप्रतिकार के सिद्धान्त का पालन करने लगें तो संसार की दशा वह न रहे जो आज है। जिन व्यक्तियों ने उसका पालन किया है उन्होंने गंवाया कुछ भी नहीं है। हिंसाकारी और दुष्टात्माओं ने उन्हें कत्ल नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत अहिंसा और सौजन्य के समक्ष उन्हीं लोगों की हिंस्रता और दुष्टता दोनों दूर हो गई है।

गीता का मेरा अपना अर्थ मैं पहिले ही प्रकट कर चुका हूँ। उसमें पुण्य और पाप के शाश्वत युद्ध का वर्णन है। और, जब कि पुण्य और पाप की विभाजक रेखा बहुत सूक्ष्म हो जाती है, और जब कर्तव्य का निर्णय इतना कठिन हो तब अर्जुन की तरह किसे मोह प्राप्त नहीं होता?

फिर भी मैं इस बात का हृदय से समर्थन करता हूं कि सच्चा अहिंसा-परायण वही है जो प्रहार करने की क्षमता रखते हुए भी अहिंसात्मक बना रहता हो। इसलिए मैं निश्चय ही यह दावा करता हूँ कि मेरा शिष्य (और मेरा शिष्य केवल एक ही है— मैं) ज़रूर प्रहार करने की क्षमता रखता है। हां, यह मैं मानता हूं कि वह इसमें प्रवीण नहीं है और शायद कारगर तौर पर प्रहार न भी कर सके। पर उसे ऐसा करने की तनिक भी अभिलाषा नहीं है। मेरे जीवन में मुझे अपने प्रतिपक्षियों को गोली से उड़ा देने के और शहीदों के सिंहासन पर बैठने के कितने ही मौके मिले थे, परन्तु मेरे हृदय ने उनमें से किसी पर गोली झाड़ने का मार्ग स्वीकार न किया, क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि वे मेरा संहार कर डालें, फिर भले ही मेरे साधनों को वे कितने ही नापसन्द क्यों न करते हों। मैं चाहता था कि वे मुझे मेरी गलती समझा दें और मैं उन्हें उनकी गलती समझाने की कोशिश कर रहा था—आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

अफसोस! आज के मेरे स्वराज्य में सैनिकों के लिए स्थान है। मेरे ये क्रान्तिकारी मित्र इस बात को जान लें कि मैंने ब्रिटिश लोगों के द्वारा इस सारे देश के निःशस्त्रीकरण को और तज्जात पौरुष-नाश को अंग्रेजों का महाजघन्य अपराध बताया है। मैं देश को सार्वत्रिक अहिंसा का उपदेश करने की क्षमता नहीं रखता। इसलिए मैं अहिंसा का संकुचित रूप में उपदेश करता हूं। वह देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उद्देश्य तक और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को शान्तिमय साधनों से नियमित करने के उद्देश्य तक परिमित है।

परन्तु यहां मेरी अक्षमता का कोई गलत अर्थ न समझे; उसे अहिंसा-सिद्धान्त की अक्षमता न समझ ले। अपनी बुद्धि में मुझे वह ज्वलन्त दिखाई देता है। मेरा हृदय उस पर मुग्ध है परन्तु अभी मैं अपने जीवन में उसको इतना नहीं उतार सका

हूं जितना कि अहिंसा के सार्वत्रिक और सफल प्रचार के लिए आवश्यक है। इस महत् कार्य के लिए आवश्यक प्रगति अभी मेरी नहीं हो पाई है। अभी मेरे अन्दर क्रोध मौजूद हैं——अब भी मेरे अन्दर द्वैतभाव बना हुआ है। मैं इन्हें अपने अधीन रखता हूं, परन्तु अहिंसा के सार्वत्रिक और सफल प्रचार के लिए मुझे विकार-रहित हो जाने की आवश्यकता है। मेरी स्थिति ऐसी हो जानी चाहिए कि कोई पाप मुझसे न बन पड़े। इसलिए क्रान्तिकारी लोग मेरे साथ और मेरे लिए ईश्वर से प्रार्थना करें कि मैं शीघ्र ही उस अवस्था को पहुँच जाऊं। परन्तु तबतक वे मेरे साथ एक क़दम बढ़ें जो कि मुझे सूर्य-प्रकाश की तरह स्पष्ट दिखाई पड़ता है——अर्थात् भारत की स्वाधीनता बिल्कुल शान्तिमय साधनों से प्राप्त करना। और फिर आप और मैं ऐसी पुलिस-सेना रक्खेंगे जो शिक्षित, बुद्धिमान और नियम-पालक होगी, जो कि देश के भीतर शान्ति की रक्षा करेगी और बाहरी आक्रमणकारियों से लड़ेगी——यदि तबतक मैं या और कोई हमें इन दोनों की व्यवस्था करने का इससे अच्छा, तरीका न बता दे।

——यं० इं०। हि० न० जी०, ७।५।'२५]

- **वीरता और आत्म-त्याग को किसी का संहार करने की आवश्यकता नहीं हुआ करती।**
- **मैं हर तरह के उपवास का समर्थन नहीं करता।**
- **जो समर से अर्थात् ख़तरे से पलायन नहीं करता वह क्षत्रिय है।**
- **ज्यों-ज्यों संसार प्रगति करता जाता है, पुराने शब्द नया मूल्य ग्रहण करते जाते हैं।**
- **मैं तो स्वर्ग में प्रवेश पाने के लिए भी घूस और छल-कपट के साधनों को अपनाने में असमर्थ हूं फिर भारत की स्वतन्त्रता की तो बात ही दूर है।**

१३. हिंसक क्रान्ति और अहिंसा

[अमर बलिदानी भगत सिंह की मृत्यु पर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए गांधी जी ने हिंसक क्रान्ति और अहिंसा के सम्बन्ध में विचार-व्यक्त किये थे। उसके आवश्यक अंश प्रस्तुत हैं।—संपा०]

भगत सिंह अहिंसा के पुजारी न थे किन्तु वे हिंसा को धर्म नहीं मानते थे, विवशता के कारण खून करने को प्रस्तुत थे।....उनकी वीरता-हेतु उन्हें सहस्र बार नमन।

किन्तु उनके कार्य का अनुकरण नहीं किया जा सकता। मैं यह स्वीकार करने

को प्रस्तुत नहीं कि उनके कार्य से देश को लाभ हुआ है। हानि जो हुई उसे तो मैं देख रहा हूं। उनकी यह प्रवृत्ति न होती और वे केवल अहिंसक युद्ध लड़ सके होते तो हम कभी का स्वराज्य प्राप्त कर चुके होते।

मेरे इस अनुमान के विषय में दो मत भले ही हों किन्तु इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि यदि हत्या करके प्रशंसा पाने का रिवाज हममें चल पड़ा तो हम जिसे न्याय मानते हैं उसके लिए आपस में ही हत्या करने लगेंगे।

करोड़ों कंगाल एवं अपंगों के देश में यह स्थिति भयानक है। हमारा बल-प्रयोग इन गरीबों पर प्रभाव डाले बिना न रहेगा। उचित यह है कि सब इसके परिणाम को सोच लें। हम तो गरीबों के लिए गरीबों का स्वराज्य चाहते हैं। किन्तु बलप्रयोग को धर्म बनाने से अपने हाथ का कर्म अपने ही हृदय पर आघात करेगा।
—हि० न० जी०, २।४।'३१]

१४. हिंसक क्रान्तिकारी के प्रति सहज करुणा

लोगों के हृदय में अत्यन्त जलन एवं वेदना है कि समझौते[1] की शर्तों में एक शर्त सभी राजनीतिक बन्दियों की मुक्ति के सम्बन्ध में नहीं रखी गई, भले ही उन्हें हिंसा के अपराध में दण्ड मिला हो या अन्य कारण से।

कुछ लोगों ने अविचारपूर्वक यह तर्क दिया है कि अहिंसावादी होने के नाते हिंसा के अपराध में दण्डित व्यक्तियों की मुक्ति की शर्त मैं नहीं रखूंगा। वस्तुतः यदि मेरी अहिंसा का कुछ मूल्य है तो ऐसी शर्त मेरे लिए कर्त्तव्य रूप हो जाती है, यदि वह मेरे विचार में उचित होती।
—यं० ई०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०, ९।४।'३१]

१५. हिंसावाद

[कुछ समय पूर्व श्री पेडी तथा कुमारी कर्टिस की हत्या कर दी गई थी। सिख लीग की सभा में हत्याकारियों की प्रशंसा की गई। भारतीय राष्ट्रीय महासभा में गांधीजी का बनाया एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसमें भगतसिंह के हेतु की प्रशंसा करते हुए उनके हिंसापूर्ण कार्य का तिरस्कार किया गया। किन्तु जब गांधीजी ने देखा कि उसकी आड़ लेकर जगह-जगह हिंसकों की स्तुति होने लगी है तब उन्होंने

१. ब्रिटिश सरकार से समझौता।

अपनी मनोव्यथा व्यक्त करते हुए गुजराती 'नवजीवन' में एक लेख लिखा जिसके आवश्यक अंश यहाँ दिये जा रहे हैं।--संपा०]

...खूनियों की वन्दना करने में हद की जा रही है। रक्तपात का हेतु राजनीतिक था इसलिए यदि हम प्रत्येक हत्या का स्तुति-गान करने लगें तो स्तुति पर से हम फिर कृति पर ही आ जायँगे (अर्थात हिंसावाद की स्तुति करते-करते स्वयं हिंसक हो जायँगे)।

सज्जनसिंह की वीर के रूप में स्तुति सुनकर तो मुझे ऐसा लगता है कि भगत सिंह-विषयक महासभा के प्रस्ताव की रचना कर के मैंने शायद भूल की। मेरा हेतु पूर्णतः शुद्ध था। कृत्य की निन्दा करते हुए भी वीरता एवं आत्मबलिदान की प्रवृत्ति की स्तुति की गई। ऐसा करते हुए मुझे आशा थी कि मैं कर्म और हेतु के बीच जो भेद है उसे स्पष्ट कर सकूँगा और राजनीतिक उद्देश्य से की हुई हत्या के कृत्यों को धिक्कारना हम सीखेंगे। किन्तु महासभा के ठहराव का असर शायद बिल्कुल उलटा हुआ है और ऐसा लगता है कि इससे लोगों को हत्याओं की स्तुति करने का पर्वाना मिल गया है। मैं अपना निश्चित मत प्रकाशित कर रहा हूँ कि दूसरे देशों के विषय में चाहे जो बात सत्य हो किन्तु हिन्दुस्तान में तो राजनीतिक हत्याओं से हानि ही होने वाली है। सम्पूर्ण शान्तिमय मार्ग से स्वतन्त्रता प्राप्त करने का जगत के लिए अब तक अज्ञात प्रयोग इतने बड़े परिमाण में चल रहा हो तब तो यह बात और भी सत्य है। सब लोग इसे देख सकते हैं कि इस प्रयोग से हमारी अपनी योग्यता, क्षमता में इतनी वृद्धि हुई है जैसी कभी न हुई थी और हम लोग लगभग सफलता के समीप तक आ पहुँचे हैं। मैं साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि यदि राजनीतिक हत्या और विचार की हिंसा न होती तथा इनके कारण ओछी भाषा और ओछे आचरण की हिंसा इस प्रयोग के बीच न आई होती तो हिन्दुस्तान अब तक स्वतन्त्र हो चुका होता।

अहिंसा निर्बल का नहीं बलवान का शस्त्र है। अहिंसा अस्त्र का प्रतिकार नहीं है, बल्कि क्षमा है। क्षमा वीरस्य भूषणम्। युधिष्ठिर ने जब विराट-द्वारा अपराध किये जाने पर भी उन्हें क्षमा कर दिया, इतना ही नहीं वरं स्वयं अपना अपमान करने पर विराट का वध करने को तत्पर अर्जुन के क्रोध से उसकी रक्षा की तब उन्होंने इसी क्षमावृत्ति का परिचय दिया था।

अहिंसा कोई यान्त्रिक क्रिया नहीं है; वह हृदय का सुन्दर से सुन्दर गुण है और बड़ी साधना से आती है। जब आती है तब स्वाभाविक लगती है क्योंकि वह स्वाभाविक है; और इसके गुणी को यह गुण प्राप्त करने में ज़रा भी श्रम पड़ा हो, इसे सोचकर आश्चर्य होता है। अपने अन्दर रहने वाला पशु कहता है कि आघात के

लिए आघात करने से अधिक प्राकृतिक और क्या हो सकता है? अपने में रहने वाला मनुष्य कहता है कि आघात के बदले क्षमा प्रदान करने से ज्यादा प्राकृतिक अथवा ज्यादा मानवीय और क्या हो सकता है? जिसने प्रहार किया वह अज्ञान था अतः अपने को भूल गया पर जो घायल है वह अपना अज्ञान बताकर अपने विवेक को क्यों भूल बैठे? अनेक स्त्रियों ने अपने पशु-तुल्य पतियों की पशुता को सहकर उन्हें क्षमा दी है इसलिए वे मनुष्य से ऊँची उठ गई हैं। हां, यदि वे अपनी क्षमा में लाड़ को उभरने न देकर अपने पतियों के लिए ही (उनके कुकृत्यों से) अपना सहयोग हटा लें तो और अच्छा होगा।

परन्तु हमें इतने गहरे पानी में उतरने की ज़रूरत नहीं। जो अहिंसावादी हैं वे अपनी शक्ति को जानकर विचार, वाणी तथा आचरण में अहिंसक बनें। जिन्हें अहिंसा-मार्ग की शक्ति के विषय में अब भी शंका है और हिंसामार्ग की शक्ति के बारे में भी समाधान नहीं है उन्हें भी नीचे लिखी बातों पर विचार करना चाहिए—

१. हिन्द के कोटि-कोटि लोगों के पास हिंसामार्ग की परम्परा नहीं है।

२. वे, अर्थात् ग्रामीण लोग, हिंसामार्ग का आश्रय लेने के लिए अधिक संख्या में कभी एकत्र होते नहीं देखे गये।

३. उनमें एक राष्ट्र के रूप में हिन्द की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए कोई स्पष्ट विचार नहीं है।

४. युरोप में जहाँ-जहाँ लोगों ने हिंसामार्ग से स्वतन्त्रता प्राप्त की है, तहाँ लोगों को न्यूनाधिक मात्रा में शस्त्र-चालन का प्रशिक्षण प्राप्त था।

५. युरोप की प्रजाओं ने सिंहासन की राजसत्ता की अपेक्षा अधिक हिंसा का प्रयोग करके ही स्वतन्त्रता प्राप्त की है।

६. उन्हें, जिनमें अंग्रेज़ भी शामिल हैं, सच्ची स्वतन्त्रता मिली है, इस विषय में भी शंका तो है ही। वहाँ सामान्य वर्गों को तो अब भी यही जान पड़ता है कि धनिक वर्गों ने, जिनके हाथ में राज्य की लगाम है, उन्हें दबा रखा है। उनकी विविध समस्याएँ दिन पर दिन अटपटी होती जा रही हैं, उन पर ध्यान दीजिए।

७. दूसरी ओर हम हिन्द में जानते हैं कि अहिंसामार्ग से ही लोकसमूह में तथा स्त्रियों में आश्चर्यजनक जागृति हुई है।

८. हम इतना तो प्रमाणित हुआ देखते ही हैं कि जहाँ लोगों ने भूल की है और हिंसक बन गये हैं तहाँ वे पीछे रह गये, नीतिबल खो बैठे और दब गये हैं।

पिछले बारह महीने की घटनाओं का स्मरण करूँ तो इस सूची का विस्तार कर सकता हूँ किन्तु इतनी बातें मेरे अभिप्राय को प्रकट करने के लिए पर्याप्त हैं।

जिन्हें हिंसामार्ग में दृढ़ विश्वास हो उनसे मैं कहता हूँ––"जितना यश आप देश-प्रेम का स्वयं लना चाहते हैं उतना मुझे भी देंगे। यदि ऐसा हो तो आप लोगों को मेरी यह विनय स्वीकार करनी चाहिए कि मेरी पद्धति में अपनी पद्धति का मिश्रण कर आप वेदना को लम्बी कर रहे हैं। मेरी जानकारी में आप लोगों में कितनों का जो यह विश्वास है कि कभी-कभी एकाध अधिकारी का खून कर देने से लड़ाई में सहायता ही मिलती है, उसका ज़रा भी आधार नहीं है। उलटे, मैं जानता हूँ कि एक-एक हत्या ने मेरी हलचल में विघ्न डाला है; तमाम राजबन्दियों की मुक्ति के लिए आप मेरे ही जितने आतुर हैं, यह मैं जानता हूँ; शायद आप कहेंगे कि आप हमसे बहुत ज्यादा आतुर हैं। किन्तु आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि आपकी खून-खराबी की प्रणाली से उनकी मुक्ति उलटे पीछे की ओर खिंच जाती है। इस सरकार तथा सम्पूर्ण सरकारों की रचना को देखते हुए कहा जा सकता है कि जबतक राज-नीतिक हिंसा होती रहेगी तबतक हिंसा के लिए दण्डप्राप्त राजनीतिक अपराधियों को वह छोड़ेगी नहीं। इसलिए सब बातों पर विचार करके यदि मेरी सलाह एवं विनती को ग्रहण करेंगे और जिस समय राष्ट्र मेरे प्रयोग को आज़मा रहा है उस समय आप अपनी हलचल स्थगित कर देंगे तो अच्छा होगा।

––न० जी०। गुजराती से १९।४।' ३१]

१६. क्रान्ति और अहिंसा

[अनेक में से एक]

'अनेक में से एक' का लिखा हुआ पत्र स्वर्गीय सुखदेव का है। श्री सुखदेव भगत-सिंह के साथी थे। यह पत्र उनकी मृत्यु के बाद मुझे दिया गया था। समयाभाव के कारण मैं इसे जल्दी प्रकाशित न कर सका। यह बिना किसी परिवर्तन के अन्यत्र दिया गया है।

लेखक 'अनेक में से एक' नहीं हैं। राजनीलिक स्वतन्त्रता के लिए फांसी को गले लगाने वाले अनेक नहीं होते। राजनीतिक हत्याएँ चाहे कितनी ही निन्द्य हों, फिर भी जिस देश-प्रेम और साहस के कारण ऐसे भयानक काम किये जाते हैं, उनकी क़द्र किये बिना रहा नहीं जा सकता। और हम आशा रक्खें कि राजनीतिक हत्याकारियों का सम्प्रदाय बढ़ नहीं रहा है। यदि भारतवर्ष का प्रयोग सफल हुआ, और होना ही चाहिए तो राजनीतिक हत्याकारियों का पेशा सदा के लिए बन्द हो जायगा। मैं स्वयं तो इसी श्रद्धा से काम कर रहा हूं।

लेखक यह कहकर मेरे साथ अन्याय करते हैं कि क्रान्तिवादियों से उनका आन्दोलन बन्द कर देने की भावना-पूर्ण प्रार्थनाएं करने के सिवा मैंने और कुछ नहीं किया है। इसके विपरीत मेरा दावा तो यह है कि मैंने उनके सामने नग्न सत्य रखा है—जिसका इन स्तम्भों में भी कई बार जिक्र हो चुका है। फिर भी उसे फिर से दुहराया जा सकता है—

१. क्रान्तिवादी आन्दोलन ने हमें हमारे ध्येय के समीप नहीं पहुंचाया।

२. उसने देश के फौजी खर्च में वृद्धि करवाई है।

३. उसने बिना किसी भी प्रकार का लाभ पहुंचाये सरकार के लिए प्रतिहिंसा के कारण पैदा किये हैं।

४. जब-जब क्रान्तिवादी हत्याएं हुई हैं तब-तब कुछ समय के लिए उन-उन स्थानों के लोग नैतिक बल खो बैठे हैं।

५. उसने जन-समूह की जागृति में कुछ भी हाथ नहीं बंटाया।

६. लोगों पर उसका जो दोहरा बुरा असर पड़ा है, वह यह है कि आखिरकार उन्हें अधिक खर्च का भार और सरकारी क्रोध के अप्रत्यक्ष फल भोगने पड़े हैं।

७. अगर क्रान्तिवादी लोकसमूह को अपनी पद्धति की ओर आकर्षित करना चाहते हों तो उनको लोगों में फैलने और स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अनिश्चित काल तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

८. क्रान्तिवादी हत्याएं भारत-भूमि में फूल-फल नहीं सकतीं, क्योंकि इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतीय परम्परा राजनैतिक हिंसा के विकास के लिए प्रतिकूल है।

९. अगर हिंसावाद कभी लोकप्रिय हुआ भी, तो जैसा दूसरे देशों में हुआ है वह उलट कर हमारा ही संहार किये बिना न रहेगा।

१०. इसके विपरीत दूसरी पद्धति अर्थात् अहिंसा की शक्ति का स्पष्ट प्रदर्शन क्रान्तिवादी देख चुके हैं, उनकी छिट-पुट हिंसा के, और अहिंसा के उपासक कहलाने वालों की समय-असमय की हिंसा के रहते हुए भी, अहिंसा टिकी रही है।

११. जब मैं क्रान्तिवादियों से कहता हूं कि उनके आन्दोलन से अहिंसा के आन्दोलन को कुछ लाभ नहीं पहुंचा है, यही नहीं, उलटे उसने इस आन्दोलन को नुकसान पहुंचाया है तो उन्हें मेरी बात को मंजूर करना चाहिए। दूसरे शब्दों में मैं यों कहूंगा कि अगर मुझे पूरा-पूरा शान्त वातावरण मिला होता तो हम अब तक अपने ध्येय को पहुंच चुके होते।

मैं दावे के साथ कहता हूं कि यह नग्न सत्य है; भाव-प्रधान विनती नहीं। पर प्रस्तुत लेखक तो क्रान्तिकारियों से मेरी प्रकट प्रार्थनाओं पर एतराज करते

हैं और कहते हैं कि इस तरह मैं उनके आन्दोलन को कुचल डालने में नौकरशाही की मदद करता हूँ। पर नौकरशाही को उस आन्दोलन का मुकाबला करने के लिए मेरी मदद की जरा भी ज़रूरत नहीं है। वह तो क्रान्तिवादियों की तरह ही मेरे विरुद्ध भी अपनी हस्ती के लिए लड़ रही हैं। वह हिंसक आन्दोलन की अपेक्षा अहिंसक आन्दोलन में अधिक खतरा देखती हैं। हिंसक आन्दोलन का मुकाबला करना वह जानती है; अहिंसा के सामने उसकी हिम्मत पस्त हो जाती है। यह अहिंसा तो पहिले ही उसकी नींव को झकझोर चुकी है।

दूसरे राजनीतिक हत्या करने वाले अपनी भयानक प्रवृत्ति का आरम्भ करने से पहिले ही उसकी कीमत कूत लेते हैं। यह सम्भव ही नहीं कि मेरे किसी काम से उनका भविष्य अधिक खराब हो सकता है।

और क्रान्तिकारी दल को गुप्त रीति से काम करना पड़ता है, ऐसी दशा में उसके गुप्तवास करने वाले सदस्यों को प्रकट रूप से प्रार्थना करने के सिवा मेरे सामने दूसरा कोई मार्ग खुला नहीं है। साथ ही इतना कह देता हूं कि मेरी प्रकट कामनाएं एकदम व्यर्थ नहीं हुई हैं। भूतकाल के बहुतेरे क्रान्तिकारी आज हमारे साथी बने हुए हैं।

इस खुली चिट्ठी में यह शिकायत है कि सत्याग्रही कैदियों के सिवा दूसरे कैदी नहीं छोड़े गये। इन दूसरे कैदियों के छुटकारे का आग्रह करना क्यों अशक्य था, इसके कारणों को मैं इन पृष्ठों में समझा चुका हूं। मैं स्वयं तो उनमें से हर एक का छुटकारा चाहता हूं। उन्हें छुड़ाने की मैं भरसक कोशिश करने वाला हूं। मैं जानता हूं कि उनमें से कई तो बहुत पहिले ही छूट जाने चाहिए थे। महासभा ने इस सम्बन्ध में ठहराव किया है। कार्य समिति ने श्री नरीमान को ऐसे सब कैदियों की नामावली तैयार करने का काम सौंपा है। सब नामों के मिलते ही उन कैदियों को छुड़ाने की कार्रवाई की जायगी। जो बाहर हैं, उन्हें क्रान्तिकारी हत्याएं बन्द करके इसमें मदद करनी चाहिए। दोनों काम साथ-साथ नहीं किये जा सकते। हां, ऐसे राजनीतिक कैदी जरूर हैं जिनकी मुक्ति किसी भी हालत में होनी ही चाहिए। मैं तो सब किसी को जिनका इन बातों से सम्बन्ध है, यही आश्वासन दे सकता हूं कि इस ढिलाई का कारण इच्छा का अभाव नहीं है, बल्कि शक्ति की कमी है। यह याद रहे कि अगर कुछ ही महीनों में अन्तिम सुलह हुई, तो उस वक्त तमाम राजनीतिक कैदी जरूर ही रिहा होंगे। अगर सुलह नहीं हुई, तो जो दूसरे राजनीतिक क़ैदियों को छुड़ाने की कोशिश में लगे हैं खुद ही जेलों में जा बैठेंगे।

—न० जी। हि० न० जी०, ३०।४।'३१]

१७. हत्या और अहिंसा

बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर पर हमला करके फ़र्ग्यूसन कालेज के विद्यार्थी ने कौन-सी अर्थ-सिद्धि सोची होगी। अखबारों में जो समाचार छपे हैं, उनके अनुसार तो केवल बदला लेने की वृत्ति थी—शोलापुर के फौजी क़ानून का या ऐसे ही किसी दूसरे काम का। मान लीजिए कि गवर्नर की मृत्यु हो जाती लेकिन उससे जो हो चुका है, वह घटित नहीं हुआ है, ऐसा तो न होता। बदला लेने की यह कोशिश करके इस विद्यार्थी ने वैर बढ़ाया है। विद्याभ्यास का ऐसा दुरुपयोग करके उसने विद्या को लजाया है।

जिस परिस्थिति में हमला किया गया, उसका विचार करते हुए इसमें दग़ा भी थी। विद्यार्थी फ़र्ग्यूसन कालेज के प्रति अपना धर्म भूल गया। गवर्नर फर्ग्यूसन कालेज के मेहमान थे। मेहमान को हमेशा अभयदान होता है। कहा जाता है कि अरब दुश्मन को भी, जब वह मेहमान होता है, नहीं मारता। यह विद्यार्थी फ़र्ग्यूसन कालेज का विद्यार्थी होने के कारण गवर्नर को निमन्त्रण देने वालों में गिना जायगा। न्यौता देने वाला अपने मेहमान को मारे, इससे अधिक भयंकर विश्वासघात और क्या हो सकता है? क्या हिंसक-मण्डल की किसी प्रकार की मर्यादा ही नहीं होती? जो किसी मर्यादा का पालन नहीं करता, उसे शोलापुर के फौजी क़ानून या दूसरे अन्यायों की शिकायत करने का क्या अधिकार है?

इस प्रकार कोई हमारे साथ विश्वासघात करे, तो हमें दुःख होगा। जिसकी हम अपने लिए इच्छा न रखें, वैसा व्यवहार दूसरों के साथ कैसे कर सकते हैं? मुझे दृढ़ विश्वास है कि ऐसे कामों से हिन्दुस्तान को कीर्ति नहीं मिलती, अपकीर्ति प्राप्त होती है। ऐसे काम से स्वराज्य की योग्यता बढ़ती नहीं, घटती है; स्वराज्य दूर हटता है। ऐसे महान् और प्राचीन देश का स्वराज्य हत्याओं से नहीं मिलेगा। हमें इतनी बात याद रखनी चाहिए कि सिर्फ अंग्रेजों के हिन्दुस्तान से चले जाने का नाम ही स्वराज्य नहीं है। स्वराज्य का अर्थ है, भारत का कार-बार जनता की ओर से और जनता के लिए चलाने की शक्ति। यह शक्ति केवल अंग्रेजों के जाने से या उनके नाश से नहीं प्राप्त होगी। करोड़ों बेजबान किसानों के दुःख जानने से, उनकी सेवा करने से, उनकी प्रीति पाने से यह शक्ति प्राप्त होगी। मान लीजिए कि एक दो हज़ार या इससे अधिक खूनी अंग्रेज मात्र का खून करने में समर्थ हों तो भी क्या वे भारत का राजकाज चला सकेंगे? वे तो खून से मस्त होकर अपने मद में उन लोगों का खून ही करते रहेंगे, जो उन्हें पसन्द न

होंगे। इससे भारत की अनेक बुराइयां, जिनके कारण भारत पराधीन है, नहीं मिटेंगी।

--न० जी०। हि० न० जी०, ३०।७।'३१]

- मेहमान को हमेशा अभयदान होता है।
- अंग्रेजों के हिन्दुस्तान से चले जाने का नाम ही स्वराज्य नहीं।

१८. आतंकवादी हत्याएं और अहिंसा

बंगाल के एक जज श्री गारलिक, जो अपने विचार से स्वकर्तव्य का पालन कर रहे थे, की हत्या आक्रामकों के लिए एक कलंक है। . . . वे व्यक्ति जो अपने लिए अवाञ्छित व्यक्ति की हत्या करके प्रसन्न होते हैं चाहे कितने ही देश-भक्तिपूर्ण उद्देश्य से हत्या करते हों, उस उद्देश्य को आगे नहीं बढ़ाते जिसे सहायता पहुंचाने का वे दावा करते हैं। गुप्त संस्थाओं-द्वारा नियोजित हत्याएं आस-पास के प्रत्येक व्यक्ति को सन्दिग्ध बना देती हैं। निःसन्देह एक अंग्रेज अधिकारी की हत्या का प्रभाव सारे देश पर पड़ता है।

जो लोग इस प्रकार की हत्याओं को सच्चे हृदय से नापसन्द करते हैं उनमें से प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि ऐसे कृत्यों के प्रति तीव्र विरोध प्रकट करें। जहां कहीं वे हत्या की नीति में विश्वास रखने वाले व्यक्ति से मिलें उससे बहस करें और यदि वे न सुनें तो उनसे असहयोग कर दें।

हमें यह समझ लेना चाहिए कि इन कृत्यों के प्रति प्रकट की गई तनिक-सी सहिष्णुता एवं उपेक्षा केवल स्वराज्य को ही नहीं रोक देगी, बल्कि स्वराज्य-शासन को भी असम्भव अथवा कठिन तो अवश्य बना देगी। प्रचुर शस्त्रास्त्रयुक्त विदेशी सरकार तो इस आतंकवादी आन्दोलन के वर्तमान रहते भी शासन-सूत्र चला सकती है किन्तु जनेच्छा पर अवलम्बित स्वशासन ऐसे हत्याकारी वातावरण में नहीं चल सकता। ऐसा सोचने के लिए कोई आधार नहीं है कि अपने विचार से अवाञ्छित व्यक्तियों अथवा अधिकारियों की हत्या को युक्तिसंगत मानने का औचित्य इस समय लोकप्रिय हो भी गया तो स्वराज्य मिलते ही वह तत्क्षण विलीन हो जायगा। अतएव सच्ची स्वतन्त्रता के प्रेमी के लिए आवश्यक है कि वह नितान्त स्वार्थपूर्ण विचार से भी इस प्रवृत्ति को नियन्त्रण से बाहर जाने के पूर्व ही इसे रोकने के लिए सर्वोच्च शक्ति लगा दें। मेरे कान में यह भनक आई है कि अहिंसा के साथ-साथ

चलने वाली हिंसा उसे अवश्य सहायता पहुंचायेगी। अहिंसा-कार्यक्रम के जनक और इस विषय के विशेषज्ञ होने के नाते मैं पूर्ण विश्वास के साथ घोषित कर देना चाहता हूं कि अहिंसा को हिंसा-द्वारा सहायता मिलने का विचार भारी भ्रम है।

इस सम्बन्ध में प्रचुर अनुभव पर अवलम्बित मेरी साक्षी को निर्णायक समझा जाना चाहिए। मैं जोर देकर कह रहा हूं कि राजनीतिक हत्या का प्रत्येक कार्य अहिंसात्मक आन्दोलन को हानि पहुँचाता है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यह किस प्रकार मुझे विचलित कर देता है। लोग जिसे बारडोली की भूल कहते हैं किन्तु मैं जिसे प्रथम श्रेणी की बुद्धिमत्ता का कार्य मानता हूं वह तथाकथित कांग्रेस-वादी व्यक्तियों द्वारा चौरीचौरा[1] में किये गये घृणित कार्य के कारण ही हुई थी।
--यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०, ६।८।'३१]

- **अहिंसा को हिंसा-द्वारा सहायता मिलने का विचार भारी भ्रम है।**
- **राजनीतिक हत्या का प्रत्येक कार्य अहिंसात्मक आन्दोलन को हानि पहुँचाता है।**

१९. हिंसक और अहिंसक क्रान्ति

इतिहास को मेरी आँखों से पढ़ो। गदर के इतिहास से शिक्षा लो। वह हिंसात्मक शस्त्रों से लड़ा गया स्वातन्त्र्य-संग्राम था। कर्नल मैलेसन ने उसका पर्याप्त यथार्थ विवरण दिया है। आप देखेंगे कि उसका तात्कालिक कारण चर्बी लगे कारतूस भले ही रहे हों किन्तु वह एक तैयार मैगज़ीन में चिनगारी के समान था।

किन्तु उसके परिणाम की ओर देखिए। १८५७ का मुख्य केन्द्र संयुक्तप्रान्त[2] ऐसा निर्जीव रहा जैसा शायद ही कोई प्रान्त रहा हो। लोगों को स्मरण है कि किस प्रकार मनुष्यों को पशुओं से भी बुरी तरह मारा गया और जो जनता केवल दर्शक थी वह खलिहान के अनाज की भाँति कुचली गई।

१. चौरीचौरा का दुःखद हत्याकाण्ड, जिसमें उत्तेजित भीड़ द्वारा एक थाने में आग लगा दी गई थी। इस अग्निकाण्ड में अनेक पुलिसजन जीवित ही जल मरे थे।

२. उत्तर प्रदेश।

अब इस बारह वर्ष के प्रयोग[1] का परिणाम देखिए। राष्ट्र के इतिहास में यह समय थोड़ा है। यह प्रयोग और उसका शक्तिशाली प्रभाव अहिंसा के बिना असम्भव होता। किन्तु अभी उसने पूर्णरूप से स्थान प्राप्त नहीं किया, अन्यथा जो लज्जाजनक दृश्य हम आज देख रहे हैं वे दिखाई न पड़ते।

—यं० इं०। हि० न० जी०, १३।८।'३१]

२०. हिंसक क्रान्तिकारी और अहिंसा

[फ़र्ग्यूसन कालेज के एक विद्यार्थी ने बम्बई के अस्थायी गवर्नर की हत्या का प्रयत्न किया जो निष्फल रहा। गांधी जी ने इस प्रयत्न की निन्दा करते हुए लेख लिखा। एक सम्वाददाता ने गांधी जी के इस रुख़ का विरोध करते हुए अपने लम्बे पत्र में उन्हें लिखा कि असाधारण उत्तेजना के अवसर पर दृढ़तापूर्वक अहिंसा का पालन करना कठिन हो जाता है। शोलापुर के मार्शल ला और दमन के उत्तरदायी अस्थायी गवर्नर की हत्या का प्रयत्न करके उक्त विद्यार्थी ने इसी भावना को सिद्ध किया है। उक्त विद्यार्थी सर्वथा मृत्यु के पञ्जे में जकड़ा हुआ है अतएव वह निन्दा या तिरस्कार का नहीं केवल दया का पात्र है।

गांधी जी ने इस पत्र के उत्तर में जो टिप्पणी प्रकाशित कराई उसके आवश्यक अंश निवेदित हैं।—संपा०]

सम्वाददाता की मनोवृत्ति उसी प्रकृति की परिचायक है जो अनेक विद्यार्थियों में फैली है। किन्तु यह और भी हानिप्रद है क्योंकि यह ईमानदारी से अपनाई गई है। सम्वाददाता का यह कथन अनुभव के विरुद्ध है कि भावुक नवयुवक आसपास के वातावरण का कुछ भी ध्यान न कर क्षणिक उत्तेजना के अनुसार काम कर डालेंगे। उनकी साहसिक प्रवृत्ति के सम्बन्ध में सन्देह नहीं हो सकता किन्तु मैं नहीं मानता कि वे इतने अभिमानशून्य हैं कि अपनी प्रशंसा अथवा निन्दा की ओर से सर्वथा उदासीन हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि ज्ञात हो जाय कि उनके कार्य की सर्वत्र एक स्वर से निन्दा होगी तो वे अपना बहुमूल्य जीवन व्यर्थ कदापि नहीं गवाँयेंगे।

शोलापुर के मार्शल ला या उसके अन्तर्गत होने वाले उत्पीड़न के लिए अस्थायी गवर्नर को उत्तरदायी मानना सर्वथा भ्रामक है। यह तो प्रणाली का दोष है।

१. अहिंसक युद्ध का प्रयोग।

इसलिए कांग्रेस मुख्य त्रुटि का अनुभव करके प्रणाली को नष्ट करने का प्रयत्न कर रही है, शासकों का नहीं।

हमारे समक्ष अनेक हत्याएं हुई हैं; मारे गये प्रत्येक अधिकारी के स्थान पर नये की नियुक्ति हो गई और शासनतन्त्र वैसे ही सदा की भांति सुव्यवस्थित चलता रहा। किन्तु यदि हम एक बार अनीति की जड़ को ही उखाड़ने में सफल हो सके तो न शोलापुर की पुनरावृत्ति होगी, न फाँसियों की।

अतएव जहां तक नवयुवकों के हृदय को सालने वाली निन्दा का प्रश्न है, मैं उनके कृत्यों के अनुसार ही सख्ती से निन्दा करूंगा। उन्हें चाहिए कि वे लम्बे-चौड़े तर्क-वितर्क त्याग कर उस प्रणाली का नाश करने में कांग्रेस को सहयोग दें।

व्यक्तियों की हत्या का मार्ग इस प्रणाली को जीवित रहने का नया पट्टा दे देता है, अहिंसात्मक युद्ध उसके जीवन को घटाता है और उसे पूर्ण रूप से अंगीकार किया जाय तो इस प्रणाली के पूर्ण मूलोच्छेद का निश्चय कराता है।

जो लोग सम्वाददाता की तरह तर्क प्रस्तुत करते हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि यदि हत्या-नीति की प्रगति को न रोका गया तो वह उल्टे हमारे सिर पर पड़ेगी और इस प्रकार हमारी वह स्थिति पूर्वस्थिति से भी शोचनीय होगी। हमें उक्त प्रणाली को नये शस्त्र में पुनर्जीवित करने का अति भयंकर संकट मोल न लेना चाहिए। यदि श्वेत व्यक्तियों ने भी उसी प्रणाली से शासन चलाया तो उसके परिणाम-स्वरूप अमर्यादित अनर्थ न भी हो तो आज की भाँति अनर्थ अवश्य होगा।

--यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०, २४।९।३१]

२१. अराजकता एवं आतंक का परिशोध : अहिंसा

[२५ नवम्बर सन् १९३१ को संघ विधायक समिति में श्री ली-स्मिथ ने प्रान्तीय स्वाधीनता प्रदान करने के विषय में जो वाद-विवाद आरम्भ किया उसमें बोलते हुए प्रसंगवश गांधी जी ने हिंसा-अहिंसा पर विचार व्यक्त किये। उसके आवश्यक अंश संकलित हैं।---संपा०]

मैं सदा से मानता आया हूं कि हिंसावाद सुधारक के लिए बुरा से बुरा उपाय है। भारत के लिए तो यह विशेष रूप से घातक है क्योंकि इसका बीज इस भूमि में फूल-फल ही नहीं सकता। मेरा विश्वास है कि जो भारतीय युवक इस प्रकार के कार्यों को अच्छा समझकर अपने प्राण दे रहे हैं वे अपनी जान बिल्कुल व्यर्थ गँवा रहे हैं और ये लोग देश को उस स्थान के एक अंगुल भी निकट नहीं ले जा रहे हैं जिस स्थान पर हम सब लोग पहुंचना चाहते हैं।

मुझे इन बातों का विश्वास है। किन्तु ऐसा होने पर भी कल्पना कीजिए कि बंगाल को प्रान्तीय स्वराज्य प्राप्त होता तो वह क्या करता। वह समस्त नजरबन्द कैदियों को छोड़ देता। बंगाल अर्थात् स्वायत्त शासन-भोगी बंगाल हिंसावादियों का पीछा नहीं करता प्रत्युत उन तक पहुंचकर उन्हें सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करता। मुझे विश्वास है कि मैं क्रान्तिकारियों के हृदय में पैठकर हिंसावाद का उन्मूलन कर सकता हूँ।

मुझे पुनः स्वयं को कट्टर असहयोगी एवं सविनय अवज्ञाकारी घोषित करना पड़ेगा। भले ही भारत पर असंख्य वायुयान क्यों न मँडरायं और वहां कितनी ही सैनिक मोटरें क्यों न भेज दी जायं, मुझे वहां के करोड़ों मनुष्यों को असहयोग और आज्ञा-भंग का सन्देश पुनः देना पड़ेगा। इनसे कुछ होना जाना नहीं है। आप को ज्ञात नहीं कि आज नन्हें-नन्हें बालकों पर भी इन दमन के साधनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हम उन्हें सिखाते हैं कि जब तुम्हारे चारों ओर गोलियों की वर्षा हो रही हो तो तुम हर्षोन्मत्त होकर नाचो, मानो पटाखे टूट रहे हों। हम उन्हें देश के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाते हैं।

जबतक कांग्रेस शुद्ध रहेगी और भारत की चारों दिशाओं में अहिंसा गूंजती रहेगी तबतक अराजकता नहीं होगी। मुझसे बहुधा कहा जाता है कि हिंसावाद का दायित्व कांग्रेस पर है। किन्तु मेरे पास इस बात के प्रमाण हैं कि कांग्रेस के अहिंसात्मक ध्येय ने ही अबतक हिंसात्मक शक्तियों को रोक रखा है। मुझे खेद है कि अबतक हमें पूर्ण सफलता नहीं मिली किन्तु यथासमय हमें उसकी आशा है। यह बात नहीं है कि हिंसावाद से भारत को स्वाधीनता मिल जायगी।

—हि० न० जी०,। २४।१२।'३१]

- **हिंसावाद सुधारक के लिए बुरा से बुरा उपाय है। भारत के लिए तो यह विशेष रूप से घातक है।**
- **जब तुम्हारे चारों ओर गोलियों की वर्षा हो रही हो तो तुम हर्षोन्मत्त होकर नाचो, मानो पटाखे छूट रहे हों।**

२२. सैनिक बल बनाम नैतिक बल

हम बहुधा यह भूल जाते हैं कि कांग्रेस का समर्थन करने वाला केवल नैतिक बल है।

....किसी भी प्रकार के नैतिक पतन का अर्थ है कांग्रेस को क्षति पहुँचाना। अहिंसा का यह आवश्यक फलितार्थ है। यदि कांग्रेस की अहिंसा केवल उसी सीमा

तक हो कि वे अंग्रेज अधिकारियों एवं उनके मातहतों को शारीरिक चोट न पहुँचायें तो ऐसी अहिंसा से स्वतन्त्रता कभी नहीं प्राप्त हो सकती। अन्तिम आंच लगने पर निश्चय ही यह अहिंसा शोचनीय स्थिति में पहुंच जायगी। वास्तव में ऐसी अहिंसा को हम उस अन्तिम कसौटी पर कैसे जाने के पूर्व ही स्पष्टतः हानिकर नहीं तो निकम्मी पायेंगे।

जिन्होंने कांग्रेस की अहिंसा को उन संकुचित अर्थों में लिया है वे इसे टूटी-रीढ़ कहते हैं। उनके इस तर्क में पर्याप्त बल है।

दूसरी ओर अहिंसा यदि इसमें से निकलने वाले समस्त फलितार्थों-सहित कांग्रेस की नीति है तो प्रत्येक कांग्रेसी को स्वयं आत्मपरीक्षण करना चाहिए और अपने को पुनः उसके अनुकूल बनाना चाहिए।

....अहिंसा कोई ऐसा गुण नहीं जिसे गढ़ा जा सके। यह तो अन्तर से प्रस्फुटित होने वाली एक वस्तु है जिसका आधार आत्यन्तिक व्यक्तिगत प्रयत्न है।

— ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से० २३।४।'३८]

- **अहिंसा कोई ऐसा गुण नहीं, जिसे गढ़ा जा सके।**
- **यह तो अन्तर से प्रस्फुटित होने वाली एकवस्तु है जिसका आधार आत्यन्तिक व्यक्तिगत प्रयत्न है।**

२३. अहिंसा का चमत्कार

[ब्रिटिश जेल से भागकर बहुत वर्षों तक फरार रहने के बाद प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सरदार पृथ्वीसिंह ने गांधी जी की सलाह पर आत्मसमर्पण कर दिया। मजिस्ट्रेट-द्वारा उन्हें गिरफ्तार कर लिये जाने के बाद गांधी जी ने उनके सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया। इसके आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।— संपा०]

जिन सरदार पृथ्वीसिंह को बम्बई उपनगर के कलेक्टर ने हिरासत में ले लिया है उन्हें १९१५ के प्रथम लाहौर षड्यन्त्र केस में आजीवन क़ैद की सजा मिली थी। इस सजा का कुछ हिस्सा उन्होंने कालापानी (अण्डमन) में काटा। कुछ दिनों बाद सार्वजनिक आन्दोलन के फलस्वरूप कैदियों का सेटिलमेण्ट बन्द कर दिया गया। सरदार पृथ्वीसिंह को वहां से मद्रास और फिर राजमहेन्द्री ले आया गया। राजमहेन्द्री में जेल-जीवन से ऊबकर उन्होंने दो बार वहां से भाग निकलने का प्रयत्न किया। १९२२ में दूसरी बार इनको सफलता मिली और तभी से ये सफलतापूर्वक पुलिस को धोखे में रख रहे थे।

सरदार पृथ्वीसिंह अपने प्रयत्नों से बने हुए व्यक्ति हैं। यह एक प्रमुख क्रान्तिकारी हैं; कुछ समय से सशस्त्र क्रान्ति-सम्बन्धी अपने मत पर पुनर्विचार करते हुए ये अन्त में अपने मित्रों की सलाह से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मेरे समक्ष आत्मसमर्पण कर दें और जैसा मैं कहूं वैसा करें। इनसे अच्छी तरह बातचीत करके मैंने इन्हें अपने संरक्षण में लेने का निश्चय किया और इनसे कहा कि जीवन-सम्बन्धी मेरे दृष्टिकोण के अनुसार कोई गोपनीयता सम्भव नहीं और अधिकारियों के समक्ष स्वेच्छापूर्वक आत्मसर्पण कर देना स्वयं ही एक प्रकार की देश-सेवा है। मेरी राय में जो बल था उसे उन्होंने मान लिया।

जहाँ तक मैं देख सकता हूं वह किसी ऐसे जुर्म के अपराधी नहीं हैं जिनके लिए उन्हें लज्जित होने की जरूरत हो। यह युवावस्था में कनाडा गये थे। वहीं इनके अन्दर क्रान्तिकारी विचारों का विकास हुआ। कनाडा के समुद्र तट से कोमागाटामारू जहाज को गैरकानूनी और लज्जाजनक तरीके से हटाने का दृश्य उन्होंने देखा था। तभी से उन्होंने और कनाडा-प्रवासी भारतीयों के एक दल ने भारत लौटकर क्रान्ति करने का निश्चय किया।

स्पष्ट है कि जेल से फरार होने के बाद उन्होंने स्वयं को अनेक तरीकों से राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाया है। वह प्रथम श्रेणी के व्यायाम-शिक्षक बन गये और उन्होंने अनेक स्कूलों में व्यायाम सिखाने का काम किया।

अपने जीवन की उत्तरावस्था में राजनीतिक कैदियों की सहायता हेतु प्रयत्न करने का मिशन मानो ईश्वर ने ही मुझे सौंपा है। सरदार पृथ्वीसिंह को शीघ्र रिहा कराने का प्रयत्न मेरे इस मिशन में नया जुड़ गया है।

सरदार पृथ्वीसिंह ने मुझसे कहा है कि वह यह देखने का प्रयत्न कर रहे हैं कि अहिंसा-द्वारा राष्ट्र को कितनी अवधि में स्वतन्त्रता मिलती है। उनका कथन है उनके पुराने क्रान्तिकारी साथियों के विचार भी इसी दिशा में जा रहे हैं। भारत की स्वतन्त्रता ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है। जिस सच्चाई के साथ उन्होंने मुझसे बातचीत की उसका मुझ पर इतना असर पड़ा कि जिस रूप में उन्होंने बातें कहीं मुझे उन्हें उसी रूप में ग्रहण करने में तनिक भी कठिनाई न हुई।

स्वतन्त्रता-देवी के मन्दिर की तीर्थयात्रा में मुझे इन-जैसे व्यक्तियों को अपने साथ तीर्थयात्री की भांति देखना अवश्य आनन्दप्रद होना चाहिए।

—ह० से०, २१।५।'३८]

● **जीवन-सम्बन्धी मेरे दृष्टिकोण के अनुसार कोई गोपनीयता सम्भव नहीं।**

२४. सीमापार के आक्रमणकारी और अहिंसा

जहां रचनात्मक अहिंसा के विज्ञान की शिक्षा पाये हुए एक लाख खुदाई खिदमतगार मौजूद हों, वहां सरहद पार के ये नागहानी हमले कभी होने ही नहीं चाहिए। जहां आप लोग बैठे हों, वहां एक भी चोरी अथवा लूटमार होना हमारे लिए शर्म की बात है।

चोर-डाकू और सरहद-पार के लुटेरे भी आखिर इंसान ही हैं। वे इसलिए चोरी नहीं करते कि वह उन्हें पसन्द है। अधिकतर उन्हें भूख और जरूरत के कारण ही चोरी, डकैती करनी पड़ती है। अन्य कोई रास्ता भी है, यह उन्हें मालूम नहीं। आजतक उनके साथ शस्त्रबल से ही पेश आया गया है। यदि वे हाथ आ जाते हैं, तो उनके साथ कोई दया से पेश नहीं आता। . . .

किन्तु आप लोग इस सवाल को अहिंसक तरीके से हल कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि जहां सरकार असफल हुई है, वहां आप सफल सिद्ध होंगे। आप उन्हें गांवों के उद्योग-धन्धे देकर अपनी ही तरह ईमानदारी की जिन्दगी बिताने का सबक़ सिखा सकते हैं। आप उनके घर जाकर उनकी सेवा कर सकते हैं; उन्हें प्रेम और सहानुभूति से समझा सकते हैं। तब आप देखेंगे कि उन पर प्रेम के तर्क का प्रभाव हुए बिना नहीं रह सकता।

आज आपके समक्ष दो मार्ग हैं। एक तो पशुबल का है। यह आज़मा लिया गया है और असफल सिद्ध हुआ है। दूसरा मार्ग शान्ति का है। लगता है, आपने इस दूसरे मार्ग को चुन लिया है। खुदा आपको इसे पकड़े रहने और इसके योग्य बनने की शक्ति प्रदान करे।

—ह० से०, ५।११।'३८]

२५. शस्त्र बनाम अहिंसा

[सीमाप्रान्त के लक्खी स्थान पर गांधी जी का भाषण सुनने जो लोग आये थे, उनमें अनेक बन्दूकधारी भी थे। उन्हें लक्ष्य कर गांधी जी ने निःशस्त्रीकरण की महत्ता के विषय में बतलाया। उनके भाषण के आवश्यक अंश दिये जाते हैं।—संपा०]

मैं यहां पर अहिंसा-सम्बन्धी पचास वर्ष के अनुभव के बल आपको यह बतलाने आया हूं कि पाशविक शक्ति के समक्ष यह निश्चित रूप से एक ऊंची शक्ति है। सशस्त्र सैनिक की शक्ति का दारोमदार तो उसके शस्त्रों पर होता है। उससे

उसके शस्त्र, उसकी बन्दूक अथवा तलवार ले लो, तो सामान्य रूप से वह असहाय हो जाता है।

किन्तु जिस व्यक्ति ने अहिंसा के सिद्धान्त को सच्चे अर्थों में समझ लिया है, उसका शस्त्र ईश्वर-प्रदत्त शक्ति होती है। इसका मुकाबला संसार में और कोई शक्ति नहीं कर सकती।....

--ह० ज०। ह० से०, २६।११।'३८]

२६. हिंसा बनाम अहिंसा

[एक प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता ने ब्रिटिश नौकरशाही की बर्बरता का उल्लेख करते हुए गांधी जी से पूछा कि ऐसी पशुता के समक्ष क्या अहिंसा सफल होगी? उन्होंने उड़ीसा के पोलिटिकल एजेण्ट की हत्या का भी उल्लेख किया। इस अंग्रेज ने निहत्थी भीड़ पर गोली चलाकर, उत्तेजना भड़काई। इसके फलस्वरूप उत्तेजित भीड़ ने उसे घेरकर मार डाला।

गांधी जी ने इस पत्र के उत्तर में जो विचार व्यक्त किये, वे अंशतः यहां दिये जाते हैं।-- संपा]

हिन्दुस्तान में आज जगह-जगह हिंसा और अहिंसा की पद्धति के बीच एक द्वन्द्व युद्ध चल रहा है। हिंसा तो पानी के प्रवाह की तरह है। पानी को निकलने का रास्ता मिलते ही, उसका प्रवाह भयानक गति से चल निकलता है। अहिंसा पागलपन से काम कर ही नहीं सकती। वह तो अनुशासन का सारतत्व है। किन्तु जब वह सक्रिय बन जाती है, तब हिंसा की कोई भी शक्ति उसे परास्त नहीं कर सकती।

अहिंसा सोलहों कलाओं से वहीं उदित होती है, जहां उसके नेताओं में कुन्दन-जैसी शुद्धता और अटूट श्रद्धा होती है। इसलिए यदि अहिंसा द्वंद्व में हारती दिखाई दे, तो ऐसा नेताओं की श्रद्धा कम होने, उनकी शुद्धता में कमी आ जाने अथवा दोनों ही कारणों से होगा। यह होते हुए भी अन्त में हिंसा पर अहिंसा की ही विजय होगी, ऐसा मानने का कारण मालूम होता है।....

निःसन्देह आत्मरक्षा का अधिकार सबको है। इसी तरह सशस्त्र विद्रोह करने का भी अधिकार है। लेकिन कांग्रेस ने गहराई से विचार करने के बाद दोनों का त्याग कर दिया है। उसने ऐसा प्रबल कारणों से किया है। अहिंसा में यदि बड़ी से बड़ी उत्तेजना के सामने भी डटे रहने और हिम्मत न् हारने की शक्ति न हो, तो उसकी कोई बहुत बड़ी कीमत नहीं। यथेच्छ उत्तेजना के सामने टिके रहने की शक्ति में उसकी सच्ची कसौटी है।

स्त्रियों का सतीत्व लूटा गया हो और उसे अपनी आँखों देखने वाले अहिंसा-वादी साक्षी हों, तो वे जीवित कहां से रहेंगे? और सतीत्व लुटने का पता बाद में लगा तो उस समय हिंसक बल-प्रयोग का अर्थ ही क्या रहा? अहिंसा का तरीका तो पीछे भी कारगर हो सकता है।....

....मैं जानता हूं कि भारतवर्ष केवल अहिंसा के ही मार्ग से स्वतन्त्र होगा।

--ह० ज०। ह० से०, २८।१।'३९]

- **हिंसा तो पानी के प्रवाह की तरह है।**
- **अहिंसा पागलपन से काम कर ही नहीं सकती। वह तो अनुशासन का सारतत्व है।**
- **अन्त में हिंसा पर अहिंसा की ही विजय होगी।**
- **आत्मरक्षा का अधिकार सबको है।**

२७. क्रान्तिकारी हत्या पर अहिंसा की प्रतिक्रिया

सर माईकेल ओडायर की हत्या और लार्ड जैटलैण्ड, लार्ड लेमिंगटन तथा सर लूईडेन की हत्या के प्रयत्न का और जो विवरण अखबारों-द्वारा प्राप्त हुआ है उससे मेरी इस राय की पुष्टि होती है कि यह पागलपन का काम था। लेकिन इसी कारण यह कम भर्त्सना योग्य नहीं है। सर माईकेल ओडायर के साथ हमारा मतभेद जरूर था, लेकिन उनकी हत्या पर दुःखी होने या उनकी पत्नी और कुटुम्बियों के प्रति समवेदना प्रकट करने में उस मतभेद के कारण कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। मैं तो चाहूंगा कि प्रत्येक देशभक्त भारतीय मेरी ही तरह इस कृत्य पर लज्जानुभव और इस बात पर हर्षानुभव करे कि तीन प्रमुख अंग्रेजों की जान बच गई। लार्ड जैटलैण्ड से हमें शिकायत जरूर है। उनकी प्रतिक्रियावादी नीति से हमें लड़ना चाहिए। लेकिन हमारे प्रतिरोध में द्वेष या प्रतिहिंसा नहीं होनी चाहिए। अखबार हमें बतलाते हैं कि अभियुक्त जब अदालत और दर्शकों के सामने आया तो उसने मस्तीभरी बेपरवाही दिखाई। लेकिन मैं इसकी प्रशंसा नहीं करता। मेरे लिए तो यह पागलपन जारी रहने की निशानी है। अभियुक्त अपनी बहादुरी के ख्याल में चूर है। मैं ऐसे आदमियों को जानता हूं जो शराब के नशे में ऐसी अन्धा-धुन्धी से काम करते हैं, जिन्हें वे अपने होश-हवाश दुरुस्त होने पर नहीं कर सकते। मुझे यह भी मालूम हुआ है कि जिन सैनिकों को खास तौर से खतरनाक कामों के लिए भेजा जाता है उनके लिए अतिरिक्त शराब पिलाने का इन्तजाम किया जाता है। उस काम के लिए मैं किसकी प्रशंसा करूं, शराब की या उसके असर की?

हत्यारा शब्द की व्युत्पत्ति ही मादक भंग से है, जो भावी हत्यारों को इसलिए खिलाई जाती थी ताकि उनकी चेतना लुप्त हो जाय। अभियुक्त के इस सतत उन्माद से हमारे अन्दर दया और करुणा की भावना आनी चाहिए। अगर हमें ईमानदारी और सच्चाई के साथ लड़ना है तो हमें ऐसा करना चाहिए जिससे हर अंग्रेज यह महसूस करे कि हमारे बीच भी वह अपने घर की ही तरह सुरक्षित है। इस बात से मुझे बड़ी शर्म और रंज होता है कि कम-से-कम कुछ समय तक तो लन्दन में प्रत्येक हिन्दुस्तानी को सन्देह की नज़र से ही देखा जायगा। क्या हम सबके लिए यह महसूस करना सम्भव नहीं कि हत्या-द्वारा जनसाधारण को कभी स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी? मैं चाहूंगा कि इन पंक्तियों को पढ़ने वाला प्रत्येक व्यक्ति यह जान ले कि ऐसे प्रत्येक कार्य से हमारी अहिंसात्मक लड़ाई को नुकसान पहुँचता है और इसलिए वे पागलपन के ऐसे कामों से दिली तौर पर और खुले रूप में अपना कोई सम्बन्ध न रखें।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। रामगढ़, १७।३।'४०। ह० से०, २३।३।'४०]

- **क्या हम सबके लिए यह महसूस करना सम्भव नहीं कि हत्या-द्वारा जनसाधारण को कभी स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी?**

२८. आतंक और अहिंसा का आश्वासन

आजकल अखबारों में आतंक के बारे में कई समाचार पढ़ने को मिलते हैं और इससे भी ज्यादा बातें सुनाई पड़ती हैं। एक मित्र लिखते हैं—"एकान्त सेवाग्राम में बैठे हुए आप उन बातों और फुसफुसाहटों, अफवाहों की कल्पना भी नहीं कर सकते, जो व्यस्त नगरों में फैल रही हैं। लोगों पर आतंक या भय छा गया है।"

आतंक सबसे ज्यादा निःसत्व करने वाली अवस्था है, जिसमें कोई हो सकता है। आतंक की तो यहां कोई वजह ही नहीं है। चाहे जो कुछ गुजरे आदमी को अपना दिल मजबूत रखना चाहिए। लड़ाई एक बुरी चीज़ है। लेकिन उससे एक अच्छी बात जरूर होती है। वह भय को दूर कर देती है और बहादुरी को ऊपर लाती है। मित्रराष्ट्रों और जर्मनों के बीच अबतक लाखों की जानें गई होंगी। ये लोग पानी की तरह खून बहा रहे हैं। फ्रांस और ब्रिट्रेन में बूढ़े आदमी, बूढ़ी और जवान स्त्रियां और बच्चे मृत्यु के मध्य रह रहे हैं। फिर भी वहां कोई आतंक

नहीं है। अगर वे आतंक या भय से अभिभूत हो जायँ तो उनके लिए वह जर्मन गोलियां, गोलों और जहरीली गैसों से कहीं भयंकर शत्रु बन जायगा। हमें इन कष्ट सहने वाले पश्चिमी देशों से शिक्षा लेनी चाहिए। और अपने बीच से आतंक को निकाल बाहर कर देना चाहिए। फिर, हिन्दुस्तान में तो आतंक के लिए कोई जगह ही नहीं है। अगर ब्रिटेन को मरना पड़ा तो वह कठिनाई और बहादुरी के साथ मरेगा। हम पराभव के समाचार सुन सकते हैं, पर हमें पस्तहिम्मती की बातें कभी नहीं सुनाई पड़ेंगी। जो कुछ घटित होगा व्यवस्थापूर्वक घटित होगा।

इसलिए जो लोग मेरी बात पर कान देते हैं, उनसे मैं कहूंगा कि सदा की तरह अपना काम या रोजगार करते जाओ; जमा की हुई रक़मों को मत निकालो; नोटों को नक़दी में बदलने की जल्दबाजी न करो। अगर तुम सावधान हो तो तुम्हें कोई नया खतरा न उठाना पड़ेगा। अगर हमारे अन्दर विप्लव उठ खड़ा हो तो जमीन में गड़े हुए या तिजोरियों में रखे हुए धन को बैंक या कागज की बनिस्बत ज्यादा सुरक्षित नहीं समझना चाहिए। वैसे तो इस वक्त हर चीज़ में खतरा है। ऐसी हालत में तुम जैसे हो, वैसा बना रहना ही सबसे अच्छा है। तुम्हारे धीरज का अगर ज्यादा लोग अनुसरण करें तो वह बाजार में स्थिरता लायेगा। अराजकता के खिलाफ़ वह सबसे बड़ा प्रतिबन्ध होगा। इसमें शक नहीं कि ऐसे समय में गुण्डई का डर रहता है। पर इसका सामना करने के लिए तुम्हें तैयार रहना चाहिए। गुण्डे सिर्फ बुजदिल लोगों के बीच पनप सकते हैं। पर जो लोग हिंसात्मक या अहिंसात्मक रूप से अपनी रक्षा करने के योग्य हैं उनसे उनको कोई रियायत नहीं मिल सकती। अहिंसात्मक आत्मरक्षण में अपनी जान-माल के बारे में साहसिकता की वृत्ति होती है। यदि उस पर दृढ़ रहा जाय तो अन्त में वह गुण्डई का निश्चित इलाज सिद्ध होगा। लेकिन अहिंसा एक दिन में तो सीखी नहीं जा सकती। इसके लिए अभ्यास और आचरण की जरूरत होती है। आप अभी से इसे सीखना शुरू कर सकते हैं। आपको अपनी जान या माल या दोनों का बलिदान करने को तैयार रहना चाहिए। यदि आप हिंसात्मक या अहिंसात्मक किसी तरह से अपनी रक्षा करना नहीं जानते तो अपनी सारी कोशिशों के बावजूद सरकार आपको बचाने में समर्थ न होगी। कोई सरकार, चाहे कितनी ही शक्तिशाली हो, जनता की मदद के बिना यह काम नहीं कर सकती। यदि ईश्वर भी सिर्फ उन्हीं की मदद करता है जो अपनी मदद खुद करते हैं, तो नाशमान सरकारों के सम्बन्ध में यह बात कितनी सत्य होगी। हिम्मत मत हारो और यह मत सोचो कि कल कोई सरकार न होगी और अराजकता ही अराजकता रह जायगी। आप

खुद अभी सरकार बन सकते हैं और जिस आफत की आप कल्पना करते हैं, उसमें तो आपको सरकार बनना ही पड़ेगा, नहीं तो आप नष्ट हो जायंगे।

--सेवाग्राम, ४।६।'४०। ह० ज०। ह० से०, ८।६।'४०]

- **आतंक सबसे ज्यादा निःसत्व करने वाली अवस्था है।**
- **आदमी को अपना दिल मजबूत रखना चाहिए।**
- **अहिंसात्मक आत्मरक्षण में अपनी जान-माल के बारे में साहसिकता की वृत्ति होती है।**
- **गुण्डे सिर्फ़ बुज़दिल लोगों के बीच पनप सकते हैं।**
- **अहिंसा एक दिन में तो सीखी नहीं जा सकती। इसके लिए अभ्यास और आचरण की जरूरत है।**

२९. अराजकता की स्थिति में क्या किया जाय?

प्रश्न--देश की दशा दिन प्रति दिन गम्भीर होती जा रही है। सब जगह घबराहट बढ़ रही है। कहीं-कहीं तो बदमाशों ने सशस्त्र गिरोह भी बनाना प्रारम्भ कर दिया है, ताकि सरकार की शक्ति टूट जाय या निर्बल हो जाय, तो उससे उत्पन्न होने वाली अराजकता का वे लोग लाभ उठा सकें। भले ही यह खतरा आज निकट न हो, पर इसकी सम्भावना पर ध्यान न देना मूर्खता होगी। आप इससे सहमत होंगे कि आज तक पिछले बीस वर्ष में देश को जितनी भी अहिंसा की शिक्षा मिली है, उससे ऐसी अहिंसक शक्ति उत्पन्न नहीं हुई है कि अराजकता और गुण्डागर्दी का सफलता से सामना किया जा सके। जो लोग दिशा-निर्देश के लिए आपकी ओर आंख लगाये बैठे हैं उनका क्या धर्म हो जाता है? क्या वे सरकार की प्रवृत्तियों में भाग लें? यदि नहीं तो और क्या करें? निश्चय ही वे लोग हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ तो नहीं सकते।

उत्तर--मैं नहीं कह सकता कि कार्य समिति के हाल के बयान के बाद कांग्रेस सचमुच क्या करेगी। यदि आप यह विश्वास रखते हैं कि अराजकता और ऐसी चीजों का इलाज अहिंसा के द्वारा हो सकता है, तो यह स्वाभाविक है कि आप स्वयं को, अपने पड़ोसियों को और ऐसे लोगों को, जिन पर कि आप प्रभाव डाल सकते हैं, अहिंसक रक्षा के लिए तैयार करेंगे। आपका यह कथन बिल्कुल ठीक है कि कोई भी जिम्मेदार व्यक्ति आज बैठा-बैठा नहीं देख सकता। हिंसक तैयारी के लिए काफ़ी समय पूर्व से शिक्षा लेने की आवश्यकता है। अहिंसा की तैयारी में मन को तैयार करने का प्रश्न है। इसमें सन्देह नहीं कि अराजकता की आशंका है, किन्तु

आप अहिंसक हैं, तो आप भयभीत नहीं होंगे। अराजकता उत्पन्न हो रही है, यह मानकर नहीं बैठ जाना चाहिए। जैसे निश्चय रूप से यह जानते हुए भी कि एक दिन मरना ही है, हम बैठे-बैठे सोचते नहीं रहते कि मृत्यु आ रही है। यदि दुर्भाग्य से अराजकता आ ही गई, तो आप, आपके साथी और आपके अनुयायी उसे रोकने के लिए जीवन की आहुति दे देंगे। जो लोग डाकू व बदमाश माने जाने वाले लोगों को मारने का प्रयत्न करते हुए अपनी जान दे देते हैं, वे कुछ अधिक श्रेष्ठ कार्य करते हैं, ऐसी बात नहीं है। शायद वे कुछ कम ही करते हैं। अपना जीवन संकट में डालते हैं और उनकी मृत्यु के बाद अँधेरा-ही-अँधेरा रह जाता है। इससे बुरी बात यह है कि हिंसा का उत्तर हिंसा से देकर वे हिंसा की अग्नि में इंधन डालते हैं। जो लोग बिना सामना किये मर जाते हैं वे अपना पूरा निर्दोष बलिदान देकर हिंसा के क्रोध को शान्त भी कर सकते हैं। यह सच्चा अहिंसक काम तभी सम्भव है, जब आपके हृदय में यह विश्वास हो कि आप और वे चोर-डाकू, जिनसे आप डरते हैं, वस्तुतः एक ही हैं। इसलिए अच्छा तो यह है कि उसके हाथों आप मरें, बजाय इसके कि आपका वह अज्ञानी भाई आपके हाथों मरे।

--ह० से०, २९।६।'४०]

३०. हिंसावादियों से

यदि यह बात आपको जँच गई है तो फिर मैं आपसे यह आशा करूंगा कि आप मेरे सन्देशवाहक बन जायं। जिन लोगों के दिल में हिंसा है; जो तार काटने, रेल की पटरी उखाड़ने, तूफान मचाने की नीति को मानते हैं, उनसे नम्रतापूर्वक प्रार्थना करूंगा कि जब हिन्दुस्तान में एक सशक्त प्रयोग चल रहा है, तो वे उसमें बाधा न डालें। अन्यथा मेरा नेतृत्व निकम्मा हो जायगा। मैं नेतृत्व छोड़ दूं या कांग्रेस अहिंसा की नीति को छोड़ दे, फिर वे जो भी जी में आये करें।

--ह० से०, २१।९।'४०]

३१. अहिंसा अवसरवादिता नहीं

[सन् १९४२ में नज़रबन्दी के समय बापू से पूछे गये कुछ प्रश्न और उनके उत्तर]

प्रश्न--अहिंसा में आपकी जो श्रद्धा है, उसका मेल आप उन आरोपों के साथ कैसे बैठाते हैं जो आपके और कांग्रेस के विरुद्ध लगाये जाते हैं कि ८ अगस्त

के बाद जो भी तोड़-फोड़ और हिंसा के काम हुए वे सब इसलिए हुए कि आपने या कांग्रेस ने कुछ गुप्त हिदायतें जारी की थीं?

उत्तर--इन आरोपों में तनिक भी सचाई नहीं है। मैंने तोड़-फोड़ के लिए या किसी भी प्रकार की हिंसा के लिए कोई गुप्त या अप्रत्यक्ष हिदायत कभी नहीं दी। अगर कांग्रेस ने ऐसी कोई हिदायत दी होती तो मुझे उसका पता होता। न तो मैंने ही और न कांग्रेस ने ही ऐसी हिदायतें जारी कीं।

प्रश्न--तो फिर आप तोड़-फोड़ और हिंसा के इन कामों को नापसन्द करते हैं?

उत्तर--बिल्कुल नापसन्द करता हूं। मेरे अनशन-काल में मुझसे जो भी मित्र मिले हैं, उन सबसे मैंने यही बात कही है। जो लोग हिंसा में विश्वास करते हैं, मैं उनका निर्णायक नहीं बनना चाहता। पर मैं उनसे यह ज़रूर कहूंगा कि वे स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा कर दें कि वे इन हिंसात्मक कार्यों को अपनी ही ओर से कर रहे हैं और इसलिए कर रहे हैं कि उनका हिंसा में विश्वास है। कांग्रेस के प्रति न्याय करने के लिए इन हिंसा और तोड़-फोड़ करनेवालों को यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर देनी चाहिए। वे मेरी सुनें तो उन्हें सलाह दूंगा कि उन्हें अपने को पुलिस के हवाले कर देना चाहिए। केवल इसी प्रकार वे लोग देश के हित-साधन में सहायक हो सकते हैं। पर यदि कोई व्यक्ति कांग्रेस के ध्येय और मेरे तरीके में विश्वास नहीं रखता है तो उसे सभी सम्बद्ध लोगों के निकट यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए।

प्रश्न--यह कहा गया है कि आपने यह आन्दोलन इस ख्याल से शुरू किया कि मित्र-राष्ट्र हारनेवाले हैं और आपने इस आन्दोलन के लिए ऐसा समय चुना जब मित्र-राष्ट्र कठिनाई में पड़े हुए थे और आप उनकी स्थिति से अनुचित लाभ उठाना चाहते थे।

उत्तर--इसमें सत्य का लेश भी नहीं है। आप 'हरिजन' में मेरे लेख पढ़ सकते हैं और जरूरत से ज्यादा स्पष्ट कर दिया है कि मेरा ऐसा इरादा कभी नहीं था।

प्रश्न--हां, मैंने आपके लेख 'हरिजन' में पढ़े हैं। मैंने तो यही पाया कि आप जर्मनी या जपान के पक्षपाती तो क्या, उल्टे नात्सी-विरोधी और फ़ासिस्त विरोधी हैं। यही बात है न?

उत्तर--निश्चय ही। नात्सीवाद और फासिस्तवाद के खिलाफ़ मुझसे अधिक कठोर शब्दों का व्यवहार और किसी ने नहीं किया है। मैंने तो नात्सियों और फासिस्तों को इस दुनिया की गन्दगी कहा है। जब मई १९४२ में मीरा बहिन

उड़ीसा में थीं तो मैंने उन्हें एक पत्र लिखा था। मैं उस पत्र की प्रतिलिपि तो आपको नहीं दे सकता, क्योंकि मैं जेल में हूं, पर मुझे मालूम हुआ है कि मीरा बहिन ने उस पत्र की नकल भारत सरकार को भेजी है। आप सरकार से उसकी प्रतिलिपि माँग सकते हैं और अपनी तसल्ली कर सकते हैं। मैंने उस पत्र में विस्तृत रूप से हिदायतें दी हैं कि जपानी भारत पर आक्रमण करें तो उनका प्रतिरोध किस प्रकार किया जाय। उस पत्र को पढ़ लेने के बाद कोई भी व्यक्ति मुझ पर नात्सीवाद या फासिस्तवाद या जपान से सहानुभूति रखने का आरोप नहीं लगा सकता।

प्रश्न--क्या स्थिति यह नहीं है कि अगर भारत स्वतन्त्र हो जाय और राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो जाय तो कांग्रेस मित्रराष्ट्रों के ध्येय की पूर्ति में सैनिक सहायता देने के लिए वचनबद्ध है?

उत्तर--आपने जो निष्कर्ष निकाला है, वह बिल्कुल ठीक है। इसमें कोई शक नहीं कि यदि भारत को स्वतन्त्र कर दिया गया तो राष्ट्रीय सरकार अपने समस्त सैनिक साधनों के साथ मित्र-राष्ट्रों के पक्ष में लड़ेगी और हर सम्भव तरीके से मित्र-राष्ट्रों को सहयोग देगी।

प्रश्न--हाँ, काँग्रेस की नीति यही है। परन्तु आप तो शान्तिवादी हैं। क्या आप मित्र-राष्ट्रों को सैनिक सहायता देने की काँग्रेसी योजना में बाधा नहीं डालेंगें ?

उत्तर--कदापि नहीं। मैं शान्तिवादी हूं। किन्तु यदि राष्ट्रीय सरकार बनी और उसने मित्र-राष्ट्रों को सैनिक सहायता देने के आधार पर सत्ता की बागडोर सँभाली, तो जाहिर है कि मैं बाधा नहीं डाल सकता, और न डालूंगा ही। मेरे लिए हिंसा के किसी काम में प्रत्यक्ष भाग लेना सम्भव नहीं होगा। पर कांग्रेस मेरी ही तरह शान्तिवादिनी नहीं है और मैं स्वभावतया ही कांग्रेस के इरादों की पूर्ति में बाधा डालने वाला कोई काम नहीं करूंगा।

--'गांधी जी की छत्रछाया में'।

३२. तोड़फोड़ की कार्रवाई और अहिंसा

[आगा खाँ महल से गांधी जी छूटे, तो उनसे मिलने के लिए आये एक मित्र ने पूछा, हमारे नवयुवकों में अजकल दो प्रकार की विचारधाराएं काम कर रही हैं। उनमें से एक के अनुयायियों का विचार है कि लड़ाई के कार्यक्रम के रूप में अहिंसा सत्वहीन हो चुकी है। अहिंसा ने जनजागरण का सामान्य कर्तव्य पूरा कर दिया और अब स्वतन्त्रता संग्राम में शस्त्रों का उपयोग टाला नहीं जा सकता।

दूसरी विचार-धारा वाले लोग पूर्ववत् अहिंसा में श्रद्धा तो व्यक्त करते हैं, किन्तु उनका विचार है कि बड़े पैमाने पर तैयार की गई तोड़-फोड़ की योजना हमारी लड़ाई की अगली मंजिल का एक प्रतीक होगा।

उपर्युक्त सन्दर्भ में उन मित्र और गांधी जी के बीच जो प्रश्नोत्तर हुए वे यहां संकलित किये जाते हैं।--संपा०]

मित्र--हमें पसन्द आये या न आये तोड़-फोड़ की कार्रवाई अब हमारी लड़ाई के एक अंग के रूप में पक्की हो चुकी है।

गांधी जी--(बीच में ही टोकते हुए) भविष्य के विषय में इस प्रकार की गैर-जिम्मेदारी-भरी बातें करने में कोई सार नहीं। हमारे सामने जो सच्चा सवाल पेश है, वह तो यह है कि इस विषय में हमारी स्थिति क्या है, हम खड़े कहां हैं और इस विषय में हमारा रुख क्या होगा?

मित्र--क्या सरकारी मालमत्ते का नाश करना हिंसा है? आपने खुद कहा है कि जो अपनी न हो, ऐसी किसी मिल्कियत को बरबाद करने का किसी को हक़ नहीं। तो क्या सरकारी मिल्कियत मेरी मिल्कियत नहीं? मैं मानता हूं कि वह मेरी है, और इसलिए आप ही के शब्दों में उसको नष्ट करने का मुझे अधिकार है।

गांधी जी--आपकी दलील में दोहरी भूल है। यद्यपि आज वास्तविकता ऐसी नहीं है, तिस पर भी हम मान लें कि सरकारी सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति है, तो भी केवल इसलिए कि वर्तमान सरकार के साथ मेरी अनबन हो गई है, मैं उसकी सम्पत्ति को बरबाद न करूंगा। अगर राष्ट्रीय सरकार के कुछ कामों के बारे में उसके साथ झगड़ा पैदा हो जाय, और जनता का हर आदमी यह दावा करने लगे कि उसे सरकारी पुलों, आमद-रफ्त के साधनों, और डाक-तार के साधनों एवं रास्तों इत्यादि सब चीजों को नष्ट करने का अधिकार है, तो खुद राष्ट्रीय सरकार को भी एक दिन के लिए अपना काम चलाना मुश्किल हो जाय; वह चला ही न सके। फिर, जो बुराई है, वह पुलों या रास्तों वगैरह में नहीं। ये बेचारे तो जड़ पदार्थ हैं। बुराई तो आदमियों में बसी है। इसलिए हमें जो काम करना है वह आदमियों के साथ करना है। विस्फोटक पदार्थों का उपयोग करके पुल वगैरह उड़ा देने से इस बुराई पर कोई आँच नहीं आती, उल्टे हम जिस बुराई को मिटाना चाहते हैं, उससे भी बुरी एक बुराई को पैदा कर देते हैं।

मित्र--मैं मानता हूं कि बुराई हम इंसानों में है, उन पुलों में नहीं, जिनको अच्छे या बुरे हर तरह के काम के लिए बरता जा सकता है। साथ ही, मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि पुल उड़ा देने से उसके जवाब में ज्यादा बुरी हिंसा होती है। लेकिन मेरा ख्याल है कि लड़ाई की सफलता के लिए व्यूह रचने की दृष्टि से और

लोगों को पस्तहिम्मत होने से बचाने के लिए पुलों को उड़ाना ज़रूरी हो सकता है।

गांधी जी--यह बहुत पुरानी दलील है। कुछ दिनों पहिले बम के और वैसे ही दूसरे अत्याचारों के बचाव में यह दलील बार-बार सुनने को मिलती थी। तोड़-फोड़ भी हिंसा का ही एक स्वरूप है, लोग अब इतना तो समझ गये हैं। शारीरिक हिंसा में यानी अपने विरोधी को मार डालने या उसे चोट पहुँचाने के तरीक़े में कोई सार नहीं; वह निकम्मी चीज़ है। लेकिन कुछ लोग अब भी यह मानते दिखाई पड़ते हैं कि तोड़फोड़ के ढंग की एक हद तक सीमित हिंसा के प्रयोग से सफलता जरूर मिलेगी। मेरा अपना यह दृढ़ विश्वास है कि हमारे देश की समस्त जनता आज साहस और निडरता की जिस कक्षा तक पहुँची है, सम्पूर्ण अहिंसा के प्रयोग के बिना उस ऊंचाई तक वह कभी पहुँच न पाती। लेकिन हम अभी ठीक-ठीक नहीं जानते कि यह अहिंसा किस तरह काम करती है। इतनी बात निर्विवाद रूप से सच है कि हम कभी तो साफ़ ही असफल हुए हैं और कभी पीछे हटे हैं; तो भी अहिंसा के आचरण की हमारी ताक़त तो बराबर बढ़ती ही गई है। इसके विरुद्ध बम और दूसरे आतंकपूर्ण कामों के कारण हमारे देशवासी हिम्मत हार कर बैठ गये थे। यह है कि जल्दबाजी से आखिर नुक़सान ही होता है।

मित्र--हमारा अनुभव यह है कि जिन्हें हिंसा की शिक्षा मिली है वे, उन लोगों के मुक़ाबले में जिन्हें शिक्षा नहीं मिली या जिन्हें हिंसक तरीके का अनुभव नहीं है, अहिंसा के आदर्श के ज्यादा नज़दीक पहुँचते हैं।

गांधी जी--अगर यह सच है, तो इसका मतलब यही है कि ऐसे लोग हिंसा के तरीके को बार-बार आजमाकर थक गये हैं और वे उसके निकम्मेपन को समझ गये हैं। आपके अनुभव का इससे अधिक और कोई अर्थ नहीं। इसी तरह क्या कभी आप यह दलील देंगे कि जिस आदमी ने बदचलनी का मजा चखा है, वह उस आदमी के मुकाबले सदाचार के ज्यादा नज़दीक है, जिसने कभी उस रास्ते पर पैर नहीं रक्खा? क्योंकि आखिर हिंसा वाली आप की दलील का यही मतलब निकलता है।

[इसके बाद चर्चा का रुख बदला और लुक-छिपकर या पोशीदगी के साथ काम करने की बात चली। उन मित्र की दलील यह थी कि व्यक्तिगत रूप से लुक-छिपकर काम करने से डरपोकपन बढ़ता है और इसलिए वह बुरी चीज है, लेकिन अगर इसी चीज को संगठित रूप से किया जाय तो वह जरूर उपयोगी साबित होगी।]

मित्र--आदमी हिम्मत के साथ अपनी करतूतों का फल भोगने को तैयार

हो, तो उसके काम को गुप्त कैसे कहा जा सकता है? जो गुप्तता या गोपनीयता वह रखता है, वह तो उसके ध्येय को पूरा करने के लिए ही होती है। और बाद में उस पर मुकदमा चलने की हालत में उससे जो सवाल पूछे जाते हैं, उनका जवाब देने से वह इनकार करता है, इसलिए उसे झूठा इकरार करने की ज़रूरत भी नहीं पड़ती।

गांधी जी—गुप्त बल कितना ही बड़ा क्यों न हो, कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता। इस गुप्तता का हेतु क्या है? इसके द्वारा आप अपने आस-पास बचाव की एक दीवार खड़ी कर लेना चाहते हैं। अहिंसा में इस तरह के तमाम बचावों का विचार तक नहीं किया जाता। उसका प्रयोग खुले आम होता है और उसमें बड़े-से-बड़े खतरे का, जिसकी कि कल्पना की जा सकती है, छाती खोलकर सामना किया जाता है। हमारा देश बहुत बड़ा है। सदियों से वह ऐसे जुल्मों का शिकार रहता आया है, जिसका बयान नहीं किया जा सकता। ऐसे देश के करोड़ों लोगों को हमें कुछ करने के लिए संगठित करना है। सत्यमय और प्रकट साधनों को छोड़कर दूसरे किन्हीं साधनों से इन लोगों को संगठित नहीं किया जा सकता। अपनी जवानी से लेकर आज इस छिहत्तर बरस की उम्र के बीच मैंने कभी गुप्तता को पसन्द नहीं किया। मुझे उनसे चिढ़ है। आदर्श को कभी शिथिल नहीं किया जा सकता। खुले आम काम करने की अपनी मूल कल्पना पर हम आग्रह के साथ डटे न रहे, तो जरा भी आगे न बढ़ पायेंगे।

मैं जानता हूं कि हम अपने आदर्श को पूरी तरह अमल में नहीं ला सके। अक्सर हम पीछे हटे हैं। हमारे हथियार कम अधकचरे होते, तो हम अपने ध्येय के ज्यादा नजदीक पहुँचे होते। हमने अपने आदर्श को कितना ही ढीला क्यों न किया हो, फिर भी अहिंसा ने हमारे करोड़ों बेज़बान लोगों के बीच चुपचाप खमीर का-सा काम किया है। इसका यह मतलब नहीं कि हमें सदा के लिए इस तरह अपूर्ण रहना रुचेगा। हम एक जगह खड़े रहकर रुक नहीं सकते; हमें आगे बढ़ना ही होगा, या फिर पीछे हटना पड़ेगा।

मित्र—तो क्या आपका यह ख्याल है कि अगस्त की क्रान्ति से पूर्ण स्वराज्य की हमारी लड़ाई को धक्का पहुँचा है? वह पीछे हटी है? उस क्रान्ति में हमारे देशवासियों ने जिस वीरता का परिचय दिया, जो बहादुरी दिखाई, क्या वह सब वेकार हुई?

गांधी जी—नहीं, मैं ऐसा नहीं कहता। आप देखेंगे कि अपना इतिहास बनाने के क्रम में देश हर प्रकार के युद्ध-द्वारा स्वतन्त्रता की ओर आगे बढ़ता है, और १९४२ के अगस्त में जो प्रचण्ड तूफान उठा, उसकी वजह से भी देश तो आगे ही बढ़ा है।

मैंने तो सिर्फ यही कहा कि अगर हमने मेरी व्याख्यावाली अहिंसक बहादुरी दिखाई होती, तो हम इससे भी कहीं आगे बढ़ गये होते। इस हिसाब से तो तोड़फोड़ की तहरीक से आजादी की दिशा में देश की चाल को धक्का ही पहुँचा है। जयप्रकाश-नारायण-जैसे लोगों के साहस, देशभक्ति और त्यागभावना के लिए मेरे दिल में बड़ी इज्ज़त है, लेकिन जयप्रकाश मेरे आदर्श के नमूने नहीं। अगर बहादुरी का तमगा देना हो, तो मैं जयप्रकाश को न दूँगा, बल्कि उनकी पत्नी प्रभावती को दूँगा, क्योंकि वह सरल है। राजनीति के विषय में उसका कोई दखल नहीं, फिर भी वह अपने-आप में सत्याग्रह के शुद्ध सामर्थ्य को प्रकट करती है, और उस सामर्थ्य के आगे खुद जयप्रकाश को भी झुकना पड़ता है। अगस्त के प्रचण्ड आन्दोलन के बारे में मैंने जो कहा है, सो बीती बातों को न्याय की तराजू पर तौलकर फैसला देने के ख्याल से नहीं कहा,—उस आन्दोलन की निन्दा करने से मैंने बराबर इन्कार किया है—बल्कि केवल आगे को मार्ग-दर्शन के विचार से कहा है।

मित्र—हमारी जनता को अहिंसा में श्रद्धा है, लेकिन वह नहीं जानती कि अपनी श्रद्धा को प्राणवान बनाकर उसे फलवती कैसे बनाया जाय। उसकी इस निष्फलता का कारण क्या है?

गांधी जी—इन पिछले सारे कठिन वर्षों में मैं लोगों को एक ही बात फिर-फिर कहता रहा हूं, जिससे वे इतना तो समझ गये हैं कि अहिंसा में एक छिपी हुई शक्ति मौजूद है, लेकिन उन्होंने अभी उसकी सम्पूर्ण शोभा का दर्शन नहीं किया। अहिंसा की शक्ति को प्रभावपूर्ण तरीके से संगठित करने के लिए जो भी कदम उठाये गये, लोगों ने यदि उन सबको अच्छी तरह अपनाया होता, और अठारह-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम पर पूरी तरह आचरण किया होता, तो हमारा काम बहुत पहिले हमें अपनी मंजिल तक पहुंचा चुका होता। लेकिन रचनात्मक काम के विषय में हमारी श्रद्धा बहुत कमजोर रही है, और इसीलिए हमारे दिल में यह उलझन पैदा हुई है। लेकिन मैं यह भी भलीभाँति जानता हूं कि कठिनाइयों की परवाह किये बिना हमें आगे का रास्ता ढँढ़ना ही होगा।

—श्री प्यारेलाल-द्वारा प्रस्तुत लेख से। ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १०।२।'४६]

- **तोड़फोड़ भी हिंसा का ही एक स्वरूप है।**
- **मेरा अपना यह दृढ़ विश्वास है कि हमारे देश की समस्त जनता आज साहस और निडरता की जिस कक्षा तक पहुँची है, सम्पूर्ण अहिंसा के प्रयोग के बिना उस ऊंचाई तक वह कभी पहुँच न पाती।**

- गुप्त दल कितना ही बड़ा क्यों न हो, कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता।
- अपना इतिहास बनाने के क्रम में देश हर प्रकार के युद्ध-द्वारा स्वतन्त्रता की ओर बढ़ता है।
- अहिंसा में एक छिपी हुई शक्ति मौजूद है।

३३. द्वेष को कैसे मोड़ें ?

हवा में द्वेष छा गया है और अधीर देशभक्त, यदि सम्भव हो तो, आज़ादी के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए हिंसा के द्वारा भी उसका खुशी से उपयोग कर लेना पसन्द करेंगे। मेरा कहना यह है कि यह बात किसी भी समय और हर कहीं गलत होगी। लेकिन जिस देश में आज़ादी के लिए लड़ने वालों ने संसार के समक्ष यह घोषित किया है कि उनकी नीति सत्य और अहिंसा की नीति है वहां तो ऐसा करना और भी गलत और अनुपयुक्त होगा। उनका कहना है कि द्वेष को मुहब्बत यानी प्रेम में नहीं बदला जा सकता। जो लोग हिंसा में विश्वास रखते हैं, वे सहज ही ऐसा कहकर इसका उपयोग करेंगे कि अपने दुश्मन को मार डालो, उसे और उसकी सम्पत्ति को आवश्यकतानुसार खुले तौर पर या छिपाकर, जैसे सम्भव हो, हानि पहुँचाओ। इसका परिणाम यह होगा कि द्वेष और गहरा होता जायगा; द्वेष के बदले द्वेष पैदा होगा और दोनों तरफ से बदले का दौरदौरा होगा। पिछला महायुद्ध, जिसकी चिनगारियां अभी पूरी तरह ठण्डी नहीं पड़ी हैं, द्वेष के प्रयोग के दिवालियेपन की जोरों से घोषणा कर रहा है। और अभी यह देखना बाकी ही है कि कथित विजेता सचमुच विजयी हुए हैं अथवा अपने शत्रुओं को गिराने की चाह और कोशिश में खुद ही गिर तो नहीं गये हैं। आखिर यह एक बुरा खेल है। इस देश के कुछ कर्म-विचारक काम के तरीके में कुछ सुधार सुझाते हुए कहते हैं. हम अपने दुश्मन को तो कभी नहीं मारेंगे, लेकिन उसकी सम्पत्ति को अवश्य बरबाद करेंगे। जब मैं यह कहता हूं कि यह उसकी सम्पत्ति है, तो मैं शायद उसके साथ अन्याय करता हूं क्योंकि यह ध्यान देने की बात है कि कथित शत्रु साथ में अपनी कोई सम्पत्ति नहीं लाया है और यदि थोड़ी-बहुत लाया भी है तो हमसे उसका मूल्य वसूल करता है। इसलिए जिसे हम बरबाद करते हैं वास्तव में वह तो हमारी ही सम्पत्ति है। उसका अधिकतर भाग, चाहे वह आदमियों के रूप में हो या चीजों के, वह यहीं पैदा करता है। इसलिए बात केवल इतनी-सी है कि सम्पत्ति पर उसका अधिकार है। इस सम्पत्ति की बरबादी का मुआवजा हमको नाक के बल देना पड़ता है, और बेगुनाहों को उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। ताजीरी टैक्स या दण्डा-

त्मक कर और उससे जुड़ी हुई ज्यादतियों का यही मतलब होता है। इसलिए वह अहिंसा, जिसमें केवल किसी को न मारना ही शामिल हो, मुझे हिंसात्मक तरीके से बेहतर नज़र नहीं आती। उसका अर्थ है, धीरे-धीरे सताना। और जब यह धीमापन बेकार हो जायगा तो हम फौरन मारने पर उतारू हो जायँगे, और परमाणु बम का इस्तेमाल करने लगेंगे, जो कि आज हिंसा का आखिरी हथियार है। इसलिए सन् १९२० में मैंने द्वेष को ठीक दिशा में मोड़ने के लिए अहिंसा का और उसके आवश्यक जोड़ीदार सत्य का प्रयोग सुझाया था।

द्वेष करने वाला द्वेष के लिए द्वेष नहीं करता, यानी इसलिए करता है कि वह द्वेष आदमी या आदमियों को अपने देश से निकाल बाहर करना चाहता है। इसलिए वह हिंसक तरीके की तरह अहिंसक तरीके से भी अपना उद्देश्य सिद्ध कर लेगा। पिछले २५ वर्षों से इच्छा या अनिच्छा से कांग्रेस अपनी खोई हुई आजादी को हासिल करने के लिए जनता के सामने हिंसा के मुकाबले के लिए अहिंसा की हिमायत करती रही है। हमने जो तरक्की की है, उससे हमने यह देख लिया है कि अहिंसा के द्वारा हम जितनी जल्दी और जितना ज्यादा जनता के दिल को जगा सके हैं, उतना पहिले कभी नहीं कर सके थे। फिर अगर सच कहें तो—और सच तो कहना ही चाहिए—हमारी अहिंसक कार्रवाई अधकचरी ही रही है। अनेक ने दिल में हिंसा को छिपाये रखकर केवल जबान से अहिंसा का उपदेश किया। किन्तु सीधी-सादी जनता ने हमारे दिलों में छिपे हुए भावों का मतलब समझ लिया और उसकी अनजानी प्रतिक्रिया वैसी नहीं हुई, जैसी होनी चाहिए थी। दम्भ ने सद्‌गुण का प्रशस्ति गान तो गाया, किन्तु वह सद्‌गुण की जगह हरगिज नहीं ले सकता था। इसलिए मैं अहिंसा पर और अधिकाधिक अहिंसा पर बल देता रहता हूं। मैं अज्ञानवश ऐसा नहीं करता, बल्कि उसके पीछे मेरे साठ साल का अनुभव है। यह नाजुक वक़्त है। आज जनता भूखों मर रही है। देश की वर्तमान आवश्यकताओं में अहिंसा का प्रयोग किस तरह किया जाय, बुद्धिमान पाठक को इसके अनेक उपाय सूझ जायँगे।

'आजाद हिन्द फ़ौज' का जादू हम पर छा गया है। नेता जी का नाम जपने योग्य बन गया है। उनकी देशभक्ति किसी से कम नहीं है (वर्तमान काल का उपयोग मैं जान बूझकर कर रहा हूं)। उनकी बहादुरी उनके सारे कामों में चमक रही है। उनका उद्देश्य ऊंचा था, पर वह असफल रहे। असफल कौन नहीं रहा? हमारा काम तो यह देखना है कि हमारा उद्देश्य ऊंचा हो और हम शुभ हेतु रखें। सफलता प्राप्त कर लेना हर किसी के भाग्य में नहीं लिखा होता। इससे ज्यादा तारीफ मैं नहीं कर सकता, क्योंकि मैं जानता हूं कि उनका काम विफल होने ही वाला है। और अगर वह अपनी 'आजाद हिन्द फौज' को विजयी बनाकर हिन्दु-

स्तान में ले आये होते तो भी मैंने यही कहा होता क्योंकि इस तरह आम जनता अपने अधिकारों को न पा सकती। नेता जी और उनकी फ़ौज हमको जो सबक़ सिखाती है, वह तो त्याग का, जात-पाँत के भेद से रहित एकता का और अनुशासन का सबक है। अगर उनके प्रति हमारी भक्ति समझदारी की और विवेकपूर्ण होगी तो हम उनके इन तीनों गुणों को पूरी तरह अपनायेंगे, लेकिन हिंसा का तो बिलकुल त्याग ही करेंगे।

मैं यह नहीं चाहूँगा कि 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' का आदमी यह सोचे या कहे कि वह या उसके साथी हिन्दुस्तान की जनता को हथियारों के ज़रिये गुलामी से छुटकारा दिलवा सकते हैं। लेकिन अगर वह नेता जी का और उनसे भी ज्यादा देश का वफादार है, तो वह जनता को—स्त्री, पुरुष और बच्चों को—बहादुर बनने, त्याग करने, और एक हो जाने की शिक्षा देने में अपनी शक्ति खर्च करेगा। तभी हम दुनिया के आगे कमर सीधी करके खड़े हो सकेंगे। लेकिन अगर वह केवल हथियारबन्द सैनिक ही बना रहा, तो वह जनता के सिरपर सवारी ही गाँठेगा और तब उसके स्वयंसेवकपने की कोई ज्यादा क़ीमत नहीं रह जायगी। इसलिए मैं कप्तान शाहनवाज़ के इस बयान का स्वागत करता हूं कि नेता जी के योग्य अनुयायी बनने के लिए, हिन्दुस्तान की धरती पर आने के बाद, वह कांग्रेस की सेना में एक विनीत, अहिंसक सिपाही बनकर काम करेंगे।

—मूल अंग्रेजी। ह० से०,। २४।२।'४६]

- **वह अहिंसा, जिसमें केवल किसी को न मारना शामिल हो, मुझे हिंसात्मक तरीक़े से बेहतर नहीं नजर आती। उसका अर्थ है धीरे-धीरे सताना।**
- **नेताजी और उनकी फौज हमको जो सबक़ सिखाती है, वह तो त्याग का, जाति-पांति के भेद से रहित एकता का और अनुशासन का सबक है।**

३४. हिंसा का समाधान

[बम्बई की घटनाओं पर बापू जी ने जो अखबारी बयान दिया था, उसका खण्डन करते हुए श्रीमती अरुणा आसफअली ने कहा कि जनता को स्वतन्त्रता प्राप्त करने में रुचि है, हिंसा अहिंसा में नहीं। इसके उत्तर में बापू जी ने पूना से समाचारपत्रों के नाम दूसरा वक्तव्य प्रकाशित किया। यहां उस वक्तव्य से अहिंसा पर प्रकाश डालने वाले आवश्यक अंश संकलित किये जा रहे हैं।—संपा०]

बम्बई की घटनाओं पर मैंने जो बयान दिया था, उसका साहस के साथ खण्डन करने के लिए मैं श्रीमती अरुणा आसफअली को बधाई देता हूं। अगर श्रीमती अरुणा, छिपी रहकर काम करने वालों की एक काफ़ी बड़ी संख्या का प्रतिनिधित्व न करती होतीं, तो मैंने उनके खण्डन पर ध्यान न दिया होता। श्रीमती अरुणा मेरी लड़की हैं, क्या हुआ, उन्होंने मेरे घर में जन्म नहीं लिया या आज वह विद्रोही बन गई हैं। जिन दिनों वह छिपकर रहती थीं, उन दिनों भी मैं कई बार उनसे मिला हूं। मैंने उनकी बहादुरी, नये-नये रास्ते खोजने की शक्ति और गहरे देश-प्रेम की सराहना की है। पर मेरी सराहना इससे आगे नहीं बढ़ी। मैंने उनके छिपकर काम करने को पसन्द नहीं किया। मैं छिपकर किये जाने वाले किसी काम की सराहना नहीं करता। मैं जानता हूं कि देश के करोड़ों स्त्री-पुरुष छिपकर काम नहीं कर सकते। कुछ मुट्ठीभर लोग यह सोच सकते हैं कि छद्म कार्रवाइयों के द्वारा वे करोड़ों के लिए स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। लेकिन क्या यह बच्चों को चम्मच से दूध पिलाने जैसी बात न होगी? आम जनता तो खुली चुनौती और खुले कामों का रास्ता ही अपना सकती है। असली स्वराज्य की झांकी तो स्त्रियों-पुरुषों और बच्चों सभी को होनी चाहिए। ऐसे उद्देश्य के लिए परिश्रम करना ही सच्ची क्रान्ति होगी। हिन्दुस्तान दुनिया की सभी शोषित जातियों के लिए एक नमूना बन गया है, क्योंकि उसकी लड़ाई में आज़ादी को हड़प कर बैठे हुए लोगों को चोट पहुँचाये बिना सभी से कुरबानी चाही जाती है। अगर यह लड़ाई खुली और निहत्थी न होती तो करोड़ों हिन्दुस्तानियों में आज की जागृति न आई होती। जब-जब इस सीधे रास्ते को छोड़ा गया, तब-तब थोड़े समय के लिए विकासशील क्रान्ति में रुकावट पड़ी है।

यह बहादुर बहिन सन् १९४२ की घटनाओं का जो अर्थ लगाती हैं, वह अर्थ मैं नहीं लगाता। यह अच्छी बात थी कि लोग अपने-आप उठ खड़े हुए। मगर यह बुरी बात हुई कि कुछ लोगों ने या बहुत लोगों ने हिंसा की। इससे कुछ फर्क़ नहीं पड़ता कि श्री किशोरलाल मशरूवाला, काकासाहब और दूसरे काम करने वालों ने उस समय के उतावली भरे उत्साह में अहिंसा की गलत व्याख्या की। उनके ऐसा करने से ही यह साबित होता है कि अहिंसा कितना नाजुक शस्त्र है। मैं जो तुलना कर रहा हूँ, उसका मतलब किसी आदमी पर लाञ्छन लगाना नहीं है। हर एक ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार ठीक ही किया। जबरदस्त संगठित हिंसा के मुकाबले हाथ पर हाथ धर कर बैठ रहना तो कायरता होती। अगर मैं सन् १९४२ की घटनाओं के बारे में अपना ख़याल ज़ाहिर न करूं, तो कमजोरी का सबूत दूंगा या गलती करूंगा।

श्रीमती अरुणा भले ही वैधानिक मोर्चे के बजाय लड़ाई के मोर्चे पर हिन्दू मुसलमानों को इकट्ठा करना पसन्द करें, लेकिन हिंसा की दृष्टि से भी यह एक गलत विचार है। अगर लड़ाई के मोर्चे वाली एकता सच्ची हो, तो वह वैधानिक मोर्चे पर भी चाहिए। लड़ने वाले हमेशा लड़ाई के मोर्चे पर डटे नहीं रहते। उनमें आत्म-घात न करने-जैसी अक्ल ज़रूर होती है। लड़ाई के मोर्चे के बाद हमेशा वैधानिक मोर्चा आता ही है। उसको हमेशा के लिए रद नहीं किया जा सकता।

मैं ज़ोर देकर यह कहूंगा कि ब्रिटिश घोषणाओं में अविश्वास करना और पहिले से झगड़ा खड़ा कर देना दूरदर्शिता की कमी प्रकट करता है। सरकारी प्रतिनिधि मण्डल क्या एक बड़े राष्ट्र को धोखा देने आ रहा है? ऐसा सोचना किसी स्त्री-पुरुष को शोभा नहीं दे सकता। प्रतीक्षा करने में आखिर हम क्या खो देंगे? सरकारी प्रतिनिधि-मण्डल को हम आखिरी बार और यह सिद्ध करने दें कि ब्रिटिश घोषणाएं विश्वास करने योग्य नहीं होतीं। विश्वास करने से राष्ट्र को लाभ होगा। जिसको धोखा दिया जाता है, उसकी ओर से जब सही जवाब मिलता है, तो धोखा देने वाले की ही हार होती है।

हम असलियत पर ग़ौर करें। जो मिशन आ रहा है, उसके लिए कहा जाता है कि वह मैत्री-मिशन है। उसको आशा है कि वह आज़ादी का वैधानिक रास्ता खोज निकालेगा। सवाल उलझा हुआ है। सम्भवतः राजमर्मज्ञों को ऐसे उलझे हुए प्रश्न का पहिले कभी सामना नहीं करना पड़ा होगा। सम्भव है कि मिशन एक न होने वाली पहेली पेश कर दे। मगर यह उसी के हक़ में बुरा होगा। जिन मुश्किलों को अंग्रेज शासकों ने खुद खड़ा किया है, अगर मिशन उनको हल करने का सच्चा रास्ता ढूंढ़ने पर तुला होगा, तो मुझे शक नहीं कि रास्ता मौजूद है। लेकिन इसमें हमारे राष्ट्र को भी अपना हिस्सा अदा करना होगा। अगर उसे ऐसा करना है, तो कम-से-कम फ़िलहाल तो उसे लड़ाई के मोर्चे को एक ओर रखना होगा। मैं श्रीमती अरुणा और उनके दोस्तों से अपील करता हूं कि वीरता और त्याग ने उन्हें जो शक्ति दी है उसका वे विवेक से प्रयोग करें।

यह बड़े सन्तोष की बात है कि जहाज़ी बेड़ों में काम करने वालों ने अपने आपको अधिकारियों के हवाले कर देने की सरदार पटेल की सलाह मान ली। उन्होंने अपनी इज्ज़त नहीं सौंपी है। जहाँ तक मैं सोच सकता हूं उन्होंने ग़लत सलाह के प्रभाव में आकर विद्रोह किया था। अगर उन्होंने किन्हीं ख्याली या असली शिकायतों की वजह से ऐसा किया, तो उन्हें अपनी पसन्द के राजनीतिक नेताओं की सलाह और मध्यस्थता पहिले हासिल करनी थी। यदि उन्होंने हिन्दु-स्तान की स्वतन्त्रता हेतु विद्रोह किया तो दुहरी ग़लती की। पहिले से तैयार क्रान्ति-

कारी पार्टी के इशारे के बिना वे ऐसा नहीं कर सकते थे। अगर उन्होंने यह समझा हो कि वे अपनी शक्ति से हिन्दुस्तान को विदेशी गुलामी से छुटकारा दिला सकेंगे, तो उनका यह विचार नादानी और नासमझी से भरा था।

श्रीमती अरुणा का यह कहना सही है कि इस बार लड़ने वालों ने जैसी दृढ़ता दिखाई, वैसी पहिले कभी नहीं दिखाई थी। मगर जब मज़बूती कुसमय की और आत्मघाती हो, जैसी कि इस मौके पर थी, तो वह मूर्खता बन जाती है।

श्रीमती अरुणा को यह कहने का हक़ है कि लोगों को हिंसा या अहिंसा के सिद्धान्त में कोई दिलचस्पी नहीं है। मगर लोगों को यह जानने में ज़रूर दिलचस्पी है कि जनता को आज़ादी किस रास्ते से मिलेगी, हिंसा से या अहिंसा से? लोग अब तक, अधूरे ही सही, अहिंसा के रास्ते पर चले हैं। श्रीमती अरुणा और उनके साथियों को हर बार अपने से यह सवाल पूछना चाहिए कि अहिंसक रास्ते ने हिन्दुस्तान को उसकी सदियों की नींद से जगाया है या नहीं और स्वराज्य के लिए हिन्दुस्तानियों के दिलों में, धुँधली ही सही, इच्छा पैदा की है या नहीं। मेरी राय में इस प्रश्न का एक ही उत्तर हो सकता है।

श्रीमती अरुणा के बयान में दूसरे भी ऐसे फ़िकरे हैं, जो मेरे ख्याल में विचारों की उलझन ज़ाहिर करते हैं। लेकिन उन पर तो बाद में भी गौर किया जा सकता है।

यहाँ यह कहना अनावश्यक है कि अखबारों में छपे उनके बयान पर मैंने जो विचार प्रकट किये हैं, सो यह मान कर किये हैं कि उक्त बयान उनकी अपनी राय का सूचक है। अगर ऐसा नहीं है, तो मैं उनसे पहिले ही माफी माँग लेता हूं। अगर यह मालूम हो जाय कि खबर भेजने वाले ने उनको ठीक से समझा नहीं था, तो भी उससे मेरी दलीलों पर कोई असर नहीं पड़ता। क्योंकि मेरी दलीलें आखिर सैद्धान्तिक दलीलें हैं, वे किसी के व्यक्तित्व से सम्बन्ध नहीं रखतीं, और सिर्फ उन्हीं बातों पर ध्यान दिलाती हैं, जिनसे जनसाधारण के गुमराह होने का अन्देशा है, फिर भले उनका कहने वाला कोई भी हो।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, ३।३।'४६]

- **असली स्वराज्य की झांकी तो स्त्रियों, पुरुषों, बच्चों सभी को होनी चाहिए। ऐसे उद्देश्य के लिए श्रम करना ही सच्ची क्रान्ति होगी।**
- **हिन्दुस्तान दुनिया की सभी शोषित जातियों के लिए एक नमूना बन गया है, क्योंकि उसकी लड़ाई खुली है और किन्हीं हथियारों के बिना लड़ी जा रही है।**

३५. अराजकता और अहिंसा

[बम्बई के उपद्रव और लूटमार से व्यथित होकर गांधी जी ने 'हरिजन' में एक हृदयस्पर्शी लेख लिखा था। प्रस्तुत अंश उसी से संकलित किये गये हैं।--संपा०]

विश्वास के बदले में किया गया विश्वास या प्रेम के बदले में किया गया प्रेम, विश्वास या प्रेम कहे जाने के योग्य नहीं। सच्चा प्रेम वह है, जो दुश्मन के सामने भी टिके। अपने पड़ोसी पर अविश्वास होते हुए भी हम उससे प्रेम करें। अंग्रेज कर्मचारी वर्ग पर मेरे अविश्वास के लिए सबल कारण हैं। लेकिन अगर मेरा प्रेम सच्चा है, तो अंग्रेज कर्मचारियों पर अविश्वास होते हुए भी उनके प्रति मेरे प्रेम में कुछ अन्तर न आना चाहिए। अगर मेरा प्रेम तभी तक रहता है जब तक मेरे मित्र पर मुझे विश्वास है, तो उसकी क्या क़ीमत? इतना तो चोर भी आपस में करते हैं। परन्तु विश्वास का रिश्ता टूटते ही वे एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं।

देखिए, आज बम्बई में क्या हो रहा है? जहां मैंने इतना समय बिताया है, जिस बम्बई ने सार्वजनिक कामों के लिए इतना पैसा दिया है, मैं मानता था कि वह बम्बई अहिंसा को एक हद तक समझ गया है। क्या वही बम्बई अहिंसा की क़ब्र बनेगा?

मैं यह मानने को तैयार नहीं कि आज वहां जो लूटमार और अंग्रेजों की वेइज़्ज़ती हो रही है, वह गुण्डों का काम है। आख़िर गुण्डे कौन हैं? क्या अंग्रेजों के राज्य के साथ उनका भी खात्मा हो जायगा? गुण्डों के सिर सारा दोष मढ़ने का आज जो रिवाज चल पड़ा है, वह बन्द होना चाहिए। गुण्डों को बनाने वाले भी हम ही हैं। जैसी हवा होती है, वैसा ही इनका बरताव भी होता जाता है।

हम गल्ले की दुकानों को लूटने की मूढ़ता पर जरा सोचें। लूट-मार करने वालों में किसी ने अपनी भूख मिटाने के लिए लूट-मार नहीं की होगी। वे कहां भूखों मर रहे थे। और अनाज तो भूख से पीड़ित लोगों के लिए ही था। अगर यह कहा जाय कि उसका दुरुपयोग हो रहा था, तो लूट उसे रोक नहीं सकती थी। मुल्क के अनाज पर जो लोग आज कब्ज़ा जमाकर बैठे हैं, वे तो जहां से भी मिलेगा, और अनाज लाकर भर लेंगे। और दो लुटेरों के बीच गरीब लोग और भी पिस जायेंगे।

जिन्होंने नौका दल के लोगों में बलवा करवाया, उन्होंने बिना सोचे-समझे सब काम किया। उन्हें समझना चाहिए था कि बलवा करने वालों को आख़िर

हारना पड़ेगा। क्या यह सब हिंसा का पाठ सीखने के लिए था? अगर यही कल्पना थी, तो मैं कहूंगा कि उन्होंने इतिहास से उलटा सबक सीखा है।

मैं अपने आप से पूछ रहा हूं—शायद दूसरे भी दिल में यही पूछते होंगे—कि चौरीचौरा की दुर्घटना के परिणाम-स्वरूप जो क़दम मैंने उठाया था वह आज क्यों नहीं उठाता? इसका जवाब यह है कि आज मुझे उसकी अन्तःप्रेरणा नहीं हो रही है। जब वह होगी, तो मैं सारी दुनिया के रोकने से भी न रुकूँगा, चाहे उस वक़्त मेरा स्वास्थ्य कैसा भी हो। मैं दुबारा कहता हूं कि मुझे अंग्रेजों से उतना ही प्रेम है, जितना हिन्दुस्तानियों से। दोनों ही मनुष्य हैं। फिर भी मैं हिन्दुस्तान का राज करोड़ों हिन्दुस्तानियों के हाथ में उनके अपने हित के लिए चाहता हूं। लोकमान्य ने हमें सिखाया है कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। आजकल बम्बई, कलकत्ता और करांची में जो हो रहा है, उससे करोड़ों का वह स्वराज्य नहीं मिलेगा। हर एक कांग्रेसी चाहे वह चार आने वाला सदस्य हो या न हो, सोचे कि कांग्रेस आज क्या माँगती है। हम अपने को और दुनिया को धोखा न दें।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, ३।३।'४६]

- **विश्वास के बदले में किया गया विश्वास और प्रेम के बदले में किया गया प्रेम विश्वास या प्रेम कहे जाने योग्य नहीं है।**
- **गुण्डों को बनाने वाले भी हम ही हैं। जैसी हवा होती है, वैसा ही उनका बरताव भी हो जाता है।**
- **मुझे अंग्रेजों से उतना ही प्रेम है, जितना हिन्दुस्तानियों से। दोनों ही मनुष्य हैं।**

३६. अहिंसा ही स्वतन्त्रता का एकमात्र साधन है

[रूंगटा भवन बम्बई की प्रार्थना सभा में किये गये बापू जी के प्रवचन का अंश।—संपा०]

हमने दुनिया के आगे सत्य और अहिंसा से आज़ादी लेने की प्रतिज्ञा की है। उसके बाद अगर हम ऐसा सत्वहीन क्रोध प्रकट करेंगे, तो झूठे समझे जायंगे। लूट-मार करके, घरों में आग लगाकर या हुल्लड़ करके हम न तो इस देश का भला कर सकते हैं और न दूसरे किसी का। मैंने पहिले भी कहा था और आज फिर कहता हूं कि अगर ४० करोड़ हिन्दुस्तानी एक आवाज़ से और एक दिल से फैसला करें कि उन्हें तो सत्य और अहिंसा से ही स्वराज्य लेना है, तो आज़ादी उनकी गोद में आ गिरेगी। किन्तु अगर उनमें इतनी श्रद्धा नहीं है, तो वे सोच-समझकर स्पष्ट

रूप से सत्य और अहिंसा को छोड़ सकते हैं। मेरे-जैसा आदमी भले ही इसे बेवकूफी समझे, मगर दुनिया उन्हें झूठा अथवा कायर नहीं समझेगी। मुझे डर है कि आज हम इस इलज़ाम से नहीं बच सकते। कप्तान शाहनवाज़ ने हाल में कहा है कि नेता जी सुभाष बोस ने यह आदेश दिया था कि हिन्दुस्तान जाकर उन लोगों को तलवार से नहीं, बल्कि अहिंसा से देश की सेवा करनी है। मान लिया जाय कि हिन्दुस्तान क़ाफी तादाद में गोला-बारूद और हथियार पैदा कर ले और उसके पास लड़ाई की कला जानने वाले भी हों, तब भी यह सवाल बच रहेगा कि हिन्दुस्तान की बेशुमार बहिनें और बच्चे, जो हथियार नहीं उठा सकते, स्वराज्य हासिल करने में अपना हिस्सा किस तरह बँटा सकते हैं? मुझे तो ऐसा स्वराज्य चाहिए जिसको हासिल करने में औरतें और बच्चे बहादुर लड़ाकों की तरह ही बहादुरी दिखा सकें। इसी हालत में वे हिन्दुस्तान की आज़ादी के सच्चे हिस्सेदार हो सकते हैं। अहिंसा के द्वारा ही ऐसा हो सकता है इसलिए अगर मैं अकेला ही रह जाऊं तो भी यह कहूंगा कि स्वराज्य हासिल करने के लिए सत्य और अहिंसा ही एक मात्र साधन है।

—ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, ३।३।'४६]

३७. हिंसक बंगाल : एक प्रतिक्रिया

[बंगाल यात्रा के दौरान जब बापू जी सोदपुर में थे, एक अंग्रेज मित्र उनसे मिलने आये। बापू जी और उन मित्र की वार्ता के आवश्यक अंश प्रश्नोत्तर रूप में यहां दिये जा रहे हैं।—संपा०]

मित्र—देश के अन्य भागों की अपेक्षा पंजाब और दिल्ली में अंग्रेज और हिन्दुस्तानी एक दूसरे से ज़्यादा खुलकर मिलते हैं। क्या इसका कारण यह है कि वहां दोनों की संख्या के बीच का अन्तर अन्य जगहों से कम है?

गांधी जी—हिन्दुस्तानियों और अंग्रेजों के आपसी सम्बन्धों के बारे में बंगाल में जो अन्तर दीखता है वह बहुत कुछ तो इस कारण है कि पंजाब और दिल्ली की अपेक्षा बंगाल में हिंसा की भावना बहुत बड़े पैमाने पर प्रकट हुई थी। यों, तो पंजाब में भी कुछ सीमा तक हिंसा की भावना प्रकट हुई थी, मगर बंगाल की तुलना में उसका कोई अस्तित्व न था। चटगांव के शस्त्रागार पर जैसा साहसपूर्ण आक्रमण किया गया था वैसा और कहीं नहीं किया गया।

मित्र—मैंने इस विषय में बहुत बार सोचा है, लेकिन यह प्रश्न मुझे सदैव

परेशान करता रहा है कि ऐसे भद्र स्वभाववाले बंगाली नवयुवक हिंसा की ओर क्यों आकर्षित हो गये?

गांधी जी--जहां तक मेरा प्रश्न है, मैंने इस पहेली का हल ढूंढ़ लिया है। बंगाल वाले यह अनुभव करते हैं कि अतीत काल में उनको व्यर्थ बदनाम किया गया था। लार्ड कर्जन बार-बार कहा करते थे कि बंगाली बड़े क्षुद्र हैं। इसी कारण बंगालियों के मन में कटुता पैदा हो गई। वे कहने लगे हम चाहे धनी न हों, मगर कापुरुष तो कदापि नहीं हैं। इसी कारण उन्होंने ग़लत तरीक़ा अपनाया और साहस के कामों में वे हिन्दुस्तान के सभी प्रान्तों से आगे बढ़ गये। उन्होंने मृत्यु की चिन्ता नहीं की, गरीबी की चिन्ता नहीं की और लोकमत की भी परवाह नहीं की। मैंने बहुत से आतंकवादियों और अराजकता के समर्थकों के साथ हिंसा के प्रश्न की बारीक़ी से चर्चा की है। हिंसा भयंकर चीज़ है, चाहे वह किसी अरब के हाथों हो या यहूदी के। अगर इस हिंसक भावना की छूत जनसाधारण को लग जाय, तो संसार त्रस्त हो उठे। आखिर तो वह (हिंसा) अपने साथ समूची जाति का नाश करती है।

मित्र--और पिछले दो या तीन वर्षों में वह सारे संसार में फैल गई है।

गांधी जी--जनरल मैकआर्थर की इस नई आज्ञा को लीजिए। उसने जपान की समस्त जनता को दो भागों में बाँट दिया है। एक में वे लोग हैं, जिन्हें वह युद्ध का अपराधी कहता है, और दूसरे में बाक़ी सब लोग। जब मैं इस समाचार को पढ़ रहा था, तभी मैंने अनुभव किया कि जपान के समान स्वाभिमानी, भावना-प्रधान और पश्चिमी देशों के तरीक़े पर अपना संगठन करने वाले राष्ट्र में प्रजा-तन्त्र का प्रवेश करने का यह कोई श्रेष्ठ तरीक़ा नहीं है। गैरीबाल्डी के समय में जो काम इटलीवालों ने किया था, उसी को वे बहुत बड़े पैमाने पर करेंगे। मनुष्य जाति के साथ आप इस तरीक़े से काम नहीं ले सकते। संसार के एक हिस्से में जो कुछ होता है, उसका प्रभाव उसके दूसरे भागों पर भी पड़ता ही है। आज संसार सिकुड़कर इतना छोटा बन गया है।

(बापू जी की उपर्युक्त धारणा पर विचार व्यक्त करते हुए अंग्रेज मित्र ने कहा कि उनकी दृष्टि में पिछले तीन वर्षों में, संसार की जितनी अवनति होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हुई। बापू जी उनकी बात से सहमत हुए किन्तु उन्होंने कहा कि उनकी धारणा के लिए कुछ और ही कारण है। इसपर मित्र ने उत्तर दिया)

अपनी इस धारणा के लिए मेरा तर्क यह है कि पिछले तीन सालों में लोगों को इण्डोनेशिया में और दूसरे देशों में भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ा है। मगर फिर भी लोगों के हृदय उस सीमा तक खराब नहीं हुए हैं।

गांधी जी--मेरी आशा का आधार तो परिस्थिति को अनासक्त दृष्टि से देखने में है। जब मैं आगाखान के महल में नज़रबन्द था, मुझे पढ़ने और सोचने का अवकाश था। उस समय मैंने जो अनुभव किया, वह यह कि लोगों के चरित्र में खराबी पैदा हुई है, जब कि उनके विचारों में बहुत तरक्की हुई है। आचरण विचार की समता में खड़ा नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी गति विचार की गति से मन्द है। आज इंसान यह कहने लगा है कि यह ग़लत है, वह अनुचित है। पहिले ऐसा नहीं था। उस समय तो मनुष्य अपने आचरण का बचाव करता था। आज वह अपने या अपने पड़ोसी के आचरण का बचाव नहीं करता। जो ग़लत है उसको वह सुधारना चाहता है। लेकिन वह नहीं जानता कि उसका आचरण ही उसे धोखा दे रहा है। आचार और विचार के बीच का यह विरोध ही उसे जकड़े हुए है। उसका आचरण शुद्ध तर्क के अनुसार नहीं होता। दूसरी बात यह कि मेरी यह भविष्यवाणी तो स्थायी रूप से संसार के सामने ही है कि व्यक्ति कुछ करे या न करे, अहिंसा की जय तो निश्चित ही है। यह चीज़ मेरी आशा को जिलाये रखती है। मेरा अपना विचार है कि अहिंसा स्वयमेव काम करती रहती है, और मेरा व्यापक निजी अनुभव भी इसका समर्थन करता है। उसके साधन चाहे त्रुटिपूर्ण हों, फिर भी वह अपना रास्ता निकालेगी और तमाम मुश्किलों को पार करेगी। इस बात से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता कि हम किस तरह इस परिणाम पर पहुँचे। लेकिन यह चीज़ हमें ताज़ा और हरा बनाये रखती है।"

--ह० से०, ७।४।'४६]

- **हिंसा भयंकर चीज़ है, चाहे वह किसी अरब के हाथों होती हो या यहूदी के।**
- **आचरण विचार की समता में खड़ा नहीं हो सकता क्योंकि उसकी गति विचार की गति से मन्द है।**
- **व्यक्ति कुछ करे या न करे, अहिंसा की जय तो निश्चित ही है।**
- **मेरा अपना विचार है कि अहिंसा स्वयमेव काम करती है।**

३८. अहिंसा के प्रति 'आज़ाद हिन्द' फ़ौज की निष्ठा

['आज़ाद हिन्द फौज' के बन्दियों से मिलने के बाद बापू ने प्रार्थना-सभा में उनकी चर्चा करते हुए मर्मस्पर्शी भाषण दिया था। उनका यह भाषण संकलित किया जाता है।--संपा०]

कल से मेरे मन में जो विचार उठ रहे हैं, उन्हें मैं आपसे कहना चाहता हूं। हिन्दुस्तान ने 'आज़ाद हिन्द फौज' से छूटे हुए लोगों का शाही शान से स्वागत किया है। राष्ट्रवीर की तरह उनका अभिनन्दन किया गया है। ऐसा लगता है कि जनता की भावना के उठते ज्वार में सभी लोग बह गये। लेकिन मुझे यह स्पष्ट स्वीकार कर लेना चाहिए कि इस तरह की विवेक-रहित पूजा में मैं सम्मिलित नहीं हो सकता। मैं 'आज़ाद हिन्द फौज' की और नेता जी बोस के कार्य, बलिदान और देश-प्रेम की सराहना करता हूं, लेकिन उन्होंने जिस तरीके को अपनाया था, उससे मैं सहमत नहीं हो सकता। कांग्रेस ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए पिछले २५ सालों से जो तरीक़ा अपना रक्खा है, इससे इसका मेल नहीं बैठता। कल मैंने आपसे स्थितप्रज्ञ यानी सत्याग्रही के बारे में कहा था। अगर हम इस आदर्श को अपनाते हैं, तो हमें किसी को भी अपना शत्रु न समझना चाहिए। हमें शत्रुता और बुराई को पूरी तरह छोड़ देना चाहिए। यह आदर्श कुछ इने-गिने साधु-सन्तों और ऋषि-मुनियों के लिए ही नहीं, यह तो सब के लिए है। मैंने अपने को भंगी कहा है। जिन दिनों मैं फिनिक्स में रहता था, उन दिनों मैं सिर्फ नाम का नहीं बल्कि सचमुच भंगी बन गया था। अपने दिल की आवाज़ को सुनकर छोटे-से-छोटे लोगों के साथ अपने को मिला देने के विचार से मैने वहां अपने हाथ में डोल और झाड़ू सँभाल लिये थे। मैं आप ही के जैसा एक नम्र साधक हूं। मैं आप लोगों से अपना यह अनुभव कहना चाहता हूं कि प्रार्थना के समय पढ़े जाने वाले गीता के श्लोकों में जिस तरह की समता का वर्णन है, वैसी समता एक सामान्य देहाती भी प्राप्त कर सकता है, यदि वह चाहे और प्रयत्न करे। हम चाहे स्वीकार न करें, या हमें इसका पता भी न हो, फिर भी यह सच है कि कभी-कभी हम सब अपनी बुद्धि और स्वास्थ्य को खो बैठते हैं। स्वस्थ चित्तवाला आदमी बच्चे के साथ भी धैर्य नहीं खोता। वह न क्रोधित होता है, न गाली देता है। गीता में कहे-गये धर्म का आचरण इसी जीवन में करना है। इस जन्म में आप जो कुछ भी करें उससे कोई सम्बन्ध न रखते हुए अगले जन्म में श्रेय प्राप्त करने का यह कोई साधन नहीं। वैसा करना तो धर्म का दिवाला पीटना होगा।

'आज़ाद हिन्द फौज' के नज़रबन्द लोगों से मिलना मेरे लिए शुद्ध कर्त्तव्य-रूप था। उनसे मिलकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। और उन्होंने भी जिस प्रेम के साथ मेरा स्वागत किया, उसे मैं कभी भूल नहीं सकूंगा। उनके इस स्वागत का मैं यह अर्थ समझता हूं कि उन्होंने मुझको देश का एक निष्ठावान सेवक माना है।

नेता जी तो मेरे लिए पुत्र के समान थे। स्व० देशबन्धु दास के नेतृत्व में काम करने वाले एक होनहार कार्यकर्ता के रूप में मैंने पहिले-पहल उनको जाना था।

'आज़ाद हिन्द फौज' के लिए उनका अन्तिम सन्देश यह था कि परदेश में वे हथियारों के साथ लड़े हैं। लेकिन वापस हिन्दुस्तान लौटने पर उनको कांग्रेस के नेतृत्व में अहिंसा का सैनिक बनना है और उस नाते देश की सेवा करनी है। हिन्दुस्तान के लिए आजाद हिन्द फौज का सन्देश यह नहीं है कि आपसी झगड़ों को मिटाने के लिए हम शस्त्र चलाने के तरीक़े अपनायें क्योंकि उनकी आज़माइश हो चुकी है और वह कच्चा साबित हुआ––बल्कि सन्देश तो यह है कि हम अपने बीच अहिंसा, एकता, मेल-जोल और संगठन को बढ़ायें।

यद्यपि 'आज़ाद हिन्द फ़ौज' अपने तात्कालिक लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाई, तो भी उसने बहुत-सी ऐसी बातें की हैं, जिनके लिए उसे गर्व हो सकता है। हिन्दुस्तान के सभी धर्मों और सभी जातियों के लोग एक ही झण्डे के नीचे इकट्ठा हुए और साम्प्रदायिक या उस ढंग की दूसरी किसी भी संकुचित भावना से दूर रहकर वह सब लोगों में एकता की भावना पैदा कर सकी। यह उसका बड़े-से-बड़ा काम था। हम सबको उसका अनुसरण करना चाहिए। अगर उन्होंने युद्ध के उत्साह में ही यह सब किया हो, तो उसका बहुत मूल्य नहीं। शान्ति के दिनों में भी यह बात इसी तरह चलनी चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि यह काम ज़्यादा ऊंचा और ज्यादा कठिन है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने अन्दर गीता में कहे गये स्थितप्रज्ञ के गुणों का विकास करें।

तलवार की ताक़त से सत्याग्रह की ताक़त कहीं अधिक है। 'आज़ाद हिन्द फौज' के लोगों से मैंने यह बात कही और उन्होंने खुशी के साथ मुझसे कहा कि वे इस बात को समझ चुके हैं, और अब भविष्य में वे कांग्रेस के झंडे के नीचे अहिंसा के सच्चे सैनिक बनकर हिन्दुस्तान की सेवा करने का प्रयत्न करेंगे। उनकी यह बात सुनकर मुझे भी प्रसन्नता हुई।

––ह० ज०। ह० से०, १४।४।'४६]

- **स्वस्थ चित्त वाला आदमी बच्चे के साथ भी अपना धैर्य नहीं खोता।**
- **तलवार की ताक़त से सत्याग्रह की ताक़त कहीं अधिक है।**

३९. 'आज़ाद हिन्द' फ़ौज को सन्देश

[सरदार रामसिंह रावल ने बापू जी से 'आजाद हिन्द फौज' के लिए उनका सन्देश मांगा था। बापू जी ने उन्हें जो सन्देश दिया, वह 'आजाद हिन्द फौज' ही नहीं समस्त भारतीय सेना के लिए पथप्रदर्शक हो सकता है। यह सन्देश नीचे दिया जा रहा है।––संपा०]

'आज़ाद हिन्द फौज' वालों के लिए दो रास्ते खुले हैं : या तो वे सशस्त्र सैनिक की तरह स्वतन्त्र भारत की सेवा कर सकते हैं, या वे अपने को अहिंसा का सैनिक बना सकते हैं, बशर्ते कि उन्हें इस बात का विश्वास हो गया हो कि अहिंसा का तरीक़ा अधिक ऊंचा और सफल तरीक़ा है। फौज में रहकर उनको जो शिक्षा मिली है और उन्होंने जो अनुशासन सीखा है, उसका उपयोग करके उन्हें जनता को अहिंसक रीति से संगठित करना चाहिए। उनको कातना सीखना चाहिए, और श्रेष्ठ, सुदृढ़ रचनात्मक कार्यकर्ता बन जाना चाहिए। ऐसा करके वे सारे संसार के सामने भव्य उदाहरण उपस्थित करेंगे।

'आज़ाद हिन्द फौज' वालों ने बड़े बल, वीरता और साधन-सम्पन्नता का परिचय दिया है। लेकिन मुझे स्वीकार करना चाहिए कि उनकी सफलताओं ने मुझको चकित नहीं किया। बिना मारे मरने के लिए ऊंचे दर्जे की वीरता की ज़रूरत होती है। मारने में और मारते हुए मरने में कोई विशिष्टता नहीं। लेकिन जो व्यक्ति शत्रु के सामने अपनी गर्दन रख देता है, मगर उसकी बात मानने या उसके सामने झुकने से इन्कार कर देता है वह बहुत उच्च श्रेणी का साहस दिखलाता है।

हमारे सामने बड़े तूफानी दिन आ रहे हैं। हमारी अहिंसा ने हमको स्वतन्त्रता के द्वार तक पहुँचा दिया है। क्या उस दरवाज़े के अन्दर प्रवेश करने के बाद हम उस अहिंसा को छोड़ देंगे ? मेरा अपना यह दृढ़ विश्वास है कि बहादुरों की जिस अहिंसा की मैंने कल्पना की है, उसके द्वारा हम बाहर के आक्रमणों का, अन्दर के उपद्रवों का बहुत ही सफल तरीक़े से पूर्ण एवं सुदृढ़ सामना कर सकते हैं, जैसा कि हमने अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए किया है। अंग्रेज तो अब जाने वाले हैं। संसार के राष्ट्रों में भारत का अपना क्या स्थान होग। ? क्या उसे चीन की तरह पाँचवें दर्जे की ताक़त बनकर सन्तोष होगा ? चीन तो केवल नाम को स्वतन्त्र है। पहिले दर्जे की सैनिक शक्ति बनने के लिए हिन्दुस्तान को अभी बहुत राह देखनी होगी, और इसके लिए उसको पश्चिम की किसी शक्ति का सहारा खोजना होगा--उसके संरक्षण में रहना होगा। लेकिन सच्चे अहिंसक हिन्दुस्तान को किसी भी विदेशी शक्ति से कोई डर न होगा; और न उसे अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश बेड़ों और हवाई फौजों का मुँह ताकना होगा। मैं जानता हूं कि अभी हमारे अन्दर बहादुरों की अहिंसा नहीं आ पाई है।

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, २१।४।'४६]

- **बिना मारे मरने के लिए ऊंचे दर्जे की वीरता की ज़रूरत होती है।**
- **मारने में और मारते हुए मरने में कोई ख़ास विशिष्टता नहीं।**

● जो व्यक्ति शत्रु के सामने अपनी गर्दन रख देता है मगर उसकी बात मानने या उसके सामने झुकने से इन्कार कर देता है, वह बहुत उच्च श्रेणी का साहस दिखलाता है।

● मैं जानता हूं कि अभी हमारे अन्दर बहादुरों की अहिंसा नहीं आ पाई है।

४०. हिंसक और अहिंसक सुरक्षा

[कलकत्ते के दंगे पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए एक सज्जन ने गांधी जी को पत्र लिखा। उनके पत्र का आशय था कि इस दंगे में यदि अहिंसात्मक विरोध अपनाया जाता तो कलकत्ते के समस्त हिन्दू मारे जाते और उनकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती।

इस पत्र का उत्तर देते हुए 'जहर का उतार' शीर्षक लेख में गांधी जी ने आत्म-विश्वास की वाणी में लिखा कि यदि कलकत्ते के समस्त हिन्दू बिना बदला लिये प्राणोत्सर्ग कर देते तो हिन्दू धर्म की ही नहीं सारे भारत की रक्षा हो जाती। उन्होंने इस लेख में प्रासंगिक रूप से अहिंसा पर भी विचार व्यक्त किये, जो उद्धृत किये जा रहे हैं।--संपा०]

आज हालत यह है कि सामान्य प्रजा को आजकल की लड़ाई के नये से नये हथियार चलाने की न तो कोई तालीम मिली है और न ऐसे कोई हथियार ही उसके पास हैं। अतः आपस की मारकाट में किसी को कोई सफलता तो प्राप्त ही नहीं हो सकती। अहिंसा के लिए किसी तरह की बाहरी तालीम जरूरी नहीं होती। उसके लिए एक ही चीज़ की जरूरत है। हमें अपने दिल में यह तय कर लेना चाहिए कि हम बदला लेने के अभिप्राय से भी किसी को नहीं मारेंगे। और बिना बदला लिये हिम्मत के साथ मौत का सामना करेंगे। अहिंसा पर मेरा यह कोई प्रवचन या उपदेश नहीं, बल्कि एक सीधी-सादी समझ की बात है। यही प्राकृतिक जीवन का एक सामान्य नियम है। और हमें इस कानून में अटूट श्रद्धा हो तो बुरी से बुरी खिझलाहट की हालत में भी हम सब्र से काम लेंगे, चुपचाप सब सहेंगे लेकिन बदला लेने की कल्पना तक मन में न लायेंगे। इसे मैंने बहादुरों की अहिंसा कहा है।

अफसोस इस बात का है कि आज हममें किसी बड़े पैमाने पर इस तरह की वीरतापूर्ण अहिंसा पाई नहीं जाती। कुछ लोग तो यहां तक कहते हैं कि ऐसी अहिंसा का पालन तो एक छोटा दल भी नहीं कर सकता, फिर करोड़ों की तो बात ही क्या? वे कहते हैं कि इस तरह की अहिंसा तो बिरले लोग ही दिखा सकते

हैं। अगर अहिंसा ऐसे कुछ ही लोगों के लिए हमेशा सुरक्षित रहे तो कहना होगा कि वह मानव जाति के किसी काम की नहीं।

कुछ भी क्यों न हो, इतनी बात साफ़ है कि यदि आम तौर पर लोग बहादुरों की अहिंसा दिखाने के लिए तैयार नहीं हैं, तो उन्हें अपने बचाव के लिए हिंसा के उपयोग की तैयारी रखनी होगी। इस अहिंसा में किसी तरह की जालसाजी या धोखेबाजी न बरती जानी चाहिए। इसमें केवल अपने बचाव की बात ही सामने रहनी चाहिए। इसमें किसी तरह की कायरता या जंगलीपन नहीं होना चाहिए। इसलिए इसमें कोई गोप्यता या लुकाछिपी न होगी। पीछे से आकर पीठ में छुरा भोंकने या गिरफ़्तारी से बचने के लिए छिपते फिरने की इसमें कोई गुंजाइश नहीं रहेगी। मैं जानता हूं कि हम लोग निहत्थे हैं और हथियार चलाना नहीं जानते। यह अच्छी बात है या नहीं. इसपर विभिन्न रायें हो सकती हैं। किन्तु इससे तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अपने बचाव के लिए मनुष्य को हथियार चलाने की शिक्षा लेना आवश्यक नहीं। इसके लिए तो दृढ़ हाथों और दृढ़ हृदय की ही ज़रूरत होती है।

स्पष्ट है कि दूसरे को चोट पहुँचाने में हिंसा है। लेकिन दिल में दूसरे को चोट पहुँचाने का विचार रखते हुए भी कायरता-वश अपनी या अपने पड़ोसी की रक्षा के लिए तैयार तक न होना तो और भी बुरी हिंसा है।

--ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, ८।९।'४६]

- **अहिंसा के लिए किसी तरह की बाहरी तालीम जरूरी नहीं होती।**
- **यही (अहिंसा) प्राकृतिक जीवन का सामान्य नियम है।**
- **यदि अहिंसा कुछ ही लोगों के लिए सुरक्षित रहे तो कहना होगा कि वह मानव जाति के किसी काम की नहीं है।**
- **दूसरे को चोट पहुँचाने में हिंसा है किन्तु दिल में दूसरे को चोट पहुँचाने का विचार रखते हुए, कायरतावश अपनी या अपने पड़ोसी की रक्षा के लिए तैयार न होना तो और भी बुरी हिंसा है।**

४१. अहिंसा--जीवन का सत्य

[१९४७ ई० में जब हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष की आग चारों ओर भड़क उठी थी, उस समय गांधी जी से निम्नलिखित प्रश्न किये गये थे। गांधी जी के उत्तर के साथ वे प्रकाशित किये जा रहे हैं।--संपा०]

प्रश्न--आपकी अहिंसा की शिक्षा से प्रभावित होनेवाले हिन्दू कदाचित् शीघ्र ही मुस्लिम लीगियों-द्वारा दबा दिये जायंगे; आज लोग सामान्यतः ऐसा अनुभव करने लगे हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि मुसलमानों को छिपे-छिपे बड़े पैमाने पर हथियारबन्द किया जा रहा है।

उत्तर--यह मान लेना खतरनाक है। यदि यह सच है तो प्रान्तीय सरकारों के लिए बड़ी बदनामी की बात है। हर हालत में, मेरी बड़ी इच्छा है कि हिन्दुओं पर मेरी अहिंसा की शिक्षा का प्रभाव पड़े। अहिंसा की शक्ति हथियारों की बड़ी से बड़ी शक्ति से कहीं अधिक है। यदि लोग किसी उपदेशक की शिक्षा की हँसी उड़ायें तो इसके लिए वह ज़िम्मेदार नहीं। क्या हम नहीं जानते कि लापरवाह विद्यार्थी ज्यामिति के दावे साबित करने के लिए कैसी बेसिर-पैर की दलीलें देते हैं? किन्तु क्या इसका दोष शिक्षकों के माथे मढ़ा जाय? मेरे विषय में अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि मैं अहिंसा की शिक्षा देने लायक नहीं हूं। यदि यह ठीक है, तो हम भगवान से प्रार्थना करें कि मेरा वारिस मुझसे बहुत अधिक योग्य और अधिक सफल प्रमाणित हो।

प्रश्न--सम्भव है, हिन्दुस्तान से अंग्रेजों के चले जाने के बाद देश में चारों ओर अन्धेर और अराजकता का बोलबाला हो जाय। यह आशंका है कि यदि राष्ट्रवादियों ने शीघ्र ही बन्दूकों और पिस्तौलों से अपनी रक्षा करना नहीं सीखा तो उन्हें मुसीबत उठानी पड़ेगी। मुस्लिम लीग, जिसके सदस्य केवल लड़ाई में ही विश्वास करते हैं, आखिर उन्हें कुचल देगी। पाकिस्तान बने या न बने किन्तु संकट तो आ ही रहा है, क्योंकि साम्राज्यवादी लोग छिपे तौर से इसमें मदद कर रहे हैं। क्या देश की भावी राजनीतिक अवस्था को ध्यान में रखते हुए आप अहिंसा के सिद्धान्त में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं करेंगे जिससे लोग अपनी रक्षा कर सकें?

उत्तर--जैसा कि आपका ख्याल है, यदि राष्ट्रवादी लोग मुस्लिम लीग से डरते हैं तो वे अपनी वर्तमान प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि के योग्य नहीं हैं। क्या वे मुस्लिम लीगवालों को अपनी सेवा के क्षेत्र से अलग रख सकते हैं? मैं यहां वोट पाने की तरकीबों के बारे में नहीं सोच रहा हूं, मैं तो मुसलमानों को दूसरों की तरह हिन्दुस्तानी ही मानता हूं। राष्ट्रवादियों को उनकी पर्वा करनी चाहिए और उनकी ओर ध्यान देना चाहिए। यदि नेताओं ने अहिंसा में विश्वास करना छोड़ दिया है तो उन्हें साहसपूर्वक साफ-साफ इसे कह देना चाहिए और अपनी ग़लती सुधार लेनी चाहिए। मैं स्वयं तो अपने अहिंसा के सिद्धान्त में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। अहिंसा मेरे लिए एक सिद्धान्त ही नहीं है, वह मेरे जीवन का सत्य बन गई है, जिसका आधार मेरा वर्षों का अनुभव है। जो आदमी

बार-बार मीठे सेब खा चुका है उसे उन्हें कड़ुवा कहने के लिए कैसे राज़ी किया जा सकता है? जो मीठे सेबों को कड़ुवा कहते हैं, उन्होंने सेब नहीं खाये वरं सेब की तरह दिखाई देनेवाले कोई दूसरे फल खाये हैं। अहिंसा को साम्राज्यवादियों के छिपे या खुले कामों से डरना नहीं चाहिए। यहां मैं तर्क के लिए यह मान लेता हूं कि सवाल में सुझाये ढंग पर साम्राज्यवादी अपना काम कर रहे हैं।

--ह० से०, २५।५।'४७]

- अहिंसा की शक्ति हथियारों की बड़ी से बड़ी शक्ति से कहीं अधिक है।
- अहिंसा मेरे लिए एक सिद्धान्त ही नहीं है, वह मेरे जीवन का सत्य बन गई है।

४२. क्या अहिंसा व्यर्थ है?

[गांधी जी पाकिस्तान और हिन्दुस्तान, दो भागों में भारत का विभाजन करने के विरुद्ध थे। उन्होंने कहा था कि पाकिस्तान पाप है और हिन्दुस्तान के टुकड़े करने का मतलब है मेरे टुकड़े करना। किन्तु देश की स्थिति में तीव्र परिवर्तन हो जाने के कारण जब वह इस प्रश्न पर, अन्दर घोर यन्त्रणा सहते हुए भी, मौन हो गये तब बहुतेरे लोग, जो उनसे अखण्ड भारत आन्दोलन के नेतृत्व की अपेक्षा रखते थे, नाराज हो गये। ऐसे भाई उन्हें तरह-तरह के कड़े पत्र लिखते थे; तरह-तरह के प्रश्न पूछते थे। गांधी जी ने ऐसे ही एकाध पत्रों का उत्तर देते हुए प्रकारान्तर से, अहिंसा पर अपने विचार प्रकट किये थे। वे यहां दिये जा रहे हैं।--संपा०]

एक पत्रलेखक ने मुझे लिखा है—

"हिन्दुस्तान में वस्तुतः आज देवासुर-संग्राम चल रहा है। अब दूसरों के लिए जीने और काम करने के आध्यात्मिक सिद्धान्तों का युग नहीं रहा। क्या आपको 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' (जैसे को तैसा) की नीति नहीं अपनानी चाहिए? कम से कम आपको इस बुद्धिमानी भरे वचन में विश्वास रखनेवालों को रोकना या उनके काम में हस्तक्षेप तो नहीं करना चाहिए। यदि बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन ने अपने भाषण में आत्मरक्षा के लिए लोगों से यह कहा कि सबको हाथ में तलवार लेनी चाहिए, सिपाही बनना चाहिए और अपना बचाव स्वयं करना चाहिए तो इससे आपको चोट क्यों लगती है?"

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन मेरे मित्र एवं साथी-कार्यकर्ता हैं। हमने वर्षों साथ-साथ काम किया है। उनके साथ मतभेद होने से मुझे चोट लगती है। किन्तु

इस बात से केवल यही सिद्ध होता है कि मैं एक दुर्बल मानव हूं। यदि मैं पूर्णत: स्थितप्रज्ञ बन गया होता तो खुशी-नाराज़ी, हँसने-रोने से ऊपर उठ जाता। उस दशा तक पहुँचने के लिए मैं संघर्ष तो कर ही रहा हूं।

पत्रलेखक भाई ने मुझे 'जैसे को तैसा' की जो सलाह दी है उसके विषय में मैं पहिले कह चुका हूं। एक भले आदमी को किसी ने बिच्छू को पानी से बाहर निकालने के लिए डाँटा क्योंकि बिच्छू ने उसे (भले आदमी को) डंक मार दिया था। भले आदमी ने नम्रता के साथ किन्तु प्रभावोत्पादक ढंग से जवाब दिया कि बिच्छू ने अपने स्वभाव के अनुसार काम किया। क्या बिच्छू ने डंक मारा, इसलिए मैं अपना दया करने का स्वभाव छोड़कर उसे मार डालूं? मनुष्य स्वभाव से ही सदा दया करनेवाला बनाया गया है। लोगों को जंगली कानून का आचरण करते देखकर भी चुप रहने की जो सलाह मुझे दी गई है उसका मतलब है कि मैं दम्भी बन जाऊँ। निश्चय ही मैंने यह कहा है, और फिर कहूंगा कि कायरता दिखाकर किसी के सामने झुक जाने की अपेक्षा बदला लेना ज्यादा अच्छा है किन्तु इसके साथ ही मैं यह जोड़े बिना नहीं रह सकता कि बदला लेना सच्ची वीरता का लक्षण नहीं है। वह कभी शत्रुता को दबा या कम नहीं कर सकता।

एक पत्रलेखक भाई ने मुझे लिखा है—"आपने कहा था कि हिन्दुस्तान के टुकड़े करने का मतलब होगा मेरे टुकड़े करना। फिर आपने विभाजन की योजना को चुपचाप कैसे मान लिया?" लेखक ने मुझसे यह भी कहा है कि प्रस्तावित विभाजन के विरुद्ध किये जाने वाले आन्दोलन का नेतृत्व करूं। इस व्यंग में जो दोष मुझपर लगाया गया है उसे मैं नहीं मान सकता। जब मैंने हिन्दुस्तान के विभाजन के बारे में ऊपर की बात कही थी, तब मैं जनता की ही राय प्रकट कर रहा था। उस समय जनता स्वयं हिन्दुस्तान के विभाजन के विरुद्ध थी। किन्तु जब जनता की राय मेरे विरुद्ध हो गई तब क्या मैं बलात् उससे अपनी राय मनवाऊँ? लेखक ने यह दलील भी दी है कि मैं मानता आया हूं कि बुराई या असत्य के साथ कोई समझौता नहीं हो सकता। मेरा यह कथन बिल्कुल ठीक है। किन्तु इस सिद्धान्त का सही उपयोग भी तो होना चाहिए। मैं तो यहां तक कहने का साहस करता हूं कि यदि केवल ग़ैर-मुस्लिम हिन्दुस्तान ही मेरा साथ दे तो मैं प्रस्तावित विभाजन को बेकार बनाने का रास्ता बता सकता हूं। किन्तु मैं खुले तौर पर यह स्वीकार करता हूं कि मैं ज़माने की रफ्तार से पिछड़ गया हूं या यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि मैं पिछड़ा हुआ माना जाने लगा हूं। हमने पिछले तीस वर्षों में जो सबक़ सीखा, उसे हम भूल गये हैं। हम यह भूल गये हैं कि असत्य को सत्य से, हिंसा को अहिंसा से, असहिष्णुता को सहिष्णुता से और

गर्मी को सर्दी से जीता जाना चाहिए। आज तो हम अपनी परछाईं से भी डरने लगे हैं। कई लोगों ने मुझे इस योजना के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व करने का निमन्त्रण दिया है किन्तु उनमें और मुझमें विरोध की भावना के सिवा कोई समानता नहीं है। मेरे और उन लोगों के विरोध के मूल में ज़मीन-आसमान का भेद है। क्या प्रेम और घृणा कभी साथ मिल सकते हैं?

—नई दिल्ली से, १५।६।'४७ को भेजे श्री सुशीला नय्यर के अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र से। ह० से०, २२।६।'४७]

- **कायरता दिखाकर किसी के सामने झुक जाने की अपेक्षा बदला लेना ज्यादा अच्छा है।**
- **बदला लेना सच्ची वीरता का लक्षण नहीं है।**
- **हम यह भूल गये हैं कि असत्य को सत्य से, हिंसा को अहिंसा से, असहिष्णुता को सहिष्णुता से और गर्मी को सर्दी से जीता जाना चाहिए।**
- **आज तो हम अपनी परछाईं से भी डरने लगे हैं।**

४३. हिंसा की दुर्गन्ध में अहिंसा की सुगन्ध

प्रश्न है :—

"तू कैसा बेअकल और मूर्ख आदमी है कि तुझे अभी तक तेरी अहिंसा की बदबू नहीं आती। सब कुछ देखते हुए भी अहिंसा के लिए तेरे दिल में घृणा क्यों नहीं होती? न तो अपनी अहिंसा से तू हिन्दू को बचा सकता है, और न मुसलमान को बचा सकता है। तुझे हम जिन्दा रहने देते हैं, सो तेरी अहिंसा के लिए नहीं, बल्कि इसलिए कि तू इस देश की सेवा करते-करते इतना बूढ़ा हो गया है, सो तुझ पर हमें रहम आता है।"

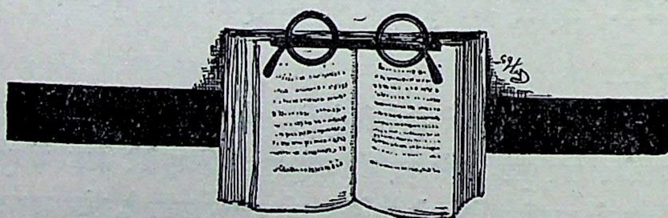
मुझको तो ऐसा लगता है कि मेरे चारों ओर जो खून बह रहा है और जो भीषण हिंसा हो रही है उससे मुझे बदबू आ रही है। उस बदबू को देखते हुए मेरी अहिंसा में से जो खुशबू आती है वह मुझे और अधिक मीठी लग रही है। जो आदमी सदा अमृत-ही-अमृत पीता हो उसको अमृत उतना मीठा नहीं लगता, जितनी ज़हर का प्याला पीने के बाद अमृत की दो बूंदें भी मीठी लगती हैं।

सदा मुझको अपनी अहिंसा की खुशबू नहीं आती थी, 'क्योंकि तब मेरे चारों ओर का वातावरण अहिंसामय था। किन्तु आज जब मुझको हिंसा की बदबू आती है तो उस बदबू को मिटाने वाली चीज़ मेरे पास अहिंसा ही है।...मैं तो 'सर्व-धर्म एक समान' का माननेवाला हूं। इसलिए अहिंसा के लिए मेरे दिल में

घृणा हो नहीं सकती और न मुझको हिंसा में खुशबू ही आनेवाली है। मैं मर जाऊं तब भी नहीं आनेवाली है। उस अहिंसा की खुशबू यदि मैं आप लोगों को भी दिला दूं तो मेरा काम पूरा हो जाता है। अहिंसा से बदबू कभी आ ही नहीं सकती, क्योंकि उसमें खुशबू ही भरी पड़ी है।

—नई दिल्ली २६।६।'४७। प्रार्थना-सभा के प्रवचन से।]

- **अहिंसा से बदबू कभी आ ही नहीं सकती, क्योंकि उसमें खुशबू ही भरी पड़ी है।**



[६]

अहिंसा : विविध

१. मुसलमान और अहिंसा

मेरी समझ से मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं मुसलमानों से उससे अधिक सदिच्छा की आशा करूं, जितनी मेरे अन्दर है। किन्तु मैं इतना भली प्रकार जानता हूं कि मेरे अहिंसा-सिद्धान्त में उनका विश्वास दृढ़ नहीं है। उनका कथन है कि अहिंसा दुर्बलों का अस्त्र है और इसका प्रयोग केवल सुविधा के लिए किया जा सकता है। उनका कहना है कि यदि इस समय वे कोई खुली कार्रवाई करना चाहें तो उनके लिए केवल अहिंसात्मक असहयोग का मार्ग खुला है। मैं जानता हूं कि मुसलमानों में कुछ लोग ऐसे हैं कि यदि सफलता की पूर्ण आशा हो तो, वे हिंसा के लिए तुरत तैयार हो सकते हैं। किन्तु उन्हें इस बात का दृढ़ विश्वास हो गया है कि हिंसा से हम लोगों की विजय नहीं हो सकती। इसलिए अहिंसा उनके लिए केवल कर्तव्य ही नहीं अपितु प्रतिशोध का साधन भी है।...

—यं० इं०, २।६।'२०]

२. अहिंसा शुभ है!

...कार्य सिद्ध हो या न हो तो भी हमें अहिंसक ही रहना चाहिए। यह सिद्धान्त को प्राकृत रूप से बताने का तरीका है। ठीक कहना यह है कि अहिंसा का फल शुभ ही है। ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।...

—श्री घनश्यामदास बिड़ला को लिखे गये पत्र से। २०।६।'२४]

३. हिन्दुस्तान का अर्थ

मैं हिन्दुस्तान को बड़े अभिमान के साथ अपनी जन्मभूमि मानता हूं किन्तु मेरा अभिमान न जाने कहां चला जायगा यदि हिन्दुस्तान हिंसा-मार्ग को स्वीकार कर लेता है। हिन्दुस्तान अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल के समुद्र से घिरा तथा हिमालय का मुकुट पहिननेवाला हिन्दुस्तान ही नहीं है, हिन्दुस्तान का अर्थ है सदियों से अहिंसा-सिद्धान्त का उच्च घोष और उपदेश करनेवाला देश। इसलिए अहिंसा के बिना उसके उद्धार की कल्पना मुझे हो ही नहीं सकती।

—नवम्बर १९२४ के कलकत्ता-प्रवास में एक अंग्रेज भाई से बातचीत करते हुए। न० जी०। हि० न० जी०, २३।११।'२४]

४. अहिंसा का संकेत

अहिंसा के क्षेत्र में मैं ज्यों-ज्यों गहरा पैठता हूं त्यों-त्यों नित्य नवीन प्रदेश दिखाई पड़ते जाते हैं, नवीन प्रकाश मिलता जाता है। इसलिए मैं सब अपरिवर्तन-वादियों से हर समय किस तरह परामर्श कर सकता हूं। उन्हें अहिंसा प्रिय है; वे अहिंसा-सिद्धान्त के पूजक हैं। इसलिए मुझे सदा यह आशा रहा करती है कि वे मेरे अहिंसाधर्म को तथा उसके अन्तर्गत मुझे नित्य नई मिलने वाली बातों को संकेत से समझ जायँगे।

—मूल गुजराती। न० जी०। हि० न० जी०, ३०।११।'२४]

५. मेरा स्वप्न

मेरी धारणा के अनुसार हिन्दुस्तान को पश्चिम को अहिंसा धर्म सिखाना है। यदि भारतवर्ष यह न कर सके तो अपनी जन्मभूमि के रूप में उसका अभिमान मुझे न रहेगा। हो सकता है कि यह मेरा एक स्वप्न-भर हो, किन्तु इस स्वप्न को बहुत समय से मैं अपने हृदय में स्थान दे रहा हूं। यहां अनेक युगों से अहिंसा-धर्म की शिक्षा मिली है। यहां की आबोहवा इस धर्म के अनुकूल है, आम तौर से रग-रग में व्याप्त है।

—न० जी०। हि० न० जी०, १४।१२।'२४ महादेव भाई के लेख से।]

६. अहिंसा और शस्त्रधारण

अहिंसा का दृढ़ विश्वासी होने पर भी मेरी यह पक्की धारणा है कि शस्त्र-धारण के इच्छुक प्रत्येक भारतीय को इसका अधिकार है।

—यं० इं०, मूल अंग्रेजी से। हि० न० जी०। 'सत्याग्रह की सीमाएं' लेख का अंश। १४।७।'२७]

७. अहिंसा की दृष्टि में आत्म-हनन

...आत्महत्या करने वाले संसार की झूठी चिन्ता करने वाले या दुनिया से अपने दोष छिपाने वाले होते हैं। हम जो नहीं हैं, वह दीखने का ढोंग कभी न करें; जो न हो सके उसे करने के मनोरथ न करें।

—आश्रम की बहिनों को लिखे गये पत्र से। १।८।'२७]

८. अहिंसा में श्रद्धा

जैसे कातने वाले को विश्वास होता है कि अकेले उसका सूत कितना ही कम क्यों न हो, सबका सूत मिलाकर हम सारे हिन्दुस्तान को कपड़े पहना सकते हैं, उसी प्रकार हमें अपार श्रद्धा होनी चाहिए कि सत्य और अहिंसा के सामने सभी बाधायें टूटेंगी ही।

--न० जी०। हि० न० जी, २९।९।'२७]

९. हिन्दू धर्म और अहिंसा

अहिंसा सभी धर्मों में है किन्तु हिन्दू धर्म में इसका सबसे अधिक विकास और प्रयोग हुआ है। (मैं जैन एवं बौद्ध धर्मों को हिन्दू धर्म से अलग नहीं गिनता।)

--यं० इं०। हि० न० जी० २७।१०।'२७]

१०. शिक्षा में दण्ड और अहिंसा

सामान्यतः सजा अहिंसा के साथ मेल नहीं खाती। मैं ऐसे उदाहरण दे सकता हूं कि अमुक दशा में सज़ा सज़ा नहीं मानी जायगी। परन्तु ये उदाहरण शिक्षकों के लिए अनुपयोगी हैं। जैसे कोई पिता अत्यन्त दुखी हुआ हो और दुःख में पुत्र को सज़ा दे दे। यह प्रेम की सजा है। पुत्र भी उसे हिंसा नहीं मान सकता। अथवा सन्निपात में बकवादी रोगी को कभी-कभी सुश्रूषा करने वाले एकाध चाँटा लगा देते हैं। इसमें हिंसा नहीं, अहिंसा है। किन्तु ये दृष्टान्त शिक्षक के लिए निरुपयोगी हैं। उनके लिए विद्यार्थियों को बिना मारे पढ़ाने और नियम के अन्तर्गत रखने की कला सीखना आवश्यक है।

--न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, २५।१०।'२८]

११. शराबबन्दी और अहिंसा

[एक नब्बेवर्षीय वयोवृद्ध अंग्रेज श्री पेनिगटन ने 'यंग इंडिया' में पत्र लिखकर चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य की शराबबन्दी-योजना की आलोचना की। उनकी राय थी कि शराबबन्दी या कोई भी सामाजिक दूषण बलात् दूर नहीं किया जा सकता। विशेषकर अहिंसा के समर्थक को किसी भी योजना में जोर-जबर्दस्ती

से काम नहीं लेना चाहिए। इस प्रकार अहिंसात्मक शराबबन्दी परस्पर-विरोधी कथन सिद्ध होता है।

गांधी जी ने इस पत्र का जो उत्तर दिया उसके आवश्यक अंश यहां दिये जा रहे हैं।—संपा०]

मैं यह मानने को तैयार नहीं कि शराबबन्दी सदा बलात्कार ही होती है। अपने बड़े लड़के को पथभ्रष्ट होने से रोकना मैं अपना धर्म समझता हूं। लेकिन अगर वह मेरी बात न माने तो मैं उसे सज़ा नहीं देता, उल्टे स्वयं उपवास करता हूं या और किसी तरह का कष्ट सहन कर लेता हूं। इस तरह मैं मि० पेनिंगटन की व्याख्यानुसार हिंसा नहीं करता क्योंकि मैं पशुबल का नहीं प्रेमबल का उपयोग करता हूं।

मैं स्वीकार करता हूं कि श्री राजगोपालाचार्य जिस प्रकार की शराबबन्दी के लिए कोशिश कर रहे हैं उसमें दण्ड है। . . . फिर भी मैं उसका समर्थन करता हूं। . . . मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि मेरी अहिंसा अभी बहुत आरम्भिक है, अपूर्ण है। उसमें अनेक बार विरोधाभास भी उपस्थित हो जाता है। . . . मेरी अपनी अपूर्णता के कारण और अहिंसाशास्त्र पर पूरा प्रभुत्व न होने के कारण आज मैं परिमित रूप में उस दण्डनीति को सहन कर लेता हूं। . . . फिर भी मैं एक ऐसे युग की आराधना अवश्य ही कर रहा हूं जब हम ये काम भी प्रेमपूर्वक करवा सकेंगे।

—यं० इं०। मूल अंग्रेजी। हि० न० जी०, १९।९।'२९]

१२. अहिंसक सैनिक के गुण

हिंसक सिपाही में जिस शक्ति की आवश्यकता है उसमें से हिंसा का भाग छोड़कर शेष सब शक्ति अहिंसक सिपाही के लिए भी आवश्यक है। किन्तु अहिंसक सिपाही में हिंसक सिपाही की अपेक्षा अन्य बहुतेरे गुणों की भी आवश्यकता होती है।

—'स्वयंसेवक का कर्त्तव्य' शीर्षक लेख से। हि० न० जी, १७।१०।'२९]

१३. भारत के लिए अहिंसा ही श्रेष्ठ है

दुनिया के और हिस्सों के लिए चाहे जो हो भारतवर्ष के लिए तो अहिंसा का मार्ग ही छोटे से छोटा है। . . .

—हि० न० जी०, २३।१।'३०]

१४. अहिंसक शिक्षा

...अब तो यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मारने से बच्चे नहीं सुधरते। मैं जानता हूं कि जिसे मारकर पढ़ाने की आदत पड़ गई हो उसे यह आदत छोड़ना मुश्किल लगता है। लेकिन यह तो बन्दूकधारी सिपाही के अनुभव-जैसा हुआ। वह तो यही मानेगा कि गोली के बिना दुनिया का काम चल ही नहीं सकता। चलता है, यह सिद्ध करने का काम हमारा है। इसी तरह बच्चों के बारे में समझना चाहिए।

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। ३०।११।'३०]

१५. शिक्षा का अहिंसक विवेचन

[कुमारी प्रेमा कंटक ने गांधी जी को लिखे गये पत्र में सनातन तर्क दुहराया कि बच्चों की शिक्षा-हेतु शारीरिक दण्ड आवश्यक है। गांधी जी ने इसके उत्तर में जो पत्र लिखा उसके आवश्यक अंश संकलित हैं।—संपा०]

...तेरी दलील पुरानी है। यह दूषित चक्र है। तुझे मार पड़ी जिससे तू सुधरी इसलिए दूसरों को सुधारने के लिए तू उन्हें मारती है। बच्चे भी बड़े होने पर यही सीखेंगे। बिल्कुल इसी दलील से लोग हिंसा को मानते हैं। इस झूठे अनुभव के उस पार जाना हमारा काम है। इसके लिए अनुभव चाहिए, यह मैं स्वीकार करता हूं। यह धीरज पैदा करने और इसे बढ़ाने के लिए हम इकट्ठे हुए हैं। बच्चों को पढ़ाना या अनुशासन सिखाना ही हमारा ध्येय नहीं है। उन्हें चरित्रवान बनाने में अनुशासन टूटे, पढ़ाई बिगड़े तो भले ही टूटे और बिगड़े।..

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। १४।१२।'३०]

१६. हिंसक और अहिंसक सैनिक

मैंने हिंसक और अहिंसक सेना के मध्य भेद कर दिया है। इनके अनुशासन में भी अन्तर होगा। हिंसात्मक सेना का सिपाही युद्धकाल में अनुशासन का दास बनता है किन्तु युद्ध से छूटते ही वह उच्छृंखलता का दास बन जाता है।

किन्तु अहिंसक सैनिक अपने हृदय में अनुशासन रखता है। वह जीवन के प्रत्येक पग पर संयम का वातावरण रखेगा। अहिंसा एक ट्रस्ट है, जिसकी रक्षा सेवादल को उत्साह के साथ करनी चाहिए। आपके सैनिक केवल समाजों में ही

अनुशासन न रखेंगे बल्कि घरों में और गार्हस्थिक समस्याओं में भी इसकी रक्षा करेंगे। एक अहिंसक सैनिक सर्वदा सभी स्थान पर अहिंसक रहेगा।
—यं० इं०। हि० न० जी०, १३।८।'३१]

- अहिंसा एक ट्रस्ट है।
- एक अहिंसक सैनिक सर्वदा सभी स्थान पर अहिंसक रहेगा।

१७. अहिंसक और स्पष्टीकरण

जो अहिंसा में पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं, उनके लिए तो सफाई (स्पष्टीकरण) देना एक असम्भव बात है। उनके लिए तो सफाई न देना ही अपनी सबसे अच्छी सफाई है।
—यं० इं०। हि० न० जी०, १३।८।'३१]

१८. बालकों को अहिंसा का उपदेश

...तुम्हारे मीठे पत्र और मज़ेदार चित्र देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मैं तुम सबको एक ही पत्र लिखूं तो कोई हर्ज तो नहीं? तुम्हारे शरीर अलग-अलग हैं, पर मन से तो तुम सब एक ही हो। यह बात सच है कि तुम्हारे-जैसे छोटे बच्चे ही युद्ध को एकदम बन्द कर सकेंगे। इसका अर्थ यह है कि तुम्हें परस्पर या अन्य बच्चों से तो कदापि न लड़ना चाहिए। तुम आपस की छोटी-छोटी लड़ाइयां बन्द न कर सको, तो बड़ी लड़ाइयां कैसे बन्द कर सकोगे?...
—यरवदा जेल २४।८।'३२, महादेव भाई की डायरी भाग १ पृष्ठ ३७७।]

१९. अहिंसा और शस्त्र-शिक्षा

लाठी वगैरह के शिक्षण से अहिंसा की वृत्ति मन्द पड़ जाने की सम्भावना तो अवश्य है। लाठी रक्षा के लिए सिखाई जाती है न? परन्तु जो सिखाना चाहता है उसे लाठी का उपयोग न सिखाने का नियम बनाने की इच्छा नहीं होती।
—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। १८।४।'३५]

२०. अहिंसा की दृष्टि में साम्यवाद

...रूस के दृष्टान्त का नमूने के तौर पर उपयोग करने में खतरा है। एक तो यह कि हमें उसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है; दूसरे, यह कि उसे बहुत समय नहीं हुआ है; तीसरा यह कि वहां जो कुछ होता है वह जबरन कराया जाता है। इसलिए हम रूस को अलग रखकर सोचें। हमारे बीच इतना करना अनिवार्य है। हिंसा के द्वारा न तो कुछ करना चाहिए, न कराना चाहिए। अर्थात् धनिकों से न्याय प्राप्त करने का आसान से आसान उपाय यह है कि वे अपने प्राप्त किये हुए धन का अच्छे से अच्छा उपयोग करें। उससे यह परिणाम निकल सकता है कि ऐसा करते हुए वे बहुत धन उपार्जन करने का लालच ही छोड़ दें। यह परिणाम निकले तो कोई हानि नहीं। न निकले तो भी ठीक ही है। उलटे इतना धन सम्हालकर रखने की झंझट किये बिना उसका लाभ मिल जाता है। और यदि बहुत-से धनिक ट्रस्टी बन जायं तो हमारे लिए कहने को कुछ रह ही नहीं जाता। तेरी दलील की तह में यह शंका भरी हुई है कि धनिक कभी अपने सम्पत्ति के ट्रस्टी नहीं बनेंगे। यह शंका सच हो तो चिन्ता नहीं क्योंकि अन्त में तो सत्य की विजय है ही। जो अपनी ज़रूरत से ज्यादा सम्पत्ति रखते हैं वे चोरी करते हैं। और चोरी का धन कच्चा पारा है। वह पच नहीं सकता। अन्त में वह चोर का नहीं रहेगा, यह विश्वास रखकर हम तो अहिंसक उपाय ही करते रहें।...

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। १३।८।'३५]

२१. आततायी और अहिंसा

आततायी को मारने की बात मुझे पसन्द नहीं। आततायी किसे माना जाय? हत्यारे वगैरह को जेल में डालना पड़ेगा, इसे फिलहाल तो मैं मानता हूं। परन्तु यह अहिंसा है, ऐसा कभी कहने का मुझे स्मरण नहीं है। मेरी यह मान्यता तो है ही नहीं। मैंने कहा है कि आज की परिस्थिति में यह अनिवार्य हो सकता है। इसका अर्थ इतना ही है कि मेरी अहिंसा अभी बहुत अपूर्ण है, इसलिए ऐसी हिंसा का उपाय मुझे नहीं मिला है। पतन को पतन के रूप में देखने में ही सत्य है।

अहिंसा के बिना प्राप्त की हुई सत्ता में दरिद्र-नारायण का स्वराज्य हो ही नहीं सकता। स्वराज्य-प्राप्ति में जिस हद तक अहिंसा होगी उसी हद तक दरिद्रों की दरिद्रता मिटेगी। पूर्ण अहिंसा तो न मुझ में है, न मुझ में या और किसी में।

परन्तु अहिंसा को माननेवाले रोज अधिक अहिंसक बनेंगे और इससे उनका सेवा-क्षेत्र बढ़ता जायगा। हिंसा के पुजारी का क्षेत्र संकुचित होता जायगा और अन्त में अपने तक ही सीमित रह जायगा।...

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। १०।९।'३५]

२२. अहिंसा : एक कला

...कायर कतवैया सूत में पड़ी हुई गाँठ को चाकू से निकालेगा। कुशल कतवैया धीरज और कला से गाँठ खोलेगा और सूत को अविच्छिन्न रखेगा। अहिंसक मनुष्य असाध्य मानी जाने वाली व्याधि से पीड़ित लोगों के लिए ऐसा ही कुछ उपाय करेगा।...

—कुमारी प्रेमा कंटक के नाम लिखे गये पत्र से। २८।९।'३५]

२३. विदेशी आदर्शों का आवरण निकाल फेंकिए

हर हिटलर तलवार के बल अपना उद्देश्य पूरा कर रहा है; मैं आत्मा के द्वारा पूरा करना चाहता हूं। विदेशी विचारों और आदर्शों का आवरण निकाल फेंकिए। अपने को ग्रामीणों में मिला दीजिए। पाश्चात्य जगत् विनाशक शिक्षा दे रहा है। हमें अहिंसा-द्वारा रचनात्मक शिक्षा देनी है।

—ह० से० ३०।४।'३८। विद्यामन्दिर ट्रेनिंग स्कूल वर्धा में गांधी-जी द्वारा दिये गये भाषण का अंश।]

२४. शस्त्र-प्रेमियों को अहिंसा का उपदेश

[सीमाप्रान्त-यात्रा के दौरान स्वाभिमानी एवं वीर पठानों ने गांधी जी का आत्मीयतापूर्ण स्वागत किया। इस प्रान्त के कोने-कोने से उनकी अहिंसा के लिए आदर एवं सहमति के स्वर मुखरित हो उठे।

गांधी जी ने शस्त्र-प्रेमी पठानों का अहिंसा के प्रति झुकाव देखकर चारसद्दा गांव की सभा में एक महत्वपूर्ण भाषण दिया। उसके आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।—संपा०]

जिनके बारे में इतना सब सुन रहा था, उनका परिचय पाने की मेरी वास्तविक इच्छा थी। खुदाई खिदमतगार किस प्रकार रहते हैं और कैसे काम करते हैं, यह सब मुझे स्वयं अपनी आंखों से देखना था।

आपने जान-बूझकर ऐसा नाम पसन्द किया, जिसमें बहुत बड़ा रहस्य छिपा है। आप मुल्क के खिदमतगार अथवा पठानों या इस्लाम के खिदमतगार जैसा कोई नाम धारण कर सकते थे। किन्तु आपने तो खुदाई खिदमतगार अर्थात् ईश्वर का सेवक, मनुष्य जाति का सेवक, नाम धारण किया है। मानव जाति में तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पंजाबी, गुजराती और भारत के किसी भी भाग के निवासियों का समावेश हो जाता है।

आपने यह बहुत बड़ा नाम धारण किया है। इसका अर्थ है कि आपने अहिंसा को स्वीकार किया है। खुदा का नाम रखकर आदमी तलवार से संसार की सेवा किस प्रकार कर सकता है? यह सेवा उसी शक्ति द्वारा हो सकती है जिसे खुदा ने हमें प्रदान किया है और जो संसार की किसी भी शक्ति से बढ़कर है। यदि आप यह बात नहीं समझते तो विश्वास मानिए, संसार खान साहब को और मुझको घमण्डी तथा दम्भी कहकर हमारी हँसी उड़ायेगा।

बहुतों ने मुझे आपके विरुद्ध चेतावनी दी है। किन्तु यदि आप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हैं, तो उनकी चेतावनी की कोई परवाह नहीं। याद रखिए कि सारे भारत में जितने स्वयंसेवक हैं उन सबसे आपकी संख्या अधिक है। भारत के किसी भी भाग के स्वयंसेवकों की अपेक्षा आपके अन्दर अनुशासन अधिक है। यदि इस अनुशासन का मूल अहिंसा न हो तो यह असीम रूप से हानिकारक हो जायगा।

अन्त में मैं आपसे अनुरोध करूंगा कि सरहद के पठान केवल भारत को ही स्वतन्त्र न करें। वे अहिंसा-द्वारा भारत को स्वतन्त्र बनाकर समस्त संसार को उसका बहुमूल्य पाठ पढ़ायें।

आपने मुझसे जो बात कही है, वह यदि गम्भीर प्रतिज्ञा के रूप में है और आप इस प्रतिज्ञा का पालन कर सकते हैं, तो विश्वास रखिए कि हमें भारत की स्वतन्त्रता ही नहीं, उससे कुछ अधिक मिलेगा। जब हम अहिंसा के लिए वाञ्छित संख्या में बलिदान करने को प्रस्तुत हो जायंगे, तो हम युरोप के संहार-हेतु तत्पर संग्राम-रूपी असुर के पंजे से छूट पायेंगे।

आप प्रत्येक कार्य खुदा के नाम पर करने की बात करते हैं। स्वयं को खुदाई खिदमतगार कहते हैं। तलवार का त्याग करने का दावा करते हैं। इतना होने पर भी यदि आपने हृदय से तलवार और खंजर का त्याग न किया तो हमारी बद-नामी हुए बिना न रहेगी; और खुदाई खिदमतगार नाम का प्रयोग आदमी को धोखा देने के लिए होगा।

मैंने आज दोपहर को जो बात सुनी, उससे मुझे गहरी चोट पहुँची है। उसकी

मूर्च्छा अब भी दूर नहीं हुई। मदार के सिखों ने मुझसे कहा कि वहां दिनदहाड़े तीन हत्याएं हुई हैं। मुझे प्राप्त सूचना के अनुसार हत्यारों के क्रुद्ध होने का कोई कारण न था। हत्यारे दिनदहाड़े हत्या करके भाग गये और किसी ने उन्हें पकड़ने का प्रयत्न न किया। विचारणीय बात है कि आप लोग जब अहिंसा की बात कर रहे हैं, तब ऐसा कैसे हो सकता है? इस गांव में खुदाई खिदमतगार और अहिंसा को जीवन-सिद्धान्त मानने वाले अन्य लोग थे। इनका कर्तव्य था कि वे अपराधियों को पकड़ लेते। भविष्य में ऐसा काम न होने देना उनका कर्तव्य है।

आपका कर्तव्य है कि मृतकों के सम्बन्धियों से मिलकर उनसे मित्रता करें। उन्हें विश्वास दिलायें कि उनके साथ आपकी सहानुभूति है और आप उनकी सहायता करेंगे। जब तक हमारे बीच ऐसी घटनाएं घटती रहेंगी, तब तक लोगों को हमारी अहिंसा के विषय में सन्देह ही रहेगा।

—ह० से०, २८।५।'३८]

- **खुदा का नाम रखकर आदमी तलवार से संसार की सेवा किस प्रकार कर सकता है?**
- **अनुशासन का मूल अहिंसा न हो तो यह असीम रूप से हानिकारक हो जायगा।**

२५. अहिंसा--राजनीति अथवा जीवनधर्म ?

[जयपुर में प्रजामण्डल का अधिवेशन आयोजित किया गया। इसके अध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाज थे। गांधी जी ने इस अधिवेशन के लिए जो सन्देश भेजा उसमें अहिंसा की महत्वपूर्ण व्याख्या निहित है। उसके आवश्यक अंश यहां दिये जा रहे हैं।--संपा०]

आज हमारे देश में जो घटनाएं घट रही हैं उनके अध्ययन का इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति देख सकता है कि यदि हम केवल शान्ति और अहिंसाधर्म के मन्त्र का साक्षात्कार कर लें तो जिस वस्तु को हम चाहते हैं उसे प्राप्त कर सकते हैं। अशान्ति से शान्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती। यह प्रयत्न तो बालू से तेल निकालने अथवा पानी बिलोने के समान है।

---

१. गांधी जी के आगमन से कुछ दिनों पूर्व मदार के तीन पठान युवकों ने तीन सिखों की हत्या कर दी थी। मृतकों में से एक ग्यारह वर्ष का बालक, दूसरा अस्सीवर्षीय वृद्ध और तीसरा पचीस वर्ष का युवक था।--संपा०।

मैं इस प्रश्न पर जितना ही अधिक विचार करता हूं उतना ही मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य इस मूलगत वस्तु को भली-भांति समझ लेना है। एक दिन ऐसा था, जब मैं इस विश्वास को सँजोकर फूला नहीं समाता था कि इस पाठ को सिखाने की कुंजी मेरे हाथ आ गई है। आज मेरा मन इस विषय में शंकित हो गया है। मुझे स्वयं पर विश्वास नहीं होता कि मुझमें सच्ची शान्ति अथवा अहिंसा का साक्षात्कार करने योग्य आत्मशुद्धि है। ऐसी मनःस्थिति में मुझे अन्य किसी वस्तु का विचार नहीं आता; अन्य किसी विषय पर बातचीत करने का मन नहीं होता।

किन्तु मेरी स्थिति चाहे जो हो, मुझे इस विषय में तो कोई शंका नहीं है कि अहिंसा के बिना स्वराज्य असाध्य है। जिसे हम रचनात्मक कार्य कहते हैं वह अहिंसा के बिना सम्भव नहीं। रचनात्मक कार्य अहिंसा का एक सौम्य अंग है। किन्तु अहिंसा की सच्ची कसौटी तो अपने उठाये हुए कार्य को करते हुए, कोई नैतिक अपराध किये बिना, निर्दोष रीति से हँसते हुए मृत्यु को आलिंगन देने की शक्ति प्राप्त करने में है। प्रश्न यह है कि उपर्युक्त शक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, मैं चाहता हूं कि आप इसपर विचार करें।

-- ह० से०, ११।६।'३८]

- **अशान्ति से शान्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती।**
- **अहिंसा के बिना स्वराज्य अशक्य है।**
- **रचनात्मक कार्य अहिंसा के बिना सम्भव नहीं।**
- **रचनात्मक कार्य अहिंसा का एक सौम्य अंग है।**

२६. अहिंसा : श्रमिकों की एकमात्र सुरक्षा

[विश्वविद्यालय से उपाधिप्राप्त विद्यार्थियों के दल ने श्रमिकों के बीच काम करने का निश्चय किया। वह अहमदाबाद में श्रमिक-संगठन का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त कर लौटते समय गांधी जी से मिला। गांधी जी ने उस दल से वार्ता करते हुए बतलाया कि दक्षिण अफ्रीका में वह मजदूरों के सम्पर्क में आये। उन्होंने साठ हजार मजदूरों को अहिंसा का उपदेश कर उन्हें सत्याग्रह के लिए प्रस्तुत किया। उन्होंने चम्पारन और अहमदाबाद के श्रमिकों की सफलता के भी उदाहरण दिये, और इसके मूल में निहित अहिंसा का मर्म समझाया। इस वार्ता के आवश्यक अंश संकलित किये जाते हैं।—संपा०]

अहिंसा के अनुशासन के बिना वे[1] परस्पर-घातक झगड़े में फँसे रहते और अपने अन्दर कभी वह शक्ति बढ़ाने को प्रस्तुत न होते, जो उन्हें उनके आन्तरिक सामर्थ्य का अनुभव कराने के लिए आवश्यक होती है। अहिसा के मूल सिद्धान्त को स्वीकार करने के पश्चात् व्यवस्था-कौशल, संगठन और प्रत्येक अन्य गुण स्वयं ही आ जायंगे। इसके साथ ही श्रेणीबद्ध होकर कार्य करने की वृत्ति भी स्वभावतः ही उत्पन्न हो जायगी।

संख्या में पर्याप्त सबल होने पर भी वे अपने को नितान्त पराजित समझते हैं, मालिकों की दया पर निर्भर करते हैं। इसका कारण यह है कि वे स्वयं अपनी स्वाभाविक शक्ति से अपरिचित हैं। अन्यथा क्या कारण है जो उनको अपने निज के साधनों को काम में लाने और जैसा कि मालिक उस समय करते हैं, उन्हें अपनी शर्तें मनवाने से रोक सकें? उन्हें जिस बात का अनुभव करना है वह यही है कि श्रम भी उसी प्रकार एक पूंजी है, जिस प्रकार धातु के सिक्के। यह अनुभूति केवल अहिंसा को स्वीकार करने से ही हो सकती है।

किन्तु यह अनुभूति होने और श्रमिकों के स्वयं को समझ लेने के बाद भी अहिंसा निरर्थक नहीं हो जाती। यदि वे अहिंसा को छोड़ बैठेंगे, तो स्वयं शोषक बन जायंगे। अपनी शक्ति की अनुभूति के साथ-साथ अहिंसा का पालन उन्हें पूंजी के साथ सहयोग करने और उसका उचित उपयोग करने के योग्य बना देगा। तब वे उसको परस्पर-विरोधी हित नहीं समझेंगे। वे मिल और मशीनरी को शोषक एजेण्टों की मिलकियत एवं अपने को कुचलने वाली नहीं बल्कि अपने स्वयं के उत्पादन के साधन समझेंगे और अपनी मिलकियत की भांति उनकी सुरक्षा रखेंगे। तब वे समय की चोरी और काम में कमी नहीं करेंगे, बल्कि शक्ति भर अधिक से अधिक काम करेंगे। वास्तव में पूंजीपति और श्रमिक दोनों ही ट्रस्टी होंगे। परस्पर ट्रस्टीपन का सिद्धान्त एकपक्षी या एकतर्फा नहीं है और किसी तरह भी ट्रस्टी की उच्चता प्रतिपादित नहीं करता। वह तो, जैसा कि मैंने बतलाया, सर्वथा पारस्परिक मामला है। इसमें प्रत्येक यह मानता है कि स्वयं उसके हित की रक्षा दूसरे की हितरक्षा करने में है।

भगवद्गीता[2] कहती है--देवताओं की सेवा करके तुम उन्हें प्रसन्न रखो तो वे तुम्हें प्रसन्न रखेंगे और तुम इस पारस्परिक सेवा से अपना सर्वोच्च हित-साधन

---

१. अर्थात् श्रमिक।

२. देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ गीता अ० ३।११॥

कर सकोगे। संसार में देवता नामक कोई भिन्न सत्ता नहीं है, बल्कि वे सब, जो उत्पादन शक्ति और समाज के लिए कार्य करने के इच्छुक हैं और उसको कार्य-रूप में परिणत कर भी रहे हैं, देवता हैं। फिर भले ही वे श्रमिक हों या पूंजीपति।
—ह० से०, २५।६।'३८]

- यदि वे अहिंसा को छोड़ बैठेंगे तो स्वयं शोषक बन जायंगे।
- श्रम भी उसी प्रकार एक पूँजी है, जिस प्रकार धातु के सिक्के।

२७. प्रवासी भारतीयों की अहिंसा

[बर्मा में किसी बौद्ध ने एक पुस्तिका लिखकर इस्लाम की निन्दा की। इसके उत्तर में इस्लाम कबूल करने वाले एक बर्मी बौद्ध ने बौद्धधर्म पर आक्षेप करते हुए पुस्तिका प्रकाशित कराई। इसका परिणाम साम्प्रदायिक दंगे के रूप में सामने आया और रंगून तथा अन्य स्थानों में भारतीयों पर अत्याचार किये गये।

दंगे के सम्बन्ध में गांधी जी को तार देकर एक सज्जन ने सूचित किया कि भारतीय बुरी तरह घबराये हुए हैं। उन्होंने गांधी जी की अहिंसा का मार्ग ग्रहण किया और भयंकर कष्ट उठाये। गांधी जी ने इस अनुरोध के उत्तर में 'बर्मा का दंगा' शीर्षक से जो लेख लिखा, उसके आवश्यक अंश संकलित हैं। —संपा०]

सम्वाददाता के तार के अनुसार यदि भारतीयों ने मेरी अहिंसा का मार्ग ग्रहण किया, तो मैं यही कह सकता हूं कि उन्हें इसके कारण कम ही मुसीबतों का सामना करना पड़ा। यदि उन्होंने हिंसा का मार्ग ग्रहण किया होता, तो उन्हें इससे कहीं अधिक कष्ट झेलने पड़ते। अहिंसा-शक्ति की तो कोई सीमा ही नहीं। यदि यह ज्ञात हो कि औषधि ने किसी निश्चित मात्रा में काम नहीं किया, तो उसे और अधिक देना चाहिए। अहिंसा एक ऐसी औषधि है, जो कभी विफल नहीं होती।

किन्तु इसे मेरी अहिंसा क्यों कहा जाय? कदाचित् इस तार में मुझे मीठी-सी झिड़की दी गई है कि बतलाई हुई दवा ने काम नहीं किया। उचित प्रश्न यह है कि क्या उनको (बर्मी भारतीयों को) विश्वास था कि हिंसा के विरुद्ध अहिंसा ही अमोघ उपचार है? अथवा अहिंसा का मार्ग इसलिए ग्रहण किया गया कि अन्य कोई मार्ग ही नहीं था?

...यदि हम अखबारों में प्रकाशित समाचारों पर विश्वास करें, तो ज्ञात होता है कि भारतीयों ने पूर्ण अहिंसा पर अमल नहीं किया।...

--ह० से०, २०।८।'३८]

- अहिंसा-शक्ति की कोई सीमा नहीं है।
- अहिंसा एक ऐसी औषधि है, जो कभी विफल नहीं जाती।

२८. अहिंसा और सेना

...अहिंसा में जीवन्त श्रद्धा न हो तो फौज और पुलिस को नहीं छोड़ा जा सकता।

--ह० ज०। ह० से०, २७।८।'३८]

२९. असन्दिग्ध अहिंसा

...मेरे विचार से पश्चिमीय देशों का जनतन्त्र केवल तथाकथित है। इसमें ठीक जनतन्त्र के नमूने के कुछ कीटाणु और तत्व अवश्य हैं। किन्तु यह सच्चे अर्थों में जनतन्त्र उसी समय हो सकता है, जबकि यह हिंसा-रहित हो जायगा और इससे दुर्वृत्ति तथा उपद्रव दूर हो जायंगे। ये दोनों बातें साथ-साथ चलती हैं।

वस्तुतः दुर्वृत्ति और उपद्रव हिंसा के जाति-भाई हैं। भारत में यदि ठीक तरह से जनतन्त्र का विकास करना है, तो हिंसा और असत्य से किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता। हिंसा और असत्यपूर्ण हृदय वाले, कांग्रेस के रजिस्टर में दर्ज एक करोड़ नर-नारी, वास्तविक जनतन्त्र का विकास नहीं कर सकते। किन्तु मैं इस सम्भावना की कल्पना कर सकता हूं कि अहिंसा और सत्य में शतप्रतिशत विश्वास रखने वाले, असंख्य सन्दिग्ध साथियों से स्वतन्त्र दल हजार कांग्रेसी नरनारी, स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।

--ह० से०, ३।९।'३८]

३०. पठान और अहिंसा

[सीमाप्रान्त की यात्रा के दौरान गांधी जी ने मरदान में खुदाई खिदमतगारों को अहिंसा के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण सूत्र बतलाये थे। इस वार्ता का आवश्यक अंश संकलित किया जाता है।--संपा०]

. . .सूर्योदय होता है, तो उसकी गर्मी समस्त संसार में फैलती है। इससे अन्धे व्यक्ति को भी सूर्य की उपस्थिति का भान हो जाता है। इसी प्रकार जब एक लाख खुदाई खिदमतगारों में अहिंसा-भावना घर कर जायगी, तो उसका असर अपने आप पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति उसके जीवनदायी निःश्वासों का अनुभव करेगा।

मैं जानता हूं कि यह कठिन है। यह मजाक नहीं कि कोई पठान अपमान को चुपचाप सहन कर ले।

. . .जिस कसौटी पर मैं आपको कसूंगा, वह यह है कि जहां आप रहते हैं, वहां के सब आदमियों को आपने अपना मित्र बनाकर उनका विश्वास प्राप्त कर लिया है? जब तक एक भी व्यक्ति आप से डरता है, आप सच्चे खुदाई खिदमत-गार नहीं हैं। खुदाई खिदमतगार तो सदा मीठा बोलेगा; भलमनसाहतसे पेश आयेगा। उसकी आँखों से पवित्रता चमकेगी; इसके कारण कोई अजनबी, यहां तक कि स्त्री अथवा बच्चा भी, यही अनुभव करेगा कि यह खुदा से डरनेवाला हमारा मित्र है, जिसपर विश्वास किया जा सकता है।

पवित्रहृदय खुदाई खिदमतगार को कौम के सब समुदायों का सहयोग मिलेगा। जहां मुसोलिनी अथवा हिटलर दमन की असीम शक्ति के बल लोगों से अपनी बात मनवाते हैं, वहां उसकी बात स्वेच्छापूर्वक मानी जायगी। यह केवल प्रेमपूर्ण सेवा और ईश्वर की आराधना से ही प्राप्त हो सकती है।

जब मैं यह देखूंगा कि आपके प्रभाव से लोग धीरे-धीरे अपनी गन्दी और अस्वच्छ आदतें छोड़ते जा रहे हैं; शराबी शराब छोड़ रहे हैं और अपराधी अप-राध, प्रत्येक स्थान पर लोग आपका स्वागत नैसर्गिक मित्र और समय पर काम आनेवाले सहायक के रूप में करते हैं, तब मुझे यह ज्ञात हो जायगा कि हमारे बीच ऐसे लोग हैं, जिनके अन्दर अहिंसा की भावना घर कर गई है।

—ह० ज०। ह० से०, १२।११।'३८]

३१. अनाचार के प्रतिरोध में अहिंसा

[सीमा-प्रान्त के टाँक स्थान में दिये गये गांधी जी के भाषण से।—संपा०]

यदि आपके हृदय में तनिक भी यह प्रवृत्ति है कि यह अहिंसा एक आवरण ही है अथवा किसी बड़ी हिंसा के लिए सीढ़ी है . . ., तो यह गलत है। जबतक आप अहिंसा के अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुंच जाते और किसी बाल-हत्यारे के लिए भी क्षमा-प्रार्थना नहीं कर सकते, तो आप खुदाई खिदमतगार के अहिंसा

वाले शपथ पर हस्ताक्षर नहीं कर सकते। मन में कुछ बात रखकर उस शपथ पर हस्ताक्षर करने से आपका अपमान होगा।...

किन्तु आप मुझसे यह पूछ सकते हैं कि जब कोई गुण्डा किसी अरक्षित बहिन अथवा मां को सता रहा हो, क्या उस दशा में भी हिंसा की आज्ञा नहीं है? मेरा उत्तर है, नहीं, आप उस गुण्डे को समझायें। कठिनाई यही है कि वह अपने नशे की खुमारी में आपकी बात नहीं सुनेगा। तब आप उस गुण्डे और उसके लक्ष्य के बीच पड़ सकते हैं। बहुत सम्भव है कि आप मारे भी जायँ। किन्तु आपने अपना कर्तव्य तो पूरा कर दिया। आशा तो यही है निःशस्त्र और सामना न करने वाले आपको मारकर आक्रमणकारी का कामोन्माद शान्त हो जायगा। वह अपने लक्ष्य को पूर्ण किये बिना छोड़ देगा।

किन्तु मुझसे कहा गया है कि अत्याचारी वैसा नहीं करते, जैसा हम चाहते हैं, अथवा उनसे आशा करते हैं। मान लीजिए वह आपको सामना न करता देखकर किसी खंभे से बाँध दे और आपको बलात्कार का तमाशा देखने पर विवश कर दे? इस दशा में यदि आपके अन्दर आत्मबल है तो स्वयं को टुकड़े-टुकड़े कर दें अथवा रस्सी को तोड़ डालें। दोनों दशाओं में आप पापी की आंखें खोल देंगे।

आपका सशस्त्र सामना भी कुछ अधिक न कर सकता और यदि आप उसमें पछाड़ खा जाते तो सामना किये बिना मर जाने की अपेक्षा मामला और भी खराब हो जाता। और वैसे तो यह भी सम्भव है कि वह स्त्री आपका शान्तिमय साहस देखकर अपमानित होने की अपेक्षा अपनी मानरक्षा-हेतु प्रयत्न करे।

—ह० ज०। ह० से०, २६।११।'३८]

३२. विकासवाद और अहिंसा

[सीमाप्रान्त के ऐबटाबाद में दिये गये गांधी जी के भाषण का अंश। संपा०]

वैज्ञानिकों का कहना है कि हम मनुष्यों का विकास बन्दर से हुआ है। इस प्रकार पशु से हमारा विकास होने पर भी यह बात नहीं है कि उसी की भांति जीने और मरने के लिए हमारा सृजन हुआ हो। मनुष्य अपने अन्दर जिस हद तक स्वेच्छापूर्वक अनुशासन विकसित करता है, उतनी हद तक वह पशु से भिन्न हो जाता और अपने उच्च ध्येय को प्राप्त कर लेता है। अहिंसा का एक कर्तव्य यह भी है कि निर्बल से निर्बल—यहां तक कि बालक के भी अधिकार-मर्यादा की रक्षा की जाय और उसको मान दिया जाय।

. . .गाली का जवाब हमें सहिष्णुता से देना चाहिए। मनुष्य का स्वभाव ऐसा है कि क्रोध या गालियों के प्रति आप बिल्कुल ध्यान ही न दें, तो गालियां देनेवाला थक जायगा और उसका मुंह आप ही बन्द हो जायगा। . . .पूर्ण शुद्ध अहिंसा के आगे अन्त तक शत्रुभाव बने रहने का एक भी उदाहरण पचास वर्ष के अनुभव में मेरे सामने नहीं आया।

--ह० ज०। ह० से० ३।१२।'३८]

३३. हिन्दू-रक्षा में अहिंसा

[सीमाप्रान्त यात्रा के दौरान खुदाई खिदमतगारों ने गांधी जी से पूछा, "आप हमें हिदायत तो यह करते हैं कि लुटेरों व डाकुओं से हिन्दुओं की जान-माल की रक्षा करो। और फिर आप यह भी कहते हैं कि चोर-डाकुओं के लिए भी तुम हथियारों का इस्तेमाल न करो। इन दोनों चीजों का मेल कैसे बैठ सकता है?'

इस प्रश्न का गांधी जी ने जो समाधान किया, उसके आवश्यक अंश प्रस्तुत हैं।--संपा०]

इन दोनों बातों में विरोध ऊपर से ही मालूम पड़ता है, असल में विरोध है नहीं। किन्तु आपने अहिंसा को हजम कर लिया है, तो चोर-डाकुओं के हमला करने तक बैठे नहीं रहेंगे। आप उससे पहिले ही उनके पास पहुँच जायंगे, उनके अपने इलाके में जाकर आप उन्हें खोज निकालेंगे और डाका पड़ने की नौबत ही नहीं आने देंगे।

फिर भी अगर कोई हमला हुआ तो आप लुटेरों का मुकाबला करते हुए उनसे कहेंगे कि हमारी तमाम मिलकियत तुम खुशी से ले जा सकते हो। लेकिन हमारे हिन्दू पड़ोसियों के जानमाल को हाथ लगाने से पहिले तुम्हें हमारी लाशों पर ही पैर रखकर जाना पड़ेगा। . . .ऐसे अहिंसक, निरपराध खुदाई खिदमतगारों का क़त्ल करने से पहिले लूटमार करने वाले ज़रूर असमंजस में पड़ जायंगे।

--ह० ज०। ह० से०, ३।१२।'३८]

३४. हिंसा-अहिंसा दलगत नहीं है

हिंसा पर किसी एक दल का सर्वाधिकार नहीं है। मैं ऐसे कांग्रेसजनों को भी जानता हूं जो समाजवादी या साम्यवादी न होते हुए भी स्पष्ट रूप से हिंसा के भक्त

हैं। इसके विपरीत मैं ऐसे समाजवादियों और साम्यवादियों को भी जानता हूं, जो किसी का बाल भी बांका नहीं करेंगे। . . .

— ह० से०, १७।१२।'३८]

३५. अहिंसात्मक शक्ति और सम्मिलित शस्त्र-शक्ति

. . . अपनी अहिंसात्मक शक्ति पर आधार रखने वाली जागरित प्रजा तो सशस्त्र शक्तियों के किसी भी सम्मिलन के सामने स्वतन्त्र ही रहती है।

— ह० ज०। ह० से०, ७।१।'३९]

३६. श्रमहीन भोजन अहिंसा के विरुद्ध है

बिना प्रामाणिक परिश्रम के किसी भी स्वस्थ मनुष्य को मुफ्त में खाना देना मेरी अहिंसा बर्दाश्त ही नहीं कर सकती। यदि मेरा वश चले तो जहां मुफ्त खाना मिलता है, ऐसा प्रत्येक सदावर्त्त या अन्नछत्र मैं बन्द करा दूं। इनके कारण राष्ट्र का पतन हुआ है, और आलस्य, दम्भ तथा अपराध को बढ़ावा मिला है।

—सर्वोदय से। ह०, से० २५।२।'३९]

३७. अहिंसा का पर्याय : विवेक

अन्याय के दमन अथवा विवाद के निबटारे के लिए अहिंसा का दूसरा नाम ही विवेक है। विवेक का अर्थ मध्यस्थ का किया हुआ किसी विवाद का बाध्यकारी निर्णय अथवा युद्ध नहीं है। मैं यही कहकर अपने विश्वास पर सर्वाधिक जोर दे सकता हूं कि यदि मेरे देश को हिंसा-द्वारा स्वतन्त्रता मिलना सम्भव हो, तो मैं स्वयं उसे हिंसा से प्राप्त न करूंगा। तलवार से जो प्राप्त होता है, वह तलवार से हर भी लिया जाता है—इस बुद्धिमानी के वचन में मेरा विश्वास कभी नष्ट नहीं हो सकता।

—ह० ज०। ह० से०, २।९।'३९। 'हर हिटलर से अपील' टिप्पणी का अंश।]

३८. अहिंसा पर आस्था

[द्वितीय महायुद्ध में गांधी जी ने मानवता के नाते ब्रिटेन और फ्रांस के साथ सहानुभूति व्यक्त की थी। भारत के तत्कालीन वायसराय से वार्ता के दौरान उन्होंने महायुद्ध के सम्बन्ध में जो कुछ कहा, उसके आवश्यक अंश उद्धृत हैं।—संपा०]

जो लन्दन अब तक अभेद्य समझा गया है, उसके विध्वंस होने की कल्पना से मेरा हृदय काँप उठता है। जब मैंने वेस्ट मिनिस्टर ऐबे तथा उसके सम्भावित विनाश के विषय में सोचा तो मेरा दिल भर आया। मैं अधीर हो उठा हूं। हृदय के अन्दर परमात्मा से मेरी इस प्रश्न पर सदा लड़ाई रहती है कि वह ऐसी बातें क्यों होने देता है? मुझे अपनी अहिंसा पूर्णरूपेण क्लीव प्रतीत होती है। किन्तु दिन भर के संघर्ष के पश्चात् यह उत्तर मिलता है कि न तो ईश्वर, न मेरी अहिंसा ही नपुंसक है। चाहे मुझे अपने प्रयत्न में असफलता मिले, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास के साथ अहिंसा का प्रयोग करते ही रहना चाहिए।

—शिमला से प्रकाशित गांधी जी के वक्तव्य का अंश ५।९।'३९। ह० से०, ९।९।'३९]

३९. साम्प्रदायिक सद्भावना और अहिंसा

[हिन्दू, मुसलमान एवं भारतीय जातियों में एकत्व स्थापन के प्रति आशा व्यक्त करते हुए गांधी जी ने उसकी प्राप्ति के सरलतम उपाय की निम्नलिखित व्याख्या की है। ये उद्धरण 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' शीर्षक लेख से लिये गये हैं। —संपा०]

मैं यह भी जानता हूं सबसे कम दूरी का और निश्चित मार्ग अहिंसा का है। कुछ मुसलमान मित्र मुझसे कहते हैं कि मुसलमान लोग विशुद्ध अहिंसा को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। उनका कहना है कि मुसलमानों के लिए हिंसा उतनी ही विहित और आवश्यक है, जितनी कि अहिंसा। इन दोनों का प्रयोग परिस्थितियों पर निर्भर करता है। दोनों के विहित होने का औचित्य सिद्ध करने के लिए कुरान का प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। यह भलीभांति जाना-माना मार्ग है, जिसपर युगों से संसार चला आ रहा है।

किन्तु मैंने अनेक मुसलमान मित्रों से सुना है कि कुरान अहिंसा के उपयोग की शिक्षा देता है। क्षमा को उसने प्रतिशोध से ऊंचा माना है। इस्लाम शब्द

का अर्थ ही अमन है और अमन अथवा शान्ति का नाम अहिंसा है। बादशाह ख़ान ने, जो एक पक्के मुसलमान हैं और जो नमाज पढ़ने और रोज़ा रखने से कभी नहीं चूकते, अहिंसा को धर्म-रूप में पूर्णतः अपना लिया है। यह कहना कि वे अपनी निष्ठा का पूर्ण रूप से पालन नहीं करते, मेरी बात का उत्तर नहीं हो सकता। मैं जानता हूं और मेरे लिए यह लज्जा का विषय है कि यथोचित निष्ठा पालन तो मैं भी नहीं करता। हमारे कार्यों में यदि अन्तर है तो वह प्रकार का नहीं, मात्रा का है। किन्तु अहिंसा के विषय में कुरान मजीद-सम्बन्धी तर्क अप्रासंगिक है। मेरे दावे के लिए वह आवश्यक नहीं।

मैं जानता हूं कि अहिंसा के पूर्ण व्यवहार के लिए केवल एक पक्ष का उसमें विश्वास रखना आवश्यक है। वस्तुतः यदि दोनों पक्ष उसमें विश्वास रखें और उसका व्यवहार करें तो उसमें अहिंसा की न कोई प्रशंसा है, न उसके प्रदर्शन की आवश्यकता ही है। एक दूसरे के साथ सब लोग शान्ति से रहें, इस दिशा में प्रयत्न करना सर्वाधिक प्रकृत है। किन्तु अहिंसा के व्यवहार में जो सौन्दर्य निहित है उसका लाभ किसी पक्ष को नहीं मिलता। दुर्भाग्यवश आज हिंसा से अनभिज्ञ हिन्दू अपनी इस अयोग्यता पर खेद प्रकट करते हैं यद्यपि उनके हृदय में वह है। वे बड़ी रुचि से यह फ़न सीख लेना चाहते हैं। मैं इसे अहिंसा की कला नहीं कहूंगा कि जिसे हिन्दू लोग मुस्लिम हिंसा कहते हैं, इसमें वे बराबरी प्राप्त करें।

यदि दोनों पक्षों को हिंसा के प्रयोग में बराबरी से सामना करने योग्य बनकर देश में शान्ति स्थापना करना है, तो मैं जानता हूं कि ऐसी शान्ति मेरे जीवन-काल में यहां नहीं आयेगी। यदि वह आई भी तो मुझे उसे देखने की चिन्ता नहीं करना चाहिए। वह शान्ति तो शस्त्र-बल पर आधारित शान्ति होगी, जो किसी भी क्षण भंग हो सकती है। युरोप में इसी प्रकार की शान्ति रही है। ऐसी शान्ति से हमें निराश करने के लिए क्या युरोप का वर्तमान युद्ध पर्याप्त नहीं?

— ह० ज०। ह० से०, ७।१०।'३९]

- **इस्लाम शब्द का अर्थ ही अमन है और अमन अथवा शान्ति का नाम अहिंसा है।**
- **मैं मानता हूं कि अहिंसा के पूर्ण व्यवहार के लिए केवल एक पक्ष का उसमें विश्वास रखना आवश्यक है।**

४०. अहिंसा का उपदेश

[गांधी सेवासंघ की कार्यसमिति के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए और

उनकी शंकाओं का समाधान करते हुए गांधी जी ने जो कहा प्रस्तुत अंश उसी से उद्धृत किया गया है।—संपा०]

क्या आप उस व्यक्ति के साथ भाईचारे का रुख अख्तियार करेंगे, जिसने कि आपके प्रियजन को खेदजनक चोट पहुँचाई है? मान लीजिए, राजेन्द्रबाबू पर आक्रमण किया गया। क्या आप इसका जवाब आक्रमण से ही देंगे या राजेन्द्र बाबू और आक्रमणकारी के बीच खड़े होकर उनपर की जानेवाली चोटें खुशी से झेलेंगे? यदि आपने मृत्यु-भय छोड़ दिया है, और शरीर पर लगने वाली चोटों का डर भी आपको नहीं है, और न उन घरेलू बन्धनों का, जो आपको बाँधे रहते हैं, कोई विचार है, तो आप पिछला उपाय करेंगे। लेकिन जबतक उन लोगों के प्रति, जो आपके साथ घृणा का व्यवहार करते हैं, आप भाईचारे का ही व्यवहार न करेंगे, तब तक आपके इस प्रस्ताव का कोई अर्थ नहीं होगा कि कठिन से कठिन परीक्षा में भी आप अहिंसा के सिद्धान्त पर दृढ़ रहेंगे।

अहिंसा मठ-मन्दिर की ही चीज़ नहीं है, जो ऋषियों अथवा गुफाओं में रहने-वालों के लिए हो। अहिंसा तो ऐसी है कि जिसपर लाखों आचरण कर सकते हैं,—इसलिए नहीं कि उसके फलितार्थों का उन्हें पूर्ण ज्ञान है, बल्कि इसलिए कि वह हमारी मनुष्य जाति का नियम है। यह आदमी और पशु के बीच का अन्तर व्यक्त करती है। लेकिन मानव ने अपने अन्दर की पशुता को छोड़ा नहीं है। वैसा करने की उसे कोशिश करनी होगी। वह कोशिश अहिंसा के व्यवहार के लिए है, उसमें महज विश्वास के लिए नहीं। किसी सिद्धान्त के विश्वास के लिए मैं कोशिश नहीं करता। मैं उसमें या तो विश्वास करूं या न करूं। अगर उसमें विश्वास करता हूं तो उस पर आचरण करने के लिए मुझे साहस के साथ प्रयत्न करना चाहिए। अहिंसा तो सबल का गुण है। दुर्बलता और अहिंसा साथ-साथ नहीं चल सकते, जैसे पानी और आग। यही अहिंसा है, जिसे अपने भीतर पैदा करने के लिए गांधी-सेवा-संघ के प्रत्येक सदस्य को प्रयत्न करना चाहिए।

...आपकी अहिंसा तबतक सक्रिय रूप से कारगर न होगी, जबतक कि आप चर्खे में ज्वलन्त श्रद्धा न रखेंगे। मैं चाहूँगा कि मेरी दृष्टि से आप 'हिन्द स्वराज्य'[1] को पढ़ें और उसमें इस अध्याय को देखें कि भारत को अहिंसात्मक कैसे बनाया जा सकता है? कल-कारखाने की सभ्यता के आधार पर आप अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते; लेकिन स्वावलम्बी गांवों के आधार पर उसका निर्माण

---

१. गांधी जी की लिखी, समाज-गठन-सम्बन्धी मूल विचारों की पुस्तक: —संपा०]

किया जा सकता है। हिटलर चाहकर भी सात लाख अहिंसा पर आत्मनिर्भर गांवों को ख़त्म नहीं कर सकता। ख़त्म करने की प्रक्रिया में वह स्वयं अहिंसक हो जायगा। मेरी कल्पना के ग्राम्य अर्थ-विधान में शोषण को कत्तई जगह नहीं है। शोषण हिंसा का मूल है। इसलिए अहिंसात्मक हो सकने के पहिले आपको ग्राम्य वृत्ति का बनना होगा और ग्राम्य-वृत्ति पैदा करने के लिए आपको चर्खे में श्रद्धा रखनी होगी।

...हम देख चुके हैं कि प्रान्तीय स्वराज्य के पहिले के दिनों में जिस प्रकार ब्रिटिश सरकार को हिंसा का सहारा लेना पड़ा, उसी प्रकार मन्त्रियों को भी हिंसा का सहारा लेना पड़ा। शायद वह अनिवार्य था। यदि कांग्रेसजन सच्चे रूप से अहिंसात्मक होते, तो बलप्रयोग का सहारा न लिया जाता। लेकिन कांग्रेस में अधिकांश लोग विशुद्ध अहिंसा पर आधार नहीं रखते हैं।

[इसके बाद प्रश्नोत्तर हुए]

प्रश्न——लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अहिंसा माननेवाले मंत्री, जबकि कम-से-कम हिंसा तक उतरते हैं, तब हिंसा में विश्वास न रखनेवाले ऐसा कोई नियम नहीं रखेंगे?

उत्तर——ऐसा विश्वास करना तो भ्रम है। वे सभी, जो आज हिंसा का प्रयोग कर रहे हैं, ऐसा ही दावा करते हैं। हिटलर भी ऐसी ही बात कहेगा। लार्ड सभा ने जनरल डायर की प्रशंसा उस घड़ी का महान वीर कह कर की थी, क्योंकि उसका उद्देश्य जनता में हिंसा के फैलाव को रोकना ही कहा जाता है। सोवियत रूस का विश्वास है कि हिंसा से रहित व्यवस्था को स्थापित करने के लिए उसकी हिंसा तो एक संक्रमण-अवस्था है।...

प्रश्न——आप कैसे सोचते हैं कि जनता अहिंसा पर आचरण करेगी, जबकि-हम जानते हैं कि सब लोग क्रोध और घृणा करने के लिए तैयार रहते हैं और दुर्भावनाएं उनमें हैं? देखा जाता है कि छोटी-छोटी चीजों के लिए लड़ने की उनकी आदत है।

उत्तर——आदत है, फिर भी मेरा विचार है कि वे सामान्य हित के लिए अहिंसा का व्यवहार कर सकते हैं। क्या आप सोचते हैं कि हजारों स्त्रियाँ, जिन्होंने निषिद्ध नमक इकट्ठा किया, किसी के प्रति दुर्भावना रखती थीं? वे जानती थीं कि कांग्रेस या गांधी जी ने उनसे कुछ चीज़ें करने के लिए कहा है और श्रद्धा और आशा के साथ उन्होंने वही चीजें कीं। मेरे विचार से अहिंसा का सबसे पूर्ण प्रदर्शन चम्पारन में हुआ। क्या हजारों रैयत, जिन्होंने कृषि-सम्बन्धी बुराइयों के विरुद्ध

विद्रोह किया, सरकार या किसानों के प्रति ज़रा भी दुर्भावना रखती थी? अहिंसा में उनकी श्रद्धा सोच-समझकर नहीं थी। हां, उनकी श्रद्धा उनके नेताओं में सच्ची थी और वही काफी थी। मगर जो नेतृत्व करते हैं उनकी बात दूसरी है। उनकी श्रद्धा सजग और सोची-परखी होगी और उन्हें उस श्रद्धा के सब फलितार्थों पर आचरण करना होगा। लेकिन क्या दुनिया भर में और कहीं जनता इस प्रकार की नहीं हैं? हां, नहीं है, क्योंकि दूसरों के लिए अहिंसा का वह आधार नहीं है।

प्रश्न—अगर अहिंसा उनमें मौजूद थी तो वे गुलामी की दशा में कैसे आये?

उत्तर—वही तो है जो मैं मानना चाहता हूं कि मेरे जीवन की देन समझी जायगी। मैं चाहता हूं कि दुर्बल की अहिंसा सबल की अहिंसा बन जाय। हो सकता है कि वह एक स्वप्न हो, लेकिन उसको पूरा करने के लिए मैं कोशिश कर रहा हूं।

—सेवाग्राम, २९।१०।'३९। ह० से० ४।११।'३९]

- **यह (अहिंसा) आदमी और पशु के बीच का अन्तर व्यक्त करती है।**
- **दुर्बलता और अहिंसा साथ-साथ नहीं चल सकते।**
- **कल-कारखाने की सभ्यता के आधार पर आप अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते।**
- **शोषण हिंसा का मूल है।**

४१. सिन्ध और वीरों की अहिंसा

[सिन्ध के हिन्दुओं पर होने वाले साम्प्रदायिक अत्याचारों के सम्बन्ध में गांधी जी की प्रतिक्रिया।— संपा०]

सिन्ध की पीड़ित जनता को तो मैं अहिंसा के उपाय ही बतला सकता हूं। हिन्दुओं को अहिंसा का पाठ तो पढ़ाया गया है, किन्तु जब शरीर-बल का सामना हुआ, तब उन्होंने अहिंसा की शक्ति का सामूहिक रूप से परिचय नहीं दिया; उसकी श्रेष्ठता तो कभी साबित ही नहीं की। मेरी यह राय रही है कि शरीर-बल मुकाबिले में कितना ही अधिक क्यों न हो, अहिंसा की शक्ति उससे बढ़कर है। यही अहिंसा की खूबी है। मेरी यह भी राय रही है कि इस तरह की अहिंसा को समूह ही नहीं करोड़ों मनुष्य मिलकर भी उतनी ही अच्छी तरह काम में ला सकते हैं, जितनी कि एक-एक मनुष्य ला सकता है। यह प्रयोग अभी चल रहा है। पिछले बीस साल में इतना तो पता चल गया कि यह प्रयोग करने योग्य है। इसे जारी रखने में कोई हानि नहीं—बशर्ते अहिंसा सौ टंच की हो।

मेरी दृष्टि में ऐसी कोई बात नहीं आई, जिससे पता चले कि सक्खर या शिकारपुर में एक भी ऐसा आदमी था, जिसका बलवानों की अहिंसा विश्वास हो और जिसने उस पर अमल किया हो। यदि ऐसा एक भी आदमी निकला होता तो उसे हम ज़रूर उसी तरह जान लेते, जैसे गणेशशंकर विद्यार्थी[1] को जानते हैं। ऐसा एक भी व्यक्ति सिर से पैर तक हथियारबन्द आदमी से किसी भी दिन ज्यादा जौहर दिखा सकता है।

...जैसा कि आजकल मैं बार-बार कहता रहता हूं, हमारी अहिंसा बलवानों की अहिंसा नहीं रही है। कमज़ोर लोगों में ऐसी अहिंसा एकदम नहीं आ सकती। किन्तु मेरे औषधालय में दूसरी औषधि भी नहीं है। मैं तो वही नुस्खा बतला सकता हूं, जो मेरे पास है और जो अमोघ तथा रामबाण है।

...सच्चे वीर और ही मिट्टी के बने होते हैं। उनमें वैरभाव, क्रोध, विश्वास और मौत या शारीरिक आघात के भय को कोई स्थान नहीं। हां, अहिंसा अवश्य उन लोगों के लिए नहीं है, जिनमें ये आवश्यक गुण न हों।

कमजोर यह समझ लें कि उन्हें दूसरे के शस्त्रबल की सहायता पर कभी निर्भर नहीं रहना है। ऐसी सहायता से वे और भी निर्बल हो जायंगे। अगर उनमें अहिंसात्मक मुक़ाबले की योग्यता नहीं है, तो उन्हें आत्मरक्षा की कला सीखनी चाहिए। इसके लिए बलिष्ठ शरीर नहीं, मजबूत दिल चाहिए। अफ्रीका के भीमकाय हब्शी के सामने गोरे छोकरे मिट्टी-से मालूम देते हैं। किन्तु उन्हें गोरों से इतना डर लगता था कि..उनके सामने जाने की हिम्मत ही नहीं होती थी। गोरे बच्चों को छोटी उम्र से ही हब्शियों से न डरने की शिक्षा दी जाती थी। इसलिए जो लोग अपना बचाव करना सीखें, उनके लिए पहिला पाठ यह है कि घायल होने और मारे जाने का भय छोड़ दें। मै चाहता हूं कि वे युद्ध के नियमों का पालन करें। जैसे चोरों में भी ईमानदारी-जैसी चीज़ होती है, ठीक उसी तरह लड़ने वालों में भी ज़रूर होनी चाहिए।

— सेवाग्राम, १।१।'४०। ह० ज०। ह० से०, ६।१।'४०]

४२. अहिंसक भारत

बड़े गुटों के सामने भी अजेय भारत को हथियाने के लिए रूस, जर्मनी, इटली

---

१. उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध पत्रकार नेता, 'प्रताप'—संपादक जिन्होंने कानपुर में साम्प्रदायिक दंगे को शान्त करते हुए प्राणत्याग किया था।—संपा०।

और जपान चारों मिल बैठें, तो भी मुझे घबराहट न होगी, बशर्ते कि भारत ने उस समय तक अहिंसा को अपनी निश्चित नीति के रूप में मान लिया हो।

—सेवाग्राम, ७।१।'४०। ह० से०, १३।१।'४०]

४३. श्रमाधारित अहिंसा

अहिंसा के प्रयोगों से मैंने यह सीखा है कि व्यावहारिक अहिंसा का अर्थ सब लोगों का शरीर-श्रम है। एक रूसी दार्शनिक बोंडरेफ़ ने इसे रोटी के लिए श्रम कहा है। इसका परिणाम यह होगा कि लोग परस्पर गहरे से गहरा सहयोग करेंगे।

चौंतीस साल के सत्य और अहिंसा के सतत प्रयोग तथा अनुभव से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि अहिंसा का ज्ञानपूर्वक शरीर-श्रम से सम्बन्ध न होगा और पड़ोसियों के साथ दैनिक व्यवहार में उसका परिचय न मिलेगा तो वह टिक नहीं सकेगी।

—सेवाग्राम, २४।१।'४०। ह० ज०। ह० से०, २७।१।'४०]

४४. स्त्रियाँ और अहिंसात्मक आचरण

[गांधी जी से पूछा गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—आप कहते हैं, इसमें स्त्री और पुरुष दोनों का पतन है कि स्त्री को घर छोड़कर घर की रक्षा के लिए बन्दूक उठाने को कहा या समझाया जाय। यह तो फिर से जंगली बनना और नाश का प्रारम्भ करना हुआ। लेकिन उन करोड़ों स्त्रियों के लिए क्या कहा जायगा जो खेती और कारखानों में मज़दूरी करती हैं? उन्हें भी तो घर छोड़ कर कमाई करनी पड़ती है? क्या कारखानों की पद्धति मिटाकर आप फिर से वही युग लाना चाहते हैं जिसमें पत्थर के औज़ारों से काम लिया जाता था? क्या यह फिर से जंगली बनना और नाश का प्रारम्भ करना नहीं हुआ? आपकी कल्पना में समाज की वह नई व्यवस्था कौन-सी होगी, जिसमें स्त्रियों से काम कराने का पाप शेष न रहे?

उत्तर—करोड़ों स्त्रियों को घर छोड़कर जीविका कमानी पड़े तो बुरी बात है। लेकिन वह इतनी बुरी नहीं जितनी कि बन्दूक उठाना। मज़दूरी में वस्तुतः जंगलीपन की कोई बात नहीं। अपने घरों की देखभाल करते हुए स्त्रियां स्वेच्छा से अपने खेतों में भी काम करें तो मुझे इसमें कोई जंगलीपन नहीं दीखता। मेरी

कल्पना में समाज की जो नई व्यवस्था है उसके अनुसार सभी अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार काम करेंगे और उन्हें अपने श्रम का पूरा बदला मिलेगा। उस व्यवस्था में स्त्रियां थोड़े समय श्रम करेंगी, क्योंकि उनका मुख्य काम घर की देखभाल करना होगा। चूंकि मैं नहीं समझता कि बन्दूक के लिए नई समाज-व्यवस्था में स्थायी स्थान होगा, इसलिए जहां तक पुरुषों का सम्बन्ध है, वहां भी उसका इस्तेमाल धीरे-धीरे कम किया जायगा। जबतक उसका उपयोग होता रहेगा उस अवधि तक भी उसे एक आवश्यक बुराई समझ कर ही सहन किया जायगा। पर मैं जानबूझ कर इस बुराई की छूत स्त्रियों को नहीं लगने दूंगा।

—सेवाग्राम, ९।३।'४०। ह० ज०। ह० से०, १६।३।'४०]

४५. अहिंसा और फांसी की प्रथा

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—क्या आपकी राय में फाँसी की सजा अहिंसा के सिद्धान्त के विरुद्ध है? यदि ऐसा है तो स्वतन्त्र हिन्दुस्तान में आप उसके स्थान पर कौन-सी सज़ा रखेंगे?

उत्तर—फाँसी की सज़ा को मैं अहिंसा के विरुद्ध समझता हूं। केवल ईश्वर को, जो जीवन देता है, जान लेने का अधिकार है। अहिंसा तो सभी सज़ाओं की विरोधी है। जो राज्य अहिंसा के आधार पर अपना शासन चलाता है वहां तो हत्या करने वाले को भी ऐसी जगह भेजना चाहिए जहां उसका मानसिक और नैतिक सुधार हो सके। प्रत्येक अपराध एक प्रकार का रोग है और उसका इलाज भी इस दृष्टि से होना चाहिए।

—ह० से०, २७।४।'४०]

- **प्रत्येक अपराध एक प्रकार का रोग है और उसका इलाज भी इस दृष्टि से ही होना चाहिए।**

४६. अहिंसा और एक मुसलमान भाई की समस्या

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—हम मुसलमान मानते हैं कि पैग़म्बर साहब की जिन्दगी पूरी तरह ईश्वर-प्रेरित और सच्चे अर्थ में अहिंसक थी तथापि अहिंसा का जो अर्थ आप करते

हैं उस अर्थ में नहीं। उन्होंने कभी किसी पर हमला करने के लिए युद्ध नहीं किया। लेकिन जब वह अपनी रक्षा के लिए लड़ने पर मजबूर हो गये तो उन्होंने खास धर्मयुद्ध के लिए तलवार चलाई। उन्होंने ख़ास शर्तों के साथ तलवार के इस्तेमाल को इजाजत दी है। लेकिन आपकी अहिंसा अलग क़िस्म की है। आप हर हालत में अहिंसा पर अमल करने को कहते हैं पर मुझे नहीं लगता कि पैग़म्बर साहब ऐसा करने की इजाजत देते। तो फिर हम किसका अनुकरण करें? आपका या पैग़म्बर साहब का? अगर हम आपके पीछे चलते हैं तो मुसलमान नहीं रहते। अगर पैग़म्बर साहब के पीछे चलते हैं तो हम कांग्रेस में भरती नहीं हो सकते क्योंकि कांग्रेस आपकी सम्पूर्ण अहिंसा में विश्वास रखती है। आप इस समस्या को हल नहीं करेंगे?

उत्तर—मैं यही उत्तर दे सकता हूं कि जब तक आपको मेरे और पैग़म्बर साहब के कहने में फ़र्क़ मालूम देता है आपको पैग़म्बर साहब का ही हुक्म मानना चाहिए, मेरा नहीं। मगर मैं इतना कहता हूं कि मैंने विविध धर्मों के एक तटस्थ अभ्यासी के तौर पर पैग़म्बर साहब की ज़िन्दगी का और कुरानशरीफ़ का अभ्यास किया है। और मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि कुरानशरीफ़ सचमुच अहिंसा का ही पाठ सिखाता है। कुरानशरीफ़ में कहा है कि हिंसा से अहिंसा अच्छी है। अहिंसा पर अमल करना आदमी का फर्ज ठहराया गया है, हिंसा के इस्तेमाल की इजाजत खास जरूरत आ पड़े और चल ही न सके उस हालत में दी गई है। पैग़म्बर साहब ने जो किया उसका न्यायाधीश मैं नहीं बन सकता। मुझे अपने व्यवहार का निश्चय बड़े-बड़े पैग़म्बरों ने क्या कहा है, इसके अनुसार करना चाहिए, उन्होंने क्या किया उसके अनुसार नहीं। हज़रत मुहम्मद पैग़म्बर बने तो इस कारण नहीं कि उन्होंने तलवार का जौहर दिखाया था, बल्कि इस कारण कि बरसों तक उन्होंने सत्य की शोध में तपश्चर्या की, खुदा की इबादत की। पैग़म्बर साहब की जिन्दगी के ये अमूल्य वर्ष निकाल दिये जायँ तो वे पैग़म्बर नहीं रहते। हजरत मुहम्मद को उनकी ज़िन्दगी के इसी हिस्से ने पैग़म्बर बनाया है। किसी भी पैग़म्बर की ज़िन्दगी वहां तक ही हमारे लिए रहनुमा बन सकती है, जहां तक कि दुनिया ने उनको पैग़म्बर नहीं ठहराया। पैग़म्बर ही पैग़म्बर के कृत्यों के न्यायाधीश बन सकते हैं। जिस तरह एक मामूली नागरिक सिपाही के गुण-दोष नहीं परख सकता, विज्ञान का नाम न जानने वाला इंसान एक वैज्ञानिक के गुण-दोष नहीं जाँच सकता, उसी तरह एक मामूली इंसान पैग़म्बर साहब ने जो किया, उसपर निर्णय नहीं दे सकता, उसकी नकल करना तो दरकिनार रहा। अगर आज मैं मोटर चलाने बैठूं तो इसमें शक नहीं कि मैं स्वयं अपने को और मोटर को खतरे

में डाल दूंगा और बहुत करके मौत के मुंह में पहुंचा दूंगा। तो एक पैग़म्बर की नकल करना मेरे लिए कितनी ज्यादा खतरनाक बात होगी। पैग़म्बर साहब से किसी ने पूछा था कि जब आप कानून के बाहर रोजे रख सकते हैं तो आपके साथी क्यों नहीं? उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया, खुदा मुझे रूहानी खुराक़ पहुँचाता रहता है। उससे मेरी जिस्मानी हाजत भी पूरी हो जाती है। लेकिन आप लोगों के लिए खुदा ने रमजान रखा है। आप लोग मेरी नकल नहीं कर सकते। मैं यह हवाला अपनी याददाश्त के आधार पर ही दे रहा हूं।

—नई दिल्ली, १।७।'४० ह० ज०। ह० से०, ६।७।'४०]

४७. शिक्षक और अहिंसा

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—**मैं एक अध्यापक हूं। स्कूल के लड़कों और अपने बच्चों के साथ व्यवहार में मैं आपके अहिंसा के सिद्धान्त पर अमल करने का प्रयत्न करता हूं। स्कूल के लड़कों के साथ मुझे काफी सफलता भी मिली है। सिर्फ़ एक ही बदमाश लड़का है जिसे मैं सुधार नहीं सका। उसे मैं हेडमास्टर साहब के पास भेज दूंगा। किन्तु मेरी इच्छा अपने बच्चों को अक्सर पीटने की हो जाती है, हालाँकि, मैं उसे दबा लेता हूं। मेरे एक चचा मेरे ख्याल के नहीं हैं। वह इस पुरानी कहावत के अनुयायी हैं कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते, बग़ैर डंडे के बच्चे बिगड़ जाते हैं और मैं देखता हूं कि बच्चे भी उन्हीं की मानते हैं। मुझे अपने बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। एक अहिंसक शिक्षक एक बदमाश लड़के के साथ कैसा बर्ताव करे?**

उत्तर—मुझे तो यह साफ लगता है कि आपको अपने बच्चों को और शिष्यों को शारीरिक या किसी दूसरी किस्म की सजा नहीं देनी चाहिए। अगर आप चाहें और आप में यह योग्यता हो तो अपने बच्चों या अपने शिष्यों का दिल पिघलाने के लिए आप अपने आपको सज़ा दे सकते हैं। बहुत-सी माताओं ने इस तरह अपने बच्चों को सुधारा है। मैंने खुद बहुत बार ऐसा किया है। दक्षिण अफ्रीका में मेरा वास्ता जंगली लड़कों से पड़ा था। उनमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सभी थे। सिवाय एक के मुझे याद नहीं कि मैंने कभी किसी को सज़ा दी हो। मेरा अहिंसक उपाय हमेशा ही सफल रहा। जब शिक्षक और शिष्यों में प्रेम की गांठ बँध जाती है, शिष्य कभी सहन ही नहीं कर सकते कि उनके कारण

शिक्षक कष्ट उठायें। रही बदमाश लड़के की समस्या सो अगर उसके मन में आपके लिए मान नहीं है तो आप उसके साथ असहयोग कर सकते हैं यानी उसे अपने स्कूल से निकाल सकते हैं। अहिंसा आपको मजबूर नहीं करती कि आप ऐसे लड़के को स्कूल में रखें जो स्कूल के नियम का पालन नहीं करता।

—नई दिल्ली, १।७।'४०। ह० ज०। ह० से०, ६।७।'४०]

४८. अहिंसा का प्रयोग

मुझे वीरों की अहिंसा का सन्देश जनसाधारण तक पहुँचाना है। यह काम कठिन है। वे लोग वर्किंग कमेटी के निर्णय की बारीकी को नहीं समझ सकेंगे। मुझे सभी से चेतावनी मिल चुकी है कि इस निर्णय से जनता के मन में उलझन पैदा होगी। वह मानेगी कि कांग्रेस ने अहिंसा को छोड़ दिया है, किन्तु महात्मा जी तो अब भी अहिंसा में ही विश्वास रखते हैं, तो इन मतभेदों के बीच हम किसकी मानें और किसका अनुसरण करें? यदि मैं जनता का साथ खो बैठा, तो यह मानना पड़ेगा कि अहिंसा का सामुदायिक प्रयोग निष्फल हुआ। अहिंसा में मेरी तो श्रद्धा तब भी अटल रहेगी। किन्तु मेरी हार भी उतनी ही स्पष्ट होगी।...

...आखिर तो, अहिंसा का पैग़ाम दुनिया के कोने-कोने में फैलाने के लिए मुझे अपने विचार का ही आश्रय लेना है।...

—नई दिल्ली, १।७।'४०। ह० से०, ६।७।'४० 'एक सही शिकायत' लेख का अंश]

४९. अहिंसा और घबराहट

एक सज्जन ने एक पत्र भेजा है। उसका निम्नलिखित हिस्सा पाठकों के लिए रोचक और बोधप्रद होगा:—

"असहयोग की पिछली हलचल में मैंने वकालत छोड़ दी थी। १९२५ के अन्त में फिर शुरू कर दी। अब मैं कांग्रेस का सिर्फ चार आने का मेम्बर हूं। कचहरी में वकालत करता हूं और आदतन खादी पहनता हूं। जब से मित्र-राष्ट्र हारने लगे हैं, देश में घबराहट फैलने लगी है। ब्रिटेन की पराजय के परिणामों से लोग डरते हैं। उन्हें गृह-युद्ध, साम्प्रदायिक बलवों, लूटमार, आगजनी और गुण्डाशाही का डर है। आप अहिंसा के देवता हैं। कम से कम पिछले २० साल से आपने अहिंसा का प्रचार किया है। जहां तक मैं आपके लेखों को समझ सका हूं, आप बहादुरों की अहिंसा का प्रचार करते हैं। ऐसी अहिंसा व्यापक प्रेम से ही उद्भूत

होती है। वह अत्याचार करने वाले के प्रति और दुश्मन के प्रति भी प्रेम सिखाती है। अगर मैंने सही समझा है तो आपके मतानुसार शत्रु की हानि करने की शक्ति रखते हुए भी हमें उसके साथ अहिंसक व्यवहार रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

"लेकिन आपकी इस सब शिक्षा का जो व्यावहारिक परिणाम देखने में आता है, वह यह है कि आपके अधिकांश अनुयायियों को इस प्रकार की अहिंसा की कल्पना ही नहीं है। वे अहिंसक हैं क्योंकि वे मानते हैं कि अगर दुर्जन का सामना हिंसा से करेंगे तो उसका कोप और बढ़ेगा। इसका नतीजा यह होगा कि वह और भी अधिक हिंसा का प्रयोग करेगा जिसको वे झेल नहीं सकेंगे। सो, उनकी अहिंसा के पीछे प्रेम नहीं, डर और बुज़दिली है। विचार यह है कि अपनी जान कैसे बचायें, यह नहीं कि उच्च आदर्श के लिए उसे खतरे में डालें। मैं एक मिसाल देता हूं:— १९२२ के असहयोग के दिनों में एक सज्जन थे जिनका अब देहान्त हो चुका है। क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट ऐक्ट के अनुसार वह गिरफ्तार हुए और कैद किये गये। वह एक शान्तिप्रिय नागरिक थे, राजनीति में उन्हें दिलचस्पी नहीं थी। मुझे आशा नहीं थी कि वह राजनीति के लिए अपनी स्वतन्त्रता को खतरे में डालेंगे। उन्हें जेल में देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने खुशी से जेल जाने की हिम्मत कैसे की? उन्होंने उत्तर दिया कि जेल के बाहर उन्हें ज्यादा नुकसान का डर था, उनपर छाप यह थी कि राजनीतिक हलचल के कारण सब जगह झगड़े-फसाद होंगे, और उन्हें विश्वास था कि अन्त में सरकार गोली चलाने पर आमादा होगी। उन्हें लगा कि जेल के अन्दर वह सुरक्षित रहेंगे और मौत से बच जायँगे। मेरी समझ में जब आपने लोगों को खुशी से जेल जाने को कहा था तब आपके मन में यह चीज कदापि नहीं थी। मेरी राय में यदि कोई निर्बलता के कारण अहिंसक बनता है, तो वह आक्रमण करनेवाले का भी सामना नहीं करेगा। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास है कि इन घबराहट और परेशानी के दिनों में आपकी कलम से निकले हुए कुछ लेख हमारे नवयुवकों के दिलों से समस्त भय निकाल देंगे और उनमें एक जान डाल देंगे, जिसमें वे समाज में प्रचलित गुण्डई का सामना कर सकें। 'हरिजन' के पिछले अंक में एक ऐसा लेख निकल चुका है। लेकिन मेरा मत है कि जो लोग शारीरिक शक्ति तो रखते हैं किन्तु घबराहट से बेजान हुए पड़े हैं, उनमें साहस और बहादुरी लाने के लिए एक लेखमाला की जरूरत है। मेरी राय में यदि आप प्रति सप्ताह 'हरिजन' में इस विषय पर थोड़ी सी पंक्तियां लिखने की कृपा करेंगे तो सब भय, हड़कम्प और परेशानी अपने आप मिट जायगी; हमारी घबराहट दूर हो जायगी और हमारे समाज में गुण्डे और बदमाश भी न रहेंगे।"

यह पत्र सामान्य कांग्रेसवादी की मानसिक स्थिति का सही चित्र देता है। जिस अहिंसा का लेखक ने उल्लेख किया है वह कभी हमें हमारे ध्येय तक नहीं पहुँचा सकती। यदि हम उसके द्वारा शूरवीरों की सच्ची अहिंसा तक पहुँच सकते हैं तो मैं मानूंगा कि इस कमजोरों की अहिंसा से भी हमें फायदा ही हुआ है। जिसने शूरवीरों की अहिंसा का शस्त्र लिया है वह अकेले सारे संसार की प्रबल से प्रबल शक्तियों का एक साथ सामना कर सकता है। प्रत्येक कांग्रेसी को अपने दिल से पूछना चाहिए कि क्या उसमें शूरवीरों की अहिंसा को अपनाने की हिम्मत है? अपने ध्येय हेतु अपना तन-मन-धन खतरे में डालने की तैयारी के अतिरिक्त इस आदर्श स्थिति को पाने के लिए किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है। जो आदमी ज्यादा नुकसान से बचने के लिए अहिंसा के नाम पर जेल गया, उसे अहिंसा से नुकसान ही हुआ है। मौत से बचने के लिए अहिंसा का आश्रय लेकर उसने अहिंसा को भी लज्जित किया है। आज़ादी लाने वाले लोहे के बने हुए होते हैं। यह तो एक सीधी बात है कि अगर हम बिना मारे और बिना मारने की इच्छा तक रखे मौत का सामना कर सकते हैं, तो हमने स्वराज्य प्राप्त करने की और उसे रख सकने की योग्यता प्राप्त कर ली।

लेखक मुझे घबराहट दूर करने वाली एक लेखमाला लिखने को कहते हैं। मैं कुछ भी लिखूं केवल उसी से घबराहट नहीं मिट सकती। मैं कह चुका हूं कि शहरों के लोग जो आज घबराहट के शिकार हो रहे हैं, कभी अहिंसक थे ही नहीं। जब वे लोग जेल में गये तब भी उनके दिल में अहिंसा नहीं थी। कांग्रेस की सविनय अवज्ञा की लड़ाई में हमारे शहरों ने खासा अच्छा हिस्सा लिया था। अब उन्हें अपनी-अपनी जगहों पर डटे रह कर कायरों को काल्पनिक या वास्तविक खतरे से भागने की लालच का सामना करने की हिम्मत देनी चाहिए। यह सोचना मूर्खता है कि भागकर कोई कराल काल को धोखा दे सकेगा। हमें तो जब वह आये उसके सामने खड़ा रहना है और उसका स्वागत करना है। मेरे मेजबान श्री घनश्यामदास जी मुझे बताते हैं कि कुछ महीने पहिले एक व्यापारी परिवार, जिसने कि नोट को सोना में बदलवा दिया था, अपना सोना लेकर रेल में जा रहा था। रेल दुर्घटना हुई और क्षण भर में सारा का सारा परिवार समाप्त हो गया। सचमुच वह सोना उनके लिए मृत्यु का फन्दा था। युद्ध हो या न हो एक दिन तो हम सबको मरना ही है। लेकिन वह अनिवार्य घड़ी आने से पहिले ही हम क्यों मर जायँ?

—नई दिल्ली, १।७।'४०। ह० से०, ६।७।'४०]

● **जिसने शूरवीरों की अहिंसा का शस्त्र लिया है, वह अकेले सारे संसार की प्रबल शक्तियों का एक साथ सामना कर सकता है।**

- यह सोचना मूर्खता है कि भागकर कोई कराल काल को धोखा दे सकेगा।
- एक दिन तो हम सबको मरना ही है। लेकिन वह अनिवार्य घड़ी आने से पहिले ही हम क्यों मर जायं?

५०. खां साहब की अहिंसा

जहां हर तरफ 'शुद्ध अहिंसा' की होली जल रही है, वहां खां साहब की जीती-जागती अहिंसा कायम है। यह बात हमारे लिए चिराग़-जैसी रौशन है। खां साहब का निवेदन मनन करने योग्य है। उन्हें शोभा भी यही देता है। खां साहब पठान हैं। पठान तो तलवार-बन्दूक साथ लेकर पैदा हुआ है, ऐसा कहा जा सकता है।

रौलट ऐक्ट की लड़ाई के जमाने में जब खुदाई खिदमतगार आमादा हुए तब खां साहब ने उनके हथियार छुड़वा दिये। सरकार के साथ तो लड़ना ही था। लेकिन खां साहब ने अहिंसा का सच्चा अनुभव दूसरी जगह पाया। पठानों में बदला लेने का कानून ऐसा सख्त है कि अगर खानदान में खून हो गया हो तो उसका बदला खून से ही लेकर छुटकारा होता है। एक बार खून हुआ तो फिर उस खून का बदला लेना होता है। इस तरह पीढ़ी दर पीढ़ी खून का बदला खून से लेने का कहीं अन्त ही नहीं होता था। यह भी हिंसा की सीमा और उसका दिवाला था क्योंकि इस तरह खून का बदला लेते-लेते खानदान बरबाद हो जाते थे! खां साहब ने पठानों की ऐसी बरबादी देखी और अहिंसा में उनकी बेहतरी पाई। उन्होंने सोचा अगर मैं पठान लोगों को समझा सकूं कि हमको न सिर्फ़ खून का बदला नहीं लेना है बल्कि उसे भूल जाना है, तो एक दूसरे से बदला लेना बन्द हो जायगा। हम ज़िन्दा रह सकेंगे और ज़िन्दगी को कामयाब भी बना सकेंगे। यह नक़द का सौदा है। उनके अनुयायियों ने उसपर अमल किया। अब ऐसे खुदाई खिदमतगार पाये जाते हैं जो खून का बदला लेना भूल गये हैं। यह बलवान की अहिंसा या सच्ची अहिंसा कही जा सकती है।

अगर खां साहब कांग्रेस में रहते तो उनकी जिन्दगी का काम खाक़ में मिल जाता। वे पठानों से किस मुंह से कहते कि तुम लड़ाई में भरती हो जाओ और वह बदला न लेने का कानून अब रद्द हुआ समझो? ऐसी भाषा पठान समझ ही नहीं सकते। वे तो तुरन्त यही जवाब देते कि जर्मनी अपना बदला ले रहा है, इंगलैण्ड मुकाबला कर रहा है, हार जायगा तो खुद लड़ाई की तैयारी करेगा। इसलिए इस लड़ाई में और हमारे खून का बदला खून से लेने में रत्तीभर भी फर्क नहीं।

ऐसी दलीलों के सामने खां साहब की जबान बन्द हो जाती, इसलिए उन्होंने अपना ही काम जारी रखना पसन्द करके कांग्रेस से निकल जाने का फ़ैसला किया। खां साहब को अहिंसा का सन्देश पहुँचाने में कहां तक सफलता मिली है, वह मैं नहीं जानता। इतना ही जानता हूं कि उनकी श्रद्धा दिमागी नहीं, दिल से निकली हुई है, इसलिए वह सदा स्थिर है। उनके चेले कब तक उनकी तालीम में लगे रहेंगे यह खुद खां साहब भी नहीं कह सकते और न इसकी उनको परवाह है। उनको तो अपना फर्ज पूरा करना है; नतीजा खुदा पर छोड़ दिया है। उनकी अहिंसा का आधार कुरानशरीफ है। खां साहब पक्के मुसलमान हैं। वे मेरे साथ लगभग एक साल तक रहे। बावजूद बीमार होने के उन्होंने न कभी नमाज कजा की, न रोजा। खां साहब के दिल में दूसरे मजहबों के प्रति पूरा आदर है। उन्होंने गीता का भी थोड़ा अभ्यास किया है। वह हमेशा बहुत कम पढ़ते हैं। लेकिन जो पढ़ते हैं या सुनते हैं वह अगर अमल में लाने योग्य हो तो उस पर अमल करने में उन्हें देर नहीं लगती। वे लम्बी-चौड़ी दलीलों में नहीं पड़ते; थोड़ा समझा और खुद 'हां' या 'ना' कह सकते हैं। अगर खां साहब को स्पष्ट सफलता प्राप्त हुई तो उससे बहुत सारी उलझनें सुलझ सकती हैं। आज तो कुछ नहीं कहा जा सकता। चाक पर मिट्टी है, मटका उतरेगा या गागर, इस बात को खुदा ही ज्यादा अच्छी तरह जानता है।

--ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से०, २०।७।'४०]

५१. अहिंसा के लिए अलौकिक मनुष्यों की आवश्यकता नहीं

[गांधी जी के कांग्रेस से अलग होने का स्पष्टीकरण देने के लिए श्री महादेव ह० देसाई ने 'हरिजन' में एक विस्तृत लेख लिखा था। उस लेख में गांधी जी के अहिंसा-सम्बन्धी मर्मस्पर्शी उद्‌गार संकलित हैं। महायुद्ध प्रारम्भ होने पर गांधी जी की प्रतिक्रिया इसमें अंकित हैं।--संपा०]

सरकार कांग्रेस-कार्य-समिति को समस्त शासनतन्त्र सौंप दे, तो भी मैं हिन्दुस्तान को लड़ाई में भाग लेने की राय नहीं दे सकूँगा। अहिंसा में ऐसी असाधारण और अशक्य चीज़ क्या है? पचास वर्ष पहिले क्या कोई कह सकता था कि हवाई जहाज़ और रेलगाड़ी-जैसी चीजें सामान्य हो जायंगी? आज से तीस वर्ष पहिले क्या कोई कह सकता था कि हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे खुशी से जेल जाने को तैयार हो जायंगे और हँसते-हँसते लाठियां झेलेंगे? अहिंसा के प्रयोग के लिए कुछ अलौकिक स्त्री-पुरुषों की आवश्यकता नहीं, सामान्य मिट्टी के बने मनुष्य

इसका प्रयोग कर सकते हैं। कार्य-समिति के समस्त पन्द्रह सदस्य अहिंसा की कसौटी पर चढ़ने की तैयारी दिखायेंगे, इसकी आशा मैंने नहीं की थी।
--ह० से०, २०।७।'४०]

५२. आप मौत आने से पहिले ही मर गये?

[कई दिन तक बैठकें करने के बाद भी कांग्रेस कार्य-समिति गांधी जी के समग्र अहिंसा-सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार करने में असमर्थ रही। गांधी जी ने समिति को सम्बोधित करते हुए निम्नलिखित उद्‌गार व्यक्त किये थे।—संपा०]

आपने जो किया वह उचित किया है। आप ऐसा न करते तो आपका सत्य लज्जित होता। किन्तु मैं भी जो कुछ करना चाहता हूं वह न करूं तो मेरे सत्य को भी लज्जित होना पड़ेगा। मैं आप लोगों से अलग होकर आपकी और कांग्रेस की और अधिक सेवा करूंगा। आज तो मुझे लगता है कि जैसे समुद्र में आग लग रही हो, दरिया में लगी आग, बुझावे कौन? लेकिन सम्भव है कि आप अपनी भूल समझ जायं। मरने की घड़ी तो अभी आनी है—आप उसमें पूरे उतरेंगे या नहीं, इसे आप नहीं कह सकते। मैं भी नहीं कह सकता। मेरे सामने जब गोली चलेगी, तब मैं छाती खोलकर खड़ा रह सकूंगा या नहीं, यह मैं आज कैसे कह सकता हूं? किन्तु इतना कहूंगा कि मेरा खड़े रहने का धर्म है। इसी प्रकार आप लोग भी कह सकते थे। आज तो मुझे लगता है कि आप मौत आने से पहिले ही मर जाने-जैसी बात कर रहे हैं। यह ठीक नहीं है। किन्तु आपके हृदय में यह चीज़ जहां तक पैदा न हो, वहां तक क्या हो सकता है?
—ह० ज०। ह० से०, २०।७।'४०]

५३. पाकिस्तान और अहिंसा

[गांधी जी से किया गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—**(एक गुजराती मुसलमान भाई लिखते हैं) मैं अहिंसा को मानता हूं। अब पाकिस्तान के लिए अहिंसक रीति से किस तरह काम करूं?**

उत्तर—जिस वस्तु में न्याय नहीं है वह अहिंसक रीति से प्राप्त नहीं की जा सकती। जैसे कि चोरी अहिंसक रीति से नहीं की जा सकती। मैं पाकिस्तान को जिस तरह समझ पाया हूं उस तरह वह न्याययुक्त नहीं है। लेकिन आप उसे

न्याययुक्त मानते हैं इसलिए आप उसके लिए आन्दोलन ज़रूर कर सकते हैं। यदि आप इसे अहिंसक रीति से करें तो पहिले जो पाकिस्तान का विरोध करते हैं उन्हें आपको समझाना चाहिए। आप स्वयं इस बारे में निःस्वार्थ भाव से काम करते हैं ऐसी छाप लोगों पर पड़नी चाहिए। विरोधियों का कहना आदरपूर्वक सुनना चाहिए। और उनकी भूल हो तो उन्हें बतानी चाहिए। अन्त में मान लीजिए कि लोग आपकी नहीं सुनते और आपके इस मामले की सच्चाई के बारे में आपकी मान्यता क़ायम रहती है, तो जो लोग आपके रास्ते में विघ्न डालते हैं उनके खिलाफ आप अहिंसक असहयोग का प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा करते हुए आप विरोधी को नुकसान नहीं पहुँचायेंगे, नुकसान पहुंचाने की इच्छा नहीं करेंगे और अगर आपको नुकसान होता हो तो उसे सहन कर लेंगे। आपका मामला तटस्थ रीति से उचित माना जाता होगा तभी यह सब सम्भव होगा।

—सेवाग्राम। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० से०, ३।८।'४०]

५४. 'निर्बल बहुमत' की कैसे रक्षा हो?

इस्लामिया कालेज पेशावर के प्रोफेसर तीमूर एक पत्र में लिखते हैं :—

"इस समस्या के युग में अहिंसा की गुप्त शक्तियों की झाँकी कराकर आपने जगत् को अपना ऋणी बनाया है। शस्त्र धारण किये बिना बाहरी आक्रमण से हिन्दुस्तान की रक्षा करने का जो प्रयोग आप करना चाहते हैं वह बेशक युग-युगान्तरों में सबसे ज़बर्दस्त नैतिक प्रयोग के रूप में माना जायगा। इस प्रयोग के सिर्फ दो ही नतीजे हो सकते हैं—या तो हमला करने वालों की आत्मा उनके सामने खड़ी निर्दोष प्रजा के प्रेम से जागरित होगी और वे अपने किये पाप पर परीशान होंगे अथवा यह होगा कि अपने अहंकार के उन्माद में अहिंसा को शारीरिक शक्ति के क्षय और निर्वीर्यता का चिह्न मानकर वे समझने लगें कि एक कमजोर प्रजा को पराजित करके उसपर हुकूमत करना ही सही और ठीक बात है। यही सिद्धान्त जर्मन तत्ववेत्ता नीत्से का था और उसी पर हिटलर अमल कर रहा है। इस तरह भौतिक शक्ति से सज्जित राष्ट्र एक गरीब और शरीर से निर्बल प्रजा को पराजित कर पाये तो इसमें भारी हानि है। पराजित कौम के चन्द इने-गिने व्यक्ति भले अपने आत्म-बल का जौहर दिखाकर विजेता के आगे सिर झुकाने से इन्कार करें लेकिन प्रजा का अधिकांश तो आखिर उसकी शरण लेगा ही और अपनी प्राण-रक्षा हेतु गुलामी की पराभवकारी वृत्ति ग्रहण करेगा। ऐसे लोगों

में बड़े-बड़े विज्ञान-शास्त्री, तत्वज्ञ और कलाकार लोग भी आ सकते हैं। प्रतिभा और नैतिक बल यह तो भिन्न-भिन्न चीजें हैं। वह एक ही व्यक्ति में अक्सर इकट्ठे नहीं पाये जाते। जो सशक्त है उसे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए फौज की जरूरत नहीं। वह अपनी शरीर की आहुति देकर भी अपनी आत्मा की रक्षा कर लेगा। मगर ऐसे लोग इने-गिने ही हो सकते हैं। हर एक देश में बहुमत तो कमज़ोर निर्बल प्रजा का ही होता है। उन्हें रक्षा की आवश्यकता रहती है। सवाल यह है कि अहिंसा के उपाय से उनकी रक्षा कैसे हो? अहिंसा के उपाय से देश की रक्षा करने की नीति पर विचार करते हुए प्रत्येक देश-भक्त के सामने यह एक समस्या खड़ी हो जाती है। क्या आप 'हरिजन'-द्वारा इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे?"

इसमें शक नहीं कि निर्बल बहुमत की रक्षा की ज़रूरत है। अगर सबकी सब प्रजा सिपाही होती—फिर भले वह शस्त्रधारी हो या अहिंसात्मक—तो इस प्रकार की चर्चा का अवसर ही न आता। ऐसा दुर्बल बहुमत हमेशा हर देश में रहता ही है, जिसे दुर्जनों से रक्षा की आवश्यकता होती है। इसका पुरातन तरीका तो हम जानते ही हैं। उसको हम स्वीकार कर लें तो उसके अन्त में नाज़ीवाद को आना ही है। नाज़ीवाद की जरूरत महसूस की गई थी, तभी उसका जन्म हुआ। एक सारी की सारी क़ौम पर एक बार अत्याचार लादा गया था। उसको हटाने के लिए बड़ी चीख़-पुकार मच रही थी। इस अत्याचार का बदला लेने को हिटलर पैदा हुआ। वर्तमान युद्ध का अन्तिम परिणाम चाहे कुछ भी हो जर्मनी अपने को पहिले की तरह फिर अपमानित नहीं होने देगा। मानव जाति भी ऐसे अत्याचार को दुबारा सहन नहीं करेगी लेकिन एक ग़लती को मिटाने के लिए, एक अत्याचार का बदला लेने के लिए हिंसा का गलत रास्ता इख़्तयार करके और इस हेतु हिंसा शास्त्र को लगभग सम्पूर्णता के दर्जे तक पहुँचाकर हिटलर ने जर्मन प्रजा को ही नहीं बल्कि अधिकांश मानवजाति को हैवान-सा बना दिया है। अभी इस क्रिया का अन्त हमने नहीं देखा, क्योंकि इसके मुक़ाबले में ब्रिटेन को भी, जब तक वह हिंसा के पुरातन मार्ग को पकड़े बैठा है, अपने सफल रक्षण के लिए नाजी तरीके इख़्तयार करने होंगे। इस तरह हिंसा नीति को ग्रहण करने का प्राकृतिक और अनिवार्य परिणाम यही होगा कि इंसान—इसमें निर्बल बहुमत भी आ जाता है—अधिक पाशवी स्वभाव वाला बने। क्योंकि निर्बल बहुमत को आवश्यक मात्रा में अपने रक्षकों को सहयोग देना ही होगा।

अब मान लीजिए कि इसी बहुमत की अहिंसा-नीति-द्वारा रक्षा की जाती है। पाशविकता, धोखेबाजी, द्वेषादि को तो इसमें स्थान ही न होगा। परिणाम यह होगा कि दिन-दिन रक्षक दल का नैतिक वातावरण सुधरेगा। इसके साथ

ही, जिसकी रक्षा की जा रही है, उस निर्बल बहुमत का भी नैतिक उत्थान होगा। इसमें मात्र श्रेणी का अन्तर हो सकता है, किन्तु क्रिया का नहीं।

लेकिन इस तरीके में मुश्किल तब पेश आती है, जब हम अहिंसा के साधन को अमल में लाने की कोशिश करते हैं। हिंसात्मक युद्ध के लिए शस्त्रधारी सिपाही ढूंढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन अहिंसात्मक सिपाहियों का रक्षा दल बनाते समय हमें बड़ी सावधानी से भरती करनी पड़ती है। रुपये या वेतन के लोभ से तो ऐसे सिपाही पैदा नहीं किये जा सकते। यह खेल ही भिन्न प्रकार का है। किन्तु पचास वर्ष तक अहिंसक युद्ध के अनुभव के परिणामस्वरूप भविष्य के लिए आज मेरी आशा दृढ़ बनी है। दुर्बल बहुमत की अहिंसा शस्त्र-द्वारा रक्षा करने में मुझे पर्याप्त सफलता मिली है। लेकिन अहिंसा-जैसे दैवी शस्त्र के अन्दर छुपी हुई प्रचण्ड शक्ति को खोज निकालने के लिए पचास साल की अवधि क्या चीज़ है? इसलिए इस पत्र के लेखक की तरह जो लोग अहिंसा शस्त्र के प्रयोग में रस लेने लगे हैं, उन्हें चाहिए कि यथाशक्ति और यथावसर इस प्रयोग में शामिल हों, यह प्रयोग अब एक अत्यन्त कठिन किन्तु रोचक मंज़िल पर पहुंचा है। इस अपरिचित महासागर में मैं खुद अपना रास्ता अभी ढूंढ़ रहा हूं। क़दम-क़दम पर मुझे थाह लेनी पड़ती है कि मैं कितनी गहराई में हूं। कठिनाइयों से मेरी हिम्मत कम नहीं होती, मेरा उत्साह और बढ़ता ही है।

— सेवाग्राम, ९।८।'४०। ह० ज०। ह० से०, २४।८।'४०]

- **हिंसात्मक युद्ध के लिए शस्त्रधारी सिपाही ढूंढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती। लेकिन अहिंसात्मक सिपाहियों का रक्षा-दल बनाते समय हमें बड़ी सावधानी से भर्ती करनी पड़ती है।**
- **दुर्बल बहुमत की अहिंसा-शस्त्र द्वारा रक्षा करने में मुझे पर्याप्त सफलता मिली है।**

५५. अहिंसा के सम्बन्ध में एक शंका

[अहिंसा के सम्बन्ध में गांधी जी से पूछा गया एक प्रश्न और उसका उत्तर]

प्रश्न—आप कहते हैं कि अहिंसक को सब कुछ खो देने के लिए तैयार रहना चाहिए क्योंकि जो खोया जा सकता है उन वस्तुओं का सम्बन्ध आत्मा से नहीं, शरीर से है। यदि हम हर समय सब कुछ खोने को तैयार रहें तो हिंसक या अहिंसक युद्ध की आवश्यकता ही क्या है? युद्ध तो इसीलिए करना पड़ता है कि हम

अपने धन-जन को आक्रमणकारी के हमले से बचायें। इसके साथ ही आप यह भी कहते हैं कि यदि हमारे मन में अपने धन-जन की रक्षा की इच्छा होगी, तो हमारी अहिंसा अशुद्ध हो जायगी। इनका मेल कैसे होगा?

उत्तर—आप का प्रश्न बहुत अच्छा है। मैंने जो लिखा है वह अहिंसक सेना के लिए है। हिन्दुस्तान को ही लीजिए, करोड़ों लोग अहिंसक सेना में भर्ती नहीं होंगे। लेकिन जो उनकी रक्षा के लिए सत्याग्रही बनेंगे उनको सर्वस्व का मोह छोड़ना होगा।

—सेवाग्राम, २१९।'४०। ह० से०, ७१९।'४०]

५६. कांग्रेसी अहिंसा

मेरे ऊपर पत्रों की वर्षा हो रही है। कई लोग तो पत्र रजिस्ट्री से भी भेजते हैं जिससे वे कहीं रास्ते में गुम न हो जायं। इन सब पत्रों का सारांश यह है कि पूना से आये कांग्रेसी अहिंसावादी भाई-बहिनों के समक्ष मैंने अहिंसा की जो व्याख्या की उससे मैंने अहिंसा के अर्थ को बहुत संकुचित कर दिया। यह लिखने वाले भूल जाते हैं कि मैंने उन लोगों को कांग्रेसी अहिंसा की ही मर्यादा बताई थी। मैं स्वयं तो खटमल, साँप, बिच्छू तक को भी नहीं मारूंगा। मांस भी नहीं खाऊंगा। किन्तु इस प्रकार की अहिंसा कांग्रेस पर नहीं लादी जा सकती। कांग्रेस कोई धार्मिक संस्था नहीं है; यह राजनीतिक संस्था है। उसकी अहिंसा जन-समाज के परस्पर सम्बन्धों तक ही सीमित है। यदि कांग्रेस में अहिंसा को इससे आगे ले जाने का प्रयत्न किया जाय तो हिन्दुओं के सिवा अन्य कोई उसमें सम्मिलित न हो सकेगा। इतना ही नहीं, हिन्दुओं में भी वैष्णव और जैन ही आ सकेंगे। करोड़ों मांस-मछली खाने वाले हिन्दुओं को निकलना पड़ेगा। यह प्रश्न इतना सीधा और स्पष्ट है कि इसके विषय में शिकायत ही कैसे हो सकती है, यह मेरी समझ में नहीं आता।

पत्र लिखने वालों को समझना चाहिए कि बहुत से मुसलमान भाई तो अहिंसा के बारे में कांग्रेस की मर्यादा को भी नहीं मानते। इसके अतिरिक्त स्वयं कांग्रेस ने वर्धा और पूना के प्रस्ताव पारित करके अपनी अहिंसा को इतना मर्यादित कर दिया है कि मेरी दृष्टि में वह लगभग निष्क्रिय हो गई है। मानव से आगे बढ़कर अन्य प्राणियों तक अहिंसा का प्रयोग करने का प्रयत्न किया जाय तो सम्भव है कि हम न इधर के रहें न उधर के। इस अहिंसा को व्यापक होने में बहुत समय लग जायगा। साधक के लिए तो अवश्य आज भी इसका उपयोग है, परन्तु सामान्य

जनता में एक दूसरे के प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न हो और कोई किसी को शत्रु न माने तो मैं कहूंगा कि मानव जाति ने बहुत-कुछ उन्नति कर ली। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हम केवल जीवदया का पालन करके काम-क्रोध आदि को नहीं जीत सकते। इन छः शत्रुओं को जीतने के लिए मनुष्य की मनुष्य के प्रति अहिंसा ही काम आती है। जिस व्यक्ति ने इन षड्रिपुओं को जीत लिया है, जिसके मन में मनुष्य मात्र के प्रति प्रेमभाव ही भरा है, जब वह समस्त व्यवहार में प्रेम का ही प्रयोग करता है तो मांसाहारी होते हुए भी वह सहस्र-वन्दन के योग्य है। इसके विपरीत जो मनुष्य काम और क्रोध का दास बना हुआ है, संसार को धोखा देने में ही अपना समय व्यतीत करता है और फिर प्रतिदिन चींटियों को आटा खिलाता है, खटमल को भी नहीं मारता, उसकी जीवदया नाम-मात्र की है; वह आत्मज्ञान की सूचक नहीं। वह केवल रूढ़िवशता की उत्पत्ति है। सम्भव है कि वह दम्भयुक्त भी हो।

-- सेवाग्राम, १०।९।'४०। ह० ब०। ह० से० १४।९।'४०]

- **मैं स्वयं तो खटमल, साँप, बिच्छू तक को भी नहीं मारूंगा। मांस भी नहीं खाऊंगा। किन्तु इस प्रकार की अहिंसा कांग्रेस पर नहीं लादी जा सकती।**
- **हम केवल जीवदया का पालन करके काम, क्रोध आदि को नहीं जीत सकते। इन छः शत्रुओं को जीतने के लिए मनुष्य के प्रति मनुष्य की अहिंसा ही काम आती है।**
- **जिस व्यक्ति ने इन षड्रिपुओं को जीत लिया है; जिसके मन में मनुष्य-मात्र के प्रति प्रेम-भाव ही भरा है, जब वह समस्त व्यवहार में प्रेम का ही प्रयोग करता है, तो मांसाहारी होते हुए भी वह सहस्र वन्दन के योग्य है।**

५७. मेरा स्वप्न

यदि हम अहिंसा को हृदय और बुद्धि से स्वीकार करके इसपर अमल करेंगे तो एक दिन ऐसा आयेगा कि सारा संसार हमारे पास आकर पूछेगा कि वह लड़ाई से कैसे छुटकारा पा सकता है? ब्रिटेन आज प्रति दिन १०-१२ करोड़ रुपये युद्ध-व्यय करता है। हम ३० करोड़ लोग एक आवाज से उन्हें क्यों नहीं कह सकते कि यह अगणित धन का अपव्यय क्यों किया जा रहा है? इससे तो हमारे यहां करोड़ों गरीब लोगों की भुखमरी मिट सकती है। मैं उनकी वीरता की प्रशंसा करता हूं, किन्तु उनकी बुद्धि की प्रशंसा नहीं कर सकता। आज जो काम वे कर

रहे हैं, सरासर मूर्खता है। हमें जो लगता है वह आपको हम साफ़-साफ़ सुना सकें और शान्ति से अपनी आज़ादी प्राप्त कर सकें, तो हम एक दिन सारे जगत में भी शान्ति का राज्य-स्थापन कर सकेंगे। आज यह सब एक स्वप्न-सा है; छोटे मुँह बड़ी बात करना है।

किन्तु हम यह कर सकें तो आज़ादी तो हमारी जेब में ही है। इतना ही नहीं हम संसार के समक्ष एक शानदार उदाहरण रख सकते हैं। हिटलर का बुद्धिबल आज मेरे दिमाग को परेशान किये देता है। लेकिन मेरे निकट यह बुद्धिबल निकम्मा है। आज जो चीज मैंने हिन्दुस्तान के आगे रखी है वह ऐसी है कि हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, चर्चिल ये सब मिलकर इसका मुकाबला करें तो भी इसे हरा नहीं सकते।

— ह० से०, २१।९।'४०]

५८. जहां अहिंसा नहीं वहां हिंसा आयेगी

अब एक ऐसा युग आ रहा है कि जहां अहिंसा का प्रचलन न होगा, वहां हिंसा को आना ही है।

— ह० से०, १८।१।'४२]

५९. भारतीय संस्कृति और अहिंसा

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रजत जयन्ती समारोह पर दिये गये बापू जी के भाषण का अंश।—संपा०]

....लोकमान्य तिलक के अनुसार हमारी सभ्यता दस हजार वर्ष पुरानी है। बाद के कई पुरातत्वशास्त्रियों ने उसे इससे भी पुरानी बताया है। इस सभ्यता में अहिंसा को परम धर्म माना गया है। अतएव इसका कम से कम एक नतीजा तो यह होना चाहिए कि हम किसी को अपना शत्रु न समझें। वेदों के समय से हमारी यह सभ्यता चली आ रही है। जिस तरह गंगा जी में अनेक नदियां आकर मिली हैं, उसी तरह इस देश की संस्कृति-गंगा में भी अनेक संस्कृति-रूपी सहायक नदियां आकर मिली हैं। यदि इन सब का कोई सन्देश हमारे लिए हो सकता है, तो यही कि हम सारे संसार को अपनायें और किसी को अपना शत्रु न समझें।

— ह० से०, १।२।'४२]

६०. कांग्रेस स्वयंसेवक और अहिंसा

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने कांग्रेसी-स्वयंसेवक-दलों की स्थापना के सम्बन्ध में जो सूचनाएं निकाली हैं, उनमें यह साफ़-साफ़ कहा गया है कि यह संगठन अहिंसा के आधार पर होना चाहिए। परन्तु कई कांग्रेस कमेटियों ने जो प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किये हैं, उनमें यह कहा गया है कि स्वयंसेवकों के लिए अहिंसा का पालन केवल तभी तक आवश्यक है, जबतक वे कार्य पर हों। कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने इसी आशय के प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किये हैं। कर्नाटक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की ओर से प्रान्त में कांग्रेस स्वयंसेवक-दलों का संगठन करने के लिए नियुक्त किये गये प्रान्त के प्रधान दलपति ने, स्वयंसेवकों की भर्ती के लिए की गई एक सार्वजनिक सभा में, यहां तक कह दिया था कि संकट की अवस्था में सख़्त जरूरत मालूम होने पर, कांग्रेस स्वयंसेवक ड्यूटी पर रहते हुए भी, आत्म-रक्षा के लिए हिंसा के अधिकार का प्रयोग कर सकता है। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा था कि स्वयंसेवक का यह कार्य कांग्रेस की कार्यकारिणी के आदेश के विरुद्ध न होगा। इन सब बातों से बहुत गड़बड़ी पैदा हो रही है। यदि कार्यकारिणी के आदेशों पर सख्ती से अमल करने की जरूरत न हो, तो बेहतर यही होगा कि अहिंसा की शर्त को बिलकुल उड़ा दिया जाय, इसकी अपेक्षा कि लोग अपने-अपने विचारों के अनुसार उसमें परिवर्तन करके उसे शिथिल बनायें। इसके बारे में आपकी क्या राय है?

उत्तर—इस प्रश्न के समान जिन प्रश्नों में कांग्रेस की मुहर की आवश्यकता हो, उनके बारे में मेरे उत्तर को अधिकृत न माना जाय। इस प्रश्न के बारे में मेरी अपनी राय बिल्कुल स्पष्ट और निश्चयात्मक है। कांग्रेस के नाम से या कांग्रेस-द्वारा संगठित किसी भी स्वयंसेवक दल में आत्म-रक्षा के लिए हिंसा को कोई स्थान नहीं। कांग्रेस की समूची अहिंसक रचना को जोखिम में डाले बिना इस शर्त को ढीला नहीं किया जा सकता। आत्मरक्षा के लिए हिंसा का प्रयोग करने के सम्बन्ध में कांग्रेस की अनुमति होने की जो बात कही जाती है, उसका अर्थ केवल इतना ही है कि कांग्रेस व्यक्तिगत कांग्रेसजनों के निजी और खानगी जीवन पर कोई नियन्त्रण नहीं रख सकती। अपने निजी जीवन में कांग्रेसजन कांग्रेस के नियमों से बंधे हुए नहीं हैं। यदि उनपर किसी का बन्धन है, तो वह उस नैतिकता का है, जिसे उन्होंने स्वेच्छा से अपनाया है।

— दिल्ली जाते हुए २६।३।'४२। ह० ज०। ह० से०, ५।४।'४२]

६१. शुद्ध अहिंसावादी क्या करें ?

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न--कई ऐसे कांग्रेसी हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत थोड़ी है, जिन्हें अहिंसा में पूर्ण श्रद्धा है और जो उसी के आधार पर संगठन भी करना चाहते हैं। क्या कांग्रेस कमेटियों को ऐसे लोगों का संगठन नहीं करना चाहिए ? अथवा क्या उन्हें ऐसे लोगों को कांग्रेस की छत्रछाया में अपने दल संगठित करने की अनुमति नहीं देनी चाहिए ?

उत्तर--कांग्रेस कमेटियां अलग-अलग दलों का संगठन नहीं कर सकतीं। कांग्रेस की अपनी एक ही नीति हो सकती है। जहां तक हिन्दुस्तान के भीतरी मामलों का सम्बन्ध है आज वह नीति अहिंसा की है। इसलिए मैं अलग से शान्ति-समितियां कायम करने का कोई कारण नहीं देखता। प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं में सब आदमी एक-से विचार के नहीं होते; सबकी श्रद्धा एक-सी नहीं होती। अतएव शुद्ध अहिंसावादियों का काम है कि वे लगभग श्रद्धा वाले स्त्री-पुरुषों के बीच रह कर खमीर का काम करें, यानी उनकी श्रद्धा दृढ़ बनायें। यह वे तभी कर सकते हैं; जब वे स्वयं विनम्र हों और अपने मत के आग्रही न हों।

-- दिल्ली जाते हुए २६।३।'४२। ह० ज०। ह० से०, ५।४।'४२]

६२. मानव प्रकृति में विश्वास और अहिंसा

....आपकी आपत्ति का मूल कारण यह है कि आप यह मानने को प्रस्तुत नहीं कि ब्रिटेन कभी भी स्वेच्छा से न्याय की बात करेगा। किन्तु चूंकि अहिंसा की शक्ति में मेरा विश्वास है, इसलिए मैं इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं कर सकता कि मनुष्य की प्रकृति कभी बदल नहीं सकती।

-- सेवाग्राम, ३०।५।'४२ ह० ज०। ह० से०, ७।६।'४२]

६३. हमारे पास केवल अहिंसा का शस्त्र है

हमारे पास न तो सेना है और न युद्ध-सामग्री अथवा युद्धशास्त्र का नाम लेने योग्य तनिक भी अनुभव या ज्ञान। केवल अहिंसा का ही शस्त्र हमारे पास है।...

....अहिंसक और हिंसक प्रतिरोध दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते।...

-- दो अमरीकी पत्रकार श्री चैपलिन और श्री बेलडन की भेंटवार्ता का अंश। सेवाग्राम, ७।६।'४२। ह० ज०। ह० से०, १४।६।'४२]

६४. एक चुनौती

मेरे सामने डाक से आये हुए तीन पत्र पड़े हैं। इन पत्रों में मुझे इस बात के लिए झिड़का गया है कि मैं सिन्ध जाकर हूरों से रूबरू बातचीत क्यों नहीं करता? इनमें से दो तो मैत्रीपूर्ण शैली के हैं। तीसरे के लेखक एक आलोचक हैं, जिन्हें अहिंसा में श्रद्धा नहीं। इस तीसरे पत्र का उत्तर देने की आवश्यकता प्रतीत होती है। पत्र का मुख्य अंश इस प्रकार है—

"मैं गहरी दिलचस्पी के साथ आपके लेख पढ़ता रहता हूं, क्योंकि मैं यह देखना चाहता हूं कि आपके अन्ध भक्तों पर और अज्ञान जनता पर उनका क्या असर होता है। अतएव मैं आपका आभारी होऊंगा यदि आप नीचे-लिखे प्रश्नों पर, जो अहिंसा के विषय में बुनियादी और नये सवाल पेश करते हैं, प्रकाश डालें।

"आप अपने आश्रम में अनेक सत्याग्रहियों को तैयार करते रहे हैं। उन्हें आपके प्रत्यक्ष निरीक्षण और शिक्षा का लाभ मिलता ही होगा। आप पुकार-पुकारकर यह कहते आये हैं कि अहिंसा के द्वारा हिंसा का सामना प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है। आज पूर्व में जपानियों का आक्रमण और पश्चिम में हूरों का विद्रोह प्रारम्भ हो चुका है। जिस अहिंसा का उपदेश आप एक अर्से से करते आये हैं और जिसको आचरण में लाने के लिए बहुत दिनों से अनुकूल अवसर की राह देखी जाती रही है, क्या उस पर अमल करने का यह अवसर नहीं है?

"किन्तु कुछ कर दिखाने के बदले आप तो 'हरिजन' में लेख लिखकर ही सन्तुष्ट हो रहते हैं। यदि हिटलर और स्टालिन भी अपनी सेनाओं को जगह-जगह भेजने के बदले 'प्रावदा' में या ऐसे ही किसी दूसरे पत्र में केवल लेख ही लिखा करें, तो आप उन्हें क्या कहियेगा? सिन्ध की धारासभा के सदस्यों को त्यागपत्र देकर हूरों के बीच जाने की सलाह देने के बदले आप अपने शिक्षाप्राप्त सत्याग्रहियों के एक दल को वहां भेजकर अपने सिद्धान्त की परीक्षा क्यों नहीं करते?

"क्या सत्याग्रहियों का अपना यह धर्म और कर्तव्य नहीं है कि वे देश में जहां कहीं उपद्रव हों, वहां जाकर उनका सामना करें? क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जब आपके आश्रम पर संकट आ खड़ा होगा, तभी उसका सामना किया जायगा, उससे पहिले नहीं। और यदि यही बात हो, तो क्या आपका सिद्धान्त निष्क्रियता का सिद्धान्त नहीं बन जाता?"

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि स्वयं सिन्ध जा सकता तो अवश्य ही कुछ-न-कुछ कर सका होता। पहिले मैं ऐसे काम कर चुका हूं और उनमें से कुछ में सफ़ल भी हुआ हूं। अब मैं इतना बूढ़ा हो गया हूं कि इस तरह की यात्रा नहीं कर

सकता। जो थोड़ी शक्ति मुझमें शेष है, उसे मैं अपने उस युद्ध के लिए सुरक्षित रख रहा हूं, जो मुझे अपने जीवन का अन्तिम युद्ध-सा प्रतीत होता है।

मैंने अपने जीवन का यह ध्येय कभी नहीं बनाया कि जहां-जहां लोगों पर संकट आये वहां-वहां पहुंचकर मैं उन्हें संकट से मुक्त करूं, और प्राचीन युग के शूर-सामन्तों की तरह इसे अपना एक व्यवसाय ही बना लूं। मैं तो नम्रतापूर्वक लोगों को यह बताने की कोशिश करता रहा हूं कि वे स्वयं अपनी कठिनाइयों का किस प्रकार निवारण कर सकते हैं। सिन्ध के बारे में मैं फिर कहता हूं कि मेरी सम्मति सत्य ही है। कांग्रेसजनों का यह स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वे हूरों के प्रदेश में जाते और उनको शान्ति के मार्ग पर लाने के प्रयत्न में स्वयं को खपा देते। यदि अहिंसा में उन्हें श्रद्धा न थी, तो वे शस्त्रों का भी उपयोग कर सकते थे। अहिंसा के बन्धन से मुक्त होने के लिए उन्हें कांग्रेस से भी त्यागपत्र दे देना चाहिए था। यदि हमें स्वतन्त्र बनने की क्षमता प्राप्त करनी है, तो अहिंसा से हो या हिंसा से, आत्मरक्षा की कला हमें सीखनी ही होगी। प्रत्येक नागरिक को यह समझना चाहिए कि दु:ख में अपने पड़ोसी की सहायता करना उसका धर्म है।

यदि मैं इन आलोचक के सुझाये हुए तरीक़े को स्वीकार करता तो लोगों को परोपजीवी बनाने में ही सहायक हुआ होता। इसलिए यह अच्छा ही हुआ कि मैंने दूसरों की रक्षा करने की शिक्षा नहीं ली। यदि मरने के बाद मेरे लिए यह कहा जा सके कि मैंने अपने जीवन का अधिकांश लोगों को स्वावलम्बी बनाने में और प्रत्येक परिस्थिति में आत्मरक्षा की शक्ति प्राप्त करने का मार्ग दिखाने में ही बिताया तो उससे मुझे सन्तोष होगा।

पत्र-लेखक ने यह सोचकर एक बड़ी भूल की है, कि लोगों को संकट से बचाना ही मेरे जीवन का ध्येय है। इस तरह का दावा तो डिक्टेटर ही करते हैं। लेकिन कोई तानाशाह अभी तक यह सिद्ध नहीं कर सका, कि उसका यह दावा सच है।

यही नहीं पत्रलेखक तो मेरे विषय में यह भी मानते हैं कि जब आश्रम पर ऐसा कोई संकट आ पड़ेगा, तो वह भलीभांति उसका प्रतिकार कर सकेगा। यदि ऐसा हुआ, तो मुझे बहुत ही सन्तोष होगा, और मैं मानूंगा कि मेरा जीवन-कार्य पूरी तरह सफल हुआ। लेकिन मैं तो इसका भी दावा नहीं कर सकता। सेवाग्राम तो केवल कहने के लिए आश्रम है। लोगों ने उसे आश्रम कहना शुरू किया, और वह नाम चल पड़ा। वास्तव में तो वह ऐसे पचरंगी लोगों का एक जमघट है, जो भिन्न भिन्न उद्देश्यों को लेकर वहां आते और रहते हैं। समान उद्देश्य को लेकर स्थायी रूप से रहने वाले तो उनमें कठिनता से ५-६ व्यक्ति ही होंगे। परीक्षा

का समय आने पर ये थोड़े से लोग किस सीमा तक खरे उतरेंगे उसे तो अभी देखना शेष है।

बात यह है कि अहिंसा ठीक उसी प्रकार काम नहीं करती, जिस प्रकार हिंसा करती है। उसका तरीका उल्टा है। सशस्त्र आदमी स्वभावतः अपने शस्त्रों पर आधार रखता है। जो मनुष्य जान-बूझकर निःशस्त्र बन जाता है, वह उस अदृश्य शक्ति पर आधार रखता है जिसे कवि अपनी भाषा में ईश्वर और वैज्ञानिक अज्ञात कहते हैं। अज्ञात का अर्थ अभाव ही नहीं करना चाहिए। जो सभी ज्ञात और अज्ञात शक्तियों का आधारस्वरूप है, वही ईश्वर है। इस आधारस्वरूपिणी शक्ति में जिस अहिंसा को विश्वास नहीं वह अहिंसा कूड़े-करकट की तरह निकम्मी चीज है।

मुझे आशा है कि आलोचक सज्जन अपने प्रश्न के गर्भ में निहित भूल को समझ सकेंगे और साथ ही यह भी अनुभव करेंगे कि जिस सिद्धान्त पर मैंने अपने जीवन का निर्माण किया है, वह निष्क्रियता का नहीं बल्कि अतिशय क्रियाशीलता का सिद्धान्त है।

वास्तव में उन्हें अपना प्रश्न इन शब्दों में पूछना चाहिए था, आप बाईस वर्ष से हिन्दुस्तान में काम कर रहे हैं, फिर भी क्या कारण है कि आप अबतक इतनी संख्या में ऐसे सत्याग्रही खड़े नहीं कर सके, जो बाह्य और आन्तरिक संकटों का सामना कर सकें? इसके उत्तर में मैं यह कहूंगा कि एक समूचे राष्ट्र को अहिंसक शक्ति की शिक्षा देने के लिए बाईस साल का समय कुछ भी नहीं है। इसका यह अर्थ भी नहीं कि उचित अवसर आने पर पर्याप्त संख्या में लोग इस शक्ति का परिचय दे ही न सकेंगे। वह अवसर अब आया प्रतीत होता है। इस लड़ाई में आम जनता के साथ सैनिकों की और हिंसा के साथ अहिंसा की भी समान रूप से परीक्षा हो रही है।

— सेवाग्राम, १८।६।'४२। ह० ज०। ह० से०, २८।६।'४२]

● अहिंसा ठीक उसी प्रकार काम नहीं करती, जिस प्रकार हिंसा करती है।

६५. एक चेतावनी

....मैं यह मानता हूं कि अगर हिन्दुस्तान को सच्ची आजादी पानी है और उसके द्वारा दुनिया को भी, तो आज नहीं तो कल देहातों में ही रहना होगा, झोपड़ियों में, महलों में नहीं। कई अरब आदमी शहरों में और महलों में सुख-शान्ति से कभी नहीं रह सकते, न एक दूसरों का खून करके अर्थात् हिंसा से, न झूठ

से यानी असत्य से। सिवाय इस जोड़ी के, याने सत्य और अहिंसा के मनुष्य जाति का नाश ही है, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं। उस सत्य और अहिंसा का दर्शन हम देहातों की सादगी में ही कर सकते हैं। वह सादगी चर्खा में और चर्खा में जो चीज भरी है उसी पर निर्भर है।....

-- श्री जवाहरलाल नेहरू को लिखे गये पत्र से। ५।१०।'४५]

६६. अहिंसा की शक्ति रामबाण

आप का फ़ौज का सन्देश मिल गया था, यही बात मुझे ए० पी० आई०[1] वालों से भी मालूम हुई थी। मैंने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया। ध्यान देने लायक कुछ मालूम भी नहीं हुआ। मेरे ख्याल से हमें विश्वास के साथ नाव चलाते रहना चाहिए। जो होता है उसे देखते रहें। जो हथियारबन्द हैं उन्हें क्या चिन्ता? और हथियारों में भी रामबाण, जो सब भयों को मिटाने वाला है।

मांहे पड्या ते महासुख माणे
देखनारा दाझे जोने।[2]

प्रीतम की यह पंक्ति कान में गूंजती रहती है।....

-- सरदार वल्लभभाई पटेल को लिखे गये पत्र से १९।३।'४६]

६७. हिंसा की भयंकरता

हिंसा भयंकर चीज है। फिर चाहे वह किसी अरब के हाथों होती हो या यहूदी के। यदि हिंसक भावना की छूत आम जनता को लग जाय तो दुनिया बेहाल हो जाय। अन्ततः वह अपने साथ समूची जाति का नाश करती है।

-- ह० ज०। (श्री प्यारेलाल के द्वारा प्रस्तुत 'एक अंग्रेज मित्र के साथ' लेख का अंश)। ह० से०, ७।४।'४६]

---

१. एसोशियेटेड प्रेस आफ़ इण्डिया।

२. जो अन्दर पहुंच गये हैं वे तो महासुख मानते हैं, लेकिन बाहर से देखनेवाले ईर्ष्या की आग में जलते हैं।

६८. अहिंसा और विदेशी आक्रमण

......कांग्रेस ने अहिंसा के ज़रिए आज़ादी हासिल करने का एलान किया है। लेकिन वह बाहर के हमलों से देश की आज़ादी की रक्षा भी अहिंसा से करेगी या नहीं, इसका उसने कोई फ़ैसला नहीं किया है। मुझे तो यह बात साफ़ दीखती है कि यदि आज़ादी सबके लिए है, लूलों-लँगड़ों और कमजोरों आदि के लिए भी है, तो उसकी रक्षा सब को करनी होगी। लेकिन मेरी देहाती समझ में यह बात नहीं आती कि गोला-बारूद और शस्त्रास्त्रों पर आधारित रहकर यह सब कैसे हो सकेगा? इसलिए तो मैं अहिंसा पर डटा हुआ हूं, आत्मा की शक्ति का सहारा लेता हूं। शरीर की कमजोरी इसमें कोई रुकावट नहीं डाल सकती। अहिंसा के हथियार से एक स्त्री या बालक भी हर किसी हथियारधारी दानव का सामना कर सकता है।......

-- ह० से०, २१।४।'४६]

६९. अपराधी के प्रति व्यवहार

प्रश्न--आपकी अहिंसा के अनुसार आजाद हिन्दुस्तान में चोरी, लूटमार, हत्या आदि करने वाले अपराधियों के साथ कैसा बर्ताव किया जायगा?

उत्तर--अहिंसक ढंग के आजाद हिन्दुस्तान में गुनाह होंगे लेकिन कोई गुनहगार न होंगे। उन्हें सजा नहीं दी जायगी। किसी भी मर्ज की तरह गुनाह भी एक मर्ज या बीमारी है और वर्तमान समाज-व्यवस्था का फल है। इसलिए हत्या आदि सभी तरह के अपराधों को बीमारी समझा जायगा और उनका वैसा ही इलाज भी होगा। यह दूसरी बात है कि हिन्दुस्तान कभी वैसा बनेगा या नहीं।

— ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, ५।५।'४६]

७०. सत्य-अहिंसा और रामनाम

सत्य और अहिंसा पर अमल करने के लिए जितनी दवाइयां हैं उनमें सबसे अच्छी दवा राम नाम है।

— ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १६।६।'४६]

७१. अहिंसक बलिदान और हरजाना

मुझसे पूछा गया है, क्या मृत भाई रज्जबअली के भाई या दूसरे निकट सम्बन्धी उनके खून के लिए सरकार से पैसों के रूप में हरजाना माँग सकते हैं? मरनेवाला स्वयं इस प्रकार की मौत को नुकसान नहीं मानता। सच पूछा जाय तो इसी तरह की हत्याएं, अगर उन्हें बदले की भावना से पूरी तरह अछूती रक्खा जाय—अन्त में हत्या को मिटा देंगी। ज्यों ही हरजाना वसूल करने या बदला लेने की बात उठी कि स्वेच्छा से किये गये बलिदान की समाप्ति हुई। और, इस तरह मृतक की आत्मा को शान्ति कैसे मिल सकती है?

खून का बदला खून से या हरजाने से कभीं नहीं लिया जा सकता। खून का बदला लेने का केवल एक ही रास्ता है और वह यह कि हम बदले की इच्छा न रखते हुए स्वयं को बलिदान कर दें। जो इस सिद्धान्त को मानते हैं, वे सपने में भी अपने प्यारे सम्बन्धियों की हत्या का हरजाना माँगने की बात नहीं सोचेंगे। इसके विरुद्ध जान के बदले जान लेने का सिद्धान्त केवल हत्याओं की संख्या ही बढ़ायेगा। आज सब इस बात को जानते हैं। बदले या हरजाने से किसी एक आदमी को भले ही सन्तोष हो जाय, लेकिन मेरा यह विश्वास है कि इससे न तो समाज उन्नति कर सकता है और न उसमें शान्ति स्थापित हो सकती है।

प्रश्न यह उठता है कि बदला ही जिस समाज का क़ानून है, उसमें एक आदमी क्या करे? इसका उत्तर कहने में नहीं बल्कि करके दिखा देने में है। और, इसका उदाहरण वे ही पेश कर सकते हैं जिनके साथ अन्याय हुआ है। इसलिए इसका अन्तिम निर्णय भाई रज्जबअली के रिश्तेदारों पर ही छोड़ देना ठीक होगा। मेरा कर्तव्य इतना ही है कि मैं उन्हें अहिंसा का रास्ता, जैसा कि मैं उसे जानता हूं, दिखा दूं।

— ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से०, १८।८।'४६]

- **खून का बदला खून से या हरजाने से कभी नहीं लिया जा सकता।**
- **जान के बदले जान लेने का सिद्धान्त केवल हत्याओं की संख्या ही बढ़ायेगा।**

७२. क्या करें?

एक दोस्त ने नीचे लिखे प्रश्न पूछे हैं:—

"शुरू से आप यह मानते और कहते आये हैं कि गुण्डों के हमला करने पर भी लोगों को पूरी तरह अहिंसक रहना चाहिए। जब माँ-बहिनों पर हमले हों या

उनकी लाज लूटी जाय, क्या तब भी अहिंसक रहना ठीक होगा? अगर लोग आपकी अहिंसा के रास्ते पर न चल सकें तो क्या आप उनको नामर्दों की तरह मरने की सलाह देंगे या हिंसा का मुकाबला हिंसा से करने को कहेंगे?

"आज मुस्लिम लीग जो दोरुखा खेल खेल रही है उसको देखते क्या आपका यह कर्तव्य नहीं है कि स्पष्ट शब्दों में उसे बुरा कहें? एक तरफ तो मुस्लिम लीग के नेता हिन्दुओं के विरुद्ध खुलमखुल्ला हिंसा का और जिहाद का प्रचार करते हैं और दूसरी तरफ वही लोग मन्त्री पद सँभालकर शासन की तमाम बागडोर अपने हाथ में रखे हुए हैं। यहां तक कि पुलिस और इंसाफ के मोहकमे भी उन्हीं के जिम्मे हैं।

"क्या हिन्दुस्तान में ऐसा कोई वैध या कानूनी शासन नहीं जो संकटपूर्ण अनियमितता को रोक सके? जो कुछ आज यहां हो रहा है उसका उदाहरण तो कहीं किसी इतिहास में नहीं मिलेगा।

"क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि अगर ऐसी बातें बराबर होने दी गईं तो हिन्दुस्तान में गृहयुद्ध छिड़े बिना न रहेगा। अगर ऐसा हुआ तो आप सर्व-साधारण को इस संकट का सामना करने के लिए क्या सलाह देंगे?"

इन दोस्त ने जिन ज्यादतियों या अत्याचारों का जिक्र किया है वे मेरी कल्पना के समाज में हो ही नहीं सकते। किन्तु जिस समाज में आज हम रह रहे हैं, उसमें अत्याचार ज़रूर होते हैं। इस सम्बन्ध में मेरा जवाब तो बिलकुल स्पष्ट है। अहिंसक स्त्री या पुरुष का तो यह कर्तव्य है कि वह अपनी सुरक्षा करते हुए या अपनी मां-बहिनों की इज्ज़त बचाने की चेष्टा में, मर मिटे। वह ऐसा किये बिना रह ही नहीं सकेगा। इस तरह मरने की तैयारी रखते हुए भी वह मारने वालों से बदला लेने की, उनपर गुस्सा होने की या उनके लिए मन में विद्वेष रखने की बात तनिक भी न सोचेगा। यह सबसे ऊंचे दर्जे की बहादुरी है।

यदि कोई व्यक्ति या वर्ग प्रकृति के इस महान कानून पर, जिसे व्यर्थ ही मेरा रास्ता कहा जाता है, चलना नहीं चाहता या चलने की शक्ति नहीं रखता, तो उसे मरते दम तक सामना करने की या बदला लेने की तैयारी रखना चाहिए। यह दूसरे दर्जे की बहादुरी होगी। यद्यपि यह पहिली से बहुत दूर की यानी घटिया चीज होगी। कायरता नामर्दी का दूसरा नाम है। वह तो हिंसा से भी बुरी है। कायर आदमी बदला तो लेना चाहता है, किन्तु वह मरने से डरता है इसलिए वह चाहता है कि उसकी सुरक्षा का काम दूसरे लोग कर दें। फिर भले उस समय की सरकार ही उसका यह काम क्यों न कर दे। कायर आदमी नहीं होता। उसकी गिनती इंसान में नहीं होनी चाहिए। अन्त में मैं यह ज़रूर कहूंगा कि यदि बहिनों

ने मेरी सलाह पर आचरण किया होता या अब भी उस पर चलने लगें, तो प्रत्येक स्वयं अपना बचाव कर सकेंगी और उसे अपने भाइयों या बहिनों की सहायता के लिए रुकने या उसकी प्रतीक्षा करने की आवश्यकता न रह जायगी।

जिस दोरुखे काम का ज़िक्र किया गया है निःसन्देह बहुत बुरी चीज है। हमारे राष्ट्रीय इतिहास का यह एक दुःखप्रद भाग है। मेरी यह निन्दा सब के लिए है-- किसी एक वर्ग के लिए नहीं। परन्तु कुशल इतनी ही है कि यह चीज इतनी ज़्यादा बुरी है कि देर तक टिक नहीं सकती।

आज मुल्क में वैध या कानूनी हुकूमत तो अंग्रेजों की ही है। हम सब उनके हाथ की कठपुतलियां हैं। किन्तु इसके लिए हुकूमत को दोष देना ग़लत होगा और बेवकूफी होगी। हुकूमत तो अपने स्वभाव के अनुसार ही काम करती है। वह हमें मजबूर नहीं करती कि हम उसके हाथ की कठपुतली बनें। हम स्वयं दौड़कर उसकी शरण में जाते हैं। इसलिए अंग्रेजी-हुकूमत के हथकण्डों का शिकार बनने से इन्कार करना तो हममें से हर एक के हाथ की बात है।

यहां हमें स्पष्ट ही यह स्वीकार करना चाहिए कि आज ब्रिटिश हुकूमत हिन्दुस्तान छोड़कर जाने की कोशिश में लगी है। लेकिन वह नहीं जानती कि किस तरह जाये। इसमें सन्देह नहीं कि वह ईमानदारी के साथ हिन्दुस्तान से विदा होना चाहती है, किन्तु जाने से पहिले वह उन बुराइयों को मिटा डालना चाहती है, जिन्हें वह एक अरसे से करती रही है। जिसके सर पड़ती है वही उसके दर्द को जान सकता है। मैं बराबर उससे यह कहता रहा हूं कि यदि वह अपनी गलती को जल्दी ही सुधारना चाहती है, तो उसे चाहिए कि वह हिन्दुस्तान को उसकी क़िस्मत के भरोसे छोड़ जाय। किन्तु अंग्रेज नौकरशाह इस साफ बात को भी समझ नहीं पाते। वे लोग अपने मन में यह समझते हैं कि हिन्दुस्तान को वे हमसे भी ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। चूंकि उन्होंने बड़ी सफलता के साथ हम को सौ साल से भी ज्यादा गुलाम रखा है, इसलिए वे स्वयं ही हमारे भाग्य का फैसला करने का भी दावा करते हैं। अगर हम अमन या शान्ति के रास्ते से स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें इसकी कोई शिकायत न होनी चाहिए।

अब रहा आखिरी सवाल। अभी मुल्क में आपस की लड़ाई या यादवी शुरू नहीं हुई है। लेकिन हम उसकी तरफ बढ़ ज़रूर रहे हैं। फ़िलहाल तो मानों हम उस आग के साथ खेल रहे हैं। आखिर युद्ध है क्या चीज़? जब सारे देश में बड़े पैमाने पर गुण्डाशाही शुरू की जाती है, तो उसी को मानपूर्ण लड़ाई या जंग का नाम दे दिया जाता है। अगर अंग्रेज लोग बुद्धिमान हैं तो वे इस चीज़ से बिल्कुल दूर रहेंगे। लेकिन लक्षण ऐसे नजर नहीं आते। सूबों की धारा-सभाओं

के अंग्रेज़ मेम्बरों के गले यह बात नहीं उतरती कि सन् १९३५ के ऐक्ट के अनुसार उन्हें एसेम्बलियों में जो जगह दी गई थी वह इसलिए नहीं दी गई थी कि वैसा करना उचित था, बल्कि इस ख्याल से दी गई थी कि वहां जाकर वे ब्रिटिश हितों की रक्षा करें और हिन्दुओं तथा मुसलमानों को आपस में मिलने न दें। लेकिन वे इसे मानने के लिए तैयार नहीं। बात छोटी सी है। फिर भी उससे पता चलता है कि हवा का रुख किस तरफ़ है। आजादी चाहने वालों और उसके लिए संघर्ष करने वालों को इन असगुनों से डरना नहीं चाहिए।

जो स्वतन्त्रता का अमृत पीना चाहते हैं उन्हें अपने को फ़ौज या पुलिस की मदद से दूर रखना चाहिए। ऐसे लोग अकेले हों या हजारों-लाखों। उन्हें चाहिए कि वे अपने बाहुबल पर खड़े रहें, उसी का भरोसा करें या इससे भी कहीं अच्छा यह होगा कि वे अपने मजबूत दिल और दिमाग़ की ताक़त का भरोसा रक्खें क्योंकि उसके लिए न अपने हथियारों की जरूरत रहती है न दूसरों के।

— ह० ज०। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १५।१।'४६]

- **कायरता नामर्दी का दूसरा नाम है। वह तो हिंसा से भी बुरी है।**
- **कायर आदमी नहीं होता। उसकी गिनती इंसान में नहीं होनी चाहिए।**
- **जो स्वतन्त्रता का अमृत पीना चाहते हैं उन्हें अपने को फ़ौज या पुलिस की मदद से दूर रखना चाहिए।**

७३. कांग्रेसी मंत्री और अहिंसा

श्री शंकरराव देव लिखते हैं—

"लोगों की समझ में यह बात नहीं आ रही है कि जो लोग अपने को सत्याग्रही कहते थे वे मन्त्री बनते ही सेना और पुलिस का प्रयोग क्यों करते हैं? लोग मानते हैं कि वह धर्म या व्यवहार के रूप में स्वीकृत अहिंसा का त्याग है, और बाह्य दृष्टि से यह सच भी प्रतीत होता है। कांग्रेसी मंत्रियों के विचारों में और व्यवहार में यह जो विरोध दिखाई देता है, इसका समर्थन करना आसान न होने के कारण हमारे कार्यकर्ता उलझन में पड़ जाते हैं, और इस विसंगति से लाभ उठाने वाले कांग्रेसी या ग़ैर-कांग्रेसी प्रचारकों का सामना करना उनके लिए कठिन हो जाता है।

"आम तौर पर कांग्रेसियों की अहिंसा कमजोरों की अहिंसा ही रही है। हिन्दुस्तान की वर्तमान दशा में यही हो सकता था, जिसे आप भी जानते हैं। आप कहते हैं कि बलवान की अहिंसा में तेज होता है, फिर भी निर्बल को सशक्त

बनाने के लिए आपने अहिंसा का प्रयोग करना स्वीकार किया। यही नहीं, बल्कि आप उसके नेता भी बने। इस तरह दुर्बल होते हुए भी आज उसके हाथ में सत्ता आई है। यह सम्भव है कि जो लोग अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अहिंसा से लड़े, वे ही अब अपने हाथ में शक्ति लेकर देश में दंगा-फ़साद के समय भी अहिंसा का व्यवहार करके उसे मिटाने को तैयार हों। अगर वे ऐसा प्रयत्न करें भी तो न वे उसमें सफल होंगे और न इस काम में उन्हें जनसाधारण की सहानुभूति ही मिलेगी।

"मैंने आपसे पूछा था कि क्या सत्याग्रही अपने हाथ में शक्ति या शासन की बागडोर ले सकता है? अगर ले सकता है तो उस शक्ति या शासन के द्वारा वह अहिंसा को कैसे आगे बढ़ा सकता है? कृपा कर आप इसपर थोड़ा प्रकाश डालिए। जिसने अहिंसा को धर्म माना है, वह कभी शासन में शामिल होना पसन्द न करेगा। और, मेरी राय है कि उसे ऐसा करना भी न चाहिए। लेकिन मैं मानता हूं कि जिन्होंने अहिंसा को केवल नीति या व्यवहार की दृष्टि से अपनाया है, उनके लिए पद लेने में कोई अड़चन न होनी चाहिए। बहुत से कांग्रेसियों ने ओहदे सँभाले हैं, और इसके लिए आपने उन्हें आज्ञा दी है। ऐसी दशा में प्रश्न यह उठता है कि उन मन्त्रियों से जो अहिंसा में विश्वास रखते हैं, आपका यह उम्मीद रखना कि कम-से-कम वे स्वयं तो दंगाफ़साद के अवसरों पर अहिंसा का प्रयोग करें, कहां तक उचित है? अहिंसा के द्वारा शक्ति या शासन प्राप्त करने के बाद उसका प्रयोग किस तरह किया जाय, जिससे हुकूमत ही अनावश्यक हो जाय? अगर वैसा कोई रास्ता आप न सुझायेंगे, तो हमारे अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सत्याग्रह एक अधूरा साधन माना जायगा।"

मेरे ख़्याल में इसका उत्तर सरल है। कुछ अरसे से मैंने यह कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेस-विधान से सत्य और अहिंसा को हटा देना चाहिए। अगर हम यह मानकर चलें कि कांग्रेस के विधान से ये दोनों हटें या न हटें फिर भी हम तो इनसे हट ही गये हैं, तो स्वतन्त्र रूप से हम यह समझ सकेंगे कि कोई काम सही है या नहीं।

मैं मानता हूं कि जबतक लौकिक राज्य के कार्य-व्यवहार में सेना या पुलिस का प्रयोग होगा, तबतक हम अंग्रेजी शासनतन्त्र या अन्य किसी परदेशी शासनतन्त्र के अधीन ही रहेंगे—फिर चाहे देश का कारबार कांग्रेस वालों के हाथ में हो या दूसरों के। मान लीजिए कि कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों को अहिंसा में विश्वास नहीं है। यह भी मान लीजिए कि लोग यानी हिन्दू, मुसलमान और दूसरे हिन्दुस्तानी सेना और पुलिस का सहारा चाहते हैं। अगर ऐसा है, तो वह उन्हें मिलता रहेगा। जो कांग्रेसी मन्त्री अहिंसा में पूरा विश्वास रखते हैं, उन्हें सेना या पुलिस की मदद

लेना अच्छा न लगेगा। इसलिए वे इस्तीफा दे सकते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक लोगों में आपस में निर्णय कर लेने की शक्ति नहीं आती, तब तक हुल्लड़बाजी होती रहेगी और हममें अहिंसा का सच्चा बल पैदा ही न होगा।

अब यह प्रश्न बाकी रहा कि ऐसा अहिंसक बल किस तरह पैदा हो सकता है? इस सवाल का जवाब अहमदाबाद से आये हुए एक खत के जवाब में ता० ४ अगस्त को मैं दे चुका हूं। जबतक हममें वीरता और प्रेम के साथ मरने की शक्ति पैदा नहीं होती तबतक हममें वीरों की अहिंसा का बल नहीं आ सकता।

अब प्रश्न यह है कि आदर्श समाज में कोई राजसत्ता रहेगी या वह एक बिल्कुल अराजक समाज बनेगा? मेरे विचार में यह प्रश्न पूछने से कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। अगर हम वैसे समाज के लिए श्रम करते रहें, तो वह किसी सीमा तक बनता रहेगा, और उस सीमा तक लोगों को उससे लाभ पहुँचेगा। यूक्लिड ने कहा है कि रेखा वही हो सकती है, जिसमें चौड़ाई न हो, लेकिन वैसी रेखा न तो आज तक कोई बना पाया, न बना पायेगा। फिर भी वैसी रेखा को विचार में रखने से ही प्रगति हो सकती है और प्रत्येक आदर्श के बारे में यही सच है।

हाँ, इतना याद रखना चाहिए कि आज संसार में कहीं भी अराजक समाज अस्तित्व में नहीं है। अगर कभी कहीं बन सकता है, तो उसका आरम्भ हिन्दुस्तान में ही हो सकता है। क्योंकि हिन्दुस्तान में वैसा समाज बनाने का प्रयत्न किया गया है। आज तक हम उच्चतम दर्जे की वीरता नहीं दिखा सके, मगर उसे दिखाने का एक ही रास्ता है, और वह यह है कि जो लोग उसमें विश्वास रखते हैं, वे उसे दिखायें।

— नई दिल्ली। ह० से०, १५।९।'४६]

७४. सत्य और अहिंसा को न छोड़ें

एक सेवाभावी भाई अपना नाम देकर लिखते हैं—

"मैं आपका साप्ताहिक 'हरिजनबन्धु' नियमित मँगाता और पढ़ता हूं। १५ सितम्बर के 'हरिजनबन्धु' के ३१७ वें पन्ने पर श्री शंकरराव देव को दिये गये जवाब में आपने लिखा है—'मैंने कुछ समय से कहना शुरू किया है कि कांग्रेस के विधान से सत्य और अहिंसा को निकाल देना चाहिए।'

"आज की स्थिति में ऐसा होगा, तो कांग्रेस पर से लोगों का विश्वास (अकीदा) उठ जायगा। लोग ऐसा समझेंगे कि जबतक कांग्रेस के हाथ में ताकत नहीं थी,

वह लोगों को सत्य और अहिंसा पर चलने को समझाती थी। आज ताक़त हाथ में आते ही वह सत्य और अहिंसा को अपने विधान से निकालने की सोच रही है।

"लोग शायद यह भी समझें कि मुस्लिम लीग की 'सीधी कार्रवाई' (डाइरेक्ट ऐक्शन) का सामना करने के लिए आप इन दो शब्दों को निकाल देने की बात कहते हैं। अगर कांग्रेस के विधान से ये दो शब्द, जिनके द्वारा कांग्रेस इतनी आगे बढ़ी है और आज ऊंची चोटी पर बैठी है, निकल जायँगे तो कांग्रेस फ़ौरन नीचे गिर जायगी। उसकी आबरू हल्की पड़ जायगी। आप ही कहते थे कि सत्य और अहिंसा के बिना आप एक क़दम भी आगे नहीं चल सकते।

"लोग किस कारण कांग्रेसवालों को विश्वास के लायक, दयालु (रहमदिल) सेवाभावी, हिम्मतवाले, इत्यादि मानते आये हैं? सत्य और अहिंसा के ही कारण। सत्य और अहिंसा उसकी जड़ है। जड़ का नाश होने से सारा का सारा वृक्ष अपने आप सूख जायगा। आपको तो यह कोशिश करनी चाहिए कि वह जड़ ज्यादा-से-ज्यादा गहरी जाय।"

अहिंसा का दावा करनेवाला मैं, अच्छा काम करने के लिए भी किसी को मजबूर कैसे कर सकता हूं? एक महान अंग्रेज ने कहा है कि आजाद रहकर भूल करना अच्छा किन्तु मजबूर होकर अच्छा बनना बुरा है। मैं इस बात को मानता हूं। कारण साफ़ है। जो दूसरों के दबाव से अच्छा रहता है, उसका दिल अच्छा नहीं रहता, उलटा ज्यादा बिगड़ता है, और जब दबाव हट जाता है, तो छुपा बिगाड़ ऊपर आ जाता है।

और, किसी एक व्यक्ति के पास तो किसी पर दवाब डालने की ताकत होनी ही न चाहिए। कांग्रेस भी ज़बरदस्ती किसी से सत्य या अहिंसा पर अमल नहीं करवा सकती। ऐसी चीजें खुशी का सौदा ही होनी चाहिएं।

सत्य और अहिंसा को कांग्रेस के विधान से निकालने की बात पेश किये मुझे एक साल से ज्यादा अरसा हो गया है। लीग की तरफ़ से हिंसा-अहिंसा का ख्याल किये बिना सीधा सामना करने की बात आई, उससे पहले ही मेरी यह सूचना निकल चुकी थी। मेरी सलाह का लीग के ठहराव के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। तो भी जिन्हें मेरी बात में दाँव-पेंच की बदबू आया ही करे, उनके लिए मेरे पास कोई इलाज नहीं है।

मेरी सलाह के पीछे जोरदार कारण है। सत्य और अहिंसा का बहाना करके कांग्रेसी दिखावा न करें, और अगर वे सचमुच सत्य और अहिंसा के इन दो खम्भों को पकड़े रहें, तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है?

मैं तो कभी यह इच्छा कर ही नहीं सकता कि ताक़त हाथ में आने पर कांग्रेसी सत्य और अहिंसा की उस सीढ़ी को छोड़ दें, जिसके सहारे वे इतने आगे बढ़े हैं। मैं मानता हूं कि अगर कांग्रेस ताक़त पाकर इस सीढ़ी को छोड़ेगी, तो उसका तेज बिल्कुल मन्द पड़ जायगा।

एक और भूल से सबको बचना चाहिए। जो विधान में नहीं लिखा, उसपर किसी को अमल नहीं करना चाहिए, ऐसी बात तो है ही नहीं। मैंने तो आशा रखी ही है कि सत्य और अहिंसा के विधान से निकल जाने पर भी सब या अधिकांश कांग्रेसी अपनी इच्छा से उन पर अमल करेंगे और करते-करते मरेंगे।

एक भूल, जिसका जिक्र इन सेवाभावी भाई ने नहीं किया, सुधार दूं। कांग्रेस के विधान में शान्तिपूर्ण (पीसफुल) और उचित (लेजिटिमेट) शब्द हैं। उन्हें अहिंसक (नानवायोलेण्ट) और सच्चा (ट्रुथफुल) मानने का मुझे अधिकार नहीं। कांग्रेस के पास धर्म नहीं, कर्म ही है। अंग्रेजी में उसे पालिसी कहेंगे। मेरे हक़ का तो सवाल ही नहीं। लेकिन जबतक कर्म चलता है, तबतक वह धर्म हो जाता है, यानी उसपर अमल करने का बन्धन होता है। अगर शान्ति का मतलब अशान्ति भी हो सकता हो, और उचित का मतलब झूठ भी हो सकता हो, तो मेरी सलाह को कोई जगह नहीं रह जाती।

— ह० ब०। मूल गुजराती। ह० से०, २९।९।'४६]

७५. अराजकता और अहिंसा

यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि जिस बिहार ने सत्याग्रह के सुनहले दिनों में बड़ा चमत्कार दिखाया था, वही अब एक मनमाने अनाचार और अराजकता से अपने नाम को कलंकित करने जा रहा है। अगर अखबारों में प्रकाशित समाचार सत्य है, तो कहना होगा कि बिना किसी प्रयोजन के जंजीर खींचकर रेलगाड़ी खड़ी करवा देना बिहार में एक मामूली बात बन गई है। परिणाम यह हुआ है कि आज वहाँ शायद ही कोई गाड़ी समय से चलती हो। यात्री भी टिकट खरीदना ज़रूरी नहीं समझते। इसके लिए वे तर्क यह देते हैं कि राष्ट्रीय सरकार के शासन में किसी चीज के लिए पैसा देना आवश्यक नहीं। 'जय हिन्द' लूट-पाट और मार-काट का एक नारा बन गया है।

मैं नहीं जानता कि ऊपर जिन आरोपों का ज़िक्र किया गया है, उनमें कितनी सचाई है। मगर इसमें सन्देह नहीं कि ये अभियोग बहुत ही भयानक हैं। मैं बिहार के ऐसे कुछ भागों से परिचित हूं, जहां लोग सामान्य रूप से क़ानूनी और ग़ैर-

क़ानूनी बातों में अन्तर नहीं देखते। मैंने लोगों को यह भी कहते सुना है कि केवल बिहार में ही नहीं, बल्कि सारे देश में यह जो अराजकता फैल रही है, उसके लिए अधिकतर मैं ही उत्तरदायी हूं। यहां यह कहना आवश्यक नहीं कि इस तरह मुझ-पर इसका दोष मढ़ना नासमझी है। मैंने जो अवैध कार्रवाई सिखाई है, उसे अवैध कहा भी जाय, तो भी वह एक ऐसी अवैधता या ग़ैरकानूनीपन है, जो इंसान को अपनी सुरक्षा के लिए अच्छी और आवश्यक ख़ूराक खाने की सलाह देता है। मेरे गैरकानूनीपन के पीछे अनुशासन है, और उसमें समाज की भलाई का, और उसे फिर से अच्छी तरह संगठित करने के प्रयत्न का विचार निहित है। वह अन्यायी और हानि पहुँचाने वाले क़ानूनों या सरकारी कामों के विरुद्ध उठाई गई एक प्रबल आवाज़ है। वह कभी ऐसा रूप धारण नहीं कर सकती, जिसमें अपने किसी मतलब के लिए लोग चाहे जिस कर्त्तव्य को टाल दिया करें। हर आदमी का कर्त्तव्य है कि ज़िन विशेष अवसरों पर जंजीर खींचना ज़रूरी माना गया है, उन्हें छोड़कर और कभी जंज़ीर न खींचें, और न बिना किराया दिये रेल के किसी दर्जे में यात्रा ही करें। जिसे मेरी अराजकता कहा जाता है, उसमें लूट-पाट, तोड़-फोड़ और मार-काट आदि के लिए कभी कोई स्थान नहीं रहा। अक्सर यह तर्क दिया जाता है कि मेरा कार्यक्रम जनसाधारण के लिए ठीक नहीं है; कुछ चुने हुए लोग ही उस-पर अमल कर सकते हैं। इसके उत्तर में मैं यह प्रश्न पूछना चाहता हूं कि क्या मुझसे यह आशा की जाती है कि चूंकि लोग स्वतन्त्रता पाकर खराब या विषाक्त खाना खाने लगेंगे, इसलिए मैं उन्हें अच्छा खाना भी न खाने दूं और भूखों मरने दूं?

यह सारी चर्चा व्यक्तिगत-सी लगती है, फिर भी मैंने जानबूझकर उसे छेड़ा है। ऐसा करके मैं यहां अपनी कोई सफाई नहीं दे रहा हूं बल्कि मैं यह बताना चाहता हूं कि बिहार में जो कुछ हो रहा है, वह अत्यन्त विषाक्त अराजकता है। इस तरीके से स्वराज्य नहीं मिलेगा; बल्कि अराजकता ही फैलेगी। इस तरह लोग स्वतन्त्र नहीं बनेंगे, बल्कि आखिरकार बुरी तरह गुलामी के शिकार बन जायँगे। इसमें ज़िन्दगी नहीं, मौत छिपी है। जिस बिहार को मैंने बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद और श्री राजेन्द्रप्रसाद के बिहार की तरह जाना है, और जहां मैं रहा भी हूं, क्या वही अब उस दशा को पहुँच गया है जिसका ज़िक्र ऊपर हो चुका है? बिहार के जन-सेवकों को चाहिए कि वे वर्षों के परिश्रम से बनाये गये सुन्दर काम को इस भद्दे तरीक़े से बिगड़ने न दें।

— ह० से०, ६।१०।'४६]

- **जिसे मेरी अराजकता कहा जाता है उसमें लूटमार, तोड़फोड़, और मार-काट आदि के लिए कभी कोई स्थान नहीं रहा।**

७६. स्त्रियों को अहिंसा का उपदेश

हमारी स्त्रियाँ हुल्लड़ से बहुत जल्द डर जाती हैं। लगभग सारी दुनिया में औरतों का यही हाल है। मैं चाहता हूं कि वे स्त्रियां वीर बनें। मैंने बहिनों से कहा है कि वे चाहें तो खंजर रख सकती हैं। अगर वे उससे भी अपनी लाज न बचा सकें, तो ज़हर खाकर मर सकती हैं। कैसे ही स्त्री-पुरुष क्यों न हों, सौ-पचास आदमियों का सामना एक खंजर से नहीं कर सकते। किन्तु जब हमारी बहिनें इतनी बहादुर बन जायँगी कि जान तक देने को तैयार हो जायँगी, तब वे किसी से नहीं डरेंगी। उनकी रक्षा भगवान करेगा। अपनी रक्षा के दो रास्ते हैं—मारना और मरना या बिना मारे मर जाना। मैं आपको दूसरा रास्ता बता सकता हूं, पहिला नहीं। आप जो चाहें, करें, लेकिन कायर न बनें। कायरता से बड़ा कोई पाप नहीं।

— अंग्रेजी से। ह० से०, ३।११।'४६]

७७. ट्रस्टीशिप और अहिंसा

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—**जो वस्तु हिंसक साधनों से प्राप्त की गई हो उसकी रक्षा अहिंसा-द्वारा हो सकती है?**

उत्तर—....हिंसक साधनों से प्राप्त की हुई वस्तु की अहिंसा-द्वारा रक्षा तो हो ही नहीं सकती, साथ ही अहिंसा की सिद्धि के लिए यह ज़रूरी है कि कुमार्ग से जो कुछ प्राप्त किया गया हो उसका त्याग कर दिया जाय।

प्रश्न—**क्या खुली या प्रच्छन्न हिंसा के बिना पूंजी जमा करना सम्भव है?**

उत्तर—व्यक्ति जब तक हिंसात्मक साधनों का प्रयोग न करे तबतक पूंजी एकत्र होना असम्भव है, किन्तु एक अहिंसक समाज में राज्य के द्वारा पूंजी एकत्र करना सम्भव ही नहीं, वरं इष्ट और अनिवार्य भी है।

प्रश्न—**मनुष्य सांसारिक एवं नैतिक, दोनों प्रकार का धन समाज के दूसरे अंगों की सहायता या सहयोग से ही एकत्र करता है। तब उसका थोड़ा अंश भी, विशेष रूप से अपने निजी लाभ के लिए उपयोग करने का नैतिक अधिकार उसे है?**

उत्तर—नहीं, बिल्कुल नहीं।

प्रश्न—**किसी ट्रस्टी का उत्तराधिकारी कौन हो, इसका निर्णय किस प्रकार**

किया जाय? मुख्य ट्रस्टी को केवल अपने उत्तराधिकारी के नाम की दर्खास्त करने का अधिकार हो, किन्तु उसकी दर्खास्त पर अन्तिम स्वीकृति देने का अधिकार राज्य के ही हाथ में न रखा जाय?

उत्तर--....उत्तराधिकारी पसन्द करने का अधिकार तो प्रथम ट्रस्टी बननेवाले स्वामी विशेष का ही रहे किन्तु उसके आवेदनपत्र को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार राज्य के हाथ में रहना चाहिए। ऐसी व्यवस्था करने से राज्य और व्यक्ति दोनों पर काबू बना रहता है।

प्रश्न---ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अमल में लाकर जब निजी सम्पत्ति को सार्वजनिक बनाया जाय तब उसका स्वामी कौन रहे? मानव की हिंसक वृत्ति के साधन-स्वरूप राज्य के कानूनों से अधिकार पानेवाली कि राजी-खुशी और सहकार के आधार पर बनी ग्राम-पंचायतें एवं नगरपालिकाएं--जैसे मण्डल स्वामी रहें?

उत्तर---इस प्रश्न में विचारों की कुछ गड़बड़ी है। बदली हुई सामाजिक अवस्था में पूंजी की या सम्पत्ति की कानूनी मालिकी राज्य की नहीं वरं ट्रस्टी की होगी। राज्य सम्पत्ति को ज़ब्त न करे और समाज की सेवा के लिए पूंजी अथवा सम्पत्ति के स्वामी विशेष की योग्यता सच्चाई के साथ समाज के काम आवे, इस अभिप्राय से ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त अमल में लाया जाता है। इसके सिवा मैं नहीं मानता कि राज्य सदैव हिंसा के आधार पर ही खड़ा होगा। सिद्धान्त की दृष्टि से यह बात सच होगी किन्तु इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के समय पर्याप्त सीमा तक अहिंसा के आधार पर चलनेवाले राज्य की आवश्यकता पड़ेगी।

---सातघारिया (बंगाल), २।२।'४७। ह० से०, १६।२।'४७]

- **हिंसक साधनों-द्वारा प्राप्त वस्तु की रक्षा अहिंसक साधनों द्वारा हो ही नहीं सकती।**
- **अहिंसा की सिद्धि के लिए यह जरूरी है कि कुमार्ग से जो कुछ प्राप्त किया गया हो उसका त्याग कर दिया जाय।**
- **व्यक्ति जबतक हिंसात्मक साधनों का प्रयोग न करे तबतक पूंजी एकत्र होना असम्भव है।**

७८. यथार्थ स्वतन्त्रता और अहिंसा

....यदि आप सोचते हों कि अंग्रेजों को तलवार के ज़ोर से भगा सकेंगे, तो आप बहुत बड़ी ग़लती पर हैं। आप अंग्रेजों के निश्चय और धीरज को नहीं

जानते। वे तलवार की ताक़त के सामने झुकनेवाले नहीं हैं। किन्तु वे उस अहिंसा के धीरज का सामना नहीं कर सकते, जिसे मौत का बदला मौत से लेने से घृणा है। अहिंसा से ऊंची किसी ताक़त को मैं नहीं मानता। और अगर आपको अभी भी सच्ची स्वतन्त्रता नहीं मिली तो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि इसका कारण आप लोगों का अहिंसा को पूरी तरह से न अपनाना ही है।

—५।२।'४७, बंगाल में पैदल घूमते हुए। ह० से०, २।३।'४७]

७९. धर्मों का तत्व

हमें मरना, और मारकर नहीं मरना है। अहिंसा हिन्दू धर्म का असली सार है। आपकी गीता ने अहिंसा सिखाई है। मैं तो कहता हूं कि मुसलमान धर्म का सार भी अहिंसा है और ईसाई धर्म भी अहिंसा सिखाता है।

—नई दिल्ली, ८।४।'४७। प्रार्थना-प्रवचन से। ह० से०, २७।४।'४७]

८०. खादी अहिंसा की निशानी

खादी अहिंसा की निशानी है। मनुष्य जैसा स्वयं होता है अपना देवता भी वैसा ही बना लेता है। ईश्वर तो मनुष्य को बनाता ही है किन्तु मनुष्य भी ईश्वर को बनाता है। खूनी आदमी के देवता खून करते हैं। खादी को हमने अहिंसा की निशानी बनाने के लिए बड़ी तपस्या की है।

—बांकीपुर, पटना, १९।४।'४७। ह० से० ४।५।'४७]

८१. सत्य एवं अहिंसा की पूजा से ही महात्मा हूँ

अगर आज मैं महात्मा बना हूँ तो इसलिए नहीं कि अंग्रेजी का बैरिस्टर हूं परन्तु इसलिए कि मैंने सेवा की है, और यह सेवा सत्य और अहिंसा के द्वारा की है। इस सत्य और अहिंसा की पूजा में जो थोड़ी सी सफलता मुझे मिलती चली गई उसी के कारण आज मेरी थोड़ी-बहुत पूछ है।

—नई दिल्ली, ५।६।'४७। प्रार्थना-सभा में]

८२. हिंसक समाज

हिंसक समाज में मेरे लिए कोई स्थान नहीं।

--नई दिल्ली, २२।६।'४७। ह० से० २९।६।'४७]

८३. बहादुरी का यह स्तर!

मैं जो कह रहा हूं वह डरपोक और बुज़दिल के लिए नहीं, बल्कि उनके लिए है जो वीर और निःस्वार्थ हैं, जो अपनी मां की, लड़की की और अपने धर्म की रक्षा करते हुए मरना जानते हैं, दूसरों को मारना नहीं। जो आदमी खुशी से मर जाता है, वह मारनेवाले से कहीं बहादुर होता है। मैं चाहता हूं कि इस बहादुरी के स्तर तक सारा हिन्दुस्तान पहुंचे।

--नई दिल्ली, २४।६।'४७। प्रार्थना-सभा के भाषण से। ह० से० ६।७।'४७]

८४. भारत का विभाजन और अहिंसा

[गांधी जी भारत को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दो खण्डों में विभाजित करने के विरुद्ध थे किन्तु कांग्रेस के नेतागण सारा देश भस्म हो जाय, इसकी अपेक्षा यह ज्यादा पसन्द करते थे कि विभाजन के द्वारा एक बड़े अंश को बचा लिया जाय। वे लोग व्यावहारिक दृष्टि से देखते थे जब गांधी जी का दृष्टिकोण मानवीय एवं नैतिक था। लोगों में भय समा गया था। गांधी जी की अहिंसा का ठीक अर्थ न समझ सकने के कारण ही यह स्थिति उत्पन्न हुई थी। नेताओं एवं जन-मानस के इस पतन पर गांधी जी मर्माहत थे। उनकी समस्त आशा जैसे निराशा में परिणत हो गई। इसी स्थिति में लोगों के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने अपनी मर्म-वेदना निम्न लेखांश में प्रकट की है।--संपा०]

यह सच है कि मुझे यह विभाजन बिल्कुल पसन्द नहीं। अगर हम इसे मंजूर न करते तो यह होने वाला नहीं था। किन्तु नेताओं ने इसे मंजूर किया, क्योंकि उनकी राय में इसके सिवा कोई और चारा न था। अपनी दृष्टि से उन्होंने सोचा, सारे के सारे देश को तबाह होने देने के बदले भले जिन्ना साहब की विजय हो जाने दो। वह हिन्दुस्तान का एक चौथाई टुकड़ा ले लें और वहां जो करना है करें। तभी हम तीन चौथाई हिन्दुस्तान के लिए कुछ कर सकेंगे, उसे आगे बढ़ा सकेंगे।

मैं इसे नहीं मानता। मैंने नेताओं से कहा था कि सारा हिन्दुस्तान भले ही जलकर राख हो जाय किन्तु मैं हिंसा या मारपीट से डरकर एक इंच ज़मीन भी नहीं दूंगा। किन्तु नेता लोग यह कैसे करें? अहिंसा मेरा धर्म है। कांग्रेस का तो नहीं है। उसने तो अहिंसा को नीति के रूप में अपनाया है।

और मैंने अपनी भूल स्वयं स्वीकार की है। मैं मानता था कि हिन्दुस्तान की लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है किन्तु यह सच नहीं था। वस्तुतः वह मन्द विरोध या निष्क्रिय प्रतिरोध (पैसिव रेसिस्टेंस) से बढ़कर कुछ नहीं था, जो दुर्बलों का हथियार होता है। दुर्बल हृदय वाले अहिंसा चला ही कैसे सकते हैं? मन्द विरोध, स्वभावतः, अवसर मिलते ही सशस्त्र विरोध को जन्म देता है। दक्षिण अफ्रीका की हमारी एक सभा के अंग्रेज प्रेसीडेण्ट स्व० होस्कन ने कहा था कि गांधी तो कमज़ोरों के लिए लड़ रहा है। इसीलिए वह मन्द विरोध का सहारा ले रहा है। मैंने इसका विरोध करते हुए कहा था—'नहीं, हमारा हथियार अहिंसा है जो सब से बड़ा हथियार है। ट्रांसवाल में हम आत्मा के बल से लड़ते हैं, इसलिए हम कमज़ोर नहीं हैं।'

दक्षिण अफ्रीका की सफलता की खुमारी लेकर मैं हिन्दुस्तान आया था। यहां भी काम तो काफ़ी कर लिया। किन्तु हमारी अहिंसा यदि सचमुच वीरों की अहिंसा होती तो जो हाल हमारा आज हो रहा है वह नहीं हो सकता था। हमने अंग्रेजों के सामने मन्द विरोध चलाया था। यदि यह मुझे तभी मालूम हो जाता तो मैं लड़ाई चलाता ही नहीं। किन्तु ईश्वर को वह काम मुझसे कराना था। इसलिए उसने मुझे मूर्ख बनाया।

जब मैं दक्षिण अफ्रीका से आया था तब यहां भूमिगत आतंकवादियों (टेरेरिस्ट्स) का ज़ोर था। मेरे कारण इन लोगों का काम रुका। यदि मैं यह जानता कि मैं मन्द विरोध (पैसिव रेसिस्टेंस) चला रहा हूं तो मुझे कहना पड़ता कि आज हम विवश होकर बिना हथियारों के लड़ते हैं किन्तु अन्त में तो हमें हथियारों से ही लड़ना है।

मुझे आज की भांति कभी इतनी मायूसी नहीं मालूम पड़ी। युद्ध, हार-जीत से मैं कभी घबराता नहीं। युद्ध मेरा पेशा रहा है। किन्तु आज इतने वर्षों बाद मैं पंखकटे पक्षी की तरह अनुभव कर रहा हूं। आखिर लोगों में अकस्मात् अहिंसक बल कैसे पैदा होगा?

प्रश्न—आपकी मायूसी का कारण क्या है?

गांधीजी—कारण ही तो बताया है। मैंने यह गलती की कि मन्द विरोध को अहिंसक युद्ध समझ लिया।

प्रश्न—किन्तु आपने तो हमेशा कहा और लिखा कि हमारी अहिंसा बलवानों की अहिंसा नहीं, दुर्बलों की अहिंसा है।

गांधी जी—वही मेरी भूल थी। भला दुर्बलों में अहिंसा कहां से आ सकती है? अहिंसा एवं दुर्बलता दोनों का परस्पर विरोध है।

प्रश्न—भूल भी हुई तो मायूसी क्यों?

गांधी जी—मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि अहिंसा के बिना देश बर्बाद हो जायगा, कांग्रेस मिट जायगी। किन्तु मैं सच्ची अहिंसा का पाठ लोगों को कैसे दूं? हमारे नेताओं में एक खां अब्दुलगफ्फार खां ही ऐसे हैं जिन्होंने अहिंसा को धर्म माना है किन्तु वह भी अहिंसा को पूरी तरह पी गये हैं, यह मैं नहीं कह सकता। मुझे ही कहां पता है कि स्वयं मुझमें भी सच्ची अहिंसा है या नहीं।....

मन्द विरोध से अब काम नहीं चल सकता। हमें वीरों की सच्ची अहिंसा को स्वीकार करना होगा। काम कठिन है।

....किन्तु यदि हिन्दुस्तान अहिंसा को छोड़कर हिंसा की ओर ही बढ़ता गया, फौजी तैयारियां ही होती गईं तो अन्त में हिन्दुस्तान को फ़ौजी तानाशाही (मिलिटरी डिक्टेटरशिप) के नीचे जाना होगा।

मैंने एशियाई सम्मेलन में भी कहा था कि मुझे आशा है कि हिन्दुस्तान की अहिंसा की सुगन्ध सारे संसार में फैलेगी। किन्तु मेरी वह आशा बुझ रही है।

— नई दिल्ली, १७।७।'४७। ह० से०, २०।७।'४७]

- **सारा हिन्दुस्तान भले जलकर राख हो जाय किन्तु मैं हिंसा या मारपीट से डरकर एक इंच जमीन नहीं दूंगा।**
- **मैं मानता था कि हिन्दुस्तान की लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है किन्तु यह सच नहीं था।**
- **हमारी अहिंसा यदि सचमुच वीरों की अहिंसा होती तो जो हाल हमारा आज हो रहा है वह नहीं हो सकता था।**
- **अहिंसा और दुर्बलता दोनों का परस्पर-विरोध है।**
- **मैं स्पष्ट देख रहा हूं कि अहिंसा के बिना देश बर्बाद हो जायगा, कांग्रेस मिट जायगी।**

८५. अहिंसा में सेना की निरर्थकता

यदि आपने अहिंसा का सबक़ सीखा होता तो किसी जगह फ़ौज की जरूरत ही क्या रह जाती?

—नई दिल्ली, १३।७।'४७। प्रार्थना सभा के प्रवचन से। ह० से०, २७।७।'४७]

८६. अहिंसा से असत्य नहीं चलाया जा सकता

जितने आज सत्याग्रह चला रहे हैं वे समझ-बूझकर काम करें। यदि मूल चीज़ असत्य है और उसके आग्रह में ज़बर्दस्ती की जाती है तो उसे छोड़ना ही अच्छा होगा। अगर उसमें जहर भरा है; अगर वह दुराग्रह है और असत्य है; जो अधिकार वे मांगते हैं उनको मिल नहीं सकता फिर भी वे मांगते हैं तो मैं कहूंगा कि ऐसी चीज़ मांगने में अहिंसा का प्रयोग हो ही नहीं सकता। वह अहिंसा नहीं हुई, वह तो हिंसा हुई। जो आदमी एक असत्य वस्तु मांगता है और कहता है कि अहिंसा से लेगा तो वह ले नहीं सकता।

—नई दिल्ली, ३।१०।'४७। प्रार्थना सभा के प्रवचन से। ह० से०, १२।१०'४७]

८७. अरण्य-रोदन

काठियावाड़ से एक भाई लिखते हैं:—

"दूसरे प्रान्तों की भाँति यहां काठियावाड़ में भी खादी और अहिंसा पर से अपनी श्रद्धा हटा लेने वालों की तादाद बढ़ती जा रही है। राजनीति में अहिंसा कैसे चल सकती है, ऐसी दलीलें पेश करनेवाले आज कांग्रेसी हैं और गांधीभक्त भी हैं।"

इस छोटे-से वाक्य में तीन विचार-दोष हैं। मैं पहिले कई बार समझा चुका हूं कि काठियावाड़ या दूसरे प्रदेशों ने अहिंसा में या खादी में श्रद्धा रखी ही नहीं थी। मैंने यह मानकर अपने-आपको धोखा दिया था कि लोग अहिंसा का पालन करते हैं और खादी को उसके चिह्न के रूप में अपनाते हैं। अहिंसा के नाम पर लोगों ने कमज़ोरों की शान्ति रखी, किन्तु उनके दिलों से तो हिंसा कभी गई ही न थी। अब तो इस बात को हम अच्छी तरह से देख सकते हैं।....

राजनीति में अहिंसा नहीं चल सकती, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। जब आप विदेशी राज्य के विरुद्ध लड़े तब वह राजनीति नहीं थी तो और क्या था? आज तो राजनीति बहुत थोड़ी है। आज धर्म के नाम पर लूटपाट होती है। लोगों ने विदेशी शासन के विरुद्ध लड़ने में जो शान्ति रखी, वह आज मानो समाप्त हो गई है।

तीसरा दोष यह कि इसमें कांग्रेसी और गांधीभक्तों के बीच भेद किया गया है। इस भेद को मैं बिल्कुल निराधार मानता हूं। यदि कोई गांधी-भक्त है तो वह केवल मैं ही हूं किन्तु मुझे आशा है कि ऐसा अहंकार मुझमें नहीं है। भक्त

तो भगवान के होते हैं। मैं तो अपने को भगवान नहीं मानता। फिर मेरे भक्त कैसे? और यह कैसे कहा जा सकता है कि अपने आप को गांधी-भक्त कहनेवाले लोग कांग्रेसी नहीं हैं? कांग्रेस के ऐसे अनगिनित सेवक हैं जो उसके चार आना सदस्य भी नहीं हैं। उनमें से मैं भी एक हूं; इसलिए यह भेद कृत्रिम है।

आज देश में कई ऐसी चीजें चल रही हैं जिनमें मेरा ज़रा भी भाग नहीं है, यह बात मुझे ज़ोरों के साथ कहनी चाहिए। मैं कह तो चुका हूं कि यह छिपी हुई बात नहीं है कि कांग्रेस ने जबसे हुकूमत सँभाली, तब से वह अहिंसा को तिलाञ्जलि दे चुकी है। मेरी राय में कांग्रेस सरकार ने खुराक और कपड़े पर जिस तरह अंकुश रखा है वह घातक है। मेरी चले, तो मैं अनाज का एक दाना भी बाहर से न खरीदूं। मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में आज भी काफ़ी अनाज है।...यदि लोगों ने मेरी बात मानी होती तो हिन्दुओं, सिखों और मुसलमानों के बीच कभी लड़ाई नहीं होती। स्पष्ट बात यह है कि मेरी बात की आज कोई कीमत नहीं रही। मेरी बात का मूल्य अब अरण्य-रोदन या जंगल में रोने के बराबर रह गया है।

खादी को अहिंसा से अलग करें तो उसके लिए थोड़ी जगह जरूर है किन्तु अहिंसा के लक्षण के रूप में उसका जो गौरव होना चाहिए वह आज नहीं है। राजनीति में भाग लेनेवाले जो लोग आज खादी पहिनते हैं, वे रिवाज के कारण वैसा करते हैं। आज जय खादी की नहीं बल्कि मिल के कपड़े की है। हम मान बैठे हैं कि यदि मिलें न हों तो कोटि-कोटि आदमियों को नंगा रहना पड़ेगा। इससे बड़ा भ्रम और क्या हो सकता है? हमारे देश में काफी कपास है, चरखे हैं, करघे हैं, कातने-बुनने की कला है फिर भी यह डर हमारे दिलों में घर कर गया है कि करोड़ों लोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए कातने-बुनने का काम नहीं ग्रहण करेंगे। जिसके दिल में डर समा गया है, वह उस जगह भी डरता है जहां डर का कोई कारण नहीं होता। और डर से जितने लोग मरते हैं उतने मौत से या रोग से नहीं मरते।

— नई दिल्ली, २४।१०।'४७। मूल गुजराती। ह० ब०। ह० से०। २।११।'४७]

- **यदि कोई गांधी-भक्त हो तो वह केवल मैं हूं।**
- **कांग्रेस ने जब से हुकूमत सँभाली, तब से अहिंसा को तिलाञ्जलि दे चुकी है।**
- **मेरी चले तो मैं अनाज का एक दाना भी बाहर से न खरीदूं।**
- **मेरी बात का मूल्य अब अरण्यरोदन के बराबर रह गया है।**
- **आज जय खादी की नहीं, मिल के कपड़ों की है।**
- **डर से जितने लोग मरते हैं उतने मौत या रोग से नहीं मरते।**

८८. थोड़े के लिए बहुत को निराश करना

मेरे विचार से दो या तीन आदमियों के लिए शेष तीन सौ को निराश करना भी एक तरह की हिंसा है।
— नई दिल्ली, ३१।१०।'४७। प्रार्थना-प्रवचन से। ह० से०, ९।११।'४७]

८९. मेरी कहां चलती है?

प्रश्न किसी ने किया हो, है तो वह प्रश्न ही न! . . . . 'तुमने तो अपनी यह अहिंसा अंग्रेजों को भी तब बताई थी जब वे हार रहे थे। उनको शस्त्र-युद्ध न करके अहिंसक होने की सलाह दी थी। वहां तो तुमने इतनी जुर्रत की, तब यहां की हुकूमत को अहिंसा की लड़ाई लड़ने को क्यों नहीं कहते?' मैंने तो बता दिया कि मैं हूं कहां, और कौन मेरी मानता है? लोग कहते हैं कि सरदार जी[1] तो तुम्हारे हैं, पण्डित[2] जी तुम्हारे नहीं तो कौन हैं, मौलाना[3] भी तुम्हारे हैं। हां, मेरे हैं भी और नहीं भी हैं। मैंने तो अपनी अहिंसा छोड़ी नहीं है। मैं तो उसे सीखता ही आया हूं। पर वह तबतक चली जबतक आज़ादी नहीं मिली थी। अब वे कहते हैं कि अहिंसा से कारबार कैसे चल सकते हैं? लश्कर (सेना) तो है ही और वे उस लश्कर को लेकर बैठ गये हैं। अब मेरी कीमत नहीं रही है। जब मेरी कीमत ही नहीं है तब मैं लोगों में क्यों पड़ा हूं? इसी आशा से कि शायद लोग सुन लें। आखिर आप-जैसे कुछ लोग तो आते ही हैं और सभ्यतापूर्वक बैठकर मेरे साथ प्रार्थना करते हैं। जैसे आप हैं, ऐसे शायद दूसरे भी हो जायं और पीछे सब में ज्ञान हो जाय, मेरी बात का कुछ असर हो जाय। इसी लालच में पड़ा हूं और इतना कर रहा हूं। मैं नहीं जानता कि ईश्वर मुझसे कहां तक काम कराना चाहता है। वह चाहे तो आज भी मुझको बन्द कर सकता है। अगर यहां बैठे-बैठे साँस उड़ा दे तो मैं खत्म हो जाता हूं। इसलिए जो चीज़ मैंने हिटलर, मुसोलिनी, चर्चिल और जपान से कही थी उसी पर मैं आज भी कायम हूं। . . . . अगर मेरी अहिंसा चले और सब मेरी बात मानें तो जो लश्कर हम भेजते हैं, वह भी न भेजें। अगर भेजें भी तो अहिंसक सैन्य भेजें। . . . . किन्तु मैं किसे बताऊं? . . . . आज तो हर जगह ज़हर फैल गया है। . . . . उससे भी मैं अहिंसा का यह सरल पाठ नहीं बता सकता। . . . .

---

१. सरदार वल्लभ भाई पटेल, २. पण्डित जवाहरलाल नेहरू, ३. मौलाना अबुलकलाम आज़ाद।

यदि मैं यहां के सब हिन्दू, मुसलमान और सिखों को अपनी अहिंसा समझा सकूं, . . तब मैं एक अहिंसक सेना लेकर कश्मीर या पाकिस्तान में जा सकता हूं और मेरा काम सरल हो जाता है। उस अहिंसा का प्रभाव इतना पड़ेगा कि देखने लायक होगा। किन्तु ऐसा अवसर कैसे आयेगा? आप लोग मेरी सुनें और जो मैं कहता हूं उसपर अमल करें, मेरे शब्दों में ज्यादा शक्ति, हृदय में ज्यादा बल हो, मेरी तपश्चर्या . . . आगे बढ़ जाय, और मेरे एक-एक शब्द में इतनी शक्ति हो कि सारे हिन्दुस्तान को पकड़ ले तो मेरा काम बन जाय। किन्तु आज तो मैं लाचार-सा हूं।

—नई दिल्ली, ५।११।'४७। प्रार्थना सभा में। प्रा० प्र०। भाग २ पृष्ठ ४९-५०-५१ ह० से०, १६।११।'४७]

९०. अहिंसा के पुजारी का हृदय

आजकल करीब-करीब मेरा सारा समय हिन्दू या सिख निराश्रितों या दिल्ली के दुखी मुसलमानों की दर्द-भरी कहानियां सुनने में ही जाता है। मेरी आत्मा को भी उतना ही दुःख होता है, उतनी ही चोट पहुंचती है। किन्तु यदि मैं रोने लगूं और उदास बन जाऊं तो वह अहिंसा का सच्चा रूप नहीं होगा। यदि मैं अहिंसा से इतना कोमल बन जाऊं तो दिन-रात रोता ही रहूं और मुझे ईश्वर की उपासना करने, खाने-पीने या सोने का समय भी न मिले। किन्तु मैंने तो बचपन से ही अहिंसक होने के नाते दुःखों को देख-सुनकर रोने की नहीं बल्कि दिल को कठोर बना लेने की आदत डाल ली है जिससे दुःखों का मुकाबला कर सकूं। क्या पुराने ऋषि-मुनियों ने हमें यह नहीं बताया है कि जो आदमी अहिंसा का पुजारी है उसका दिल फूल से भी कोमल और पत्थर से भी कठोर होना चाहिए?

— नई दिल्ली, ४।११।'४७। प्रार्थना-प्रवचन से। ह० से०, १६।११।'४७]

९१. अहिंसा पर एक सेनापति का आक्षेप

एक अखबारी रिपोर्ट में बताया गया है कि मेजर-जेनरल करिअप्पा ने अहिंसा के विषय में निम्नलिखित बात कही है:—

"आज की स्थिति में हिन्दुस्तान को अहिंसा से कोई लाभ न होगा। केवल शक्तिमान सेना ही हिन्दुस्तान को दुनिया के सबसे बड़े राष्ट्रों में स्थान दिला सकती है।"

मुझे भय है कि अहिंसा के विषय में ऊपर की बात कहकर बहुत से निष्णातों या विशेषज्ञों की भांति जनरल करिअप्पा अपनी सीमा से बाहर चले गये हैं और अज्ञान-वश उन्होंने अहिंसा की शक्ति के विषय में बड़ी गलत कल्पना की है। स्वाभाविक रूप से अपने क्षेत्र में काम करते हुए उन्हें अहिंसा की शक्ति और उसके काम का बड़ा ही छिछला ज्ञान हो सकता है। जीवन-भर अहिंसा पर आचरण करने के कारण मैं अहिंसा का विशेषज्ञ होने का दावा करता हूं—यद्यपि मैं बहुत अपूर्ण हूं। मैं स्पष्ट एवं निश्चित शब्दों में यह कहना चाहता हूं कि मैं जितना ही अधिक अहिंसा पर अमल करता हूं उतना ही स्पष्ट मुझे यह दिखाई देता है कि मैं अपने जीवन में अहिंसा को पूरी तरह उतारने की स्थिति से कोसों दूर हूं। इस तथ्य या सच्चाई की जानकारी, जो संसार में मानव का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है, न होने से ही जनरल करिअप्पा ने यह कहा है कि आज के ज़माने में हिंसा के सामने अहिंसा कुछ नहीं कर सकती। किन्तु मैं तो साहसपूर्वक यह कहता हूं कि इस ऐटम बम के युग में शुद्ध अहिंसा ही ऐसी शक्ति है जो हिंसा की सम्पूर्ण चालों को विफल-कर सकती है। जनरल करिअप्पा, जिन्हें अब फौजी साइंस और फौजी अमल के अपने जानकार ब्रिटिश उस्तादों की मदद नहीं मिल सकती, इस प्रकार अपनी सीमा न लाँघते तो अच्छा होता। जनरल करिअप्पा से ज्यादा बड़े-बड़े जनरलों ने काफ़ी समझदारी और नम्रता से स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया है कि अहिंसा की शक्ति क्या-कुछ कर सकती है, इसके विषय में बोलने का उनका कुछ अधिकार नहीं है। हम सैनिक विज्ञान और सैनिक आचरण का भयानक दिवालियापन उसकी जन्म-भूमि में ही देख रहे हैं। जो आदमी सट्टा बाज़ार में जुआ खेलकर दिवालिया बना है उसे क्या उस विशेष प्रकार के जुए की प्रशंसा के गीत गाने चाहिए?

— नई दिल्ली, ७।११।'४७। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १६।११।'४७]

- **ऐटम बम के युग में शुद्ध अहिंसा ही ऐसी शक्ति है जो हिंसा की सम्पूर्ण चालों को विफल कर सकती है।**
- **सैनिक विज्ञान और सैनिक आचरण का भयानक दिवालियापन हम उसकी जन्मभूमि में ही देख रहे हैं।**

९२. मेरे स्वप्न का भारत

. . . . मैं केवल यही आशा और प्रार्थना करता हूं और यहां के एवं संसार के दूसरे भागों में रहनेवाले मित्रों से चाहता हूं कि वे भी मेरे साथ यह आशा और प्रार्थना करें कि यह खून की होली शीघ्र समाप्त होगी और उसमें से—कदाचित्

अनिवार्य खून-खराबी में से निकलकर एक नवीन एवं शक्तिमान भारत ऊपर उठेगा जो पश्चिम की सम्पूर्ण भयंकरताओं का नीचता से अनुकरण करनेवाला भारत न होगा; वह पश्चिम की समस्त अच्छी बातों को सीखनेवाला और एशिया एवं अफ्रीका ही नहीं, वरं सम्पूर्ण दुखी विश्व का आशा-केन्द्र बननेवाला भारत होगा।

मुझे मानना चाहिए कि यह दुराशा मात्र है क्योंकि आज हम सेना में और शरीर-बल को व्यक्त करनेवाली समस्त वस्तुओं में पक्का विश्वास रखने लगे हैं। हमारे राजनीतिज्ञ अंग्रेजी शासन में हथियारों पर किये जानेवाले भारी खर्च के विरुद्ध दो पीढ़ियों तक आवाज़ उठाते रहे हैं। किन्तु अब चूंकि राजनीतिक पराधीनता से हमें मुक्ति मिल गई है, हमारा सैनिक व्यय बढ़ गया है, और भय है कि वह और ज्यादा बढ़ेगा। और इसपर हमें अभिमान है। इसके विरुद्ध हमारी धारासभाओं में एक भी आवाज़ नहीं उठी है। फिर भी मुझे और दूसरे बहुत से लोगों को आशा है कि इस पागलपन और पश्चिम के भड़कीलेपन की झूठी नक़ल करने के बावजूद भारत इस मौत के मुंह से बच जायगा और सन १९१५ से निरन्तर बत्तीस साल तक अहिंसा की शिक्षा लेने के बाद उसे जिस नैतिक ऊंचाई पर पहुँचना चाहिए, वहां पहुँच जायगा।

— नई दिल्ली, २९।११।'४७। मूल अंग्रेजी। ह० से०, १४।१२।'४७]

९३. कोटि-कोटि के लिए

करोड़ों के एक साथ काम करने से जो शक्ति पैदा होती है उसका सामना कोई शस्त्र-बल नहीं कर सकता। मैं यह सिद्ध न कर सकूं तो दोष मेरा है, अहिंसा का नहीं।

—नई दिल्ली, १३।१२।'४७। प्रा० प्र० भाग २, पृष्ठ २०२। ह० से०, २१।१२।'४७]

[७]

अहिंसा परिशिष्ट भाग

* * *

परिशिष्ट—क : तिथि-विहीन रचनाएँ

१. शस्त्र बनाम आत्मबल

गांधी जी के एक पत्र का अंश

....मेरी धारणा है कि इस्लाम धर्म की उन्नति का कारण मुसलमानों की तलवारें नहीं, मुसलमान फ़कीरों की आत्माहुति ही है। तलवार का वार सहने में ही सच्ची बहादुरी है; तलवार चलाने में तनिक भी (बहादुरी) नहीं। यदि मारने वाले की भूल होगी तो इसकी स्मृति उसे सदा कचोटती रहेगी कि उसने हत्या का पाप किया है। किन्तु मरने वाले ने यदि भूल से ही मृत्यु अंगीकार की हो, तब भी उसकी विजय ही है। सत्याग्रह अहिंसा-धर्म है, इसलिए वह सदा-सर्वदा धन्य है; इष्ट है। शस्त्रबल हिंसात्मक है, इसलिए वह सभी धर्मों में निन्दनीय माना गया है। शस्त्रबलधारी भी उस बल के प्रयोग की सीमा निर्धारित करते हैं।....

—— 'महात्मा गांधी' खण्ड २; पृष्ठ १२५ (तिथि अज्ञात)]

२. विचार-स्वातन्त्र्य का अहिंसक रूप

...तुमने कल जो कहा था कि हिन्दी और हिन्दुस्तानी के बारे में तुम अपना विचार ज़ाहिर नहीं करोगे और न लिखोगे ही, उसमें मैंने तुम्हारे अन्तर के रोष को देखा। अपने विचार को दबाना, यह तो हिंसा है। मैं तो इतना ही चाहता था कि जो भी कहो और लिखो, उस में अविनय के लिए स्थान नहीं होना चाहिए।...

—श्री वियोगी हरि को लिखे गये पत्र से]

३. अहिंसा : संसार के लिए भारत का सन्देश

हमारी सभ्यता हमें साहसपूर्ण विश्वास के साथ बताती है कि अहिंसा के गुण का ठीक और पूरी तरह विकास कर लेने पर सारी दुनिया हमारे पैरों में आ जाती

है क्योंकि अहिंसा क्रियात्मक रूप में शुद्ध प्रेम और दया ही होती है। इस आविष्कार के कर्त्ता ने इतने अधिक दृष्टान्त दिये हैं कि उनसे विश्वास जम जाता है।

राजनीतिक जीवन में इसके परिणामों की जाँच कीजिए। जीवनदान से अधिक मूल्य हमारे शास्त्रों में और किसी दान का नहीं माना गया है। विचार कीजिए कि यदि हम अपने शासकों को जीवन का अभयदान दे दें तो उनके साथ हमारे सम्बन्ध क्या होंगे। यदि उन्हें मात्र यह अनुभव हो सके कि उनके कृत्यों के बारे में हमारी कुछ भी भावना क्यों न हो, हम उनके शरीरों को उतना ही पवित्र समझेंगे जितना अपने शरीर को समझते हैं तो तुरन्त ही पारस्परिक विश्वास का वातावरण उत्पन्न हो जायगा और दोनों ओर ऐसी साफगोई आ जायगी कि आज जो बहुत सी समस्याएं हमें चिन्तित कर रही हैं उनके सम्मानपूर्ण और न्यायपूर्ण हल का रास्ता साफ हो जायगा। यह याद रखना चाहिए कि अहिंसा का पालन करने में अनुकूल उत्तर पाने की भावना रखने की जरूरत नहीं है, यद्यपि यह सच है कि अन्तिम स्थितियों में इसका अनुकूल उत्तर मिलता ही है। हममें से बहुतों का विश्वास है और मैं उनमें से एक हूं कि अपनी सभ्यता-द्वारा संसार को देने के लिए हमारे पास एक भव्य सन्देश है।

— 'स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स आफ महात्मा गांधी।' नवजीवन प्रकाशन मन्दिर द्वारा प्रकाशित 'विद्यार्थियों से' संकलन का अंश।]

४. अहिंसा, एक शाश्वत धर्म

[मद्रास के 'जस्टिस' पत्र के सम्पादक को गांधी जी द्वारा लिखे गयें पत्र का अंश]

जब आप देखेंगे कि अहिंसा मेरे लिए एक ऐसा धर्म-सिद्धान्त है, जिसपर प्रत्येक कल्पनीय अवसर पर अमल हो सकता है, तब आप मेरे साथ असहमत हों तो भी मेरी विचारसरणि के साथ आपकी सहानुभूति अवश्य होगी। सम्भव है कि मैं अपने सिद्धान्त पर अमल करने में अनेक बार असफल रहूं, किन्तु इससे उस सिद्धान्त का मूल्य कम नहीं हो जाता।....

मेरी अहिंसा मुझे यह सिखाती है कि किसी विशेष मन्दिर में जाने वाले किसी भी भक्त की भावना को मुझे ठेस नहीं पहुंचानी चाहिए।

— महादेव भाई की डायरी भाग ३–परिशिष्ट खण्ड, १, पृष्ठ ३८५]

परिशिष्ट ख

५. दिल्ली-प्रस्ताव

प्रति सप्ताह जो घटनाएं हो रही हैं उनकी प्रगति को समझने के लिए यह बेहतर होगा कि हम दिल्ली में कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा राजनीतिक स्थिति पर पास किये गये प्रस्ताव और जुलाई १९४० के शुरू में दिल्ली में जो कुछ हो रहा था उसपर ध्यान दें। वर्धा की तरह दिल्ली में भी स्वयं गांधी जी ने एक प्रस्ताव का मसविदा तैयार किया, लेकिन इस बार भी उनके प्रस्ताव की जगह एक नया प्रस्ताव पास किया गया। कांग्रेस कार्य समिति ने सारी स्थिति की फिर से समीक्षा करते हुए अनुभव किया कि हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस समय ब्रिटेन और भारत को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता रहा है उन्हें सुलझाने का एकमात्र उपाय ब्रिटेन-द्वारा भारत की पूर्ण स्वाधीनता की स्वीकृति है और इसे तत्काल कार्यरूप में परिणत करने के लिए उसे केन्द्र में एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार क़ायम करनी चाहिए, जो यद्यपि एक अस्थायी साधन के रूप में बनाई जाय, परन्तु वह इस तरह से स्थापित की जाय कि उसे केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सभी निर्वाचित वर्गों का विश्वास प्राप्त रहे और इसके अलावा प्रान्तों की जिम्मेदार सरकारों का सहयोग भी उसे मिलता रहे। कार्यसमिति ने एलान किया कि अगर इन उपायों को अपनाया गया तो कांग्रेस देश की रक्षा के लिए प्रभावशाली संगठन में पूरा-पूरा सहयोग देने को तैयार हो जायगी। इस प्रस्ताव के सम्बन्ध में जितनी बार गलतफहमियां फैलीं और उसका ग़लत अर्थ किया गया, उतनी ही बार उनका फिर से विश्लेषण करना भी आवश्यक हो गया। इसी प्रकार का एक प्रस्ताव पूना में भी अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने पास किया था।....

—सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित श्री पट्टाभि सीतारामय्या के 'कांग्रेस का इतिहास,' खण्ड २, पृष्ठ २१३ से, संस्करण १९४८]

६. पूना-प्रस्ताव

पूना में कांग्रेस महासमिति ने ७ जुलाई १९४० के दिल्ली-प्रस्ताव का ही समर्थन किया और यह स्पष्ट किया कि यद्यपि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के निमित्त लड़ी जाने वाली लड़ाई में कांग्रेस अहिंसा के सिद्धान्त पर कड़ाई से अमल करती रहेगी, फिर भी मौजूदा हालतों में वह भारत की राष्ट्रीय रक्षा के मामले में इस सिद्धान्त

को लागू नहीं कर सकती। महासमिति ने इस बात पर भी जोर दिया कि कांग्रेस का संगठन अहिंसा के आधार पर ही जारी रहना चाहिए और कांग्रेस के सभी स्वयंसेवक अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करते समय अहिंसा पर चलने को बाध्य हैं और इस सिद्धान्त के अलावा किसी अन्य सिद्धान्त पर कांग्रेस का कोई भी स्वयंसेवक-संगठन क़ायम नहीं हो सकता। आत्मरक्षा के लिए ऐसे और भी जो स्वयंसेवक-संगठन होंगे और जिनके साथ कांग्रेस को सहयोग करना होगा, उन्हें भी अहिंसा पर दृढ़ रहना होगा। इस सम्बन्ध में कांग्रेस कार्यसमिति ने देश की राजनीतिक स्थिति पर वर्धा में एक उपयुक्त वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिसे पूना में कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन के समय सदस्यों में व्यापक रूप से प्रचारित किया गया।

पूना में कार्यसमिति का प्रस्ताव कोई सुगमता से नहीं पास हो गया था। प्रस्ताव के हक़ में ९७ और उसके खिलाफ़ ६३ वोट पड़े। विरोधियों में कुछ उल्लेखनीय नाम ये हैं—बाबू राजेन्द्र प्रसाद, डा० प्रफुल्ल घोष, आचार्य कृपलानी, श्री शंकरराव देव और श्री हरेकृष्ण मेहताब। राजेन्द्रबाबू ने प्रस्ताव के विरोध में भाषण दिया।

—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली—द्वारा प्रकाशित श्री पट्टाभि सीतारामय्या के 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड २, पृष्ठ २२० से संस्करण १९४८]

७. वर्धा-प्रस्ताव

१४ जून को कांग्रेस-कार्य समिति का जलसा हो रहा था और फ्रांस के पतन की खबर १५ और १६ जून को रेडिओ के जरिए जनता तक पहुंची और १७ जून को सारा संसार निस्तब्ध भाव से भावी परिस्थिति को देख रहा था।... कांग्रेस के लिए अपनी स्थिति के बारे में इतना अधिक सोचने की आवश्यकता नहीं थी, जितना कि इस बात पर जोर देने की थी कि भारत का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है। एक सप्ताह तक गहरे सोच-विचार के बाद कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें बहुत से महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये गये थे। अगर हम याद रखें कि जून में वर्धा में होने वाली कांग्रेस कार्य समिति की बैठक से पहिले गांधी जी ने 'हर एक अंग्रेज के प्रति' अपना प्रसिद्ध पत्र प्रकाशित किया था—तो उस समय की स्थिति हमारी समझ में आसानी से आ सकेगी। इससे वर्धा में कांग्रेस ने जो स्थिति ग्रहण की, उस पर काफी प्रकाश पड़ता है।....प्रश्न यह था कि किस प्रकार गांधी जी कांग्रेस का नेतृत्व कर सकेंगे, जबकि उनके विचार कांग्रेस के परम्परागत विचारों

से और आज की विचारधारा से कोई मेल ही नहीं खाते? इससे तीन महीने पहले रामगढ़ में भी उन्होंने कांग्रेस छोड़ देने की बात कही थी। लेकिन आग्रहवश उन्हें अपना विचार त्याग देना पड़ा और वे कांग्रेस में टिके रहे। जून में भी वर्धा में स्थिति वही थी। उनके लेख से पता चलता है कि उन्हें फ्रांस के पतन से बड़ा दुःख पहुंचा। इनकी नजरों में 'यह विजय व्यर्थ और बिल्कुल बेकार थी। कांग्रेस को गर्व होना चाहिए कि उसने हिंसा के मुकाबले में एक बिल्कुल नया हथियार दुनिया के सामने पेश किया था। क्या वह हथियार कमजोर का हथियार ही होना चाहिए? आन्तरिक गड़बड़ और बाहरी आक्रमण का मुकाबला करने के लिए भी हमें अहिंसा के इसी हथियार का आश्रय लेना चाहिए। हिंसा की जगह यह एक प्रभावशाली साधन समझा जाना चाहिए। इस समय कांग्रेस कार्यसमिति के कन्धों पर एक बड़ी भारी जिम्मेदारी आ पड़ी थी। अगर वह नया हथियार अपनाती है तो इसे अपना पिछला सारा इतिहास भुला देना होगा। उसने पीछे जो कुछ किया है वह सब मटियामेट हो जायगा। उसका विश्वास जाता रहेगा। यह ठीक है कि इस अस्त्र का प्रयोग हमने ब्रिटेन के खिलाफ किया। पर सवाल तो यह है कि क्या इससे हमारी साम्प्रदायिक समस्या सुलझ सकेगी? . . .अगर कांग्रेस कार्यसमिति अहिंसा के पक्ष से विचलित होती है तो निःसन्देह वह विश्वासघात की दोषी ठहराई जायगी। इसलिए उसे यह घोषणा करनी होगी कि विदेशी हमले के समय भी वह अहिंसा से ही दुश्मन के आक्रमण का मुकाबला करेगी और अहिंसक लोगों का एक ऐसा दल तैयार करेगी जो आक्रान्ता के खिलाफ एक जीवित दीवार का काम दे। इसलिए आवश्यकता यह होगी कि जिन सदस्यों को अहिंसा पर विश्वास नहीं है उन्हें कांग्रेस संगठन से पृथक् कर दिया जाय अथवा वे कांग्रेस से स्वेच्छापूर्वक अलग हो जायं। संयोगवश इस तरह हिंसा का सहारा लेनेवाले सिविल गार्डों का प्रश्न भी हल हो जाता है। इस प्रकार कांग्रेस ब्रिटेन से किसी तरह का सहयोग नहीं कर सकती थी और न ही वह युद्ध-प्रयत्न में उसकी कोई बड़ी सहायता ही कर सकती थी। हां, वह उसे नैतिक मदद दे सकती थी, बशर्ते कि ब्रिटेन अमली रूप से अपने को इसका अधिकारी साबित कर देता। लेकिन उसे यह सहायता न चाहिए थी।'

. . . .परन्तु देश में उस समय जो विचार-धारा प्रवाहित हो रही थी, उसकी कांग्रेस किस प्रकार उपेक्षा कर सकती थी? इसलिए उसे गांधी जी की स्थिति पर सन्देह होने लगा, परन्तु गांधी जी का विश्वास इतना दृढ़ था कि उन्हें पथ-भ्रष्ट करना कठिन था। . . .

'इसके खिलाफ यह कहा जाता था कि गांधी जी को अपने सिद्धान्तों पर कड़ाई

से अमल करने के ख्याल से इस जीवन-मरण के संघर्ष से अपना सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करना चाहिए।...बहुत दिनों से वे राष्ट्र की कमजोरी को जानते आये हैं। यह तो गांधी जी का ही कर्तव्य था--क्या वास्तव में यह काम उनका नहीं था? उन्हें उदार बनने की जरूरत थी।...इसलिए जून १९४० के प्रस्ताव में कहा गया, 'वे स्वीकार करते हैं कि उन्हें अपने ही तरीके से अपने महान लक्ष्य को हासिल करने की आज़ादी होनी चाहिए और इसलिए कांग्रेस उन्हें उस कार्यक्रम और कार्रवाई की ज़िम्मेदारी से मुक्त रखना चाहती है जिसपर उसे बाहरी आक्रमण और देश के भीतर की गड़बड़ का ख़याल करते हुए भारत की तथा संसार की मौजूदा परिस्थितियों में, अमल करना है।...यह कहने से कोई फायदा नहीं कि जब तक अहिंसा की सत्याग्रही सेना तैयार नहीं हो जाती हम हिंसा की दुराग्रही सेना का मुकाबला नहीं कर सकते। यह ठीक है कि जिस प्रकार कुदरत शून्य को खाली रखना पसन्द नहीं करती और उसकी पूर्ति करती रहती है उसी प्रकार राजनीति भी शून्य का स्थान खाली नहीं रहने देती। लेकिन अगर उस रिक्त स्थान को भरने की कोशिश ही न की जाय तो वह ख़तरा सदा बना ही रहेगा। यह तो मानो ऐसी बात हुई कि बिना डुबकी लगाये तैरने की कोशिश की जाय। कहने का तात्पर्य यह कि दोनों काम साथ-साथ चलने चाहिए। वास्तव में तो दोनों काम एक ही हैं। लेकिन उनकी दिशाएं भिन्न हैं।' इस तरह के उदाहरण का मतलब यह है कि संक्रान्ति-काल में हमें ले-दे की नीति से काम चलाना होगा। और होना भी ऐसा ही चाहिए। राजनीतिज्ञ पुलिस की मांग कर सकते हैं और सेना कम कर सकते हैं, अथवा इसी प्रकार सेना की मांग करके पुलिस कम कर सकते हैं। कुछ समय तक के लिए पुलिस रखने पर गांधी जी भी सहमत हैं और शायद अन्तर्कालीन आवश्यकता की दृष्टि से वे सेना रखने पर भी राजी हो जायं, परन्तु हमें साफ-साफ और असन्दिग्ध भाषा में उनके सिद्धान्त को अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा। वास्तव में देखा जाय तो कांग्रेस कार्यसमिति ने अपने प्रस्ताव में कुछ ऐसी ही कोशिश की है। उसने अहिंसा में अपने दृढ़ विश्वास को फिर से दोहराया है और सेना को समाप्त करने के सम्बन्ध में अपनी आशंकाएं भी प्रकट की हैं। इसे हम मजाक में यह कह सकते हैं कि एक टांग इधर और दूसरी टांग उधर। अर्थात हम कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। राजनीति में ऐसा मज़ाक करना विशेषरूप से आसान है। परन्तु इस तरह प्रगति नहीं हो सकती।....

— सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली द्वारा प्रकाशित श्री पट्टाभि सीतारामय्या के 'कांग्रेस का इतिहास' खण्ड २, पृष्ठ २०५,६,८,९ का अंश, संस्करण १९४८]

परिशिष्ट ग

८. अहिंसा परमो धर्मः

[जुलाई १९१६ के माडर्न-रिव्यू में प्रकाशित ला० लाजपत राय का एक लेख।]

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, और 'अहिंसा परमो धर्मः' से बढ़कर और कोई आचार नहीं है। यदि मनुष्य अहिंसा का ठीक-ठीक तात्पर्य समझ ले और जीवन के कार्यों में उसका उचित रूप से उपयोग करने लगे तो वह महात्मा और वीर हो जाता है। यदि उसका ठीक-ठीक तात्पर्य न समझा जाय और उचित उपयोग न किया जाय तो मनुष्य कायर, निर्जीव, नीच और वाहियात हो जाता है। किसी समय भारतवासी उसका ठीक-ठीक अर्थ समझते थे और केवल उचित उपयोग करते थे। उस समय वे लोग बहुत ही सच्चे, सज्जन और वीर होते थे। इसके बाद एक ऐसा समय आया जब कि कुछ अच्छे लोगों ने, जिनके उद्देश्य बहुत अच्छे और साधु थे, उसे केवल समस्त दूसरे गुणों से श्रेष्ठ ही नहीं बना डाला, बल्कि उसे उत्तम जीवन का एक मात्र और मुख्य लक्षण मान लिया। उन्होंने केवल अपने जीवन में ही उसकी सीमा का उल्लंघन नहीं किया, बल्कि और सब बातों को दबाकर उसे सर्वप्रधान जातीय गुण बना डाला। जिन दूसरे गुणों से मनुष्य और जातियां श्रेष्ठ होती हैं उन्हें गौण और इससे छोटा ठहराया और इसी को सज्जनता या भलाई का प्रधान चिह्न माना। साहस और वीरता आदि सबका अन्त हो गया। प्रतिष्ठा और आत्म-मर्यादा ताक पर रख दी गई। देश-प्रेम, परिवार-प्रेम और जाति की प्रतिष्ठा आदि सब बातें जाती रहीं। इस अहिंसा के परिवर्तित अथवा अनुचित उपयोग अथवा दूसरी सब बातों के महत्व के नाश तथा इसको अनुचित और बहुत अधिक महत्व देने के कारण ही हिन्दुओं का सामाजिक, राजनीतिक और नैतिक अधःपतन हुआ। वे लोग यह बात भूल गये कि मर्दानगी का ठीक-ठीक उपयोग किया जाय तो उससे अहिंसा का किसी प्रकार का विरोध अथवा खण्डन नहीं होता। उन लोगों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि व्यक्तिगत और जातीय हितों की रक्षा के लिए सबलों से दुर्बलों का बचाना आवश्यक है और अत्याचारियों, बदमाशों, दुष्टों, स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करनेवालों और ठगों को अन्याय तथा अत्याचार करने से रोकना भी आवश्यक है। उन लोगों ने इस सिद्धान्त पर कोई ध्यान नहीं दिया कि मनुष्यत्व के लिए यह बात आवश्यक है कि उचित क्रोध तथा उसके परिणामों के कारण जो भय होता है वह भय उत्पन्न

करके दुष्टों को दुष्टता करने और निरापराधियों को हानि पहुंचाने, सतीत्व भंग करने तथा दूसरों को उनके उचित अधिकारों से वञ्चित करने से रोकना आवश्यक है। उन लोगों ने इस सत्य सिद्धान्त का महत्व और गूढ़ आशय नहीं समझा कि जो व्यक्ति किसी प्रकार का अन्याय, अत्याचार या पीड़न सहन करता अथवा इन सब कामों को होने दता है वह एक प्रकार से इन बुरे कामों का .सहायक और उत्तेजक होता है और दुष्टों के बल और समृद्धि को बढ़ाने का उत्तरदायित्व अंशत: उस पर भी होता है।

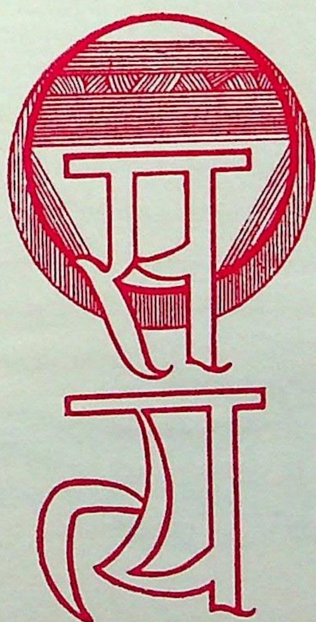
अहिंसा की सीमा का उल्लंघन और अनुचित उपयोग बड़ा भारी विष है जो मनुष्य को खराब कर देता है; उसकी शक्तियों को नष्ट कर देता है और पुरुष तथा स्त्रियों को बहुत-कुछ पागल और निर्जीव कर देता है और उन्हें उत्तम कार्यों को अच्छी तरह करने के अयोग्य बना देता है। वह मनुष्यों को झक्की और कायर बना देता है। जैन धर्म के प्रवर्त्तक लोग साधु थे और आत्म-त्याग-युक्त जीवन व्यतीत करते थे। उनके अनुयायी जैन-साधु ऐसे बड़े-बड़े महात्माओं और साधुओं में से हैं जिन्होंने अपनी प्रवृत्तियों का नाश करने और इन्द्रियों तथा मन को वश में रखने में सबसे अधिक सफलता प्राप्त की है। टालसटाय वाला अहिंसा का सिद्धान्त तो अभी हाल में, कुछ ही वर्षों से, निकला है, पर जैनों के अहिंसा-सिद्धान्त का भारत में तीन हजार वर्षों से प्रचार और व्यवहार हो रहा है। भारत में अनेक शताब्दियों से अहिंसा-धर्म्म के जितने अधिक और कट्टर पालक होते आये हैं उतने संसार के और किसी देश में नहीं हुए हैं। पर साथ ही यह बात भी है कि संसार में और कोई ऐसा देश नहीं है जो उतना ही पद-दलित और मनुष्यत्व के गुणों से हीन हो जैसा कि आजकल का भारत है अथवा जैसा कि गत पन्द्रह सौ वर्षों से भारत रहता आया है। कुछ लोग कहते हैं कि भारत के इस अधःपतन का कारण अहिंसा धर्म का पालन नहीं है, बल्कि दूसरे गुणों का नाश है। लेकिन मेरा यह विचार है कि भारत को प्रतिष्ठा, मनुष्यत्व तथा गुणों से रहित करने वाले अनेक कारणों में से इस अहिंसा वाले सिद्धान्त का अर्थ-परिवर्तन भी एक है। जो लोग अपने आपको इस सिद्धान्त का पक्का अनुयायी मानते हैं वे स्वयं अपने आचरण से ही यह बात सिद्ध कर देते हैं कि ऐसे सिद्धान्त के अनुचित और परिवर्तित उपयोग से जीवन अवश्य ही पाखण्ड और निर्दयता से युक्त हो जाता है और नामर्दी आ जाती है। मेरा जन्म एक जैन कुल में हुआ है। मेरे दादा अहिंसा के पक्के अनुयायी थे। साँप चाहे उन्हें काट लेता पर वह उसे कभी न मारते। वह किसी छोटे से कीड़े-मकोड़े को भी कभी कोई कष्ट नहीं पहुंचाते थे। वह घण्टों पूजा-पाठ में लगे रहते थे। देखने में सब प्रकार से बड़े ही धार्मिक जान पड़ते थे और बिरादरी में उनका

अच्छा मान और आदर होता था। उनके एक भाई साधु थे, जो अपने धर्म के आचार्य माने जाते थे। उनके समान श्रेष्ठ साधु मैंने बहुत ही कम देखे हैं। वह अपने सिद्धान्तों का पूरा-पूरा पालन करते थे; अनेक प्रकार के धर्माचरण करके अपना शरीर क्षीण करते थे, और अपनी कामनाओं तथा प्रवृत्तियों को वश में रखते थे। लेकिन फिर भी श्रेष्ठ नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार उनका जीवन निरर्थक और अप्राकृतिक था। मैं उन्हें बहुत प्रेम तथा आदर की दृष्टि से देखता था, परन्तु उनके सम्प्रदाय में सम्मिलित नहीं हो सकता था और न उन्होंने कभी मुझे अपने सम्प्रदाय में मिलाने की कोई इच्छा ही प्रकट की। उनके भाई अर्थात् मेरे दादा दूसरी ही तरह के आदमी थे। वह उस परिवर्तित अहिंसा धर्म के मानने वाले थे, जिसके अनुसार कभी और किसी अवस्था में किसी प्रकार की जीव-हत्या नहीं की जा सकती। लेकिन अपने व्यापार और व्यवसाय में वह सब प्रकार के छल-कपट करना केवल उचित ही नहीं बल्कि उत्तम भी समझते थे। उनके लिए व्यापार-नीति के अनुसार ये सब छल-कपट अनुचित या वर्जित नहीं थे। मैं इस धर्म के माननेवाले ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूं जो किसी नाबालिग या विधवा के साथ व्यवहार करते समय उनके मुंह का एक-एक कौर छीन लेंगे, पर कीड़ों, मकोड़ों, पक्षियों या दूसरे पशुओं के प्राण बचाने के लिए हजारों रुपये खर्च कर देंगे। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि भारत के जैन दूसरे हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक नीतिभ्रष्ट होते हैं अथवा अहिंसा के कारण इस प्रकार की अनीति की सृष्टि होती है। इस प्रकार की निराधार बातों से मैं बहुत दूर हूं। जैन लोग दानी, अतिथिसेवी, बुद्धिमान और व्यापार-कुशल होते हैं। हिन्दुओं में भी इस प्रकार के बहुत से लोग होते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य केवल यही है कि अहिंसा-धर्म के पालन ने उन लोगों को औरों की अपेक्षा कुछ भी अधिक श्रेष्ठ या नीतिमान नहीं बनाया। वास्तव में वे ही लोग सब प्रकार के बल-प्रयोगों से अधिक कष्ट उठाते हैं, क्योंकि उनके मन में बल-प्रयोग के प्रति जो घृणा और उससे जो भय होता है उसके कारण वे औरों की अपेक्षा अधिक निस्सहाय होते हैं। वे अपने सम्बन्धियों आदि की प्रतिष्ठा की रक्षा नहीं कर सकते। युरोप बल-प्रयोग के दैवी अधिकार का आधुनिक अवतार है। युरोप में टाल्सटाय का जन्म होना उसके लिए अच्छा ही हुआ, लेकिन भारत की बात दूसरी ही है। भारत में हम लोग दमन, अत्याचार, अथवा दूसरों के अधिकार आदि दबा बैठने के लिए बल-प्रयोग का उपदेश या समर्थन नहीं करते। मेरा विश्वास है कि भविष्य में भी कभी भारत ऐसा नहीं करेगा। लेकिन हम लोग इस बात की शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकते कि अपनी-अपनी मर्यादा की अथवा अपनी स्त्रियों, बहिनों, कन्याओं और माताओं की प्रतिष्ठा की रक्षा

करने के लिए भी बल-प्रयोग करता पाप है। इस प्रकार की शिक्षा अस्वाभाविक और हानि पहुंचाने वाली है। हम लोग राजनीतिक हत्याओं को बहुत अनुचित और निन्दनीय समझते हैं। यही नहीं, बल्कि किसी नियमानुमोदित उद्देश्य की सिद्धि के लिए अनुचित या नियम-विरुद्ध बल-प्रयोग की भी हम निन्दा करते हैं। लेकिन उस समय हम चुपचाप नहीं बैठ सकते जब कि एक प्रतिष्ठित आदमी हमारे युवकों से यह कहता है कि हम लोग केवल अपने आपको अत्याचारी के हाथों में देकर ही उन लोगों की प्रतिष्ठा की रक्षा कर सकते हैं जो कि हमारे अधीन हैं। और हमारा यह काम मार-पीट करने की अपेक्षा कहीं अधिक शारीरिक और मानसिक साहस का है। मान लीजिए कि कोई दुष्ट हमारी कन्या पर आक्रमण करता है। महात्मा गांधी कहते हैं कि अहिंसा-सम्बन्धी मेरे जो विचार हैं उनके अनुसार उस कन्या की प्रतिष्ठा की रक्षा का एकमात्र उपाय यही है कि हम उस कन्या और उस पर आक्रमण करने वाले के मध्य खड़े हो जायं। लेकिन उस समय उस कन्या का क्या होगा जबकि उस पर आक्रमण करने वाला हमें मार गिरायेगा और अपना पैशाचिक उद्देश्य पूरा कर लेगा? महात्मा गांधी के कथनानुसार उस आक्रमणकारी के विरुद्ध अपनी शारीरिक शक्ति लड़ाकर उसे रोकने का प्रयत्न करने की अपेक्षा उसके सामने चुपचाप खड़े हो जाने और उसे अपनी ओर से सब कुछ प्रयत्न करने देने में ही अधिक मानसिक और शारीरिक साहस की आवश्यकता है। महात्मा गांधी का पूरा-पूरा आदर करते हुए हम यह कहना चाहते हैं कि इस बात का कोई अर्थ ही नहीं है। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के लिए मेरे मन में सबसे अधिक आदर है। वह उन लोगों में से हैं जिन्हें मैं देवता-तुल्य मानता हूं। उनकी सत्यनिष्ठा में मुझे कोई सन्देह नहीं है और न मैं उनके उद्देश्यों के सम्बन्ध में ही कोई शंका करता हूं। लेकिन वे जिस हानिकारक सिद्धान्त का उपदेश करते हुए बतलाये जाते हैं, उसका ज़ोरों से विरोध करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं। इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी को भी भारतीय युवकों के मनों को दूषित न करने देना चाहिए। जातीय जीवन-शक्ति के उद्गमों को दूषित करने का किसी को अधिकार नहीं होना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा महात्मा बुद्ध तक ने नहीं दी। और ईसा मसीह की शिक्षा तो इस सम्बन्ध में बुद्ध की शिक्षा से भी हल्के दर्जे की है। मैं नहीं समझता कि स्वयं जैन लोग भी इस सीमा तक जायँगे। और यदि कोई पूछे क्यों तो इसका उत्तर यह है कि उस दशा में प्रतिष्ठा-पूर्वक जीवन-निर्वाह करना असम्भव हो जायगा। जिस मनुष्य का इस प्रकार विश्वास होगा, वह किसी को मनमाना अत्याचार करने से कभी पूरी तरह से नहीं रोक सकेगा। यदि यही बात थी तो महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका के उन गोरों की इच्छा का विरोध करके

उनका दिल क्यों दुखाया, जो उस देश से भारतवासियों को निकाल देना चाहते थे? उचित तो यह था कि ज्योंही दक्षिण अफ्रीका वालों ने भारतवासियों को अपने देश से निकाल देने की इच्छा प्रकट की थी, त्योंही वह अपना बोरिया-बँधना बाँध कर वहां से चल देते और अपने देशवासियों को भी ऐसा ही करने की सलाह देते। क्योंकि ऐसी परिस्थिति में किसी प्रकार का विरोध या आग्रह करना, सच पूछिए तो हिंसा करना ही होगा। शारीरिक हिंसा और कुछ भी नहीं है, केवल मानसिक हिंसा का परिवर्द्धित और विकसित स्वरूप है। यदि किसी चोर, डाकू या शत्रु को किसी प्रकार की हानि पहुंचाने का विचार करना पाप है तो इसमें सन्देह नहीं कि बल प्रयोग करके उसका विरोध करना और भी बड़ा पाप है। यह बात स्पष्टतया इतनी पोच है कि मुझे उस रिपोर्ट की सत्यता में भी सन्देह होता है जो महात्मा गांधी के व्याख्यान के सम्बन्ध में प्रकाशित हुई है। लेकिन उस व्याख्यान पर सभी समाचार-पत्र स्वतन्त्रता-पूर्वक टीका-टिप्पणियां कर रहे हैं और महात्मा गांधी ने किसी प्रकार का खण्डन या विरोध प्रकाशित नहीं कराया। जो कुछ हो, परन्तु ऐसी अवस्था में मैं चुपचाप नहीं बैठ सकता और जबतक इस व्याख्यान की बातों का खण्डन अथवा स्पष्टीकरण न हो जाय तबतक मैं इस सिद्धान्त को सर्वथैव सत्य सिद्धान्त के रूप में अनुकृत होने के लिए भारतीय युवकों तक नहीं पहुंचने दे सकता। महात्मा गांधी एक ऐसे संसार की सृष्टि करना चाहते हैं जिसमें केवल काल्पनिक पूर्णता हो। इसमें सन्देह नहीं कि उन्हें ऐसा करने के लिए कहने की पूरी स्वतन्त्रता है, पर इसी प्रकार मैं भी अपना यह कर्तव्य समझता हूं कि इसमें जो कुछ भूल है वह बतला दूं।



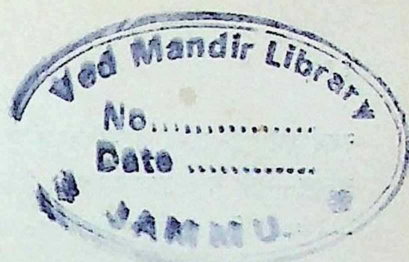




[१]

आत्यन्तिक सत्य एवं निरपेक्ष

[P]



१. सत्य की शोध में

मैं केवल सत्य का शोधक हूँ। मेरा दावा है कि मुझे सत्य का रास्ता मिल गया है। मेरा दावा है कि मैं सत्य को पाने का सतत् प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे अभी तक वह मिला नहीं है। सत्य को पूरी तरह प्राप्त कर लेना है। अर्थात् सम्पूर्ण हो जाना है। मुझे अपनी अपूर्णताओं का दुःखद भान है। और इसी में मेरा सारा बल समाया हुआ है। क्योंकि अपनी मर्यादाओं को जान लेना मनुष्य के लिए दुर्लभ वस्तु है।

— यं० इं०, १७।११।'२१]

२. सत्य क्या है ?

...इस परिमित सत्य के अतिरिक्त एक शुद्ध सत्य है। वह अखण्ड है, सर्वव्यापक है। परन्तु वह अवर्णनीय है क्योंकि सत्य ही ईश्वर है, अथवा परमेश्वर ही सत्य है। दूसरी सब चीजें मिथ्या हैं अर्थात् दूसरों में इसी परिमाण में जो कुछ सत्य हो वही ठीक है।

जो सत्य जानता है; मन से, वचन से, और काया से सत्य का आचरण करता है, वह परमेश्वर को पहिचानता है। इससे वह त्रिकालदर्शी हो जाता है। उसे इसी देह में मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

...सत्य कहना और करना मेरा स्वभाव ही हो गया है। पर हाँ, जिस सत्य को मैं परोक्ष रीति से जानता हूं, उसके पालन का दावा मैं नहीं कर सकता। मुझसे अनजान में भी अत्युक्ति हो सकती है। इस सबमें असत्य की छाया है और ये सत्य की कसौटी पर नहीं चढ़ सकते। जिसका जीवन सत्यमय है वह तो शुद्ध स्फटिक मणि की तरह हो जाता है। उसके पास असत्य जरा देर के लिए भी नहीं ठहर सकता। सत्याचरणी को कोई धोखा दे ही नहीं सकता, क्योंकि उसके सामने झूठ बोलना अशक्य हो जाना चाहिए। संसार में कठिन से कठिन व्रत सत्य का है।...

मेरे सामने जब कोई असत्य बोलता है तब मुझे उसपर क्रोध होने के बजाय

स्वयं अपने ही ऊपर अत्यधिक क्रोध होता है। क्योंकि मैं जानता हूं कि अभी मेरे अन्दर—तह में असत्य का वास है।

— न० जी०। गुजराती। हि० न० जी०, २७।११।'२१]

३. सत्य का बल

पृथिवी सत्य के बल पर टिकी हुई है। असत्—असत्य—के मानी हैं 'नहीं'; सत्—सत्य अर्थात् 'है'। जहाँ असत् अर्थात् अस्तित्व ही नहीं है, उसकी सफलता कैसे हो सकती है? और जो सत् अर्थात् 'है' उसका नाश कौन कर सकता है? बस, इसी में सत्याग्रह का समस्त शास्त्र समाविष्ट है।

— द० अ० का सत्याग्रह : पृष्ठ १३७; १९२४ ई०]

४. सत्य मार्ग का पथिक

मैं तो अपने पथ पर कठिनाई से बढ़ रहा एक ऐसा दुर्बल प्राणी हूं जो पूरी तरह शुद्ध और सात्विक बनने के लिए तड़प रहा है; जो पूरी तरह मन-कर्म वचन से सत्यपरायण और अहिंसक बनना चाहता है, परन्तु जिस आदर्श को वह सच्चा मानता है उस तक पहुचने में सदा असफल रहता है। यह एक कष्टपूर्ण चढ़ाई है। परन्तु मेरे लिए इसका कष्ट एक सच्चा आनन्द है। ऊपर की ओर एक-एक क़दम बढ़ने पर मुझे पहिले से ज्यादा शक्ति महसूस होती है और कदम उठाने की योग्यता प्राप्त होती है।

— यं० इं०, ९।४।'२५]

५. सत्यरूपी परमेश्वर का शोधक हूं

...परमेश्वर की व्याख्याएं अगणित हैं, क्योंकि उसकी विभूतियां भी अगणित हैं। विभूतियां मुझे आश्चर्यचकित तो करती हैं, मुझे क्षण भर के लिए मुग्ध भी करती हैं, पर मैं तो पुजारी हूं सत्य-रूपी परमेश्वर का। मेरी दृष्टि में वही एकमात्र सत्य है, दूसरा सब कुछ मिथ्या है। पर यह सत्य अभी तक मेरे हाथ नहीं लगा है, अभी तो मैं उसका शोधक मात्र हूं। हां, उसकी शोध के लिए मैं अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु को भी छोड़ देने के लिए तैयार हूं, और इस शोध रूपी यज्ञ में अपने शरीर को भी होम देने की तैयारी से कर ली है।...

--सत्याग्रहाश्रम, साबरमती। मार्गशीर्ष शुक्ल ११, सं० १९८२। (१९२५) 'आत्मकथा' की भूमिका से]।

६. सत्य की सत्ता

...मेरा यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता जाता है कि सृष्टि में एकमात्र सत्य की ही सत्ता है और उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है। ...

-- सत्याग्रहाश्रम, साबरमती। मार्गशीर्ष शुक्ल ११ सं० १९८२ (१९२५) ई०।

७. ईश्वर का अर्थ

ईश्वर का मतलब है सत्य।

-- बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम, १।१२।'२५। श्री महादेव ह० देसाई द्वारा बापू के विषय में लिखे गये पत्र से।]

....

८. एकमात्र धर्म

...स्वतन्त्र धर्म तो एक ही है और वह सत्य के नाम से जाना जाता है। वह ईश्वर में ही लीन हो जाता है।

--न० जी०। हि० न० जी०, १६।९।'२६]

९. सत्य की शोध

बुद्ध ने अपना सांसारिक वैभव-विलास इसलिए छोड़ दिया कि सत्य की शोध में त्याग करने और कष्ट सहनेवालों का परम सुख समस्त संसार को प्राप्त हो। यदि थोड़े-से सामान्य ज्ञान के लिए गौरीशंकर की चोटी पर चढ़कर अनेक प्राणोत्सर्ग किये जा सकते हैं, यदि दोनों ध्रुव-प्रदेशों में जाकर एक झण्डा गाड़ने के लिए कई मनुष्यों का प्राण-विसर्जन समुचित है, तो अमर, अविनश्वर, शाश्वत सत्य की खोज में एक-दो नहीं, लाखों नहीं, बल्कि करोड़ों-अरबों जीवनों का उत्सर्ग क्या महान् कार्य नहीं है?

-- हि० न० जी०, १५।१२।'२७]

१०. सत्य-असत्य

....जबतक हम देह की दीवार के पार नहीं देख सकते तबतक हमारे अन्दर सत्य और अहिंसा के गुण पूर्ण रूप से प्रकट नहीं होंगे। सत्य के पालन का विचार हो तो देहाध्यास छोड़ना ही चाहिए क्योंकि सत्य के पालन–हेतु-मरना आवश्यक होगा।

....यदि ये दो गुण प्राप्त होंगे, तभी हम मुक्त हो सकेंगे, ब्रह्मचर्य आदि का पालन कर सकेंगे। यदि इनका पालन करना चाहें तो सत्य के बिना कैसे चलेगा। सत्य का मुख तो सुवर्णमय पात्र से ढका हुआ है—हिरण्मयेन पात्रेण सत्यापिहितं मुखम्। सत्य बोलने और उसका आचरण करने में भय क्यों? जबतक असत्य रूपी ढकना न हटायेंगे तबतक सत्य की झाँकी कैसे होगी?

— न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ५।४।'२८]

११. सत्य शाश्वत है

....सत्य एक ही है, अविभक्त है, अविभाज्य है और तीनों कालों में उसकी एक ही स्थिति रहती है। सत्य को मकान के मेहराब की उपमा दी जा सकती है। मेहराब की एक ईंट टूटी कि सारा मेहराब टूटा। खोटा रुपया निन्यानबे दूकानों में चल सकने के कारण सौवीं दूकान में चलने की शक्ति नहीं पा सकता। वह तो उत्पत्ति-काल से ही खोटा था। केवल उसकी परीक्षा देर से हुई।

—यं० इं०। हि० जी०, १९।७।'२८]

१२. असत्य के मध्य सत्य

....असत्य के मध्य सत्य का अस्तित्व बना रहता है। ईश्वर...सत्य है।...

— यं० इं०। हि० न० जी०, ११।१०।'२८]

१३. सत्य का पूर्ण दर्शन

मेरे हर बार के अनुभव ने—जो सदा एक सा रहा है—मुझे विश्वास करा दिया है कि सत्य के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है।.....सत्य की जो उड़ती हुई

छोटी-छोटी झाँकियाँ मुझे हो पाई हैं, उनसे सत्य के उस अवर्णनीय तेज की कल्पना नहीं हो सकती, जो हमारी आँखों से रोज दिखाई देने वाले सूर्य के तेज से करोड़ गुना अधिक है। सच तो यह है कि जो कुछ हमने देखा है वह उस महान् प्रकाश की हल्की-सी झलक मात्र है। परन्तु मैं अपने तमाम प्रयोगों के परिणामस्वरूप विश्वासपूर्वक इतना कह सकता हूँ कि सत्य के सम्पूर्ण दर्शन अहिंसा के सम्पूर्ण पालन के बाद ही हो सकते हैं।

-- यं० इं०, ७।२।'२९]

- **सत्य के सिवा और कोई ईश्वर नहीं है।**
- **सत्य के सम्पूर्ण दर्शन अहिंसा के सम्पूर्ण पालन के बाद ही हो सकते हैं।**

१४. सत्य ही पूजनीय

....मेरे पास सिवा सत्य के कोई दूसरा ईश्वर पूजा के लिए नहीं है।

--ह० ज०। ह० से०, २२।४।'२९]

१५. सत्य ही परमेश्वर है

....परमेश्वर सत्य है, यह कहने के बजाय सत्य ही परमेश्वर है, यह कहना अधिक उपयुक्त है।

—यरवदा जेल, २२।७।'३०]

१६. सत्य बिना शुद्ध ज्ञान नहीं

जहां सत्य नहीं है वहां शुद्ध ज्ञान सम्भव नहीं हो सकता।...जहां सत्य ज्ञान है वहां आनन्द ही होगा, शोक होगा ही नहीं। और सत्य शाश्वत है इसलिए आनन्द भी शाश्वत होता है।

—यरवदा जेल, २२।७।'३०]

१७. सत्यनारायण

विचार में देह का संसर्ग छोड़ दें तो अन्त में देह हमें छोड़ देगी। यह मोह-रहित स्वरूप नारायण का है।

—यरवदा जेल, २९।७।'३०]

१८. सत्य और गोपनीयता

सत्य के लिए कुछ भी गुप्त नहीं। सत्य ही ईश्वर है।

— म० भा० डा०, दूसरा भाग, ३०।१०।'३२। पृष्ठ १५७ प्रथम संस्करण अप्रैल ५०]

१९. सत्य ही परमेश्वर है

परमेश्वर ही सत्य है—ऐसा कहने में दोष यह आता है कि परमेश्वर और कुछ भी है। परमेश्वर सहस्र नामधारी है, बहुनामी है, यह सब सही है, परन्तु उसके लिए बहुनाम का ख्याल करने से जिस चीज़ को हम सर्वार्पण करना चाहते हैं, उसके छोटी होने का भय हो जाता है। लेकिन सत्य ही परमेश्वर है, ऐसा कहने में दूसरे सब नाम छूट जाते हैं, केवल सत्य का ही ध्यान रहता है और वह अद्वैतवाद के साथ ज्यादा मिलता है। नास्तिकवाद को यहाँ स्थान ही नहीं रहता क्योंकि नास्तिक भी 'अस्ति' को मानता है और 'अस्ति' का मूल रूप सत् है। यहाँ सत्य का अर्थ सत्य बोलना ही नहीं है। सत्य का अर्थ यहाँ मन, वचन और काया की एकरूपता है और इससे अधिक है। जगत् में वस्तुतः जो कुछ भी है, भूतकाल में था, भविष्य में होगा, वही सत् है, सत्य है, परमेश्वर है और इसके सिवा कुछ नहीं है।

— म० भा० डा०, दूसरा भाग, २६।११।'३२। पृष्ठ २३७। प्रथम संस्करण, अप्रैल ५०]

२०. सत्य की पूजा

मैं सिर्फ सत्य की ही पूजा करना चाहता हूं। इसके सिवा मेरा कोई अन्य उद्देश्य नहीं है।

— म० भा० डा०, दूसरा भाग, १२।१२।'३२। पृष्ठ २७६। प्रथम संस्करण, अप्रैल '५०]

२१. सत्यमयता

मैं चाहता हूं कि मेरे लिखे हर शब्द से सत्य और प्रेम टपके। अगर न टपके तो उसमें मेरे प्रयत्न की त्रुटि नहीं हो सकती।

मुझे यकीन है कि जीते-जागते सत्य पर तुम्हारी जीती-जागती श्रद्धा होगी, तो भगवान सहन-शक्ति से अधिक तुम्हारी परीक्षा नहीं लेगा।

— म० भा० डा०, तीसरा भाग, २९।३।'३३। पृष्ठ २०५। प्रथम संस्करण, जुलाई '५१]

२२. सत्यशोधक

...मैं तो सत्य का पुजारी होने का दावा करता हूं। सत्य की शोध करते हुए ही यह चोला छोड़ूं, यही मेरी इच्छा है। प्रभु से यही प्रार्थना है कि वह मुझे निर्बल को सत्य-शोधन की शक्ति दे।

— ह० से०, २०।७।'३४]

२३. सत्यव्रती अकेला नहीं

....मेरे लिए सत्य धर्म और हिन्दू धर्म पर्यायवाची शब्द हैं। हिन्दू धर्म में अगर असत्य का कुछ अंश है तो मैं उसे धर्म नहीं मान सकता। अगर इसके लिए सारी हिन्दू जाति मेरा त्याग कर दे और मुझे अकेला भी रहना पड़े तो भी मैं कहूंगा मैं अकेला नहीं हूं, तुम अकेले हो क्योंकि मेरे साथ सत्य है और तुम्हारे साथ नहीं है। सत्य तो प्रत्यक्ष परमात्मा है।

— गांधी-सेवा-संघ सम्मेलन, हुदली, २०।४।'३७]

२४. सत्य की क्षमता

....मामूली लोग आकाश तक ही देख सकते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि हम आकाश-गंगा के जगत् को देख लेते हैं लेकिन उसके परे कुछ हो तो हमें पता नहीं। लेकिन सत्य तो आकाश को भी छेदकर उसके परे चला जाता है। हम को तो अपना जीवन सत्यमय बनाना है।....मैं कह चुका हूं कि असत्य स्वयं कमजोर है, परतन्त्र है। बिना सत्य के आधार के वह खड़ा ही नहीं रह सकता।

— गांधी-सेवा संघ-सम्मेलन, हुदली, २०।४।'३७]

२५. ईश्वर का रूप सत्य

....मैं उसी ईश्वर की पूजा करता हूं, जो सत्य है या उस सत्य की, जो इन करोड़ों की सेवा-द्वारा ईश्वर है।...

-- ह० से०, ११।३।'३८]

२६. सत्य की शोध और आन्तरिक विश्राम

हमारा जीवन सत्य की एक लम्बी और कठोर शोध है; और आत्मा को अपनी पूरी ऊंचाई तक पहुंचने के लिए भीतरी विश्राम और शान्ति की जरूरत होती है।

— ह० ज०, १०।१२।'३८, पृष्ठ ३७३-७४]

२७. सत्य अविनाशी है

....सत्य और अहिंसा का कभी नाश नहीं होता।

— सेवाग्राम, ४।३।'४०। ह० से० १६।३।'४०]

२८. सत्य का ज्ञान केवल ईश्वर को है

....सम्पूर्ण सत्य केवल ईश्वर को मालूम है।

— सेवाग्राम, २५।९।'४० ह० ज०। ह० से०, ५।१०।'४०]

२९. सत्य-शोधक

....मैं तो मात्र एक सत्यशोधक हूं।...

— सेवाग्राम, ९।२।'४२। अंग्रेजी से। ह० से०, १५।२।'४२]

३०. ईश्वर का पर्यायबाची सत्य

....ईश्वर और उसका तादृश नाम सत्य है।....

— प्रार्थना-प्रवचन, दूसरा खण्ड, पृष्ठ ३२०। १९।१।'४८। स० सा० मं० द्वारा प्रकाशित।]

३१. शुद्ध सत्य की शोध

....रागद्वेषादि से भरा मनुष्य सरल हो सकता है, वह वाचिक सत्य भले ही पा ले पर उसे शुद्ध सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। शुद्ध सत्य की शोध करने के मानी हैं रागद्वेषादि द्वन्द्व से सर्वथा मुक्ति प्राप्त कर लेना।

— हि० आ० क०: भाग ४, अध्याय ३७, पृष्ठ ३८८]

३२. सत्य का अस्तित्व

जो सत्य है वह अवश्य है, इतना कह सकते हैं। और जो है वही ईश्वर है।

— न० जी० प्रकाशन मन्दिर द्वारा प्रकाशित 'बापू की छाया में' से। पृ० ७१। प्रथम संस्करण।]

३३. सत्य का गुणगान

सत्य की कभी हत्या नहीं हो सकती।

जहां सत्य है और धर्म है केवल वहीं विजय भी है।

— 'सत्याग्रह युद्ध के लाभ' शीर्षक लेख से। महात्मा गांधी, खण्ड २, पृष्ठ ६३: गांधी हिन्दी पुस्तक भण्डार, बम्बई संस्करण, पौष १९७८]

[२]

सत्य : सिद्धान्त एवं अभिव्यक्ति

[8]

१. सत्य का प्राच्य आदर्श

लार्ड कर्ज़न ने अपने दीक्षान्त-अभिभाषण में घोषणा की है कि 'सत्य का उच्चतम आदर्श बहुत हद तक पाश्चात्य कल्पना है, और निःसन्देह, पाश्चात्य आचार-संहिताओं में सत्य को, प्राच्य देशों से पहिले ही, ऊंचा स्थान प्राप्त हो चुका था। प्राच्य देशों में वैसा पीछे जाकर हुआ; वहां तो सदा से कुटिलता और कूटनीतिक चतुरता का ही अधिक आदर होता आया है।' हम वाइसराय महोदय से सिफारिश करते हैं कि वे सत्य और असत्य के विषय में, प्राच्य शास्त्रों, महाकाव्यों, धार्मिक ग्रन्थों तथा नीति-सम्बन्धी अन्य रचनाओं की निम्न शिक्षाओं पर ध्यान देने की कृपा करें, और यदि वे सत्य का तथा इस देश के लोगों का कुछ भी आदर करते हों—और हमें सन्देह नहीं कि वे करते हैं—तो, भारत के वाइसराय, कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति और एक अंग्रेज़ सज्जन की हैसियत से, उनके सम्मान का तकाजा है कि वे अपने निराधार और आक्रामक आक्षेपों को वापस ले लें।

दुर्लंघ्य मार्गों को लाँघो, क्रोध को अक्रोध से, और असत्य को सत्य से जीतो।

—सामवेद, अरण्यगान, अर्कपर्व।

"सत्य ही जीतता है, झूठ नहीं। सत्य का ही वह मार्ग है जिस पर देव अर्थात् विद्वान् लोग चलते हैं। इसी मार्ग पर चलकर, अपनी सब कामनाओं को पूर्ण कर चुकनेवाले ऋषि, उस ब्रह्म में लीन होकर मुक्त हो जाते हैं जो सत्य का परम निधान है।[१]"

—मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक ३, खण्ड १, वाक्य ६।

जब शिष्य यज्ञोपवीत धारण करके वेद पढ़ना शुरू करता है तब आचार्य उसे पहिला उपदेश यह देता है:

"सत्य बोलो। धर्म पर चलो।...सत्य से कभी विचलित न हो[२]।"

—तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली, ग्यारहवां अनुवाक, वाक्य १।

---

१. सत्यमेव जयते नानृतम्। सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयोह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

२. सत्यं वद। धर्मं चर।... सत्यान्मा प्रमदितव्यम्॥

हिन्दू धर्म के अनुसार, सत्य ब्रह्म का तत्व है :—

"ब्रह्म सनातन सत्य है, अप्रमेय ज्ञान है।"[१]

—तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मवल्ली, प्रथम अनुवाक, वाक्य १।

"वाणी सत्य में ही प्रतिष्ठित होती है। यह सब सत्य में प्रतिष्ठित है। इसीलिए विद्वान् सत्य को ही सबसे ऊंचा बताते हैं।"[२]—महानारायणोपनिषद्, २७, १।

"सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठ से बढ़कर कोई पाप नहीं। वस्तुतः सत्य ही धर्म का मूल है।"[३]

—महाभारत

युवराज रामचन्द्र को दरबार के एक पुरोहित ने सलाह दी थी कि वे अपने पिता को दिये चौदह वर्ष तक वन में रहने के वचन से मुकर जायँ। किन्तु उसे उत्तर देते हुए अमरकीर्ति रामचन्द्र कहते हैं :—

"सत्य और दया, राजधर्म के अविस्मरणीय अंग हैं। इसलिए राज्यशासन तत्वतः सत्य ही है। सत्य ही संसार का आधार है। ऋषि और देव दोनों ने सत्य का आदर किया है। जो मनुष्य इस लोक में सत्य बोलता है वह श्रेष्ठ और अमर पद को प्राप्त करता है। मिथ्यावादी मनुष्य से लोग, भय और आतंक के मारे, ऐसे परे भागते हैं जैसे कि साँप से। संसार में धर्म का मुख्य तत्व सत्य है। सत्य प्रत्येक वस्तु का आधार कहा जाता है। सत्य संसार में सर्वोपरि है। धर्म का आधार सदा सत्य ही होता है। सब वस्तुओं का आधार सत्य ही है। कोई भी वस्तु इससे ऊंची नहीं। मैं अपने वचन का पालन क्यों न करूं? अपने पिता के सत्य आदेश पर सचाई से क्यों न चलूं? मैं लोभ-लालच, बहकावे या अज्ञान के वश में होकर या अपनी दृष्टि कलुषित हो जाने के कारण सत्य की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करूंगा। मैं पिता जी को दिये हुए वचन का पालन अवश्य करूंगा। मैं उन्हें वनवास का वचन दे चुका हूं। अब मैं उनके आदेश का उल्लंघन करके भरत की बात कैसे मान सकता हूँ? (प्रोफेसर मैक्समूलर के अंग्रेजी अनुवाद से)।"[४]

—वाल्मीकीय रामायण

---

१. सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

२. वाक् सत्ये प्रतिष्ठिता। सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।

३. न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्।

४. सत्यमेवानृशंस च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः १०९।१०॥
ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हि मेनिरे।
सत्यवादीहि लोकेऽस्मिन् परमं गच्छति चाक्षयम् १०९।११॥

प्रकृति के नियमों में ही सत्य का प्रकाश होता है। सब सद्गुण सत्य के और सब अवगुण असत्य के रूप हैं। भीष्म ने महाभारत में उनका वर्णन इस प्रकार किया है :—

"सत्य-परायणता, न्यायवर्तिता, आत्मसंयम, आडम्बरहीनता, क्षमा, नम्रता, सहिष्णुता, अनसूया, दाक्षिण्य, परोपकार, आत्मजय, दया और अहिंसा, ये तेरहों सत्य के रूप हैं।"[1]—महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक ८ व ९

किसी वस्तु का होना सत्य और न होना असत्य है। भीष्म ने कहा है :—

"सत्य सनातन ब्रह्म है. . .सब कुछ सत्य में प्रतिष्ठित है।"[2]

—महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक ५।

आर्य क्षत्रियों ने बहुधा कहा है :—

"मेरे मुख से असत्य कभी नहीं निकला।"

अश्वमेध पर्व में श्रीकृष्ण ने कहा है :—

"सत्य और धर्म का मुझ में नित्य निवास है।"[3]

भीष्म ने सत्य का बखान करते हुए उसे उच्चतम त्याग बतलाया है और कहा है :—

उद्विजन्ते यथा सर्पान्नरादनृतवादिनः।
धर्मः सत्यं परोलोके मूलं सर्वस्य चोच्यते १०९।१३॥
सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये पद्मा प्रतिष्ठिता।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परंपदम् १०९।१४॥
सोऽहं पितुर्नियोगंतु किमर्थं नानुपालये।
सत्यप्रतिश्रवः सत्यं सत्येन समयीकृतम् १०९।१६॥
नैव लोभान्न मोहाद्वा न ह्यज्ञानात्तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः १०९।१७॥
कथं ह्यहं प्रतिज्ञाय वनवासमिमं गुरौ।
भरतस्य करिष्यामि वचो हित्वा गुरोर्वचः १०९।२४॥

१. सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः।
अमात्सर्यं क्षमा चैव ह्रीस्तितिक्षानसूयता॥
त्यागो ध्यानमथार्यत्वं धृतिश्च सततं स्थिरा।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारास्त्रयोदश॥

२. सत्यं धर्मस्तपोयोगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

३. यथा सत्यं च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ।

"एक बार एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सत्य एक तराजू में तोले गये। सत्य सहस्र अश्वमेध यज्ञों से कहीं भारी उतरा।"[1]

——महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक २६।

"सत्य से बढ़कर कुछ नहीं और सत्य को अन्य समस्त वस्तुओं से पवित्र मानना चाहिए।"

——रामायण

"सत्य महात्माओं और प्रभु को सदा प्रिय रहा है, और जिसकी वाणी इस जीवन में सत्य का पालन करती है वह मृत्यु के पश्चात् उच्चतम लोकों में जाता है। जो सत्य से घृणा करता है उससे हम इसी प्रकार परे रहते हैं जिस प्रकार साँप के विष-भरे दाँत से।"

——रामायण

जिन गुणों से मनुष्य को योग और साम्य की प्राप्ति होती है, शान्ति और सन्तोष मिलता है, और अपने लक्ष्य की पूर्ति में सहायता मिलती है उनकी चर्चा श्रीकृष्ण ने इस प्रकार की है:—

"हे अर्जुन निर्भयता, सत्वशुद्धि, ज्ञानकी प्राप्ति का निरन्तर प्रयत्न, दान, इन्द्रियदमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, अन्तःकरण की सरलता, मन, वचन और कर्म की अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, परनिन्दा न करना, प्राणिमात्र पर दया, लोभ-लालच का न होना, कोमलता, अनुचित कार्य करने में लज्जा, अचपलता, तेजस्विता, क्षमा, धीरता, शुद्धता, अद्वेष और निरभिमानता, ये गुण उस व्यक्ति में होते हैं जो दैवी सम्पत्ति को प्राप्त कर लेता है।"[2]

भगवद्गीता, अध्याय १६, श्लोक १-३।

वाणी के तप की व्याख्या भगवद्गीता में इस प्रकार की गई है:—

"किसी का चित्त दुखानेवाली बात न कहना, केवल सत्य, प्रिय और हित-

---

१. अश्वमेध सहस्रं च सत्यं च तुलयाधृतम्।
अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥

२. अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुपत्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

कारी वचन बोलना और वेद-शास्त्रों का पढ़ना, वाणी का तप कहलाता है।"[1]

— अध्याय १७, श्लोक १५।

हिन्दू धर्म के अनुसार, ईश्वर सत्य का ही रूप है। देवों के आवाहन करने पर जब ईश्वर उनके सम्मुख श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुआ, तब उन्होंने उसकी स्तुति इस प्रकार की :—

"तुम अपने वचन के सच्चे हो, लक्ष्य के सच्चे हो, तुम तिगुने सत्य हो, सत्य के तुम स्रोत हो, तुम्हारा निवास सत्य में है, तुम सत्यों के सत्य हो, न्याय और सत्य के तुम चक्षु हो इसलिए हे सत्यात्मा, हम तुममें आश्रय मांगते हैं।"

— भागवत पुराण, स्कन्ध १०

सर विलियम जोंस का मत है कि मनुस्मृति का रचना-काल, यदि १२८० ई० पूर्व नहीं, तो १५८० ई० पूर्व अवश्य है। मनु ने धर्म के जो दस लक्षण बताये हैं उनमें कई ऐसे हैं जो मन की साधना और उच्चतम सत्य की प्राप्ति के लिए अति आश्यक हैं :—

धैर्य, क्षमा, आत्म-संयम, चोरी न करना, शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, ज्ञान, सत्य और अक्रोध ये दस धर्म के लक्षण अर्थात् साधन हैं।[2]

— मनुस्मृति, अध्याय ६, श्लोक ९२।

एक और स्थान पर उनकी संक्षेप में चर्चा इस प्रकार की गई है :—

"अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी या छिपाव न करना), शुद्धि और इन्द्रिय-निग्रह, इन कार्यों का मनु ने चारों वर्णों के लिए विधान किया है।"[3]

— मनुस्मृति, अध्याय ६, श्लोक ६३।

जो लोग वाणी-द्वारा बेईमानी करते हैं उनकी निन्दा मनु ने इस प्रकार की है :—

"सब कार्य वाणी-द्वारा नियन्त्रित होते हैं, वाणी उनका मूल है, वाणी से उनकी उत्पत्ति होती है, और जो मनुष्य वाणी में ईमानदार नहीं, वह सभी कामों में बेई-मान होता है।"[4]

— मनुस्मृति, अध्याय ४, श्लोक २५६।

---

१. अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।

२. धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म-लक्षणम्।।

३. अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

४. वाच्यार्था नियता सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः।
तांस्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः।।

आर्यों के धर्मग्रन्थों में निरन्तर सत्य के आचरण और कर्त्तव्य के पालन का आदेश दिया गया है। देखिए—

"जो मनुष्य सच्चा नहीं, या जो झूठ बोलकर धन कमाता है, या जो दूसरों को दुःख देने में सुख मानता है, वह इस संसार में कभी सुखी नहीं हो सकता। पाप से पीड़ित होकर भी पाप में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए, ऐसा करनेवाला पाप और पापियों का पतन शीघ्र ही प्रत्यक्ष देख लेता है। संसार में पापाचरण का फल, गौ के समान, शीघ्र प्रकट नहीं होता, परन्तु वह धीरे-धीरे पापी की जड़ तक को काट डालता है।"[1] —मनुस्मृति, अध्याय ४, श्लोक १७०-१७२।

"सत्य बोले, परन्तु प्रिय सत्य बोले। अप्रिय सत्य न बोले। साथ ही प्रिय झूठ भी न बोले। यही सनातन धर्म है।[2]—मनुस्मृति, अध्याय ४, श्लोक १३८।

"मनुष्य को सदा सत्य, न्याय, प्रशंसनीय आचरण और पवित्रता में सुख मानना चाहिए।"[3] —अध्याय ४, श्लोक १७५।

"चुगलखोर या झूठी गवाही देनेवाले का अन्न न खाये।"[4]

—अध्याय ४, श्लोक २१४।

"जो योग्य लोगों के सामने अपनी प्रशंसा सत्य के विपरीत करता है, वह संसार में अत्यन्त नीच और पापी होता है। वह चोरों का चोर और मन की चोरी करनेवाला होता है।"[5]

—अध्याय ४, श्लोक २५५।

---

१. अधार्मिको नरो योहि यस्य चाप्यनृतं धनम्।
हिंसारतश्च योनित्यं नेहासौ सुखमेधते॥
न सीदन्नपि धर्मेण मनो धर्मे निवेशयेत्।
अधार्मिकाणां पापानामाशु पश्यन्विपर्ययम्॥
नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥

२. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥

३. सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमत्सदा।
पिशुनानृतनोश्चान्नंक्रतुविक्रयिणस्तथा॥

४. पिशुनानृतनोश्चान्नंक्रतुविक्रयिणस्तथा।

५. योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सुभाषते।
सपापकृत्तमो लोके स्तेन आत्मापहारकः॥

"जो भोजन केवल जीवित रहने के लिए करता है, और जो भाषण केवल सत्य बोलने के लिए करता है, वह सब आपत्तियों पर विजय पा सकता है।" —हितोपदेश।

वाणी के पाप चार हैं:—

१. झूठ बोलना, २. परनिन्दा करना, ३. गाली देना और ४. निष्प्रयोजन बकवाद करना। —बौद्ध धर्म की एक शिक्षा।

"सच और झूठ की टक्कर ऐसी है जैसी कि पत्थर और मिट्टी के बर्तन की। पत्थर मिट्टी के बर्तन पर गिरेगा तो बर्तन टूट जायेगा। दोनों हालतों में नुकसान मिट्टी के बर्तन का ही होगा।" —सिक्ख धर्म की सीख।

सांच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदे सांच है ताके हिरदे आप॥ —कबीर

[—अंग्रेजी से। इं० ओ०, १।४।१९०५: सम्पूर्ण गांधी वाङमय खण्ड ४ पृष्ठ ४२०-२१, २२, २३, २४]

२. सत्य सदैव विजयी होता है

[ट्रान्सवाल, दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों ने सोलह महीने के संघर्ष के बाद दक्षिण अफ्रीकी सरकार से अपनी मांगें स्वीकार करवा लीं। इस अवसर पर गांधी जी ने 'सत्य की जय' शीर्षक से एक लेख लिखा। इसके आवश्यक अंश दिये जा रहे हैं।—संपा०]

इस जीत को हम सत्य की जय समझते हैं। हम यह नहीं कहना चाहते कि सभी भारतीयों ने सत्य के ही द्वारा लड़ाई लड़ी। यह भी नहीं कहा जा सकता कि किसी ने इसमें अपना स्वार्थ नहीं देखा। फिर भी हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि यह लड़ाई सत्य के लिए थी और नेताओं में से बहुतों ने केवल सत्य का सहारा लेकर संघर्ष किया है। इस कारण यह अद्भुत परिणाम निकला। सत्य ही ईश्वर है, अथवा खुदा ही सच है, इस प्रकार के वचन प्रत्येक धर्म में मिल जाते हैं। इस सत्य का, इस खुदा का, जो मनुष्य सेवन करता है वह कभी हारता नहीं, यह खुदाई कानून है। कभी-कभी सत्य-व्रत पालनेवाला व्यक्ति हारता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु वह आभास-मात्र है। वास्तव में वह हारता नहीं है। अभीष्ट परिणाम न निकलने पर हम हार हुई, ऐसा मानते हैं। परन्तु दीख पड़नेवाली हार कई बार जीत ही हुआ करती है। ऐसे हजारों उदाहरण मिलते हैं। सामान्य

श्रेणी का सत्य धारण करके हम कोई परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करें, और वह परिणाम प्राप्त न हो, तो दोष सत्य का नहीं है, हमारा है।
—गुजराती से। इं० ओ०, ८।२।१९०८। सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ८, पृष्ठ ६० से।]

३. सत्य की विशेषता

....जनरल स्मट्स ने दगा की है, लेकिन चूंकि भारतीय सत्याग्रही हैं, इसलिए उनकी यह दगा भी फायदेमन्द हो गई है। यह सत्य की विशिष्टता है। उसके सम्मुख असत्य झुकता है, क्योंकि वह सत्य के मुकाबले टिक नहीं सकता।
—गुजराती से। इं० ओ०, २६।१२।१९०८। सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ९, पृष्ठ ११९ से।]

४. सत्य में अन्धानुकरण नहीं

....जिन्हें सत्य प्रिय होता है, वे दूसरों का अन्धानुकरण नहीं करते। वे सत्य की खातिर स्वयं ही कष्ट सहन करते रहते हैं।
—गुजराती से। इं० ओ०, २।१।१९०९। सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड ९, पृष्ठ १२२ से।]

५. स्वावलम्बी सत्य

....सत्य सर्वदा स्वावलम्बी होता है और बल तो उसके स्वभाव में ही होता है।
— यं० इं०। हि० न० जी०, १४।२।'२४]

६. एकमात्र नीति सत्य

....मैं जानता हूं कि मेरे प्रतिपादित सत्य को अभी स्वयं भारतवर्ष ने भी पूरे तौर से नहीं ग्रहण किया है—वह अभी यथेष्ट रूप में स्थापित भी नहीं हो पाया है।

मैं सत्य के सिवा किसी कूटनीति को नहीं जानता।
— यं० इं० ११।१२।'२४। हि० न०-जी०, १४।१२।'२४]

७. सत्य की व्याख्या और उसका पालन

....सत्य की जो व्याख्या मैं करता हूं उसके अनुसार सत्य का पालन मुझसे नहीं होता।

— हि० न० जी०, २२।४।'२५।]

८. सत्यान्वेषक के लिए नम्रता की आवश्यकता

नम्रता के बिना सत्य अहंकारपूर्ण दिखावा मात्र-होगा। जो सत्य का पालन करना चाहता है वह जानता है कि यह काम कितना कठिन है। संसार उसकी कथित विजयों की प्रशंसा कर सकता है, दुनिया उसके पतन के बारे में बहुत कम जानती है। सत्यपरायण मनुष्य परीक्षाओं से गुजर कर शुद्ध और नम्र बन जाता है। उसे नम्र रहने की जरूरत है।

— यं० इं० २५।६।'२५]

९. प्रिय और अप्रिय सत्य

हाल ही में प्रकाशित एक लेखक के पत्र से मैंने कुछ वाक्य निकाल दिये थे। इसके सम्बन्ध में वे शिकायत करते हैं—

"मेरे उस पत्र से आपने जो कुछ अंश निकाल दिया, उसके होते हुए भी मैं कहना चाहता हूं कि आपको भेजे गये अपने बहुत-से पत्रों में और खास कर उनमें जिनका सम्बन्ध जाति-गत प्रश्नों से है, मैंने 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' इस दूरदर्शितापूर्ण वचन का पालन नहीं किया है, बल्कि विलियम लाइड गैरिसन की उस उक्ति का पालन किया है, जो 'इण्डियन सोशल रिफार्मर' का ध्येय-सूत्र है—'मैं सत्य की तरह कठोर—अप्रिय बोलूंगा और न्याय की तरह अटल आग्रही रहूंगा", इत्यादि।

मैं अप्रिय सत्य का विचार नहीं करता। हां, तीखे-चटपटे सत्य पर जरूर मेरा एतराज है। तीखी-चटपटी भाषा सत्य के निकट उतनी ही विजातीय है, जितनी कि नीरोग जठर के लिए तेज मिर्चियां। जो वाक्य मैंने निकाल दिये थे वे लेखक के आशय को स्पष्ट करने या उसमें से कोई मुद्दा निकालने के लिए आवश्यक न थे। वे न तो उपयोगी थे न आवश्यक, उल्टे दिल दुखानेवाले थे। ऐसा विचार करने का रिवाज-सा पड़ गया दीखता है कि सच बोलने के लिए

मनुष्य को अप्रिय भाषा का प्रयोग करना ही चाहिए। यद्यपि सत्य जब अप्रियता के साथ उपस्थित किया जाता है, तब उसको हानि पहुँचती है। यह ऐसा ही है जैसा कि शक्ति को सहारा देना। सत्य स्वयं ही पूर्ण शक्तिमान है और जब कड़े शब्दों के द्वारा उसकी पुष्टि का प्रयत्न किया जाता है, तब वह अपमानित होता है। मुझे उस संस्कृत वचन और गैरिसन के सूत्र में कोई विरोध नहीं दीखता। मेरी राय में उस संस्कृत श्लोक का अर्थ है कि मनुष्य को प्रिय––मृदु भाषा में सत्य बोलना चाहिए। यदि कोई मृदुता से ऐसा न कर सके तो उचित है कि वह चुप रहे। इसका आशय यह है कि जो मनुष्य अपनी जिह्वा को नियन्त्रण में नहीं रख सकता उसमें सत्य का अधिष्ठान नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो अहिंसा-शून्य सत्य, सत्य नहीं बल्कि असत्य है। गैरिसन के सूत्र का अर्थ उसके जीवन को सामने रखकर लगाना चाहिए। वह अपने समय का एक नम्रतम मनुष्य था। उसकी भाषा को देखिए। वह सत्य की ही तरह कठोर होगी पर चूंकि सत्य वही होता है जो कभी कठोर नहीं होता बल्कि सदा प्रिय और हितकर होता है, उस सूत्र का यही अर्थ हो सकता है कि गैरिसन उतना ही नम्र होगा जितना कि सत्य। दोनों वचन वक्ता या लेखक की आन्तरिक अवस्था से सम्बन्ध रखते हैं, उस प्रभाव से नहीं जो उन लोगों पर पड़ेगा, जिनके सम्बन्ध में वह लिखा या कहा गया हो।.... आखिर पूर्ण सत्य को जानता ही कौन है? सामान्य व्यवहार में तो सत्य केवल एक सापेक्ष शब्द है। जो बात मेरे निकट सत्य है वही आवश्यक रूप से मेरे अन्य साथियों के निकट सत्य नहीं हो सकती। हम सब उन अन्धे आदमियों की तरह हैं जिन्होंने हाथी को टटोल-टटोलकर उसका अलग-अलग वर्णन किया था। उनकी बुद्धि और विचार के अनुसार वे सब सच थे। परन्तु हम यह भी जानते हैं कि वे सब गलती पर थे। हर आदमी सत्य से बहुत दूर स्थित था। इसलिए यदि कोई व्यक्ति कटुता से बचते रहने की आवश्यकता पर बल दे तो इसे कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। कटुता से कल्पना-पथ मलिन हो जाता है। और मनुष्य उस मर्यादित सत्य को देखने में भी उस सीमा तक असमर्थ हो जाता है, जिस सीमा तक अन्धे मनुष्य शरीर-द्वारा देख पाये थे।
––हि० न० जी०, १७।९।'२५]

- **तीखी-चटपटी भाषा सत्य के निकट उतनी ही विजातीय है, जितनी कि नीरोग जठर के लिए तेज मिर्चियां।**
- **सत्य जब अप्रियता के साथ उपस्थित किया जाता है तब उसको हानि पहुंचती है।**
- **सत्य स्वयं ही पूर्ण शक्तिमान है और जब कड़े शब्दों के द्वारा उसकी पुष्टि का प्रयत्न किया जाता है, तब वह अपमानित होता है।**

- जो मनुष्य अपनी जिह्वा को नियन्त्रण में नहीं रख सकता उसमें सत्य का अधिष्ठान नहीं है।
- अहिंसा-शून्य सत्य, सत्य नहीं बल्कि असत्य है।
- पूर्ण सत्य को जानता ही कौन है?
- सामान्य व्यवहार में तो सत्य केवल एक सापेक्ष शब्द है।
- जो बात मेरे निकट सत्य है वही आवश्यक रूप से मेरे अन्य साथियों के निकट सत्य नहीं हो सकती।
- कटुता से कल्पना-पथ मलिन हो जाता है।

१०. सत्यवादी का धर्म

....मैं सत्य का पुजारी और शोधक हूं। यदि मुझसे भूल हुई होगी तो मैं उसे देखूंगा। चूंकि मुझे भूल-स्वीकार प्रिय है, इसलिए उसे तुरन्त स्वीकार कर सुधार लूंगा। शास्त्र का वचन है कि सत्यवादी एवं सत्याचरण करने वाले की भूलों से भी जगत् को क्षति नहीं पहुंचती। सत्य की महिमा ऐसी ही है।

—न० जी०। हि० न० जी०, २८।१०।'२६]

११. सत्यनिष्ठा

....सत्य के आचरण से कोई कष्ट न सहना पड़े, सदा सुख की सेज सोने को मिले, तो सभी उसका आचरण करें। परिश्रम ही न पड़े तो सत्य की विशेषता कहां रही। हमारा सर्वस्व चला जाय, हिन्दुस्तान हाथ से निकल जाय, तब भी हम सत्य न छोड़ें और विश्वास रखें कि ईश्वर की गति निराली है। यदि यह सत्य है कि ईश्वर का राज्य सत्य पर अवलम्बित है, तो भविष्य में हिन्दुस्तान को अपना अधिकार मिल ही जायगा। यही हमारी सत्यनिष्ठा है।

—न० जी०। हि० न० जी०, १०।२।'२७]

१२. सत्य एक है

[पोलैण्ड के एक प्रोफेसर ने गांधी जी को पत्र भेजकर 'यंगइण्डिया' में प्रकाशित उनके लेखों की प्रशंसा की और उनसे एक प्रश्न पूछा था। प्रोफेसर का प्रश्न यों था—'क्या आप मानते हैं कि मनुष्य के विचारों में कोई ऐसी बात है, जो पूर्णतया

निश्चित है ? उदाहरण के लिए परमात्मा और प्रार्थना को ही लीजिए : क्या हम इन दोनों में से किसी एक के विषय में ऐसे परिणाम पर पहुंच गये हैं, जिसको अब बदलने की आवश्यकता न हो ? . . .मुख्य सिद्धान्तों में पूर्ण निश्चय होने के कारण मनुष्य के विचारों में आनेवाली स्थिरता और सुविधानुसार मत-परिवर्तन कराने वाली अस्थिरता को कैसे पहिचाना जाय ? क्या आप कोई ऐसा सर्व-साधारण नियम बता सकते हैं कि हम अमुक प्रसंग में मत बदल सकते हैं और अमुक बातें नितान्त अपरिवर्तनीय हैं ? क्या प्रत्येक देश की स्वाधीनता इसी प्रकार अपरिवर्तनीय है ? क्या कुछ देश स्वभावतः स्वराज्य के अयोग्य होते हैं और कुछ अन्य देश सहज ही इन निर्बल देशों पर शासन करने योग्य होते हैं ?"

उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर गांधी जी ने एक लेख में दिये। इसके आवश्यक अंश संकलित किये जा रहे हैं।--संपा०]

. . . .मैं एक नम्र किन्तु अत्यन्त सच्चा सत्य-शोधक हूं। अन्य जो सत्यान्वेषी हैं, उनपर मैं पूर्ण विश्वास रखता हूं। यह इसलिए कि मैं अपनी भूलें जान लूं और उन्हें भी ठीक करता रहूं। मैं स्वीकार करता हूं कि मेरा अनुमान और निर्णय कई बार गलत निकला है। उदाहरण के लिए, अधूरे प्रमाण से ही मैंने यह अनुमान कर लिया कि खेड़ा की जनता सविनय भंग के लिए तैयार है। किन्तु एकाएक मुझे मालूम हुआ कि मेरा यह अनुमान गलत और महा भयंकर था। मैंने देखा कि वे सविनय भंग नहीं कर सकते क्योंकि प्रथम तो वे ऐसे कानूनों की स्वेच्छापूर्ण पाबन्दी करना भी नहीं जानते थे, जो कष्टप्रद होते हुए भी अनीतियुक्त नहीं थे। मुझे ज्योंही यह मालूम हुआ, मैंने उसी क्षण अपना क़दम पीछे हटा दिया।

अतः द्वन्द्वमुक्त होने—पूर्ण होने का—दावा करना भी सदा बड़ी खतरनाक बात होगी। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हमारे लिए कोई मार्ग-दर्शक शक्ति है ही नहीं। संसार के महत्तम ऋषियों के अनुभव का कोष हमारे लिए खुला है। और भविष्य के लिए भी वह खुला रहेगा। इसके अतिरिक्त मूल सत्य भी तो अनेक नहीं। वह तो केवल एक ही है और वह है स्वयं सत्य या दूसरे शब्दों में अहिंसा। अपूर्ण मनुष्य सत्य और प्रेम का पूर्ण रूप से दर्शन नहीं कर सकता, क्योंकि सत्य अनन्त है, असीम है, और वह सान्त तथा स-सीम है। किन्तु हमें अपना काम चलाने योग्य उसका ज्ञान अवश्य है। हां, उसके व्यवहार में हम भले ही भूल कर सकते हैं और कदाचित् भयंकर गलती कर सकते हैं। किन्तु मनुष्य तो स्वयं अपना शासन करने वाला प्राणी है। और स्वयं शासन के अन्तर्गत गलतियां करने और उतनी ही बार उन्हें सुधारने की शक्ति भी अवश्य सम्मिलित है। . . .

पत्र-लेखक के अन्तिम प्रश्नों के उत्तर सरलता से दिये जा सकते हैं। सच पूछिये तो वे उपर्युक्त वाक्यों से ही प्राप्त हो सकते हैं। मैं प्रत्येक देश की स्वाधीनता को उसी अर्थ और उतने ही अंशों में सत्य मानता हूं, जिस अर्थ और जितने अंशों में प्रत्येक मनुष्य की स्वाधीनता सत्य है। अतः न तो कुछ देशों या राष्ट्रों में स्व-राज्य-विषयक स्वाभाविक अयोग्यता होती है और न इसके फलस्वरूप दूसरे देशों में अन्य राष्ट्रों पर शासन करने की योग्यता स्वाभाविक होती है।...

--यं० इं०। हि० न० जी० २१।४।'२७]

- **मैं एक नम्र किन्तु अत्यन्त सच्चा सत्य-शोधक हूं।**
- **मैं स्वीकार करता हूं कि मेरा अनुमान और निर्णय कई बार ग़लत निकला है।**
- **द्वन्द्वमुक्त होने--पूर्ण होने का दावा करना भी सदा बड़ी खतरनाक बात होगी।**
- **संसार के महत्तम ऋषियों के अनुभव का कोष हमारे लिए खुला है और भविष्य के लिए भी वह खुला रहेगा।**
- **मूल सत्य भी तो अनेक नहीं। वह तो केवल एक ही है और वह है स्वयं सत्य या दूसरे शब्दों में अहिंसा।**
- **अपूर्ण मनुष्य सत्य और प्रेम का पूर्ण रूप से दर्शन नहीं कर सकता क्योंकि सत्य अनन्त है--असीम है और वह सान्त तथा स-सीम है।**
- **मनुष्य स्वयं अपना शासन करने वाला प्राणी है।**
- **मैं प्रत्येक देश की स्वाधीनता को उसी अर्थ और उतने ही अंशों में सत्य मानता हूं, जिस अर्थ और जितने अंशों में प्रत्येक मनुष्य की स्वाधीनता सत्य है।**

१३. सत्य का अनुयायी

मैं सत्य का पुजारी हूं, अतः जिसके अन्दर सत्य देखूंगा, उसी के पीछे चलूंगा।

--यं० इं०। हि० न० जी० २५।८।'२७]

१४. सत्य ही सर्वोपरि

....हिन्दूधर्म में हमारे पास सभी शास्त्रों, आचारों की कसौटी है और वह है सत्य। जो सत्य की कसौटी पर खरा न उतरे, वह चाहे जिस ग्रन्थ में हो,

त्याज्य है और इसलिए उसका पालन करने वाले पर ही यह सिद्ध करने का भार है कि वह बात सत्य के अनुकूल है। . . . .

—यं० इं०। हि० न० जी० ६।१०।'२७]

१५. सत्य का आचरण

. . . .सत्य आचार मनोवृत्ति को अंकुश में रखने का सर्वोपरि साधन है। उसमें मनोवृत्ति पर नियन्त्रण रखने की अपार, अमोघ शक्ति है। अतएव सत्य के साथ उपवास की तुलना नहीं की जा सकती। जिसमें सत्य नहीं है, वह सचाई के साथ मनोवृत्ति पर नियन्त्रण नहीं पा सकेगा। किन्तु जो सत्यशील है उसके लिए मनोवृत्ति पर अंकुश रखना एक सहज बात है। सत्य का आचरण करते हुए मनोवृत्ति को काबू में रखना अनिवार्य हो जाता है।

—हि० न० जी ३। १०।२९]

१६. सत्य बनाम सत्ता

एक नवयुवक लिखते हैं—

"सत्य की राह पर चलने में मन को क्या शान्ति मिलती है? हरिश्चन्द्र, धर्मराज युधिष्ठिर, राम, सीता आदि अनेक स्त्री-पुरुषों ने सत्य का ही सहारा लेकर मरते दम तक दुःखमय जीवन बिताया। सम्भव है, इनमें से आप हरिश्चन्द्र को छोड़ दें, लेकिन औरों का क्या? युधिष्ठिर मरते समय तक दुःखी रहे। राम ने भी सारा जीवन दुःख में बिताया। पतित-पावनी सीता देवी को भी दुःख की दशा में ही देह त्यागना पड़ा। और यह सब सत्य की खातिर। स्वयं आपकी ही मिसाल देता हूं। सरकार के साथ आप सचाई से पेश आते हैं, लेकिन वह झूठ से काम लेकर कई बार आपकी निर्मलता से फ़ायदा उठा चुकी है और आप उसके खिलाफ कुछ भी नहीं कर सके। इससे मालूम होता है कि सत्ता के सामने सत्य पानी भरता है। हाँ, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह में आप अपनी जीत समझते हैं, लेकिन मेरी धारणा में तो वह निश्चय ही भूलों की एक परम्परा है। इस उलझन को सुलझाइयेगा?"

यह अच्छा सवाल पूछा गया है। सत्य के पालन में ही शान्ति है। सत्य ही सत्य का पुरस्कार है। जिस प्रकार कीमती से कीमती वस्तु बेचनेवाले को उससे अधिक कीमती वस्तु नहीं मिल सकती, उसी प्रकार सत्यवादी भी सत्य से बढ़कर

और क्या चीज़ चाहेगा? मैं हरिश्चन्द्र को अपवाद नहीं मानना चाहता, लेकिन यह कहना भूल है कि वह और धर्मराज आदि दुखी रहे। उन्होंने दुःख में सुख माना था और जिसे हम दुःख कहते हैं, उसका उन्होंने स्वागत किया था। इसी कारण किसी भक्त कवि ने कहा है:—

हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने

सत्य जहां सूर्य के समान ताप पहुँचाता है वहीं प्राण का सिञ्चन भी करता है। सूर्य यदि एक घड़ी के लिए भी तपना बन्द कर दे तो यह सृष्टि जड़वत् बन जाय। इसी प्रकार यदि सत्यरूपी सूर्य क्षण भर के लिए न तपे तो इस संसार का नाश हो जाय। सच तो यह है कि जिस तरह शरीर के अन्दर का मैल बाहर निकला करता है, उसी तरह हम झूठ को भी संसार में रात-दिन देखा करते हैं। परन्तु हम यह कदापि न भूलें कि करोड़ों प्राणी स्वभाव से ही सत्य का उपयोग करते हैं। मेरा अपना अनुभव तो निरपवाद है और उससे पता चलता है कि मुझमें जो निर्मलता है, उसका दुरुपयोग अन्त तक कोई नहीं कर सका है। इसके विपरीत जो मेरी सत्यनिष्ठा से बेजा लाभ उठाने को तैयार हुए हैं, उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा से हाथ धोया है और अन्य भी बहुत कुछ खोया है। सत्यवचन, सत्यविचार और सत्य आचार के कारण संकट आये हैं; लेकिन उनके कारण मुझे कभी दुःख का अनुभव नहीं हुआ। उनमें मुझे परम सुख और शान्ति ही मिली है—इन्हीं का मैंने सिञ्चन किया है। अपने झूठ का एक उदाहरण मैंने संसार को बताया है। वह जबतक मेरे पास था, रात-दिन मुझे डँसता रहता था। जब मैं उसे प्रकट कर शुद्ध हुआ तभी मुझे शान्ति भी मिली। अपने जीवन के और अनेक दृष्टान्त मुझे याद हैं। . . . . संसार के और मेरे अनुभव से तो यही सीख मिलती है कि सत्ता के सामने सत्य पानी नहीं भरता, अपितु सत्ता को ही सदा सत्य की दासी बनकर रहना पड़ता है।

— न० जी०। हि० न० जी०, १९।१०।'२९]

- **सत्य के पालन में ही शान्ति है।**
- **सत्य ही सत्य का पुरस्कार है।**
- **सत्यवादी . . . सत्य से बढ़कर और क्या चीज़ चाहेगा?**
- **सत्य जहां सूर्य के समान ताप पहुँचाता है वहीं प्राण का सिञ्चन भी करता है।**
- **यदि सत्यरूपी सूर्य क्षण भर के लिए न तपे तो इस संसार का नाश हो जाय।**
- **करोड़ों प्राणी स्वभाव से ही सत्य का उपयोग करते हैं।**
- **सत्ता के सामने सत्य पानी नहीं भरता, अपितु सत्ता को ही सत्य की दासी बनकर रहना पड़ता है।**

१७. सत्य की आराधना ही भक्ति है

सत्य की आराधना भक्ति है।....वह मरकर जीने का मन्त्र है।

— यरवदा जेल, २२।७'३०]

१८. सत्य का मार्ग

....सत्य का मार्ग छोड़ने में कोई आनन्द नहीं। किन्तु मनुष्य-स्वभाव कठिनाइयों का सामना नहीं करता। वह सरल मार्ग की खोज में रहता है। सरल मार्ग नीचे ले जाता है और कठिन ऊपर चढ़ाता है।....

— न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, ३०।४।'३१]

१९. सत्य का स्वर्णयुग

....मैं इस धारणा का पोषक नहीं कि प्रत्येक पुरानी चीज़ खराब है। सत्य प्राचीन और कठिन है। असत्य में अनेक आकर्षण हैं। किन्तु मैं प्रसन्नतापूर्वक अति प्राचीन सत्य के स्वर्णयुग में लौट जाऊंगा।....

— यं० इं०, २।७।'३१]

२०. सत्य का सूर्य

....यदि मुझे अंग्रेजों का हृदय जीतना हो तो मुझको सवा सोलह आना सच्चा होना चाहिए। सत्य सूर्य के समान है। सत्य के सामने संशय और अविश्वास के पहाड़ भी पिघल जायंगे।

— न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, १६।७।'३१]

२१. भारत का भविष्य और सत्य

....मैं इस बात को पसन्द करूंगा कि भारतवर्ष नष्ट हो जाय, बजाय इसके कि वह सत्य का त्याग करके स्वतन्त्रता प्राप्त करे।

— यं० इं०। हि० न० जी०, ८।१०।'३१]

२२. विद्यार्थियों को सन्देश

[इंगलैण्ड में रहने वाले भारतीय विद्यार्थियों के समक्ष बोलते हुए गाँधी जी ने ये उद्गार व्यक्त किये थे।—संपा०]

..यदि सत्य और अहिंसा की शक्ति पर आपको सचमुच विश्वास हो तो ईश्वर के नाम पर इन दोनों को केवल राजनीतिक क्षेत्र में नहीं, अपने दैनिक जीवन में भी प्रकट करें।....

—यं० इं०। हि० न० जी०, ५।११।'३१]

२३. सत्य का साक्षात्कार

[गोलमेज कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए गांधी जी ने इंगलैण्ड की यात्रा की थी। इस यात्रा में वे श्रीमती माण्टेसेरी के प्रशिक्षण विद्यालय में भी गये थे। उक्त विद्यालय में श्रीमती माण्टेसेरी ने गांधी जी का परिचय कराते हुए एक स्वागत-भाषण दिया। इसके उत्तर में गांधी जी ने जो मर्मस्पर्शी उद्गार व्यक्त किये, उनके कुछ आवश्यक अंश नीचे दिये जाते हैं।—संपा०]

मैं अपने स्रष्टा का, जो मेरी दृष्टि में सत्य-रूप है, साक्षात्कार करने के लिए अधीर हूं और अपने जीवन के आरम्भ में ही मैंने यह शोध की कि यदि मुझे सत्य का साक्षात्कार करना है, तो मुझे अपने जीवन को भी खतरे में डालकर प्रम-धर्म का पालन करना चाहिए।... यह बात जानी-समझी है कि बालक के जन्म के पहिले और उसके बाद यदि माता-पिता भली प्रकार आचरण करेंगे, तो बालक स्वभाव से ही सत्य और अहिंसा का पालन करेंगे।....ईसा ने जब कहा था कि बालकों के मुख से बुद्धिपूर्ण बातें निकलती हैं तो इसमें उन्होंने उच्चतम और भव्य सत्य को प्रकट किया था।....

— यं० इं०। हि० न० जी०, २६।११।'३१]

२४. सत्य ही ईश्वर है

[लन्दन की गोलमेज परिषद से लौटते हुए स्विट्जरलैण्ड की एक सभा में पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में गांधी जी का कथन।—संपा०]

आपने मुझ से पूछा है कि मैं सत्य को ईश्वर क्यों समझता हूँ? अपने बचपन में मुझे हिन्दू शास्त्रों में जिन्हें ईश्वर के सहस्रनाम कहा जाता है उनका जप करना

सिखाया गया था। परन्तु उन सहस्र नामों में ईश्वर की सारी नामावली समाप्त नहीं हो जाती। हम मानते हैं और मेरे ख्याल में यही सत्य है—कि जितने प्राणी हैं उतने ही ईश्वर के नाम हैं और इसलिए हम यह भी कहते हैं कि ईश्वर अनाम है, और चूंकि ईश्वर के अनेक रूप हैं, इसलिए हम उसे अरूप भी समझते हैं, और चूंकि वह हमसे कई वाणियों में बात करता है, इसलिए हम उसे अवाक् समझते हैं, इत्यादि, इत्यादि। इसी तरह जब मैंने इस्लाम का अध्ययन किया तब मुझे पता लगा कि इस्लाम में भी ईश्वर के अनेक नाम हैं। जो लोग कहते थे कि ईश्वर प्रेम है, उनके साथ मैं भी कहता था कि ईश्वर प्रेम है। परन्तु अपने हृदय की गहराई में मैं यही कहा करता था कि ईश्वर प्रेम रूप होगा, मगर सबसे ज्यादा तो ईश्वर सत्य रूप है। अगर मानव-वाणी के लिए ईश्वर का सम्पूर्ण वर्णन करना सम्भव हो, तो मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि मेरे अपने लिए तो ईश्वर सत्य है—सत्य शब्द ही उसका सर्वोत्तम वाचक है। परन्तु दो वर्ष पूर्व एक क़दम और आगे बढ़ा, मैंने कहा कि न केवल ईश्वर सत्य-रूप है, बल्कि सत्य ही ईश्वर है। ईश्वर सत्य है और सत्य ही ईश्वर है, इन दोनों वचनों के सूक्ष्म भेद को आप समझ लेंगे। इस नतीजे पर मैं सत्य की पचास वर्ष की दीर्घ, अनबरत और कठिन खोज के बाद पहुँचा हूँ। इसके बाद मुझे पता चला कि सत्य तक पहुँचने का निकटतम मार्ग प्रेम है। परन्तु मैंने यह भी पाया कि कम से कम अंग्रेजी भाषा में लव (प्रेम) शब्द के अनेक अर्थ हैं, और विकार के अर्थ में मानव प्रेम तो एक मलिन चीज है जो मनुष्य का पतन करती है। मैंने यह भी देखा कि अहिंसा के अर्थ में प्रेम के पुजारियों की संख्या दुनिया में इनी-गिनी ही है। परन्तु सत्य के बारे में दो अर्थ नहीं हैं और नास्तिकों तक ने सत्य की आवश्यकता या शक्ति स्वीकार की है। परन्तु सत्य को ढूँढ़ निकालने की अपनी लगन में नास्तिकों ने ईश्वर के अस्तित्व से भी इन्कार करने में संकोच नहीं किया है और अपने दृष्टिकोण से उन्होंने ठीक ही किया है। इस तरह सोचते हुए मेरी समझ में आया कि ईश्वर सत्यरूप है, यह कहने के बजाय मुझे यह कहना चाहिए कि सत्य ही ईश्वर है। इस सम्बन्ध में मुझे चार्ल्स ब्रैडला का नाम याद आता है। वे अपने को बहुत उत्साहपूर्वक नास्तिक बताया करते थे। परन्तु मैं उनके बारे में कुछ जानता हूँ, इसलिए मैं उन्हें कभी नास्तिक नहीं कहूँगा। मैं उन्हें एक ईश्वर-भीरु मनुष्य कहूँगा। यद्यपि मैं जानता हूँ कि वे इस वर्णन को स्वीकार नहीं करेंगे। यदि मैं उनसे कहूं कि मि० ब्रैडला आप एक सत्यभीरु मनुष्य हैं, इसलिए ईश्वरभीरु मनुष्य हैं, तो उनका मुँह लाल हो जायगा। मगर मैं यह कह कर कि सत्य ही ईश्वर है उनके विरोध को सहज ही ठण्डा कर सकता हूं। मैंने अनेक नौजवानों का विरोध इसी तरह ठण्डा कर दिया है। 'ईश्वर सत्य है' कहने में एक दूसरी

कठिनाई यह है कि ईश्वर का नाम करोड़ों लोगों ने लिया है और उसके नाम पर अवर्णनीय अत्याचार किये हैं। यह बात नहीं कि सत्य के नाम पर वैज्ञानिक लोग क्रूरताएँ नहीं करते। मैं जानता हूँ कि सत्य और विज्ञान के नाम पर पशुओं की चीर-फाड़ के सिलसिले में उनपर कैसी अमानुषिक निर्दयताएँ की जाती हैं। सारांश यह कि ईश्वर का वर्णन किसी भी तरह किया जाय, उसमें कई कठिनाइयाँ हैं। परन्तु मनुष्य का मन एक सीमित वस्तु है। और जब आप एक ऐसी सत्ता की कल्पना करते हैं, जो मनुष्य की समझने की शक्ति के परे है, तब आपको इन सीमाओं के भीतर रहकर ही प्रयत्न करना पड़ता है।

हिन्दू तत्वज्ञान में एक चीज और है, वह कहता है—'एक ईश्वर ही है, उसके सिवा किसी और चीज़ की सत्ता नहीं है।' यही सत्य आप इस्लाम के काल में जोर के साथ कहा हुआ पाते हैं। वहाँ आपसे साफ-साफ कहा गया है कि एक ईश्वर है, और कुछ भी नहीं है। असल में अंग्रेजी शब्द 'ट्रुथ' के लिए संस्कृत में जो शब्द है–यानी 'सत्य' उसका शब्दार्थ ही 'जो है' है। इस कारण और अन्य कई कारणों से, जो मैं आप को बता सकता हूँ, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सत्य ही ईश्वर है, यह व्याख्या मुझे सबसे अधिक सन्तोष देती है। और जब आप सत्य को ईश्वर के रूप में पाना चाहते हैं, तब उसका एकमात्र अनिवार्य साधन प्रेम अर्थात अहिंसा ही है। और चूँकि मैं मानता हूँ कि अन्त में साधन और साध्य समानार्थक शब्द हो जाते हैं, इसलिए मुझे यह कहने में संकोच नहीं होगा कि ईश्वर प्रेम है।

तो फिर सत्य क्या है? यह सवाल उठा।

प्रश्न कठिन है, परन्तु मैंने उसे अपने लिए यह कहकर हल कर लिया है कि जो हमारी अन्तरात्मा कहे वही सत्य है। आप पूछेंगे, तब विभिन्न लोग विभिन्न और विरोधी सत्यों की कल्पना कैसे करते हैं? इसका उत्तर यह है कि मानव-मन असंख्य माध्यमों-द्वारा काम करता है और मानव मन का विकास हरएक में एक-सा नहीं हुआ है, इसलिए यह परिणाम तो आयेगा ही कि जो एक के लिए सत्य हो वह दूसरे के लिए असत्य हो। और इसलिए जिन लोगों ने सत्य के प्रयोग किये हैं, वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इन प्रयोगों में कुछ शर्तों का पालन करना जरूरी है। जैसे वैज्ञानिक प्रयोग सफलतापूर्वक करने के लिए अमुक वैज्ञानिक शिक्षण चाहिएं, ठीक वैसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयोग करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए कठोर प्रारम्भिक साधना जरूरी है। इसलिए कोई अपनी अन्तरात्मा की आवाज की बात करे, उसके पहिले उसे अपनी मर्यादाएँ अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। इस कारण अनुभव के आधार पर हमारा विश्वास है कि जो लोग ईश्वर के रूप में सत्य की व्यक्तिगत खोज करना चाहते हैं, उन्हें पहिले कई व्रतों का पालन

करना चाहिए; उदाहरणार्थ, सत्य ब्रह्मचर्य और चूंकि आप सत्य और ईश्वर के लिए अपना प्रेम और किसी को नहीं दे सकते—अहिंसा, दरिद्रता, अपरिग्रह आदि। अगर आप अपने पर ये पांचों व्रत लागू नहीं करते तो आपको यह प्रयोग शुरू ही नहीं करना चाहिए। और भी कई व्रत-नियम आदि बताये गये हैं, परन्तु मैं उन सबकी चर्चा अभी नहीं करूंगा। इतना कहना काफ़ी है कि जिन लोगों ने ये प्रयोग किये हैं, वे जानते हैं कि हर एक का अन्तरात्मा की आवाज़ सुनने का दावा करना उचित नहीं। लेकिन आजकल हरएक आदमी यम-नियम की कोई भी तालीम लिये बिना ही अपने अन्तःकरण की आवाज के अधिकार का दावा करता है। इसके फलस्वरूप संसार को इतना असत्य प्रदान किया जा रहा है कि वह हैरान है। इसलिए मैं आपसे सच्ची नम्रतापूर्वक इतना ही निवेदन कर सकता हूं कि सत्य की प्राप्ति ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं हो सकती जिसमें नम्रता की विपुल भावना न हो। अगर आप सत्य के महासागर के तल पर तैरना चाहते हैं, तो आपको शून्य बन जाना होगा। इससे आगे मैं इस मोहक मार्ग पर इस समय नहीं बढ़ सकूंगा।
—यं० इं०, ३१।१२।'३१]

- **जितने प्राणी हैं उतने ही ईश्वर के नाम हैं।**
- **चूंकि ईश्वर के अनेक रूप हैं, इसलिए हम उसे अरूप भी समझते हैं।**
- **न केवल ईश्वर सत्यरूप है, बल्कि सत्य ही ईश्वर है।**
- **सत्य तक पहुंचने का निकटतम मार्ग प्रेम है।**
- **नास्तिकों तक ने सत्य की आवश्यकता या शक्ति स्वीकार की है।**
- **मानव-मन असंख्य माध्यमों-द्वारा काम करता है।**
- **सत्य की प्राप्ति ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं हो सकती, जिसमें नम्रता की विपुल भावना न हो।**
- **अगर आप सत्य के महासागर के तल पर तैरना चाहते हैं तो आपको शून्य बन जाना होगा।**

२५. सत्य का आचरण

....मुझे जो सत्य प्रतीत होता है मैं वही करता हूं....!

—हि० न० जी०, ३१।१२।'३१]

२६. सत्य और गोपनीयता

....सत्य को गोपनीयता से घृणा है। आप जितने ही खुले हैं आपके उतना ही सत्यनिष्ठ होने की आशा है। जिसका जीवन सत्य पर आश्रित है उसके शब्द-कोश में निराशा और पराजय-जैसे शब्द नहीं होते।....कदाचित् सत्य और अहिंसा विश्व की शक्तियों में सबसे अधिक सक्रिय हैं।

—यं० इं०, ३१।१२।'३१]

२७. सत्य ही ईश्वर है

[लौजान में किसी ने गांधीजी से पूछा, आप ईश्वर को जैसा समझते हैं उसकी व्याख्या कीजिए। गांधीजी ने इस प्रश्न का निम्नलिखित उत्तर दिया। —संपा०]

ईश्वर सत्य है। परन्तु दो वर्ष हुए मैं एक क़दम आगे बढ़ गया हूं। अब मैं कहता हूं कि सत्य ही ईश्वर है। नास्तिकों को भी सत्य की शक्ति में शंका नहीं है। सत्य-शोध की लगन में नास्तिकों ने ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार करने में आगापीछा नहीं किया और उनकी दृष्टि से उनका ऐसा करना ठीक है।

—'द नेशन', न्यूयार्क, में प्रकाशित गांधी जी-रोमांरोलां मिलन के वर्णन से। बापू के पत्र : मीरा के नाम, पृष्ठ १५३, डाक की मुहर का दिनांक २६।५।'३२ (पत्र-तिथि अज्ञात)। प्रथम संस्करण, न० प्र० म० द्वारा प्रकाशित]

२८. असत्य आचरण

प्रार्थना में बैठकर भी जो भजनादि में भाग नहीं लेता, वह असत्य आचरण करता है।

—म० भा० डा०, दूसरा भाग, ११।९।'३२। पृष्ठ १५। प्रथम संस्करण, अप्रैल '५०]

२९. सत्य छिपाना आवश्यक हो सकता है

भय और सत्य विरोधी वस्तु हैं। परन्तु जिसमें भय का अंश भी नहीं है, उसे छिपाना सत्य का अविरोधी और आवश्यक हो सकता है। रोगी के स्वास्थ्य

के लिए वैद्य भयानक व्याधि की बात अवश्य छिपा सकता है, छिपाने का धर्म भी हो सकता है।

—म० भा० डा०, दूसरा भाग, ११।९।'३२। पृष्ठ १५। प्रथम संस्करण अप्रैल '५०]

३०. सत्य के प्रति आस्था

मेरा लूला-लँगड़ा सत्य भी चमत्कार दिखा रहा है, तब तो यदि पूर्ण सत्य का पालन किया जाय तो क्या नहीं हो सकता ?

—म० भा० डा०, तीसरा भाग, ७।१।'३३। पृष्ठ २१। प्रथम संस्करण जुलाई '५१]

३१. सत्य-पालन का मार्ग

हम शब्द भी कंजूसी से काम में लायें, विचार भी कंजूसी से काम में लायें। ऐसा करें तभी सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्य आदि का पालन हो सकता है।

—म० भा० डा०, तीसरा भाग, ७।१।'३३। पृष्ठ २२। प्रथम संस्करण जुलाई '५१]

३२. सत्य की प्रकृति

....सत्य की खोज का मेरा प्रयोग नये ही ढंग से हो रहा है। इसलिए नित नई चीजें, जो मुझे भी पहिले मालूम न थीं, मुझे सूझती हैं और जनता के सामने रखी जाती हैं।...किन्तु सत्य को वाणी की बहुत ज्यादा जरूरत, यदि वह तनिक भी रहती हो, तो नहीं होती। फूल की सुगन्ध की तरह सत्य में अपने आप फैलने की शक्ति है। भेद इतना ही है कि सुगन्ध थोड़ी देर में फैलना बन्द कर देती है, जबकि सत्य की फैलने की गति अनन्त है और नित्य बढ़ती रहती है। हम उसे नाप नहीं सकते इसलिए यह मान लेने की भूल न करें कि वह है ही नहीं।...

—म० भा० डा०, तीसरा भाग ८।१।'३३। पृष्ठ २८। प्रथम संस्करण जुलाई '५१]

- फूल की सुगन्ध-की तरह सत्य में अपने आप फैलने की शक्ति है।

३३. सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्

....मेरे पास यदि खजाना होता तो उसे खोलकर उसमें से प्रति सप्ताह मैं तुझे कुछ न कुछ भेजता गया होता। किन्तु मेरे पास वैसा कुछ भी नहीं है। जो वचन निकलते हैं, वे अपने आप निकलते हैं, वे ही सच हैं— क्योंकि उन्हें ही जीवित वचन कहना चाहिए। दूसरे वचन कृत्रिम होते हैं। वे सुन्दर मालूम हों तो भी उनका परिणाम स्थिर नहीं रहता, ऐसा मैं समझता हूं।....

....'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' यह केवल व्यवहार-वचन नहीं, सिद्धान्त है। 'प्रियं' का अर्थ अहिंसक है। मैंने तुझे जो आवेश में कहा होगा वही यदि मैंने नम्रता से बताया होता तो जो कटु प्रभाव शेष रह गया वह न रह गया होता। अहिंसक सत्य के बारे में तो ऐसा होता है कि उस समय वह कड़ुआ मालूम होता है किन्तु परिणाम में उसे अमृतमय मालूम होना चाहिए।

— कु० प्रेमा कंटक के नाम लिखे पत्र से। यरवदा मन्दिर, २०।२।'३३]

३४. सत्य ही धर्म की प्रतिष्ठा है

एक सत्य ही धर्म की सच्ची प्रतिष्ठा है। जब सत्य ही परमेश्वर है, तो धर्म में असत्य को स्थान नहीं हो सकता।

— ह० से०, १७।३।'३३]

३५. सत्य की शक्ति

सत्य के पास अपनी रक्षा के लिए अमोघ शक्ति है। सत्य ही जीवन है और ज्योंही यह किसी मानव-व्यक्ति में अपना घर कर लेता है त्योंही यह अपने को फैला लेता है।

— ह० से०, १७।३।'३३]

३६. सत्य का अभ्यास

जब तक सत्य तुम्हारे लिए स्वाभाविक नहीं हो जाता, तब तक जीवन जरूर कठिन लगेगा और तुम्हें निराशा-सी लगने-जैसा अनुभव होगा। पर जो व्यक्ति पूर्ण सत्यमय हो जाता है, उसके लिए निराशा-जैसी कोई चीज ही नहीं। फिर

तो उसमें सत्य प्रकाशित होता है और उसके सारे जीवन को उज्वल करता है। भगवान यानी सत्य ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शक होना चाहिए।

— म० भा० डा०, तीसरा भाग, २३।३।'३३। पृष्ठ १९८, प्रथम संस्करण, जुलाई '५१]

३७. सत्य-शोधकों से

....सत्य-शोधकों के लिए तो मेरी यही सलाह है कि जब वे शास्त्रों का अध्ययन करें, तो उन्हें सत्य और अहिंसा के विपरीत जो भी वस्तु शास्त्रों में मिले, उसका वे परित्याग कर दें। क्योंकि सत्य एवं अहिंसा ही समस्त धर्म के आधार-स्तम्भ हैं।

— ह० ज०। ह० से०, ६।४।'३४]

३८. सत्य ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ

....शास्त्र यही समझाता है कि इस जगत् में सबसे महान यज्ञ सत्य है।

— ह० से० १० ।८।'३४]

३९. दोषों का गोपन असत्य है

....दोष को छिपाना भी एक प्रकार का असत्य है।

— ह० से०, २४।८।'३४]

४०. सत्य छोड़कर रक्षा नहीं

....हिन्दुस्तान अपनी रक्षा के लिए सत्य को छोड़े, इसके बजाय वह मिट जाय, तो कोई बुराई न होगी।

— ह० ज०। अंग्रेजी से। ह० से०, २९।२।'३६]

४१. सत्य का सापेक्षिक ज्ञान

....सत्य को सम्पूर्णतः किसी ने नहीं जाना, अतः जिस-जिस वस्तु को

मनुष्य जैसे देखेगा वैसे ही यदि उसने बताया तो उसके बारे में वह सत्य है। फिर वास्तव में वह चाहे असत्य ही हो। इसी तरह युगयुगान्तरों में एक ही वस्तु के बारे में विचार बदलते जायंगे और वे ही उस युग के लिए सत्य माने जा सकेंगे। यह अर्थ या विचार 'असतो मा सद्गमय' में समाया है।

— कु० प्रेमा कंटक को लिखे पत्र से। १०।८।'३६]

४२. लेखन और सत्य

....यदि मैं लिखते समय सत्यनारायण को साक्षी बनाकर सबको प्रसन्न रख सकूं तो ठीक; लेकिन रिझा नहीं सकता। फिर यदि वह सत्यनारायण को न रुचे, तो मैं उसे नहीं लिखूंगा।

— ह० ज०। गुजराती। ह० से०, १२।१०।'३६]

४३. सत्य आचरण-द्वारा ही व्यक्त होता है

....आत्मा की भाषा वाणी-द्वारा व्यक्त हो ही नहीं सकती। यह देह से परे है। भाषा सत्य को मर्यादित कर देती है। सत्य तो आचरण-द्वारा ही व्यक्त हो सकता है।

....मनुष्य जब सत्य का आचरण करता है तब उसे बोलने की इच्छा ही नहीं होती। सत्याचरणी मनुष्य कम से कम बोलता है। इसलिए आचरण से भिन्न या उससे अधिक सच्चा धर्मप्रचार दूसरा नहीं है।

— ह० ज०। ह० से०, १९।१२।'३६]

४४. शाश्वत सत्य

....शाश्वत सत्य तो, जैसा कि मैंने अनेक स्थल पर कहा है, ईशोपनिषद के एक मन्त्र में[1] साररूप में दिया गया है।

— ह० ज०। ह० से०, २०।२।'३७]

---

१. गांधी जी का संकेत इस मन्त्र की ओर है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मागृधःकस्यस्विद्धनम्॥

४५. सत्य की शोध

सत्य को ढूंढ़ने में मुझे कोई कठिनाई नहीं होती। क्योंकि मैं कुछ मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर चलता हूं। सत्य को मैं सर्वोपरि मानता हूं। इससे विपरीत जो कुछ हो, उसे मैं छोड़ देता हूं।

—ह० ज०। ह० से०, ६।३।'३७]

४६. प्रवृत्तियों का आधार

हमें अपना कार्य-व्यवहार सत्य और अहिंसा-द्वारा चलाना है।....

—ह० से० १८।३।'३८]

४७. सत्य की अपार शक्ति

हमको तो अपना जीवन सत्यमय बनाना है। हम देखते हैं कि सत्य के नाम पर असत्य लोगों के आदर का पात्र हो रहा है। धर्म का उद्देश्य तो है बन्धुत्व को बढ़ाना, मनुष्य-मनुष्य में जो कृत्रिम भेद हैं, उनको कम करना। लेकिन आज उसी के नाम पर अछूतों के साथ घृणित व्यवहार हो रहा है। मैं कह चुका हूं कि असत्य स्वयं कमजोर है, परतन्त्र है। बिना सत्य के आधार के वह खड़ा नहीं रह सकता। लेकिन मैं आपको यह बतलाना चाहता हूं कि सत्य के नाम पर अगर असत्य भी इतना विजयी हो सकता है, तो स्वयं सत्य कितना होगा? इसकी नाप कौन लगा सकता है?

—'सर्वोदय' अक्टूबर, '३८, पृष्ठ १९]

४८. सत्य-प्राप्ति के साधन

लब बिबन्दो चश्म बन्दो गोश बन्द,
गर नबीनी सिररे हक़, बरमा बिखन्द।

'तू अपने ओठ बन्द रख, आंख बन्द रख, कान बन्द रख। इतने पर भी तुझे सत्य का गूढ़ तत्व न मिले, तब मेरी हँसी उड़ाना।'

यह मौलाना रूम का एक शेर है। कच्छ के चमन कवि कभी-कभी इस प्रकार के रत्न मेरे पास भेज देते हैं। ऊपर का शेर उन्होंने अर्थ-सहित तब भेजा था,

जब मैं राजकोट में था। मुझे यह इतना अच्छा लगा कि इसे 'हरिजन सेवक' के पाठकों के समक्ष रखने की इच्छा हुई। आज जबकि हम मनमाना बकवास करते रहते हैं, जब कान यथेच्छ सत्य-असत्य, गन्दी बातें सुनते रहते हैं, तब इसे वचन-बाण की तरह सीधे हमारे हृदय में बिंध जाना चाहिए। सत्य की शोध की ऐसी ही कठिन शर्त है। हम भले ही ओठ, कान और आँख को पूरी तरह बन्द न करें, किन्तु यदि कर लें तो इससे कुछ गंवायेंगे नहीं। परन्तु हम इतना तो अवश्य कर सकते हैं—ओठ से असत्य या कटुवचन न बोलें, कान से किसी की निन्दा या गन्दी बातें न सुनें, आँख से अपनी इन्द्रियों को विचलित करनेवाली कोई वस्तु न देखें। हम सत्य ही बोलें, वही सुनें जो हमें आगे ले जाय और आँख से ईश्वर की दया-ममता देखें, सन्त जनों का दर्शन करें। जो ऐसा करेगा वही सत्य का दर्शन पा सकेगा, वही शुद्ध सत्याग्रही हो सकेगा और उसकी तपश्चर्या से हम शान्तिमय स्वराज्य की झांकी पा सकेंगे। अन्य सब प्रयत्न मिथ्या हैं।

— ह० से०, २९।७।'३९]

४९. सत्य और असत्य

....असत्य का समर्थन कभी सत्य से नहीं हुआ, जिस प्रकार सत्य का समर्थन असत्य से नहीं हो सकता। यदि होता है, तो वह सत्य स्वयं असत्य हो जाता है।

— ह० ज०। ह० से०, २३।९।'३९]

५०. सत्य का व्यवहार

....मैंने सत्य और अहिंसा के जिन आदर्शों की कल्पना की है, उनपर मैंने खुद पूरा अमल नहीं किया है।....

....सत्य और अहिंसा को हम योंही अलापते न फिरें बल्कि अपने दैनिक जीवन में उनसे काम लें।....

— सेवाग्राम, २३।१०।'३९। ह० ज०। ह० से०, २८।१०।'३९]

५१. सत्य के साथ विकसित हो रहा हूं

सत्य और अहिंसा में मेरी श्रद्धा दिन-दिन बढ़ रही है। और ज्यों-ज्यों मैं उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न कर रहा हूं त्यों-त्यों प्रत्येक क्षण मेरा भी विकास हो रहा है। मुझे उसके नये-नये गूढ़ार्थ सूझ रहे हैं। मुझे उनमें रोज नई रोशनी नज़र आती है और नये-नये अर्थ मालूम होते हैं।

— ह० ज०, २।३।'४०]

५२. मैं सत्य का उपासक हूं

मैं अपने लिए पूर्णता का दावा नहीं करता किन्तु मैं सत्य का, जो कि ईश्वर का ही दूसरा नाम है, प्रबल शोधक होने का दावा अवश्य करता हूं। इसी शोध के दौरान अहिंसा मेरे हाथ आई।

— ह० ज०, ६।७।'४०]

५३. सत्य और अहिंसा की जय

जय तो सत्य और अहिंसा की ही है।....

— बापू के पत्र : सरदार वल्लभ भाई के नाम, ३१।५।'४१]

५४. सत्यनिष्ठा और त्रुटि का सुधार

अहिंसक मनुष्य को हर दशा में सत्यनिष्ठ रहना चाहिए। अतएव अपनी सत्यनिष्ठा के कारण जब मैं अपने किसी त्रुटिपूर्ण कथन को सुधारता हूं, तो उसमें मेरी निर्बलता का अनुभव करनेवाले व्यक्तियों के लिए उसे सहन करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह जाता।

— सेवाग्राम, २२।६।'४२। 'एक समस्या' लेख का अंश। ह० ज०। ह० से०, २८।६।'४२]

५५. कष्ट सहन करके भी सत्य न छोड़ें

....सर्वश्रेष्ठ नियम तो यही है कि बड़े से बड़ा कष्ट उठाकर भी मनुष्य वही करे, जो उसे तत्काल सत्य प्रतीत हो।

-- सेवाग्राम, ६।७।'४२। ह० ज०। ह० से०, १२।७।'४२]

५६. सत्य ही ईश्वर है

मेरा दावा है कि मैं बचपन से ही सत्य का पुजारी हूं। मेरे लिए यह सबसे सहज और स्वाभाविक वस्तु थी। मेरी भक्तिपूर्ण खोज ने 'मुझे ईश्वर सत्य है' के प्रचलित मन्त्र के बजाय 'सत्य ही ईश्वर है' का अधिक गहरा मन्त्र दिया। यह मन्त्र मुझे ईश्वर को मानो अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष देखने की क्षमता प्रदान करता है। मैं अनुभव करता हूं कि वह मेरे रग-रग में समाया हुआ है।

-- ह० ज०, ९।८।'४२]

५७. सत्य की अनन्त शक्ति

['हरिजन' के पुनर्प्रकाशन के समय गांधी जी ने उसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालने के लिए एक टिप्पणी लिखी थी। उस टिप्पणी के कुछ बोधप्रद अंश ये हैं। —संपा०]

पिछले कुछ वर्षों में संसार पर बड़े-बड़े उल्कापात हो चुके हैं। क्या सत्य और अहिंसा पर मेरी श्रद्धा अब भी वैसी ही बनी हुई है? क्या अणुबम ने मेरी श्रद्धा को चूर-चूर नहीं कर डाला? नहीं, तनिक भी नहीं। इसके विपरीत उसके कारण तो मेरा यह विश्वास अधिक दृढ़ हुआ है कि संसार में सत्य और अहिंसा से बढ़कर कोई शक्ति नहीं। इनकी तुलना में अणुबम कोई चीज नहीं। एक नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति है, दूसरी शारीरिक और भौतिक। इन दो विरोधी शक्तियों के बीच आकाश पाताल का अन्तर है। एक में आत्मा की अथाह शक्ति निहित है, जबकि दूसरी स्वभाव से ही नाशवान है। आत्मा की गति हमेशा आगे बढ़ाने वाली और अनन्त है। जब इस शक्ति का पूरा उदय होता है, तो यह संसार में अजेय बन जाती है। मैं जानता हूं कि कोई नई बात नहीं कह रहा हूं। इस शक्ति की अन्य विशेषता यह है कि बिना किसी वर्ण या रंग-भेद के यह प्रत्येक स्त्री,

पुरुष और बच्चे में मौजूद है। बात केवल इतनी है कि बहुतों में यह सोई हुई दशा में रहती है, यद्यपि विवेकमयी शिक्षा से इसे जगाया जा सकता है।

एक अन्य बात भी ध्यान रखने योग्य है कि इस सत्य को अपनाये बिना और इसके साक्षात्कार का सच्चा प्रयत्न किये बिना सर्वनाश से बचने का कोई उपाय नहीं है।....

-- मदुरा जाते हुए, २।२।'४६। ह० ज०, ह० से० १०।२।'४६]

- **संसार में सत्य और अहिंसा से बढ़कर कोई शक्ति नहीं।**
- **आत्मा की गति हमेशा आगे बढ़ाने वाली और अनन्त है।**

५८. सत्य अधिक मूल्यवान

....आपके सहयोग के बजाय आपका सत्य मेरे लिए अधिक मूल्यवान है।

-- नई दिल्ली, १५।५।'४६। ह० ज०। ह० से०, २८।४।'४६]

५९. सत्य अदमनीय है

....जब आदमी की रग-रग में सत्य रम जाता है, तो उसका मुँह कौन बन्द कर सकता है? और हार्दिक सत्य पर डटे रहने का साहस न हो, तो कानून की गारण्टी से क्या हो सकता है?

-- नई दिल्ली, २३।४।'४६। ह० ज०। ह० से० २८।४।'४६]

६०. सत्य की प्रकृति

....सत्य ऐसी चीज़ है कि चीख़-चीख़कर उसे कितनी ही बार क्यों न दोहरायें, उससे थकान नहीं आती, जिस प्रकार अल्लाह या ईश्वर का नाम रटने से नहीं आती।

-- शिमला ३।५।'४६। 'आत्मनिरीक्षण' लेख का अंश। ह० से० १२।५।'४६]

६१. दम्भ का परिहार : सत्य

....आजकल हमारे अन्दर इतना वहम फैला है और इतना दम्भ प्रचलित है कि सही चीज़ करने से भी डरना पड़ता है। लेकिन इस प्रकार डरते रहने से तो सत्य को भी छिपाना पड़ सकता है। इसलिए सुनहला नियम तो यही है कि जिसे हम सही समझें उसे निर्भय होकर करें। दम्भ और असत्य तो जगत् में चलता ही रहेगा। हम सही बात करेंगे तो वह कुछ कम ही होगा, बढ़ कभी नहीं सकता। ध्यान रहे कि जब चारों ओर असत्य प्रचलित हो, तब हम भी उसी में फँस कर स्वयं को धोखा न दें। अपनी शिथिलता के कारण हम अज्ञान में भी ऐसी भूल न करें। प्रत्येक स्थिति में सावधान रहना ही कर्तव्य है। सत्य का पुजारी अन्य कुछ कर ही नहीं सकता।....

— नई दिल्ली, २५।५।'४६। ह० से०, २।६।'४६]

६२. सत्य का पूर्ण ज्ञान

....मैं तो अपने हृदय से कहता हूं कि यदि लोग सत्य का दुरुपयोग करते हैं और धोखा-धड़ी से काम लेते हैं, तो मैं इसकी चिन्ता क्यों करूं? जबतक मुझे अपने सत्य पर दृढ़ विश्वास है, मैं इस डर से कि लोग उसे मिथ्या समझेंगे या उसका दुरुपयोग करेंगे, उसकी घोषणा करने से कैसे रुक सकता हूं? इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसने सत्य को पूरा-पूरा जाना हो। यह तो केवल एक ईश्वर का ही विशेषण है। हम लोग तो केवल सापेक्ष सत्य को जानते हैं। इसलिए हम जिसको जानते हैं उसी के अनुरूप व्यवहार कर सकते हैं। इस प्रकार सत्य का पालन करने से कोई कभी गुमराह नहीं हो सकता।

—नई दिल्ली। २७।५।'४६। ह० ज०। ह० से०, २।६।'४६]

६३. सत्य को दोहराना पड़ेगा

....मैक्समूलर ने वर्षों पहिले कहा था—जबतक सत्य पर अविश्वास रखने वाले मौजूद हैं, सत्य को दोहराना ही पड़ेगा। मैं इस बात को मानता हूं।

—पूना, १।७।'४६। ह० ज०। ह० से०, ७।७।'४६]

६४. मैं सत्य-साधक हूं

....मैं स्वयं सत्य का पुजारी हूं। जिन दिनों मैं वकालत करता था, मैंने अपने मुवक्किलों से कह रक्खा था कि यदि आप मुझे अपना वकील बनाना चाहते हैं, तो आपको मुझसे सारी बातें सच-सच बतानी होंगी। मैं झूठे मामले की पैरवी नहीं करूंगा। परिणाम यह हुआ कि मेरे पास सच्चे और खरे मामले ही लाये जाते थे। मैं एक लम्बे अर्से से वकालत छोड़ चुका हूं और राज-द्रोह के जुर्म में मेरा नाम भी बैरिस्टरों की सूची से काट दिया गया है। लेकिन मैं अपने उसी सिद्धान्त को मानता रहा हूं।

—क़ाजीरखिल, २४।११।'४६। अंग्रेजी से। ह० से०, ८।१२।'४६]

६५. सत्य से श्रेष्ठ धर्म नहीं

सत्य से ही धर्म बढ़ता है और यह बात तो मैंने हिन्दू धर्म से ही सीखी है। 'सत्यान्नास्ति परोधर्मः' और 'अहिंसा परमोधर्मः' भी हिन्दू धर्म ने सिखाया है।

—प्रार्थना-प्रवचन, पहिला खण्ड, पृष्ठ २१। ४।४।'४७ स० सा० मं० द्वारा प्रकाशित]

६६. एक भूला हुआ सबक

जो सबक हम तीस साल से सीखते आये हैं और जिसे हम आज भूल रहे हैं वह यह कि असत्य और हिंसा पर केवल सत्य और अहिंसा से जीत हो सकती है।....

—प्रार्थना–प्रवचन, पहिला खण्ड, पृ० १४१। ९।६।'४७। लिखित सन्देश से। स० सा० मं० द्वारा प्रकाशित।]

६७. सत्य और उसका साक्षात्कार

मेरे लिए सत्य सर्वोपरि सिद्धान्त है, जिसमें दूसरे अनेक सिद्धान्तों का समावेश हो जाता है। यह सत्य वाणी का स्थूल सत्य ही नहीं है, परन्तु विचार का सत्य भी है और न केवल हमारी कल्पना का सापेक्ष सत्य है, बल्कि स्वतन्त्र चिरस्थायी सत्य है, यानी परमेश्वर ही है। ईश्वर की असंख्य व्याख्याएं हैं, क्योंकि

उसकी विभूतियां भी अगणित हैं। ये विभूतियां मुझे आश्चर्यचकित करती हैं और एक क्षण के लिए स्तब्ध भी कर देती हैं। परन्तु मैं ईश्वर की पूजा सत्य के रूप में ही करता हूं। मैंने उसे अभी तक पाया नहीं है; परन्तु मैं उसी की खोज कर रहा हूं। इस खोज में अपनी प्रिय से प्रिय वस्तुओं का भी त्याग करने को मैं तैयार हूं। और मुझे विश्वास है कि इस शोधरूपी यज्ञ में अपने शरीर को भी होमने की मेरी तैयारी और शक्ति है। लेकिन जबतक मैं इस केवल सत्य का साक्षात्कार नहीं कर लेता, तबतक मैंने जिस सापेक्ष सत्य की कल्पना की है उसी को मुझे पकड़े रखना चाहिए। तबतक वह सापेक्ष सत्य ही मेरा प्रकाश-स्तम्भ, मेरी ढाल और मेरा कमरबन्द रहेगा। यद्यपि यह मार्ग खांडे की धार की तरह तंग और दुर्गम है, फिर भी मेरे लिए वह जल्दी से जल्दी का और आसान से आसान मार्ग रहा है। चूंकि मैंने इस मार्ग का कठोरता से अनुसरण किया है, इसलिए मेरी हिमालय-जैसी बड़ी भूलें भी मुझे तुच्छ-सी प्रतीत हुई हैं। कारण, इस मार्ग ने मुझे विनाश से बचाया है और मैं अपने ज्ञान के अनुसार आगे बढ़ता रहा हूं। अपनी प्रगति में मुझे केवल सत्य की, ईश्वर की हल्की-हल्की झांकियां होती रही हैं। और मेरा यह विश्वास दिन-दिन बढ़ रहा है कि वही सत्य है, और सब कुछ असत्य है।

—आत्मकथा (अंग्रेजी) १९४८, पृष्ठ ६-७]

- **मेरे लिए सत्य सर्वोपरि सिद्धान्त है।**
- **ईश्वर की अनेक व्याख्याएं हैं क्योंकि उसकी विभूतियां भी अगणित हैं।**
- **मैं ईश्वर की पूजा सत्य के रूप में ही करता हूं।**

६८. सत्य की खोज के साधन

मेरा यह विश्वास भी बढ़ता रहा है कि जो कुछ मेरे लिए सम्भव है, वह एक बच्चे के लिए भी सम्भव है और यह कहने के लिए मुझे उचित कारण भी मिले हैं। सत्य की खोज के साधन जितने कठिन हैं उतने ही सरल भी हैं। किसी अहंकारी व्यक्ति को वे सर्वथा असम्भव और एक निर्दोष बालक को बिलकुल सम्भव दिखाई दे सकते हैं। सत्य के शोधक को रजकण से भी नम्र होना चाहिए। दुनिया धूल को पैरों तले रौंदती है, परन्तु सत्य के शोधक को इतना नम्र बन जाना चाहिए कि धूल भी उसे कुचल सके। तभी और तभी उसे सत्य की झांकी मिलेगी।

—आत्मकथा (अंग्रेजी) १९४८, पृ० ६-७]

६९. सत्य

सत्य शब्द सत् से बना है। सत् का अर्थ है—होना या अस्ति, सत्य का अर्थ हुआ होने का भाव या अस्तित्व। सत्य के सिवा दूसरी किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है। परमेश्वर का सच्चा नाम ही सत् या सत्य है। इसलिए परमेश्वर सत्य है, ऐसा कहने की अपेक्षा सत्य ही परमेश्वर है, ऐसा कहना अधिक उचित है।

इस सत्य की आराधना के लिए ही हमारा अस्तित्व है। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति, हमारा प्रत्येक श्वासोच्छ्वास उसी के लिए होना चाहिए। ऐसा करना सीख लेने पर बाकी सारे नियम हमारे हाथ सहज ही लग जाते हैं और उनका पालन भी सरल हो जाता है। सत्य के बिना किसी भी नियम का शुद्ध पालन अशक्य है।

सामान्यतः सत्य का अर्थ केवल सच बोलना ही समझा जाता है। लेकिन हमने सत्य शब्द का प्रयोग विशाल अर्थ में किया है। विचार में, वाणी में, और आचार में सत्य का होना ही सत्य है।

परन्तु सत्य नाम ही परमेश्वर का है। इसलिए जिसे जो सत्य जान पड़े उसी के अनुसार वह चले, तो उसमें दोष नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि वही उसका कर्तव्य है। फिर यदि उसमें भूल होगी भी तो वह अवश्य सुधर जायगी। कारण, सत्य की शोध के पीछे तपश्चर्या होती है, यानी खुद कष्ट सहन करने की, उसके लिये मर मिटने की भावना होती है। इसलिए उसमें स्वार्थ की तो गन्ध तक नहीं होती। ऐसी निःस्वार्थ शोध में लगा हुआ कोई भी मनुष्य आज तक अन्त पर्यन्त गलत रास्ते पर नहीं गया। गलत रास्ते पर पांव पड़ते ही वह ठोकर खाता है और फिर सीधे रास्ते पर आ जाता है। इसलिए सत्य की आराधना ही सच्ची भक्ति है। और भक्ति तो सिर का सौदा है, या यों कहें कि जिसमें कायरता के लिए कोई स्थान नहीं ऐसा हरि का मार्ग है।

यदि हम सब, बालक और वृद्ध स्त्री और पुरुष उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते और काम करते हुए प्रतिदिन सारे समय अपना सम्पूर्ण ध्यान सत्य की ही खोज में लगायें और जबतक शरीर के नाश के साथ हम सत्य से तद्रूप न हो जायं तबतक ऐसा ही करते रहें तो कितना अच्छा हो। यह सत्यरूप परमेश्वर मेरे लिए रत्न चिन्तामणि सिद्ध हुआ है। सबके लिए वह ऐसा ही सिद्ध हो।

—मंगल-प्रभात। गुजराती से। पृष्ठ १-३, १९५४]

- **सत्य के सिवा दूसरी किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है।**
- **परमेश्वर का सच्चा नाम ही सत् या सत्य है।**

- परमेश्वर सत्य है, ऐसा कहने की अपेक्षा सत्य ही परमेश्वर है, ऐसा कहना अधिक उचित है।
- सत्य के बिना किसी भी नियम का शुद्ध पालन अशक्य है।
- विचार में, वाणी में, और आचार में सत्य का होना ही सत्य है।
- सत्य की शोध के पीछे तपश्चर्या होती है। इसलिए उसमें स्वार्थ की तो गन्ध तक नहीं होती।
- सत्य की आराधना ही सच्ची भक्ति है।
- यह सत्यरूप परमेश्वर मेरे लिए रत्न-चिन्तामणि सिद्ध हुआ है।

७०. सत्य और हठवादिता

सत्य का आग्रही रूढ़ि से चिपटकर ही कोई काम न करे। वह अपने विचारों पर हठपूर्वक डटा न रहे, हमेशा यह मानकर चले कि उसमें दोष हो सकता है, और जब दोष का ज्ञान हो जाय तब भारी-से-भारी जोखिमों को उठाकर भी उसे स्वीकार करे और प्रायश्चित्त भी करे।

—आत्मकथा, पृष्ठ ३०७, संस्करण १९५७]

७१. नवीन प्रयोग और सत्य

जिसे नये अपरिचित प्रयोग करने हों उसे आरम्भ अपने से ही करना चाहिए। ऐसा होने पर सत्य जल्दी प्रकट होता है और इस प्रकार के प्रयोग करनेवालों को ईश्वर उबार लेता है।

— आत्मकथा, पृष्ठ, २६८, संस्करण १९५७]

७२. सत्य के पुजारी का कर्तव्य

सत्य के पुजारी को तो बहुत सावधानी रखनी चाहिए। पूरे विश्वास के बिना किसी के मन पर आवश्यकता से अधिक प्रभाव डालना भी सत्य को लाञ्छित करना है।

—हि० आ० क०, भाग ४, अध्याय १२, पृष्ठ २५९। न० जी० प्रकाशन मन्दिर द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण १९५७]

७३. सत्य की विजय

भारत कहता है कि वचन वचन ही है। यह अच्छा आदर्श है।....सत्य की, अन्त में, विजय होती है।

—'महात्मा गांधी के साथ वार्तालाप' शीर्षक लेख से। महात्मा गांधी खण्ड २, पृष्ठ ४५ गांधी हिन्दी पुस्तक भण्डार, बम्बई संस्करण पौष १९७८ वै०]

७४. सत्य की प्रतिज्ञा

[मद्रास में सम्मान्य जी० पिटेनड्रिग के सभापतित्व में एक उत्सव हुआ था। इसमें व्याख्यान देते हुए गांधी जी ने विद्यार्थियों को आश्रम-जीवन-सम्बन्धी अपनी परिकल्पना बताई थी। उनके भाषण का अंश यहाँ दिया जा रहा है—संपा०]

पांच नियम हैं जिन्हें यम कहते हैं और उनमें से पहिला नियम सत्य की दृढ़ प्रतिज्ञा है। साधारणतः हम लोग जिसे सत्य समझते हैं वह सत्य नहीं, बल्कि वह सत्य, जिसका तात्पर्य है कि चाहे जो हो, हम लोगों को सत्य के नियम के अनुसार अपने जीवन का शासन करना चाहिए। और इस व्याख्या को यथार्थ करने के लिए मैंने प्रह्लाद के जीवन का प्रसिद्ध उदाहरण लिया है, जिसने सत्य के लिए अपने पिता का विरोध करने का साहस किया था। इस आश्रम का यह नियम है कि जिस समय हमें नहीं कहने की आवश्यकता हो उस समय हम परिणाम का तनिक भी विचार न करें और नहीं कह दें।

—गांधी हिन्दी पुस्तक भण्डार बम्बई द्वारा प्रकाशित 'महात्मा गांधी' शीर्षक ग्रन्थ से। पृष्ठ संख्या ७९। संस्करण तिथि पौष १९७८ वै०]

७५. सत्य को वाणी की आवश्यकता नहीं

सत्य के उपासक को बोलकर अपना काम करने या विचार बताने की आवश्यकता नहीं है। उसका तो आचरण ही संसार के लिए उपदेश-रूप होना चाहिए।.... सत्य के उपासक के लिए मौन बहुत ही आवश्यक होता है।

—नवजीवन प्रकाशन मन्दिर द्वारा प्रकाशित 'बापू की छाया में' से। पृष्ठ ७२, ७३। प्रथम संस्करण]

७६. सत्य के सम्मुख असत्य की गति नहीं

....कहा है कि अहिंसा के सामने हिंसा शान्त होती है, सत्य के सामने असत्य, अस्तेय के सामने स्तेय इत्यादि। मेरे सामने झूठ चल सकता है, हिंसा हो सकती है, चोरी हो सकती है, तो मेरी क्या कीमत?

—आश्रमवासियों के नाम लिखे गये सन्देश से। बापू के पत्र : बीबी अमतुस्सलाम के नाम पृष्ठ १६५]

७७. सत्य अनन्त है

सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते हुए दिखाई देते हैं। उनका अन्त ही नहीं होता। ज्यों-ज्यों हम गहरे पैठते हैं, त्यों-त्यों उनमें से रत्न निकलते हैं; सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं।

—हि० आ० क० भाग ३, अध्याय ११ पृष्ठ २४०]

७८. सत्य चिन्तामणि है

जहाँ सत्य है वहाँ ज्ञान, शुद्ध ज्ञान, है ही। जहाँ सत्य नहीं है वहाँ शुद्ध ज्ञान असम्भव है। इसलिए ईश्वर नाम के साथ चित् यानी ज्ञान शब्द की योजना हुई है। और जहाँ सच्चा ज्ञान है वहाँ आनन्द ही आनन्द होता है, शोक होता ही नहीं। और चूंकि सत्य शाश्वत है, इसलिए आनन्द भी शाश्वत होता है इसी कारण ईश्वर को हम सच्चिदानन्द नाम से भी पहिचानते हैं।

इस सत्य की आराधना के लिए ही हमारी हस्ती है। हमारा प्रत्येक कार्य, प्रत्येक श्वासोच्छ्वास इसी के लिए होना चाहिए। ऐसा करना सीख लेने पर बाकी सारे नियम हमारे हाथ सहज ही लग जाते हैं और उनका पालन भी सरल हो जाता है। सत्य के बिना किसी भी नियम का शुद्ध पालन अशक्य है।

सामान्यतः सत्य का अर्थ केवल सच बोलना ही समझा जाता है। लेकिन सत्य शब्द का प्रयोग यहाँ विशालतर अर्थ में किया गया है। विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। इस सत्य को जो सम्पूर्णतया समझ लेता है, उसे जगत् में दूसरा कुछ भी जानने को नहीं रहता। क्योंकि, जैसा हम ऊपर कह आये हैं, सारा ज्ञान उसमें समाया हुआ है। उसमें जो न समाये वह सत्य

नहीं है, ज्ञान नहीं है। तो फिर उसमें सच्चा आनन्द तो हो ही कैसे सकता है? यदि हम इस कसौटी का उपयोग करना सीख जायं, तो हमें यह जानने में देर न लगे कि कौन-सा कार्य करने योग्य है और कौन-सा त्याज्य है? क्या देखने योग्य है और क्या नहीं, क्या पढ़ने योग्य है और क्या नहीं?

पर यह पारसमणि-रूप, कामधेनु-रूप सत्य प्राप्त कैसे किया जाय? इसका उत्तर भगवान ने दिया है—अभ्यास और वैराग्य से। अभ्यास यानी एक मात्र सत्य के लिए उत्कट अधीरता और वैराग्य यानी सत्य के सिवा दूसरी सारी वस्तुओं के विषय में आत्यन्तिक उदासीनता। फिर भी हम देखेंगे कि एक के लिए जो सत्य है वह दूसरों के लिए असत्य हो सकता है। इससे घबराने का कोई कारण नहीं है। जहाँ शुद्ध प्रयत्न है वहाँ समझ में आ जायगा कि भिन्न जान पड़नेवाले सब सत्य एक ही पेड़ के असंख्य भिन्न दिखाई देने वाले पत्तों के समान हैं। परमेश्वर स्वयं भी क्या प्रत्येक मनुष्य को भिन्न नहीं दिखाई देता? फिर भी हम जानते हैं कि वह एक ही है। पर सत्य नाम ही परमेश्वर का है इसलिए जिसे जो सत्य जान पड़े उसी के अनुसार वह चले तो उसमें दोष नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि वही उसका कर्त्तव्य है। फिर यदि उसमें भूल होगी तो वह अवश्य सुधर जायगी। कारण, सत्य के शोधक के पीछे तपश्चर्या होती है यानी खुद कष्ट सहन करने की, उसके पीछे मर मिटने की भावना होती है। इसलिए उसमें स्वार्थ की तो गन्ध तक नहीं होती। ऐसे निःस्वार्थ शोध में लगा हुआ कोई भी मनुष्य आज तक अन्त-पर्यन्त गलत रास्ते पर नहीं गया। गलत रास्ते पर पाँव पड़ते ही वह ठोकर खाता है और फिर सीधे रास्ते पर आ जाता है। इसलिए सत्य की आराधना ही सच्ची भक्ति है। और भक्ति तो सिर का सौदा है या यों कहें कि हरि का मार्ग है, जिसमें कायरता के लिए कोई स्थान नहीं है, जिसमें हार नाम की कोई चीज है ही नहीं। वह मर कर जीने का मन्त्र है।

इस प्रसंग में हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, रामचन्द्र, इमाम हसन, इमाम हुसेन, ईसाई सन्तों आदि के उदाहरण विचारने योग्य हैं। यदि हम सब बालक और वृद्ध, स्त्री और पुरुष उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते और काम करते हुए प्रतिदिन सारे समय अपना सम्पूर्ण ध्यान सत्य की ही खोज में लगायें और जब तक शरीर सहित हम सत्य के साथ तद्रूप न हो जायं तब तक ऐसा ही करते रहें तो कितना अच्छा हो। यह सत्यरूप परमेश्वर मेरे लिए रत्न-चिन्तामणि सिद्ध हुआ है, हम सबके लिए वह वैसा ही सिद्ध हो।

—मंगल-प्रभात]

[३]

सत्य

अहिंसा के साथ एवं उसके साध्य रूप में

१. सत्य में अहिंसा का समावेश है

सत्य में ही सब बातों का समावेश हो जाता है। अहिंसा में चाहे सत्य का समावेश न होता हो पर. . . .सत्य में अहिंसा का समावेश हो जाता है।

निर्मल अन्तःकरण को जिस समय जो प्रतीत हो वही सत्य है। उसपर दृढ़ रहने से शुद्ध सत्य की प्राप्ति हो जाती है।

सत्य में प्रेम मिलता है, सत्य में मृदुता मिलती है।

शरीर की स्थिति अहंकार की ही बदौलत सम्भवनीय है। शरीर का आत्यन्तिक नाश ही मोक्ष है। जिसके अहंकार का आत्यन्तिक नाश हो चुका है वह तो प्रत्यक्ष सत्य की मूर्ति हो जाता है।

--जमनालाल बजाज को लिखे गये पत्र से, १७।३।'२३]

२. अहिंसा और सत्य अन्योन्याश्रय हैं

अहिंसा मेरा ईश्वर है और सत्य मेरा ईश्वर है। जब मैं अहिंसा को ढूंढ़ता हूं तो सत्य कहता है, मेरे द्वारा उसे खोजो। जब मैं सत्य की तलाश करता हूं तो अहिंसा कहती है, मेरे जरिये उसे खोजो।

--यं० इं० ४।६।'२५]

३. सत्य और अहिंसा

. . . .सत्य विध्यात्मक है, अहिंसा निषेधात्मक। सत्य वस्तु का साक्षी है, अहिंसा वस्तु होने पर भी उसका निषेध करती है। सत्य है, असत्य नहीं है। हिंसा है, अहिंसा नहीं है। फिर भी अहिंसा ही होना चाहिए। यही परम धर्म है। सत्य स्वयंसिद्ध है। अहिंसा उसका सम्पूर्ण फल है। वह सत्य में छिपी हुई है, वह सत्य की तरह व्यक्त नहीं है इसलिए उसको मान्यता दिये बिना मनुष्य भले ही शास्त्र की शोध करे। उसका सत्य उसे आखिर अहिंसा ही सिखायेगा।

— न० जी०। हि० न० जी०, १५।१०।'२५]

४. सत्य और हिंसा का मेल नहीं बैठता

शान्ति का मार्ग सत्य का मार्ग है। सत्यशीलता शान्तिप्रियता से भी अधिक महत्वपूर्ण है। सत्यप्रिय व्यक्ति अधिक समय तक हिंसक नहीं रह सकता। वह अपने अन्वेषण के दौरान अनुभव करेगा कि उसे हिंसक होने की आवश्यकता नहीं है। और उसे यह भी ज्ञात होगा कि जबतक उसके अन्दर थोड़ी भी हिंसा है, वह सत्य की शोध में असफल रहेगा, जिसका अन्वेषण वह कर रहा है।

सत्य-अहिंसा और असत्य तथा हिंसा के मध्य कोई वीच का मार्ग नहीं है।.....थोड़े-से व्यक्तियों का सत्य रह जायगा और करोड़ों व्यक्तियों का भी असत्य तूफ़ान के सामने तिनके की तरह नष्ट हो जायगा।

— यं० इं०, २०।५।'२६]

५. सत्य पर अडिग श्रद्धा

....मुझे सत्य का ही पक्षपात है और मैं अहिंसा-मार्ग से सत्य की शोध करता हूं। मैंने अनुभव किया है कि दूसरे मार्ग से सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। सत्य है या नहीं, अहिंसा परमधर्म है या नहीं, ये प्रश्न मेरे निकट विवादग्रस्त नहीं हैं। इस विषय में अपने मन में शंका होने को भी मैं सम्भव नहीं मानता। परन्तु इसका पालन किस प्रकार किया जाय, यह प्रश्न मेरे समक्ष प्रतिक्षण रहता है।..

—न० जी। हि० न० जी०, १८।११।'२६]

६. मेरी नीति

....चूंकि सत्य ही सर्वश्रेष्ठ विवेक है, इसलिए कभी-कभी मेरे कार्य नीति-चातुर्य के अनुकूल प्रतीत होते हैं। किन्तु मुझे आशा है कि सत्य और अहिंसा की नीति के सिवा मुझमें कोई अन्य नीति-चातुर्य नहीं है। स्वदेश और स्वधर्म के उद्धार-हेतु भी मैं सत्य और अहिंसा को नहीं छोड़ सकता।...

— यं० इं०। हि० न० जी०, २०।१।'२७]

७. सत्यमेव जयते

....संसार के समस्त धर्मों के बीच अन्य चाहे जो मतभेद हों, किन्तु इस बात को सभी मिलकर कहते हैं कि 'सत्यमेव जयते'—संसार में केवल सत्य रहता है।

मैं यह कहने का भी साहस करता हूं कि सत्य की विजय कभी हिंसा से नहीं हुई।

—हि० न० जी० २७।१०।'२७]

८. एकमात्र शरण सत्य और अहिंसा

हमारे लिए सत्य और अहिंसा को छोड़ अन्य कोई शरण नहीं है।....हिंसा और असत्य नहीं अहिंसा और सत्य ही मानव जाति का नियम है।

—यं० इं०, १३।९।'२८]

९. सत्य की आराधना

निश्चय कर लें कि हम सत्य की आराधना छोड़ने वाले नहीं हैं। सत्य के लिए संसार में सच्ची अहिंसा ही धर्म है।....

— न० जी०। हि० न० जी०, २०।९।'२८]

१०. सत्य सर्वव्यापक है

....सत्य और अहिंसा सर्वव्यापक सिद्धान्त या तत्व है।....

— हि० न० जी०, २९।८।'२९]

११. एकमात्र आधार : सत्य-अहिंसा

....करोड़ों लोगों का आलस्य और जड़ता दूर करना हो और एक दूसरे का गला काटने वाली कौमों को आपस में मिलाना हो तो इस देश के लिए अहिंसा और सत्य ही अनिवार्य हैं।....पूर्ण स्वाधीनता पाने में एक वर्ष का समय लगे

या कई साल बीत जायँ, तो भी उसे पाने के निकट से निकट रास्ते अहिंसा और सत्य ही हैं।....

—न० जी०। हि० न० जी०, १६।१।'३०]

१२. सत्य स्वतन्त्र है

परम सत्य अकेला खड़ा होता है। सत्य साध्य है, अहिंसा साधन है।
—यरवदा जेल, १९।८।'३०]

१३. सत्य और अहिंसा का पालन आवश्यक है

हमें देश का हित समस्त मानव-हित के साथ सुसंगत रखना हो, हमें एक धर्म-सम्प्रदाय का हित इस तरह करना हो कि उसमें दुनिया के तमाम धर्म-सम्प्रदायों का हित हो, तो वह मन, वचन, कर्म से सत्य और अहिंसा का सम्पूर्ण पालन करने से ही हो सकेगा।

—म० भा० डा० दूसरा भाग, १७।९।'३२ पृष्ठ ३६। प्रथम संस्करण अप्रैल '५०]

१४. मेरी प्रवृत्तियों का मूल

मेरी तमाम प्रवृत्तियों का मूल एक ही दिखाई देगा। जीवन के हर क्षेत्र में, फिर वह छोटा हो या बड़ा, सत्य और अहिंसा की उपासना करना ही मेरा ध्येय है।

—म० भा० डा० दूसरा भाग, २१।११।'३२। पृष्ठ २१७। प्रथम संस्करण अप्रैल '५०]

१५. प्रमुख उद्देश्य सत्य

....हमारे सारे उद्देश्यों और प्रतिज्ञाओं का आधार सत्य है और सत्य का पौधा तब तक नहीं फले-फूलेगा, जब तक तुम उसे अहिंसा के जल से नहीं सींचोगे।

—ह० से०, २९।२।'३६]

१६. सत्य ही सर्वोपरि

[गांधी-सेवा-संघ के हुदली अधिवेशन में एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार-विमर्श हुआ। अध्यक्ष ने यह प्रश्न उठाया कि जो लोग धारासभाओं में जाते हैं क्या वे संघ के सदस्य बने रह सकते हैं? इस पर सदस्यों में मतभेद हुआ। सरदार वल्लभ भाई पटेल-जैसे कुछ प्रभावशाली सदस्य धारासभाओं में जाने के पक्ष में थे और सेठ जमनालाल बजाज-जैसे अन्य कुछ सदस्य इसके विरोधी थे। बहस के दौरान कुमारी प्रेमाबहिन कंटक ने तो श्री जमनालाल से यहां तक कह दिया: चलिए, आपके सत्य और अहिंसा सब ठीक हैं, पर गांव के लोगों को आपकी ये बड़ी-बड़ी सिद्धान्त की बातें अपील करने में असफल ही रहीं। उनको तो आज स्वराज्य या राजनीति से मतलब है।

दो घण्टे की बहस के बाद गांधी जी ने इस प्रश्न पर जो विचार व्यक्त किया, उसका आवश्यक अंश यहां दिया जा रहा है। —संपा०]

. . . .मुझे इसमें लेशमात्र भी शंका नहीं कि यदि मैंने सत्य और अहिंसा का व्रत न लिया होता, तो मेरी राजनीति की कोई रत्ती भर भी परवाह नहीं करता। सत्य मेरा स्वभावजन्य गुण था, अहिंसा बाद में आई। स्कूल में मैं मन्दबुद्धि था। वकालत शुरू की तो मेरी गिनती दूसरे दर्जे के वकीलों में थी। दक्षिण अफ्रीका में मेरे मुवक्किल मेरी कानूनी योग्यता से तो तनिक भी प्रभावित नहीं हुए, किन्तु जब उन्होंने देखा कि मैं किसी भी स्थिति में सत्य से विचलित नहीं हो सकता, तब उन्होंने मुझे अपना विश्वासपात्र—कानूनी सलाहकार बनाया। . . . .प्रेमा बहिन कहती हैं कि ससवाड़ के लोग, जहां कि वे काम कर रही हैं, सत्य या अहिंसा को नहीं समझते, किन्तु स्वराज्य को समझते हैं। मैं उनकी इस बात को नहीं मानता। उनकी इस धारणा के बावजूद मैं तो यह कहूंगा कि वे लोग जानते भी नहीं कि स्वराज्य क्या है। . . . .

यदि आप लोगों में से कोई प्रेमा बहिन के इस विचार से सहमत हों, कि सत्य और अहिंसा को राजनीति से पृथक् कर देने पर इनका कोई अर्थ नहीं रह जाता, तो मैं आपसे कहता हूं कि सत्य और अहिंसा ऐसी सर्वसामान्य सत्ताएं हैं, जो राजनीति-जैसी क्षणिक वस्तुओं से सर्वथा स्वतन्त्र हैं। सत्य और अहिंसा से रहित राजनीति का कोई मूल्य नहीं। सत्य और अहिंसा तो ईश्वर के ही दूसरे नाम हैं। सत्य और अहिंसा का त्याग करके हम जो भी काम करते हैं, उसका कुछ मूल्य नहीं। हमारी क्षुद्र प्रवृत्तियां और ये नाचीज़ तरीक़े एक दिन लुप्त हो जायंगे, इनका नाम-निशान भी न रहेगा, किन्तु सत्य और अहिंसा सदैव अमर रहेंगे। जो भी शक्ति

मेरे पास है, जो भी प्रभाव मैं जनता पर डाल सकता हूं, वह मेरी पचास वर्ष से सत्य और अहिंसा के प्रति जो निष्ठा और भक्ति है, उससे प्राप्त हुआ है। सत्य और अहिंसा मुझे प्रतिदिन इतनी अधिक नई प्रेरणा और शक्ति दे रहे हैं कि अगर उनसे मेरा रोम-रोम भीग जाय, तो मुझे आपसे बहस करने की भी जरूरत न पड़े।

मैं ऐसे सिद्धान्तों का पुजारी नहीं बनूंगा, जिनका अस्तित्व राजनीति या किसी दूसरी चीज़ पर निर्भर करता हो। सत्य और अहिंसा की पूजा तो मैं उनके सर्व-शक्तिमान होने के कारण करता हूं। सत्य और अहिंसा को मैं ईश्वर का पर्यायवाची क्यों मानता हूं? क्योंकि मैं किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु को अपना ईश्वर नहीं बना सकता, जिस प्रकार मैंने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया। ये तो अनमोल वस्तुएं हैं और इनको हमें प्राणों के मोल ही खरीदना है।

— ह० ज०। ह० से०, १।५।'३७]

- **यदि मैंने सत्य और अहिंसा का व्रत न लिया होता, तो मेरी राजनीति की कोई रत्ती भर भी परवाह न करता।**
- **सत्य मेरा स्वभावजन्य गुण था, अहिंसा बाद में आई।**
- **सत्य और अहिंसा ऐसी सर्वमान्य सत्ताएं हैं, जो राजनीति-जैसी क्षणिक वस्तुओं से सर्वथा स्वतन्त्र हैं।**
- **सत्य और अहिंसा से रहित राजनीति का कोई मूल्य नहीं।**
- **सत्य और अहिंसा तो ईश्वर के ही दूसरे नाम हैं।**
- **सत्य और अहिंसा सदैव अमर रहेंगे।**

१७. सत्य का संगठन

....मैं जोर देकर कहता हूं कि सत्य और अहिंसा का संगठन हो सकता है। अन्यथा, वे मेरे लिए सनातन सिद्धान्त नहीं रहेंगे। सनातन सिद्धान्त में जैन सन्तों के अनुसार कोई अपवाद नहीं होता। अतः सत्य और अहिंसा मठवासियों के ही धर्म नहीं हैं; अदालतों, धारासभाओं और अन्य व्यवहारों में भी ये सनातन सिद्धान्त लागू हो सकते हैं।....

—गांधी-सेवा-संघ के हुदली अधिवेशन में दिये गये समापन भाषण से। ह० से०, ८।५।'३७]

१८. सत्य का मार्ग तलवार की धार है

सत्य और अहिंसा का मार्ग तलवार की धार के समान तेज है।

— ह० ज०, २।४।'३८]

१९. सत्य-अहिंसा और भारतीय स्वातन्त्र्य

मैंने कई बार कहा है कि मैं सत्य और अहिंसा को भारत की स्वाधीनता के मोल भी न बेचूंगा।

— ह० ज०, २७।५।'३९]

२०. सत्य और अहिंसा के उपासक

हम सब सत्य और अहिंसा के अनुयायी हैं और हमारा मानसिक संघर्ष, द्वन्द्व भी इन्हीं के प्रति निष्ठावान रहने की आतुरता के कारण उत्पन्न होते हैं।

—ह० ज०, ४।११।'३९]

२१. दो बहुमूल्य सुभाषित

शास्त्रों ने हमें दो बहुमूल्य वचन दिये हैं। उनमें से एक है 'अहिंसा परमोधर्मः' और दूसरा 'सत्यानास्ति परोधर्मः'—सत्य के समान कोई धर्म नहीं। ये दो वचन हमें समस्त विहित अर्थ और काम की कुंजी प्रदान करते हैं।

— ह० ज० २७।७।'४०]

२२. सत्य की परीक्षा

....अहिंसा के नाम पर हिंसा होती है। धर्म के नाम पर अधर्म होता है। लेकिन सत्य और अहिंसा की परीक्षा भी तो इन्हीं के बीच हो सकती है।

— बापू के पत्र : सरदार वल्लभभाई के नाम, २५।१२।'४६]

२३. सत्य और अहिंसा

....अहिंसा को जितना मैं पहिचान सका हूं उसकी बनिस्बत मैं सत्य को अधिक पहचानता हूं, ऐसा मेरा ख्याल है। और यदि मैं सत्य को छोड़ दूं तो अहिंसा की उलझनें मैं कभी न सुलझा सकूंगा, ऐसा मेरा अनुभव है।

—हि० आ० क०। भाग ५, अध्याय २९, पृष्ठ ५०६-७]

२४. दो बहुमूल्य वचन

अहिंसा और सत्य आपस में इतने गुंथे हुए हैं कि उन्हें एक दूसरे से सुलझाकर अलग करना लगभग असम्भव है। वे एक सिक्के के या यों कहिये कि धातु के एक चिकने गोल टुकड़े के दो पहलुओं की तरह हैं। कौन कह सकता है कि यह उलटा है और यह सीधा है? फिर भी, अहिंसा साधन है, सत्य साध्य है। साधन वही है जो सदा हमारी पहुंच के भीतर हो, और इसलिए अहिंसा हमारा सर्वोच्च धर्म है। अगर हम साधन को संभाल लें तो हम साध्य तक देर या सबेर पहुंचकर ही रहेंगे। एक बार यह बात अच्छी तरह समझ लें तो हमारी अन्तिम विजय असन्दिग्ध है। हमें रास्ते में चाहे जो कठिनाइयां आयें, बाह्य दृष्टि से हमारी चाहे जितनी हार होती दिखे, हम सत्य की खोज न छोड़ें और विश्वास के साथ एक ही मन्त्र जपें—सत्य है।

— मंगल-प्रभात, अध्याय २]

- **अहिंसा साधन है, सत्य साध्य है।**
- **अहिंसा हमारा सर्वोच्च धर्म है।**

२५. सत्य मार्ग की कठिनता

सत्य का मार्ग जितना सीधा है उतना ही तंग भी है। यही बात अहिंसा की है। यह खांडे की धार पर चलने के बराबर है। ध्यान की एकाग्रता के द्वारा एक नट रस्सी पर चल सकता है परन्तु सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलने

के लिए कहीं बड़ी एकाग्रता की जरूरत है। जरा-सा ध्यान चूके कि धड़ाम से जमीन पर आ गिरे। सतत साधना के द्वारा ही सत्य और अहिंसा को सिद्ध किया जा सकता है।

— मंगल प्रभात, अध्याय २]

- **सतत साधना के द्वारा ही सत्य और अहिंसा को सिद्ध किया जा सकता है।**

२६. सत्य का दर्शन

....मैंने सत्य को जिस रूप में देखा है और जिस राह से देखा है उसे उसी रूप से, उसी राह से बताने की हमेशा कोशिश की है।....मैं सत्य को ही परमेश्वर मानता हूं।...सत्यमय बनने के लिए अहिंसा ही एक राजमार्ग है।...मेरी अहिंसा सच्ची होते हुए भी कच्ची है, अपूर्ण है। इसलिए मेरी सत्य की झाँकी उस सत्य-रूपी सूर्य के तेज की एक किरण-मात्र के दर्शन के समान है, जिसके तेज का माप हजारों साधारण सूर्यों को इकट्ठा करने पर भी नहीं मिल सकता। अतः अब तक के अपने प्रयोगों के आधार पर इतना तो मैं अवश्य कह सकता हूं कि इस सत्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के अभाव में अशक्य है।

ऐसे व्यापक सत्यनारायण के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए प्राणिमात्र के प्रति आत्मवत् प्रेम की बड़ी भारी ज़रूरत है। इस सत्य को पाने की इच्छा करने वाला मनुष्य जीवन के एक भी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता। यही कारण है कि मेरी सत्य-पूजा मुझे राजनीतिक क्षेत्र में घसीट ले गई। जो यह कहते हैं कि राजनीति से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं, मैं निःसंकोच हो कर कहता हूं कि वे धर्म को नहीं जानते।

....बिना आत्म-शुद्धि के प्राणि-मात्र के साथ एकता का अनुभव नहीं किया जा सकता। और आत्म-शुद्धि के अभाव में अहिंसाधर्म का पालन करना भी हर तरह ना-मुमकिन है। चूंकि अशुद्धात्मा परमात्मा के दर्शन करने में असमर्थ रहता है, इसलिए जीवनपथ के सारे क्षेत्रों में शुद्धि की ज़रूरत रहती है। इस तरह की शुद्धि साध्य है, क्योंकि व्यक्ति और समष्टि के बीच इतना निकट का सम्बन्ध है कि एक की शुद्धि अनेक की शुद्धि का कारण बन जाती है और व्यक्तिगत कोशिश करने की ताक़त तो सत्यनारायण ने सब किसी को जन्म से ही दी है।

लेकिन मैं तो पल-पल इस बात का अनुभव करता हूं कि शुद्धि का यह मार्ग विकट है। शुद्ध होने का मतलब तो मन से, वचन से और काया से निर्विकार होना, रागद्वेष आदि से रहित होना है। इस निर्विकार स्थिति तक पहुंचने के लिए प्रति पल प्रयत्न करने पर भी मैं इस तक पहुँच नहीं सका हूं। इस कारण लोगों की

प्रशंसा मुझे भुला नहीं सकती, उल्टे बहुधा वह मेरे दुःख का कारण बन जाती है। मैं तो मन के विकारों को जीतना, सारे संसार को शस्त्र-युद्ध में जीतने से भी कठिन समझता हूं।....मैं जानता हूं कि अभी मुझे बीहड़ रास्ता तय करना है। इसके लिए मुझे शून्यवत् बनना पड़ेगा। जब तक मनुष्य खुद अपने आपको सबसे छोटा नहीं मानता है तब तक मुक्ति उससे दूर रहती है। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है....और यह अनुभवसिद्ध बात है कि इस तरह की नम्रता के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।...

-- हिं० आ० क०। भाग ५, अध्याय ४४, पृष्ठ ५५३, ५४। स० संस्करण-३९]

- **मैं सत्य को ही परमेश्वर मानता हूं।**
- **सत्यमय बनने के लिए अहिंसा ही एक राजमार्ग है।**
- **मेरी अहिंसा सच्ची होते हुए भी कच्ची है, अपूर्ण है।**
- **सत्य का सम्पूर्ण दर्शन सम्पूर्ण अहिंसा के अभाव में अशक्य है।**
- **शुद्ध होने का मतलब तो मन से, वचन से और काया से निर्विकार होना है।**
- **मैं तो मन के विकारों को जीतना, सारे संसार को शस्त्र-युद्ध में जीतने से भी कठिन समझता हूं।**
- **जबतक मनुष्य खुद अपने आपको सबसे छोटा नहीं मानता है तबतक मुक्ति उससे दूर रहती है।**
- **अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है।**

[४]

सत्यः विविध

१. सत्य का अन्वेषण

[सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में हण्टर कमेटी के समक्ष बयान देते हुए गांधी जी ने सर चिम्मनलाल सीतलवाड़ के प्रश्नों के उत्तर में सत्य की व्याख्या की थी। ये प्रश्नोत्तर दिये जा रहे हैं।—संपा०]

प्रश्न—क्या यह सम्भव नहीं कि सत्य का अन्वेषण करने में एक मनुष्य कितना ही तत्पर तथा दत्तचित्त क्यों न हो, उसका मत अन्य सत्यान्वेषियों से भिन्न हो सकता है? ऐसी अवस्था में उचित मार्ग क्या है, इसका निश्चय कौन करेगा?

उत्तर—ऐसी स्थिति में उसी व्यक्ति को अपना निर्णय करना होगा।

प्रश्न—सत्य के विषय में तो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न धारणा हो सकती है। क्या इससे किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं मच सकती?

उत्तर—गड़बड़ी का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

प्रश्न—पर शुद्ध हृदय से सत्य की तलाश करना प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है।

उत्तर—इसीलिए तो अहिंसा की शर्त रखी गई थी। यदि यह न होती तो गड़बड़ी की सम्भावना थी।

प्रश्न—क्या इस बात की आवश्यकता नहीं है कि सत्याग्रह का व्रत लेनेवाला उच्च आदर्शपूर्ण, सदाचारी और पूर्ण पण्डित हो?

उत्तर—यह कोई आवश्यक नहीं। प्रत्येक व्यक्ति में इन गुणों का पाया जाना असम्भव नहीं तो नितान्त कठिन है। क ने यदि सत्य की कोई मीमांसा की है, जिस पर ख और ग को चलना है तो मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि ख और ग में भी वही योग्यता हो जो क में है।

प्रश्न—मेरे विचार से आपका अभिप्राय यह है कि प्रकृष्ट बुद्धिवाला मनुष्य किसी सिद्धान्त को स्थिर करता है और निकृष्ट बुद्धिवालों को उसे आंख मूंद-कर स्वीकार करना पड़ता है और उसी पर आचरण करना पड़ता है।

उत्तर—आपने गलत समझा है। मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है। मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि यदि कोई आदमी अपनी आत्मा की प्रेरणा के अनुसार स्वतन्त्र रूप से सत्य का अन्वेषण नहीं कर सकता तो उसे उस व्यक्ति की सहायता लेनी चाहिए जिसने सत्य का पालन किया है और उसका सिद्धान्त स्थिर किया है।

प्रश्न—पर आपके सिद्धान्त में तो यही बात देखने में आती है कि प्रखरबुद्धि और सदाचारी लोग सत्य की मीमांसा करें और जिन लोगों में यह योग्यता नहीं है कि वे अपनी बुद्धि से सत्य की जांच कर सकें या पता लगा सकें, वे आँख मूंदकर उसी सत्य का अनुकरण करें।

उत्तर—पर मैं उनसे उतना ही चाहता हूं जितना साधारण बुद्धि रखने वाला व्यक्ति कर सकता है।

— यं० इं०, ५।११।'१९]

२. सत्य ही साध्य है

मुझे तो सत्य के लिए जीना है और उसी के लिए मरना है। मैं चाहता हूं कि लोग और कुछ नहीं तो कम से कम सच्चे और प्रामाणिक बनें। जो आदर्श स्थिति मैं चाहता हूं उसे यदि सबसे स्वीकृत कराऊं, तो इससे दम्भ उत्पन्न होगा, प्रामाणिकता नहीं बढ़ेगी।

— न० जी०। मूल गुजराती। हि० न० जी०, १३।११।'२४]

३. सत्य में सौन्दर्य

मैं सत्य में या सत्य के द्वारा सौन्दर्य को देखता और पाता हूं। सभी सत्य, अर्थात्, न केवल सत्य विचार किन्तु जिनमें सत्य प्रतिबिम्बित होता हो ऐसी मुखाकृतियां, चित्र या गीत अति सुन्दर होते हैं। लोगों को आमतौर पर सत्य में सौन्दर्य नहीं दिखाई देता। साधारण मनुष्य उसके सौन्दर्य से दूर भागता है, वह उसे देख ही नहीं सकता। जब मनुष्य को सत्य में ही सौन्दर्य दिखाई देने लगेगा तब सच्ची कला जन्म लेगी।

इसके विपरीत सत्य ऐसे रूप में प्रकट हो सकता है, जो बाहर से बिल्कुल सुन्दर न हो। हमें बताया गया है कि सुकरात अपने जमाने का सबसे सच्चा आदमी था, क्योंकि उसका सारा जीवन सत्य का एक प्रयत्न था। और आपको याद होगा कि उसके भद्दे बाहरी रूप से फीडियस को उसके भीतरी सत्य के सौन्दर्य की क़द्र में बाधा नहीं हुई, यद्यपि एक कलाकार की तरह उसे बाह्य रूप में भी सौन्दर्य देखने का अभ्यास था।

सत्य और असत्य अक्सर साथ-साथ रहते हैं, भलाई और बुराई बहुधा एक-साथ पाई जाती है।

— यं० इं०, १३।११।'२४]

- **मैं सत्य में या सत्य के द्वारा सौन्दर्य को देखता हूं और पाता हूं।**
- **जब मनुष्य को सत्य में ही सौन्दर्य दिखाई देने लगेगा तब सच्ची कला जन्म लेगी।**
- **सत्य ऐसे रूप में प्रकट हो सकता है, जो बाहर से बिलकुल सुन्दर न हो।**
- **सत्य और असत्य अक्सर साथ-साथ रहते हैं, भलाई और बुराई बहुधा एक-साथ पाई जाती है।**

४. सत्य मूल है

सत्य ही मूल वस्तु है, पहले सत्य को पाना चाहिए। लेकिन सत्य शिव और सुन्दर होता है, अतः सत्य को प्राप्त कर लेने पर कल्याण, सौन्दर्य तुम्हें मिल ही जायंगे। ईसा ने अपने गिरि-प्रवचन में यही सिखाया है। ईसा को मैं महान कलाकार मानता हूं, क्योंकि उन्होंने सत्य की उपासना की, उसे ढूंढ़ा और अपने जीवन में प्रकट किया। इसी तरह मुहम्मद भी एक बड़े कलाकार थे—कुरान अरबी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचना है पण्डितजन ऐसा ही कहते हैं। दोनों ने पहिले सत्य की प्राप्ति का प्रयत्न किया, यही कारण है कि उनकी वाणियों में अभिव्यक्ति का सौन्दर्य अपने आप आ गया। लेकिन ईसा या मुहम्मद, किसी ने भी कला पर कुछ लिखा नहीं। ऐसे ही सत्य और सौन्दर्य की आकांक्षा मैं करता हूं। मैं उसी के लिए जी रहा हूं, और जरूरत हो तो अपने प्राण भी उसके लिए दे दूंगा।

— यं० इं० २०।११।'२४]

- **सत्य शिव और सुन्दर होता है, अतः सत्य को प्राप्त कर लेने पर कल्याण, सौन्दर्य तुम्हें मिल ही जायंगे।**

५. असत्य अस्थिर है

असत्य की नींव पर स्थित कोई बात अधिक समय तक नहीं टिक सकती।

— यं० इं०। हि० न० जी०, १६।७।'२५]

६. सत्य और मौन

मुझे अक्सर ख्याल होता है कि सत्य के शोधक को चुप रहना चाहिए।
— यं० इं०, ६।८।'२५]

७. सत्य की आवश्यकता

....बयान में सत्य की आवश्यकता है और उस पर विचार करते समय शुद्ध विचार, गम्भीरतापूर्ण निष्पक्ष निर्णय की आवश्यकता है। और इसके बाद यदि आवश्यक हो, तो हम आपसे धरती आकाश का मतभेद रख सकते हैं। किन्तु यदि हम सत्य की गहराई तक पहुंचने की और चाहे जिस स्थिति में उस पर डटे रहने का प्रयत्न न करेंगे तो निःसन्देह अपने धर्म, देश और राष्ट्रीय हित को क्षति पहुंचायेंगे। ....
— यं० इं०। हि० न० जी०, ९।९।'२६]

८. सत्य मार्ग की खोज

हम मृत्यु के बीच में रहते हुए टटोल-टटोलकर सत्य का मार्ग खोजने की कोशिश कर रहे हैं।
— यं० इं०, ७।७।'२७]

९. सत्य का अन्वेषक

मैं सदा ही सच्चे मतभेद का स्वागत करता हूं क्योंकि मैं सदा सत्य की ही खोज करता हूं। मेरा अन्य कोई अपना स्वार्थ नहीं होता।
— यं० इं०। हि० न० जी०, ६।१०।'२७]

१०. सत्य और असत्य

....असत्य को सत्य का रूप धारण करते देख हम सत्य से घृणा नहीं करने लगते। हम असत्य में से सत्य को ढूंढ़ निकालते हैं और उसे पकड़े रहते हैं।....
— यं० इं०। हि० न० जी०, ३।११।'२७]

११. सत्य का आग्रह

देखिए, इस्लाम के कितने आलोचकों ने उसी कुरान की धज्जियां उड़ा दी हैं, जिसके नाम पर वे करोड़ों मुसलमान मरते हैं। क्या वे आलोचक झूठे हैं? क्या वे सत्यशोधक नहीं हैं?

-- हि० न० जी०, १५।१२।'२७]

१२. सत्य और हिन्दूधर्म

महाभारत में कहा गया है कि तुला के एक पलड़े पर संसार के सभी दानपुण्य रख दिये जायं, और दूसरे पर केवल सत्य, तब भी सत्य का ही पलड़ा भारी रहेगा, और अन्य सभी दानपुण्यों राजसूय, अश्वमेध यज्ञों का पलड़ा नीचा रहेगा। अब यदि महाभारत को पञ्चमवेद माना जाय, तो मैं अवश्य कट्टर हिन्दू हूं क्योंकि मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में सत्य का ही अनुसरण करने का प्रयत्न करता हूं, इस मार्ग पर आने वाले त्यागों, कठिनाइयों की कभी चिन्ता नहीं करता।....

....अन्त में यह कहूंगा कि मानवजाति की समस्त कठिनाइयों का मैं दो उपायों के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं जानता। मैं उन उपायों की माला सदा जपता रहता हूं। वे हैं, सत्य बोलना और प्रत्येक स्थिति में अहिंसा का पालन करना। जिस प्रकार मैं यह जानता हूं कि मैं आपके सामने बैठा हूं, उसी प्रकार मुझे विश्वास है कि यदि मैं आपको इन दो चीजों का विश्वास दिला सकूं, तो आपकी प्रत्येक कठिनाई, उसी प्रकार उड़ जाय, जैसे हवा के समक्ष तिनका। और स्वयं भगवान आपके सामने प्रत्यक्ष होकर कहें कि तुम हिन्दुओं ने भला ही किया है।

— यं० इं०। हि० न० जी०, २२।१२।'२७]

- **मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में सत्य का ही अनुसरण करने का प्रयत्न करता हूँ।**

१३. न्यायालय और सत्य

दक्षिण अफ्रीका में, इंग्लैण्ड में बल्कि सभी जगह मैंने देखा है कि वकीलों को जाने अनजाने अपने मुवक्किलों के लिए झूठ बोलना पड़ता है। एक प्रसिद्ध अंग्रेज वकील ने तो यहां तक लिखा है कि अपने मुवक्किल का अपराध जानते हुए भी उसका बचाव करना वकील का धर्म है, कर्तव्य है। मेरा मत भिन्न है। वकील

का काम तो यह है कि वह जजों के समक्ष सच्ची बातें रख दे, सत्य की तह तक पहुंचने में सहायता करे। किन्तु अपराधी को निर्दोष सिद्ध करना उसका काम कभी नहीं।....

—- हि० न० जी०, २९।१२।'२७]

१४. सत्य की महिमा

....तराजू के एक पलड़े पर अपना सब ज्ञान, विद्वत्ता और कला रखिए और दूसरे पर सत्य तथा शील, तो आपको पता चलेगा कि सत्य और शीलवाला पलड़ा भारी है।

— न० जी०। हि० न० जी०, ७।३।'२९। शिकारपुर, सिन्ध में विद्यार्थियों के बीच किये गये प्रवचन का अंश।]

१५. विश्वशान्ति के लिए महान योगदान

....कांग्रेस ने सन् १९२० में शान्ति की ओर एक सशक्त क़दम उठाया जब कि उसने घोषित किया कि वह अपना लक्ष्य अर्थात् स्वराज्य, अहिंसा एवं सत्यपूर्ण तरीके से प्राप्त करेगी। और मुझे विश्वास है कि यदि हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इन साधनों पर दृढ़ रहे, तो विश्व-शान्ति के लिए सबसे बड़ा योगदान करेंगे।

—- यं० इं०, २१।३।'२९]

१६. दो सिद्धान्त

....कृपा कर याद रखिए कि कांग्रेस सत्य और अहिंसा-द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना चाहती है। जिस सीमा तक किसान इन दो मुख्य सिद्धान्तों के पालन में पीछे रहेंगे, उस सीमा तक कांग्रेस भी असफल होगी। आप लोग लाखों की संख्या में हैं। जब लाखों व्यक्ति झूठे और हिंसक बन जाते हैं, तो आत्मनाश निकट आ जाता है।

— हि० न० जी०, २८।५।३१]

१७. सत्य की प्रतिज्ञा

भारत की स्वतन्त्रता के लिए भी मैं झूठ का सहारा नहीं लूंगा फिर एक समझौते की स्वीकृति-जैसी तुच्छ बात का कहना ही क्या ?

— यं० इं०। हि० न० जी०, २०।८।'३१]

१८. सत्य-अहिंसा और आकुल संसार

....ऐसा लगता है कि संसार पाखण्ड और रक्त की नदियों से ऊब गया है। जहां देखिए उसे असत्य दिखाई देता है और वह स्वयं उसमें भाग लेकर भी दुखी होता है, इसलिए भारत-द्वारा किये गये अहिंसा और सत्य के दावे को स्वीकार कर आश्वस्त होता है।....

— न० जी०। हि० न० जी०, १।१०।'३१]

१९. सत्य में गोपनीयता नहीं

....सत्य गोपनीयता से घृणा करता है।

— यं० इं० २१।१२।'३१]

२०. सैनिक, अहिंसा और सत्य

[एक प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—क्या एक सैनिक के लिए हवा में गोली चलाना और इस तरह हिंसा से बच जाना उचित है ?

उत्तर—सेना में भर्ती हुए सैनिक का यह सोचकर तुष्ट होना कि हवा में गोली चलाकर हिंसा से बच गया, उसके साहस को अथवा उसकी अहिंसा-सम्बन्धी मान्यता को शोभा नहीं देता। मेरी मान्यताओं के अनुसार इस प्रकार का व्यक्ति असत्य और कायरता दोनों का दोषी माना जायगा—कायर इसलिए कि वह दण्ड

से बचने के लिए सेना में भर्ती हुआ और झूठा इसलिए कि वह सैनिक के रूप में फौज में भर्ती हुआ और उसने आशा के अनुरूप गोली नहीं चलाई।....

-- यं० इं०, ३१।१२।'३१]

२१. सत्य के पुजारी का स्वभाव

सत्य के पुजारी पर परिस्थिति का असर नहीं होना चाहिए। उसे तो परिस्थिति को भेद कर बाहर निकल जाना चाहिए। परिस्थिति के आधार पर बनी हुई राय बहुत बार गलत साबित होती है, ऐसा हम देखते हैं।

-- बापू के पत्र : कु० प्रेमाबहिन कण्टक के नाम, १७।६।'३२]

२२. सत्यार्थी का धर्म

सत्य की खोज में जो लोकाचार रुकावट डाले उसे तोड़ा जाय।

स्वयं किसी को बार-बार झूठा या आलसी पाया हो तो आगे भी उसके वैसा होने का सन्देह तो सत्यार्थी को भी होगा। परन्तु सत्यार्थी सन्देह होने पर भी आलसी पर, झूठे पर प्रेम रखेगा और उसे (सुधरने के) अवसर देता रहेगा।

-- बापू के पत्र : कु० प्रेमा बहिन कण्टक के नाम, १।५।'३३]

२३. सत्य पर अटल रहें

कुछ भी हो जाय, पर सत्य से न डिगो।

-- ह० से०, १६।३।'३४]

२४. मेरा धर्म

....सत्य के अनुकूल आचरण करना ही मैं अपना धर्म समझता हूं।

-- ह० से० ३।८।'३४]

२५. असत्य सदा रहेगा

....असत्य और दारिद्रय का पूरा-पूरा लोप तो न पहिले किसी समय हुआ और न भविष्य में होगा।

— बापू के पत्र कु० प्रेमाबहिन कण्टक के नाम, ३१।१२।'३४]

२६. सत्य अनिवार्य है

....यदि हमें व्यक्तियों, समाजों और राष्ट्रों में मानसिक अहिंसा का विकास करना है, तो सत्य कहना ही पड़ेगा, फिर क्षण भर के लिए वह कितना ही कड़वा और अप्रिय लगे।

— ह० ज०। ह० से०, १९।१२।'३६]

२७. स्वराज्य का अनिवार्य अंश

स्वराज्य का तीसरा भाग नैतिक या सामाजिक स्वतन्त्रता का है।... इसमें प्राचीनकाल से हमें जो नीति मिलती आई है वह है सत्य और अहिंसा की नीति।...अगर कोई यह कहे कि मैं तो सत्य को मानता हूं तो मैं उससे पूछूंगा कि तुम सत्य को मानते हो तो खुदा को क्यों नहीं? मैं तो कहता हूं कि यदि मैं सत्य को मानता हूं तो भगवान को भी मानता हूं। क्योंकि भगवान का नाम ही सत्यनारायण है। मेरा सत्य तो जीवित है, ऐसा जीवित कि जब संसार में सब मिट जायगा तब यही एक रहेगा। सिख सत श्री अकाल कहते हैं, गीता कहती है कि सत् का नाम लेकर सब काम आरम्भ करो, कुरान कहता है कि खुदा एक है। इस प्रकार सत को माननेवाले हम सब एक दूसरे का गला क्यों काटें?

— फ़ैजपुर में दिये गये भाषण से। ह० से०, ९।'१।'३७]

२८. ज्ञान की अनिवार्य कसौटी : सत्य

दुनिया भले ही मुझे कायर और मूर्ख कहे पर जिस बात को मै जीवन का आधार-भूत सत्य मानता हूं, उसे छोड़कर ज्ञानी पुरुष कहलाना कभी पसन्द नहीं करूंगा।

—ह० से० ९।'१।'३७]

२९. पातकों का मूल असत्य

. . . . मैं तो असत्य को सब पापों की जड़ मानता हूं।
—ह० से०, २७।२।'३७]

३०. सत्य का पालन बलात् नहीं

. . . . मैं ज़ोर-ज़बर्दस्ती से सत्य और अहिंसा का पालन नहीं करा सकता और इस तरह स्वराज्य भी प्राप्त नहीं हो सकता।
—ह० से०, २६।२।'३८]

३१. सत्य और असत्य से प्राप्त अधिकार

. . . . झूठ बोलने और मारपीट करने का अधिकार तो सबको है, लेकिन इस अधिकार का प्रयोग करने से प्रयोगकर्ता को और उसी प्रकार समाज को हानि पहुँचती है। लेकिन जो झूठ न बोलने अर्थात् सत्य का, और मारपीट न करने अर्थात् अहिंसा का धर्म पालन करता है, उसे मिली प्रतिष्ठा उसको बहुत-से अधिकार दिलवा देती है। . . . .
—ह० से०, १८।३।'३८]

३२. यौवन की शर्त

. . . . कोई भी व्यक्ति सदा ही युवक है, यदि वह सत्यरूप परमात्मा की अथवा सत्य, जो कि परमात्मा है, की अभिव्यक्ति को अनुभव करता है। . . . .
—ह० ज०। ह० से०, १।४।'३८]

३३. समस्याओं के सन्दर्भ में सत्य

मेरा उद्देश्य किसी प्रश्न के सन्दर्भ में अपने पुराने, वक्तव्य पर दृढ़ रहना नहीं, बल्कि सत्य पर जैसा वह मुझे किसी क्षण प्रतीत हो, आरूढ़ रहना है।
—ह० ज०, ३०।९।' ३९]

३४. सत्य का पालन : प्रमुख कर्त्तव्य

[एक मुस्लिम मित्र के पत्र के उत्तर में लिखे गये लेख से]

....मुझे यह देख कर खुशी हुई है कि पत्र-लेखक इस बात से सहमत है कि पवित्र कुरान भी सत्य और अहिंसा की शिक्षा देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परमात्मा ने हमें जो प्रकाश दिया है, उसके अनुसार इन सिद्धान्तों को अमल में लाना उक्त पत्र-लेखक का और हममें से प्रत्येक का अपना काम है।

— सेवाग्राम, २१।१०।'३९। ह० ज०। ह० से०, २८।१०।'३९]

३५. आज़ादी की शर्त

....जहां तक मैं देख सकता हूं, सत्य और अहिंसा का कड़ाई के साथ पालन किये बिना, हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।

— सेवाग्राम २४।१०।'३९। ह० ज०। ह० से०, २८।१०।'३९]

३६. सत्य, अहिंसा और काँग्रेस

कांग्रेस जबतक अपने सत्य और अहिंसा के ध्येय के प्रति सच्ची रहेगी, तबतक उसका काम कायम रहेगा।

— सेवाग्राम २४।१०।'३९। ह० ज०। ह० से०, ११।११।'३९]

३७. क्या भारत में सत्य का अभाव है ?

[इलाहाबाद अपील कोर्ट के दो अंग्रेज जजों ने एक अपील को स्वीकार करते हुए फ़ैसले में यह कहा—'मामला असन्तोषजनक है, क्योंकि हमारे सामने कम से कम पाँच व्यक्ति ऐसे थे कि यदि उनकी गवाही पर विश्वास किया जाय तो वास्तव में चश्मदीद गवाह थे। किन्तु इस देश में सत्य को जितना कम महत्व दिया जाता है, उसे ध्यान में रखते हुए हमें गम्भीरतापूर्वक यह सोचना होगा कि उनपर विश्वास करना चाहिए या नहीं।'

न्यायधीशों के उक्त कथन की आलोचना करते हुए गांधी जी ने ये विचार व्यक्त किये —संपा०]

....इसका आशय यह है कि दूसरे देशों में सत्य को अधिक महत्व दिया जाता है। अगर यह बात सर्वसम्मत होती, तो सम्भवतः जज महोदयों के लिए उस पर इस प्रकार कानूनी विचार करना उचित होता। लेकिन न केवल ऐसी किसी सर्व-सम्मत बात का अभाव है, बल्कि अनुभवी दर्शकों ने यह स्वीकार किया है कि अन्य किसी भी देश की अपेक्षा इस देश में कुल मिलाकर सत्य को अधिक महत्व दिया जाता है।....

—ह० ज०। ह० से०, २०।४।'४०]

- **अन्य किसी देश की अपेक्षा इस देश में कुल मिलाकर सत्य को अधिक महत्व दिया जाता है।**

३८. सत्य और स्वराज्य

अपने विचार को सही और सत्य बनाओ और तब तुम स्वराज्य की ओर तीव्र गति से बढ़ोगे चाहे समस्त संसार ही तुम्हारा विरोधी क्यों न हो।

—ह० ज०, २९।९।'४०]

३९. असत्य का परिहार

असत्य केवल सत्य से, क्रोध प्रेम से और हिंसा अहिंसा से शान्त होती है।

— सेवाग्राम, २५।१।'४२। ह० ज०। ह० से०, ८।२।'४२]

४०. सत्य की शक्ति

....स्वतन्त्रता और सत्य को सदा के लिए दबाया नहीं जा सकता।

— सेवाग्राम, ४।५।'४२। ह० से०, १०।५।'४२]

४१. असत्य का वातावरण

....हिन्दुस्तान के जीवन में आज असत्य का जो वायुमण्डल फैल गया है, उससे दम घुटता है।

— बम्बई, ११।५।'४२। ह० ज०। ह० से० १७।५।'४२]

४२. सत्य का आग्रह

....सत्य के आग्रह के अतिरिक्त मेरे अन्दर कोई शक्ति नहीं। अहिंसा भी उसी आग्रह से निकलती है। स्वतन्त्र सत्य को जाननेवाला ईश्वर ही है अथवा यों कहें कि सत्य ही ईश्वर है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि मुझमें स्वतन्त्र सत्य है।....

— उरूली, ३०।३।'४६। 'नेताजी जिन्दा हैं?' लेख का अंश। ह० से०, ७।४।'४६]

४३. क्या किसी भी हालत में झूठ बोलना ठीक है?

[प्रश्नोत्तर]

प्रश्न—मशहूर अंग्रेज लेखक मि० बरट्रेंड रसेल के नीचे लिखे बयान के बारे में आपकी क्या राय है। एक दफा देहात की तरफ घूमते हुए मैंने देखा कि एक थकी हुई लोमड़ी लस्त-पस्त होने की हालत में भी ज़बरदस्ती दौड़ी चली जा रही थी। इसके कुछ ही मिनट बाद मुझे शिकारियों की एक टोली दिखाई पड़ गई। उन्होंने मुझसे पूछा, 'क्या आपने लोमड़ी देखी है?' और मैंने कहा, 'हां, देखी है।' उन्होंने फिर पूछा, 'किधर गई है?' और मैं उनसे झूठ बोल गया। मैं नहीं समझता कि उनसे सच बात कहकर मैं ज्यादा भला आदमी बन गया होता।

उत्तर—मि० बरट्रेंड रसेल एक बड़े लेखक और फिलासफ़र हैं। उनकी पूरी-पूरी इज्ज़त करते हुए भी मुझे ऊपर दी गई उनकी राय से अपनी नाइत्तिफ़ाक़ी ज़ाहिर करनी चाहिए। शुरू में ही उन्होंने यह कहकर ग़लती की कि उन्होंने लोमड़ी देखी है। पहिले सवाल का जवाब देना उनके लिए लाज़मी नहीं था। अगर वह शिकारियों को जानबूझ कर ग़लत रास्ते चढ़ाना नहीं चाहते थे तो वे दूसरे सवाल का जवाब देने से भी इन्कार कर सकते थे। मैं सदा से यह मानता और कहता आया हूं कि हमसे पूछे जानेवाले सब सवालों का जवाब देना हमेशा ही लाज़िमी नहीं होता। सच बात कहने में अपवाद की कोई गुंजाइश नहीं।

— मसूरी, ३१।५।'४६। ह० ज०। ह० से०, ९।६।'४६]

● **सच बात कहने में अपवाद की कोई गुंजाइश नहीं।**

४४. मेरी महानता का रहस्य

अगर आज मैं महात्मा बना हूँ तो इसलिए नहीं कि अँग्रेजी का बैरिस्टर हूं, पर इसलिए कि मैंने सेवा की है और वह सेवा सत्य और अहिंसा के द्वारा की है। इस सत्य और अहिंसा की पूजा में जो थोड़ी-सी सफलता मुझे मिलती चली गई उसी के कारण आज मेरी थोड़ी-बहुत पूछ है।

–– प्रार्थना-प्रवचन, पहिला खण्ड, पृष्ठ १२५। ५।६।'४७। स० सा० मं० द्वारा प्रकाशित]

४५. सनातन सत्य

मेरा एक दोस्त है। उसको मैं गाली देता हूँ तो वह मुझको दो गाली दे यह ठीक है। वह गाली देता है, उसे सहन कर लिया, तो वह कहाँ तक गाली देगा? मारता है उसे भी मैं सहन कर लेता हूँ, मैं उसके मुक्के के जवाब में मुक्का नहीं मारता हूं। तब पीछे क्या होता है, आपने देखा है? मैंने तो देखा है कि कोई आदमी इस तरह हवा में मुक्का मारता है तो उसके हाथ टूट जाते हैं। जो बाक्सिंग करता है, वह भी रुई के मोटे तने हुए गद्दे-सी चीज़ पर मुक्का चलाता है। इस तरह उसको कुछ लज्ज़त आती है। लेकिन अगर बाक्सर कोई चीज़ सामने नहीं रखता तो वह निकम्मा बन जाता है और कुछ नहीं कर सकता। मैंने तो आपको सनातन सत्य बतला दिया। मैं उस पर अकेला कायम हूं। लोग तो आज उस पर नहीं चल रहे हैं। मैं अन्त तक उस सत्य पथ पर चल सकूंगा या नहीं, यह तो ईश्वर ही जानता है।

— प्रार्थना-प्रवचन, प्रथम खण्ड। पृष्ठ ३३३-३३४। २१।९।'४७। स० सा० मं० द्वारा प्रकाशित]

४६. नई तालीम और सत्य-अहिंसा

नई तालीम के शिक्षक सत्य और अहिंसा को पूरी तरह माननेवाले हों, तभी वे सफलता पा सकेंगे।

— प्रार्थना-प्रवचन, दूसरा खण्ड, पृष्ठ २०४। १४।१२।'४७]

४७. शुद्ध सत्य

....मैं कहता हूं कि जब तक तू साफ नहीं हुई है, तुझे कामयाबी नहीं होगी। इसमें शुद्ध सत्य है।

— बापू के पत्र : बीबी अमतुस्सलाम के नाम, पृष्ठ २०४]

४८. झूठ

....जब आदमी एक कहता है और दूसरा करता है, (तो) उसे मैं झूठ कहता हूं।

— बापू के पत्र : बीबी अमतुस्सलाम के नाम, संख्या १७२, पृष्ठ १५१]

४९. सत्य-साधना के लिए मौन की उपयोगिता

अनुभव ने मुझे सिखाया है कि सत्य के पुजारी के लिए मौन उसके आध्यात्मिक अनुशासन का एक अंग है। जाने-अनजाने बढ़ा-चढ़ाकर कहने की, सत्य को दबा देने की या कम-ज्यादा कर देने की वृत्ति मनुष्य की स्वाभाविक कमजोरी है और मौन उसपर विजय प्राप्त करने के लिए जरूरी है।

— आत्मकथा (अंग्रेजी), १९४८, पृष्ठ ८४]

५०. सत्यवादी मितभाषी होता है

अनुभव ने मुझे यह भी सिखाया है कि सत्य के पुजारी के लिए मौन का सेवन इष्ट है। मनुष्य-जाने-अनजाने भी प्रायः अतिशयोक्ति करता है, अथवा जो कहने योग्य है उसे छिपाता है, या दूसरे ढंग से कहता है। ऐसे संकटों से बचने के लिए भी मितभाषी होना आवश्यक है। कम बोलनेवाला मनुष्य बिना विचारे नहीं बोलेगा; वह अपने प्रत्येक शब्द को तोलेगा।

— आत्मकथा, पृष्ठ ५४, १९५७]

५१. सत्य और अपराध-स्वीकृति

जो मनुष्य अधिकारी के सम्मुख स्वेच्छा से और निष्कपट भाव से अपना अपराध स्वीकार कर लेता है, और फिर कभी वैसा अपराध न करने की प्रतिज्ञा करता है वह शुद्धतम प्रायश्चित्त करता है।

— आत्मकथा, पृष्ठ २२-२३, १९५७ संस्करण]



सांकेतिका

[अहिंसा]

अ

अंग्रेज (अंग्रेज़ों) २१२, २२६, २२७, २३१, २३८, २५२, २८६, २८८, २९५, ३९५, ४१३, ४१७, ४२७, ४२९, ४३०, ४३३, ४३४, ४३८, ४४१, ४४८, ४४९, ४५१, ४७२, ४७५, ४७९, ४८४, ४८९, ४९४, ५०८, ५१०, ५२०, ५७६, ५७७, ५८७, ५९१, –शान्तिवादियों ३९१, –सल्तनत ४४०

अंग्रेजी राज्य २२७, –सल्तनत २८३, –सेना ४३३, –हुकूमत ५७६

अखण्डभारत आन्दोलन ५२१

अगस्त की क्रान्ति ५०२

अणुगोले ४४९

अणुबम १२९, १३४, ४४९, ४५०

अण्डमन ४८९

अधर्म ३४६

अधिनायक ४०३, –वाद ४१२, –शक्तियां ४१२

अधिनायकत्व ३९४, ४०४

अधिनायकों ३९६

अध्यात्म २८०, –विज्ञान ६४

अनशन २२४, ३५०, ४९८

अनासक्ति ५१४, अनासक्ति १९२, –और अहिंसा ११९

अनासक्तियोग ६६, ११९

अनिवार्य हिंसा ३०४, ३०७, ३०८, ३७८, –अहिंसा नहीं है २५, –वध ३२९

अनुदारता २४५, –अनुदार अनुमान लगाने से अहिंसा भंग २४५

अन्तरात्मा ३९७

अन्तर्राष्ट्रीय २१७, ४०५, –अन्धाधुन्धी ४०५, –पादरी सम्मेलन ३९९

अपराधियों का नियन्त्रण, दण्ड नहीं सुधार हेतु २१

अपरिग्रह २६८, –अपरिग्रही २६३

अपरिवर्तनवादियों ५२८

अफ्रीका ४४७, ५५०, ५९४, –अफ्रीकन २७३

अबीसीनिया ९९, ३९०, –अबीसीनियन १९४, –अबीसीनियनों १९४, –अबीसीनियाई ३९०

अब्दुलगफ्फारखां २६७

अभद्र अवज्ञाकारी ८९

अमन २६७

अमरीकन (अमरीकियों, अमरीकी) ४०४, ४४१, ४५०

अमरीका १२९, १३०, १३७, २१७, ३८७, ४००, ४०३, ४२५, ४३८, ४४१

अमृतबाजार पत्रिका १८७, १८८

अमृतसर ३४७

अम्बरीष राजा ७

अम्बालाल सेठ ३१३, ३२४

अम्बेदकर ३७४

अरब ५७२, –अरब सागर ५२७

अराजक समाज ५७९

अराजकता १२२, १२३, २२२, २२५, २३१, २३३, २३८, ४१७, ४१८, ४४२, ४८८, ४९६, ४९७, ५१३, ५२०, ५८१, ५८२

अरुणा आसफ अली ५०६

अर्जुन १७, २४, ५९, ६२, ६३, ६६, ११९, १६८, ४७३, ४७४, ४७८
अर्थशास्त्र ३०२
अलीगढ़ ३७९
अलीबन्धु ७४
अल्पस्य हेतोर्बहुहातु मिच्छन ३६६
अल्पारम्भ ३२९
अल्मोड़ा ३३९
अल्लाह २०९, २७९, २९२
अवतार ११५
अशन ३५०
अशान्ति २६७
अशोक २८०, २८१
असत्य १२८, १६७, १७१, २१२, २२२, २४२, ५२२, ५४०, –और हिंसा का फल स्थायी कल्याण नहीं १४
असत्याग्रही ८९
असहयोग ९०, १४६, १५०, १५४, १५६, १५९, १६०, २०१, २३७, २३९, २६९, ३८५, ३८६, ४१८, ४३१, ४८८, ५५५, ५५६
असहिष्णुता २०९, २५०, –हिंसा है २०९
अ० सो० बाडिया १९०
अस्पृश्यता १८४, –निवारण ३८४
अहमदाबाद २०३, २८४, ३०८, ३११, ३१३, ३२४, ५३७
अहिंसक ३९, १३८, १५९, १८७, १८९, १९०, १९५, १९९, २००, २०४, २०५, २०७, २१६, २२५, २३०, २३१, २३३, २३४, २३५, २४०, २४१, २४४, २४७, २५१, २५४, २५८, २६०, २६५, २६७, २७३, २८१, २८२, २९६, ३०३, ३११, ३१८, ३२२, ३४४, ३५३, ३५५, ३६४, ३९१, ४१८, ४२४, ४२७, ४३२, ४४०, ४४२, ४९१, ४९७, ५३३, ५३४, ५४३, ५५२, ५५६, ५५७, ५६३, ५७३, ५७५, ५८१, ६०१, –असहयोग २३७, ४४०, ५६१, –आचरण २२८, २७३, –आन्दोलन ४८२, –इलाज २३०, –उपचार, २३५, –उपाय २९५, ३२३, ५५४, –और हिंसक –प्रतिकार ४३३, –और हिंसक –प्रतिरोध ५६८, –कांग्रेस २५७, –को शस्त्र न उठाना चाहिए २७०, –जीवन सम्भव नहीं ५७, –तरीका २९१, २९६, –दल २४४, २७८, –नीति २३४, –प्रणाली १८२, २४०, –प्रतिकार ४३२, ४३३, ४४३, –बनें ४७९, –बल २३३, २४०, ४३३, –बचाव २९६, –बचाव की व्याख्या १२९, –बर्ताव २३७, –बहादुरी ,५०३, –मनुष्य २३०, –युद्ध १८८, २२५, २६७, ४३२, ४३६, ५८७, –रक्षा ४९६, –राज्य २६३, २७७, –रीति २८३, ४४४, ५१७, ५६०, ५६१, –लड़ाई २७५, २९६, ४३३, –वाणी ५६, –वाणी और पादरी प्रसंग १९१, –विरोध १३८, ४३२, –वीरता ४३६, –वृत्ति १८६, –व्यवहार ४६, २२९, २६६, ५५६, –शासन २५४, –शक्ति ४२६, ४४४, ४९६, ५७१, –शस्त्र २६९, –शान्ति सेना २१३, –शिक्षक ५५४, –संगठन २७५, –सत्य ५३, –समाज १०२, ५८३, –सामना २६४, –सिपाही २६७, ५०६, ५२९, –सेना १८३, १९९, २३९, २५८, २८२, ५६४, ५९२, –सेनापति १८८, –सेवादल २८३, –सैनिक ५३१, –सैन्य ५९१, –हलचलों ४४१, –हिन्दुस्तान ५१७
अहिंसा ७७, १९६, २००, २०१, २०२, २०६, २०९, २१०, २१७, २२१, २२२, २२७, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३८, २३९,

२४०, २५१, २५२, २५३, २५५, २५७, २५९, २६२, २६३, २७०, २७६, २८०, २८१, २८२, २९२, २९३, २९४, २९६, ३०२, ३०३, ३०४, ३१५, ३१८, ३२१, ३२२, ३२६, ३२७, ३३०, ३३१, ३३६, ३३९, ३४२, ३४३, ३४५, ३५३, ३५४, ३७०, ३७१, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३८५, ३८६, ३९१, ४३५, ४३७, ४३८, ४४०, ४४१, ४५०, ४५१, ४७५, ४७६, ४८१, ४८४, ४८६, ४८८, ४८९, ४९१, ४९६, ४९७, ५००, ५०२, ५०६, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१६, ५१७, ५१८, ५२१, ५२२, ५२३, ५२७, ५२९, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४९, ५५१, ५५२, ५५४, ५५५, ५६१, ५६३, ५६४, ५६७, ५६८, ५६९, ५७१, ५७३, ५७८, ५७९, ५८०, ५८३, ५८५, ५८८, ५८९, ५९१, ५९२, ५९३, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४

अहिंसा-अखण्ड २५७, –अचूक होती है १३९, –अजेय है ११८, –अदृश्य है १९५, –अद्वितीय शक्ति ८२, –अधिक प्रबल हिंसा से शान्त नहीं होती १३३, –अनुभवी की सम्पत्ति १४०, –अपंग नहीं १३०, –अपंग रही है २४१, –अपने आप काम करती है २३०, –अपूर्ण का चिन्ह २५४, –और अराजकता २३८, –अर्थात् हृदय परिवर्तन २७५, –अव्यर्थ १४१, –असहयोग हिंसा २३७, –असिधारा ५७, –असीम १५८, –अस्तित्व का सर्वोच्च नियम १९६, –अस्त्र से भविष्य उज्जवल है १९३, –अहर्निश २२०, –का आचरण २७३, –आत्म-बलिदान २६६, –आत्महीन के लिए नहीं १४१, –आत्मा का गुण है ४७०, –आत्मा का धर्म-भारत भूमि के अनुकूल १५, –आत्मा का स्वभाव है २२८, –आत्मा की कला ७९, –आत्मा में ओत प्रोत २५१ –ईश प्रार्थना से ही सम्भव ८२, –उच्चतम भावना ३७२, –ऊंचा धर्म है ३७७, –एक खाली पोल २२३, –एक ट्रस्ट ५३१, –एक नीति मात्र २३४, –एक मात्र साधन १३६, –एक मानसिक स्थिति ३०२, –एवं उपवास १२४, –एवं दुर्बलता ५८८, –एवं सतीत्व १२५, –और आग जलाना ३०९, –और उन्नति से अर्जित द्रव्य २६९, –और उसके फलितार्थ २२५, –और कीटाणु नाश ३०९, –और कुत्ता-प्रकरण ३०८, –और कृषिकर्म ३०५, –और खिलाफत १४६, १४७, –और जीवदया (कुत्ता प्रकरण) ३११, ३१३, ३१९, ३२६, ३३०, –और जीव वध ३१६, –और जीव हिंसा ३२३, –और तिरस्कार विरोधी हैं १२, –और दंगे का समय २७८, –और दण्ड ५२९, –और दया का भेद ४३, –और नैल का पुतला १६६, –और पाशवी शक्ति १६२, –और प्रजातन्त्र १३४, –और प्रेम १०, –और बछड़ा प्रकरण १९६, –और बालिका की प्रतिष्ठा-रक्षा ८, –और मतभेद १३०, –और मूर्ति रक्षा १७६, –और यम नियम ५६, –और लोकतन्त्र १३३, –और शक्ति २११, –और श्रद्धा ४६, –और सतीत्व रक्षा २७०, –और सत्य अनिवार्य है ४७, –और सत्य अविनाशी है १०२, –और सत्य आचरण २४२, –और सत्य एक ही सिक्के के पहलू ५२, –और सत्य का जन्म १४९, –और सत्य का सम्बन्ध ४९, –और

सत्य की राह ४७, –और सत्य के सिवा धर्म नहीं १७५, –और सत्य दो प्राण हैं ३०९, –और सत्य पर दृढ़ रहें १६८, –और सत्यमय वचन ५७, –और सत्य, राष्ट्रोन्नति के लिए ५४, –और सत्य लुप्त है १३०, –और सत्य शान्ति का मूल १७१, –और सत्य सब धर्मों का समकोण २६, –और सत्य से मुक्ति ५०, –और सत्य से स्वराज्य ८३, –और साम्प्रदायिक वैमनस्य १३२, –और हिंसक की हिंसा २२०, –और हिंसक प्रतिरोध २६१, –और हिंसा २२१, २०४, –कंगाल की कामधेनु १५, –का अधिपत्य २३५, –का अर्थ २१६, ३४५, ३५५, ३८३, ३१६, –का अर्थ अल्पमत की बात मानना १८२; –का अर्थ औरों को कष्ट न देना २०, –का अर्थ घृणा से विरति नहीं प्रेम का प्रसार ११, –का अर्थ जगत् के प्रति नम्र होना १८६, –का अर्थ व्यापक है ६०, –का अर्थशास्त्र ५५, –का अस्तित्व २२०, –का आचरण ऐसा हो १६०, –का आधार २२६, –का आरम्भ २६७, –का आवरण २१२, –का आश्रय ५५७, –का आश्रय सब ले सकते ६९, –का इतिहास १९७, –का उपदेश २९५, ५६९, –का उपासक २०८, –का उलझन भरा सवाल ३६९, –का एक कर्त्तव्य ५४२, –का एक ही दुष्परिणाम ४३७, –का ऐतिहासिक प्रमाण ११४, –का कानून २८५, –का काम २१८, –कामचलाऊ नहीं २१५, –का चित्रण ३९८, –का चोला २२५, –का चौथा क्षेत्र २४३, –का झण्डा २५१, –का ठीका ३१५, –का तत्व-दर्शन ८५, –का तरीका ४३४, ४९३, –का दावा २२४, २२७, २४०, ४२४, –का दिवाला नहीं १०९, –का दिवाला नहीं निकल सकता २९०, –का दृष्टिकोण २३०, –का धर्म हिंसा करके भी आश्रित रक्षा १५७, –का ध्येय ३८८, –का नित्य, सतत, पदार्थपाठ ३४४, –का नियम २६६, –का नुस्खा ३९८, –का पक्षपाती ३३०, –का नैसर्गिक परिणाम सत्य १२८, –का परिचय ४३३, –का परिणाम ४३६, –का परिणाम तिरस्कार नहीं २२०, –का पाठ २१५, ५४९, –का पालन २१९, २२६, २४४, २७०, ३२६, ३८७, ३९७, ५६७, ५८९, ५९९, –का पालन करने वाला हिंसक हो सकता है ३९, –का पालन किस तरह ३६०, –का पुजारी ३७७, ५९२, –का पूर्ण प्रदर्शन ५४८, –का पैगाम ५५५, –का प्रचलन ५६६, –का प्रचार ४५०, ५५५, –का प्रचार नहीं किया जा सकता १९५, –का प्रतीक २१९, –का प्रयोग २३५, २४७, २७१, २९२, ४२०, ४२१, ४२३, ५०४, ५४५, ५५९, ५६४, ५७८, –की प्रयोगशाला २४७, –का बर्ताव २१६, –का बैरी क्रोध ३१०, –का भंग २६१, –का भाव ३३७, ३७२, –का मन्त्र २७७, –का मर्म ५३७, –का महत्व १९६, –का मार्ग २२३, २५३, ३१७, ३२३, ३९४, ४४०, ४४९, ४७९, ५२९, ५३९, –का मार्ग हिंसा-मार्ग से श्रेष्ठ है २०९, –का मिथ्या होना असम्भव है १९८, –कायर का शस्त्र नहीं २२०, –कायरता की ओर नहीं १६०, –कायरता की विरोधी है ४५, –कायरता नहीं १७४, –कायर नहीं बनाती ९८, –कायिक ७३, २२५, –का रहस्य २७६, –का रहस्य अत्यन्त गूढ़ है ३८६, –कार्यक्रम ४८५, –का राज्य २३३, –का रास्ता २१५, २८४,

५७४, –का रास्ता पक्का और छोटा १७४, –का रूप २१५, –का लक्षण २२०,–का वाह्यचिह्न १८४, –का विज्ञान ३९६, –का विज्ञान और प्रयोग १३९, –का विशेषज्ञ ५९३, –का विस्तार ४३३, –का व्यवहार ४४, २१४, ५७८, –का व्रतधारी वल प्रयोग नहीं करेगा १४८, –का शास्त्र लिखना असम्भव १२५, –का संकुचित रूप ४७५, –का सच्चा बल ५७९, –का सच्चा क्षेत्र ३७३, –का सन्देश १९७, २३५, २९२, ५५९, –का सफल प्रयोग २३९, –का सम्पूर्ण पालन २६८, –समाज का आधार २६८, –का सरल पाठ ५९१, –का सवाल ३०१,–का सहारा २७७, २८९, –का साधक ४२१, –का सामुदायिक प्रयोग ५५५, –का सिद्धान्त मिथ्या नहीं ५७, –का सूर्य १७९, –का सेवन २०५, –का सैनिक ५१७, –का स्वभाव १०१, –का हथियार २९१, –क्रान्ति के समक्ष ९९, –किस तरह काम करती है २८५, –की अग्निपरीक्षा ७२, २१८, –की अपूर्णता २४७, –की आड़ २८६, –की आत्मा ५९२, –की आवश्यक शर्त्त २८५ –की आशा १४५, –की उच्चता १९४, –की उत्सर्ग-शक्ति ४२, –की एक सूक्ष्म दृष्टि ३०१, –की कब्र ५१०, –की कला १९६, २३०, –की कल्पना ५५६, –की कसौटी ३६६, –की कोई मर्यादा नहीं २६, –की खुशबू ५२२, ५२३, ५२४, –की खूबी ५४९, –की गंगा १७५, –की गम्भीर पहेली ३२४, –की गुत्थियां १६३, –की जय निश्चित ही है ५१४, –की तराजू २२५, –की दूसरी संज्ञा ३१५, –की दृष्टि ३०१, ३१६, ३२४, ३६८, ३७१, ३८५, ४००, –की दृष्टि से अनुचित २४५,

–की दृष्टि से चोर को मारना १८२, –की दृष्टि से दोष ३६९, –की दृष्टि से रेशम, व्याघ्र चर्म आदि का त्याग ३८, –की नयी शक्ति २३५, –की निशानी २८४,–की नीति ४१८, ४२१, –की परीक्षा १३४, ३५१, –की परीक्षा का आधार ३४८, –की पृष्ठभूमि २२२, –की प्रतिज्ञा २०८, ४१७, –की प्रतिज्ञा और व्याख्या ४, –की प्रवृत्ति २०३, –की प्रशंसा २८८, –की बारह खड़ी २४४, –की भव्यता को नीचे न उतारें १२७, –की भावना २८७, –की भाषा २२०, –की माप ३५४, –की मर्यादा २५३, –की योजना में जबर्दस्ती नहीं ७५, –की रक्षा ३५४, –की लड़ाई २८८, ५८७, ५९१, –की वाणी २१४, –की विजय ३८९, –की वृत्ति ५३२, –की शक्ति १९५, २३५, ५०३, ५२०, –की शक्ति का माप नहीं ११०, –की शक्ति को बुद्धि से जानें १२७, –की शक्ति प्राकृतिक शक्ति से श्रेष्ठ ५२, –की शक्ति में विश्वास २३५, –की शिक्षा १२७, २२१, २८३, ४९६, ५२०, ५९४, –की शिक्षा के लिए दूसरी आवश्यक वस्तु २०९, –की शिक्षा में मरना सीखना पड़ता है ११७, –की सच्ची परीक्षा २२९, –की सदा जय १४, –की सफलता की शर्तें ६०, –की साधना २२१, २८७, –की सिद्धि ५८३, –की सीमा १३९, –की सीमा का उल्लंघन ६०४, –की सेना २४४, –के अनुयायी हैं २४४, –के अनुसार हिंसा भी उचित १६०, –के आदर्श ३०६, ५०१, –के आदर्श के अनुसार अश्रुगैस २३०, –के आधार पर व्यवस्था रची जा सकती है २२८, –के आधार पर स्वराज्य २६६, –के उपाय ५६२,

—के उपासक का कर्त्तव्य ३५९, —के क्षेत्र ३५१, ५२८, —के क्षेत्र से त्यागपत्र ३५१, —के देवता ५५५, —के द्वारा हिंसा का सामना ५६९, —के द्वारा ही मनुष्य जाति सर्वश्रेष्ठ श्रेय पर पहुंचेगी २२, —के ध्येय २२८, —के नाम पर जेल ५५७, —के नाम पर हिंसा ३०९, ३७९, —के नियम २१७, —के नियमानुसार समाज का निर्माण २१६, —के निष्फल होने पर मृत्यु ही विराम १४, —के पुजारी २८९, —के पूर्ण पालन में जीवन की स्थिति असम्भव १८, —के प्रति वचनबद्ध २०२, —के प्रयोग का एक क्षेत्र २३८, —के प्रयोग में कल्पित प्रश्न की गुंजाइश नहीं ९४, —के फलस्वरूप शत्रु की दुर्दशा १९७, —के बिना देश बरबाद हो जायगा ५८८, —के बिना भारत या विश्व को शान्ति नहीं २५, —के मुख्य फलितार्थ २१८, —के मूल का अन्वेषण ३१७, —के रसायन ४४७, —के लक्षण ५९०, —केवल नीति या व्यवहार ५७८, —के विराट रूप को समझें ३०३, —के व्रतधारी हेतु हिंसा अविहित १४८, —के शिक्षण में शस्त्र की आवश्यकता नहीं ११७, —के समक्ष वैरत्याग १४०, —के सम्बन्ध में समझौता २२३, —के साथ ज्ञानपूर्वक दया हो ४४, —के सिवा कोई साधन नहीं ४१८, —के सिवा धर्म नहीं १४, —के सैनिक २२३, —कैसे चल सकती है ४३५, —को तिलांजलि ५९०, —को त्याग कर स्वतन्त्रता नहीं ५३, —को पहिचानने में महाविघ्न रूप ३५२, —को स्थायी बनाना है २०७, —क्रियात्मक १९५, —क्रियात्मक रूप में ५९८, —क्रियात्मक शक्ति १९४, —क्रियाहीन ४४, —क्षत्रिय-धर्म की परिसीमा १५, —ख़मीर-सी व्याप्त ८१, —खत्म हो गई २४८, —चित्त की वृत्ति और तज्जात कर्म २०, —चुम्बक है १३६, —चोर, डाकू विदेशी के समक्ष नहीं १५४, —जगद्व्यापी ३६०, —जनित प्रेम का अर्थ पापी के साथ असहयोग ११, —जाग्रत आत्मा का गुण विशेष है ३३०, —जिह्वा तक ही सीमित थी २५६, —जीवन का नियम २१७, —जीवन्त विश्वास २०३, —जीवहत्या मात्र में सीमित नहीं १८०, —ज्योति से सत्य-दर्शन १५, —ज्ञान केवल ईश्वर को है २६१, —ज्ञानयुक्त २४, —तत्व १५८, १५९, १५४, —तीस कोटि भारतवासियों में घर कर गई है ५१, —तेजतत्व निर्मित १६५, —दुःखी का आश्रय १५, —दुर्बल की अहिंसा नहीं है २३९, —दृष्टि ३४४, ३५७, —दैवी शक्ति ५६३, —द्वारा राज्य संचालन २५६, —द्वारा स्वतन्त्रता २२२, —द्वारा ही जगत में कीर्तिमान ४३४, —द्वेष के समक्ष ५३, —धर्म १००, १५१, १५२, २४२, २८७, ३०६, ३१५, ३१७, ३२३, ३२९, ३३२, ३४३, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८ ३५०, ३५३, ३५८, ५२८, ५३६, ५९७, —धर्म अव्यभिचारी १५२, —धर्म के रूप में स्वीकार करनी होगी २६६, —धर्म केवल ऋषियों के लिए नहीं ९८, —धर्म है २३४, —धर्मी ३२५, ३४८, ४६५, —धीरज और त्याग की आशा रखती है २७७, —ध्येय ३९४, —नहीं कायरता है २२९, —नामर्दी से पैदा होनेवाले अहिंसात्मक व्यवहार के रूप में रही है २२७, —निरस्त्रीकरण ही नहीं ८२, —निर्बल नहीं बलवान का अस्त्र १७७, —निषेध वाचक ४४, —निषेधात्मक है ३१, —निष्क्रिय नहीं ७९, —निष्क्रिय

वृत्ति नहीं ३९९, –नीति १९९, ५६१, –नीति नहीं धर्म १३८, –नीति या धर्म ४०, –पत्थर को पिघला देती है २१४, –पर अटल विश्वास २५३, –पर अमल २४२, २४३, २५२, ५५३, –पर आचरण ५९३, –पर आधारित प्रवृत्तियां २१३, –पर चलने को बाध्य ६००, –पर निर्भर शासन २१७, –पर निर्भर समाज २१६, –परमोधर्मः १६, ३५५, ३७२, ५६६, ६०३, –परमोधर्मः एक महान शोध ९, –परमोधर्मः जीवन का उच्चतम सिद्धान्त १७, –पर लाखों आचरण कर सकते हैं ५४७, –पर सारा संसार कायम है २१६, –परायण १५४, १५८, ४७४, –पारसमणि १५, –पालन का दावा २४४, –पालन की शर्त्तें १४९, २४४, –पालन सदोष २१९, –पुस्तकीय नहीं १७५, –पैसिव रेजिस्टेंस-मन्द विरोध थी १४२, –प्रणाली ४२७, –प्रचण्ड शक्ति ४२, –प्रचण्ड शस्त्र ३४४, –प्रचार जीवन का ध्येय है २३४, –प्रतिष्ठायाम् वैरत्यागः १३१, २३०, –प्रधान देश ३६४, –प्रधान भूमि ३०९, –प्रधान समाज सम्भव है २३१, –प्रभावकारी १९४, –प्रसंगोचित का समय नहीं रहा १५९, –प्राप्ति ३४९, –प्रेम का सागर ३४५, –बनाम हिंसा ८९, –बर्मावासियों के लिए १७९, –बल ३८८, –बलवानों की १३२, –ब्रह्मास्त्र ३८९, –बाधाओं पर विजय करेगी ४७, –भय १६४, २२०, २४२, ३०९, ५२३, –भावना २२९, ५४१, –भ्रातृत्व का आधार ८३, –मठ-मन्दिर की चीज नहीं ५४७, –मनुष्य तक ही सीमित है ३३४, –मन्त्र पर मुग्ध हूं १५, –मन्त्र ही शान्ति का मूल १५, –महाव्रत २६, –महिमा ६०, –मानव स्वभाव है ३२, –मानसिक ५१, १०४, –मार्ग के पथिक २४५, –मुक्ति का मार्ग ९४, –मुक्तिदायिनी ५४, –मुसलमानों के लिए १४५, –मूर्ति के समक्ष सांप भी ठंडा पड़ जाता है १३, –में छिपी हुई शक्ति ५०३, –में जीवित विश्वास २१०, –में तेज ५७७, –में दीनता ३४५, –में दुर्बलता नहीं १५४, –में पलायन, पराजय नहीं १५, –में भीरुता को स्थान नहीं ३३, –में मिलावट नहीं २१८, –में विश्वास २२१, ५२०, २८८, –में विश्वास रखने वाले २७४, –में शक्ति का अभाव नहीं ३३०, –में शिथिल विश्वास ७४, –में श्रद्धा ५०३, –में स्वार्थ नहीं है ३५४, –में हार्दिक श्रद्धा २३७, –यान्त्रिक क्रिया नहीं ४७८, –युक्त ३०९, –रामबाण है ८, –रूपी अग्नि ३४४, –रूपी प्राणवायु ३४३, –रूपी प्रेम ३४४, –रूपी शस्त्र २५१, २८८, –लाचारी की थी २८३, –वस्त्र-सी परिवर्तनशील नहीं १६१, –वाद ३९९, –वादियों ४३२, ५६८, –वादी १०१, २२२, ३१८, ३३४, ३७७, ४७७, ४७९, ५६४, –वादी का धर्मःचरम त्याग १४, –वादी दास है १९, –वादी दौलत का मालिक नहीं हो सकता २६३, –वादों का विरोधी १०२ –वास्तविक १०४, २५८, –विचार ३११, –विशुद्ध नहीं थी २०१, –विशुद्ध प्रेम ८३, –विश्वप्रेम ४२, –विश्वास की नीति ८४, –विहीन स्वतन्त्रता नहीं ९९, –वीर का गुण २५, –वीर का लक्षण १३, –वीरों का रास्ता १२६, –वीरों की हो २०१, –वीरों की ११६, –वीरों

की नहीं है २०३, –वीरता की पराकाष्ठा है ३६७, –वृत्ति ४२, –वैरशामक १६२, –व्यक्ति और समूह के लिए ६१, –व्यक्तिगत अथवा समूहगत १८७, –व्यक्तिगत धर्म ही नहीं ४२६, –व्यक्तिगत मुक्ति का मार्ग ८३, –व्यवहार की समीक्षा २७३, –व्याख्यातीत १०१, –व्यापक ५६४, –व्यापक प्रेम से उद्‌भूत ५५६, –व्रत ३०१, ३००, –शक्ति ३५९, ४८१, ५४९, ५९३, –शक्तिशाली का अस्त्र ५१, –शस्त्र ३८९, ४७८, ५२०, ५६३, –शस्त्र का प्रयोग ३९३, –शाश्वत सिद्धान्त ५०, –शासन नीति के रूप में ९४, –शिक्षक ५५४, –शुद्ध २७५, –शुद्ध अर्थशास्त्र के विरुद्ध बात नहीं ४४, –शुद्ध-पवित्र ४५, –श्रद्धा का आधार १००, –सदोष ८७ –सबके भले का विचार करती है ५५, –सबके लिए कल्याणकर १७५, –सबल का शस्त्र २०६, ४७४, –सभी सजाओं की विरोधी है ५५२, –समाज का आधार १०४, –समाजी १३९, –सत्य की दशा ७४, –सत्य के पुजारी ८३, –सत्य ध्येय या नीति के रूप में ७४, –सत्य स्वास्थ्य है १७१, –सत्वहीन ४९९, –सम्पूर्ण कष्टों की औषधि १३५, –सम्पूर्ण धर्म का चरम ध्येय १५३, –सम्बन्धी श्रद्धा २४८, –सर्वदेशीय सिद्धान्त ८०, –सर्वव्यापक धर्म है ३७, –सर्वश्रेष्ठ कार्यकारी शक्ति १६५, –सर्वश्रेष्ठ शक्ति ८१, –सर्वोत्तम राजनीतिक शस्त्र ९६, –स्वतन्त्रता और स्वराज्य की शर्तें १५०, १५१, –स्वयंसक्रिय ८१, –स्वयमेव काम करती है ५१४, –साधन २१७, –साधन नहीं धर्म १२०, –साधना ३६८, –सारे जगत के प्रति प्रेम मांगती है २४१, –साध्य नहीं १२२, –सार्वभौम नियम है ४००, –सिद्धान्त १९३, २१३, ३२४, ३८६, ४३४, ४६५, ४७२, ४७५, ५२०, ५२७, ५२८, –से संसार बंधा है ३५, –से ऊब २१२, –से देश का पतन नहीं ५, –से बड़ी शक्ति ज्ञात नहीं १७६, –से ही भारत आजाद हो सकता है २२६, –से ही रक्षा की जा सकती है २२६, –सोच समझ कर अपनाई हुई २६८, –सौ टंच की हो ५४९, –हृदयंगम नहीं हुई थी २५८, –हृदय का गुण है २३५, –हृदय-गुण है ३०७, –हिन्दू धर्म का मूल सिद्धान्त ९८, –ही ग्राह्य २२१, –ही विष को अमृत में वदलने की शक्ति रखती है २९४, –ही संसार को उचित मार्ग पर चला सकती है ४३२

अहिंसात्मक १९६, २००, २०९, २१८, २२३, २९०, ३८४, ४०५, ४१०, ४११, ४१४, ४१५, ४३१, ४७५, ५४४, ५५०, ५६२, ५६३ –अवज्ञा २३३, –असहयोग ४४०, ५२७, –आचार २६६, –आत्मरक्षण ४९५, –आन्दोलन ४८५ –कार्य १९४, १९६, –कार्रवाई ४३३, –ध्येय ४८८, –प्रतिकार ४३३, –प्रतिरोध १९३, ३९७, –बरजोरी ८८, –युद्ध ८४, ९६, २१६, ४८७, –योजना ४१० –राज्य २८१, –लड़ाई ९५, १९५, २८०, ५९४, –विरोध ५१८, –व्यक्ति २१२, –व्यवहार १९७, –शराबबन्दी ५३०, –संगठन २१३, –संघर्ष ९३, –समाज का संगठन २१५, –साधन ९४, –सेना २१३, –सेना के सेनापति २१४, –स्वराज्य २२३, –हलचल ४६६

अहुरमज्द २७९, २९२

आ

आगाखान ५१४, –महल ४९९
आचरण की शुद्धता २७४
आचार्य कृपलानी ६००
आजाद २७५, ४३१, ४३५
आजाद हिन्द फौज २८३, २८४, २८६, ५०६, ५१४, ५१५, ५१७
आजादी १२७, २१८, २७६, २७७, ५०४, ५०५, ५०७, ५०८, ५११, ५५७, ५७१, ५७३, ५७७, ५९१
आज्ञाभंग ४८८
आतंकनीति ४६१
आतंकवादी (आतंकवादियों) ५९, ६१, ६२, ५१३, ५८७, –आन्दोलन ४८४
आतताई (आततताइयों) २६९
आत्मकथा ६८, १८५
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत् ४७५
आत्मज्ञान ५६४, –आत्मनिरीक्षण २००, २४७, –पीड़न १२४, –बल ४२८, –बलिदान १८५, २६६, –संयम २९६
आत्मा २४७, ३१७, ३२७, ३३२, ३३३, ३४२, ३४७, ३५०, ३५२, ३७८, ४०३, ४२५, ४६९, ५७४
आत्यन्तिक भाव ४७३, –अभाव ४७३
आर्थिक प्रश्न २८९, –असमानता २८९, समानता २८९
आदर्श २४५, २६२, –की आदर्शता ४१
आध्यात्मिक ४५८, –साधना २६२
आन्दोलन २६२, ४४६, ४४८, ४७२, ४८१, ४८२, ४९८, ५०३, ५२२, ५२३, ५६१
आयरलैण्ड ४६१
आश्रम ३४९, ३५०, ३६३, ५२८, ५६९, ५७०, –वासी (वासियों, निवासी) ३३१, ३६१
आसाम ४३२, ४३३

इ

इंग्लैण्ड ३४, ५८, ७६, १२९, १३०, २१७, २८२, २८६, ३२०, ३९१, ३९३, ३९६, ४००, ४११, ४१३, ४१९, ४२२ ४२५, ४३८, ४५२, ५५८
इन्दौर ९
इटली ३९०, ३९३, ३९६, ४४९, ५५०, –वालों ५१३
इटालियन ३९०
इण्डियन ४७२
इण्डोनेशिया ५१३
इतिहास १७०, २३७, २५९, २८६, ३३९, ३९६, ४११, ४२०, ४२१, ४४६, ४५२, ४६७, ४८६, ५०२, ५११, ५७५, ५७६
इथोपिया ३९०
इलाहाबाद १६७, १९८, २०५, ४०२
इस्लाम १४७, १४८, २०९, ५३५, ५३९, ५४५, ५९७
इस्लामिया कालेज ५६१

ई

ईविंग क्रिश्चियन कालेज ४०२
ईश्वर ३७, ७९, ८१, ८२, ११०, ११७, १२१, १२६, १२७, १४१, १५०, १५७, १८०, १८५, २०६, २०९, २१०, २११, २१४, २२४, २३४, २४३, २५६, २५८, २५९, २६१, २६२, २६५, २६९, २७९, २८०, २८४, २९१, २९२, ३०५, ३२८, ३३७, ३६५, ३७६, ४००, ४०५, ४०७, ४११, ४६१, ४६६, ४७६, ४९०, ५४१, ५५२, ५७१, ५८५, ५८७, ५९१, ५९२, –प्रदत्त ४९२, –प्रेरित ५५२
ईसा २३६, २३७, ४०८
ईसाइयों २०९, ४०६, ४२८
ईसाई १५२, १५३, १८९, ३९२,

४०५, ४१४, ४७०, ५३५, ५५४, –जगत ४२६, –धर्म ३९९, ५८५
ईसामसीह १२७, १८२, १९१, १९७ ३९२, ४०७, ४२६, ४२९, ६०६

उ

उड़ीसा ४९२, ४९९
उत्तर प्रदेश २००, ५५०
उपनिषद् ६७
उपयोगितावाद ३३४, ३३६, ३३७, –वादी ३३४
उपवास ७६, ८६, १४९, १८०, २६५, ३०२, ४७३
उपासना ५९२

ऋ

ऋषभदेव ३१७, ३६८
ऋषि १८०, २३३, ३१७, –मुनियों ५९२

ए

एग्रीकल्चरल इंस्टीट्यूट ४०२
एडोल्फ हिटलर ४२७
एण्डरूज़ ७१, १९२, २४६, ४१५
ए० पी० आई० ५७२
एबटाबाद ८२, ५४२
ए० सी० सी० ७
एसेम्बलियों ५७७
एसोशियेटेड प्रेस २८६, ५७२

ऐ

ऐटमबम १३७।

क

कनाडा-प्रवासी ४९०
कमालपाशा ४६४, ४६७, ४७८
कराची ५११
कर्म-सिद्धान्त ४६०
कलकत्ता १३९, २८६, ३८०, ४५७, ४६३, ४६६, ५११, ५२७
कश्मीर (कश्मीरियों) २९६
कश्मीरी २८६, २९५
कस्तूर बा ४०२, –ट्रस्ट २७८
कांग्रेस ७४, ७५, ८६, ९४, ९५, ९६, ९९, १०६, ११३, ११७, १२०, १३८, १५८, १७१, १८३, १८९, २००, २०१, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २११, २१२, २२३, २३३, २३४, २३५, २३८, २३९, २४१, २५०, २५१, २५३, २५७, २६९, २७०, २७५, २८१, २८६, २९१, ३९४, ४०९, ४१४, ४१५, ४१६, ४१८, ४२३, ४२५, ४४१, ४८७, ४८८, ४९२, ४९६, ४९७, ४९८, ३९९, ५०६, ५११, ५१५, ५१६, ५४८, ५५३, ५५५, ५५८, ५५९, ५६०, ५६४, ५६७, ५८०, ५८१, ५८६, ५८८, ५९०, ६००, ६०१, ६०२ –कमेटियों ५६७, –कमेटी (कर्नाटक प्रान्तीय) ५६७, –कार्य-समिति ५९९, ६००, ६०१, ६०२, –जन ५४८, –जनों ५४३, –नीति ४३९, –महा-समिति ५९९, –वादियों १९९, २०१, २०३, २११, २३३, २५१, –वादी १५९, १६१, १८४, २०२, २१२, २२६, २२७, २३३, २५१, २४३, २७०, ४८५, ५५७, –विधान ५७८, –सरकार २९५
कांग्रेसियों ५७७
कांग्रेसी १९९, २०२, २३२, २८२, २८६, २८८, ४०९, ४९९, ५११, ५४०, ५५७, ५६४, ५७७, ५७८, ५८९, ५९०, –अहिंसा ५६४, –अहिंसावादी ५६४, –स्वयंसेवक दल ५६७
काका साहब १२५, ५०७
काठियावाड़ ५८९, –राजनीतिक परिषद् ८५
कानपुर १६७

कायरता ५१९, ५२२
कार्यकारिणी समिति ४२३, ५६७
कार्यसमिति ७५, ९४, ९५, ९७, ११३, २०१, २३५, २३९, २४४, २४८, २५६, ३९३, ३९४, ४१०, ४११, ४८२, ४९६, ५४६, ५६०, ५९९, ६००
कालापानी ४८९
कालीघाट ३७४
कालीमाता ३७४
कालेज स्क्वायर ४५७
कावेबाजी ४३९, ४४०
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ५६६
किशोरलाल १२५, २०४, २१८, ५०७
कुमारी कर्टिस ४७७
कुरबानी २०, ५०७
कुरान ६६
कुरान मजीद ५४६
कुरुक्षेत्र १६८
कृष्ण १७, २३, ६६, १२०, ४६४, ४६७, ४६८, ४७०, ४७३, ४७४
केन्द्रीय सरकार ९१, –व्यवस्थापिका सभा ५९९
केरल ४३३
केलकर १६९
कैन्नानशेप्पर्ड ५८, ६१, ६६
कैबिनेट २९६
कोमागाटामारू ४९०
कौमी दंगे २८६
क्राइस्ट १२७
क्रान्ति १६२, १८७, २२४, २७४, ५०७
क्रान्तिकारियों ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६९, ४७०, ४८८
क्रान्तिकारी २२, ४६०, ४६२, ४६३, ४६४, ४६६, ४६७, ४६९, ४७१, ४७२, ४७३, ४७६, ४८२, ४८९, ४९०, ५०८, –आन्दोलन ४६८, ४७१
क्रान्तिवादियों ४८१, ४८२
क्रान्तिवादी ४८१, –हत्याएँ ४८१, लोक-समूह ४८१
क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट एक्ट ५५६
क्रियाविक्रिया ३६८
क्वेकर २९

ख

खजिरखील १३२
खादी ३०१, ३०२, ३८४, ५५५, ५८५, ५८९, ५९०
खाद्यअखाद्य ३०२
खाद्याखाद्य ३७२
खानअब्दुल गफ्फार खां ५८८
खान साहब ११७, ५३५
खिलाफत १४६, १४७, १६९, १७२, १७७
खुदा ४९१, ५३५, ५४१, ५५३, ५५४, ५५९
खुदाई ५३५
खुदाई खिदमतगार ७९, ८२, ४९१, ५३६, ५४१, ५५८
खुदाई खिदमतगारों ५४०, ५४१, ५४३
खेती में निहित हिंसा ३५०
ख्वाजा अब्दुल मजीद ७४

ग

गंगा ५६६
गणेशशंकर विद्यार्थी २८४, ५५०
गांधी-भक्त ५८९, –वाद १०२, –वादी १०१, २१८, –सेवासंघ १०१, १०२, १०४, २१९, २२८, ५४६, ५४७, –अंग्रेजों को मार डालने पर २२, –अठारह सौ सत्तावन के स्वातन्त्र्य संग्राम पर ४८५, –अणुबम द्वारा विनाश पर ४५१, –अनिवार्य हिंसा पर ३१८, –अपनी अहिंसा पर ३३०, –अपनी कल्पना के आदर्श भारत पर ५९३, –अपनी राष्ट्रीयता पर ३०, –अबीसीनिया के सन्दर्भ में अहिंसा

पर ३९०, –अधिनायकवाद के प्रसंग में अहिंसा ,पर ४०५, –अराजकता के भय के विरुद्ध अहिंसात्मक आत्म-रक्षण पर ४९६, –असाध्य रोगग्रस्त बालक के सम्बन्ध में ३२५, –असाध्य रोगग्रस्त प्रियजन के प्राणहरण पर ३६२, –अहिंसक भाव पर ३, –अहिंसक प्रतिरोध पर ४२५, ४३५, –अहिंसक लड़ाई की महत्ता पर ४३६, –अहिंसक लड़ाई पर ८४, –अहिंसक रीति से सद्‌भावना स्थापित करने के सन्दर्भ में स्वधर्म की व्याख्या ५७८, –अहिंसक सैनिक के सम्बन्ध में ५३१, –अहिंसा और उपयोगिता वाद पर ३३४, –अहिंसा और घृणा विरति पर ११, –अहिंसा और दया के अन्तर पर ४३, –अहिंसा का पालन धर्म-रूप में करने पर ४०, –अहिंसा की अनिवार्यता पर ५७३, –अहिंसा की अर्थनीति पर ५५, –अहिंसा की कार्यप्रणाली पर ५७१, –अहिंसा की दृष्टि से रेशम व्याघ्रचर्मादि के व्यव-हार पर ३८, –अहिंसा की महत्ता पर १५, ४२७, –अहिंसा की महा-नता पर ८१, –अहिंसा की सहजता पर ३४, –अहिंसा की सुगन्ध पर ५२३, –अहिंसा के अर्थ पर ३१६, –अहिंसा के अन्वेषण पर ४२, ३१७, –अहिंसा के क्षेत्र पर ३८३, –अहिंसा के मानव-स्वभाव होने पर ३२, –अहिंसा के मूलतत्व पर ३४७, –अहिंसा के व्यवहार की सम्भावना पर ५४८, –अहिंसा के व्यवहार पर ५४६, –अहिंसा के सारांश पर ३१७, –अहिंसा को शाश्वत नीति के रूप में स्वीकार करने पर ९४, –अहिंसात्मक आत्मरक्षण पर ४९५, –अहिंसात्मक भारतीय गांवों पर ५४८, –अहिंसा पर ३२०, ३२५, ३६८, ३७७, ४८९, –अहिंसामार्ग पर ४७, –अहिंसा शक्ति पर ४२१, –अहिंसा सिद्धि हेतु ब्रह्मचर्य पालन पर ७५ –आक्रमण के भय पर ४९४, –आग जलाने और यज्ञ पर ४५, –आजाद हिन्द फौज और नेताजी के कार्य पर ५१५, –आजाद हिन्द फौज के अहिंसक बनने पर ५१७, –आजाद हिन्द फौज के सन्देश पर ५१६, –आतंक और घबराहट पर ५५७, –आतंकनीति पर ४६०, –आतंक-वादी कार्यकलापों पर ४६४, –आतताइयों पर ५३३, –आत्यन्तिक अहिंसा और जीवन यापन पर १३, –आदर्श अहिंसक वातावरण में शिक्षित विद्यार्थियों पर ३४४, –आदर्श पर ४१, –आदर्श स्वराज्य और प्रजातन्त्र पर ८३, –इस्लाम और हजरत मुहम्मद साहब की अहिंसकता पर ५५३, –इस्लाम की उन्नति के कारण पर ५९७, –ईसा और ईसाइ-यत पर ३९२, –उद्योग में हिंसा पर ३०४, –उपद्रवी बन्दरों को आहत करने पर ३५६, –एक क्रान्तिकारी की शंकाओं पर ४६९, –खां साहब की अहिंसा पर ५५८, –खाद्याखाद्य और अहिंसा के सम्बन्ध पर ३०३, –खाद्याखाद्य और अहिंसा पर ३९, –खुदाई खिदमतगारों के लिए अहिंसा पर ५४१, –गांधीवादियों के लिए अहिंसा पर ५४७, –गीता के प्रसंग में अहिंसा पर ५९, –गोपनीयता पर ५०२, –चाय के सम्बन्ध में ३०२, –चेक जनता के सन्दर्भ में अहिंसा पर ३९५, ४१३, –चोरों का अहिंसक प्रतिकार करने पर ४८, –ट्रस्टी के उत्तराधिकार पर ५८४, –ट्रस्टीशिप सिद्धान्त पर ५८४, –डाक्टर ब्लेजर के बालिका-वध प्रकरण पर ३३६,

—डा० मॉड रायडन की अहिंसा विषयक शंकाओं पर ४२९, —तपश्चर्या पर ४२४, —तलवार की नीति पर ९८, —तलवार के सम्बन्ध में ३, —तुलसीदास की उक्तियों पर १६, —तोड़फोड़ की कार्रवाई पर ५००, —दयालु पुरुष और बिच्छू के दृष्टांत पर ५२२, —दुर्बल और सबल की अहिंसा पर ५४९, —द्वेष त्याग पर ५०४, —धनिकों से न्याय-प्राप्ति पर ५३३, —धर्म पर ४१, —निर्बल बहुमत की रक्षा पर ५६२, —निशस्त्र अहिंसक युद्ध पर ३८९, —भारत के प्रधान सेनापति के अहिंसा-सम्बन्धी आक्षेपों पर ४११, —भारत के बंटवारे पर ५८६, —भारत के शस्त्रीकरण की अव्यावहारिकता पर ४३४, —भारत-विभाजन पर ५२२,—भिक्षावृत्ति पर ३१३, —कन्दमूल आहार पर ३४२, —कांग्रेस के दोषों पर ५९०, —कांग्रेस के विधान से सत्य, अहिंसा निकाल देने पर ५८०, —कांग्रेस स्वयंसेवकों के अहिंसा पालन पर ५६७, —कांग्रेसी और गांधीभक्त पर ५८९, —कायरता और अहिंसा पर ९३, —कायरता के दोष पर ५७५, —कावेबाजी की लड़ाई के बजाय अहिंसक युद्ध पर ४४०, —कुत्तापालन पर ३२४, ३३१, —कुत्तों पर ३१४, —कुरबानी और खून पर २०, —कृषिकर्म और अहिंसा पर ३५०, —कृषिकर्म में हिंसा के अभाव पर ३०४, —क्रान्तिकारी क्रियाकलापों पर ४८१, —क्रान्ति के परिप्रेक्ष्य में अहिंसा पर ९९, —क्रान्तिवादी हत्याओं पर ४९३, —जज गारलिक की हत्या पर ४८४, —जनरल करियप्पा के अहिंसा सम्बन्धी आक्षेपों पर ५९३, —जनरल मैक आर्थर की जपान-नीति पर ५१३, —जपानियों के सन्दर्भ में अहिंसा पर ४४४, —जपानी आक्रमण के अहिंसक प्रतिकार पर ४३१, —जपानी आक्रमण के विरुद्ध भारत के अहिंसक प्रतिकार पर ४३६, —जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल पर ४३९, —जीवदया के सन्दर्भ में अहिंसा पर ४६५, —जीवहिंसा पर ३६१, —जैन अहिंसा के निरूपण पर ३२२, —जैन अहिंसा पर ३२९, ३५८, ३६९, —पठानों की अहिंसा पर ५३४, —पठानों के सन्दर्भ में अहिंसक प्रतिरोध पर ४९१, —परदुःखकातरता के सम्बन्ध में ३२७, —पशुओं के साथ सद्व्यवहार पर, ३८०, —पशुबलि पर ३६२, ३७४, —पश्चिम की जीवदया पर ३२१, —पाकिस्तान के लिए अहिंसक प्रयत्न पर ५६०, —पागलों अपराधियों को बन्दी रखने पर २१, —पाप के सम्बन्ध में ३१७, —पाश्चात्य राष्ट्रों की हिंसा-होड़ पर ३८८, —प्राणमोह पर २०, —प्राणि-वध के अहिंसात्मक अधिकार पर ३२६, —प्राणिवध पर ३१८, —प्रेम और अहिंसा पर १०, —प्रेम की वैज्ञानिकता की शोध पर ५२, —प्रेम के सम्बन्ध में ५१०, —बंगाल के क्रान्तिवादी क्रियाकलापों पर ५१२, —बछड़ा एवं बन्दर प्रकरण पर ३५१, —बछड़ा प्रकरण के सम्बन्ध में अहिंसा की मर्यादा पर ३५३, —बछड़ा प्रकरण पर ३४६, —बन्दर समस्या पर ३६३, —बन्दरों के उपद्रव पर ३७६, —बम्बई की अराजकता पर ५१०, —बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर की हत्या के प्रयत्न पर ४८३, —बर्मावासी भारतीयों की अहिंसा पर ५३९, —बलिदान के अर्थ पर ३७,

–बालिका के प्राणहरण पर ३५६, –बिहार की अराजकता और अनुशासन हीनता पर ५८१, –बोल्शेविज्म पर १४, –मत्स्य भोजन पर ३७४, ३७५, –मन्द विरोध और अहिंसा पर ५८७, –महाभारत पर २३, –मानसिक अहिंसा पर ५१, –मुस्लिम लीग की आतंकप्रद नीति के अहिंसक प्रतिकार पर ५२०, –मुस्लिम लीग की दोरुखी नीति पर ५७६, –मृत्युदण्ड पर ५५२, –यहूदियों के उत्पीड़न पर ४०८, –यहूदी समस्या के अहिंसात्मक समाधान पर ४००, –यहूदी समस्या पर ३९७, –युद्ध में नैतिक सहायता देने पर ४१७, –युद्ध में सहयोग पर ६९, –युद्ध विरोध पर ३८७, –युरोपीय राजनीति पर ३९३, –युरोपीय सभ्यता पर ९, –राजकोट-प्रकरण के परिप्रेक्ष्य में अहिंसा पर ८९, –राजनीतिक हत्याओं पर ४५७, –रायचन्द्र भाई की शिक्षा पर ३२८, –लार्ड कर्जन की बंगालियों के प्रति धारणा पर ५१३, –लाला लाजपत राय के अहिंसा सम्बन्धी आक्षेपों पर ५, –लूटमार और अराजकता पर ५११, –वचन की अहिंसा पर ५६, –वनपक्व और अग्निपक्व आहार पर ३६९, –विकृत सत्याग्रह पर ४६०, –विद्यार्थियों और अहिंसा पर ३४५, –विद्यार्थियों की अहिंसा पर ४, –विशुद्ध अहिंसा पर ८९, –विश्वयुद्ध में नैतिक सहयोग पर ४१३, –वीरों की अहिंसा की आवश्यकता पर २९२, –वीरों की अहिंसा पर १३, ५१८, –वैयक्तिक एवं सामुदायिक धर्म पर ३२१, –वैयक्तिक गोपालन पर ३७५, –शत्रु के प्रति बन्धुभाव पर २७, –शराबबन्दी की अहिंसात्मकता पर ५३०, –शरीरबल पर २१, –शरीरस्थिति के लिए जीवनाश की आवश्यकता पर ३१६, –शल्यक्रिया की अहिंसात्मकता पर २१, –शहद-आहार पर ३७२, –शहद पर ३७०, –शहादत के लिए हरजाना लेने पर ५७४, –शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में अहिंसा पर ३१, –शास्त्र स्मृति और अहिंसा पर २६, –शिक्षा में दण्ड की व्यर्थता पर ५३१, –शुद्ध आहार पर ३७३, –शूरों की अहिंसा पर ५५७, –श्रद्धा के सम्बन्ध में ३३७, –श्रद्धा पर ४६, –श्रमहीन भोजन पर ५४४, –श्रमिकों के लिए अहिंसा पर ५३८, –श्रीमती अरुणा आसफ अली की हिंसा-समर्थक उक्तियों पर ५०७, –सत्य पर ३२७, –सरदार पृथ्वीसिंह पर ४२९, –सशस्त्र आक्रमण के अहिंसक प्रतिरोध पर २९५, –साम्राज्यवाद पर ३९२, –सिन्ध के हिन्दुओं के सन्दर्भ में अहिंसा पर ५४९, –सुभाष चन्द्र बोस पर ५१५, –सूक्ष्म अहिंसा की कसौटी पर १८, –सेवाग्राम आश्रम के सम्बन्ध में ५७०, –स्वतन्त्र भारत की दण्ड-व्यवस्था पर ५७३, –स्वतन्त्र भारत में मित्रराष्ट्रों की सेना रखने पर ४४२, –स्वतन्त्र भारत सरकार के अहिंसक रहने पर ५९१, –स्वदेशी वस्त्र पर ३०२, –स्वराज्य और खादी पर ३०२, –स्वराज्य हेतु अहिंसा पर ५३३, –स्वार्थी परमार्थी के सम्बन्ध में ३२७, –स्वाधीनता और अहिंसा पर ९९, –स्त्रियों के कार्यक्षेत्र पर ५५१, –स्त्रियों के लिए निर्भयता और अहिंसा पर ५८३, –स्त्री के शीलभंग के समय अहिंसक प्रतिरोध पर ५४२, –स्थित प्रज्ञता पर ५१५, –हत्या की भावना

पर ३२३, —हिंसक क्रान्ति के बजाय अहिंसक युद्ध पर ४५८, —हिंसक प्रतिकार के दोष पर ४५२, —हिंसक शक्ति की व्यर्थता पर ४४९, —हिंस्र जीव जन्तुओं के वध एवं कन्द मूल आहार पर ३४३, —हिंस्र जीव-जन्तुओं पर ३३८, —हिंस्र पशुओं के उपद्रव पर २५, —हिंसा एवं प्राणिवध पर ३४०, —हिंसा के आदर्श रूप पर ५१९, —हिंसा के दोष पर ४५०, ५४८, —हिंसा के समर्थन पर २०, —हिंसा के सम्बन्ध में ५८८, —हिंसात्मक और अहिंसात्मक प्रतिरोध पर ४९२, —हिंसावाद के दोष पर ४८७, —हिंसा से हिंसा मिटाने पर ४५०
गार्लिक ४८४
गीता १७, ३१, ५८, ५९, ६०, ६२, ६६, ६७, ११९, १५२, १७५, १९२, २९६, ३६८, ४६६, ४७०, ४७३, ४७४, ४७५, ५१५, ५१६, ५५९, ५८५
गुजरात ११०, १८४, ३५०
गुजरात विद्यापीठ ३८, ३४२
गुजराती २४३, २५०, ३०३, ३७७, ४७२, ४७८, ४८०, ५२९, ५३३, ५६०, ५९०
गुप्तता ५०२
गैरीबाल्डी ४४९, ४६४, ४६७, ५१३
गोखले ४६५
गोधरा १७७
गोपनीय ५०२
गोपीमोहन साहा ४७३
गोप्यता ५१९
गोमांस ३०३
गोरक्षा ८, १५७, ३४१
गोरखपुर ५८
गोलमेज कान्फ्रेंस ४१८
गोलमेज परिषद् १८३
गोविन्दसिंह ४६४, ४६७
गो-सेवा ३४५
ग्वायर-निर्णय ५५

घ

घनश्यामदास बिड़ला १२, ५५७

च

चंगेज़ खां १९४
चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ५२९, ५३०
चम्पारन १५९, १७३, ५४८
चर्खा (चर्खे) १७०, १९४, २१९, २२१, २४२, २४९, २६२, ३८४, ५९०, —क्लब २४८
चर्चिल २९५, ४५३, ५९१
चिकित्सा-विज्ञान ३३६
चीन (चीनियों) ९९, ४००, ४०१, ४१६, ४१७, ४३५, ४३६, ४३७, ४४२, ४४४, —वासी ४३६, —जपान युद्ध ४२७
चेक (चेकों) ९९, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, —राष्ट्र ४१३
चेकोस्लोवाकिया ९९, ३९३, ३९४, ३९७
चैपलिन ५६८
चैरिटी ४०३
चौरीचौरा ५८, १४९, १८८, २०३, ४८५

ज

जंगीलाट ४११
जकारिया १४६, १४७, १४८
जगदीश बोस ३५५
जनक्रान्ति १८७।
जनरल गार्डन ७, —डायर ४६०, ५४८, —मैक आर्थर ५१३, —स्मट्स २२०
जपान १३७, २७४, ४००, ४०१, ४२७, ४३१, ४३२, ४३३, ४४१, ४४४, ५९१, ५९५
जपानियों २९५, ४०१, ४३१, ४३४, ४३८, ४३९, ४४०, ४४४

जमनालाल बजाज ११, २५९, ५३६
जर्मन २५५, ४००, ४०३, ४०७, ४२०, ४३४, ४४४, —नाजी सैनिकवाद ४०६
जर्मनी २१७, २६०, ३९३, ३९५, ३९६, ३९८, ४०५, ४०७, ४०८, ४१६, ४१९, ४२२, ४२५, ४२६, ४४१, ४४४, —में यहूदी प्रश्न ४२०
जर्मिस्टन ३
जयपुर ९२
जयप्रकाश नारायण ५०३
जयहिन्द ५८१
जरासन्ध १६८
जलियानवाला बाग ४१८, —काण्ड ३३५, ४६०
जवाहरलाल ११४, २३६, ४३९, ४४०, ५७२, ५९१
जस्टिस पार्टी १५८, १५९, १६०, १६१
जान नेविन ३८७
जार्ज डेवीज़ १४१
जावा ४१९
जिन्ना साहब २८९, ५८६
जिहोवा २९२
जीता-जागता कायदा २७९
जी० पिटेनड्रिग ३
जीवदया ३१०, ३१२, ३१५, ३२०, ३२१, ३७०, —का रूप ३१०, —प्रचारिणी महासभा ३०८
जीवनाश ३१७
जीवो जीवस्य जीवनम् ३०५
जुलू बलवे ३८५
जेम्स १०१, जींस १२४
जैन (जैनों) १९८, ३२१, ३२२, ३४२, ३५५, ३५७, ३७७, संघ ३१०, —गीतार्थ ३२१, —दर्शन ३२२, —धर्म ८, ३१९, ६०४, —शासन ३२२, —साधु ६०४, —सिद्धान्तों ३२२
ज्यूइश फ्राण्टियर ४०८

ट

ट्रांसवाल ७६, ५८७
टाइम्स आफ़ इण्डिया ३३२
टालसटाय ९, २९, ३४४, ६०४, ६०५

ठ

ठाकुरसाहब २२४

ड

डरबन ३७७, ३९३
डाइरेक्ट एक्शन ५८०
डाक्टर—टोबिया १९३, —प्रफुल्लघोष ६००, —क्लेजर ३३३, ३३५, ३३६, —मॉड रायडन ४२७, ४२९, —मुंजे १६९, —रायडन ४२७, ४२८, ४३०, —लोहिया २२७, —वेनेस ३९७, —स्मिथ ३९९
डामियन ३३७
डार्विन ५५
डायरशाही १६१
डिक शेप्पर्ड ६२, ६४
डी वेलेरा ४६४
डेनमार्क ३३३, ४१६, ४१७
डेनियल १९७
डेली एक्सप्रेस ४३४

त

तम्बरम् ३९९,
तर्कशास्त्र १०५, —से अहिंसा नहीं आ जायगी २६२,
तलवार, त्याग और सुरक्षा ३८७
तिलक २४२, ४६५
तुकड़ो जी महाराज ६५
तुर्किस्तान ४६८
तुलसीदास १७, ३६६
तेरह विधि कार्यक्रम ४२४
त्रिगुणातीत २५९
त्रिनेत्र रुद्र १६९
त्रावणकोर ८५, २२२
त्रिशंकु २२१, २५३

थ

थोमसन १६६।

द

'द अदर साइड आफ़ द मेडल' १६६,
दक्षिण अफ्रीका ६, ८, ७६, १२०, १६८, १७१, १९३, १९६, १९७, २०९, २२०, २४९, २७३, २८९, ३२९, ३४१, ३८५, ४०२, ४४५, ६०६, ६०७
दत्त मन्दिर ९
दया-धर्म ३१३, ३१४, ३१९, ३२२, ३२३, ३२४, ३५८, –धर्मशील (शीलों) ३१०, ३२०, –भाव ३१३, –मय ३१३, –वृत्ति ३३५
दरबार श्री वीरावाला ८४, २१८, २२०
दरिद्रनारायण (नारायणों) १८८, ४३३
दांडी कूच ७८, १८५, २५९, –यात्रा २६, २०१
द्राविड़ी प्राणायाम १९१
दिल्ली २३८, २४०, २४८, २६४, ५६७, ५६८, ५९९, –प्रस्ताव ५९९
द्वितीय महासमर ४०९, ४१२, ४३४ ५४५
दुखोबर २९
दुर्वासा ऋषि ७
देवदास भाई १४९
देवासुर संग्राम ५२१
देशबन्धु दास ७४, १६९
देशी राज्यों, २२४
देहाध्यास ३१७, ३३०

ध

धनुष तकली २६०
धरना २११
धरासणा २११
धर्म ४१, ४४, १६४, १६९, २०९, २२२, २३७, २३८, ३१३, ३१६, ३२१, ३२४, ३२५, ३२७, ३२९, ३३९, ३४५, ३४६, ३५७, ३५९, ३६५, ३६८, ३७४, ३७८, ४२३, ४२४, ४२९, ५८१, ६०५, –का फल ३१५, –शास्त्र १७०, –हीन ३४६
धर्मराज २३०
धर्माचरण १९२
धर्माधर्म ३४६
धर्मान्तर १९२
धार्मिक (अभिलाषाओं की पूर्ति बलात् नहीं) १५३
धुरन्धर १८५।

न

नई दिल्ली १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १४०, १४१, १४२, २४१, २९५, २९७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१
न पापे प्रति पापः स्यात् ४७३
नमक ५४८, –सत्याग्रह ९५
नमाज ५४६, ५५९
नरसी मेहता ३०३
नरीमान १८८
नवजीवन १७७, ३०३, ३२३, ३५०, ३५३, ३६८, ३८३, ४७८
नाजी जर्मन ४२०
नाजी जर्मनी ४१३
नाजीवाद ४१९
नान वायोलेण्ट रेसिस्टेंस १९३
नान वायोलेंस ६०, ७९, ५८१
नास्तिकता ३४०
नारायणदास भाई ५६
नार्वे ४१६
निरामिष भोजी ३४०
निरामिषाहार ३४१
निर्ग्रन्थ ३२२
निरीश्वरवादी ४२१
निशस्त्रीकरण ४०५
निष्क्रियता २२९

निष्क्रिय प्रतिरोध ९५, १९३, २०१, २९४, ३९८, ५८७
निग्रो १९३
नीत्से ५६१
नीरो १०३
नेताजी सुभाष बाबू २८३, २८४, ५०५, ५०६
नेटाल ७६
नैतिक प्रभाव ४१७
नैल १६४, १६५, –जनरल १६६, १६७
नोआखाली १३३, १३५, १३९, २९१
न्यूयार्क ३९१, ४०८
न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून ४३४

प

पंचमांगी ४५२
पंजाब १३२, २८९
पंडित मालवीय १६९
पटना ५८५
पट्टाभिसीतारमैया ५९९, ६०२
पतञ्जलि १३१, १३२, २३०, २६२
पत्रकार ५५०
पन्त २५७
परधर्मी ३४४
परपीड़ा ३४३
परमात्मा ३५, ३८, १७२, १९२, ३३८, ३४०, ३४१, ५४५
परमार्थ ३१६
परमेश्वर ७७, १३०
पराधीन १६२
पराधीनता ४३२
पशुबल १६२, १७५, २२९, ४२८
पशुबलि ४५
पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ७९, ८२, २१५
पाईधनी २६४
पाकिस्तान २८८, २८९, २९६, ५६१
पादरी १९०
पारसी १५३
पार्वती २६२
पावर आफ़ नानवायोलेंस ६०
पिंजरापोल ३४८
पिकेटिंग २११
पियर्स और आर्यटन ६८
पीसन्यूज़ १४१
पुनर्जन्म ३४१
पुराण १७०, २६२
पुरुषार्थ सिध्युपाय ३२८, ३२९
पुरुषोत्तमदास टण्डन ५२१
पूना १५०, १९०, ५६४, ५९९, ६००
पेडी ४७७
पेरिस ३३८
पेशावर २०७, ५६१
पैग़म्बर ११५
पैसिव रेसिस्टेंस १९४, ५८७
पोल २६०
पोलैण्ड ९९, २६१, ४३४, ४३६, –वासियों २६०
प्यारेलाल २४५, २४७, ५०३, ५७३
प्रजातन्त्र १३४
प्रताप ८४, ४६४–सम्पादक ५५०
प्रथम युरोपीय महायुद्ध ३८५
प्रभावती ५०३
प्रह्लाद २६६
प्राणहरण ३४६, ३४७
प्रान्तीय समिति २०३
प्रार्थना ७५, १८०, २७६, २७७, –के लिए ईश्वरश्रद्धा की आवश्यकता है २७७, –मनोरंजन की वस्तु नहीं २७६, –सभा २८५, २९२, २९३, ५८८, ५८९
प्रावदा ५६९
प्रिंस आफ़ वेल्स २६४
प्रीतम (कवि) १२६, २८४
पृथ्वीसिंह १०५
प्रेमा कण्टक ४६, ५३, ५५, ५७, ५८, १८५, १८६, १८९, ३७४
प्रोफ़ेसर।–तिमूर ५६१, –मेज १९३, १९४, १९७

फ

फ़तेहपुर १६६, –रेजीमेंट १६७
फरहाद ३४५
फर्ग्युसन कालेज ४८३, ४८६
फ्रांस २१७, ३९३, ३९६, ४१६, ४३४, ४३५, ५४५, ६००
फ्रांसिस (सन्त) ६
फ्रांसीसी ७, ३८५, ३९५, ४१८
फारस १९७
फासिस्त इटली २१७
फिलिस्तीन ४०८
फीनिक्स ५१५

ब

बंग भंग ४७२
बंगलौर ३८०
बंगाल १३२, १६६, २८९, ३७४, ४१८, ५८४, –कांग्रेस नागरिक संरक्षण समिति २७२
बछड़ा ३४६, –प्रकरण ३५३
बम्बई १५१, १८३, २०३, २६४, २८६, ४६१, ४६३
बरहमपुर १७०
बर्मा १७९, १८०, २७१, ५३९
बर्मी ५३९
बलवन्त सिंह ५८, ६५
बसन्त राव २८३, २८४
बांकीपुर ५८५
बा ५६
बाइबिल ६०, ६६, २५०, –शोधक संघ ४०६, –सर्चर्स लीग ४०६
बादशाह ख़ान ५४६
बापू १६४, १६५, –जी ५०६, ५१३
बापू जी अणे २३७
बारडोली ८६, १६९, १७१, २०३, ४६५
बाल विवाह ३४४
बाला साहब २५६
बालासोर १७३
बालि १६
बिलायत ४२०
बिल्ली के सामने चूहे की हिंसा २६०
बिहार १३२, २९१
बीरमगांव १५१
बुद्ध ८, ९, ११२, १९४, ३१५, –भगवान १८०
बेतिया १५९, १७४, १७५, १७७
बेन १४६
बेलडन ५६८
बेल्जियम ४२५
बोअर २२०, –युद्ध ३८५
बोल्शेविक १४
बोल्शेविज्म १४
बौद्ध १७९, ५३९, –धर्म १७९, ५३९
ब्रजकिशोर प्रसाद ५८२
ब्रह्मचर्य ७५, ७६, २६२, ३६८
ब्रह्मचारी ७६, ७७
ब्रिटिश भारत २६६, –राज्य २९२, –शासन २९१, २९४, –सत्ता २०४, २२३, –सरकार ९४, ११२, १६७, २३२, ४२६
ब्रिटेन ९९, २४०, २५७, २७४, २९१, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४२०, ४२६, ४४१, ४४२, ४४३, ५४५, ५६२, ५६८, ५९९, ६०१

भ

भगत सिंह ४७६, ४७७, ४७८, ४८०
भगवद्गीता १७, ५८, ५९, ६०, ६१, १५२
भगवान ११०, १२६, २६४, २७७, २९२, २९७, ३३८, ४१०, ५८३, ५९०
भायखला २६४
भारत ३६, ७७, ९४, ९७, ९८, ९९, १०२, १०४, १४५, १४६, १४८, १५१, १८०, १८१, १८३, १८४, १८९, १९३, २११, २२४, २२८, २३२, २३३, २९६, ३१५, ३३६, ३३७, ३८९, ३९३, ३९४, ४०४, ४११, ४१२, ४१४, ४१५, ४१६,

५९४, ५९९, ६००, ६०४, ६०५, —का भविष्य ५०, —निःशस्त्र ९६, —स्वतन्त्र ९६
भारतवर्ष १७१
भारत सावित्री २३८, २४१
भारतानन्द २६०, २६१
भारतीय १४५, १६७, २२०, ६०७, —राष्ट्रीय महासभा १९९, —लन्दन मिशनरी सुसाइटी २७, —समाज २८६, —स्वातन्त्र्य संग्राम ४३४, —स्वराज्य १५०
भिक्षान्न ३०४

म

मंचूरिया ४२७
मगनवाड़ी (वर्धा) ५८
मजहबों ५५९
मणिबहन पटेल ११, २१५
मदनमोहन मालवीय १७२, २५०
मद्रास १६६, ३९९, ४५७
मनुस्मृति २६
मन्द विरोध १३८, ५८७, ५८८
मलाया २७१
मलिकन्दा २२८
मसीह ६५
मसीहा ४३०
महादेव २६२
महादेव देसाई ५०, ८४, ८५, १९३, २११, २२२, २४५, २६०, २६६, २६७, २७०, ३७०, ३७४, ३८३, ४३८, ५५९, ५९८
महाभारत ९, १६, २३, २९, ५६, ५९, ६१, ६७, १७०, २३८, ४३५
महायुद्ध ४०७, ४१२, ५४५
महावीर ८, ९, १७५, ३१५
महासभा ५०, १६९, १९९, —समिति १६७
महिषादल १२४
मांडले ३३५
माडेल्स आफ कम्परेटिव प्रोज ६८
मानवदया ३२५
मानसेहरा २१५
मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी २७१, २७२
मारिस ग्वायर ८५
माडर्न रिव्यू ५
मित्रराष्ट्रों ४१५, ४३४, ४४२, ४४३, ४४४, ४५९
मिलिटरी डिक्टेटरशिप ५८८
मिशनरी ७२
मिस ईव क्यूरी ४३४
मिस्टर एस्कम्ब २६४
मित्र १८३
मि० केस ८८
मिस्टर बोर्ड ३८३
मिस्टर होरी ३३३, ३३५
मीडियाइयों १९७
मुंशी २५७
मुनि ३१६
मुमुक्षु ३२९
मुसलमान १५३, १५५, २०९, २८९, ५४५
मुसलमानों २४२, ३७३, ५९०
मुस्लिम आतंक १७७, —लीग २५३, ५८०
मुसोलिनी १९४, २९५, ३९० ४०४, ४१३, ५९१
मेल्थूस ५४
मेजर।—जनरल करियप्पा ५९२, ५९३, —टैनोड १६६
मैकस्विनी ४७३
मैजिनी ४६४
मैजिनो लाइन ९६
मैरीन लाइन २६४
मैसूर ३८०
मोक्ष ३९, ४२, ३५२, —मार्ग ३२९
मोतीलाल नेहरू ७४, २५९
मौन १०५
मौलाना अबुलकलाम आजाद २०५, ५९१।

मौलाना (अबुलकलाम आजाद) ११३, ४४१, ४४४, ५९१
म्यूनिख ३९३, ४१९

य

यंग इण्डिया ७४, १५०, २६८, ३३२, ३३३, ३३५, ३३९, ३८५
यंगमैन क्रिश्चियन असोसिएशन १९३
यज्ञ ४५, ६६, ३०३
यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे ४०, २६२, ३४७, ३७४
यरवदा जेल ५७, १८६, ३७०
यहूदी (यहूदियों) ३९७, ३९८, ४००, ४०१, ४०७, ४०८, ४२०, –गांधी ४०८, –का उत्पीड़न ४०८
यहोवा २७९
यादव संहार ४२३
यादवी ४२३
युधिष्ठिर २५, ४७८
युरोप १२९, २८६, ३९३, ३९६, ४०५, ४१८, ४१९, ४६६, ५४६, ६०५
युरोपियन १९७
युरोपीय महायुद्ध ६८, ३३४, ३८५, ––मित्र १८७
युवराज २०३
यूक्लिड २६२, ५७९
यूनाइटेड प्रेस आफ अमरीका १३५
यूनियन २९६, –कैबिनेट २९५, २९६, ––सरकार ६

र

रचनात्मक कार्यक्रम ९१, ९२, २६७, ४२४, –कार्य १६७, –कार्यक्रमों १९९, –प्रवृत्ति २५२
रज्जब अली २८३, २८४
रणनीति ४६४
रमजान ५५४
रविशंकर महाराज २४३
रहमान २७९
राजकीय नौका दल २८६
राजकोट ८९, २२०, २२४, –उपवास २१६, २२१, –के दीवान २१६, –सत्याग्रह ८४, ८५, २१९, २२२
राजचन्द्र कवि ६
राजनीतिक ४४१
राजा जी २३८, २५६, ४३९, ४४०
राजेन्द्र बाबू ५४७, ५८२, ६००
राम १६, १७, २७९, २८०, २९१, २९२, ३१५, ३७८
रामगढ़ कांग्रेस २३१
रामचन्द्र १३४
रामधुन २९२
रामबाण ३६७
राम-राज्य २८९
रामायण १७, ६७
रायगढ़ ६०१
रायचन्द्र भाई ४२, ३२७, ३२८ ३७७, ३७८
रायवाकर १४१
राष्ट्र २७६, २७७, ३९३
राष्ट्रीय आन्दोलन २२४
राष्ट्रीय सरकार ३८६
रिचर्ड ग्रेग ६४
रुंगटा भवन ५११
रूस २८२, ३९६
रूसी २६०
रेवरेण्ड विलियन पैटन ३९९
रेवरेंड बी० द० लित ३८५
रेवरेण्ड लेसली मास ३९९
रेवा शंकर ३२९
रोजा ५४६
रोम्यां रोलां ४१९
रौलट ऐक्ट २६४, ४१८, ५५८

ल

लंका १८०
लखनऊ १६६

लन्दन १८३, २८०, ३२१, ४२७, ४३०, ५४५
लार्ड-कर्जन ५१३, –जेटलैण्ड २३१, ४९३, –रीडिंग ४६०, –लिटन ४६०, –लेमिंगटन ४९३, –लोथियन २१६
लारेंस १६४
लाल क्रान्ति २२२
लाला-लाजपत राय ५, १६९, –शंकरलाल १५६
लिटरेरी एण्ड डिबेटिंग सोसायटी ३
लिटिलटन ३३२
लिबरलों २०१, २०२
लीग २८८, २८९, ५८०
लीगी २८९
लुधियाना १६७, –रेजीमेण्ट १६७
लेनिन ४६४, ४६७, ४६८
लोकशासन ४२२

व

वर्किंग कमेटी ४१०, ४१२
वर्धा ६५, २४०, २५५. २६०, ४३९, ५९९, ६००, –प्रस्ताव ४२३
वली (ट्रस्टी) २६३
वल्लभ भाई पटेल ७३
बहिष्कार ३४, ३५, १८४, १९६
वाई० एम० सी० ए० ३१
वाडिया १९१, १९३
वाणपुर १७३
वायसराय ८६, २०५, २२४, २४५, २५९, ४१०, ५४५
वाशिंगटन ४६७
विजयराघवाचार्य १६९
विद्यापीठ ३४४
विधवा-विवाह १६०, १६९
विध्वंसकारी क्रान्ति ४२०
विनाशाय च दुष्कृताम् ४६३
विनोबा १२५
वियोगी हरि ५९७
विराट राज २५
विलायत ४२७
विलसन राष्ट्रपति ३०, १४७
विवेकानन्द १६०, ४६३, ४६४
विशुद्ध अहिंसा २२४
विश्व संघ ४४५, –बन्धुत्व ४४५, –युद्ध ४१६
वीरम गांव २०३
वीरों की अहिंसा २३३
वृन्दावन १०१
वेदव्यास २४२
वेस्ट मिनिस्टर ५४५
वैद्यक ३०२
वैयक्तिक गोपालन ३७५
वैष्णव (धर्म) १८६

श

शंकर राव देव ५७७, ५७९, ६००
शठे शाठ्यं समाचरेत् ५२१
शल्य क्रिया २६१
शस्त्रबन्दी कानून १६५
शस्त्र-बल २३३, २४९, ५४६
शस्त्र-वैद्य २६१, ३१७
शाकाहार ३२५
शान्त धरने २११
शान्त पिकेटिंग २११
शान्ति-काल ४०३, –दल २७९, –निकेतन २८९, –वाद ४००, –वादिनी ४२८, –वादी ३९०, ४२८, ४२९, ४३०, –'समाचार' १४१, –सेना (सेनाएँ) २१०, २३४, २७९, –सैन्य १९८, ४२७
शास्त्री जी २५०
शाहनवाज ५०६
शिकागो टाइम्स ४३४
शिकारपुर ५५०
शिमला २४५, ५४५
शिव २६२
शिवाजी ८४, ४६४
शीरीं ३४५
शुद्ध अहिंसा २४९

शूरवीरों की अहिंसा २३३
शेख अब्दुल्ला २९६
शोलापुर ४८३
श्रद्धा ४६, २०४, २१९, २३३, २३४, २३५, २३८, २४४, २७७, २९०, २९३, ३२८, ३३७, ३८४, ३९२, ४०९, ४२४, ४३४, ५८९
श्रमिक ५३९
श्रावक ३२२, ३४२
श्री वी० सी० श्रीनिवास शास्त्री ४५७, –मूरहेड ४३४, –हरेकृष्ण मेहताब ६००
श्रीमती—अरुणा आसफ़ अली ५०७, ५०८, ५०९, –बोर्ड ३८३
श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य ३२८
श्रीरामपुर १३३

स

संगठित हिंसा ३९२, ५०७
संग्राम ४५२
संघ विधायक समिति ४८७
संन्यास ६६
संयुक्त प्रान्त २००, २०१, २०५, ४८५
संयुक्त राज्य अमेरिका १९३
संसार २३६, २५८, २९६, ३२५, ३२९, ३३७, ३४५, ३८९, ३९२, ४१२, ४५२, ४७३, ५०४, ५१२, ५१७, ५३५, ५३९, ५५७, ५६५, ५७९, ५९३
संस्कृति ५६६
सक्खर ५५७
सक्रिय –अहिंसा ४००, ४०५, ४०६, –अहिंसक ४००, –अहिंसा परायण ४६८, –प्रतिरोधात्मक अहिंसा ३९०, –हिंसा २२५, ४००
सच्चा, –अहिंसक आचरण २७४, –अहिंसक ४००, ४९७
सच्ची, –अहिंसा २२०, २४८, २५३, २८४, २८६, २९५, ५८८, –अहिंसा का पालन २६१
सज्जनसिंह ४७८
सज़ा २७८
सतीत्व ४९३, –भंग २७०।
सत्य १८, ३६, ४१, ४८, ५९, १११, ११५, १२७, १२८, १४७, १४८, १५०, १६१, १६२, १६७, १७०, १७५, १८०, १८३, १८४, १९०, १९७, २०२, २०५, २२२, २२८, २४०, २६९, २८६, २८८, २९०, २९२, २९३, ३०४, ३०८, ३१६, ३१७, ३२५, ३४०, ३४१, ३४५, ३६१, ३८६, ३९२, ४५१, ४६०, ४८१, ४९७, ५०५, ५११, ५१२, ५२२, ५२९, ५३३, ५४०, ५६०, ५८१, ६०३, ६०४, –और अहिंसा ध्येय हैं ९, –और अहिंसा द्वारा भारत का उद्धार १०, –और अहिंसा की अदम्य शक्ति १०, –से अहिंसा का प्रतिफलन ११, –और अहिंसा के प्रतिपालन ११, –और अहिंसा के प्रतिकूल मोक्ष्य भी त्याज्य १२, –अहिंसा के अतिरिक्त नीति नहीं ३६, –अहिंसा के सिवा आशा नहीं ३७, –अहिंसा के अतिरिक्त प्रकट नहीं हो सकता ५३, –और अहिंसा का संगठन १९८, –और अहिंसा जड़ बुद्धि वालों के लिए नहीं १९८, –और अहिंसा का मिथ्या होना असम्भव १९८, –और अहिंसा ही सर्वोपरि साधन २८९, –और अहिंसा का मार्ग २०५, –और अहिंसा में श्रद्धा २१९, –और अहिंसा का दर्शन ५७२, –और अहिंसा १९८, २२५, २२६, ३६८, ३९८, ५०४, ५५१, ५७२, ५७३, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८५, –की अनुभूति ३१८, –की भावना २५६, –की शोध ५५३, –के लडाई ७४, –की शोध ५५३, –के बारे में अचल श्रद्धा ४२, –के विरोधी शास्त्रों के अर्थ सही नहीं ३१, –दीनसे दीन का ध्यान रखता है १५,

–नारायण का स्वरूप ४९, –नारायण से मिलने का मार्ग ५७, –परमेश्वर है १३०, –पर विश्वास ४५१, –मार्ग १८५, –या अहिंसा ५८०, –रूपी परमात्मा ७१, –वचन में हिंसा नहीं ५५, –वस्तु का साक्षी है ३१, –विध्यात्मक है ३१, –स्वयंसिद्ध है ३१, –साध्य ३६८
सत्यदर्शन २२४
सत्यनिष्ठ २१०
सत्यनिष्ठा ६०६
सत्यमेव जयते नानृतम् १७०
सत्यवादिता १९१
सत्यवादी २२२
सत्यशील ३४२
सत्यशोधक २६९
सत्याग्रह ६, ७४, ८९, ९१, ११७, १४७, १४९, १५१, १८६, २०२, २१८, २२०, २४८, २५९, २६६, २६९, २७७, २८१, २८२, ३७४, ३८४, ४०२, ४३१, ४३६, ४४०, ५०३, ५१६, ५३७, ५७८, ५८१, ५८९, ५९७, –का अर्थ २३२, –सार्वजनिक ९१, –सेना का सेनापति ७४
सत्याग्रह आन्दोलन ९२, ४२५
सत्याग्रह-आश्रम (सत्याग्रहाश्रम) ३२०, ३४४, ३४५
सत्याग्रह-नियम ९२
सत्याग्रह-सेनापति ७५
सत्याग्रही (सत्याग्रहियों) ७८, ८४, १२४, २१३, २१८, २२०, २३२, २५३, ४०५, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४५८, ४६०, ५१५, ५६४, ५६९, ५७१, ५७७, ५७८, –मण्डल २५१
सदावर्त ५४४
सनातन ३३९, ४५१
सन्निपात ५२९
सबल की अहिंसा ५४९
समग्र अहिंसा-सम्बन्धी प्रस्ताव ५६०
समता ३२०, ५१५
समर्थन ३२१
समर ४७४
समाचारपत्रों २७२
समाज २२८, २५२, २५३, २८९, ३१३, ३१६, ३१९, ३३५, ३३६, ३४७, ३५०, ३५४, ४२४, ४२६, ४७०, ४७२, ५३९, ५५१, ५५२, ५५६, ५७४, ५७५, ५७९, ५८२, ५८४, –का आधार ५०, –गठन ५४७, –दृष्टि ३२८, –रचना २५२, –व्यवस्था रची जा सकती है २२८, –व्यवस्था ५७३, –सुधार १७२, –सुधारक २५७
समाजवाद २८९
समाजवादी (–वादियों) २२८, २८९, ५४३, ५२२
सम्पूर्ण अहिंसा ५०१, ५५३
सरकार १६८, २११, २२५, २३१, २३९, २४१, २५१, २८१, २८३, २८५, २९६, ३२३, ३४२, ३४३, ३८६, ३८७, ३९९, ४२६, ४४०, ४६१, ४७४, ४८०, ४८१, ४९६, ५४९, ५५६, ५५९, ५७४, ५७५, ५९०
सरकारी २७२, ५००, ५०८
सरदार २३८, २३९, २४०, २५०, २५१, २५६, ५९१, –पृथ्वीसिंह ४८९, ४९०, –पटेल २५०, ५०८, –रामसिंह रावल ५१६, –वल्लभ भाई पटेल ४३९, ५७२, ५९१
'सर' –एडविन अर्नल्डि ४४५, – ज्यार्ज कैम्पवेल १६७, – माइकेल ओडायर ४९३
सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसायटी १४६
सविनय –अवज्ञा ८६, १९५, २००, २३२, २४१, ४०५, ४१३, –अवज्ञाकारी ४८८, –आज्ञा भंग २८५, –भंग ८९, ९१
सशस्त्र क्रान्ति ४९०

सहधर्मी ३४४
सहयोग १९६, २३७, २७९, २८२, ३७२, ३९०, ४०९, ४११, ४१५, ४३४, ४३६, ४४७, ४७९, ४८७, ५३८, ५४१, ५६२, ५८३, ५९९, ६०१, –परोपजीवियों में १३०, –विवशतापूर्ण ७०।
सहिष्णुता ८०, २०५, २६६, ४८४, ५२२
सर्वधर्म –एक समान ५२३
सर्वभूत –वाद ३३५, –वादी ३३४, –हित ३३७, –हिताय ३३४, ३३७
सर्वराज्य ३७०
सर्वशक्तिमान ४७०
सर्वज्ञ ४७०
सर्वाधिकारवाद ४२२
सर्वोच्च सत्ता ९२
सर्वोदय ३३७, ४२३, ५४४
साधन ५६३
साधु ३२२
साबरमती, –आश्रम १६२, १६३, –जेल १४९
साम्प्रदायिक १९९, २९१, ५३९, –ऐक्य २५३, –झगड़े १६९, २५८, –दोष २०९, –दंगे १७७, १९८, २००, २१०, २३४, २३५, २४३, २५२, २७०, –बलवों ५५५, –समझौता २३२, –समस्या ३६३, ६०१, –संघर्ष २९१
साम्प्रदायिकता १५८
सामाजिक ३५४, –अवस्था ५८४, –अहिंसा धर्म ३१७, –क्रान्ति २९९, –दूषण ५२९, –राजनीति ६०३
सामुदायिक धर्म ३२१
सामूहिक –आन्दोलन ९१, –हिंसा १९३
साम्यवाद ४२२
साम्यवादी (-वादियों) ५४३, ५४४
साम्राज्य–वाद ६१, २३१, २४०, ४४६, ४४७, –वादी ३९२, ४१६, ४४७, ५२०, ५२१, –शाही ४४५
सार्वजनिक अहिंसा ४७५
सासूना ३५३
सिख (सिखों) १५३, २५८, ४५९, ५३६, ५९०, –लीग ४७७
सिगफ्रीड लाइन ९६
सिन्योर, –मुसोलिनी ३९५
सिन्ध ५४९, –के बारे में ५७०
सिपाही (सिपाहियों) २६०, २७५, २८१, ५२१, ५३१, ५६३
सिविल गार्ड ६०१
सीधी कार्रवाई ५८०
सीमान्त ५३४, –गांधी २०८
सीमाप्रान्त २०८, २१५, ४९१, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३
सी० एफ० एण्डरूज १६
सीमित, –हिंसा ५०१
सुखदेव ४८०
सुभाष बाबू २८३, २९६, ४४१, ४४४
सुरेन्द्र जी २५०
सुशीला नय्यर १३६, ५२३
सूतकार ४६६
सूत्रों ५७६
सूर्य-चन्द्र ३६०
सेगाँव १९६
सेना (ओं) १९९, २००, २१३, २२५, २५७, २५८, २५९, २६०, ३८७, ४१८, ४४१, ४७४, ४७६, ५६८, ५६९, ५७८, ५७९, ५९१, ५९४, ६०२, –पति २५९, –पतित्व २२५, –सेवक की तालीम २७९।
सेवा २४५, ४७०, ५१२, ५४१, –दल १८३, –भाव २४६।
सेवाग्राम २२६, २२७, २२८, २३२, २३३, २३६, २४३, २४४, २४५, २५४, २५६, २५८, २६४, २६५, २६९, २७०, २७४, २७५, ४२१, ४२५, ४२६, ४३१, ४४४, ४९४, ४९६, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५६१, ५६३, ५६४, ५६५, ५६८, ५७०, ५७१, –आश्रम ४४५

सैन्य, —शक्ति २८१, —वाद १२३, —संघटन ४६३
सैनिक(कों) २६०, २७१, २७५, २७६, २८१, २८२, २८८, ४११, ४२१, ४४७, ४९१, ४९३, ५०६, ५३२, ५७१, —आचरण ५९३, —योग्यता २८२, —विज्ञान ५९३, —शिक्षा ९५, —संगठन २१४
सोदपुर ५१३
सोवियत रूस ५४८
स्टालिन १९४, ५६६, ५६९
स्टूडेण्ट्स हाल ४५७
स्टेट्समैन ५८, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ८९, ९०, ४०६
स्पेन ९९, ३९५, ४१७
स्मृतिकार (कारों) ४७४
स्वतन्त्र २४२, ३१४, ४७८, ४९३, ५१७, ५३५, ५५२, ५८२
स्वतन्त्रता १२३, १३७, १५०, १५१, १७४, १७६, १८४, १८७, १८९, २०४, २०५, २२२, २२५, २३२, २३३, २३४, २७६, २७७, २८६, २९१, ३९४, ३९६, ४०४, ४१७, ४१९, ४४१, ४४२, ४४७, ४७४, ४७५, ४७९, ४८१, ४८४, ४८९, ४९०, ४९४, ५०२, ५०६, ५०८, ५१५, ५१७, ५३५, ५४४, ५६२, ५७७, ५८२, ५८५, ५९९, ६०७, —के सिद्धान्त ४७३, —संग्राम ४९९।
स्वदेश, —के लिए भी अहिंसा नहीं छोड़ूंगा ३६, —भक्ति १५०।
स्वदेशी ३०२, ४५९
स्वभाव २४६
स्वयंसेवक (कों) १९९, २०३, २०७, २७१, २८३, ५३५, ५६७, ६००, —संगठन ६००
स्वर्ग ४७४
स्वराज्य १५, ८३, ८८, १०५, ११०, ११४, ११७, १५१, १५२, १५३, १६१, १६९, १७०, १७१, १७७, १८२, १९९, २०१, २०२, २०७, २२२, २४७, २४९, २५३, २५६, २५७, २९४, ३०१, ३०२, ३१४, ३४५, ३७०, ३७४, ३८८, ४२३, ४४९, ४६५, ४७४, ४७५, ४७७, ४८३, ४८४, ५०२, ५०७, ५०९, ५११, ५१२, ५२३, ५३७, ५४०, ५४७, ५५७, ५८२, —के पूर्व अहिंसा का प्रश्न २२२, —दल ४६०, —प्राप्त ३८४, ५७६, —प्राप्ति २०४, —स्वप्न ९१, —सैनिक ३६८, —हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है ५११
स्वराज्यवादी १६५
स्वराजी ४६३
स्याद्वाद ३२१
स्वागत २०२
स्वातन्त्र्य युद्ध १८३
स्वाधीन २१७
स्वाधीनता २१७, ४४९, ४७१, ४७६, ५९९, ६००
स्वार्थ ३१६, —मय हिंसा ३५४
स्विटज़रलैण्ड ४१९
स्वैच्छिक, —आज्ञापालन २१४
स्थितप्रज्ञ ५१४, ५२२, ५९२

ह

हकीम साहब अजमल ख़ां २०७
हज़रत मुहम्मद ५५३
हड़तालें २५४
हनुमान ३५३
हब्शियों ५५०
हब्शी ५५०
हरमैन रौशनिंग ४२०
हरि का मार्ग १२६
हरिजन ६९, ७१, १२९, १८९, १९१, १९३, २३३, २३८, २५०, २७२, २८३, ४९८, ५१०, ५५६, ५५९, ५६२, ५६९
हरिजन बन्धु २५०, ३७७, ४२२, ५७९
हरिजन सेवक ४२२

हरिनो मारग छे शूरानो १४०
हरिपुरा २०५
हर्ष शोक २५८
हालैण्ड ४१९
हिंसक ८९, १८२, १८३, १९०, २१६, २२५, २५५, २६०, २६१, २६९, ३२८, ४०१, ४२७, ४७९, ५६३, –आन्दोलन ४८२, –और अहिंसक सेना ५३१, –क्रान्ति और अहिंसा ४७६, –तैयारी ४९६ –दल १८५, –प्रवृत्ति १४५, –बल २४० –बल का प्रयोग ४९३, –भावना ५१३, ५७३, –मण्डल ४८३, –युद्ध १८८, २०४, ४३६, –वृत्ति ५८४ –शक्ति २८२, –शस्त्र २८८ –समाज ५८६, –साधनों ५८३ –सिपाही ५३०, –सेना १८३ –सेनापति २५८
हिंसा १०, २२, ८७, ९१, ९३, १०९ ११५, १२१, १२७, १३१, १३२, १३३, १४२, १४५ १४६, १५५, १६४, १७३, १७४, १७५, १७६, १७८, १८४, १८७, १८८, १९०, १९१, १९४, १९५, १९७, २००, २०१, २०४, २०९, २१०, २१२, २२३, २२५, २२८, २३२, २४२, २४७, २४८, २५०, २५२, २५५, २६२, २६६, २७०, २७६, २७८, २८०, २८४, २८७, २८८, २९०, २९२, २९५, २९६, २९७, ३०१, ३०२, ३०४, ३०५, ३०६, ३०९, ३१५, ३१७, ३१८, ३२२, ३२३, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५३, ३५८, ३६६, ३७२, ३७५, ३७६, ३७९, ३९१, ३९३, ३९९, ४००, ४०३, ४०५, ४१०, ४१६, ४४०, ४४९, ४५०, ४५७, ४५८, ४६०, ४७७, ४८५, ४९२, ४९७, ४९९, ५००, ५०४, ५०६, ५०८, ५०९, ५१३, ५१९, ५२२, ५२७, ५२९, ५३०, ५३१, ५३३, ५३४, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४८, ५५३, ५६७, ५७०, ५७१, ५७५, ५८८, ५८९, ५९१, ५९२, ६०१, ६०७, –अनिवार्य १८९, ३००, ३०८, –अहिंसा २२१, २५९, ४८७, ५८०, –अहिंसा का निर्णय ३०७, –अहिंसा मानव प्रकृति है ३४, –आग जलाने में ४५, –और अहिंसा ४३५, ४९२, –और अहिंसा का विवेक ३७८, –और अहिंसा का व्यवहार एक सा हो सकता है ५७२, –और अहिंसा का सम्मिश्रण २१८, –का अन्त नहीं ३६१, –का अन्तिम परिणाम ४५९, –का अर्थ २२१, –का आखिरी हथियार ५०५, –का उत्तर ४९७, –का एक स्वरूप ५०१, –का काम २१८, –का गलत रास्ता ५६२, –का जहर २५८, –का दावानल २०५, ३०५, –का परित्याग ४०३, –का पाठ ५११, –का प्रतिकार अहिंसा से ही हो सकता है २८८, –का प्रयोग २८८, ४७९, ५५६, –का बचाव ३०७, –का महामन्त्र ३०५, –का मार्ग १७७, ३८४, ४०९, ४७९, ४८०, ५२७, ५३९, –का मुकाबला हिंसा से नहीं २८५, –कायरता से श्रेष्ठ १३१, –कारी ४७५, –का विरोध ४५८, –की भावना ४५२, –की कला २१३, –की काली कला ४१२, –की तैयारी ३८८, –की दुराग्रही सेना ६०२, –की निरर्थकता ४१६, –की पराकाष्ठा होगी २५५, –की परिभाषा ४९, –की बदबू ५२३, –की भावना ५१२, –की लहर १५२, –की विजय ३९३, –की व्यर्थता ४४९, –की शिक्षा ५०१, –की श्रेणियां ४१०, –की सीमा ५५८, –की स्थितियां

७२, –के ताण्डव ४४९, –के दोष १०, –के दोषी न बनें २०, –के पुरातन मार्ग ५६२, –के प्रति घृणा ४२३, –के रूप ४८, –के लिए घृणा ४५०, –के साथ ४४१, –को ऐसा स्थान दिया गया २१७, –को प्रोत्साहन ३१३, –क्षम्य है ३७६, –जिन्दगी का कानून १५२, –जीवन का नियम नहीं ५७, –त्याग का अर्थ २१४, –दोष ३१७, ३६९, –धर्म ३७६, –नहीं अहिंसा ४११, –निर्बल और सबल की १३७, –नीति ५६२, –पूर्ण आचरण १४५, –पूर्ण भाषा १४५, –प्रचार १४८, ४३९, ४६४, –बल २३३, २५२, –बुरी है ४१५, –भक्तों २५३, –भयंकर चीज ५७२, –भय ३१०, –भाव ४६९, –मात्र पाप है ३०८, –मानसिक १००, –में अहिंसा सम्भव है ३३१, –में खुशबू ५२३, –में विश्वास ५०४, –में वीरता की कोटियां १३१, –युक्त २५४, –वाद ४७८, ४८७, ४८८, –वादियों ४८८, –वादियों से मेल-मिलाप सम्भव नहीं १४, –वृत्ति २५४, –शक्ति २६०, –शब्द का अप्रयोग २१, –शारीरिक १५४, –शास्त्र ५६२, –शैतान का कार्य १३५, –समर्थन सिद्धान्त की दृष्टि से नहीं २०, –सब समय हिंसा ही रहेगी ३०८, –सर्वोच्च सत्ता का आधार ९३, –सामान्य अर्थ ३५५, –से अहिंसा अच्छी ५५३, –से हिंसा नहीं मिटती ४५०

हिंसात्मक कार्य ४६१, –ढंग २८९, –पिकेटिंग २१२, –प्रतिकार १५६, –प्रतिरोध १९४, ४१३, –लड़ाई १९५, –वृत्ति २०१, –व्यवहार १९७, –संगठन २१३, –साधन २८८, –सेना ५३१

हिंस्र ४७३

हिंस्रता ४७५

हिटलर १०७, १०८, १९४, २९५, ३९२, ३९५, ३९६, ४०३, ४०४, ४०७, ४१६, ४१९, ४२१, ४२५, ४२६, ४५२, ५४८, ५६१, ५६२, ५६६, ५९१, –के उद्गार ४२०, –शाही ४२५

हिन्द ४७९, ५४३, ५४७

हिन्द महासागर ५२७

हिन्द स्वराज्य ४७२

हिन्दी ५९७

हिन्दी नवजीवन ३३५

हिन्दुस्तान ६४, ११६, १२३, १३४, १३८, १४१, १५३, १६८, १७१, १७६, १८१, १९३, २१७, २२५, २३५, २३८, २३९, २४०, २५५, २६४, २७४, २७५, २७६, २८१, २८२, २८४, २८६, २८७, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, ३०२, ३९८, ३९९, ४०६, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२३, ४२४, ४२५, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३८, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४५०, ४६३, ४७८, ४८३, ४९२, ४९५, ४९७, ५०५, ५०७, ५०८, ५०९, ५११, ५१२, ५१३, ५१६, ५१७, ५२०, ५२१, ५२२, ५२७, ५२८, ५२९, ५५२, ५५९, ५६१, ५६४, ५६८, ५७१, ५७३, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८६, ५८७, ५८८, ५९०, ५९२

हिन्दुस्तानियों ३८४, ४३२, ४३८, ५०७, ५११, ५१२

हिन्दुस्तानी २७५, २७६, ४१७, ४२६, ४३९, ५११, ५९७, –समाज २८७

हिन्दू (हिन्दुओं) १५२, १५३, १५५, १५७, १७७, २११, २४२, ३५२,

४५९, ५१८, ५२०, ५२३, ५३५, ५४३, ५४५, ५५४, ५६४, ५७५, ५७७, ५७८, ५९०, ५९२, ६०३, ६०५, –जगत १५३, –धर्म ६६, ६७, १५६, १७२, २०९, ३०८, ३५२, ४५७, ५१८, ५२९, ५८५, –शास्त्र ३०८, –संसार ३५२
हिन्दू मुस्लिम ऐक्य ८८, १६९, २०८, ३८४, –दंगा २३८, ३८३, –विरोध ८८, १५१, १७२, १७७, २८९, ५१९, –समस्या २०३, २९१
हिमालय २७, १३४, ५२७
हिरोशिमा ४५१
हुगली १९८, २०४
हूरों ५६९, ५७०
हृदय २८८, –दौर्बल्य २८८, –परिवर्तन २१४, २१८, २३१, ३५४, ४१७
हेर हिटलर ३९८, ४०७, ४२०, ५३४, ५४०, ५४४
हैरेटिक ४७०
हैरोल्ड ब्लेजर ३३५
होम रूल ४७२

सांकेतिका

[सत्य]

अ

अंग्रेज (जों) ६२३, ६८५, ६८७
अंग्रेज़ी ६२४, ६४१, ६८८
अक्रोध ६२६, ६२७
अखण्ड ६१०, ६११
अचपलता ६२६
अछूतों ६४८
अणुबम ६५१
अनन्त ६३४
अनसूया ६२५
अनाम ६४०
अनुशासन ६८९
अन्तरात्मा ६४१, ६४२
अन्तःकरण ६२६, ६६३
अन्धानुकरण ६३०
अदालतों ६६८
अद्वेष ६२६
अधर्म ६६९
अपराध ६९०
अपरिग्रह ६४२
अप्रमेय ६२४
अप्रिय ६३२
अपील कोर्ट ६८५
अभ्यास ६६०
अमर ६१३
अरण्यगान ६२३
अरबी साहित्य ६७१
अर्क पर्व ६२३
अर्जुन ६२६
अर्थ ६६९
अल्लाह ६५२
अवर्णनीय ६११
अविनश्वर ६१३
अविभक्त ६१४
अविभाज्य ६१४
अश्वमेध ६२५, ६७९, –यज्ञ (यज्ञों) ६२६
असत् ६१२
असतो मा सद्गमय ६४७
असत्य ६११, ६१२, ६१४, ६१७, ६२३, ६२५, ६३०, ६३८, ६४५, ६४६, ६४८, ६४९, ६५३, ६५४, ६५९, ६६०, ६६३, ६६५, ६७७, ६८१, ६८३, ६८४, ६८६, –रूपी ढकना ६१४
अस्ति ६५६
अस्तित्व ६५६
असीम ६३४
अस्तेय ६२७, ६५९
अहंकार ६६३
अहिंसक ६१२, ६४५, ६५०, ६५१
अहिंसा ६१४, ६१५, ६१८, ६२५, ६२६, ६२७, ६३४, ६३९, ६४०, ६४२, ६४३, ६४४, ६४६, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५९, ६६३, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७५, ६७९, ६८०, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, –धर्म ६७१, –परमोधर्मः ६५४, ६६९, –मार्ग ६६४, –शून्य सत्य ६३२

आ

आकाश ६१७, ६७८, –गंगा ६१७

आचार ६५६, –संहिताओं ६२३
आचार्य ६२३
आडम्बरहीनता ६२५
आत्मकथा ६१३, ६५५, ६५७, ६८९, ६९०, –जय ६२५, –नाश ६८०, –शुद्धि ६७१, –संयम ६२५, ६२७
आत्मा ६१८, ६५७, ६५१
आदर्श (आदर्शों) ६१२, ६२३, ६४९, –पूर्ण ६७५
आध्यात्मिक ५५१, ६८९
आनन्द ६१५, ६६०
आराधना ६३८, ६५९, ६६०, ६६५
आर्य (आर्यों) ६२५, ६२८
आश्रम ६५८

इ

इंगलैण्ड ६३९, ६७९
इंडियन सोशल रिफार्मर ६३१
इन्द्रिय (इन्द्रियों) –दमन ६२६, –निग्रह ६२७, ६४९
इमाम हसन ६६०
इमान हुसेन ६६०
इलाहाबाद ६८५
इस्लाम ६४०, ६७९

ई

ईशोपनिषद् ६४७
ईश्वर ६११, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१८, ६३३, ६३९, ६४०, ६४१, ६४३, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५७, ६५९, ६६३, ६६७, ६६८, –भीरू ६४०, –सत्य है ६४०
ईसा ६३९, ६७७

उ

उपवास ६३६
उपासक ६५८ (ऋ)
ऋषि (ऋषियों) ६२४, ६३४

क

कच्छ ६४८
कटुवचन ६४९
कर्म ६२६
कलकत्ता विश्वविद्यालय ६२३
कलाकार ६७६, ६७७
कांग्रेस ६८०, ६८५
काज़ीरखिल ६५४
कानून ६५२
काम ६६९
कायरता ६८१
कसौटी ६३५, ६६०
कुटिलता ६२३
कुरान ६७७, ६७९, ६८३, ६८५
कुलपति ६२३
कटनीति ६३०
कूटनीतिक ६२३
कोमलता ६२६
क्रोध ६११, ६१२, ६८६
क्षत्रियों ६२५
क्षमा ६२५, ६२६, ६२७

ख

खुदा ६८३
खेड़ा ६३४

ग

गांधीजी ६३९, ६४३, –लार्ड कर्जन कर्जन के आक्षेप पर ६२३
गांधी सेवा संघ ६१७, ६६७, ६६८
गाली ६२९
गिरि-प्रचवन ६७७
गीता ६८३
गुजराती ६३०, ६४७, ६५६, ६७६
गुप्त ६१६
गैरिसन ६३२
गोपनीयता ६४३, ६८१
गोलमेज-कान्फ्रेंस ६३९, –परिषद् ६३९
गौ ६२८
गौरीशंकर ६१३

ग्रन्थों ६२३

च

चमन कवि ६४८
चार्ल्स ब्रैडला ६४०
चिन्तामणि ६५६
चोरी ६२७

ज

जगत् ६१७
जज ६८६
जनरल स्मट्स ६३०
जमनालाल बजाज ६६३, ६६७
जातिगत प्रश्नों ६३१
जी० पिटेनड्रिग ६५८
ज्ञान ६१५, ६२४, ६२६, ६२७, ६५५, ६५९
ज्ञानी पुरुष ६८३

झ

झाँकियां ६१५
झूठ ६२४, ६२८, ६२९, ६३७, ६८९
झूठी ६२८

ट

ट्रांसवाल ६२९
ट्रुथ ६४१

त

तत्व ६६५
तप ६२६
तपश्चया ६४९, ६५६, ६६०
तीखी चटपटी भाषा ६३१
तेज ६१५
तेजस्विता ६२६
तैत्तिरीयोपनिषद् ६२३, ६२४
त्याग ६२६
त्रिकालदर्शी ६११

द

दक्षिण अफ्रीका ६२९, ६३६, ६६७, ६७९, –सरकार ६२९
'द नेशन' ६४३
दम्भ ६५३
दया ६२४, ६२५, ६२६
दरिद्रता ६४२
दाक्षिण्य ६२५
दान ६२६, –पुण्यों ६७९
दारिद्र्य ६८३
दुनिया ६३१, ६५५, ६८३
देव ६८४
देश ६७८
देहाध्यास ६१४
द्वन्द्व मुक्त ६३४

ध

धरती ६७८
धर्मचर ६२३
धर्म ६१७, ६१९, ६२३, ६२४, ६२७, ६४४, ६४५, ६४६, ६४८, ६६९, ६७१, ६७८, ६७९, ६८२, –राज्य ६३६, ६३७, –ग्रन्थों ६२८, –प्रचार ६४७
धारासभाओं ६६७, ६६८
धार्मिक ६२३
धीरता ६२६
धैर्य ६२७
ध्रुव प्रदेशों ६१३

न

नई दिल्ली ६५२, ६५३
नम्रता ६२५, ६३१, ६४५
न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ६२४
नारायण ६१५
नास्तिकों ६४०, ६४३
नास्तिकवाद ६१६
निरभिमानता ६२६
निर्भयता ६२६
निषेधात्मक ६६३
नीति-सम्बन्धी ६२३
नैतिक ६५१, ६८३

न्याय ६२८, –और सत्य ६२७, –न्याया-
धीशों ६८५, –वर्तिता ६२५
न्यूयार्क ६४३

प

पंचमवेद ६७९
परतन्त्र ६१७
पर निन्दा ६२६, ६२९
परमात्मा ६१७, ६३४, ६७१, ६८४,
६८५
परमेश्वर ६११, ६१२, ६१५, ६१६,
६४५, ६५४, ६५६, ६६०, ६७१
परिवार ६१३
परोपकार ६२५
पाखण्ड ६८१
पापाचरण ६२८
पापियों ६२८
पारसमणि ६६०
पाश्चात्य ६२३
पूजा ६७१
पूना ६५३
पूर्ण सत्य ६३२
पोलैण्ड ६३३
प्रकृति ६२५
प्रभु ६१७
प्रह्लाद ६५८, ६६०
प्राच्य देशों ६२३
प्राच्य शास्त्रों ६२३
प्राण ६३७
प्रायश्चित्त ६९०
प्रार्थना ६१७, ६४३
प्रिय ६२६
पृथिवी ६१२
प्रेम ६४०, ६४२, ६७१, ६८६
प्रेमा कंटक ६४७, ६६७, ६८२
प्रिय ६४५

फ

फीडियस ६७६
फूल ६४४
फौज ६८२

ब

बकवाद ६२९
बन्धुत्व ६४८
बम्बई ६८६
बरट्रेंड रसेल ६८७
बल ६३०
बहुनाम ६१६
बाक्सर ६८८
बाक्सिग ६८८
बीबी अम्तुस्सलाम ६५९, ६८९
बुद्धि ६२७
बैरिस्पुर ६८८
व्याधि ६४४
ब्रह्म ६२४, –चर्य ६१४, ६४२, ६४४
'ब्रह्मवल्ली' ६२४

भ

भक्ति ६३८, ६५६, ६६०, ६६८
भगवद्‌गीता ६२६
भगवान ६४६, ६६०, ६७९, ५८३
भजनादि ६४३
भय ६४३
भविष्य ६१६, ६३३, ६८३
भागवत पुराण ६२७
भारत ६२३, ६५८, ६६९, ६८२, –वर्ष
६३०, ६३८
भारतीय (भारतीयों) ६२९, ६३०,
६३९
भाषण ६२९
भाषा ६४७
भीष्म ६२५
भूतकाल ६१६

म

मदुरा ६५२
मद्रास ६५८
मन ६२६
मन्त्र ६३८

मनु ६२७
मनुष्य ६२४
मनुस्मृति ६२७, ६२८
मर्यादा ६२४
मर्यादित सत्य ६३२
महाकाव्यों ६२३
महात्मा ६८८
महादेव ह० देसाई ६१३
महानारायणोपनिषद् ६२४
महाभारत ६२५, ६२६, ६७९
माण्टिसेरी ६३९
मानसिक अहिंसा ६८३
मितभाषी ६८९
मिथ्यावादी ६२४
मुक्ति ६११, ६७४
मुण्डकोपनिषद् ६२३
मुहम्मद ६७७
मुसलमान ६७९
मुस्लिम ६८५
मूलसत्य ६३४
मेहराब ६१४
मैक्समूलर ६२४, ६५३
मोक्ष ६६३
मोहर ६१५
मौन ६८९
मौलाना रूम ६४८

य

यंग इण्डिया ६३३
यज्ञ ६२६, ६४६, ६५५
यज्ञोपवीत ६२३
यम-नियम ६४२
यरवदा जेल ६१५
युधिष्ठिर ६३६
योग ६२६

र

रत्न ६५९, –चिन्तामणि ६६०
राजकोट ६४९
राजद्रोह ६५४, –धर्म ६२४, –नीति ६६७, ६६८, –नीतिक ६७१, –सूर्य ६७९
राज्यशासन ६२४
राम ६३६, –चन्द्र ६२४, ६६०
रामायण ६२६
राष्ट्रीय ६७८
राष्ट्रों ६८३
रूपया ६१४
रोगी ६४३
रोमांरोलां ६४३

ल

लज्जा ६२६
लन्दन ६३९
लव ६४०
लार्ड कर्जन ६२३
लेखक ६३१
लोकाचार ६८२
लोभ ६२६
लौजान ६४३

व

वकील (लों) ६५४, ६६७, ६७९।
वचन ६२६
वाइसराय ६२३
वाक् सत्ये प्रतिष्ठिता ६२४
वाचिक सत्य ६१९
वाणी ६२४, ६२६, ६२७, ६२९, ६४४, ६४७, ६५४, ६५६, ६५९
विचार ६५६, ६५९
विज्ञान ६४१
विध्यात्मक ६६३
विभूतियां ६१२
विलियम लाइड गैरिसन ६३१
विवेक ६६४
वेद ६२७
वैज्ञानिक ६१७, ६४१, –प्रयोग ६४१, –शिक्षण ६४१
वैद्य ६४४
वैराग्य ६६०

व्रत ६११, ५४२, ६६७

श

शान्ति ६२४, ६६४, –प्रियता ६६४
शान्तिपर्व ६२५, ६२६
शाश्वत ६१३, ६१५
शास्त्र (शास्त्रों) ६२७, ६३३, ६४६, ६६९
'शिक्षावल्ली' ६२३
शिमला ६५२
शिव ६७७
शील ६८०
शुद्धता ६२६
शुद्ध सत्य ६११, ६१९, ६८९
शुद्धि ६२७
शोध ६१२, ६१८, ६५०, ६६३, ६६४
शोधक ६११, ६१२
श्रद्धा ७१६
श्रीकृष्ण ६२५

स

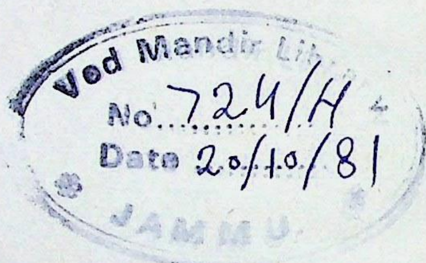
संसार ६१३, ६२४, ६२८, ६३१, ६३७, ६५१, ६५३, ६६५, ६७२, ६८१, ६८३, ६८६
सच्चिदानन्द ६५९
सत् ६१२, ६५६, ६८३
सत् श्री अकाल ६८३
सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् ६३१, ६४५
सत्यं वद ६२३
सत्य ६११, ६१२, ६१३, ६१५, ६१६, ६१९, ६२३, ६२४, ६२७, ६२८, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४१, ६४२, ६४३, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७५, ६७७, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, –अवश्य है ६१९ –अविभाज्य है ६१४, –अहिंसा अनिवार्य है ६६५, –अहिंसा प्रवृत्तियों का मूल है ६६६, –अहिंसा सर्वाधिक सक्रिय शक्ति ६४३, –अहिंसा सर्वश्रेष्ठ है ६६७, –आचार ६३६, ६३७, –ईश्वर क्यों ६३९, –ईश्वर है ६१८, –एक है ६३४, –और अहिंसा ६६३, –और अहिंसा का पालन ६३९, –की झाँकियाँ होंगी ६१४, –और झूठ की टक्कर ६२९, –और नवीन प्रयोग ६५७, –और लेखन ६४७, –और वकालत पेशा ६७९,–और सत्ता ६३६,–और सैनिक धर्म ६८१, –और हिन्दू धर्म ६१७, –का अधिष्ठान ६३२, –का अन्वेषण ६७५, –का अर्थ ६१६, –का ज्ञान परमेश्वर का ज्ञान ६११, –का दर्शन ६४९, –का नियम ६५८, –की परिभाषा ६४१, –का पुरस्कार ६३६, –का पूर्ण ज्ञान सम्भव नहीं ६३२, –की पूर्ण प्राप्ति का अर्थ सम्पूर्ण हो जाना ६११, –का प्रकाश ६१५, ६२५, –का माध्यम ६४७, –का व्रत कठिन है ६११, –का सूर्य ६३८, –का स्वभाव ६४४, –का स्वर्ण युग ६३८, –की महिमा ६३३, –की राह ६३६, –की विशिष्टता ६३०, –की शोध ६१३, ६१७, ६४१, –के बल पृथिवी टिकी है ६१२, –के बिना असत्य की स्थिति नहीं ६४८, –कैसे प्राप्त हो ६६०, –ज्ञानमनन्तम् ब्रह्म ६२४, –झाँकी के साधन ६५५, –दम्भ नाशक ६५३, –दूरदर्शी है –१७, –धर्म ६१७, –धर्म प्रचारकों का इष्ट ६७७, –नारायण ६१५, ६४७, ६७१, ६८३, –निष्ठ ६४३, ६५०, –निष्ठा ६३३, ६३७, –परम ६६६, –परायण ६३१, –परायणता ६२५, –पालन ६४४,

–पालन में शान्ति ६३६, –पूर्ण ६८०, –प्राचीन भारतीय वाङमय में ६२३, –प्राप्ति के उपाय ६४८, –प्रिय ६६४, –प्रिय और अप्रिय ६३१, –भगवद्गीता ६२६, –भागवत पुराण में ६२७, –भीरु ६४०, –भीष्म के अनुसार ६२५, –मनुस्मृति के अनुसार ६२७, –मय ६११, ६१७, ६४५, ६४८, –महाभारत में ६२५, ६२६, –मार्ग ६३८, –में अन्धानु-करण नहीं ६३०, –में नम्रता आव-श्यक है ६३१, –में सौन्दर्य निहित है ६७६, –मेव जयते नानृतम ६२३, –मेव जयते ६६५, –मेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् ६२४, रामायण में ६२६, –रूप ६३९, ६४०, –रूप परमेश्वर ६६०, –रूपी परमेश्वर ६१२, –रूपी सूर्य ६७१, –वचन ६३७, –वादी ६३३, ६३६,–वादीहि लोकेस्मिन परमं गच्छति चाक्षयम् ६२४, –वाणी ६२७, –विचार ६३७, –विमुख होना किसी भी स्थिति में उचित नहीं ६८७,–विशाल वृक्ष ६५९, –शक्तिशाली है ६५१, –शील ६३६, –शीलता ६६४, –शुद्ध ६८९, –शोध ६४३, –शोधन ६१७, –शोधक ६३४, ६७९, –शोध की अवाप्ति ६१३, –शोधकों ६४६, –सत्ता के समक्ष ६३७, –सनातन ६८८, –सब धर्मों का आधार ६४६, –साध्य ६७०, –सिख धर्म में ६२९, –सूर्य ६३७, –हठ-वादिता का विरोधी ६५७, –हिंसा का विरोधी है ६६४, –हितोपदेश में ६२९, –हिन्दू तत्वज्ञान के अनुसार ६४१, –ही ईश्वर है ६४०, –ही जीवन है ६४५, –ही पूज्य ६१५,
सत्याग्रह ६१२, ६३६, –आन्दोलन ६७५, –आश्रम ६१३, –सत्याग्रही ६३०, ६४९
सत्याचरण ६३३
सत्याचरणी ६११, ६४७
सत्यात्मा ६२७
सत्यान्नस्ति परोधर्मः ६५४, ६६९
सत्यान्मा प्रमदितव्यम् ६२३
सत्यार्थी ६८२
सत्यान्वेषी (सन्यान्वेषियों) ६३४, ६७५
सत्येन पन्था विततो देवयानः ६२३
सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ६२४
सत्यों का सत्य ६२७
सत्व शुद्धि ६२६
सत्विक ६१२
स्तेय ६५९
सदाचारी ६७५, .७६
सद्गुण ६२५
सनातन ६२४
सन्तजनों ६४९
समाज (समाजों) ६८३, ६८४
सम्पूर्ण सत्य ६१८
सम्प्रदाय ६६६
सरकार ६३६
सर चिम्मनलाल सीतलवाड़ ६७५, –विलियम जोंस ६२७
सरदार वल्लभ भाई पटेल ६६७, ६६९
सर्वव्यापक ६११
सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम् ६२४
सविनय भंग ६३४
ससवाड़ ६६७
ससीम ६३४
सहस्रनाम ६३९, –धारी ६१६
सहिष्णुता ६२५
साधन और साध्य ६४१
साधना ६७१
सान्त ६३४
सापेक्ष ६३२, –सत्य ६५३, ६५४, ६५५
साबरमती ६१३
सामवेद ६२३
सामाजिक ६८३
साम्य ६२६
सिख ६८३

सिद्धान्त ६६५
सीता ६३६
सुकरात ६७६
सूर्य ६१५, ६३७
सृष्टा ६३९
सृष्टि ६१३, ६३७
सेना ६८१, ६८२
सेवाग्राम ६४९, ६५०, ६५१, ६८५, ६८६
सेवा ६८८
सैनिक ६८१, ६८२
सौन्दर्य ६७६, ६७७
स्फटिक मणि ६११
स्वतन्त्र ६८७
स्वतन्त्रता ६८१, ६८३, ६८५, ६८६
स्वतन्त्र धर्म ६१३
स्वदेश ६६४
स्वधर्म ६६४
स्वराज्य ६३४, ६३५, ६४९, ६६७, ६८०, ६८३, ६८४, ६८६
स्वाधीनता ६३४, ६३५, ६६५, ६६९
स्वाध्याय ६२६
स्वावलम्बी ६३०
स्विटजरलैण्ड ६३९

ह

हण्टर कमेटी ६७५
हरिजन ६५१
हरिजन सेवक ६४९
हरिनो मारग छे शूरानों नहिं कायरनुं काम जोने ६३७
हरिश्चन्द्र ६३६, ६३७, ६६०
हिंसक ६६४, ६८०
हिंसा ६५४, ६५९, ६६५, ६८१, ६८६
हितोपदेश ६२९
हिन्दुओं ६७९
हिन्दुस्तान ६३३, ६४६, ६८५, ६८६
हिन्दू जाति .१७, –तत्वज्ञान ६४१, –धर्म ६१७, ६२४, ६२७, ६३५, ६५४, –शास्त्रों ६३९
हिमालय ६५५
हिरण्मयेन पात्रेण सत्यापिहितम् मुखम् ६१४
हुगली ६६६, ६६८



गांधी साहित्य प्रकाशन
इलाहाबाद



